

प्रथम-आवृत्ति }
पुस्तकालोक-५५० }

राजसंस्करण-३०) रु०
साधारण ,, -२५) रु०

{ वीर सत्रन् २४६७
{ विक्रम सत्रन् २०२७

* प्राप्तिस्थान *

भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति,
C/o रमणलाल लालचंद
१३५/१३७ अवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन-समिति
C/o शा. समरयमल रायचवजी
पिंडवाड़ा, (राज०)
स्टे० सिरोहीरोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
. शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कटी मार्केट,
अमवाबाद २.

•

सुदक
नानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाड़ा
स्टे. सिरोहीरोड (W. R.)

-: पदार्थसंग्रहकारा: :-

कर्मशास्त्रज्ञधुरीण-गच्छाधिपा-ऽऽचार्यदेव-श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वर-विनीत-विनेय-प्रभावक-
प्रवचनकार पंन्यासप्रवर-श्रीभानुविजयगणिवर्य विनेयमुनिवर्यश्री धर्मघोषविजयान्तिपदो
विद्वद्भ्य गीतार्थमुनिश्री-जयधोषविजयाः, पंन्यासप्रवरश्री भानुविजयगणिवर्य-
विनेया मुनिश्री-धर्मानन्दविजयाः, गच्छाधिपतिविनीतविनेय-
गीतार्थमूर्धन्य-पंन्यासप्रवर-श्रीहेमन्तविजयगणिवर्यविनेय मुनिराजश्री-
ललितशेखरविजय-शिष्यरत्न-मुनिवर्यश्री राजशेखरविजय-
शिष्याणवो मुनिश्रीवीरशेखरविजयाश्च ।

★

मूलगाथाकाराः

प्राकृतविशारदा मुनिश्रीवीरशेखरविजयाः ।

२

टीकाकार. सम्पादकश्च :

सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात सच्चारित्रिचुडामणि स्व. आचार्यदेव श्रीमद्विजयप्रेम-
सूरीश्वर-पट्टधर शासनप्रभावक व्याख्यानवाचस्पति आचार्यदेव श्रीमद्विजयरामचन्द्र-
सूरीश्वर-विनेयरत्न विद्वद्भ्य प्रभावकप्रवचनकार पंन्यासप्रवर श्रीभुविजय-
गणिवर विनेयाणु मुनि-विचक्षण विजयः ।

★

सशोधकाः

कर्मशास्त्रविशारद-गच्छाधिपति-श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टप्रभावका आगमप्रज्ञा-ऽऽचार्यदेव-
श्रीमद्विजयजगन्मसूरीश्वराः पदार्थसंग्रहकारमुनिप्रवराश्च ।

Printed by :
GYANODAYA PRINTING PRESS
PINDWARA. (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)



3. Shab Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABA-2.
(INDIA)



2. BHARATIYA PRACHYA TATVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o. Shab Samantlal Raychandji,
PINDWARA, (Rajasthan)
St.Sirohi Road (W. R)
(INDIA)

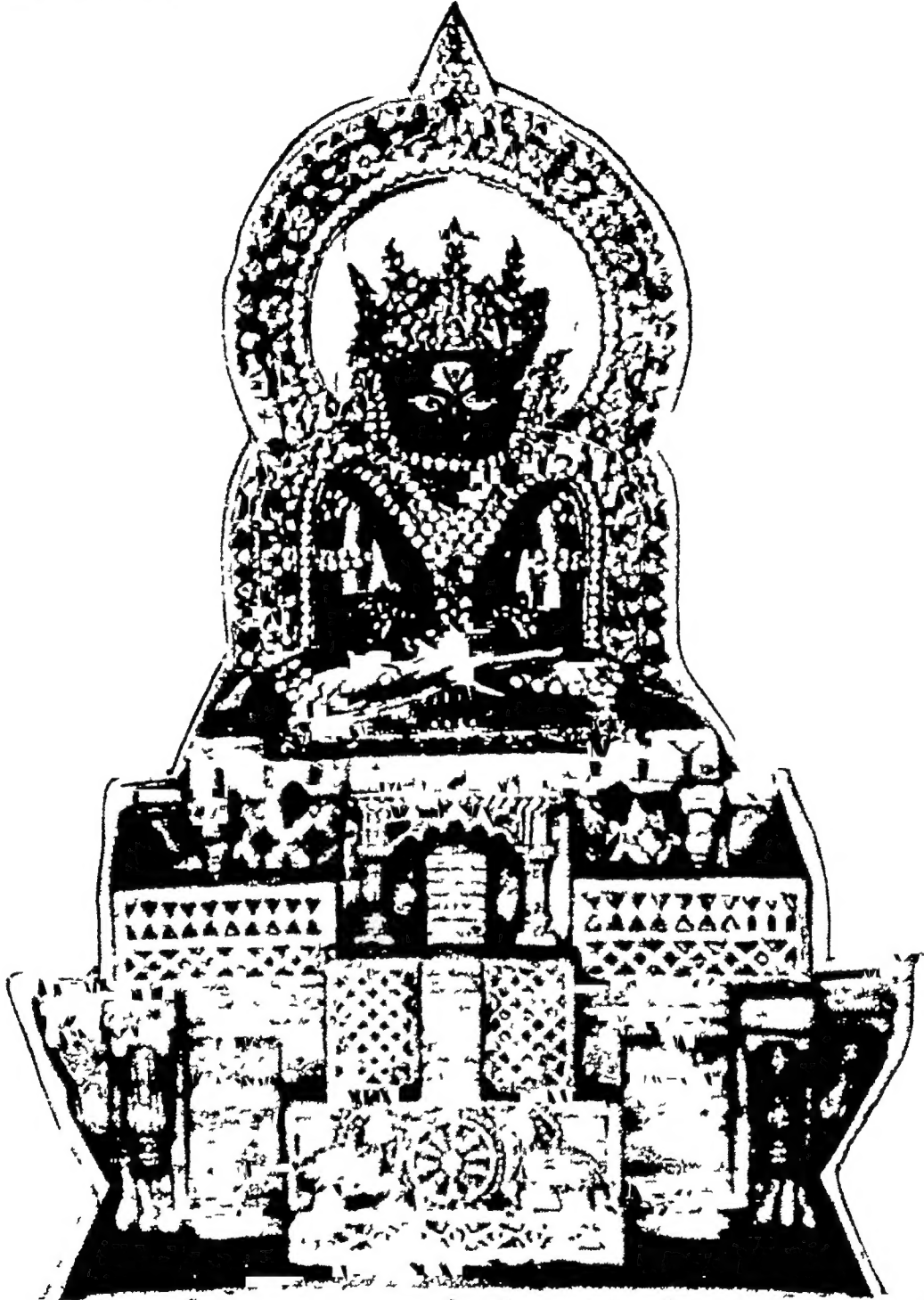


1. BHARATIYA PRACHYA TATVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o. Shab Ramanlal Lalchandji,
136/37 ZAVARI BAZAR,
BOMBAY-2.
(INDIA)

AVAILABLE FROM :

First Edition	{	ORDINARY	{	A. D. 1970
Copies 550		"		RS. 25
DELUXE EDITION RS. 30				

श्री स्थंभनपुर (खंभातनगर) मण्डन पार्श्वनाथ भगवान्.



श्री स्थंभनपुर पार्श्वनाथ भगवान् ।

श्रीस्थंभनपुरमण्डन-पार्श्वजिन प्रणतकल्पतरुकल्पः ॥

चूरय दुष्टव्रातं, पूरय मे वाञ्छितं नाथ ! ॥ १ ॥

Acharyadeva Shrimad-Vijaya-Premasurishwara Karma-Sahitya Granthamala
GRANTH NO. 7

Bandha Vihanam
UTTAR PAYAMI BANIHU

[Along with "PREMA PRABHA" commentary]

By

A GROUP OF DISCIPLES

Inspired and Guided by
His Holiness Acharya Shrimada Vijaya
PREMASURISHWARJI MAHARAJA
the leading authority of the day
on Karma philosophy.



Published by—

Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti, Pindwara

सम्पादकीय

इस जगत में जब हन किसी को महल और मोटर का आनंद लेने वाला श्रीमंत देखते हैं तो किसी गरीब को घर में भटकता, भोजन मांगकर भी पेट भरने में असमर्थ पाते हैं। कोई शरीर से दृष्ट पुष्ट पहलवान सा दिखाई देता है तो कोई कई रोगों का शिकार दिखाई देता है। कोई बड़ा बुद्धिमान दिखाई देता है तो कोई पागल सा, मुर्ख, बुद्धिबिहीन भी नजर आता है। किसी के यहां करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति के ढेर लगे हुए रहते हैं तो किसी के घर में कानि कौड़ी भी नहीं होती। इसी प्रकार कोई लूला है, कोई लंगडा है, कोई अंधा है कोई गूंगा है। कोई दुःखी है कोई सुखी है। कोई रोता है तो कोई हसता है। इस प्रकार की विचित्रता और विभिन्नता व्यक्ति व्यक्ति में दिखाई देती है। इसका यदि कोई कारण है तो वह है कर्म।

नार्विक दर्शन के सिवाय सभी आर्य दर्शनकारों ने कर्म जैसे तत्त्व को माना है। यद्यपि सत्य की मान्यता-उत्सर्ग नाम और स्वर्ण के विषय में अलग २ हैं फिर भी सत्यने किसी न किसी रूप में कर्म तत्त्व को स्वीकार किया है। कोई कर्मको द्रव्य मानते हैं तो कोई गुण। कोई इसे वासना के नाम से पुकारते हैं तो कोई माया के नाम से। कोई इसे अदृष्ट कहते हैं तो कोई प्रकृति।

लेकिन जैन शासन में कर्म तत्त्व को जिस स्वरूप और जिन भेद प्रभेदों के रूप में माना है वह अत्यद्भुत और सुघटित है। कर्म तत्त्व को वास्तविक रूप में समझने के लिये वर्तमान युग में भी जैन शासन प्राचीन काल में तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा सुविस्तृत रूप में रचित शास्त्रों से परिपूर्ण एवं समृद्ध है।

जैन शासन में कर्म को पुद्गल द्रव्य माना है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है जो अपनी नजर में नहीं आता, केवल अतिशयज्ञानी ही उसे देख सकते हैं। इन कर्म पुद्गलों के चौदहों राजलोंकों में से प्रत्येक आकाश प्रदेश में अनन्तान्त अणु के स्वरूप छाए हुए हैं। इन कर्म पुद्गलों को संसारी आत्मा योग के द्वारा ग्रहण करती है और क्षीर नीर के न्याय से अपने साथ चिपकाती है। आरंभ में यह कर्म पुद्गल सामान्यरूप में होता है, बाद में आत्मा अपने मिथ्यात्व अविरति और कषाय के अध्यवसायों से ज्ञानावरणादि के रूप में विभाजित करती है इन कर्म पुद्गलों के वेदन काल में आत्मा पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इनके कारण संसारी आत्माओं संसार में एक गति से दूसरी गति में चक्कर लगाती हैं और सुख दुःख का अनुभव करती हैं।

हम लोग भी अनादिकाल से इन कर्मों की जंजीरों में जकड़े हुए होने से इस संसार में चक्कर लगा रहे हैं। इन कर्मों की जंजीरों को तोड़ने बिना संसार का चक्कर मिटाना अशक्य है। संसार के चक्कर मिटाने के लिए कर्मों का तथा कर्म-बन्ध के हेतुभूत आश्रवादि का और कर्म-मुक्त होने के हेतुभूत संवर-निर्जरादिका ज्ञान सुविस्तृत रूप से करना अत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। कर्म-तत्त्व का ज्ञान भव्य जीवों को हो इस दृष्टि से प्राचीनयुग में ज्ञानी महापुरुषों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ की भी रचना की गई है जिसका नाम 'उत्तरपथद्विबन्धो' रखा गया है।

वर्तमान युग में कर्म साहित्य के विषय में जो २ ग्रन्थ उपलब्ध हैं उन सबका तलस्पर्शी ज्ञान हमारे इस ग्रन्थ रचना के प्रेरक सच्चारित्यचूड़ामणि कर्म साहित्य के परम निष्णात सिद्धान्त महोदधि आचार्य देव-धोमड़ विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहब ने सम्पादित किया। 'कर्मपथदी' जैसे जैन

शासन के साहित्य के एक अद्वितीय महान् ग्रन्थ के गुजराती या हिन्दी भाषानुवाद की तो बात ही दूर रही लेकिन उसकी छपी प्रति भी उपलब्ध नहीं थी उसकी हस्तलिखित प्रति ज्ञानमंडार में संशोधन करते २ उनके हाथ में आई और उसे देखते ही आचार्यदेव बड़े प्रफुल्लित हो गए । उनके गुरुदेव आचार्य श्री विजयदानसूरीश्वरजी महाराज के परम आशीर्वाद से उन्होंने उस ग्रन्थ का स्वयं अध्ययन करना प्रारम्भ किया । छहों कर्म ग्रन्थों का अव्ययन सुव्यवस्थित होने के कारण पूर्वापर के अनुसन्धान पूर्वक युक्ति से पदार्थों को बैठाने लगे कोई पदार्थ दिन भर अनुप्रेक्षा-चिन्तन करने पर भी दिमाग में बराबर नहीं बैठता था तब मध्यरात्रि को उठकर बड़ी एकाग्रता पूर्वक सोचते थे । जब वह पदार्थ दिमाग में ठीक प्रकार से बैठता तभी वे निश्चिन्त होते थे । इस प्रकार अथक परिश्रम उठाकर इन महापुरुष ने कम्मपयडी ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिया । तत्पश्चात् ओरों को पढ़ाना आरम्भ किया । उन्होंने अनेक साधुओं और श्रावकों को यह पढ़ाया । इस प्रकार जैन शासन में कम्मपयडीग्रन्थ को पढ़ने पढ़ाने की परम्परा चली । वर्तमान में जो कोई साधुवर्ग या श्रावकवर्ग इस ग्रन्थ का अभ्यासी मिलता है उस में साक्षात् या परंपरा से इन महापुरुष का ही उपकार है । वादगे इन महापुरुषने अनुस्रम कोटि के सक्रमकरण आदि मव्यतम ग्रन्थों की नूतन रचना की थी ।

प. पू. आचार्य देव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहव जैसे कर्म साहित्य के विषय में निष्णात थे वैसे ही जैन जेनेतर न्याय ग्रन्थों के तथा आगम ग्रन्थों के भी अद्वितीय ज्ञाता थे इसलिये उनके गुरुदेव प. पू. ज्योतिर्विशारद आचार्य देव श्रीमद् विजयदानसूरीश्वरजी महाराज साहव ने उन्हे सिद्धान्त महोदधि की उपाधि से विभूषित किया था ।

एक बार आचार्य देव अनेक साधुओं से परिवृत्त होकर सिद्धाचलजी की यात्रा के लिये जा रहे थे । गिरिराज पर चढ़ते २ मार्ग में आचार्यदेव ने कहा कि वस-वाहर ऐसे नए साधु बनाने हैं जो इस कर्म साहित्य में तथा आगम ग्रन्थों में पारंगत हों उनकी यह दृढ़ मनोकामना कुछ ही वर्षों में सफल हुई । वे एक अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति थे । ब्रह्मचारी का चिन्तन कभी भी निष्कल नहीं होता । अनेक कर्म साहित्य और आगमशास्त्रों के विशारद शिष्य-प्रशिष्यों की सम्मदा हुई ।

मुनि श्री जयधोषविजयजी मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी मुनि श्री हेमचन्द्रविजयजी तथा मुनि श्री बीरशेखरविजयजी ने कर्म साहित्य के ग्रन्थों में प्रकीर्ण रूप में पड़े हुए पदार्थों को हेतु पुरस्सर संकलित कर नए ग्रन्थों की रचना प्रारंभ की । इसमें बन्धविधान नामक महाग्रन्थ की मूल गाथा से प्राकृत में रचना करने का मगीरथ कार्य प्राकृत विशारद मुनिश्री बीरशेखरविजयजी ने किया । उन्होंने इस महान् ग्रन्थ की रचना प्रकृति, स्थिति रस और प्रदेश से चार रूप में की इन चारों के दो विभाग किये एक मूल प्रकृति रूप से और दूसरा उत्तरप्रकृति रूप से तथा उत्तरप्रकृति रूप विभागको तीन रूप में विभाजित किया (१) प्रथमाधिकारप्ररूपणा (२) स्थानप्ररूपणा (३) भूयस्कारप्ररूपणा । यह प्रस्तुत ग्रन्थ उत्तरप्रकृतिबन्धका निरूपण करने वाला प्रथमाधिकार प्ररूपणा रूप है उनके द्वारा प्राकृत में रचित ऐसे अनेक मूल ग्रन्थों पर सरल और विद्वद्भोग्य संस्कृत भाषा में वृत्ति रचने का कार्य अलग २ महात्माओं ने किया । बन्धविधान ग्रन्थ के पदार्थों का संकलन करने में मुनि जयधोषविजयजी मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी मुनि श्री बीरशेखरविजयजी-इन तीनों महात्माओं का महत्वपूर्ण योगदान है ।

संवत् २०१६ के वर्ष में एक बार हम आचार्य देव के साथ पिंडवाडा में थे । उस समय आचार्य देव ने मुझसे कहा तुम भी एक ग्रन्थ की टीका लिखो मेने कहा-आचार्य देव । यह कार्य मेरे लिए कठिन है क्योंकि इस विषय में मेरा ज्ञान नहीं है और न मुझमें शक्ति ही है । आचार्य देव ने कहा-बबराओ नहीं थोडा अभ्यास करलो तुम्हें टीका लिखने में कोई कठिनाई नहीं आएगी मेने भी आचार्य देव का धन

शिरोमान्य कर टीका लिखने के लक्ष्य से कर्म साहित्य का अध्ययन शुरू किया। उसके बाद जावाल के चतुर्मास में आचार्यदेव की परम पावन निशा में रहकर उनके और मेरे गुरुदेव प. पू. पण्यास प्रवर श्री मुक्तिविजयजी गणिवर के आशीर्वाद से यह टीका लिखना प्रारंभ किया। आचार्यदेव और मेरे गुरुदेव की असीम कृपा से यह कार्य बड़ी सरलता से परिपूर्ण हुआ और छपकर आज आपके सामने प्रस्तुत हुआ।

मेरे इस ग्रन्थ की वृत्ति के मूल लेख (प्रेस प्रती) का संशोधन प. पू. आचार्यदेव ने किया लेकिन मेरा बड़ा दुर्भाग्य कि उनका स्वर्गवास होने के कारण यह पुनीत ग्रन्थ उनके कर कमलों में समर्पित नहीं कर सका।

बाद में इस ग्रन्थ के मूल लेख (प्रेस प्रती) का संशोधन मुनि श्री जयघोषविजयजी, मुनि श्री धर्मानन्द विजयजी, और मुनि श्री वीरशेखरविजयजी ने किया। इसके बाद आगम ब्रह्म विद्वद्भ्यः प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय जम्बूसुरीश्वरजी महाराज सहाय और यशोविजयजी म्हेसाना पाठशाला के प्राध्यापक सुश्रावक श्री पुखराजजी ने श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि से संशोधन किया।

तदनन्तर मुनि श्री जयघोषविजयजी और मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी ने मुझे ग्रन्थ छपवाने के लिए पिंडवाडा आने का पत्र लिखा। गुरु महाराज की आज्ञा से ज्येष्ठ गुरुवर्य मुनिराज श्री जयभद्र विजयजी के साथ मैं पिंडवाडा आया और इस ग्रन्थ का मुद्रणकार्य शुरू हुआ।

इस ग्रन्थ का सम्पादन कार्य में और उदारचित्त मुनि श्री जयघोषविजयजी कुशाग्र बुद्धि मुनि श्री धर्मानन्दविजयजी और विद्वान् मुनि श्री वीरशेखरविजयजी आदि ने मिलकर किया। उनकी ओर से बार बार हमें इस सम्पादन कार्य में मार्गदर्शन मिलता रहा। इससे हमारा यह कार्य बड़ी आसानी से समाप्त हुआ। रानी गांव में चतुर्मास हेतु विराजे हुए परम तपस्वी विद्वद्भ्यः मुनि श्री जितेन्द्रविजयजी महाराज ने भ्रूफ सशोधन में अपना अमूल्य समय देकर जो सहयोग दिया उसे हम कभी नहीं भूल सकते। इसी प्रकार समय २ पर न्यायविशारद मुनि जगन्मन्त्र विजयजी का भी इस कार्य में जो सहयोग मिला वह भी चिरस्मरणीय रहेगा।

कर्म साहित्य के अद्वितीय ज्ञाता-आगम ब्रह्म प. पू. श्रीमद् जम्बूसुरीश्वरजी महाराज साहब तथा हमारे गुरुजी विद्वद्भ्यः पण्यास प्रवर श्री मुक्तिविजयजी गणिवर महाराज सहाय के पास छपे हुए कर्म भेजे गए। उन्होंने सूक्ष्मता से पढ़कर अशुद्धियाँ निकालने की हम पर बड़ी कृपा की। उन अशुद्धियों को श्री यशोविजयजी म्हेसाना पाठशाला के प्राध्यापक श्री वसन्तलाल द्वारा बनाए गए इस ग्रन्थ के शुद्धिपत्र में शुद्ध रूप में परिवर्तित किया गया। जिनका अलग शुद्धिपत्र दिया है। शुद्धिपत्र की सहायता से ग्रन्थ में पहिले सुधार कर पढ़ने के लिये विद्वज्जनों से विनम्र निवेदन है। भ्रूफ सशोधन में पूर्ण सावधानी रखते हुए भी छद्मत्यता कारण इस में यदि कोई अशुद्धियाँ रह गई हों तो हम सूचित करने का कष्ट करें। इस ग्रन्थ में अनामोग से जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो उसके लिये मिथ्यादुष्कृत देता हूँ।

स्व. सिद्धान्तमहोदय कर्मसाहित्यनिष्णात सच्चारित्रचुडामणि प. पू. आचार्यदेव

श्रीमद् विजय प्रेमसुरीश्वरजी मा. सा. के पट्टवर शासनप्रभावक व्याख्यान

वाचस्पति महाराष्ट्रदेशोद्धारक प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयराम-

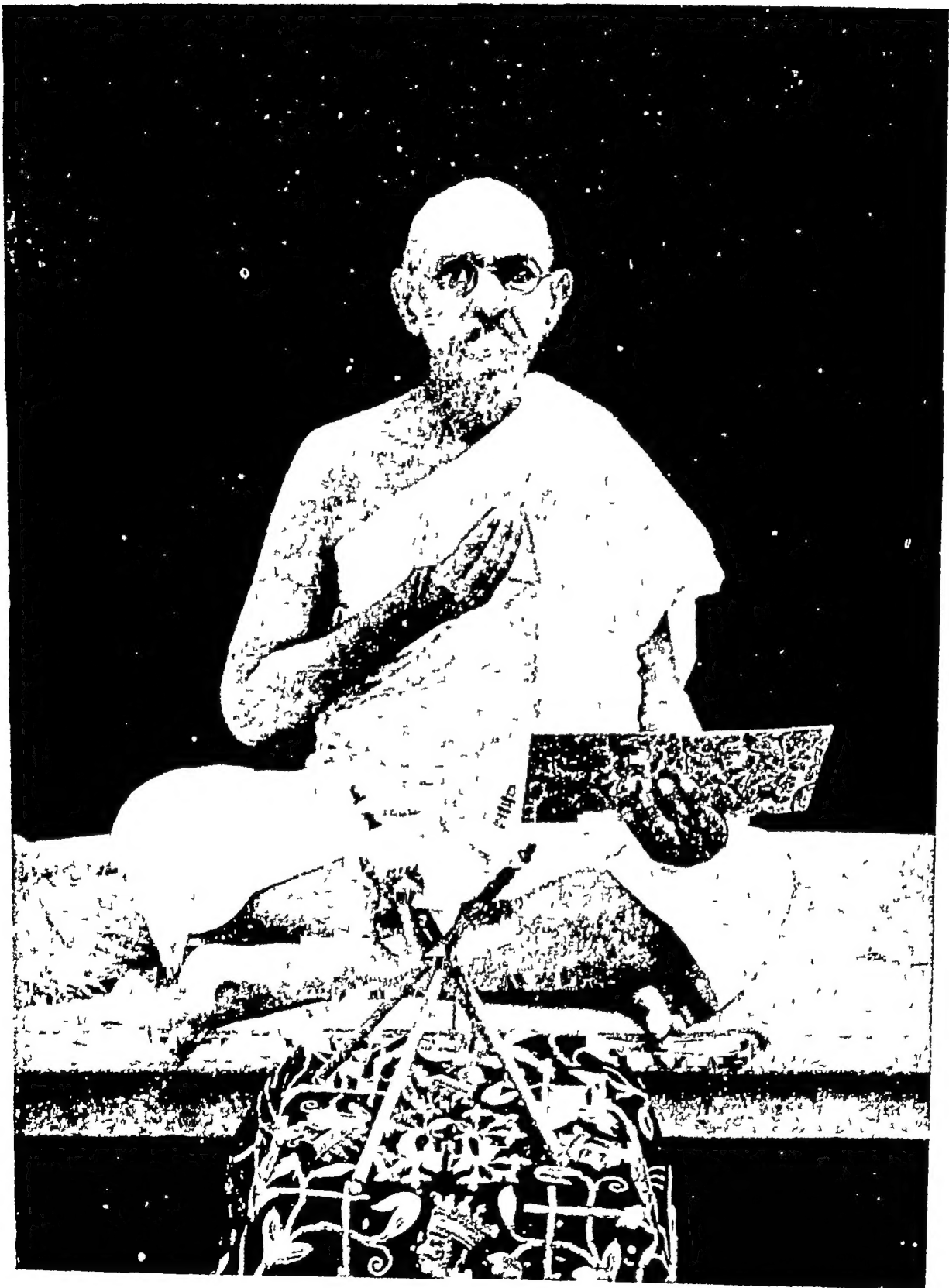
चन्द्रसुरीश्वरजी मा. सा. के विनेयरत्न विद्वद्वरेण्य प्रखरवक्ता

प. पू. पण्यासप्रवर श्रीमुक्तिविजयजी गणिवर्य

के चरणकमल में चञ्चरिक विनेयाणु

मुनि विचक्षणविजय।

सकलागमरहस्यवेदी सूरिपुरन्दर बहुश्रुतगीतार्थ परमज्योतिर्विद् परमगुरुदेव



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

સુરેશભાઈ

શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળાના, અંતર



જે શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળાના જ્ઞાનખાતાના દ્રવ્યની સહાયથી
આ ઉત્તર પ્રકૃતિબંધ નામના ગ્રંથરત્નનું મુદ્રણ કરવામાં આવ્યું છે તે
શ્રી તપગચ્છ અમર જૈનશાળાનો બધા રમણીય ઉપાશ્રય.

प्रकाशकों की ओर से

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य में हमें किसी समाज का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। साहित्य समाज का प्राण है। समाज को नव चेतना स्फूर्ति एवं गति साहित्य से प्राप्त होती है। सांसारिक दुःखों का यथार्थस्वरूप हमें आध्यात्मिक साहित्य में दिखाई देता है। 'मैं' और मेरा की अन्धी दौड़ में जहाँ जगत के अधिकांश व्यक्ति होड़ लगा रहे हैं वहीं दूसरी ओर पंचमहाव्रतधारी त्यागी-तपस्वी गण रुसार को 'स्व' की सही पहिचान करवाने में भी प्रयत्नशील हैं संसार के शोर गुल युक्त वातावरण से दूर शांति के साम्राज्य की सैर करवाने में ये मुनि गण सदा अपनी निःस्वार्थ सेवाएं देते रहे हैं।

ऐसे आध्यात्मिक साहित्य के सृजन में व्यस्त अनेक मुनिगणों में निःस्पृह शिरोमणि कर्म साहित्य निष्ठात सिद्धान्त महोदधि परम पूज्य स्वर्गीय आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहव एवं उनके अज्ञाकारी शिष्य प्रशिष्यरत्नों का भी हम पर बड़ा भारी उपकार है। इस संस्था का आध्यात्मिक प्रेम इन महत्माओं की उदारता के बिना विकसित होना असम्भव था।

इन कृणाल मुनिवरों का ही यह उपकार है कि यह संस्था अब तक कर्म साहित्य संबंधी विभिन्न ग्रन्थों का प्रकाशन करने में सफल हो सकी है। 'खवगसेढो' तथा 'मूलपयडिबंघो' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रथम प्रकाशन समारोह अहमदाबाद में मज्ज जुलूम के साथ चतुर्विध संघ की उपस्थिति में इस समिति द्वारा जो आयोजित हुआ उसे शायद ही भुलाया जा सकेगा। फिर तो जैन जगत में प्राचीन साहित्य प्रकाशन में ऐसी रुचि पैदा हुई कि शीघ्र ही यह समिति श्रुत सृजन करने वाले महत्माओं की कृपा से 'मूलपयडिरसबन्धो' मूलपयडिपएसबन्धो, उत्तरपयडिरसबन्धो (पूर्वांश) तथा 'उत्तरपयडिडिबन्धो (पूर्वांश) ज्ञानी श्रुतसेरीजनों की सेवा में समर्पित करे सकी।

इस समिति के आध्यत्मिक साहित्य सृजन के उत्साह वर्धन में विभिन्न दानवीरों ने भी प्रशंसनीय योगदान दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उत्तरपयडिबंघो के प्रकाशनार्थ जैन अमरशाला, खभात ने अपने ज्ञान द्रव्य में से रु० १०००० की विपुल राशि देकर इस समिति पर बड़ा उपकार किया है। समिति दानवीर संस्था के व्यवस्थापकों को हार्दिक धन्यवाद देती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गुम्फित पदार्थों (तत्त्वों) के संग्रहकार परम पूज्य विद्वद्भ्यं मुनिराज श्री जयधोन-विजयजी महाराज परम पूज्य विद्वद्भ्यं मुनिराज श्री धर्मानन्दविजयजी महाराज, मूल ग्रन्थ की प्राकृत गाथाओं के रचयिता परम पूज्य विद्वद्भ्यं मुनिराज श्री वीरशेखरविजयजी महाराज तथा इस ग्रन्थ के सुबोध, सरल एवं विस्तृत टीकाकार परम पूज्य विद्वद्भ्यं मुनिराज श्री विचक्षणविजयजी महाराज साहव के अनुपम आभारी हैं साथ ही इस संस्था के ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, के व्यवस्थापक व्यावर निवासी श्रीयुक्त फतहचन्दजी जैन (हालां वालो) एवं उनके अवीनस्थ अन्य कर्मचारीगणों की कर्तव्यपरायणता एवं तत्परता की भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन प्रकाशन कार्य की यह इति श्री नहीं है। अभी अन्य ग्रन्थ तैयार करने

मे ये महात्मागण लगे हुए हैं। आशा है कि सामर्थ्यवान् समृद्धजन एवं संस्थाएं इस साहित्य प्रकाशन में मुक्त हस्त ले दान देकर अपने धन का सदुपयोग करेंगे।

भवदीय

मौनयकादशी वि० सं० २०२७
पिण्डवाडा (राजस्थान)
स्टे०-सिरोहीरोड

शा० समरथमल रायचंदजी (मन्त्री) ।
शा० शान्तिलाल सोमचंद (भाणाभाई) चौकमी (मन्त्री)
शा० लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री)

भारताय प्राच्यतन्त्र प्रकाशन समिति

— समिति का ट्रस्टी मंडल —

- (१) शेठ रमणलाल दलसुखभाई (प्रमुख) खंभात । (७) शा. लालचंद छगनलालजी, पिंडवाडा ।
(२) शेठ माणिकलाल चुनीलाल, बम्बई । (८) शेठ रमणलाल वजेचंद, अमदावाद ।
(३) शेठ जीवतलाल प्रतापशी, बम्बई । (९) शा. हिम्मतमल रमनाथजी, वेडा ।
(४) शा. खूबचंद अचलदासजी पिंडवाडा । (१०) शेठ जेठालाल चुनीलाल घीवाला, बम्बई ।
(५) शा. समरथमल रायचंदजी, पिंडवाडा । (११) शा. इन्द्रमल हीराचंदजी, पिंडवाडा ।
(६) शेठ शान्तिलाल सोमचंद (भाणाभाई), खंभात । (१२) शा. मन्नालालजी रिक्षवाजी, गुणावा ।



卐 श्री नवकार गहागंत्र 卐



नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवञ्ज्ञायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

ऐसो पंच नमुकारो

सव्वपावप्पणासणो

भंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ भंगलं



સમર્પણ

જેઓશ્રીની ગુણ્યપ્રેરણા અને અસીમકૃપાથી અલ્પજ્ઞ એવો હું ઉત્તરપ્રકૃતિબન્ધ નામના
દુર્નીત ગ્રન્થની વૃત્તિ રચનાનું કાર્ય કરવા સમર્થ થયો છું. તે મહાપુરુષ સ્વ. પ. પૂ. પરમોપકારી
પરમારાધ્યપાદ. સચારિત્રચૂડામણિ સિદ્ધાન્તમહોદયે કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત સુવિશાલગચ્છાધિપતિ
આચાર્યદેવેશ

શ્રીગદ્વિજયપ્રેમસૂરીશ્ચરણીમહારાજના
પદિત્ર કરકમાલગાં

મુનિ વિચક્ષણ વિજ

આ ગ્રંથસર્જનના પ્રેરક, માર્ગદર્શક અને સંશોધક



સિદ્ધાન્તમહોદયિ, કર્મશાસ્ત્રનિષ્ણાત, સુવિશાલગચ્છાધિપતિ, સકલસંઘકૌશલ્યાધાર,
સ્વ. પરમપૂજ્ય આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજા.

ब्रं धर्मा वै ह्यः सां

तत्र

उत्तरपयडिवंधो

तत्राऽयं

“प्रेमाप्रगा” टीकाविभूषितः

अथमाधिकारलक्षणः पू. शिः

* विषयानुक्रमिका *

उत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थप्रारम्भः

विषयः	पृष्ठः
विषयानुक्रमः	३
मार्गिणायन्त्रम्	६
ग्रन्थप्रारम्भः	७
दीकाकृन्मङ्गलम्	७९
ग्रन्थकृन्मङ्गलम्	९-१०
अधिकारनिरूपणम्	११
प्रथमाधिकारस्य द्वारनिरूपणम्	११

प्रथमं सत्पदद्वारम् १२

प्रकृतिसम्प्रहृन्निरूपणम्	१२-१३
ओषत उत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदनिरूपणम्	१३
आदेशतो मार्गिणासू	१३-२४
तत्रोत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तना	१३-१५

द्वितीयस्वामित्वद्वारम्- २५

प्रकृतिसम्प्रहः	२५-२६
जीवभेदप्रदर्शिका गाथाः	२६-२७
ओषत उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम्	२७-३१
आदेशतो मार्गिणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम्	३१-४३
ओषत उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम्	४४-४७
ओषत उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम्	४७-४८
आदेशतो मार्गिणास्वप्रकृतीनामबन्धस्वामित्वम्	४९-५१

तृतीयं साधादिद्वारम् ५२

ओषत उत्तरप्रकृतीनामबन्धस्वामित्वम्	५२
आदेशतो मार्गिणासाधादिनिरूपणम्	५२-५३

विषयः	पृष्ठः
चतुर्थं चालद्वारम्	५४

प्रकृतिसम्प्रहृन्निरूपणम्	५४
ओषत उत्तरप्रकृतीनामायुष्कचतुष्क-	
जिननाम्नां साधादिभेदबन्धकालः	५४-५५
ओषत उत्तरप्रकृतीनां जघन्यतस्तथा तासु सान्तरनिरन्तर-	
प्रकृतीनामुत्कृष्टतो बन्धकालः	५६-५६
मार्गिणानां जघन्योत्कृष्टकालस्थितिप्रतिपादिका-	
गाथाः	६०-६१

आदेशतो मार्गिणास्वायुष्ककर्मणां जघन्यो-	
त्कृष्टतो बन्धकालः	६१
मार्गिणास्वायुर्वजोत्तरप्रकृतीनां जघन्यतो	
बन्धकालः	६१-७७

मार्गिणास्वायुर्वजोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्ध-	
कालः	७८-१०२

पञ्चमसत्पदद्वारम् १०३

प्रकृतिसम्प्रहृन्निरूपणम्	१०३
ओषत उत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरम्	१०३-१०५
ओषत उत्तरप्रकृतीनां उत्कृष्टबन्धान्तरम्	१०५-१०८
आदेशतो मार्गिणास्वायुर्वजोत्तरप्रकृतीनां	
जघन्यबन्धान्तरम्	१०८-१२६
ओषत उत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरम्	१२६-१५०
ओषत उत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरम्	१५०-१५१
ओषत उत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरम्	१५१-१५६

विषयः

पृष्ठः

विषयः

पृष्ठः

पष्ठं सन्निकर्षद्वारम् १६०

ओषध उत्तरप्रकृतीनां स्वस्थानसन्निकर्ष-

निरूपणम् १६०-१८३

आदेशतो मार्गणासूत्रप्रकृतीनां स्वस्थान-

सन्निकर्षनिरूपणम् १८३-२२२

परस्थानसन्निकर्षप्ररूपणम्

२२३

ओषध उत्तरप्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्ष-

प्ररूपणम्, २२३-२५१

आदेशतो मार्गणासूत्रप्रकृतीनां ,, ,, २५१-३१०

सप्तमं भङ्गनिरूपणम् ३११

भङ्गानां सङ्ख्यास्वरूपनिरूपणम् ३११

ओषध उत्तरप्रकृतीनां भङ्गनिरूपणम् ३१४-३१५

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृतीनां भङ्ग-

निरूपणम् ३१५-३३२

तत्र व्याप्तिनिरूपणम् (३१५-१८)

आदेशतो मार्गणास्वायुष्काणां भङ्गनिरूपणम्

३३२-३३४

अष्टमं भागद्वारम् ३३५

ओषध उत्तरप्रकृतीनां बन्धकावन्धकानां भाग-

निरूपणम् ३३५-३३६

आदेशतो मार्गणासु तद्गतेजीवापेक्षयाऽऽयुर्वज्रोत्तर-

प्रकृतिबन्धकानां तदवन्धकानां बन्धकानां च भाग-

निरूपणम् ३३६-३५८

,, सर्वजीवापेक्षया मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तर-

प्रकृतिबन्धकानां भागनिरूपणम् ३५९-३६३

,, ,, मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृत्य-

बन्धकानां भागनिरूपणम् ३६३-३६६

आदेशतो मार्गणासु तद्गतेजीवापेक्षयाऽऽ-

युर्वन्धकानां तदन्तर्गतायुर्वन्धकानां च भाग-

निरूपणम् ३६६-३७०

आदेशतो सकलजीवापेक्षया मार्गणास्वायु-

र्वन्धकानां भागनिरूपणम् ३७०-३७१

,, ,, ,, स्वायुर्वन्धकानां ,, ३७१-३७३

नवमं परिमाणद्वारम् ३७४

ओषध उत्तरप्रकृतिबन्धकावन्धकानां परिमाण-

निरूपणम् ३७४

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृतिबन्धकानां

परिमाणनिरूपणम् ३७५-३७८

,, ,, ,, प्रकृत्यबन्धकानां ,, ३७८-३८३

,, ,, मार्गणास्वायुर्वन्धकानां ,, ३८३-३८५

,, ,, स्वायुर्वन्धकानां ,, ३८५

दशमं क्षेत्रद्वारम् ३८६

ओषध उत्तरप्रकृतिबन्धकावन्धकानां क्षेत्रनिरूपणम्

३८६-३८७

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृतिबन्धकानां

क्षेत्रनिरूपणम् ३८७-३९१

तदन्तर्गतव्याप्तिनिरूपणम् (३८७-८८)

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां

क्षेत्रनिरूपणम् ३९१-३९७

,, ,, स्वायुर्वन्धकानां क्षेत्रनिरूपणम् ३९८-३९९

,, ,, स्वायुर्वन्धकानां ,, ३९९-४००

॥ एकादशं स्पर्शानाद्वारम् ॥ ४०१

प्रकृतिसंघट्टननिरूपणम् ४०१

प्रसनाड्या भागस्वरूपनिरूपणम् ४०१-४०२

ओषध उत्तरप्रकृतिबन्धकावन्धकानां स्पर्शानानिरूपणम्

४०२-४०३

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृतिबन्धकानां

स्पर्शानानिरूपणम् ४०३-४२८

तत्र व्याप्तिनिरूपणम् (४०४-४०५)

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां

स्पर्शानानिरूपणम् ४२८-४५१

आदेशतो मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानां स्पर्शाना-

निरूपणम् ४५१-४५४

,, ,, युष्काऽवन्धकानां ,, ४५४

विषयः

पृष्ठः

विषयः

पृष्ठः

आदर्शमनेकजीवाश्रिते कालेकारम् ४५५

ओषधत-उत्तरप्रकृतिबन्धकाऽबन्धकानां जघन्यो-

त्कृष्टाभ्यां कालनिरूपणम् ४५५

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां

" " ४५६-४६३

तत्र व्याप्ति निरूपणम् (४५६-४५७)

आयुर्वर्जानां मार्गणास्तुत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां

कालनिरूपणम् ४६३-४७२

मार्गणास्वायुष्कर्मबन्धकानां कालनिरूपणम् ४७२-४७४

" स्वायुष्कर्मबन्धकानां " ४७४-४७६

अयोधशमनेकजीवाश्रितम-तरकारम् ४७७

ओषधत उत्तरप्रकृतिबन्धकाबन्धकानां जघन्यो-

त्कृष्टाभ्यामन्तरनिरूपणम् ४७७

आदेशतो मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां

मन्तरनिरूपणम् ४७७-४८१

" " प्रकृत्यबन्धकानां " " ४८१-४८८

" मार्गणास्वायुष्कर्मबन्धकानामन्तर-

निरूपणम् ४८८

" " युष्काऽबन्धकानां " " ४९०

अतुष्टा भावकारम् ४९१

ओषधत आदेशतोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य भाव-

निरूपणम् ४९१

ओषधत उत्तरप्रकृतीनामबन्धस्य " " ४९१-४९४

आदेशत " " " " ४९४-५०१

पञ्चपरामलपबहुत्वाकारम् ५०२

अथ स्वस्थानजीवालपबहुत्वनिरूपणम्

तत्रोषधत उत्तरप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामलप-

बहुत्वनिरूपणम् ५०२-५०८

आदेशत " " " ५०८-५१०

अथ परस्थानजीवालपबहुत्वनिरूपणम् ५११

तत्रोषधत उत्तरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकामलपबहुत्वनिरूपणम् ५११-५१३

आदेशत " " " ५१३-५१८

अथाऽलपबहुत्वम् ५१९

अथ स्वस्थानबन्धकालापबहुत्वनिरूपणम् ५२६

तत्रोषधत उत्तरप्रकृतीनां बन्धकालापबहुत्वनिरूपणम् ५२६-५०६

आदेशतो " " " " ५०६-५१२

अथ परस्थानबन्धकालापबहुत्वनिरूपणम् ५१३

तत्रोषधत उत्तरप्रकृतीनां बन्धकालापबहुत्वनिरूपणम् ५१३

आदेशतः " " " " ५१३-५१६

टीकाकृतप्रशस्तिः ५२०-५२१

संभातभमरजैनशालायाः प्रशस्ति ५२२ ५२३

ग्रन्थसमाप्तिः ५२४

शुद्धिपत्रम् ५२५



१७४ उत्तरमार्गणानां यन्त्रम् (भूलप्रकृतिवन्धसत्का गाथाः २९-३८)

संख्यया मार्गणास्थानानि	संख्यया मार्गणास्थानानि	संख्यया मार्गणास्थानानि	संख्यया मार्गणास्थानानि
↓ गति (४७) [गाथा २९, ३०] १ नरकगतिसामान्यम्, ७ रत्नप्रभादिपृथिवीभेदात्, ... १ तिर्यगगतिसामान्यम् १ तिरश्ची, १ पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सामान्यम्, १ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्, १ अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्, ... १ मनुष्यगतिसामान्यम्, १ मानुषी, १ पर्याप्तमनुष्य, ३ अपर्याप्तमनुष्यः, ... १ देवगतिसामान्यम्, ३ भवन-अन्तर-ज्योतिष्का, १२ सौर्वर्मादिकल्पोपपन्नभेदात्, १ नवग्रंथेयकभेदात्, ५ पञ्चानुत्तरभेदात् इन्द्रियम् (१६) [गाथा ३१] १ एकैन्द्रिये, ★३ द्वौन्द्रिये, ★३ त्रीन्द्रिये, ★३ चतुरिन्द्रिये, ★३ पञ्चेन्द्रिये,	↓ कायः (४२) [गाथा ३२, ३३] १ पृथिवीकाये, १ अकाये १ तेज काये, १ वायुकाये, १ वनस्पतिकायसामान्यम्, ★३ प्रत्येकवनस्पतिकाये, १ साधारणवनस्पतिकाये ★३ असकाये, योग (१८) [गाथा ३४] ५ मनोयोगे —५ वचोयोगे, १ काययोगसामान्यम्, १ औदारिकः, १ औदारिकमित्र, १ वैक्रिय, १ वैक्रियमित्र, १ आहारक, १ आहारकमित्र, १ कामंशः, वेदः (४) [गाथा ३५] १ स्त्रीवेदः, १ पुरुषवेदः, १ नपुंसकवेदः, १ अपगतवेदः,	↓ कपायः (५) [गाथा ३५] १ क्रोधः, १ मानः, १ माया, १ लोभः, १ म्रकपाय, ज्ञानम् (८) [गाथा ३६] १ मतिज्ञानम्, १ श्रुतज्ञानम्, १ अवधिज्ञानम्, १ मन पर्यवज्ञानम्, १ केवलज्ञानम्, १ मत्तज्ञानम्, १ श्रुतज्ञानम् १ विभक्तज्ञानम् सयमः (८) [गाथा ३६] १ सयमसामान्यम्, १ सामायिक, १ छेदोपस्थापनः, १ परिहारविशुद्धिकः १ सूक्ष्मसम्प्रापः, १ यथास्थापः, १ देशसयमः, १ असयमः, दर्शनम् (४) [गाथा ३६] १ चक्षुर्दर्शनम्, १ अचक्षुर्दर्शनम्, १ श्रवणदर्शनम्, १ केवलदर्शनम्,	↓ लेदया ६ [गाथा ३७] १ कृष्णलेदया, १ नीललेदया, १ कापोतलेदया, १ तेजोलेदया, १ पद्मलेदया, १ शुक्ललेदया भव्यः (७) [गाथा ३७] १ भव्यः, १ समभ्य, सम्यक्त्वम् (७) [गाथा ३७, ३८] १ सम्यक्त्वसामान्यम्, १ क्षायिकम्, १ क्षायोपक्षायिकम्, १ औपक्षायिकम्, १ सासादनम्, १ मिश्रम्, १ मिश्र्यात्वम्, सक्षी (२) [गाथा ३८] १ सक्षी, १ असक्षी आहारक (२) [गाथा ३८] १ आहारकः, १ अनाहारकः,

१ सामान्य-२ सूक्ष्मसामान्य-३ सूक्ष्मपर्याप्त-४ बादरसामान्य-५ बादरपर्याप्त-६ बादरापर्याप्तभेदात् सप्त ।

★ १ सामान्य-२ पर्याप्ता-३ उपर्याप्तभेदात् त्रीणि ।

— १ सामान्य-२ सत्ता-३ असत्य-४ सत्यासत्या-५ असत्यामृषभेदात् पञ्च ।

॥ ॐ ह्रीं अर्हं नमः ॥

॥ श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ सकलागमरहस्यवेदिरमज्योतिर्विच्छीमद्विजयपानसूरोश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥



प्रवचन कौशल्याधार-सुविहिताग्रणी-भाष्ठाधिपति-परमशासनप्रभावक सिद्धान्तमहोदधि-
कर्मशास्त्रनिष्ठाता ऽऽचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरोश्वरपादानां पुण्यतमनिश्रयां
तदन्तेवासिबृन्दविनिर्मितमेमप्रभाटीकाविभूषितं मुनिश्रीजयघोष-
विजयधर्मानन्दविजयवीरशेखरविजयसंगृहीतपदार्थकं
मुनिश्रीवीरशेखरविजयविरचितमूलगाथाकम्

ॐ धर्मदत्ताय नमः

तत्र

उत्तरपयडिवंधो

(उत्तरप्रकृति-बन्धः)

तात्रऽयं

मुनिश्रीविचक्षणविजयविरचितमेमप्रभाटीकासमलङ्कृतः

प्रथमाधिकारलक्षणः पूर्वांशः

अनुपमसुखसंयुक्तं सुरेन्द्रेपरिसेविताडिध्रकमलयुगं । केवलसुकलितविश्वं, स्तौमि सदा प्रथमतीर्थेशम् ॥१॥

(आर्या)

संसृता स्थापकः शान्तेः शशीव शारदः शमी । शाश्वत्यै नोऽशरण्यानां, शान्तिनाथोऽस्तु शान्तये ॥२॥

(अनुष्टुप्)

श्यामा यस्य वपुःकान्तिः प्रवरा रिष्टरत्नवद् । अरिष्टनेमिर्हंस भूयान्नो रिष्टनाशकः ॥३॥ (॥)

अनन्तं विज्ञानं सुखमनुपमं विश्वविषयं । सुरम्यं चारित्रं विलसति च यस्य प्रतिकलम् ॥

जनानां वै यस्यातिशयनिकरं विस्मयकरं । सदा स भीपाश्वो वितरतु सुभद्रं जिनवरः ॥४॥

(शीखरीणी)

ऐन्द्रसुखमुपासक ऐन्द्रवज्रनेत्रकभः । ऐन्द्रमानन्दमादधान्महयं वीरविभुर्वरम् ॥५॥ (अनुष्टुप्)

यो वेत्ति विश्वमखिलं सुधिया सदैव ।
 लब्ध्वा भवभ्रमणभङ्गविधायिनं यम् ॥
 भव्याः प्रयान्ति भयकृद्भवकाननान्तं ।
 आहत्य येन निहतः खलु मोदमल्लः ॥६॥ (यसन्ततिलका)
 यस्मै नतिं ददति देवगणाधिपाश्च ।
 राज्याधिपाः प्रचुरभक्तिभराः सहर्षम् ॥
 रागादिदोषविलयादिह नैव यस्मात् ।
 आप्तोऽपरोऽष्टजिनवाक् परमोपकारी ॥७॥ (यसन्ततिलका)
 दुःखाग्निनाऽनवरतं परिदह्यमानाः ।
 नैरेयका अपि सुपर्वसु सुप्रसन्नाः ॥
 कल्याणकेषु सुखमाप्य भवन्ति यक्ष ।
 सङ्क्रन्दनस्य खु सुधामिव पीतवन्तः ॥८॥ (यसन्ततिलका)
 यस्मिन्ननुत्तरगुणा विलसन्त्यनन्ताः ।
 सौम्ये सरोवर इव प्रवरा मरालाः ॥
 स स्तम्भनाभिघपुरस्थितपार्श्वनाथः ।
 ग्रन्थेऽत्र वृत्तिरचने प्रतनोत्वविधम् ॥९॥ (यसन्ततिलका) (त्रिभिर्विशेषकम्)
 प्रसादं संप्राप्य प्रकृतिसुभगं यस्य रुचिरम् ।
 न पीडामाप्नोति प्रबलभक्तमौधरिपुतः ॥
 कदाप्यस्मिन्नलोके सुभक्तजनो धर्मपथगः ।
 यथा तापात्तीव्रात् शिरसि धृतछत्रो दिनकृतः ॥१०॥ (शीखरिणी)
 सदा स प्रेमाख्यो निखिलसमयेषु प्रथितधीः ।
 सुगच्छाश्रे श्रीमान् दिनमणिरिव ध्वान्तहरणः ॥
 मयि ग्रन्थस्यास्य स्मरणपटुतां वृत्तिकरणे ।
 प्रकुर्यादाचार्यो विपुलवरविद्याविरहिते ॥११॥ (शीखरीणी) युग्मम्
 प्रतिबोध्य सभानीता भवोत्पथस्थिता जनाः । देशनया हया येन सारथिनेव सत्पथि ॥१२॥
 जगत्प्रथितमाहात्म्यं शासनोद्यतकारिणम् । तं वन्दे प्रवराचार्य श्रीरामचन्द्रव्रिणम् ॥१३॥ (भुङ्क्ते)
 युग्मम्
 इत्पङ्कजानि भव्यानां विकसितानि भानुवद् । येन धर्मकथाकाले वाक्प्रतापं वितन्वता ॥१४॥ (")
 भगिनं देशनादध्वं पन्यासप्रवरं गुलम् । श्रीमुक्तिविजयं नत्वा तं तार्किकशिरोमणिम् ॥१५॥ (")

धृतिं ग्रन्थेऽत्र कुर्वेऽहं प्रेमप्रभामभिख्यया । जिज्ञासूनां खु भव्यानां कर्मतत्त्वावबोधिकाम् ॥१६॥
(अनुष्टुप्) (त्रिभिर्विशेषकम्)

गरीयान्सो गुणस्तोमान्लघीयान्सोऽपि सन्ति ये । कुशलाः कर्मशास्त्राणां ये खु पदार्थसंग्रहे ॥१७॥
(")

कर्मसाहित्यपारीण आगमोपनिषद्विदः । श्रीयुतो जयधोपास्तान् धर्मानन्दानहं मुदा ॥१८॥
(")

चरणधृतिधीरांश्च ग्रन्थकृद्वीरशेखरान् । विजयपदभासरान् स्मृतिगोचरमानये ॥१९॥
(") (त्रिभिर्विशेषकम्)

बुद्धिर्विकाशमाप्नोति यस्याः पुण्यप्रभावतः । तां सन्मत्यै सदा भक्त्या भारतीमानमाम्यहम् ॥२०॥
(")

इह कर्मलुप्टाकैलुषितज्ञानाधात्मधनाः क्लिष्टसंक्लेशमंतप्यमाना आधिव्याधुपाधिदुःखोप-
द्रवाऽभिद्रुता जिनधर्मपाथेयविनिर्मुक्ताः क्षुधादिकष्टकदर्थिता गहनतरां विचित्रां कर्मप्रकृतीनां गतिम-
नवगाहमाना अन्धा इवेतस्ततो वन्धप्रमया अन्तापारसंसृत्यटव्यामनन्तानन्तप्राणिप्राताः
परिदृश्यन्ते, तेषां संसारोच्छेदमोक्षप्रदानलक्षणहिताधानकामनया हितविधानैकरसिको ग्रन्थकारो
बन्धविधानाख्ये महाकाये ग्रन्थे मूलप्रकृतिबन्धनिरूपणानन्तरं क्रमायातस्योत्तरप्रकृतिबन्धविषयस्य
ग्रन्थस्य निर्मितं विधातुकामो भङ्गलाभिधेयादिस्त्रुचिकामादौ गाथामाह

अहं यन्मिअकम्मार्तिं थोउं थंभणपुरत्थपासपहुं ।

गुरुआएसाहिन्तो वोच्छं उत्तरपयडिबंघं ॥ १ ॥

(प्रे०) 'अहं' ति अथशब्द आनन्तर्ये-बन्धविधानाख्यग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धनिरूपणं
समाप्य साम्प्रतमुत्तरप्रकृतिबन्धो निरूप्यते । 'यन्मिअकम्मार्तिं' ति स्तम्भिताः कर्माण्येवारयो
येन स इति स्तम्भितकर्मारिः, तम्, अवरुद्धकर्मशत्रुमित्यर्थः । 'थोउं' ति स्तुत्वा, मनोवचःकथैः
स्तुतिविषयीकृत्वेति भावः । कं स्तुत्वा ? इत्याह "थंभणपुरत्थपासपहुं" ति स्तम्भनपुरे
तिष्ठतीति स्तम्भनपुरस्थः, स्तम्भनपुरस्थश्चासौ पार्श्वप्रभुश्चेति स्तम्भनपुरस्थपार्श्वप्रभुः, तम्, स्त-
म्भनपुरनामनगरविराजमानं पार्श्वनाथस्वामिनमित्यर्थः । स्तुत्वेत्यत्र स्तुधात्वव्यवहितोत्तरविहित-
त्वाप्रत्यय उत्तरक्रियासापेक्षोऽस्ति, अतः स्तुतिलक्षणक्रियोत्तरक्रिया 'वोच्छं' मिति वक्ष्य इत्यनेन
क्रियापदेन कथ्यते । अत्र कं वक्ष्ये ? इत्याह 'उत्तरपयडिबंघं' मिति उत्तरप्रकृतिबन्धम्, इदमुक्तं
भवति-कर्मप्रकृतयो मूलतोऽष्टविधा विद्यन्ते, तासां मूलप्रकृतीनामुत्तररूपेण त्रिशत्यधिकशतमवान्तर-
प्रकारा भवन्ति, इह त्वासांमुत्तरप्रकृतीनां बन्धो निरूपणविषयो वर्तते, न मूलप्रकृतीनाम्,
आम् निरूपितत्वात् । इयमुत्तरप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थरचना नास्माभिः स्वेच्छया क्रियते किन्तु गुर्वा-
देशेनेत्युपदर्शयितुमाह 'गुरुआएसाहिन्तो' ति गुर्वादेशात्, गुर्वाज्ञयेत्यर्थः । ननु ग्रन्थस्यै-

तस्य स्वेच्छया विरचने को दोषः, यत उच्यते, 'गुरुभाषसाहिन्तो' इति ? अत्रोच्यते, ग्रन्थ-
निर्माणं यदि स्वेच्छया विधीयते, तर्हि ग्रन्थश्रवणे प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरेव न स्यात्, एवं हि ते मन्येयुः
अयं ग्रन्थः स्वेच्छन्दपुरुषेण निर्मितः, तस्मादस्य प्रमाणविषयत्ववद्भिर्भूतत्वेनाऽश्रवणीयत्वमेवे-
त्यत्र न कोऽपि प्रवर्तेत, अतोऽत्र शास्त्रे प्रामाण्यप्रतिपादनाय प्रेक्षापूर्वकारिणां च प्रवृत्त्यर्थं गुण-
ज्ञया शास्त्रनिर्माणं कर्तव्यमिति हेतोर्गुर्वाज्ञावशंपदेन ग्रन्थकृतोत्तरप्रकृतिवन्धविषयस्यास्य
ग्रन्थस्य रचना पूज्यपादानां परमोपकारकर्णकनिवद्रक्षणानां कर्मसाहित्यज्ञातृप्रधानां समयामृत-
पूतदृष्टीनामाचार्यपदप्रतिष्ठानां गुरुप्रश्रवणा श्रीमद्विजयप्रेमसूरीणामाज्ञया कृता, यतो ह्यार्हते
शासनेऽप्यवर्गपथप्रयायिनां मुनिपुङ्गवानां प्रवृत्तिः मदैव गुर्वाज्ञाऽविनाभाविनीति, यद्वा 'गुर्वादेशात्'
गुरुणां तीर्थकृताम् 'आदेशात्' कथनानुसारेणेत्यर्थः, इदमुक्तं भवति अर्थतस्त्रिकालवित्तीर्थकृताऽभि-
हितस्य सुव्रतश्चतुर्दशपूर्ववर्गगणधरप्रवरैर्निर्मितस्य श्रुतस्यानुसारेण प्रस्तुत उत्तरप्रकृतिवन्धो वक्ष्यते, श्रुता-
नुमारिगुरुगामाज्ञया श्रुतानुसारित्वस्याऽन्तर्गतत्वात् । अत्र ग्रन्थप्रारम्भे पूर्वार्धगाथया मङ्गलदुग्ति-
सन्दोहमूलोन्मूलनार्थं मङ्गलमिष्टदेवनानमस्कागत्मकं व्यधापि । वन्धविधानस्य प्रकृतिवन्धान्मके
प्रथमखण्डे मङ्गल ह्यादिमध्यावमानभेदैस्त्रिविधं वर्तते, आदिमङ्गलं ग्रन्थकारेण मूलप्रकृतिवन्धवि-
धानाख्ये ग्रन्थे विहितम् । मध्यमङ्गलं तु प्रथमगाथायाः पूर्वार्धेनैवेहाचरितम्, अमानमङ्गलं
पुनरग्रे विधास्यते, । प्रथममङ्गलस्य प्रयोजनं निर्विघ्नं शास्त्रस्य परिसमाप्तिः, मध्यममङ्गलस्य
पुनः शास्त्रस्य स्थिरपरिचितता, अमानमङ्गलस्य च शिष्यप्रशिष्यपरम्परायां शास्त्रस्याऽध्ययना-
ध्यापनविवेकव्युच्छित्तिरिति । अभिधेयः पुनरत्रोत्तरप्रकृतिवन्धोऽस्ति स चेह ग्रन्थकारेण साक्षा-
देवोक्तः । सम्बन्धप्रयोजनौ पुनरिह साक्षादुक्तावपि सामर्थ्याद्व्यवहन्तव्यौ । तत्र सम्बन्धस्तु
द्विविधः—श्रद्धानुमारिणं प्रति गुरुपर्यक्रमरूपः, तर्कानुमारिणं प्रति वाच्यवाचकभावलक्षणश्च ।
द्विविधोऽप्ययं सम्बन्धोऽत्र विद्यते, तदेवम्-अनन्तगुणगणभृद्गणधरप्रवरश्रीमत्सुधर्मास्वामिनः
प्रारम्भाऽस्मद्गुरुप्रवराचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपर्यन्तलक्षणाः परम्परारूपः, अन्य-
त्रोत्तरप्रकृतिवन्धलक्षणप्राच्येन सह शास्त्रलक्षणस्य वाचकस्य वाच्यवाचकभावलक्षणः । प्रयोजनं
साक्षात्परम्परभेदेन द्विप्रकारमस्ति, अनयोर्द्वयोरपि प्रत्येकं श्रोतुः कर्तुश्च भेदेन द्वैविध्यं विद्यते ।
साक्षात्प्रयोजनं श्रोतुर्नोत्तरप्रकृतिवन्धविज्ञानं कर्तुं श्रैतद्ग्रन्थविषयीभूतस्योत्तरप्रकृतिवन्धस्य ज्ञानकारा-
पणेनोपकृतिविधानम्, स्वस्य ज्ञानस्य स्थिरीकरणं च, परम्परया प्रयोजनं तूभयस्याप्यवर्गलाभः ।
इहाऽनेनाभिधेयाद्यभिधानेन शास्त्रश्रवणे प्रेक्षापूर्वकारिणां विनेयवृन्दानां प्रवृत्तिः प्रसाधिता भवति ।
'धंमिअकम्भारि' मिति कथनेनार्हद्वयगतः श्रीपार्श्वत्रयोरपायापगमाख्योऽतिशयः साक्षादेव
दर्शितः, तेनाऽपरेऽपि त्रयोऽतिशया अत्र साक्षादुक्ता अपि सामर्थ्यगम्याः सन्ति, तीर्थकरे भगवति
त्रयाणामपि ज्ञानपूजावचनातिशयानामपायापगमातिशयाऽविनाभावित्वात् ॥१॥

॥ अथोत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थे पञ्चाधिकाराः ॥

अथ बन्धविधानाख्ये ग्रन्थे उत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थस्य विषयप्रतिपादनपरानधिकारांस्तेष्वधिकारेषु द्वाराणां संख्याञ्च दर्शयति

तत्त्व खलु मुण्येयत्वा पण अहिगारा जहकम पढमो ।

ठाण भूओगारो पयणिवलेवो तहा वुडो ॥ २ ॥

तेसुं पढमाईसुं अहिगारेसुं हवन्ति जहकमस ।

पणरस चउदस तेरस तिणिण य तेरस दुआराणि ॥ ३ ॥

(प्रे०) 'तत्त्व' इत्यादि, तत्र उत्तरप्रकृतिबन्धनिरूपणविषये पञ्चाऽधिकारा वर्तन्ते, ते चेमेथमः, स्थानम्, भूयस्कारः, पदनित्तेपः, वृद्धिरिति । अथैषामधिकाराणां द्वारसंख्यामभिदधाति । 'तेसुं' इत्यादि, प्रथमादिपञ्चाधिकाराणां यथाक्रमं पञ्चदशचतुर्दशत्रयोदशत्रयोदशद्वाराणि वर्तन्ते, पां स्वरूपं मूलप्रकृतिबन्धेऽभिहितत्वेनाऽत्र नैव प्रतिपाद्यते, ग्रन्थगौरवमयात् ॥२-३॥

॥ अथ पञ्चाधिकाराः ॥

साम्प्रतं बन्धविधानशास्त्रस्योत्तरप्रकृतिबन्धग्रन्थसत्कप्रथमाऽधिकार उत्तरप्रकृतिबन्धव्याख्यानभूतानि सत्पदप्रमुखाणि द्वाराणि निरूपयिषुराह

पढमे खलु अहिगारे पणरस दुआराणि सतपथं ।

सामित्तसाइआई कालंतरसणिण्यासा य ॥ ४ ॥

भंगविचयो उ भागो परिमाण खेतफोसणा कालो ।

अंतरभावप्पवह विण्णेयाई जहाकमसो ॥ ५ ॥

(प्रे०) 'पढमे' इत्यादि, 'प्रथमे' प्रथमामिथ आद्ये 'खलु' निश्चयेन अधिकारे पञ्चदश 'द्वाराणि' द्वाराण्येव द्वारकाणि 'यवादिभ्यः कः' इति सिद्धहेमचन्द्रेण स्वार्थे कप्रत्ययः, सन्तीत्यायो-व्यम्, इदमुक्तं भवति-उत्तरप्रकृतिबन्धविधानस्य प्रथमाऽऽख्य आद्येऽधिकार उत्तरप्रकृतिबन्धव्याख्याङ्गभूतानि पञ्चदश द्वाराणि सन्ति । 'कानि च तानि' इत्याह ? 'संतपथ' मित्यादि, सत्पदस्वामित्व-साद्यादि-कालाऽन्तर-सन्निकर्ष-भङ्गविचय भाग-परिमाण क्षेत्र-स्पर्शना-कालाऽन्तर भावा-ऽल्पवहुत्वनामानि द्वाराणि पञ्चदशसंख्याकानि ज्ञातव्यानीति । नन्वत्र द्वाराणां नामोपन्यासवाक्ये 'कालाऽन्तरद्वारे सकृदभिधाय 'कालो अतर' इत्यनेन पुनस्तन्व्यासे कथं न पुनरुक्तिः स्यादिति चेन्न अभिप्रायापरिज्ञानात्, आसन्निकर्षमेकजीवमधिकृत्यानेकजीवांश्चाश्रित्य भङ्गविचयादारभ्याल्पवहुत्वद्वारं यावत्सर्वाणि प्ररूपणीयानि, ततश्चादावेकजीवाधिकारात् पश्चाच्च नानाजीवाधिकाराद् द्विरूपोपन्यासः, अतो न पुनरुक्तिरिति । एषां सर्वेषां द्वाराणां स्वरूपं मूलप्रकृतिबन्धाधिकारे प्रतिपादितम्, अत्राऽपि वेपाञ्चिद् द्वाराणामभिधास्यतेऽग्रे ॥४-५॥

॥ प्रथमं सत्पदद्वारम् ॥

साम्प्रतं प्रथमं सत्पदद्वारं प्ररूपयितुमुपक्रमते, अथ केयं सत्पदप्ररूपणेति चेदुच्यते जगत्प-
स्मिन्नात्मादिपदार्थमार्था विद्यन्ते नवेति विमर्शविधानेन तदस्तित्वसाधनं सत्पदप्ररूपणेति, प्रस्तुते-
ऽपि विश्ववैचित्र्यस्यान्यथानुपपत्त्या ज्ञानावरणीयाद्युत्तरकर्मप्रकृतयो जीवेन सार्कं कथञ्चित्तादात्म्य-
भावेन संयोगात्मकस्तद्वन्धश्च विद्यन्ते इति सत्पदप्ररूपणया विचार्यते ।

इदानीमुत्तरप्रकृतिवन्धसत्पदप्ररूपाणायां लावणार्थं प्रकृतिसंग्रहगाथाः कथयति

आवरणअंतराया सायजमुज्वाणि चरमलोहाई ।

तइअदुइआ कसाया णराउणवरलदुगं वइरं ॥ ६ ॥

धीणद्धितिगाणित्यो मज्झिमसधयणआगिई णीअ ।

दुहगतिगासुहलगाई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ ७ ॥

णपुमं मिच्छं हुंडं छेवट्टं थावरायवेगिदी ।

विगलसुहमणिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य ॥ ८ ॥

देवविउव्वदुगजिणा इह एआउ करिउं जमाइस्मि ।

इह वोच्छिमु जावइया तावइआ ता कमा गेज्जा ॥ ९ ॥

(प्रे०) 'आवरण' इत्यादि, 'आवरणाऽन्तरायाः' व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्या-
यादत्राऽऽवरणपदेन मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवेकेवलज्ञानावरणलक्षणपञ्चप्रकृतयः, चक्षुरचक्षुरवधिकेय-
लदर्शनावरणलक्षणाश्चतुःप्रकृतयश्च ग्राह्याः, तथाऽन्तरायपदेन च दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तराय-
रूपाः पञ्चप्रकृतयो ग्राह्याः । 'सातयश उच्चानि' ति "पदैकदेशे पदसमुदायोपचारा" दिति न्या-
यात् सातवेदनीययशःक्रीत्युच्चैर्गोत्राणि । 'चरमलोभादयः' चरमश्चासौ लोभश्चेति चरमलोभः स
आदौ येषां ते चरमलोभादयः, अयं भाव-चरमलोभादय इत्येतत्पदेन पश्चानुपूर्वीक्रमेण संज्वलन-
लोभमायामानक्रोधाख्याततप्तः प्रकृतय आदेयाः, । 'तृतोयद्वितीयाः कषायाः' प्रत्याख्या-
नावरणक्रोधमानमायालोभाः, अत्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभा इति । 'नरायुर्नरौदारिक-
द्विकं' मनुष्यायुः, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीरूपं मनुष्यद्विक्रमौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपं चौदा-
रिकद्विकमिति । 'वज्जं' ह्यचनत्क्षत्रमिति न्यायात् वज्रवर्षमनाराचनामप्रथमसंहननं विज्ञेयम् ।
'स्थानद्धित्रिकानस्त्रियः' स्थानद्धित्रिकं निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्थानद्धिलक्षणम्, पदामि-
धेयस्यार्थस्य पदैकदेशेनाऽपि वाच्यत्वाद् 'अन' पदेनाऽनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभात्मकं कषाय-
चतुष्कमवसातव्यम्, स्त्रीवेदः । 'मध्यमसंहननाकृतिचतुष्कं' आधन्तवर्जं ऋषभनाराच-
नाराचाऽर्वनाराचकीलिकारूपं संहननचतुष्टयं, न्यग्रोवसादिवामनकुञ्जरूपं संस्थानचतुष्टयं चेति ।
'नीचं' नीचैर्गोत्रम् । 'दुर्भगत्रिकाशुभखगति' दुर्भगदुःस्वरानादेयरूपं दुर्भगत्रिकमशुभ-

विहायोगतिश्चेति, 'निरि' इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्दिकमुद्योतनाम तिर्यगायुश्चेति ।
 'नपुंसकः' नपुंसकवेदः । 'मिथ्यात्व' मिथ्यात्वमोहनीयम् । 'हुण्ड' हुण्डाख्यमन्तिमं संस्था-
 नम् । 'सेवार्त' छेदपृष्ठाख्यमन्तिमं संहननम् । 'थावर' इत्यादि, स्थावरातपैकेन्द्रियजातिनामक-
 भाणि । विकलसूक्ष्मनरकत्रिकं द्वन्द्वात्पर प्रत्येकमभिसम्बध्यते, इतिन्यायादत्र त्रिकपदं विकलादिप्रत्येक-
 पदेन समं संयोजनीयम्, विकलत्रिकं द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियलक्षणं सूक्ष्मत्रिकं सूक्ष्माऽप्यस-
 साधारणरूपं नरकत्रिकं च नरकायुर्नरकातिनरकानुपूर्वीस्वरूपं बोद्धव्यम् । 'आहारकक्षिकं'
 आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गात्मिकम्, 'सुरायुः' देवायुष्मन् । 'देववैक्रियद्विकजिनाः' देवद्विकं
 देवगतिदेवानुपूर्वीस्वरूपं वैक्रियद्विकं च वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गात्मिकम् तथा तीर्थकृन्नामेति । ननु
 संग्रहगाथासु चतुरशीतिः प्रकृतयः संगृहीताः, कथं न विंशत्युत्तरशतप्रकृतयः संगृहीताः, उत्तर-
 प्रकृतीनां विंशत्युत्तरशतप्रमाणत्वादिति चेद् उच्यते—अत्र संग्रहगाथानां प्रयोजनं तु गाथासंक्षेपः, न
 तु सर्वासां चतुरप्रकृतीनां नामोत्कीर्तनम्, अतः सर्वा प्रकृतयो न संगृहीता इति । 'इति' प्रकृति-
 संग्रहमभासरिति । अथ संगृहीतप्रकृतीनां नियोजनार्थं प्रक्रियामाह । एताऽ' इत्यादि, एताभ्यः
 प्रकृतिभ्यो यां प्रकृतिमादौ गृहीत्वा यावत्प्रमाणाः प्रकृतय उपादातुं भणिष्यन्ते तां प्रकृतिमादौ कृत्वा-
 तावत्प्रमाणाः प्रकृतय आनुपूर्व्या ग्राह्या इति ॥६-९॥

सम्प्रति ग्रन्थकार ओघतो यासु मार्गणासु प्रकृतीनां बन्ध ओघवत्तासु मार्गणासु चोत्तरप्रकृति-
 बन्धस्य सत्पदप्ररूपणां दर्शयितुमाह

सन्वाण अत्यि बन्धो बीसजुअसयस्स एवमेव भवे ।

तिणरेसु दुपचिदियतसेसु पंचमणवयणेसु ॥ १० ॥

कायउरलजोगेसु थोपुरिसणपु सचउकसायेसु ।

चक्खुअचक्खुसु तहो भविये सण्णिम्मि आहारे ॥ ११ ॥

(प्रे०) 'सन्वाण' इत्यादि, 'सर्वासां' समस्तप्रकृतीनां 'बन्धः' आत्मना सह कथञ्चि-
 द्भादात्म्यलक्षणः संयोगः, 'अस्ति' भवति । ननु सकलप्रकृतीनां बन्धो भवतीत्यत्र प्रतिपादितं परं
 ताः सर्वाः संख्यया कतिपया इत्याशङ्कयामाह-विंशतियुतशतस्य 'विंशत्याद्या' सदैकत्वं इत्यनुशासनादत्र
 शतपदोत्तरैकवचनत्वमवसेयम्, विंशत्यधिकशतप्रमाणाः, इदमुक्तं भवति—रागादिस्नेहसंकुलान्तः-
 करणा विश्वविश्वे परिवर्तमाना असुमन्तो ज्ञानावरणीयप्रभृतीर्विंशत्यभ्यधिकशतप्रकृतीर्बन्धन्ति । मूल-
 प्रकृतय उत्तरप्रकृतयश्च मूलप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थानुसारेण 'णाणस्स' इत्यादि, तृतीय-
 गाथातो ससरीरंतर इत्यादि, पञ्चविंशतितमगाथापर्यन्तामिस्त्रयोविंशतिगाथाभिरवसातव्याः ।

तथाऽपि स्थानाऽशून्यार्थं विस्मरणशीलस्य स्मारणार्थं च शतकतद्दृष्टीकाग्रन्थानुसारेण प्रति-
 पाद्यन्ते

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोद्धणिमं । आउयनाम गोयं तहंतराय च पयडोओ ॥३७॥

पच नव दोत्रि अष्टाथीसा चउरोतहेव बायाला । दोत्रि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥३॥

टी० अत्र प्रथमगाथया ज्ञानावरणाया अष्टौ मूलप्रकृतय उक्ता । द्वितीयगाथया तु प्रतिमूलप्रकृति-
सम्भविन्यो यथासंख्य पञ्चादिका उत्तरप्रकृतय इति समुदायार्थः । अधुना गाथाद्वयोद्दिष्टानामेव प्रकृतीनां
समुत्कीर्तना क्रियते । तत्र ज्ञानस्यावरण पञ्चधा भवतीति सम्यन्ध , तद्यथा-अभिनिबोधिरुज्ञानावरण श्रु-
ज्ञानावरणं, अवधिज्ञानावरणं, मन पर्यायज्ञानावरणं, केवलज्ञानावरणं चेति । दर्शनस्यावरणं नवविधं तद्यथा-
निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, चक्षुर्दर्शनावरणं, अचक्षुर्दर्शनावरणं, अविदर्शना-
वरणं, केवलदर्शनावरणं चेति । वेदनीय द्विधा-सातवेदनीयमसातवेदनीयं चेति । मोहनीयमष्टाविंशतिधा-
सत्र तिस्रो दर्शनमोहनीयप्रकृतयस्तद्यथा-मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वं चेति चारित्रमोहनीयप्रकृतयस्तु
पञ्चविंशति , तद्यथा-षोडशकषाया नव नोकपायाः, तत्र कषाया-अनन्तानुबन्धीक्रोधो मानो माया लोभश्च,
एवमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलना अपि प्रत्येक चत्वारश्चत्वारो चत्वारो, सर्वेऽपि षोडश ।
नवनोकषाया इमे-स्त्रीषु तपुसकलक्षण वेदत्रयम् , हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सालक्षण हास्यादिपटुं चेति
सर्वा अप्यष्टाविंशतिमोहनीयप्रकृतयः । आयुष्क नारकतिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कभेदाच्चतुर्धा । नामद्विचत्वारिंशद्भे-
दमत्र चतुर्दशपिण्डप्रकृतयः, अष्टाविंशतिः प्रत्येकप्रकृतयः । तत्र पिण्डप्रकृतयो गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम
अङ्गोपाङ्गनाम, सञ्जातनाम, बन्धननाम, सहनननाम, सस्थाननाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम,
आनुपूर्वीनाम, विहायोगतिनामेत्येताश्चतुर्दशापि पिण्डप्रकृतय उच्यन्ते । गतिनामादिभिर्वक्ष्यमाणचतुरादि-
भेदानामत्र पिण्डनत्वप्रतिपादनादिति । प्रत्येकप्रकृतयस्त्यष्टाविंशतिरिमा-त्रसनाम, स्थावरनाम, वादर-
नाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकनाम, साधारणनाम स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम,
अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम दुस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम,, यशःकीर्तिनाम,
अयशःकीर्तिनाम, अगुरुलघुनाम, उपातनाम पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम, निर्माणनाम,
तीर्थरनाम चेति एव सर्वे अप्येता द्विचत्वारिंशन्नामप्रकृतयः । उपलक्षण चेता सूत्रे प्रोक्ता विवक्षान्तरेण
हि सप्तपश्चरिपि नामप्रकृतयो भवन्ति । तथा त्रिनवतिस्त्युत्तरशतं च । तत्र सप्तपश्चिर्भेदा गत्यादिपिण्डप्रकृतयो
नरकगत्यादिभेदेन भिद्यन्ते तदा भवन्ति । तद्यथा-गतिनाम चतुर्धा, नरकगतितिर्यग्गतिमनु-
ष्यगतिदेवगतिनामभेदादिति, जातिनाम पञ्चधा, एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिभेदा-
दिति । शरीरनामपञ्चधा, औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकर्मणनामभेदादिति । अङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा, औदा-
रिकवैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गनामभेदादिति, बन्धनसञ्जातनामकर्मणी अत्र पक्षे न गृह्यते, तयोः शरीराश्रितत्वा-
च्छरीरनामान्तर्गतत्वेनैव विवक्षितत्वादिति । सहनननाम षोडशअर्षभनाराचभृषभनाराचनाराचार्धनाराच-
किल्बिषासेवार्तसहनननामभेदादिति । सस्थाननाम षोडश समचतुरस्रन्यग्रोधपरिमण्डलसादिवामनकुञ्ज-
हुण्डसस्थाननामभेदादिति । वर्णगन्धरसस्पर्शा अप्यत्र पक्षे भेदादिति एव एकैकस्वरूपाश्चत्वारो गृह्यन्ते ।
आनुपूर्वीनामचतुर्धा नरकतिर्यग्मनुष्यदेवाणुपूर्वीनामभेदादिति । विहायोगतिनाम द्वेया प्रशस्तविहायोगति-
नाम अप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति । एवमेते एकोनचत्वारिंशद्गत्यादिपिण्डप्रकृतिभेदा अनन्तरोक्तैस्त्रस-
नामादिप्रकृतिभेदैरष्टाविंशत्या सह नामप्रकृतोना सप्तपश्चिर्भवति । त्रिनवतिस्तु यदा शरीरनाम्नः
पृथगौदारिकवैक्रियाहारकतैजसकर्मणवन्धनभेदाद् बन्धननाम पञ्चधा विवक्ष्यते, संघातनामापि शरीर-
पञ्चकभेदात्पञ्चधा । वर्णनामापि कृष्णादिभेदात् पञ्चधा गन्धनाम सुरभिदुरभिनामभेदाद्विधा ।
रसनाम तिक्तसादिभेदात् पञ्चधा स्पर्शनाम कर्कशनामादिभेदादष्टधा । एवमेता विंशतिप्रकृतयः । एतासां
मध्याद्वर्णगन्धरसस्पर्शानां सामान्यतश्चतुर्णां सप्तपश्चिर्पक्षेऽपि गृहीतत्वात् तदप्यगमे शेषा षोडश सर्वासां मीळन्ते
पञ्चविंशतिर्भवति । ततः पूर्वोक्तायाः सप्तपश्चिर्मध्ये चैतत्पक्षेपे नामप्रकृतीनां त्रिनवतिर्भवति । इह च प्रकारा-
न्तराविवक्षया बन्धननाम पञ्चदशविधमपि भवति तद्यथा-औदारिकौदारिकबन्धननाम औदारिकतैजसबन्धननाम

औदारिककर्मणबन्धननाम औदारिकतैजसकर्मणबन्धननाम एव वैक्रियाहारकयोरपि प्रत्येक चत्वारि (२) बन्ध-
नानि वक्तव्यानि । केवलसौदारिकस्थाने वैक्रियाहारक च वक्तव्यम् तथा तैजस २ बन्धननाम तैजसकर्मण-
बन्धननामकर्मण २ बन्धननामेत्येवमेता पञ्चदशबन्धननामप्रकृतयः । अत्र च सामान्यत औदारिकादिबन्ध-
नपञ्चस्य त्रिनवतिमध्ये पूर्वमेव प्रक्षिप्तान्छेपा दश प्रक्षिप्यन्ते । जातनामप्रकृतीनां त्र्युत्तरशत । गोत्र द्विधा
उच्चैर्गोत्र नीचैर्गोत्र चेति । अन्तराय पञ्चानानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदादिति । एव च कृत्वा ज्ञाना-
वरण पञ्चप्रकृतयो दर्शनावरणे नव वेदनीये द्वे मोहनीये सम्यक्त्वमिश्रज्यर्था षड्विंशतिः आयुषि चतस्रो
नास्ति भदान्तरसम्भवेऽपि सप्तपष्टिः गोत्रे द्वे अन्तराये पञ्च एवमेतद्विंशत्युत्तरं प्रकृतिशत बन्धे पुरस्तादुक्तयो-
क्ष्यते तदेव प्रकृतिसमुत्कीर्तना कृता ।

एवं सति ग्रन्थे विंशत्युत्तरशतप्रकृतयो भवन्तीति स्थितम् । एतावतोत्तरप्रकृतिबन्धस्यौघतः
सत्पदप्ररूपणा कृता । साम्प्रत 'एवमेव' इत्यादिनाऽऽदेशतः सा क्रियते । 'त्रिनरेषु' मनुष्यौघप-
र्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणासु 'द्विपञ्चेन्द्रियत्रसेषु' द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते वा अथमाणं
पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत' इति न्यायेन द्विपदं त्रयपदेन सार्धमपि सम्बन्धनीयम् । पञ्चेन्द्रियौघ-
पर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रयस्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु, 'पञ्चमनोवचनेषु' मनःसामान्यसत्यमनो-
ऽसत्यमनःसत्यामत्यमनोऽमत्यामृतामनोरूपासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु तथा वचनौघमत्यवचना-
ऽमत्यवचनसत्यामत्यवचनाऽमत्यमृतावचनरूपासु पञ्चसु वचनयोगमार्गणासु 'कायौदारिकयोगयोः'
काययोगौघौदारिकाययोगरूपे मार्गणाद्वये 'स्त्रीपुरुषनपुंसकचतुष्कपायेषु' स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदलक्ष-
णासु तिसृषु वेदमार्गणासु क्रोधमानमायालोभरूपासु च चतसृषु कपायमार्गणासु चतुरचक्षुदर्शनमार्गणा-
द्वये भव्यसंज्ञाहारकमार्गणासु चेत्येवं समुदितास्वेकत्रिंशन्मार्गणास्वौघवज्ज्ञानावरणीयप्रभृतयो विंश-
त्यधिकशतप्रकृतयो बध्यन्ते, अत्र ग्रन्थेऽधिककृताश्चतुस्सप्तत्यधिकशतमार्गणाः षष्ठपृष्टयन्त्रकाज्ज्ञेयाः
॥१०-११॥ इदानीं नरकमार्गणासु तत्समानबन्धप्रायोग्यत्वेन कासुचिद् देवमार्गणासु चोत्तरप्रकृति-
बन्धसत्कां सत्पदप्ररूपणाभिधातुमाह

गिरयपढमाइतिगिरयतइआइगअढुमन्तदेवेसु ।

गुणवीसथावरार्इ वज्जिअ सेसाण बघोऽत्थि ॥१२॥

(प्रे०) 'गिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नरमाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाभिधासु चतसृषु नरकमार्ग-
णासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकशान्तकशुकमहस्रारनामासु षट्सु देवमार्गणासु च 'थावरायवेगिंदी
विगलसुहमगिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य देवविउव्वदुग' इति संग्रहगाथावयवेषूक्ता एकोनविंशतिस्था-
वरादिप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषप्रकृतीनामेकोत्तरशतं बध्यते, मार्गणास्वासु स्यापरायेकोनविंशतिप्रकृति-
बन्धवर्जनं किं हेतुकमिति चेद्-उच्यते, मार्गणास्यासु वर्तमानानां नाराकाणां देवानां च पर्याप्तसंज्ञि-
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येष्वेवोत्पत्तिभावेन तत्प्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकत्वात् स्थावरायेकोनविंशतिप्रकृ-
तिबन्धप्रायोग्याध्यवसायाऽसंभवः, तस्मादेताः प्रकृतयो नैव बध्यन्ते । बन्धप्रायोग्या एकोत्तरशत-
प्रकृतयस्त्विमाः ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिमोहनीयप्रकृतयस्तिर्य-

मनुष्यायुर्द्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं
संहननपट्कं संस्थानपट्कं वर्णचतुष्कं विहायोगतिद्विकं त्रसदशकमस्थिरपट्कमातपवर्जप्रत्येकप्रकृति-
सप्तकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकमिति ॥१२॥

अथ शेषनरकमार्गणासूत्रप्रकृतिबन्धस्य सत्पदप्ररूपणाऽभिधीयते

चोत्थाइतिगिरयेसुं वोसपयडिथावराइवज्जाण ।

वधोऽतिय तहेव चरमगिरयम्मि णराउवज्जाणं ॥१३॥

(प्रे०) 'चोत्थाइ' इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभानरकलक्षणासु तिसृषु मार्गणास्वन-
न्तरोक्तस्थावराद्येकोनविंशतिप्रकृतीर्जिननाम च वर्जयित्वा शेषशतप्रकृतीनां बन्धो विद्यते, हेतुस्त्वत्र
प्राग्बुद्धिभावनीयः, जिननामकर्मबन्धाभावे भावना पुनरेवं कर्तव्या-पङ्कप्रभादिनरकेभ्यो निर्गत्य जीवा
तीर्थकृतत्वं नैव लभन्ते, अतः पङ्कप्रभादिमार्गणात्रये तीर्थकृन्नामसत्कर्मविकला एव जीवा नारकतया
नायन्ते । जिननामकर्मणो बन्धयोग्यास्तीर्थकृन्नामसत्कर्मपुर्तसम्पगदृष्टयः, तथा नूतनतद्बन्धयोग्याः
सम्पगदृष्टिमनुष्याः, प्रस्तुतमार्गणासु च तीर्थकृन्नामसत्कर्मरहिता जीवाः, अतो जिननाम्नो बन्धाभावः ।
'तहेव' इत्यादि तमस्तमःप्रभाख्य-सप्तमनरकमार्गणायां नरायुर्वर्जयित्वा चतुर्थनरकवच्छेषप्रकृतीनां
बन्धो बोद्धव्यः, नरायुर्वर्जनमत्र मनुष्यगतावनुत्पत्तिनिमित्तकमवसेयम्, यतो हि सप्तमनरकासिनो
नारकास्ततो निसृत्य तिर्यक्षेवोत्पद्यन्ते न मनुष्यादिषु, उक्तं च 'सप्तममहिनेरइया ते ऊवाऊ असखनर-
तिरया । मूत्तूण ससजीवा उप्पज्जन्ते णरभवम्मि, इति ॥१३॥

अथ तिर्यक्सामान्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्रये तद्बन्धसाधर्म्यादज्ञानादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृति-
बन्धसत्पदप्ररूपणामभिधित्सुराह

तिरियतिपणिदियतिरियअण्णाणाऽभवियमिच्छअमणेसु ।

सेसाण अतिय वधो तित्थाहारदुगवज्जाण ॥१४॥

(प्रे०) 'तिरिय' इत्यादि, तिर्यक्सामान्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसामान्यपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यग्योनिमतीमत्यज्ञानश्रुताज्ञानविमङ्गज्ञानाऽभव्यमिध्यात्वासजिलक्षणासु दशसु मार्गणासु
तीर्थकरनामाहारकद्विकं चेति प्रकृतित्रयं संत्यज्य शेषाणां सप्तदशाधिकशतप्रकृतीनां बन्धो भवति,
ताश्चेमा वध्यमानाः प्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनारणनवकं वेदनीयद्विकं पञ्चविंशतिमोहनीय-
प्रकृतय आयुश्चतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमाहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं
संहननपट्कं संस्थानपट्कं वर्णचतुष्कमानुपूर्वीचतुष्कं विहायोगतिद्विकं जिननामवर्जप्रत्येकसप्तकं त्रस-
दशकं स्थानरदशकं गोत्रद्विकमन्तरायपञ्चकं चेति । आहारकद्विकबन्धस्याग्रमतसयमत्वाविनाभाव-
त्वेन सप्तमादिगुणस्यानकेभ्येव तत्संभवः, नान्यत्र, तस्मान्मार्गणास्वासु वर्तमानैर्जीवैः संयतत्वाभावा-
दाहारकद्विकं न बध्यते । नूतनस्य तीर्थकृन्नामकर्मबन्धप्रारम्भस्य तिर्यग्भवेऽसंभवात्, जिननामकर्म-

सत्तावतश्च तत्र गमनाभावात् तिर्यगोवादिमार्गणाचतुष्टये जिननामकर्म नैव बध्यते, अज्ञानादिपण्मा-
णासु तु चतुर्थादिगुणस्थानाभावात्तद्वन्धविरहः, यतो जिननामकर्मणो बन्धश्चतुर्थगुणस्थानकादा-
रम्यैव जायते ॥१४॥

साम्प्रतं सुरौघसौधमेशानभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैक्रियकाययोगलक्षणासु सप्तसु मार्गणास्व-
त्तरप्रकृतिवन्धसत्पदप्ररूपणां कथयितुं काम आह—

सुरसोहम्मदुगेसुं विउवे सोलविगलाइवज्जाणं ।

एवं भवणवइतिगे णवरं तित्तयथरवज्जाणं ॥१५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, देवौघसौधमेशानवैक्रियकाययोगाभिधासु चतसृषु मार्गणासु 'विगल-
सुहम्मणिरयतिग आहारदुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग' इति संग्रहमाथावयवेषु कथितं विकलत्रिकादिप्रकृति-
षोडशकं परिहृत्य शेषाश्चतुर्युतशतप्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमा बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चक-
दर्शनावरणनवकवेदनीयद्विकेमोहनीयपट्विशतितिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयतिर्यग्द्विकमनुष्कद्विकैकेन्द्रियपञ्चे-
न्द्रियजातिद्विकौदारिकनेजमकर्मणशरीरत्रयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कवर्णचतुष्कलगति-
द्विकत्रसदशकस्थायराऽस्थिरपट्कप्रत्येकप्रकृत्यष्टकगोत्रद्विकान्तरायपञ्चकानि । मार्गणास्वासु गतानां
देवानामेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्योरेवोत्पत्तिर्जायते, नेतरासु, तस्मात्तैर्विकलत्रिकं नैव बध्यते,
एतन्मार्गणात्रयस्थायिनः सुरा एकेन्द्रियजातावपि वादरपर्याप्तप्रत्येकत्वेनैवोत्पद्यन्ते न तु सुहमाऽपर्याप्त-
साधारणत्वेन, तस्मात्तैः सुहमत्रिकं नैव बध्यते । देवनरकगतौ देवानां गत्यागत्यभावाद् वैक्रियाष्ट-
कस्य बन्धो मार्गणासु न संभवति । मार्गणास्वासु वर्तमानाः सुरा विरतेरभावाद्देवाहारकद्विकं न
बध्यन्ति । 'एवं' इत्यादि, उपर्युक्तीत्या भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काख्यासु तिसृषु मार्गणास्वपि
जिननामवर्जानामुत्तरप्रकृतीनां बन्धो भवति, जिननामकर्मणो वर्जनं चतुर्थादिनरकवदवगन्तव्यम् ।
॥१५॥ इदानीमभिहितातिरिक्तशेषदेवमार्गणास्वत्तरप्रकृतिवन्धसत्कां सत्पदप्ररूपणाभावेदयितुमाह

थीणाइअट्टचत्तावज्जाण अणुत्तरेसु तेरससुं ।

गुणवीसथावराइगतिरियाइचउक्कवज्जाणं ॥ १६ ॥

(प्रे०) 'थीणाइ' इत्यादि, अनुत्तररूपासु पञ्चसु मार्गणासु "थीणद्धित्तिगाणिच्छीमच्छिम-
सधयणअगिई णीअ । द्रह्मगतिगासुहजगई तिरिदुगउज्जोअतिरियाऊ ॥ णपुमं मिच्छं हु ढ छेवढं थावरा-
यवेगिंदी । विगलसुहम्मणिरयतिग आहारदुग सुराऊ य ॥ देवविउव्वदुग" इति संग्रहमाथांशेषु कथिताः
स्थानद्वित्रिकप्रमुखा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विहाय द्विसप्ततिप्रकृतीनां बन्धो भवति । ताश्चेमा बध्य-
मानप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्कं वेदनीयद्विकं मिथ्यात्ममोहनीयानन्तानुबन्धि-
चतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदवर्जाः शेषा एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयो मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकं पञ्चे-
न्द्रियजातिरौदारिकद्विकं तैजसकर्मणशरीरद्वयं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रपमनाराचसंहननं वर्णचतु-
ष्कं शुभलगतिस्त्रसदशकमस्थिरनामाशुभानामाऽयशःकीर्तिनामाऽऽतपोधोतवर्जप्रत्येकप्रकृतिषट्कमुच्चै-

गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । स्त्यानद्वित्रिकप्रभृतिवर्जनीयप्रकृतिषु नरकत्रिकजातिचतुष्कस्थानचतुष्क-
हुण्डकसंस्थानसेवार्तसंहनननपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयाऽऽतपनामरूपाः षोडश प्रकृतयो मिथ्यात्व-
हेतुना बध्यन्ते, तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कमध्यमसंहननचतुष्कनीचैर्गोत्रोद्योता-
ऽशुभविहायोगतिस्त्रीवेदस्त्यानद्वित्रिकतियेकत्रिकरौर्भाग्यत्रिकरूपाः पञ्चविंशतिप्रकृतयोऽनन्तानु-
बन्धिकृपायोदयेन बध्यन्ते, मार्गणास्वेतासु वर्तमानानां देवानां सम्पगृह्णन्तिवेन मिथ्यात्वमोहनी-
याऽनन्तानुबन्धिरूपायचतुष्कोदयामात्राणां प्रकृतीनां बन्धः । उक्तव्यतिरिक्तप्रकृतीनां वर्जनं
गुणप्रत्ययाद् भवप्रत्ययाद् वाऽवसेयम् । 'तेरससु' इत्यादि, नवग्रैवेयकरूपासु नवसु मार्गणा-
स्वानतप्राणतारणान्धुतरूपासु च चतसृषु मार्गणासु 'वावरायवेगिदी । विगलसुहमणिरयतिग आहार-
दुग्ग सुराऊ य ॥ देवविउच्चदुग्ग' इति संग्रहगाथाशकलेश्वभिहिताभ्य एकोनविंशतिस्थावरादिप्रकृति-
भ्यस्तथा तिर्यक्त्रिकोद्योतनामरूपाभ्यश्चतसृभ्यः प्रकृतिभ्यश्च विना शेषाणां प्रकृतीनां सप्तनवति-
र्वध्यते ताश्चैताः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्वयं पञ्चविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो
मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिगैदारिकतैजसकर्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थान-
पट्कं संहननपट्कं वर्णचतुष्कं स्वगतिद्विकं त्रसदशकमस्थिरपट्कमातपोद्योतवर्जशेषप्रत्येकपट्कं
गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । अत्र तिर्यक्त्रिकोद्योतप्रकृतीनां बन्धाभावः, आनतादिदेवानां तिर्य-
ग्गतावुत्पादाभावात् । शेषप्रकृतीनां च भावना नरकौघवदवसेया ॥१६॥

सम्प्रति तेजःकायवायुकायसत्कसकलमार्गणासूत्रप्रकृतिवन्वसत्पदप्ररूपाणां विधातुमना आह-

बन्धो हवेज्ज वज्जिअ सव्वेसुं तेउवाउमेएसुं ।

एगारसणिरयाइयमणुस्सतिगउच्चगोआणि ॥ १७ ॥

(प्रे०) 'बन्धो' इत्यादि, तेजःकायौघसूक्ष्मतेजःकायौघवादरतेजःकायौघपर्याप्तसूक्ष्मतेजःकाया-
ऽपर्याप्तसूक्ष्मतेजःकायपर्याप्तवादरतेजःकायाऽपर्याप्तवादरतेजःकायरूपासु सप्तसु मार्गणासु वायुकायौघ-
सूक्ष्मवायुकायौघ-वादरवायुकायौघ-पर्याप्तसूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तसूक्ष्मवायुकायपर्याप्तवादरवायुकायाऽ-
पर्याप्तवादरवायुकायरूपासु च सप्तसु मार्गणासु "णिरयतिग आहारदुग्ग सुराऊ य ॥ देवविउच्चदुग्गजिणा"
इति संग्रहगाथाशकलोक्तनरकत्रिकप्रमुखा एकादशप्रकृतीस्तथा मनुष्यत्रिकोचैर्गोत्ररूपाश्चतस्रः प्रकृती-
रिति सर्वसंख्यया पञ्चदशप्रकृतीः परिहृत्य शेषप्रकृतीनां पञ्चोत्तरशतं बध्यते, ताश्चैता बध्यमानाः
प्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं पञ्चविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्वायु-
स्तिर्यग्द्विकं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं तैजसकर्मणशरीरद्वयं संहननपट्कं संस्थानपट्कं वर्णचतुष्कं
विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं जिननामवर्जप्रत्येकसप्तकं नीचैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति ।
तेजःकायवायुकायजीवास्तिर्यग्भव एवोत्पत्तिसंभवेन नरकत्रिकमनुष्यत्रिकवैकियद्विकरूपा यथासंभवं
देवनरकमनुष्यप्रायोग्याः प्रकृतीर्न बध्यन्ति, तस्मान्मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धविरहोऽभिहितः ।

आहारकद्विकतीर्थकृत्नामकर्मबन्धाऽभावे हेतुत्र प्रागभिहित एव विभावनीयः । तिर्यग्गतौ नीचैर्गो-
त्रस्यैवोदयो विद्यते, तेजोवायुकायिका जीवास्तथास्वभावेन तिर्यग्गतिप्रायोग्या एव प्रकृतीर्वध्नन्ति,
तस्मात्तेषां तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतिसहचारिण्या नीचैर्गोत्रप्रकृतेरेव बन्धकत्वेनोच्चैर्गोत्रप्रकृतिबन्धस्य
संभावना नास्ति, अतो मार्गणास्वासु प्रकृतेरस्या बन्धाभावो दर्शितः ॥१७॥

अधुना दारिकमिश्रवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये सत्पदप्ररूपणां निरूपयिषुराह

बधोऽस्थि उरलमीसे, सेसाण छणिरयाइवज्जाणं ।

विक्रियमीसे सोलसविगलाइतिरियणराउवज्जाणं ॥१८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'बन्धो' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां "णिरयतिग आहारदुगं सुराऊ य" इति
संग्रहगाथात्रयवेषु प्रतिपादितं नरकत्रिकादिप्रकृतिपट्कमृते ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीय-
द्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं देवद्विकं जातिपञ्च-
कमाहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानपट्कं संहननपट्कं वर्णचतुष्कं
विहायोगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं प्रत्येकाष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति चतुर्दशयुतशतप्रकृ-
तीनां बन्धो भवति । मार्गणायामेतस्यामाहारकद्विकबन्धप्रतिषेधे संयमाभावलक्षणो हेतुरधिगन्तव्यः ।
औदारिकमिश्रकाययोगोऽपर्याप्तावस्थायां तिर्यग्मनुष्याणामेव संभवति, तत्र तैर्नरकत्रिकं देवायुष्कं
च न बध्यते, अपर्याप्तावस्थायां तत्प्रायोग्यपरिणामाभावात्, एतत्प्रकृतिचतुष्कं तु पर्याप्तावस्था-
यामेव बध्यते तदैव तत्प्रायोग्याध्यवसायसंभवात् ।

'विक्रियमीसे' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां "विगलसुहमणिरयतिगं आहारदुगं सुराऊ य ॥
देवविउवदुग" इति गाथात्रयवेषु व्याख्यातानां त्रिकरुत्रिकादीनां षोडशप्रकृतीनां तिर्यग्मनुष्यायुष्क-
योश्च वर्जनं कृत्वा द्वयधिकशतप्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेद-
नीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाती औदारिक-
तैजसकर्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानपट्कं संहननपट्कं वर्णचतुष्कं स्वगतिद्विकं त्रसदशकं
स्थावरनामाऽस्थिरपट्कं प्रत्येकप्रकृत्यष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । भवप्रत्ययिको वैक्रियमिश्रकाय-
योगोऽपर्याप्तावस्थायां देवनारकाणामेव संभवति, तैरपर्याप्तावस्थायामायुर्वन्धो नैव विधीयते, यस्माद्
देवनारकाः स्वायुषः पण्मासाऽनवशेषे पारमविक्रमाधुनैव बध्नन्ति, तस्मादत्र सर्वायुर्वन्धप्रतिषेधः
प्रज्ञप्तः । त्रिकलत्रिकप्रमुखाणां षोडशप्रकृतीनां बन्धाभावे देवौधमार्गणावद्देतुरभिधेयः । अत्र भव-
प्रत्ययिकवैक्रियमिश्रयोगस्य विश्वाऽस्तीति विज्ञेयम् ॥१८॥

साम्प्रतमाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये कर्मणकाययोगमार्गणायामनाहारक-
मार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धसत्पदप्ररूपणां प्रतिपादयितुमाह

अस्थि विणाहारदुगे तइअकसायाइसत्तवण्णाए ।

कम्माणाहारेसुं विणा छणिरयाइआउदुगं ॥१९॥

(प्रे०) 'अन्धि' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाभिन्नयोर्मार्गणयोः "तद्वदुद्विग्राहकसाया पराउणरुरलदुग वडर ॥ थीणद्वितिगाणित्थी मस्सिमसवयणआगिई णीअ । दुडगतिगासुडखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णमुम भिच्छं हु ड छेवड्ठ थाररायवेगिनी । विगलसुडमणिरयतिग आहारदुग" मिति संग्रहगाथांशेषु कथिताः सप्तपञ्चाशत्तृतीयकपायादिप्रकृतीर्णिना त्रिपष्टिः प्रकृतयो वध्यन्ते, ताश्चेमा वध्यमानप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्कं वेदनीयद्विकं, संज्वलनचतुष्कपुरुषवेद-हास्यपट्करूपा एकादशमोहनीयप्रकृतयो देवायुष्कं देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियतैजसकर्म-णशरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रमंस्थानम्, वर्णचतुष्कं शुभखगतिस्त्रसदशकमस्थिरना-माशुभनामाऽयशःकीर्तिनामाऽऽतपोद्योतवर्जितप्रत्येकपट्कमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति, आहारकतन्मि-श्रकाययोगौ प्रमत्तस्यताख्यपष्टगुणस्थानक एव स्तः नान्यगुणस्थानकेषु, अस्मिन् मार्गणाद्वये विद्यमा-नैर्जीवैः प्रमाददशावच्चेनाहारकद्विक्रयन्धो न विधीयते, अप्रमत्तमंयमनिमित्तेनैव तद्वन्धस्य संभवात्, तस्मादत्र मार्गणाद्वये प्रकृतिद्वयस्यास्य वन्धो वर्जितः सप्ततिकाद्यभिप्रायेण तु सप्तमगुणस्थानेऽप्या-हारककाययोगो भवति, अतस्तन्मते आहारककाययोगमार्गणायामाहारकद्विकस्य वन्धो वाच्यः । प्रस्तुते प्रमत्तसंयत एवाधिकृत आहारककाययोगमार्गणायामिति । शेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः पष्टगुण-स्थानकादधस्तनगुणस्थानकेषु वध्यन्ते, अतस्तासां वन्धोऽत्र वर्जितः ।

'कम्भाणाहारेसु' इत्यादि, कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः "णिरयतिग आहारदुगं सुगऊ या" इति संग्रहगाथावयवेष्टूक्ता नरकत्रिकाद्यात्मकं प्रकृतिपट्कं तिर्यग्मनुष्यायुगी च रिना द्वाद-शोत्तरशतप्रकृतयो वध्यन्ते, ताश्चेमा वन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकं वेद-नीयद्विकं पड्विंशतिमोहनीयप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं देवद्विकं जातिपञ्चकमाहारकशरीरवर्ज-शरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्ग-वर्जमङ्गोपाङ्गद्वयं संहननपट्कं सस्थानपट्कं वर्णचतुष्कं खगतिद्वयं त्रस-दशकं स्थावरदशकं प्रत्येकप्रकृत्यष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । एतन्मार्गणाद्वये नरकद्विकाहारक-द्विकप्रकृतिवन्धप्रतिषेधे हेतुरौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावदवसेयः प्रकृतिवन्धकेषु मार्गणाद्वयमेतद् भवान्तरगमनवेलायामपान्तरालगतौ, तृतीयादिसमयत्रये केवलिसमुद्वातावस्थायां च संभवति तत्रा-युष्कचतुष्कं न वध्यते, भवान्तरीयायुषां स्नायुपस्तृतीयभागावशेषे वध्यमानत्वात्, केवलिसमुद्वाताव-स्थायां तु केवलज्ञानिनां मोक्षगामित्वाद्भवान्तरे गमनाभावेन भवान्तरीयायुर्वन्धाऽसंभवाच्च ॥१९॥

साम्प्रतमवेदमार्गणायामकपायप्रभृतिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिवन्धसत्पदप्ररूपणां निरूपयन्नाह--

बन्धो इगवीसाए आवरणाईण अत्थि गयवेए ।

सायस्स य अकसाये केवलजुगले अहक्खाये ॥२०॥

(प्रे०) बन्धो इत्यादि, 'आवरणअतराया सायअसुआणि चरमलोदाई' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिना-

मोक्षैर्गोत्रं चेत्येकविंशतिप्रकृतीनां बन्धो गतवेदमार्गणायां जायते, यतो हि मार्गणायामस्यां प्रकृतीना-
मासां बन्धो यथासंभवं कषायप्रत्ययेन योगप्रत्ययेन च प्रजायत इति । 'भायस्स' इत्यादि, अकषाय-
केवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमाख्यासु चतसृषु मार्गणासु केवलं योगहेतुना सातवेदनीयस्यैव
बन्धः प्रवर्तते ॥२०॥

अधुना कतिपयासु ज्ञानमार्गणासु सम्यक्त्वमार्गणास्ववधिदर्शनमार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्ध-
स्य सत्पदप्ररूपणामवेदयितुमाह--

पाणतिगे ओहिन्मि यै' सम्भत्ते खइअवेअगेसुं च ।

बंधोऽस्ति एगचत्ताथीणद्धितिगाइवज्जाणं ॥२१॥

(प्रे०) 'पाणतिगे' इत्यादि, मतिश्रुतावधिज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणास्ववधिदर्शनमार्गणायां
सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु च तिसृषु मार्गणासु 'थीणद्धितिगाणित्थीमच्चिमसघयण-
आगिई णीअं । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरियाऊ ॥ णपुम मिच्छं हुं ड छेवड्ठं थावरायवेगिंदी ।
विगलसुहमणिरयतिग' मिति संग्रहगाथाशकलेष्वभिहिताः स्त्यातद्धितिकप्रमुखा एकचत्वारिंशत्प्रकृती-
वर्जयित्वा शेषा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कवेदनीयद्विकाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कहास्यादिपट्कपुरुषवेददेवाधुर्मनुष्याधुर्मनुष्यद्विकदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौ-
दारिकादिशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्गत्रयसमचतुरस्रमस्थानवज्जर्पभनाराचसंहननवर्णचतुष्कशुभलगतिस्रस-
दशकाऽस्थिराऽशुभायशः कीर्तिनामाऽऽतपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिपट्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चरूपा नव
सप्ततिप्रकृतयो बध्यन्ते । मार्गणास्वासु वर्तमानैर्जीवैः प्रथमद्वितीयगुणस्थानरूपयोर्न्यायोग्यं बन्धप्रायो-
ग्या एता एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो नैव बध्यन्ते, मार्गणानामासां चतुर्थादिगुणस्थानकेषु सत्त्वात् ॥२१॥

संप्रति मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां कतिपयासु संयममार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धमत्कां सत्पद-
प्ररूपणामुपदर्शयन्नाह

बंधो हवेज्ज वज्जिअ तइअकेसायाइपचपण्णासं ।

मणणाणसंजमेसु समइअछेअपरिहारेसुं ॥२२॥

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु
पञ्चसु मार्गणासु 'तइअदुइआ कसाया णराउणरुरल्लुग वइर ॥ थीणद्धितिगाणित्थी मच्चिमसघयणआगिई
णीअ । दुहगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरियाऊ ॥ णपुम मिच्छं हुं ड छेवड्ठं थावरायवेगिंदी । विग-
लसुहमणिरयतिग' मिति संग्रहगाथांशेषूक्तास्तृतीयकषायादिपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीः परिहृत्य शेषा ज्ञाना-
वरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्कं वेदनीयद्विकं संज्वलनचतुष्कं हास्यादिपट्कं पुरुषवेदो देवाद्युर्देवद्विकं
पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकशरीरवर्जशरीरचतुष्कं वैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतु-
ष्कं शुभलगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशः कीर्तिनामान्यातपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृतिपट्कमुच्चैर्गोत्रमन्तराय-
पञ्चक चेति पञ्चषष्टिप्रकृतयो बन्धे भवन्ति । तद्यथा-मार्गणास्वासु पृष्ठादिगुणस्थानस्थायिन एव
जीवाः प्राप्यन्ते, उपर्युक्तास्त्याज्यप्रकृतयो यथासंभवं प्रथमादिगुणस्थानेषु बन्धतो विच्छेदमाप्नुवत्यः

पञ्चमगुणस्थानकान्ते सर्वा अपि व्युच्छिन्ना भवन्ति, तस्मात्पृष्ठादिगुणस्थानकेष्वेताः प्रकृतयस्तेन बध्यन्ते, अतो मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धवर्जनं विहितम् ॥२२॥

इदानीं सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां देशविरतिसंयममार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धविषयां सत्पदप्ररूपणां कथयति -

देसे विणाऽस्थि बधो तेवण्णदुइअकसायआइत्तो ।

सुहमे सत्तरसण्ह आवरणाईण बंधोऽस्थि ॥२३ A॥

(प्रे०) 'देसे' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां 'दुइआ कसाया णराउणरुल्लदुग वइर ॥ धीणद्धित्तिगाणित्थी मच्चिमसघयणआगिई णीअ । दुहगत्तिगासुहगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुमं मिच्छ हुड छेवट्ट थावरायवेगिंदी । विगलसुहमणिरयतिग आहारदुग' मिति संग्रहगाथावयवेषूक्ता अप्रत्याख्यानावरणकपायादिविपश्चाशत्प्रकृतीर्निहाय शेषाः सप्तपट्टिः प्रकृतयो बध्यन्ते, ताश्चानन्तरोक्ता आहारकद्विकवर्जाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क्रमहिता ज्ञातव्याः । तद्यथा-मार्गणायामस्यां पञ्चमगुणस्थानकमेव वर्तते, अतोऽधस्तनगुणस्थानकेष्वेव बध्यमानानां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीनां तथौपरितनगुणस्थानकेष्वेव बध्यमानस्याहारकद्विकस्य बन्धे वर्जनं कृतम् ।

'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्क्रमातवेदनीययशःक्रीत्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपाणां सप्तदशानां प्रकृतीनां बन्धो भवति, स च सूक्ष्मकपायप्रत्ययिको विज्ञेयः ॥२३ A॥

इदानीमविरतसंयममार्गणायां तिसृषु कृष्णादिलेरयामार्गणासु तेजोलेश्यामार्गणायां चोत्तरप्रकृतिबन्धविषयां सत्पदप्ररूपणां विवरिपुगह--

अजयासुहलेसासुं आहारदुगं विणा भवे बंधो ।

तेऊए वज्जेऊ बधो अस्थि णवविगलाई ॥२३ B॥

(प्रे०) 'अजय' इत्यादि, अविरतिसंयममार्गणायां कृष्णनीलरूपोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु आहारकद्विकं तिसृज्याष्टादशयुतशतं प्रकृतीनां बध्यते । ताश्चाहारकद्विकवर्जाः सर्वा अपि ग्राह्याः । आहारकद्विकस्य वर्जनं पूर्ववज्जेयम् ।

'तेऊए' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां "विगलसुहमणिरयतिग" मिति संग्रहगाथावयवेषु कथितं प्रकृतिनवकं परिहृत्य प्रकृतीनामेकादशोत्तरशतं बध्यते, ताश्चैताः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं पट्विंशतिमोहनीयप्रकृतयः, नरकायुर्वर्जायुस्त्रिकं नरकगतिवर्जगतित्रिकमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं शरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रिकं सहननपट्कं संस्थानपट्कं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिकं विहायोगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावराऽस्थिरपट्कं प्रत्येकाष्टकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति, नरकत्रिकप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य केवलं कृष्णाद्यशुभलेश्याजन्यत्वात् तेजोलेश्यामार्गणायां तदभावः प्रतिपादितः ॥२३ B॥

अथ पञ्चलेश्यामार्गणायां शुक्ललेश्यामार्गणायां च प्रकृतमाह

पञ्चमात्र यावराइगवारहवज्जाण होअए बधो ।

वारहचउथावरतिरिआइगवज्जाण सुक्काए ॥२३॥

(प्रे०) 'पञ्चमात्र' इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायां 'थावगयवेगिनी।।वगळसुद्धमणिरयतिग'

मिति संग्रहगाथायाकलेपूक्ताभिः स्थावरादिद्वादशप्रकृतिभिर्विनाष्टाधिकशतप्रकृतीनां बन्धो भवति ।
ताथेमाः ज्ञानावरणपञ्चक दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं पड्विंशतिमोहनीयप्रकृतयो नरकायुर्वर्जाधु-
स्त्रिकं नरकातिरहितं गतित्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिः शरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रिकं संहननपट्कं संस्थान-
पट्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं त्रयदशकमस्थिरपट्कमातपवर्जप्रत्येकप्रकृतिसप्तकं गोत्रद्वय-
मन्तरायपञ्चकं चेति, पञ्चलेख्यावतामेकेन्द्रियेष्वनुत्पादादेकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धाभावः,
शेषाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धाभावे तेजोलेश्यामार्गणावद्धेतुः समधिगम्यः ।

'वारह' इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायामभिहिताः स्थावरादिद्वादशप्रकृतयस्त्रिकृत्त्रिकमु-
द्योतनामकर्म चेत्येतत्प्रकृतिषोडशकमृते शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेद-
नीयद्विकपड्विंशतिमोहनीयमनुष्यायुर्देवायुर्देवद्विकमनुष्यद्विरुपञ्चेन्द्रियजातिशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्ग -
त्रिकसंहननपट्कसंस्थानपट्कवर्णचतुष्कखगतिद्विकत्रयदशकाऽस्थिरपट्काऽऽतपोद्योतवर्जप्रत्येकप्रकृति-
पट्कगोत्रद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाश्चतुरुत्तरशतप्रकृतयो वर्धयन्ते, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां जीवानां
देवमनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वेन स्थावरादिषोडशप्रकृतीनां बन्धो न भवति ॥२३॥

सम्प्रति मिश्रोपशमसम्यक्त्वलक्षणमार्गणाद्वये प्रकृतं कथयति

अत्थि उवसमग्गि विणा दुआउयीणद्धिआइइगचत्ता ।

सि चैव अत्थि मीसे तित्थाहारदुगवज्जाणं ॥२३॥

(प्रे०) 'अत्थि उवसमग्गि' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवमनुष्यायुष्कद्वयं
'धीणद्धितिगाणत्थीमब्बिससंघयणआगिई णीअ । दुइगतिगासुहखगई तिरिदुगउज्जोअतिरिआऊ ॥ णपुमं
मिच्छ हु ड छेवट्ठं थावरायवेगिदी । विगलसुद्धमणिरयतिग'मिति संग्रहगाथात्रयवेषु कथिताः स्त्यान-
द्धित्रिकप्रमुखा एकचत्वारिंशत्प्रकृतीश्च वर्जयित्वा शेषाः सप्तसप्ततिः प्रकृतयो बन्धे वर्तन्ते । ताश्च ज्ञान-
मार्गणोक्ता आयुर्द्वयरहिता ज्ञातव्याः । अत्रायुःसामान्यस्य बन्धस्य परिणामाभावेन ज्ञानमार्गणासु
बन्धार्हायुर्द्वयस्यापि बन्धाभाव उक्तः ।

'सि चैव' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां याः स्त्यानद्धित्रिकप्रभृतयस्त्रिचत्वारिंशत्
प्रकृतयो वर्जितास्ता आहारकद्विकजिननामकर्माणि च संत्यज्य मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां चतुस्स ति
प्रकृतयो बन्धे बोद्धव्याः । तश्च सुगमत्वात् स्वयं ज्ञातव्याः । अत्र सम्यक्त्वादिगुणस्थानाभावादाहारक-
द्विकजिननामप्रकृतीनामधिकतो बन्धे वर्जनं कृतम् । शेषप्रकृतीनां बन्धाभावे हेतुः पूर्ववदनुसन्धेयः॥
॥२३॥ साम्प्रतं सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रागभिहितव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृ-
तिबन्धसत्पदप्ररूपणमाह--

सासाणे अहारसण्णपुमाइजिणाणि वज्जिज्ज वन्धो ।

सेसासु एगारहणिरयतिगई विणा अत्थि ॥ २३ ॥

(प्रे०) 'सासाणे' इत्यादि, सास्वादनसम्बन्धमार्गणायां "णुम मिच्छ हुं ङ छेवट्" थावराय-
वेगिदी । विगलसुहमणिरयतिगं ॥ आहारदुग्ग"मिति संग्रहमाथांशेषु प्रतिपादिता नपुंसकवेदाद्यष्टादश-
प्रकृतीर्जिननामकमे च संत्यज्य ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं नपुंसकवेदमिथ्या-
न्वमोहनीयाख्यप्रकृतिद्वयवर्जाश्चतुर्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयो नरकायुर्वर्जशेषायुश्चिकं नरकगतिवर्ज-
गतित्रयं पञ्चेन्द्रियजातिगद्गारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्क्षोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वयं प्रथमादिमंस्थान-
पञ्चकं प्रथमादिसहननपञ्चकं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं स्वगतिद्वयं त्रसदशकं
स्थिरपट्कमातपजिननामवर्जप्रत्येकप्रकृतिपट्कं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोत्तरशतप्रकृतयो वध्यन्ते,
मार्गणायामस्यामाहारकद्विकजिननामप्रकृतिवन्धाभावे प्राग्वद् हेतुग्वगन्तव्यः, नपुंसकवेदप्रभृतीनां
शेषाणां षोडशप्रकृतीनां मिथ्यात्वोदयाभावाद् बन्धाभावः ।

अत्र पर्यन्तमेकोनविंशदुत्तरशतमार्गणाभूत्तरप्रकृतिवन्धमत्कमत्पदप्ररूपणा कृता, साम्प्रतं पञ्च-
चत्वारिंशत्सख्याकासु शेषमार्गणासु 'सेसासु' इत्यादिना सा उच्यते, 'सेसासु' इत्यादि,
"णिरयतिग आहारदुग्ग सुराक य ॥ देवविउव्वदुग्गजिणा" इति संग्रहमाथांशेषुक्ता नरकत्रिका-
द्येकादशप्रकृतीर्विहायोक्तव्यतिरिक्तासु मार्गणासु नगधिकशतप्रकृतयो बन्धे प्राप्यन्ते, ताश्चेमा-
बन्धप्रायोग्यप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं वेदनीयद्विकं षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतय-
स्तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयं तिर्यग्द्विकं मनुष्याद्विकं जातिपञ्चकं वैक्रियाहारकशरीरवर्जितशरीरत्रयमौदा-
रिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानपट्कं सहननपट्कं वर्णचतुष्कं स्वगतिद्विकं त्रसदशकं स्थावरदशकं जिननाम-
वर्जप्रत्येकमसकं गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकं चेति । प्रागभिहितशेषमार्गणास्त्विमाः-अपर्याप्ततिर्यग्पञ्चे-
न्द्रियमार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मै-
केन्द्रियवादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तवादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तवादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियौघपर्याप्तद्वीन्द्रियाऽपर्याप्तद्वी-
न्द्रियत्रीन्द्रियौघपर्याप्तत्रीन्द्रियाऽपर्याप्तत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियौघपर्याप्तचतुरिन्द्रियापर्याप्तचतुरिन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपाः शेषमत्तदशेन्द्रियमार्गणाः, औघसूक्ष्मौघवादरौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्त-
वादरपर्याप्तवादराऽपर्याप्तलक्षणसप्तभेदभिन्नाः सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताकायमार्गणा एकादश
वनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा चेति सर्वाः समीलिताः पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणाः शेषा
अवसेयाः । मार्गणास्वासु वर्तमानैरसुमद्भिस्तिर्यग्मनुष्यगतावेवोत्पत्तिभावेन वैक्रियाष्टकं नैव वध्यते ।
आहारकद्विकजिननामकमन्धवैकल्ये च पूर्वोक्त एव हेतुरनुसरणीयः । इति कासु मार्गणासु क्रिय-
त्प्रकृतयो वध्यन्ते इति प्रतिपादनपरं सत्पदप्ररूपणाद्वारं समाप्तम् ॥ २३ ॥

॥ इति प्रेमप्रमाटीकासमलङ्कृते वन्धविधाने उत्तरप्रकृतिवन्धे
प्रथमाधिकारे प्रथम सत्पदद्वार समाप्तम् ॥

॥ द्वितीयं स्वामित्वद्वारम् ॥

गतमुत्तरप्रकृतिबन्धविषयं सत्पदप्ररूपणाख्यं प्रथमं द्वारम् , साम्प्रतं बन्धस्वामित्वाख्यं द्वितीयं द्वारं भणितुकामेन ग्रन्थकारेण प्रथमतया लाघवार्थं प्रकृतिसंग्रहगाथाः प्रोच्यन्ते ।

अत्य जमाइम्मि करिअ जाओ वुच्चंति ता कमा गेप्पसा ।
 एआओ आवरणं विग्घं उच्चं जसो सोय ॥ २४ ॥
 अतिमलोहाइपुमअसायअरइसोगअयिरदुगअजस ।
 सइअदुइओ जसाया णरकुगसुरलकुगवइराणि ॥ २५ ॥
 थोणद्धित्तिगाणित्थो मज्झिमसंघयणआगिई णोअं ।
 दुहगतिगं अपसत्थया खगई तिरियदुगमुज्जोओ ॥ २६ ॥
 णपुम मिच्छं हुंउं छेवट्ठ थावरायवेगिंदी ।
 विगलाणि य सुहमतिगं तह णिरयदुग सुरकुगं च ॥ २७ ॥
 धेउच्चियदुगजिणधुवणामसुहागिइपणिदिसुहखगई ।
 परधाओ असाओ आहारकुगं णवतसाई ॥ २८ ॥

(प्रे०) 'अथ' इत्यादि, उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वाख्ये द्वितीयद्वारे यां प्रकृतिमादौ कृत्वा याः प्रकृतयः कथयिष्यन्ते, 'सत्सामीप्ये सङ्ख्या' इति सिद्धहेमध्वनेण भविष्यदर्थे वर्तमानप्रत्ययो ऽत्र विज्ञेयः, ताः प्रकृतयो यथाक्रममत्राभिधीयमानाभ्यः प्रकृतिभ्य उपादेयाः । अरिगन् स्वामित्वद्वारे यां प्रकृतिमादौ कृत्वा यतिसंख्याकाः प्रकृतयोऽभिधास्यन्ते ततिसंख्याकानां यथाक्रममाभ्यः परिग्रहः कार्य इति भावार्थः ।

अथ प्रकृतीनां क्रमो दर्शयते—'आवरण' मित्यादिना । आवरणं हि मतिश्रुतावधिमनःपर्यव-
 केवलज्ञानावरणपञ्चक रूपं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्क रूपं चेति नवविधम् । ननु
 निद्रापञ्चकस्यापि दर्शनावरणेऽन्तर्भावोऽत्र आवरणपदेन तदप्युपादेयं स्यात् , तर्हि भवद्भिर्दर्शना-
 वरणचतुष्कमेव कथमुपात्तम् ? इति चेद् , उच्यते, 'थोणद्धित्तिग' इति पदेन संग्रहगाथायां
 रत्यानद्धित्तिगं पृथगुपात्तमस्ति, तथा निद्राद्विकं तु नोपादीयते, स्वस्थान एव नामतः 'सेसाणे'
 त्यादिपदाद्वा वक्ष्यमाणत्वाद् , तस्मादत्र आवरणपदेन चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कमेवोपात्तम् ।
 'विग्घं' ति अन्तरायकर्म तत्तु दानलामभोगोपभोगवीर्यान्तरायमेदात्पञ्चधा । 'उच्चं' ति भीमो
 भीमसेन इति व्यवहाराद् उच्चैर्गोत्रम् , एवमन्यत्राऽप्यवसेयम् , 'यशः' यशःकीर्तिनामकर्म 'सातं'
 सातवेदनीयम् , इति प्रथमगाथायां सप्तदशप्रकृतयः कथिताः । 'अन्तिम' इत्यादि, 'अन्तिमलोमा-
 दिपुरुषवेदाः' संज्वलनलोभमायामानक्रोधात्मकं कपायचतुष्कं पुरुषवेदश्च तथा असातवेदनीयमरति-
 मोहनीयं शोकमोहनीयमस्थिरनामकर्मऽशुभनामकर्मऽयशःकीर्तिनामकर्म च, 'तृतीयद्वितीयाः
 न्यायाः' प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभरूपं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणक्रो-
 ध

मानमायालोभलक्षणमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं च, 'नरद्विकं' मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीरूपम्, 'औदारिकद्विकवज्राणि' औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गे वर्त्तमानराचसंहननं चेति चतुर्विंशतिप्रकृतयो द्वितीयगाथायामुक्ताः । 'धीणद्वि' इत्यादि, निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्थानद्विलक्षणं स्थानद्वित्रिकम्, अनन्तानुबन्धिक्रोधादिकपायचतुष्कं स्त्रीवेदश्च, 'मध्यमसंहननीकृतयः' ऋषमनाराचना-राचाधेनाराचकीर्लकारूप मध्यमसंहननचतुष्कं न्यग्रोव-सादिवामनकुञ्जलक्षणं मध्यमसंस्थान-चतुष्कं चेति, नीचैर्गोत्रम्, दुर्भगत्रिकं दुर्भगदुस्वरानादेयात्मकम् . अप्रशस्तस्वगतिः=अशुभविहायो-गतिः, तिर्यग्द्विकं तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीरूपम्, उद्योतनामकर्म चेति चतुर्विंशतिप्रकृतयस्त्वृतीय-गाथायामुक्ताः । 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदमोहनीयम् मिथ्यात्वमोहनीयम् सेवार्तसंहननं हुण्डसंस्थानम् 'स्थावरातपैकेन्द्रियाणि' स्थावरनामकर्माऽऽतपनामकर्माँकेन्द्रियनामकर्म च, 'धिकलानि' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनामकर्माणि, 'सूक्ष्मत्रिकं' सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणना-मात्मकम्, 'नरकद्विकं' नरकगतितनरकानुपूर्वीरूपम्, 'सुरद्विकं' देवगतिदेवानुपूर्वीरूपम्, च-तथा-शब्दौ समुच्ये, एवं मत्तदशप्रकृतयश्चतुर्थगाथायामभिहिताः । 'वैक्रिय-द्विकजिनध्रुवनामशुभाकृतिपञ्चेन्द्रियशुभस्वगतयः' वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विक तीर्थकरनामकर्म, 'ध्रुवनामप्रकृतयः'-ताश्चेमाः-वर्णचतुष्कं तैजसशरीरनाम कर्मणशरीरनामाऽगुरु-लघुनाम निर्माणनामोपघातनाम चेति नव ध्रुवबन्धनामप्रकृतयः, शुभाकृतिः-समचतुरस्रसंस्थानं, पञ्चेन्द्रियजातिनाम, शुभविहायोगतिनाम पराघातनामकर्माँच्छ्वासनामकर्म 'आहारकद्विकं' आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गरूपम् 'नवत्रसादयः' त्रसवादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेय-नामकर्मरूपा नवत्रसादिप्रकृतयश्चेति पञ्चमगाथायामष्टाविंशतिप्रकृतयोऽभिहिताः, एवं पञ्चगाथासु सर्वसङ्ख्यया दशाधिकशतप्रकृतयः । शेषाश्च दशप्रकृतयोऽत्र न संगृहीताः, स्वस्थान एव नामतः 'सेसाणे' त्यादिपदाद्वा वक्ष्यमाणत्वादिति सग्रहगाथापञ्चकार्यः ॥२४-२८॥

साम्प्रतमोषत आदेशतश्चोत्तरप्रकृतिवन्धस्वामित्वज्ञानार्थं प्रथममोषत आदेशतश्च जीवभेद-ज्ञानमावश्यकमिति मूलप्रकृतिवन्धविधानग्रन्थे तत्प्रातिपादिका या गाथास्ता अत्राऽभिधीयन्ते । तद्यथा-

जीवा पेया मिच्छादिद्वी, सामाणमीसदिद्वी य । अविरयसम्मादिद्वी, देशमत्तपमत्तजई ॥ ॥
 तहऽपुञ्चकरणवत्ती अणियद्वी सुहुमसपराया य । उवसतवीणमोहा य सजोगिअजोगिणो सिद्धा ॥ ॥
 सव्णिरयभेएसु सुरगेविज्जतदेवविउवेसु । अजयासुहलेसासुं मिच्छाई होन्ति सम्भंता ॥ ॥
 मिच्छाई देशविरयअता तिरियतिपणिदितिरियेसु । मिच्छादिद्वीया चिय असमत्तपणिदितिरियमणुसेसुं ॥
 (गीतिः)
 सव्वेसु एगिंदियविगलितियपचकायभेएसु । असमत्तपणिदियतसअभविमिच्छत्तअमणोसुं ॥ ॥
 मिच्छाईअजोगता तिमणुसहुपणिदिदुत्तमभविसेसुं । सम्मादिद्वीया चिय पणऽणुत्तरदेवभेएसुं ॥ ॥

तिमणवयणकायेसु ओरालम्भि सुहृलात्र आहारे । मिच्छादिद्विगभिर्द्वि होअनि सजोगिपञ्जता ॥ ॥
 दुमणवयणजोगेसु णयणेयरदरिसणेसु सण्णिम्मि । मिच्छादिद्विगभिर्द्वि णायवा खीणमोहंता ॥ ॥
 मिच्छती सासाणा सम्मादिद्वि सजोगिकेवलिणो । ओरालमीसजोगे कम्मणजोगे य होअन्ति ॥ ॥
 निक्खियमीसे हुन्ते मिच्छा सासायणा य सम्मत्ती । णेया पमत्तजइणो आहाराहारमीसेसु ॥ ॥
 वेअकसायतिगे खलु मिच्छताइ अणियट्ठिपज्ज ता । अणियट्ठिवायराई सिद्धता अत्थि गयवेष् ॥ ॥
 मिच्छाई सुहसंता हवन्ति लोहम्मि हुन्ति अकसाये । उवसतखीणमोहा य सजोगिअजोगिणो सिद्धा ॥ ॥
 केवलदुगे सजोगी अजोगिसिद्धाऽत्थि मिच्छसामाणा । अण्णाणतिगे हुन्ति अजोगता सजमे पमत्ताई ॥ ॥
 णाणतिगे ओहिम्मि य सम्माई हुन्ति खीणमोहंता । होअन्ति पमत्ताई मणणाणे खीणमोहंता ॥ ॥
 अणियट्ठिवायरंता समइअच्छेएसु अप्पमत्तता । परिहारे देसजई देसे सुहमा उ सुहम्मि ॥ ॥
 उवसतखीणमोहा महजोगअजोगिणो बहुक्खाये । तेउउमासु णेया मिच्छाई अप्पमत्तता ॥ ॥
 सम्माई सिद्धता सम्मे खइए य अप्पमत्तता । वेअगम्भे णेया उवसंतता उवसम्मि ॥ ॥
 सासाणे सामाणा मीसे मीसा तहा अणाहारे । मिच्छा सासणसम्मा सहजोगअजोगिणो सिद्धा ॥ ॥
 उत्तानार्थाः ।

इदानीनोधत उत्तरप्रकृतीनां भणितजीवभेदभिन्नं बन्धरवामित्वं दर्शयन्नादौ तावज्ज्ञाना-
 वरणादिवोडशप्रकृतीनां तदुपदर्शयति

पयडोण सोलसण्हं आवरणाईण वंधगा जीवा ।

सुहमंता सव्वहं खलु धुवंधीणं अवंधगा सेसा ॥ २६ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “पयडोण” इत्यादि, ‘आवरणं विग्वं उच्च जसो’ इति संग्रहगाथावयवेषु प्रति-
 पादितानां ज्ञानावरणपञ्चकं दशेनावरणचतुःकमन्तरायपञ्चकमुच्चर्गोत्रं यशःकीर्तिनाम चेति वोडश-
 प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य सूक्ष्मपरायणगुणस्थानकं यावद् दशसु गुणस्थानकेषु
 वर्तमाना जीवा ज्ञातव्याः, प्रकृतीनामामां बन्धस्य कषायोदयाऽविनाभावित्वाद् गुणस्थानकेष्वेषु-
 कषायोदयस्य सत्त्वेन तद्बन्धभावात् । “सव्वह” इत्यादि ओघत आदेशतश्च बन्धस्वामित्वप्ररूप-
 णायां भणितध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धकेतरा अवशोऽऽ जीवभेदा भणितध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धका
 अवसातव्या इति सर्वत्राऽनुमन्धेयम्, अध्रुवबन्धिनीनां तु उत्तरत्र वक्ष्यन्ते, स्वयमेव गाथाकृता,
 तथाऽपि स्थानाऽशून्यार्थमस्माभिः संक्षेपेण तत्र तत्र द्वितीयप्रकारगता अवन्धकाः कथयिष्यन्ते ।
 अवन्धका अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्विधा प्राप्यन्ते, ये यामां प्रकृतीनामवन्धकत्वेन योग्या अपि तत्प्रति-
 पक्षादिप्रकृतीनां बन्धकत्वेन तासामवन्धकास्ते प्रथमप्रकारगताः, ये तु बन्धविच्छेदेन यासां
 प्रकृतीनामवन्धकास्ते द्वितीयप्रकारगता ज्ञातव्याः । अत्र तु द्वितीयप्रकारगता अवन्धका दर्श-
 यिष्यन्ते । प्रस्तुते ज्ञानावरणादिचतुर्दशानां ध्रुवबन्धिनीनां, उच्चर्गोत्रयशःकीर्तिरूपयोगध्रुव-
 बन्धिन्योश्च मिथ्यादृष्टिप्रमुखसूक्ष्मसंपगयान्ता जीवा बन्धकाः, तद्व्यतिरिक्ता उपशान्तमोह-
 क्षीणमोहमयोग्ययोगिनः सिद्धाश्च प्रकृतवोडशप्रकृतीनां बन्धका नैव भवन्ति, कषायोदयाभाव-
 वत्तात्तत्पाम् ॥ २९ ॥

अथ स्त्यानद्वित्रिकादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं प्रदर्शयन्नाह

थीणद्वितिगाईण चउवोसाअ तिरियाउगस्स तहा ।

साअणअता दोण्हं णिदाण अपुव्वसखस ॥ ३० ॥

(प्रे०) “थीणद्वि” इत्यादि, थीणद्वितिगाणित्थी मच्चिमसवयणआगिई णीअ दुहगतिग अवसत्था खगई तिरिवुगमुज्जोओ ” इतिसग्रहगाथाशेषूक्तानां स्त्यानद्वित्रिकप्रभृतीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां तिर्यगायुष्कस्य च बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादनगुणस्थानस्था जीवा बोद्धव्याः, यत एताः पञ्चविंशतिः प्रकृतयोऽनन्तानुबन्धिकपायोदयेन बध्यन्ते, गुणस्थानद्वये चाऽस्मिन् तदुदयस्य विद्यमानत्वेन भवति प्रकृतीनामासां बन्धः । एतर्जीवभेदद्वयाऽतिरिक्ता मिश्रदृष्टिप्रभृतयोऽखिला जीवभेदाः पञ्चविंशतिप्रकृतीनामामां बन्धका नैव भवन्ति अनन्तानुबन्धिकपोदयामावात्तेषाम् । “दोण्हं” इत्यादि, निद्राप्रचलालक्षणस्य निद्राद्विकस्य प्रथमगुणस्थानकात्प्रभृत्यष्टमगुणस्थानकप्रथमभागां यावत्तिष्ठन्तां जीवा बन्धका भवन्ति, एतावत्पर्यन्तं तेषां तद्बन्धप्रायोग्यपरिणामभावात् । “सव्वह खलु” इत्यादिनाग्रेतनगुणस्थानेषु वर्तमाना जीवाः सिद्धाश्च निद्राद्विकस्याऽबन्धकाः सन्ति, तत्प्रायोग्यपरिणामविहात् ॥ ३० ॥

इदानीं सातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमुपदर्शयति

सायस्स सजोगता छअसायाईण जा पभत्तजई ।

मिच्छत्ती चिअ, पणरसणपुमाइगणारगाऊणं ॥ ३१ ॥

(प्रे०) “सायस्स” इत्यादि, आसयोगिगुणस्थानं जीवाः सातवेदनीयस्य बन्धका भवन्ति जीवेष्वेव योगस्य मत्वात्, जायते हि योगहेतुनाऽपि सातवेदनीयस्य बन्धः । अयोगिगुणस्थानस्थिता जीवाः सिद्धाश्च सातवेदनीयस्य बन्धका न भवन्ति, योगव्यापाराभावात् । “छअसायाईण” इत्यादि, “असायअरइसोगअथिरदुगअजस” मिति संग्रहगाथांशे प्रोक्तानां पण्णामसातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धका आद्यगुणस्थानकात् प्रमत्ताख्यपष्टगुणस्थान यावद्वर्तमाना असुमन्तो भवन्ति, यतः प्रकृतीनामासां बन्धः प्रमादविशिष्टकपायप्रत्ययिको ऽस्ति, प्रकृतगुणस्थानस्था जीवा अपि प्रमादवन्त एव । तदुपरितनगुणस्थानेषु पुनर्वर्तमाना जीवाः सिद्धाश्चासामबन्धका अवसेयाः, प्रमादविकलत्वात् । “मिच्छत्ती” इत्यादि “णपुम मिच्छ हु ड छेवट्टं थावरायवेगिदी । विगलाणि य सुहमतिग तह णिरय-दुग” मितिसंग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां नपुंसकवेदादीनां पञ्चदशप्रकृतीनां नरकायुष्कस्य च बन्धका मिथ्यादृष्टय एव जीवा भवन्ति, प्रकृतीनामासां बन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वात्, तदपरे सास्वादन-प्रमुखा जीवभेदाः प्रकृतीनामासां बन्धका न भवन्ति, मिथ्यात्वोदयविकलत्वात् ॥ ३१ ॥

माम्प्रतं द्वितीयरूपायादीनां बन्धस्वामित्वमाह

डुअअकसायाईण णवण्ह होअन्ति जाव सभमत्ती ।

चउतडअकसायाण पेया देसजइपजता ॥ ३२ ॥

(प्रे०) “दुष्टकसायाईण” मित्यादि, “दुष्टा कसाया नरुगामुदुगवइराणि” इतिसंग्रह-
गाथावयवेषूक्तानामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचर्महननरूपाणां नवानां
प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारतो यावदविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानस्थायिनो जीवा वेद-
यितव्याः, भावना पुनरेवं भावनीया—“जो वेयई सो बंधइ” इति वचनात् अप्रत्याख्यानावरण
चतुष्कस्य बन्धः स्वोदयप्रत्ययिको भवति, अत एते जीवभेदास्तदुदयवच्चेनाप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं
बध्नन्ति, मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धोऽविरत्यात्मकनिमित्तेन जायते, एते जीवभेदा
अप्यविरतिवन्तो भवन्ति, तस्मादेतैरेतत्प्रकृतिपञ्चकं बध्यते । अत्रायं विशेषः—तृतीयचतुर्थगुणस्थानवर्ति-
जीवेषु मनुष्यपञ्चकस्य बन्धका देवनारका एव । तद्व्यतिरिक्ता देशविरतिप्रभृतिगुणस्थानस्थायिनो
जीवभेदाः प्रकृतीनामामबन्धका विज्ञेयाः, उपयुक्तहेतुद्वयाभाववत्पातेषाम् । “चउतइअ”
इत्यादि, आपञ्चमगुणस्थानं वर्तमाना जीवभेदाः प्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्कस्य बन्धका बोद्धव्याः,
तदुदयवच्चादेषाम्, तदुदयाविनाभावी हि तद्वन्धः । एतदतिरिक्ताः प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानगता
जीवा नैतत्कपायचतुष्कस्य बन्धकाः, यत एते जीवा प्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्कौदया-
भाववन्त इति ॥ ३२ ॥

अधुना पुरुषवेदादीनां बन्धस्वामित्वं कथयितुमना आह—

पुरिसत्तिसंजलणाण अत्थि कमा बधगाऽणिअट्टीए ।

जा चउभागेसु णिआ चरमता चरमलोहस्त ॥ ३३ ॥

(प्रे०) “पुरिस” इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायारूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धस्वा-
मिनो यथासंख्यं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदनिवृत्तिवादरसंपरायाख्यनवमगुणस्थानकस्य
ये प्रथमाद्याश्चत्वारो भागास्तावद् वर्तमाना जीवाः, संज्वलनलोभस्य तु बन्धका नवमगुणस्थानकस्य
चरमसमयं यावद् वर्तमाना जीवा विज्ञातव्याः । इदमुक्तं भवति—अनिवृत्तिवादरसंपरायगुण-
स्थानाद्धाया असमाः पञ्चभागा भवन्ति, तस्य गुणस्थानकस्य बहुभागप्रमाणकालरूपस्य प्रथम-
भागस्य प्रान्ते पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदो भवति, तदनन्तरं तद्गुणस्थानकस्याऽवशिष्टकालस्य
बहुभागरूपद्वितीयभागान्ते संज्वलनक्रोधस्य, तदनु तृतीयभागान्ते संज्वलनमानस्य, तत्पश्चात्शेषस्य
कालस्य बहुभागरूपतूर्यभागान्ते संज्वलनमायायाः, ततः परं शेषपञ्चमभागप्रान्ते ‘नवमगुणस्थानकस्य
चरमसमय इत्यर्थः’ संज्वलनलोभस्य बन्धविच्छेदो जायते, तस्मादनिवृत्तिवादरसंपरायगुणस्थानकस्य
यावत्प्रथमभागं गताः पुरुषवेदस्य यावद्द्वितीयभागं गताः संज्वलनक्रोधस्य, यावत्तृतीयभागं गताः संज्व-
लनमानस्य, यावच्चतुर्थभागं गताः संज्वलनमायायाः, यावत्पञ्चमभागं गताश्च संज्वलनलोभस्य बन्धका
ज्ञातव्याः । एवमेव पञ्चसङ्ग्रहटोकायाभाचार्यपुङ्गवैः श्रीमलयगिरिसूरिभिरुक्तम्, तद्यथा—

अपूर्वकणचरमसमये हास्यरतिभयकुत्साविरामे—हास्यरतिभयजुगुप्साबन्धविच्छेदेऽनिवृत्तिवादर-
संपरायप्रथमसमये द्वाविंशतिर्वन्धयोग्या भवति, सा च तावद्यावदनिवृत्तिवादरसंपरायाद्धाया. सख्येया

भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततः पुरुषवेदवन्धविच्छेदादेकविंशतिर्वन्धयोग्या भवति, साऽपि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूताया अद्यायाः सख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततः संज्वलनक्रोधस्याऽपि बन्धव्यवच्छेदाद्विंशतिर्वन्धयोग्या भवति, सापि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूतायाः सख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततः सज्वलनमानस्यपि बन्धव्यवच्छेदादेकोनविंशतिर्वन्धयोग्या भवति, सापि तावद्यावत्तस्याः शेषीभूताया अद्यायाः सख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततः सज्वलनमायाया अपि बन्धव्यवच्छेदादष्टादशप्रकृतयो बन्धयोग्या भवन्ति, ताश्च तावद्यावदनिवृत्तिवादरसपरायाद्यायाश्चरमसमयः, तस्मिंश्च चरमसमये सज्वलनलोभस्यापि बन्धव्यवच्छेदात्सूक्ष्ममपरायगुणस्थानकप्रथमसमये सप्तदश बन्धयोग्याः । शतकवृत्ती द्वेवम्-इहानिवृत्तिवादरगुणस्थानकस्य चरमसख्येयभाग पञ्चमभिर्भागैः कल्प्यते । तत्र प्रथमभागान्ते पुरुषवेदलक्षणाया एकस्या प्रकृतेवन्धव्यवच्छेदे शेषामेकविंशतिमसौ वध्नाति । ततो द्वितीयभागान्ते क्रोधवन्धव्यवच्छिन्ने शेषा विंशतिम् । ततस्तृतीयभागान्ते मानवन्धे व्यवच्छिन्ने शेषामेकोनविंशतिम् ततश्चतुर्थभागान्ते मायावन्धे व्यवच्छिन्ने शेषा अष्टादशप्रकृतीरयमेव वध्नाति । ततः पञ्चमभागस्य चरमसमये लोभलक्षणाया एकस्याः प्रकृतेर्वन्धे व्यवच्छिन्ने शेषाः सप्तदशप्रकृतीः सूक्ष्मसम्परायो वध्नाति । "कषायप्राभूतस्य त्वयमभिप्रायः-अनिवृत्तिवादरसपरायस्य बहुसंख्यातभागे गते पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते, तदनन्तरमनिवृत्तिवादरसपरायगुणस्थानकस्य शेषभागस्योत्तरोत्तरन्यूनन्यूनतराश्चत्वारो भागाः कल्प्यन्ते, तत्र प्रथमभागान्ते संज्वलनक्रोधस्य, द्वितीयभागस्थान्ते संज्वलनमानस्य तृतीयभागान्ते संज्वलनमायायाः, चतुर्थभागान्ते संज्वलनलोभस्य च बन्धविच्छेदो जायते ॥ ३३ ॥

सम्प्रति हास्यमोहनीयादिप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमाह

बोद्धव्या हस्सज्जुगलभयकुच्छाण अपुव्वकरणंता ।

सम्मादिद्वीयता हुन्ति णराउस्स मौसुणा ॥ ३४ ॥

(प्र०) "बोद्धव्या" इत्यादि हास्यरतिभयजुगुप्सरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका मिथ्या-दृष्टिप्रभृत्यपूर्वकरणगुणस्थानकेषु वर्तमाना जीवभेदा बोद्धव्याः । तदुपरितनगुणस्थानकेषु गता जीवभेदाः प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका बोद्धव्याः, तद्याग्याध्यवसायाभाववच्चादेषाम् । "सम्मा" इत्यादि मनुष्यायुष्कस्य बन्धका प्रथमद्वितीयचतुर्थगुणस्थानकेषु स्थिता जीवभेदा वेदयितव्याः, तत्रापि चतुर्थगुणस्थानवर्तिजीवेषु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका देवनारका एव, न तु तिर्यग्मनुष्याः, तेषां चतुर्थगुणस्थानके देवायुष्कस्यैव बन्धकत्वात् । मिश्रदृष्टय आयुष्कसामान्यस्याबन्धकत्वान्मनुष्यायुषोऽबन्धकाः, पञ्चमादिगुणस्थानवर्तिजीवा अप्यबन्धका एव, तेषां देवायुष्कस्यैव बन्धकत्वात् ॥ ३४ ॥

अधुना देवायुष्कादीनां बन्धस्वामित्वं प्ररूपयन्नाह

अपमत्तसज्जयंता हुन्ते देवाउगस्स मौसुणा ।

तीससुरार्हण जा अपुव्वकरणस्स सत्तसा ॥ ३५ ॥

(प्र०) 'अपमत्त' इत्यादि, तृतीयमिश्रदृष्टिगुणस्थानकवज्जमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तसंयतजीवभेदा देवायुष्कस्य बन्धका भवन्ति, तत्प्रायोग्याऽध्यवसायवच्चात्तेषाम् । तदितरे पुनस्तदेवबन्धका न, यतो

ऽष्टमगुणस्थानकादुपशमादिश्रेणिः प्रारभ्यते, श्रेणिगतश्च कोऽपि जीव आयुर्न बध्नाति, तत्र धोलना-
परिणामाभावात् । 'तोस' इत्यादि, 'सुरदुग' च ॥ वेज्जिवयदुगजिणधुवणामसुहागिइपणिदिसुहखगई ।
परचायो ऊसासो आहारदुगणवतसाई ॥ इति संग्रहभाषाशकलोकानां देवद्विकप्रभृतीनां त्रिंशत्प्रकृतीनां
बन्धका मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदपूर्वकरणगुणस्थानकस्य संख्येयभागेषूपलभ्यमानाः
सर्वे जीवभेदा अवसातव्याः, शेषाः पुनस्तदुपरिगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदा न बन्धकाः, तत्प्रायोग्या-
ध्यवसायाभाववच्चात्तेषाम् ॥ ३५ ॥

ननु जिननामकर्मणोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादाहारकद्विकस्य चाप्रमत्तसंयतगुणस्थान-
कादारभ्य बन्धो भवतीति नियमः, भवद्भिस्त्वत्र प्रथमाष्टमगुणस्थानपष्ठभागवर्तिनो जीवभेदाः प्रकृति-
त्रयस्यास्य बन्धस्वामित्वेनोपदर्शितास्तत्कथं धटामियात् ? न हि मिथ्यादृष्टिप्रभृतिगुणस्थानत्रय-
गता जीवास्तीर्थकृन्नामकर्म बध्नन्ति, प्रथमादिषड्गुणस्थानकेषु च वर्तमाना आहारकद्विकमित्या-
रेकामुन्मूलयितुमेतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धस्वामित्वेऽपवादमुपदर्शयन्नाह—

णवरं सम्माहिन्तो जेया तित्थयरणामकम्मस्स ।

अप्रमत्तसंजयाओ आहारदुगस्स विण्णेया ॥ ३६ ॥

(प्रे०) 'णवर' मित्यादि, तीर्थकरनामकर्मणोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादारभ्य यावदपूर्व-
करणगुणस्थानकपष्ठभागं तिष्ठन्तः प्राणिनो बन्धका ज्ञेयाः, न पुनर्मिथ्यादृष्टिप्रमुखगुणस्थानत्रयवर्तिनः,
तीर्थकृन्नामकर्मबन्धस्य सम्यक्त्वगुणाविनाभावित्वात् । 'अप्रमत्तसंयताओ' इत्यादि, अप्रमत्त-
संयतगुणस्थानकादारभ्याऽपूर्वकरणगुणस्थानपष्ठभागं यावद् वर्तमाना असुमन्त आहारकद्विकस्य
बन्धका ज्ञातव्याः, न पुनराद्यादिषड्गुणस्थानगताः, आहारकद्विकबन्धस्याऽप्रमत्तसंयमादिगुणाऽवि-
नाभावित्वात् ॥ ३६ ॥

तदेवमोधतो मिथ्यादृष्टिप्रभृतिजीवभेदभिन्नभुतरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं निरूप्य साम्प्रतमा-
देशतो मार्गणासु तन्निरूपयितुमना ग्रन्थकार आदौ तावदोधवत्सविशेषं चाह—

ओधव्व जाणियव्वा सप्पाजग्गाण आउवज्जाणं ।

तिणरदुपार्चदियतसपरामणवयकायउरलेसुं ॥ ३७ ॥

णयणेयरसुयकासुं भविये सण्णिम्मि आहारे ।

णवरि तिणरउरलेसुं पंचणराईण मिच्छसासाणा ॥ ३८ ॥ (उद्गीतिः)

सायस्स बधगा खलु सव्वे पचमणवयकायेसुं ।

उरलणयणेयरेसुं सुक्कासण्णीसु आहारे ॥ ३९ ॥

(प्रे०) 'ओधव्व' इत्यादि, मनुष्यौवमनुष्ययोनिमतीपर्याप्तमनुष्यपञ्चेन्द्रियौधपर्याप्तप-
ञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तत्रसमनःसामान्यसत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनोवचनौधसत्य-

यतः मिथ्यादृष्टिसास्वादनजीवास्तत्र बन्धन्तीत्यारेकापनोदाय “णवरि” इत्यादिना विशेष-
मुपदर्शयन्नाह—सप्तमनरकमार्गणायां नरद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धका मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवभेदा-
वेव भवतः, नापगौ मिथ्यादृष्टिसास्वादनजीवभेदौ, तयोर्भवप्रत्ययार्तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधा-
यित्वात् ॥४२॥

अथ तिर्यगोवादिमार्गणासूत्रप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधित्सुराह

तिरिये पणिदियतिरियतिगे य गुणतोसणरदुगाईण ।

सासाणता मिच्छा पचदसण्ह णपुमाईणं ॥ ४३ ॥

सम्मादिद्वीयता दुइअकसायाण वधगा जेया ।

सब्बे वि जाणियन्वा सेसाण पचसद्वीए ॥ ४४ ॥

(प्रे०) “तिरिये” इत्यादि, तिर्यगोवतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौषपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्ची
रूपासु चतसृषु मार्गणासु मिथ्यादृष्टिसास्वादनजीवाः, “गरदुगामुरदुगत्रइराणि ॥थोणद्धितिगाणित्थी
मज्झिमसथयणआगिई णीअ । दुइगातिग अपसत्था लगई तिरियदुगामुज्जोओ॥” इतिमंग्रहमाथावयवेषु भणि-
तानां मनुष्यद्विकादीनामेकोनविंशत्प्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, नापरे मिश्रदृष्टिप्रभृतयः, तेषां
देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धभावादनन्तानुबन्धचतुष्कोदयाभावाच्च । “मिच्छा” इत्यादि, “णपुम
मिच्छ हुंढ छेवदु थावरायवेगिंदो । विगलाणि य सुइमतिग तह गिरयदुग” इति संग्रहमाथावयवेषु
कथितानां नपुंसकभेदादीनां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदो वेदयितव्यः, न पुनर-
परे सास्वादनप्रमुखा जीवभेदाः, एषु प्रकृतीनामासां बन्धहेतुभूतस्य मिथ्यात्वोदयस्याऽभावात् ।
“सम्मादिद्वीयता” इत्यादि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृतिचतुर्जीव-
भेदा अविगम्याः, न पुनः शेषो देशविरतः, तद्वन्बहेतुभूताप्रत्याख्यानावरणचतुष्कोदयाभावात् ।
‘सब्बे’ इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणपञ्चकम्, वेदनीयद्विकम्, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
संज्ञलनचतुष्कहास्यपट्करूपवेदलक्षणाः पञ्चदश मोहनीयप्रकृतयः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः,
वैक्रियतैजसकर्मणशरीरत्रयम्, वैक्रियाज्जोपाज्जम्, समचतुरस्रसंस्थानम्, वर्णचतुष्कम्, देवानुपूर्वी,
शुभलगतिः, त्रयदशकम्, अस्थिराशुभायशःकीर्तिनामप्रकृतित्रयम्, आतपोद्योतजिनवर्जप्रत्येकपञ्च-
कम्, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकञ्चेति पञ्चपट्टिप्रकृतीनां बन्धकाः मार्गणास्वासु वर्तमाना
मिथ्यादृष्ट्यादयः पञ्चाऽपि जीवभेदा भवन्ति ॥४३-४४॥

साम्प्रत सुरौघसौधर्मेशानत्रेक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगरूपासु पञ्चसु मार्गणासु भवन-
पतिप्रभृतिमार्गणात्रये चात्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयितुमाह

सुरसोहम्मदुगेसु वेउव्वदुगे य मिच्छसासाणा ।

थोणद्धितिगाईण चउवीसाए मुणेयधवा ॥ ४५ ॥

सत्तणपुमाइगाण मिच्छाविद्वी जिणस्स सम्मत्ती ।

सब्बे सेसाणेव विणा जिण अत्थि भवणतिगे ॥ ४६ ॥

(प्रे०) “सुर” इत्यादि, सुरौघसौधमेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियनिश्रकाययोगाभिधासु पञ्चसु मार्गणासु “थीणद्वितिगाणित्थी मब्झिमसंघयणआगिई णीअ । दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुग-मुज्जोओ” इति संग्रहभाषावयवेषु भाषितानां स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः सास्वादनाश्च भवन्ति, नान्ये, हेतुरत्र प्राग्वदवसेयः । ‘सत्स’ इत्यादि, नपुंसकवेदो मिथ्यात्वमोहनीयं हुण्डकसंस्थानं सेवार्तसंहननं स्थावरनामाऽऽतपनामैकेन्द्रियजातिनाम चेति सप्तानां प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृशो बोद्धव्याः, शेषास्तु न तद्वन्धकाः, मिथ्यात्वरहितत्वात्तेषाम् । “जिणस्स” इत्यादि, तीर्थकृत्रामकर्मणो बन्धकाः सम्यग्दृशो भवन्ति, नेतरे मिथ्यादृशादयः, तद्वन्धस्य सम्यक्त्वाऽविनाभावित्वात् । “संवे” इत्यादि, मार्गणास्वासु वर्तमानाः सर्वेऽपि जीवभेदा उक्तातिरिक्तानां शेषाणां सप्ततिप्रकृतीनां बन्धका अवसातव्याः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरण-पञ्चकं दर्शनावरणपट्कं वेदनीयद्विकमप्रत्याख्यावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदहास्यषट्कात्मका एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयो मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतै-जसकर्मणशीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वज्रपमनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्या-नुपूर्वी शुभखगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामत्रयमातिपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चै-र्गात्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति सप्ततिप्रकृतयः । “एवं विणा” इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्क-रूपासु तिसृषु मार्गणासु जिननामो बन्धाभावाज्जिननामकर्मप्रकृतिं विहाय शेषतत्वात्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं सुरौघादिमार्गणावद् भावनीयम् ॥४५-४६॥

इदानीमानतादिनवग्रैवेयकपर्यन्तासु मार्गणावृत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह

गेविज्जंतसुरेसुं सेसेसुं हुन्ति मिच्छसासाणा ।

थीणद्वितिगाईण पयडीणं एगधीसाए ॥ ४७ ॥

णपुमाईण चउण्हं मिच्छादिट्ठी जिणररा सम्मत्ती ।

सेसाण सत्तरीए पयडीणं बधेगा संवे ॥ ४८ ॥

(प्रे०) “गेविज्जंतसुरेसु” इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदश मार्गणासु “थीणद्वितिगाणित्थी मब्झिमसंघयणआगिई णीअ । दुहगतिगं अपसत्था खगई” इत्यनेन प्रोक्तानां स्त्यानर्द्धित्रिकादीनामेकविंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्वादना बोद्धव्याः, शेषाः पुन-र्नबन्धकाः, हेतुरत्र प्राग्वद् । “णपुमाईण” इत्यादि, नपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयहुण्डक-संस्थानसेवार्तसंहननलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका मिथ्यादृशोऽधिगम्याः, शेषाः पुनर्न बन्ध-काः, हेतुः पुनरिह प्राग्वदनुसन्धेयः । “जिणररा” इत्यादि, तीर्थकृत्रामकर्मणो बन्धकाः सम्यग्दृष्टि-जीवभेदोऽवसेयः, नेतरे, सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वात्तद्वन्धस्य । “सेसाण” इत्यादि, उक्तविभिन्नानां शेषाणां सप्ततिप्रकृतीनां बन्धका एतन्मार्गणस्था मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारोऽपि जीवभेदा भवन्ति,

वचनाऽमत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽसत्यामृषावचनकाययोगौघौदारिकाययोगचक्षुरचक्षुःशुक्ललेश्या-
भव्यसंज्ञाहारकलक्षणासु पञ्चविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्यगामापुष्कमेवर्जानां प्रकृतानां बन्धका
ओधवज्ज्ञातव्याः । तद्यथा गनुष्यमार्गणात्रये पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये त्रसमार्गणाद्वये भव्यमार्गणायां
च मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चतुर्दश जीवभेदा भवन्ति, मनोयोगौघ सत्यमनोयोगव्यवहारमनोयोगवचन-
योगौघ सत्यवचनयोग व्यवहारवचनयोग काययोगौघौदारिकाययोगशुक्ललेश्याऽऽहारकरूपासु दश-
मार्गणासु मिथ्यादृष्टिप्रमुखास्त्रयोदश जीवभेदा भवन्ति, अमत्यमनोयोगसत्यामत्यमनोयोगाऽसत्य-
वचनसत्यासत्यवचनयोगचक्षुरचक्षुःसंज्ञिरूपासु च सप्तमार्गणासु मिथ्यादृष्टिप्रभृतयो द्वादशजीवभेदा
भवन्ति । मार्गणासु चतुर्णामापुषां बन्धस्वामित्वस्य पृथग्बुद्ध्यमाणत्वेन तद्विरहितानां स्वप्रायोग्य-
प्रकृतीनां प्रकृतमार्गणास्वेषां जीवानां बन्धस्वामित्वमोचयद् विज्ञेयम्, बन्धकाभाववत्त्वं चैभ्य एव शेष-
जीवभेदेषु विज्ञेयम् । तथाहि—प्रागुक्तानां नरकत्रिकप्रमुखाणां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टयः
बन्धकाः, तद्व्यतिरिक्ता जीवभेदाः पुनस्तासां प्रकृतीनां बन्धका नैवेति, अनया रीत्याऽसत्य-
सकलजीवभेदेषु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकविचारो यथायोगं स्वयं विधातव्यः ।

ननु कथमत्र निष्प्रयोजनस्य स्वप्रायोग्यपदस्योपादानमिति चेदुच्यते अत्र मार्गणासु शुक्ल-
लेश्यायाः प्रवेशात् तदुपादानस्य सार्थकत्वमवसेयम्, तथाहि—शुक्ललेश्यामार्गणायां वर्त-
मानानां जीवानां नरकत्रिकविकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकतिर्यक्तिरकोद्योतस्थावरानुपैकेन्द्रियरूपाः षोडश-
प्रकृतयो बन्धे न सन्ति, तस्मात् शुक्ललेश्यामार्गणायां स्थितास्ते एता प्रकृतीर्न बध्नन्ति तद्व्यति-
रिक्तास्वासु मार्गणासु वर्तमानास्ते पुनर्बध्नन्ति, अतः स्वप्रायोग्यपदोपादानं सार्थकमिति ।

अथ मनुष्यमार्गणात्रय औदारिकमार्गणायां चौधवद् बन्धका भवद्भिरभिहिताः, ओघे तु मिश्र-
दृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवा नरद्विकौदारिकद्विकवर्जभनाराचसहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका
भणिताः, तदत्र मार्गणासु कथं युक्तं स्यात्, नहि मिश्रदृष्टयः सम्यग्दृष्टयो वा मनुष्या मनुष्य-
प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः, किन्तु ते देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेवेत्यतिप्रसक्तिं निराकुर्वन् “णवरि”
इत्यादिनाऽपवादमाह । मनुष्यौधमनुष्ययोनिमतीपर्याप्तमनुष्यौदारिकाययोगलक्षणासु चतसृषु
मार्गणासु मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्जभनाराचसहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका मिथ्यादृष्टि-
सास्वादनजीवा एव ज्ञातव्याः, न पुनर्मिश्रदृष्टिप्रभृतयो जीवभेदाः, देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव
बन्धविधायित्वात्तेषाम् । ननु “सायस्स सजोगंता” इत्यनेन सातवेदनीयस्य बन्धका ओघ-
प्ररूपणायां मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्य सयोगिगुणस्थाने वर्तमाना जीवा प्रतिपादिताः, शेषा
अयोगिनः सिद्धाश्चाऽबन्धकाः, तद्वि पञ्चमनःप्रभृतिमार्गणासु कथमुपपत्तिमालभेत, यतः प्रकृत-
मार्गणासु शेषजीवभेदा एव न प्राप्यन्ते इत्याशङ्कामपनेतुमाह—“सायस्स” इत्यादि, मनःसामान्य-
सत्यमनोऽसत्यमनःसत्यामत्यमनोऽसत्याऽमृषामनोवचनौघसत्यवचनासत्यवचनसत्यासत्यवचनाऽ-

सत्यामृषावचनकाययोगौधौदारिकाययोगचक्षुर्दर्शनाचन्द्रदर्शनशुक्ललेश्यासंख्याहारकमार्गणासु सात-
वेदनीयस्य बन्धकाः सर्वे जीवभेदा वर्तन्ते ॥ ३७-३९ ॥

अथ नरकादिमार्गणासु बन्धस्वामित्वमाह

गिरयपटमाहतिगिरयेतद्वाङ्मनःतदेवेसु ।

णपुमाईण चउण्ह मिच्छादिद्वी मुणेयव्वा ॥ ४० ॥

थोणद्धितिगाईण चउवीसाए ऽत्थि मिच्छसासाणा ।

तित्थस्स उ सगात्ती सव्वे होअन्ति सेसाण ॥ ४१ ॥

(प्रे०) ‘गिरय’ इत्यादि नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रमात्रालुकाप्रमालक्षणासु चतसृषु नरक-
मार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुकसहस्रारलक्षणासु च षट्सु देवमार्गणासु “णपुम मिच्छ
हुव छेव्हं” इति सङ्ग्रहगाथावयवेषूक्तानां नपुंसकवेदादीनां च नसृणां प्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टय
एव भवन्ति, न तु सास्वादनाः, एतत्प्रकृतिचतुष्कबन्धनिबन्धनमिथ्यात्वोदयस्याभावा-
त्तेषाम् । “थोणद्धितिगाईण” इत्यादि, “थोणद्धितिगाणिथी मज्झिमसंनयणअगिई णीअ ।
दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ” इतिसंग्रहगाथाशकलेषु भाषितानां स्त्यानद्वित्रिकप्रमु-
खाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृक्सास्वादनाः, न पुनः शेषा मिथ्यादृष्ट्यादयो जीवभेदाः,
तेष्वन्धनिबन्धनीभूताऽनन्तानुबन्धिकपायोदयाभावात्तेषाम् । “तित्थस्स” इत्यादि मार्गणा-
स्वासु तीर्थकरनामकर्मणो बन्धकाः सम्यग्दृष्टिजीवभेद एव भवति, एतत्प्रकृतिबन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्य-
यिकत्वात् । “सव्वे” इत्यादि, अत्रोक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारो जीव-
भेदा भवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानद्वित्रिकवर्जदर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विक-
मप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपा एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयः मनुष्य-
गतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकर्मणशरीरत्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वज्रधर्मनाराचसंहननं सम-
चतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्यानुपूर्वी शुभखगातिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामान्यातपो-
धोतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकमिति समतिः ॥ ४०-४१ ॥

साम्प्रतं शेषनरकभेदेषूत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं निरूपयन्नाह

गिरयव्व सेसगिरयेसु सपाउग्गाण णवरि चरिमम्मि ।

सग्गातिमिच्छादिद्वी सम्मत्ती णरदुगुच्चाण ॥ ४२ ॥

(प्रे०) “गिरयव्व” इत्यादि, पङ्कप्रमाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रमालक्षणासु शेषचतु-
र्नरकगतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वाणां प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं नरकौघवज्ज्ञातव्यम् । ननु
भवद्भिरत्र मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः सर्वे जीवभेदा उपदर्शिताः,
तत्र सप्तमनरकमार्गणायां नरद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य सर्वे जीवभेदाः कथं बन्धकाः स्युः,

ताश्च सप्ततिः शेषाः प्रकृतयोऽनन्तरोक्तदेवौघादिषु दर्शिता एव ज्ञेयाः । अनुत्तरदेवभेदेषु तथा शेषैर्न्द्रियकायभेदेषु बन्धस्वामित्वं “सासासु” इत्यादिनाऽग्रे वक्ष्यते ॥ ४७-४८ ॥

अथ योगमार्गणायाः शेषभेदेषु बन्धस्वामित्वं प्ररूपयन्नादावौदारिकमिश्रमार्गणायां तदभिधातुमाह

सासायणपञ्जता उरालमोसम्मि णरदुगाईण ।
गुणतीसाए तेरत्तणपुमाईणऽत्थि मिच्छत्तो ॥ ४९ ॥
सम्माविट्ठीया खलु हवति पचण्ह मुरदुगाईण ।
सायस्स हु ति सव्वे सम्मता सेसपयड्डीण ॥ ५० ॥

(प्रे०) “सासायण” इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणाया मिथ्यादृष्टिमास्वादनाः ‘णरदुगामुरलदुगवड्डीराणि ॥ यीणद्धितिगाणित्थी माव्वम्मसधयणभागिई णोम । दुह्मतिग अपसत्था खगई तिरि-यदुगामुज्जोओ’ । इतिसंग्रहगाथाशेषु प्रोक्तानामेकोनविंशन्मनुष्यद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धका विज्ञेयाः, शेषाः पुनर्नैव बन्धकाः । ‘तेरत्तणपुमाईण’ इत्यादि, णपुम मिच्छत्तो हण्ह छेवट्ठं यात्रायवेगिदा । विग-लाणि य सुहमतिग” इतिसंग्रहगाथाशकलेषु भणितानां नपुंसकवेदादीना त्रयोदशप्रकृतीना बन्धका मिथ्यादृष्टिजीवा ज्ञातव्याः, नान्ये । ‘सम्माविट्ठीया’ इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्ष-णस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका अविरतमभ्यगदर्शनिन एव ज्ञातव्याः, नापरे, अस्यां मार्गणायां वर्तमाना मिथ्यादृष्टिमास्वादाना देवचतुष्कं नैव वदन्ति, करणपर्याप्तानामेव मिथ्यादृष्टिमास्वादानां तद्वन्धा-र्हत्वेन तेषाञ्च प्रस्तुतमार्गणायामप्रवेशात्, अविरतसम्यग्दर्शा पुनः करणाऽपर्याप्तानामपि तद्वन्ध-भावादविरतसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणमिति । ‘सायस्स’ इत्यादि, सातवेदनीयाव्यप्रकृतेर्बन्धका मार्गणाया मस्यां वर्तमाना सर्वे जीवभेदा भवन्ति, अयमभिप्राय-औदारिकमिश्रकाययोगः कदा भवति तद् देवेन्द्रमूरि पूज्यपादनिर्मितस्य चतुर्थकर्मग्रन्थस्य स्वोपज्ञवृत्तितो विज्ञेयम्, तद्वृत्तिपाठस्त्वेवम्-औदारिकमिश्रः कर्म-णन सह तच्चाऽपर्याप्तावस्थाया केवलिसमुद्धातावस्थाया वा, उत्पत्तिदेशे हि पूर्वभवादन्तरमागतो जीव प्रथमस-मये कर्मणेनैव कवलेनाहारयति, तत परमौदारिकस्याप्यारब्धत्वाद् औदारिकेण कर्मणमिन्नेण यावत्तरीरस्य नि-ष्पत्ति, केवलिसमुद्धातवस्थायां द्वितीयपष्ठसप्तमसमयेषु कर्मणन मिश्रमौदारिकमिति अपर्याप्तावस्थायां केव-लिसमुद्धातावस्थाया च सातवेदनीयस्य बन्धो जायते, अत एव प्रोक्तम् ‘सायस्स हु ति सव्वे’ इति । ‘सम्मता’ इत्यादि, अभिहितव्यतिरिक्ताना शेषाणां चतुष्पष्टिप्रकृतीना बन्धका मिथ्यादृष्ट्यादय-स्त्रयो जीवभेदा भवन्ति । ‘सव्वह खलु’ इत्यादि वचनात् सयोगिकेवलिनः शेषप्रकृतीनामवन्ध-कत्वेन ग्राह्याः । ताश्चेमाः-शेषप्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्कमसातवेदनीयमनन्तानुव-न्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयवर्जा एकोनविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजाति-स्तैजसकर्मणशरीरे समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं शुभविहायोगतिस्त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्ति-नामत्रयमातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति चतुःषष्टिः ॥ ४९-५० ॥

अधुना कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं निरूपयितुमना आह

कमगाणाहारेषुं तेरसनपुमाइगाण मिच्छती ।

थीणद्धितिगाईणं चउवीसाएडत्थि मिच्छसासाणा ॥ ५१ ॥ (गीतिः)

सायस्स मिच्छसासणसम्मसजोगी हवेज्ज सम्मत्ती ।

पंचण्ह सुराईण सगाता सेसपयडोण ॥ ५२ ॥

(प्रे०) “कम्म” इत्यादि कर्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च “णपुम मिच्छ
हु ष्ठेवहु थावरायवेगिंदी । चिगलाणि य सुहमतिग” मितिसग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां नपुंस-
कवेदादीनां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादर्शनिनो वेदयितव्याः, शेषाः पुनर्न बन्धकाः ।
“थीणद्धितिगाईणं” इत्यादि, “थीणद्धितिगाणित्थी मच्चिमसचयणआगिई णीअ । दुह्मातिग अपसत्था खगई
तिरियदुगमुज्जोओ” ॥ इतिसंग्रहगाथावयवेषु कथितानां स्त्यानद्धितिकप्रमुखाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां
बन्धका मिथ्यादृष्टयः सास्वादनिनश्च द्रष्टव्याः, न पुनः शेषाः, अनन्तानुबन्धिकषायोदयाभावात्ते-
षाम् । ‘सायस्स’ इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धका मिथ्यादृष्टि-सास्वादानाऽविरतसम्यग्दृष्टिसयो-
गिकेवलिनो जीवभेदा भवन्ति, अत्र व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरितिन्यायेन कर्मणकाययोगमार्गणायां
सर्वेऽपि जीवभेदा सातवेदनीयस्य बन्धका प्राप्यन्ते, अनाहारकमार्गणायां त्वयोगिनः सिद्धाश्च तद्बन्ध-
कतया न प्राप्यन्ते । ‘सम्मत्ती’ इत्यादि, देवद्विकेवक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका
अविरतसम्यग्दृष्टय एवावगन्तव्याः, अन्ये पुनरबन्धकाः । ‘सम्मत्ता’ इत्यादि, मिथ्यादृष्टि सास्वादाना-
ऽविरतसम्यग्दर्शनिनो जीवभेदा उक्तेतरशेषनवपट्टिप्रकृतीनां बन्धका भवन्ति, न पुनः शेषजीवभेदाः
ताश्चैताः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्टकमसातवेदनीयमप्रत्याख्यानानावरणादिद्वादशकषायहास्यपट्टक-
पुरुषवेदरूपा एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयो मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकामर्गणशरीर-
त्रयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं प्रथमसंहननं प्रथमसंस्थानं वर्णचतुष्कं मनुष्यानुपूर्वी शुभविहायोगतिः त्रस-
दशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतजिननामवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकचेति ।
अत्रायं विशेषः-अविरतसम्यग्दृष्टिजीवेषु मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचसंहननरूपस्य प्रकृति-
पञ्चकस्य बन्धका देवनारका एव वर्तन्ते ॥ ५१-५२ ॥

सम्प्रति स्त्रीवेदादिमार्गणात्रय उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयन्नाह ।

थीपुरिसनपु सेसुं आवरणाईण बधगा सव्वे ।

णेया बावोसाए ओधव्व हवन्ति सेसाण ॥ ५३ ॥

(प्रे०) “थीपुरिस” इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलन-
चतुष्कं पुरुषवेदः सातवेदनीयं यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः
स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदरूपास्तिसृषु मार्गणासु वर्तमाना मिथ्यादृष्टिप्रभृतयः सर्वे जीवभेदा ज्ञातव्याः,
श्रेणावपि मार्गणाचरमसमयं यावत्तद्बन्धभावात् । ‘ओधव्व’ इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका अत्रौ-

धवद् भवन्ति, तद्यथा-नपुंसकवेदादीनां षोडशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृशो भवन्ति, स्थान-
द्वित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां च बन्धका मिथ्यादृक्सास्वादना भवन्तीत्येवं स्वधिया सर्वत्र
समालोचनीयम् ॥ ५३ ॥

इदानीमपगतवेदमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमभिधातुमाह-

सत्तरआवरणाईणोधव्व णवमगुणाइगाऽवेए ।

चउसंजलणाण कमा अणियट्ठीअ चउमागगआ ॥ ५४ ॥

(प्रे०) 'सत्तर' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सप्तदशानां ज्ञानावरणीयप्रभृतिप्रकृतीनां
बन्धका नवमप्रमुखगुणस्थानगता ओधवद् भवन्ति । अयमत्र भावः-इयमपगतवेदमार्गणा नवमगुण-
स्थानकद्वितीयभागादारभ्योपरितनगुणस्थानकेषु प्राप्यते, तत्र ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवल-
दर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिनामोर्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चक चेति षोडशप्रकृतीनां बन्धका नव-
मगुणस्थानकद्वितीयभागादारभ्य दशमगुणस्थानान्तं गता जीवभेदा भवन्ति, न पुनः परे । ननु भूलगाथायां
'नवम' शब्दस्योपादानेन नवमगुणस्थानकमेव ग्राह्यम्, कथं भवद्भिर्नवमगुणस्थानद्वितीयभागो
गृहीतः ? इति चेद्, उच्यते, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायमनुसृत्य नवमगुणस्थानद्वितीयभाग
एवात्र ग्राह्यः, तत आरभ्यैव गतवेदमार्गणायाः प्राप्यमाणत्वात् । सातवेदनीयस्य बन्धका इह नवम-
गुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य यावत्त्रयोदशमगुणस्थानं गता जीवभेदा विज्ञेयाः । 'चउसंजलणाण'
इत्यादि, चतुर्णां सञ्ज्वलनकषायमाणामनिवृत्तिनादरसम्परायाख्यनवमगुणस्थानस्य द्वितीयादिचतु-
र्भागगता जीवभेदाः क्रमेण बन्धका अवसेयाः, तद्यथा-नवमगुणस्थानद्वितीयभागगता जीवाः सञ्ज्व-
लनक्रोधस्य, तद्द्वितीयतृतीयभागगताः सञ्ज्वलनमानस्य, तद्द्वितीयतृतीयतूर्यभागगताः सञ्ज्व-
लनमायायाः, तद्द्वितीयतृतीयतूर्यपञ्चमभागगताश्च सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धका बोध्याः । हेतुरत्र पुन-
रोधवदनुसन्धेयः ॥ ५४ ॥

अथ चतसृषु लोभादिकषायमार्गणाद्वत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्रतिपादयितुमाह

लोहाइचउसु सत्तरगुणवीसावीसएगवीसाण ।

आवरणाईण कमा सव्वे ओधव्व सेसाणं ॥ ५५ ॥

(प्रे०) "लोहाइ" इत्यादि, लोभलक्षणकषायमार्गणायां वर्तमानाः सकलजीवभेदा ज्ञाना-
वरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं यशःकीर्तिरुर्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चक चेति
सप्तदशप्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, मायाख्यमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवभेदा उपरितनसप्तदशप्रकृतयः
सञ्ज्वलनलोभमायाऽभिधौ द्वौ कषायौ चेत्येतासां एकोनविंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः, मानकषायमार्ग-
णाया विद्यमानाः सकलजीवभेदा उपर्युक्तैकोनविंशतिप्रकृतयः सञ्ज्वलनमानश्चेति विंशतिप्रकृतीनां
बन्धकाः, क्रोधमार्गणायां च स्थिताः सर्वे जीवभेदा उपरितना विंशतिप्रकृतयः सञ्ज्वलनक्रोधश्चेति

प्रकृतीनामेकविंशतेर्वन्धका बोद्धव्याः, मार्गणाचरमसमर्थं यावद् सप्तदशादिप्रकृतीनां बन्धसङ्ख्यात् ।
 “सेसाणि” इत्यादि, उक्तभिन्नानां शेषप्रकृतीनां बन्धका ओघवद्विज्ञेयाः ॥ ५५ ॥

इदानीमक्रपायप्रभृतिमार्गणासु बन्धस्वामित्वं प्रदर्शयितुमाह

उवसंतखीणमोहसजोगी सायस्स बंधगा जेया ।

भकसाये अहखाये सयोगिणो जेवलदुगणि ॥ ५६ ॥

(प्रे०) “उवसंत” इत्यादि, उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकैवल्यलिनामानस्त्रयो जीवभेदा अक्रपायमार्गणायां यथाख्यातसंयममार्गणायां च सातवेदनीयस्य बन्धका ज्ञेयाः, केवलज्ञानमार्गणायां केवलदर्शनमार्गणायां च सयोगिकैवल्य एव सातवेदनीयस्य बन्धका वेदयितव्याः, न पुनरयोगिनः, यतो हि सातवेदनीयस्य बन्धोऽत्र योगहेतुको विद्यते, अयोगिनां शैलेश्यवस्थावत्त्वेन योगव्यापाराभावाच्च सातवेदनीयस्य बन्धो जायते । तथाऽक्रपायकेवलद्विकल्पे मार्गणात्रये सिद्धा अपि सातवेदनीयस्य बन्धका न सन्ति ॥ ५६ ॥

साम्प्रतं मत्यादिज्ञानत्रयावधिदर्शनोपशमसम्पत्त्वलक्षणासु पञ्चमार्गणास्तत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदिदर्शयिषुराह

सायस्स अत्थि सव्वे तिणाणऽवहिउवसमेसु सागत्ती ।

दुइआण कसायाणं सेसाणोयन्न णवरि सगगई ॥ ५७ ॥ (गीति)

(प्रे०) “सायस्स” इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धका मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनोपशमसम्पत्त्वरूपासु पञ्चसु मार्गणासु स्थिताः समस्तजीवभेदा भवन्ति । “सम्मत्ती” इत्यादि, मार्गणास्वासु वर्तमानोऽविरतसम्पद्दृष्टिजीवभेद एवाऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कस्य बन्धकः, नापरे, तद्वन्धनिबन्धनभूततदुदयाभावात् । “सेसाणि” इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धका एतन्मार्गणास्वोद्यवदवसातव्याः । तत्राऽपि चतुर्थजीवभेदमादौ कृत्वा बोध्याः, नाद्यभेदत्रयमाश्रित्य, मार्गणास्वासु तस्यावर्तमानत्वादित्येतद् ‘णवरि’ इत्यादिना दर्शयति, तच्च सुगमम् । अत्राऽप्युपशमसम्पत्त्वमार्गणायां जिननागो बन्धका मनुष्या देवाश्चैव, न तु नारका, इति ॥ ५७ ॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायास्तत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधातुकाम आह—

मणणाणम्मि पमत्ता छअसायाईण अत्थि सायस्स ।

सव्वे अवसेसाण ओघव्व परं पमत्ताई ॥ ५८ ॥

(प्रे०) “मणणाणम्मि” इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां प्रमत्तयतयो असातवेदनीयशोकमोहनीयाऽरतिमोहनीयाऽस्थिरनामाऽशुमानामाऽयशःकीर्तिनामलक्षणानां पण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः सन्ति, नान्ये, तेषु तद्वन्धयोग्यपरिणामाभावात् । “सायस्स” इत्यादि, मार्गणायामस्यां सातवे-

दनीयस्य बन्धकाः सर्वे प्रमत्तयतिप्रभृतयो जीवभेदा विद्यन्ते । “अव सेसाणं” इत्यादि, ज्ञाना-
वरणीयादिशेषप्रकृतीना बन्धकाः प्रमत्तसंयतजीवभेदमादौ कृत्वा मार्गणायामस्याभोगवन्प्रत्येतव्याः
॥ ५८ ॥

इदानीमज्ञानत्रयमार्गणासूत्रप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह

तीसु अण्णाणेषु पचदसह णुमाइगाणाऽत्थि ।

मिच्छादिद्वी सव्वे सेसाण अट्ठणवतीए ॥ ५९ ॥

(प्रे०) “तीसु” इत्यादि, मत्तज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाख्यासु तिसृषु मार्गणासु “णुम
मिच्छ हुंड छेवडं” थावरायवेगिनी । विगलाणि च सुद्धमतिग तह गिरयदुग” इति संग्रहगाथावयवेषु
प्रतिपादितानां नपुंसकवेदादिपञ्चदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः सन्ति, नान्ये, मिथ्यात्वोद-
याभावात् । “सव्वे” इत्यादि, उक्तावशेषप्रकृतीनामएनवतेर्बन्धका एतन्मार्गणास्थाः सर्वे जीवभेदा
ज्ञेयाः, मिथ्यादृष्टिमास्वादना इत्यर्थः । तांश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं
वेदनीयद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदवर्जशेषाश्चतुर्विंशतिमोहनीयप्रकृतयो नरकगतिवर्जशेष-
गतित्रयं पञ्चेन्द्रियजातिगहारकशरीरवर्जशरीरचतुष्कमाहारकाङ्गोपाङ्गवर्जाङ्गोपाङ्गद्वयं प्रथमादिसंहन-
नपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं वर्णचतुष्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं त्रसदशकमस्थिर-
पट्कमातपजिननामवर्जप्रत्येकपट्कं गोत्रद्वयमन्तरीयपञ्चकं चेति ॥ ५९ ॥

अथ संयमौघमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्ररूपयिषुराह

छप्ह असायाईण विण्णेया सयमे पमत्तजई ।

ओधव्व जाणियव्वा सेसाण पर पमत्ताई ॥ ६० ॥

(प्रे०) “छप्ह” इत्यादि, असातवेदनीयशोकमोहनीयाऽरतिमोहनीयाऽस्थिरनामा-
शुभनामाऽयशःकीर्तिनामरूपस्य प्रकृतिपट्कस्य बन्धकः संयमौघमार्गणायाम् प्रमत्तयतिरेव
भवति, नापरे पुनरप्रमत्तादयः, यतो हि ते तत्प्रायोग्यपरिणामाभाववन्तः सन्ति । “ओधव्व”
इत्यादि मार्गणायामतस्यां शेषप्रकृतीना बन्धकाः प्रमत्तसंयतजीवभेदमादौ कृत्वा ओघवद् वेदि-
तव्याः ॥ ६० ॥

अथ सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमुपदर्शयति ।

सामाइअछेएसुं आवरणाईण वधगा सव्वे ।

अट्टारसह णेया छअसायाईण उ पमत्ता ॥ ६१ ॥

(प्रे०) “सामाइअ” इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसयमाख्ययोर्मार्गणयोः स्थिताः
प्रमत्तादयः ममस्तजीवभेदा अष्टादशानां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीयमंज्वलनलोभ-
यशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चरूपाणां प्रकृतीना बन्धका विद्यन्ते । “छअसायाईण” इत्यादि,
असातवेदनीयप्रभृतीनां षण्णां प्रकृतीना बन्धका अत्र प्रमत्तयतयो बोद्धव्याः, नाप्रमत्तादयः ॥ ६१ ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणादये शेषप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं प्रतिपादयन् परिहार-
संयममार्गणायामपि तत्प्रतिपादयितुमाह

सेसाण सजमच्च य परिहारे बंधगापमत्तजई ।

छण्ह असायाईण सेसाण होन्ति सव्वेवि ॥ ६२ ॥

(प्रे०) “सेसाण” इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणादये शेषप्रकृतीनां
बन्धकाः संयममार्गणावज्ञातव्याः । ते च तत एवाऽवधार्याः । परमत्राऽयं विशेषः संयमौघमार्गणायां
यथा शेषप्रकृतीनामबन्धकाः प्राप्यन्ते तथैव मार्गणाद्वयेऽप्यस्मिन् ते प्राप्यन्ते, परं तेऽत्रानिवृति-
बादरमम्परायगुणस्थानपर्यवसाना एव ग्राह्याः, अग्रे मार्गणाद्वयस्याऽस्य विच्छेदात् । “परिहारे”
इत्यादि परिहारसंयममार्गणायां पण्णामसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धकाः प्रमत्तयतयो भवन्ति,
न पुनः शेषाः । “सेसाणं” इत्यादि शेषप्रकृतीनां बन्धका अत्र प्रमत्ताऽप्रमत्तयतयो भवन्ति ।
केवलमाहारकद्विकम्याऽप्रमत्तसंयता एव इत्यपि बोध्यम् ॥ ६२ ॥

साम्प्रतमसंयममार्गणायां तत्समत्वेन चाशुभलेख्यात्रये च बन्धस्वामित्वं प्ररूपयति

अजयासुहलेसासुं , थोराद्धितिगाइअउणवत्ताए ।

ओधव्व हुन्ति सम्मा , जिणरस सव्वेवि सेसाणं ॥ ६३ ॥

(प्रे०) “अजय” इत्यादि असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु मार्गणासु च
“थीणद्धितिगाणिथी मज्झिमसधयणमागई णीअं । दुहगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगसुब्बो ॥ ११ ॥ पुम मिच्छं
हुं छेवट्टं थावरायवेगिदी । विगल्लणि य सुहमतिग तह णिरयदुग” इति गाथाशकलेषूक्तानां स्त्या-
नद्धित्रिकादीनामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धका ओधवदधिगम्याः, तदेवम् नपुंसकवेदादीनां
पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयः, स्त्यानद्धित्रिकादीनां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धका मिथ्या-
दृष्टिसास्वादनाश्च । ‘सम्मा’ इत्यादि, जिननागो बन्धका अविरतसम्यग्दश एव विज्ञेयाः, जिननागो
बन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वात्, देशविरतादीनां प्रस्तुतमार्गणासु विरहाच्च । “सव्वेवि” इत्यादि
शेषप्रकृतीनां बन्धकाः प्रकृतमार्गणासु वर्तमानाः सर्वे जीवभेदां विज्ञेयाः, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं
दर्शनावरणपट्कं वेदनीयद्विकमनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्रीवेदनपुंसकवेदवर्जा एकोन-
विंशतिर्भोहनीयप्रकृतयो देवमनुष्यगतिद्वयं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकवैक्रियतैजसकर्मणशरीरचतुष्क-
मौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे वज्रपेभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं देवमनुष्यानुपूर्व्यौ
शुभखगतिः त्रयदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तिनामान्यातपोधोतजिनवर्जप्रत्येकप्रकृतिपञ्चकमुच्चैर्गोत्र-
मन्तरायपञ्चकं चेति चतुस्सप्ततिः शेषप्रकृतयः ॥ ६३ ॥

इदानीं तेजःपञ्चलेश्यामार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वं प्रतिपादयन्माह

तेऊए पउमाए कमसो पण्णाससत्तचत्ताणं ।

ओधव्व जाणियव्वा पयडीण असायमाईणं ॥ ६४ ॥

जेया अपमत्तजई आहारदुगस्स अपमत्तता ।
सम्माउ जिणस्स तहा सेसाणं बंधगा सव्वे ॥ ६५ ॥

(प्रे०) “तेऊए” इत्यादि, तेजोलेइयामार्गणायाम् “असायअरइसोगअथिरदुगअजसं । तइमदुइआ कसाया णरदुगसुरलदुगवइराणि ॥ थोणद्धिनिगाणित्थी मज्झिमसंघयणआगिई णीअं । दुइगतिगं अपसत्था खगई तिरियदुगमुज्जोओ ॥ णपुम मिच्छ डुड छेवड थावरायवेगिदी ।” इतिसंग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां पञ्चाशदसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धका ओधवत् विज्ञातव्याः । पञ्चलेख्यमार्गणायां च स्थावरात-
पैकेन्द्रियलक्षण प्रकृतित्रयं परिहृत्योपरितनाना सप्तचत्वारिंशदसातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धका ओधवदवसातव्याः । ‘जेया’ इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणाद्वये वर्तमाना अप्रमत्तसंयता एवाहारकद्विकस्य बन्धस्वामित्वेन प्राप्यन्ते, प्रस्तुतमार्गणायामपूर्वकरणादिगुणस्थानाभावात्, जिननामकर्मणश्चाऽविरत-
सम्यग्दृष्टिगुणस्थानकादाररयाप्रमत्तगुणस्थानकं यावद् वर्तमानाश्चत्वारो जीवभेदा बन्धस्वामितया प्राप्यन्ते । ‘तहा’ इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका मार्गणाद्वयेऽरिगन् विद्यमानाः सर्वे जीवभेदा भवन्ति, शेषाश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकंदर्शनावरणपट्कं सातवेदनीयसंज्वलनचतुष्कं शोकारतिवर्जहास्य-
चतुष्कं पुरुषवेदो देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियतैजसकर्मणशरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतु-
रक्षसंस्थान वर्णचतुष्कं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसदशकं जिननामातपोद्योतवर्जप्रत्येकपञ्चकमुच्चैर्गोत्र-
मन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥ ६४—६५ ॥

एतर्हि सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमाह—

दुइअकसायाईण णवण्ह सम्मज्जइएसु सम्मत्ती ।
ओधव्व जाणियव्वा सेसाण णवरि सम्माई ॥ ६६ ॥

(प्रे०) “दुइअ” इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वाख्ययोर्मार्गणयोः “दुइआ कसाया णरदुगसुरलदुगवइराणि” इतिसंग्रहगाथावयवेषूक्तानामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कादीनां नवानां प्रकृ-
तीनां बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति, नापरे देशविरतप्रभृतयः, यतो हि ते देवप्रायोग्या एव प्रकृतीर्वधन्ति, तथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कोदयाभावेनाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं ते न बध्नन्ति, अत्राऽपि मनुष्यपञ्चकस्य तु देवनारका एव बन्धका बोध्याः, न तिर्यग्मनुष्याः, तेषां देवप्रायोग्य-
प्रकृतीनामेव बन्धकत्वात् । “ओधव्व” इत्यादि उक्तनवप्रकृत्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां ज्ञानावरणी-
यप्रभृतीनां पट्पष्टैर्बन्धका ओधवत्, नवरमत्र सम्यग्दृष्टिजीवभेदमादौ कृत्वा बन्धका ज्ञेयाः, अबन्धकाः पुनरोधवद् यथामंभवं ज्ञातव्याः ॥ ६६ ॥

अधुना क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्वामित्वमभिधातुवना आह

छण्ह असायाईण विण्णेया वेअगे पमत्तता ।

दुइअकसायाईण णवण्ह होअन्ति सम्मत्ती ॥ ६७ ॥

चउत्तइअकसायाणं सम्गादिद्वी य देसविरई य ।

अपमत्तसंयमी खलु आहारदुगारस बोद्धव्वा ॥ ६८ ॥

(प्रे०) “छपु” इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां ‘असायअरइसोगअथिरदुगअजसं’ इतिमंग्रहगाथायवेधूक्तानामसातवेदनीयादीनां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकारचतुर्थपञ्चमपष्ठगुणस्थान-
स्थायिनो जीवभेदा भवन्ति, न पुनरन्येऽप्रमत्तसंयमिनः, तद्वन्धप्रायोग्यपरिणामाभावात्तेषाम् ।
“दुइअ” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्जर्षभनाराचसंहननरूपाणां
नवानां प्रकृतीनां बन्धका अविरतसम्यग्दृष्टय एव भवन्ति, नान्ये देशविरतप्रमुखाः, देवगति-
प्रायोग्यप्रकृतिवन्धकत्वात्तेषाम्, अप्रत्याख्यानावरणोदयाभावाच्च । अत्र मार्गणायां मनुष्यद्विकादि-
प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका देवनारका एवावसातव्याः, न तु तिर्यग्मनुष्याः, यतो हि ते देवद्विकादि-
प्रकृतीर्वधन्ति । “चउत्तइय” इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका अविरतसम्यग्दृग्-
देशविरतजीवाः सन्ति, नेतरे प्रमत्तादयः, प्रत्याख्यानावरणोदयाभावात् । “अपमत्तसंयमी”
इत्यादि अप्रमत्तमंयमिन एवाहारिकद्विकस्य बन्धका बोद्धव्याः, नापरे सम्यग्दृष्टिप्रभृतयः, अप्रमत्त-
संयमस्य तेषु विरहात् ॥ ६७-६८ ॥

नाम्प्रतं वेदकमम्यक्त्वमार्गणायां शेषाणां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वमुक्तातिरिक्त-
शेषमार्गणासु बन्धप्रायोग्यमर्वासाष्टुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं च निरूपयितुमना आह—

सवेऽत्थि बधगा खलु छप्पण्णासाअ सेसपयडीण ।

सेसासुं सवेसि सप्पाउग्गाण सवेऽत्थि ॥ ६९ ॥

(प्रे०) “सवे” इत्यादि, वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवभेदा अभिहितव्यति-
रिक्तानां शेषषट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धकाः सन्ति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शना-
वरणपटकं सातवेदनीयं संज्वलनचतुष्कं हास्यरतिमयजुगुप्साः पुरुषवेदो देवगतिः पञ्चेन्द्रियजाति
वैक्रियतैजसकर्मणशरीरत्रयं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं वर्णचतुष्कं देवानुपूर्वा सुखगति-
स्त्रयदशकमातपोद्योतवर्जप्रत्येकपटकमुच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति । “सेसासु” इत्यादि उक्त-
भिन्नासु त्रिसप्ततिशेषमार्गणासु स्थिताः सर्वे जीवाः सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका भवन्ति,
एकस्यैव स्वप्रायोग्यगुणस्थानकस्यात्रत्येषु जीवेषु भावात् । ताश्चेताः शेषमार्गणाः—अपर्याप्ततिर्यक्-
पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्यपञ्चानुत्तररूपाः सप्तगतिमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियैवपर्याप्तपञ्चेन्द्रियवर्जसप्तदशे-
न्द्रियमार्गणाः, त्रसौधपर्याप्तत्रयवर्जचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, आहारकतन्निश्रमार्गणे, देशविरतसूक्ष्म-
सम्परायमिथ्यात्वमिश्रसास्वादनाभव्यासंज्ञिमार्गणाश्चेति । शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यगुणस्थानकं
दर्श्यते—पञ्चानुत्तरमार्गणासु चतुर्थम्, आहारकाहारकमिश्रमार्गणयोः षष्ठम्, देशविरतमार्गणायां
पञ्चमम्, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां दशमम्, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां तृतीयम्, सास्वादन-
मार्गणायां द्वितीयम्, एतद्व्यतिरिक्तशेषद्वापष्टिमार्गणासु तु प्रथममेव गुणस्थानकं वर्तते ॥ ६९ ॥

अथ शत्यादिमार्गणास्वायुष्कर्मणो बन्धस्वामित्वमभिदधन्नादौ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु निरु-
पयति

दुपणिदियतसपणमणवयकायतिवेअचउकसायेसुं ।
चक्खुअचक्खुसु, तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥ ७० ॥
आऊण चउण्ह तहा तिण्हं आऊण तेउपउमासुं ।
सुपणाए आऊणं वोण्ह ओधव्व विण्णेया ॥ ७१ ॥

(प्रे०) “दुपणिदिय” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-प्रसौधपर्याप्तप्रसमनःसामान्य-
सत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनोयोगवचनौघसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्यवच-
नाऽसत्यामृषावचनयोगकाययोगौघस्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभचक्षुरचक्षुर्भयसंशयाहा-
रकलक्षणासु सप्तविंशतिमार्गणासु नरकतिर्यग्मनुजामरायुषां बन्धका ओघवदवसेयाः, तद्यथाः-नरकायुष्क-
स्य मिथ्यात्वगुणस्थानस्थाः, मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानस्थाः तिर्यगायुष्कस्य, मिश्रगुणस्था-
नकर्जप्रथमादिचतुर्थगुणस्थानगता मनुष्यायुष्कस्य, देवायुष्कस्य च तृतीयगुणस्थानवर्जप्रथमादि-
सप्तमान्तगुणस्थानस्थायिनो बन्धका भवन्ति । “तहा तिण्हं” इत्यादि, तथा तेजोलेख्यापञ्चलेख्या-
लक्षणे मार्गणाद्वये नरकायुर्वर्जितायुष्कत्रिकस्य बन्धका ओघवद् विज्ञेया, तद्यथा-तिर्यगायुषो बन्धका
मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानस्थाः, मनुष्यायुष्कस्य बन्धका मिश्रगुणस्थानवर्जप्रथमाद्वितीयतूर्यगुण-
स्थानस्थाः, देवायुष्कस्य च तृतीयगुणस्थानवर्जप्रथमोदिसप्तमान्तगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदा बन्धका
षोडश्याः । तत्रापीदं बोध्यम्-तेजःपञ्चलेख्यावर्तिनस्तिर्यग्नराः सुरायुष्कस्यैव बन्धका भवन्ति,
देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वादेवाम्, तथा लेख्याद्वयेऽस्मिन् वर्तमानाः सुरा एव तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृति-
बन्धकत्वेन तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धस्वामिनो भवन्ति, नान्ये । नरकायुः कृष्णाद्यशुभलेख्याप्रत्य-
यिकत्वेन नैतन्मार्गणागतैरसुमद्भिर्वध्यते, अत एव मार्गणयोरनयोस्तद्बन्धस्वामित्ववर्जनं कृतम् ।
“सुक्काए” इत्यादि. शुक्ललेख्यामार्गणायां सुरनरायुष्कयोर्बन्धका ओघवज्ज्ञेयाः, त एवम्-मनुष्या-
युष्कस्य मिश्रगुणस्थानमृते प्रथमादिचतुर्थगुणस्थानवर्तिनो जीवभेदाः बन्धकाः, ते च देवा एव, मिश्र-
गुणस्थानकंच विना प्रथमान्तदिसप्तमान्तगुणस्थानस्थायिनो जीवभेदाः सुरायुष्कस्य बन्धका भवन्ति,
ते च मनुष्या एव, अत्र तिरश्चामनिर्देशहेतुस्तु भूलप्रकृतिबन्धवृत्तौ दर्शितोऽतस्ततोऽवधार्यः ॥ ७०-७१ ॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु प्रकृतमाह--

णिरयपढमाडछणिरयदेवसहस्सारअतविउवेसुं ।
ओधव्व बधगा खलु तिरियणराऊण विण्णेया ॥ ७२ ॥

(प्रे०) “णिरय” इत्यादि, नरकौघरत्नप्रमाशर्कराप्रमातालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमः-
प्रभादेवौघमवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कर्मौघभेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रप्रखलान्तकशुकसहस्सारवैक्रियकाययोग-
रूपामु विंशतिमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धका ओघवद् वेदायतव्याः, तदित्यम्-तिर्यगायुष्कस्य

मिथ्यात्वसास्वादनादिगुणस्थानगतौ जीवभेदौ बन्धकौ स्तः, मिथ्यात्वसास्वादनविरतिसम्यग्दृष्टिगुण-
स्थानगताश्च जीवभेदा मनुष्यायुष्कस्य बन्धका भवन्ति ॥ ७२ ॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायामौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां च प्रकृतमुच्यते—

तिरियाउगरसो जेया मिच्छती बंधगा तमतभाए ।

ओरालभोसजोगे, तिरियणराऊभ मिच्छती ॥ ७३ ॥

(प्रे०) “तिरियाउगरस” इत्यादि, तमस्तमानामसप्तमनरकमार्गणायां तिर्यगायुषो बन्धको
मिथ्यादृष्टिजीवभेद एव भवति, नान्ये सास्वादनप्रभृतयो जीवभेदाः, इह तद्वन्धस्य मिथ्यात्व-
प्रत्ययिकत्वात् । “ओराल” इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां तिर्यग्नरायुषोर्बन्धका
मिथ्यादृष्टि एव ज्ञातव्याः, नापरे, यतो मार्गणायामस्यां लब्ध्यपर्याप्तजीवा एवायुर्वध्नन्ति, तेषां
चाद्यमेव गुणस्थानं भवति ॥ ७३ ॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासु तदाह

तिरिये पणिदियतिरियतिगगि गिरयाउगरस्स मिच्छती ।

तिरियमणुस्साऊणं जेया मिच्छसिसासाणा ॥ ७४ ॥

देवाउगरस जेया भोसूणो एवमेव बोद्धव्वा ।

तिणवरलेसुं णवर ह्वन्ति सुराउस्स ओधव्व ॥ ७५ ॥

(प्रे०) “तिरिये” इत्यादि, तिर्यगोघातिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-
निमतीलक्षणासु चतुस्तिर्यग्गतिमार्गणासु नरकायुष्कस्य बन्धका मिथ्यादर्शनिन एव बोध्याः, नेतरे
सास्वादनप्रमुखाः; तद्वन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वेन सास्वादनादिगुणस्थानकेषु तस्य विरहात् ।
“तिरिये” इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोर्मिथ्यादृष्टिसास्वादनौ जीवभेदौ बन्धकौ भवतः, नान्ये
मिश्रदृष्टिप्रभृतयः, यतो मिश्रगुणस्थानके जीवा आयुर्वन्धमेव न कुर्वन्ति, तत्प्रायोग्याध्य-
वसायाभावात्, तथाऽत्र चतुर्थादिगुणस्थानकेषु देवायुष एव बन्धोऽस्ति । “देवाउगरस्स”
इत्यादि, देवायुष्कस्य मिश्रदृष्टिजीवभेदमृते सर्वे जीवभेदा बन्धका विज्ञेयाः, मिश्रगुणस्था-
नक आयुर्मात्रस्य बन्धाभावेनायुर्वन्धस्वामित्वविवक्षायां मिश्रदृष्टिजीवभेदवर्जनं सर्वत्र ज्ञातव्यम् ।
“एवमेव” इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुष्यौदारिककाययोगरूपेषु चतुर्षु मार्गणास्थानेष्व-
युष्कर्मणां बन्धकास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावद् विज्ञातव्याः । ननु सर्वेषामायुष्कर्मणामत्र बन्धका
भवाद्भस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणावदतिदिष्टाः, तदनुसारेण देवायुष्कस्य बन्धका मिश्रदृष्टिजीवभेदमृते
मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्चत्वारो जीवभेदा एव प्राप्यन्ते नाधिकाः, परमत्रत्यमार्गणाचतुष्के प्रमत्ताऽप्रमत्त-
जीवभेदावपि देवायुर्वन्धकत्वेनाऽधिकृतया प्राप्येते, अतो भवतामेतादृगतिदेशोऽप्याप्तिप्रस्त इत्या-
रेकामपहर्तुं ‘णवर’ मित्यादिना विशेषमुपदर्शयति—‘णवर’ इत्यादि, देवायुष्कस्य बन्धका औघ-

वदवसातव्याः, एवमोघातिदेशानुसारेण देवायुर्बन्धकत्वेन प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयतजीवभेदावपि संगृहीतौ भवतः, ओघे मिश्रदृष्टिर्वर्जमिथ्यादृष्टिप्रमुखाप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदानां तद्वन्धकत्वेन प्रतिपादि-
तत्वात् । शेषजीवभेदाः पुनरबन्धका विज्ञातव्याः ॥ ७४-७५ ॥

अथाऽऽनतादिमार्गणासु प्रकृतमाह

तेरससु णराउस्स य भोसूणा वधगाणयाईसुं ।

अण्णाणतिगे मिच्छोणिरयाउस्स इयराण सव्वेऽत्थि ॥ ७६ ॥ (गीति)

(प्रे०) “तेरससु” इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदशमार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका मिश्रदृष्टिजीवभेद विना शेषत्रिजीवभेदा विज्ञेयाः, आसु मार्गणासु वर्तमानानां जीवानां मनुष्येभ्योत्पादेन केवलं मनुष्यायुष्कस्यैव बध्यमानत्वात् । मिश्रदृष्टिजीवभेदवर्जनं तत्रायु-
र्वन्धाभावात् । “अण्णाणतिगे” इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणात्रये नरकायुष्कस्य
बन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदोऽस्ति, नरकायुष्कबन्धस्य मिथ्यात्वप्रत्ययिकत्वात् । “इयराण”
इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यगायुषां बन्धकाः प्रकृतमार्गणागताः सर्वे जीवभेदा बोद्धव्याः, मिथ्यादृष्टि-
सास्वादनौ जीवभेदावित्यर्थः, मार्गणास्वासु प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोरेव सत्त्वात्, तत्र च त्रयाणा-
मप्यायुषां बन्धसद्भावात् ॥ ७६ ॥

इदानीं मतिज्ञानावरणादिमार्गणास्वायुषो बन्धस्वामित्वमाह—

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मल्लइअवेअगेसु सम्मत्ती ।

मणुसाउगस्स जेया देवाउस्स अपमत्तता ॥ ७७ ॥

(प्रे०) “णाणतिगे” इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्यौघक्षायि-
कमस्यक्तवक्ष्योपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धकोऽविरतसम्यग्दृष्टि-
जीवभेदोऽस्ति, न तु देशविरतादयः, तेषां देवायुष्कस्यैव बन्धाविधायित्वात् । व्याख्यानतो विशेष-
प्रतिपत्तिरिति न्यायेनाऽत्राऽयं विशेषोऽवसातव्यः, मार्गणास्वासु तूर्यगुणस्थानस्थिता देवनारका एव
मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाः, नान्ये मनुष्यादयः, तेषां देवायुष एव बन्धविधायित्वात् । “देवाउस्स”
इत्यादि, देवायुष्कस्य सम्यग्दृष्टिप्रमुखाऽप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदा बन्धका बोद्धव्याः, शेषाः
पुनरबन्धकाः ॥ ७७ ॥

इदानीं मनःपयवादिमार्गणासु तथा शेषमार्गणासु चाऽऽयुषो बन्धस्वामित्वमुच्यते

देवाउगस्स जेया मणणाणे सयमम्मि सामइए ।

छेओवट्ठावणिण पमत्ताजइअप्पमत्ताजई ॥ ७८ ॥

अजयासुहलेसासु अत्थि णरसुराउगाण भोसूणा ।

दोण्होघन्वियरसु ससजोगाऊण सव्वेऽत्थि ॥ ७९ ॥

(प्रे०) “देवाउषस्स” इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्ग-
णासु सुरायुष्कस्य बन्धकौ प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयतजीवभेदौ भवतः, नाऽपरेऽपूर्वकरणप्रभृतयः, अप्रम-
त्तगुणस्थान एव तद्वन्धविच्छेदात् । “अजया” इत्यादि, अविरतमार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्या-
रूपासु तिसृषु कुलेश्यामार्गणासु च मनुष्यदेवायुष्कयोर्वन्धका मिश्रदृष्टिर्जाःशेषा मिथ्यादृष्टिप्रमु-
खाः सर्वे जीवभेदा ज्ञातव्याः । “जोण्होचन्व” तिर्यग्नरकायुष्कयोर्वन्धका ओधवदवसेयाः,
तद्यथा-तिर्यगायुष्कस्य मिथ्यादृष्टिमास्वादनी जीवभेदौ, नरकायुष्कस्य च मिथ्यादृष्टिजीवभेद इति ।
हेतुरत्रोद्यतोऽनुमन्धेयः । “रयरासु” मित्यादि, उक्तव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्क-
स्य बन्धकास्तद्गतसर्वजीवभेदा भवन्ति, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्त-
मनुष्यमार्गणाद्वयम्, पञ्चानुत्तरमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियवर्जाःशेषाः सप्तदशेन्द्रिय-
मार्गणाः, त्रयोधपर्याप्तत्रयवर्जाःशेषाश्चत्वारिंशत्कायमार्गणाः, आहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणा-
द्वयम्, परिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयममार्गणे, सास्त्रादनसम्यक्त्वमिथ्यात्वमार्गणे, असम्यमार्गणाः
असंज्ञिमार्गणा चेति द्वाप्ततिः ॥ ७८-७९ ॥

भणितमुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्वामित्वम्, तदवमरे च ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका अपि “सञ्च खलु
ध्रुवबन्धीण अबधगा सेमा” इत्यनेन प्रतिपादिताः, । एतर्हि पुनरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका आदा-
बोधतो भण्यन्ते-

वज्जिअ सजोगिअंता, सायस्स अबंधगाऽपमत्ताई ।
हरारईणं वज्जिअ अपमत्तअपुब्बकरणा य ॥ ८० ॥
पुरिसस्स य मोसाई विणाऽणियद्विबहुसल्लमागता ।
सुरविउववुगाण विणा देसाइअपुब्बसल्लमागता ॥ ८१ ॥ (गीतिः)
वज्जिअ सासाणाई अपुब्बकरणबहुसंल्लमागता ।
जेया पच्चिवियपरधाऊसासतसजउगाणं ॥ ८२ ॥
सुहआगिइल्लगइसुहगतिगाण मिस्साइगा अपुब्बस्स ।
बहुसल्लसता विण अपमत्ताई यिरसुहाणं ॥ ८३ ॥
वज्जिअ अपमत्ताई सुहमंता खलु जसस्स उच्चस्स ।
मोसाई सेसाण गुणवण्णाए अबधगा सञ्चे ॥ ८४ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “वज्जिअ” इत्यादि, सातवेदनीयस्याऽबन्धका अप्रमत्तादिसयोगिपर्यन्तान् जीव-
भेदान् वर्जयित्वा शेषा जीवभेदा ज्ञातव्याः । इदमुक्तं भवति-अध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकोऽत्र
द्विधा प्राप्यते, (१) बन्धप्रायोग्यगुणस्थानके विवक्षिताऽध्रुवबन्धिप्रकृतेरबन्धकस्तु तत्प्रतिपक्षप्रकृति-
बन्धकतयाऽथवा प्रतिपक्षसहभाविप्रकृतिबन्धकतया प्राप्यते (२) ऊर्ध्वगुणस्थानकेषु तु विवक्षितप्रकृ-
तेरबन्धकस्तद्वन्धविच्छेदात्प्राप्यते । एवमत्र सातवेदनीयस्याऽबन्धका अप्रमत्तादिसयोगिपर्यन्तजीव-
भेदान् विहाय शेषा मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तसंयतपर्यन्तजीवभेदा अयोगिनः सिद्धाश्च प्राप्यन्ते, तत्र

मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदास्तत्प्रतिपक्षाऽसातवेदनीयबन्धका, तथाऽयोगिनः सिद्धास्तु सर्वथैव वेदनीयकर्मबन्धविच्छेदात्सातवेदनीयस्याबन्धका विज्ञेयाः । अप्रमत्तादिगयोगिपर्यन्तजीवभेदवर्जनं तत्र सातवेदनीयस्यैव सततं तैवेध्यमानत्वात् । “अस्सरईण” मिथ्यादि, हाम्परतिमोदनीयद्वयस्याऽबन्धका अप्रमत्तसप्तगुणस्थानाऽपूर्वकरणगुणस्थानगतजीवभेदाः वर्जयित्वा शेषा जीवभेदा वर्तन्ते, तत्र मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदास्तत्प्रतिपक्षशोकाऽगतिप्रकृतिबन्धकास्तदबन्धकतया प्राप्यन्ते, अनिवृत्तिवादरसम्परायप्रमुखा जीवभेदाश्च तद्वन्धविच्छेदात्तदबन्धकतया प्राप्यन्ते । “पुरिसस्स” इत्यादि, मिश्राद्यनिवृत्तिगुणस्थानसंख्यातमहभागपर्यन्तगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा शेषाः पुरुषवेदस्याऽबन्धका विज्ञातव्याः, तत्र मिथ्यादृक्सास्वादनी तद्विपक्षवेदप्रकृतिबन्धकत्वेन तदबन्धका स्तः, अनिवृत्तिगुणस्थानशेषसंख्यातभागे वर्तमानाः सूक्ष्मसम्परायादिगुणस्थानगतजीवभेदाश्च तद्वन्धविच्छेदात्तदबन्धकाः, एवं सर्वत्र विपक्षप्रकृतिबन्धप्रयुक्तं तद्वन्धविच्छेदप्रयुक्तं वा तत्तत्प्रकृत्यबन्धकत्वं विज्ञेयम् । “सुरविउवदुयाण” इत्यादि, सुरद्विर्ग्वक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽबन्धका देशमिताद्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्यातमहभागपर्यन्तगतान् जीवभेदान् विहाय शेषाः मिथ्यादृगादिचतुर्जीवभेदाः, अपूर्वकरणशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिवादरसम्परायप्रमुखाः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । “वज्जिअ” इत्यादि पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोन्छ्वात्रसमादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां सप्तप्रकृतीनामबन्धकाःसास्वादानाद्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्यातमहभागगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा शेषा मिथ्यादृगपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिवादरसम्परायादयः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च वर्तन्ते । “सुहआगिह” इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानसुखगतिमुभयान्निरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामबन्धका मिश्राद्यपूर्वकरणगुणस्थानसंख्यातमहभागगतान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृक्सास्वादनौ अपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिवादरसम्परायप्रमुखाः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । “अपमत्ताई” इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोऽबन्धका अप्रमत्तगुणस्थानाऽपूर्वकरणगुणस्थानसंख्यातमहभागवर्तिनौ जीवभेदाः वर्जयित्वा शेषाः मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदा अपूर्वकरणगुणस्थानशेषसंख्याततमभागगता अनिवृत्तिवादरसम्परायप्रमुखाः षड्जीवभेदाः सिद्धाश्च ज्ञातव्याः । “वज्जिअ” इत्यादि पञ्चकीर्तिनाम्नोऽबन्धका अप्रमत्तादिसूक्ष्मसम्परायान्तान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृष्टिप्रमुखाः षड्जीवभेदा उपशान्तमोहादयश्चत्वारो जीवभेदाः सिद्धाश्च बोद्धव्याः । “उच्चस्स” इत्यादि, अत्रापि “वज्जिअ सुहमता” इति पदद्वयं प्रकरणात्संबन्धनीयम्, ततश्चायमर्थः— उच्चैर्गोत्रप्रकृतेरबन्धका मिश्रादिसूक्ष्मसम्परायाऽन्तान् जीवभेदान् वर्जयित्वा मिथ्यादृक्सास्वादनौ जीवभेदौ उपशान्तमोहादयश्चत्वारो जीवभेदाः सिद्धाश्चाऽवसातव्याः । “सेसाणं” इत्यादि, शेषाणामेकोनपञ्चाशदध्रुवबन्धप्रकृतीनामबन्धका मिथ्यादृक्प्रभृतयस्मर्वेऽपि जीवभेदा वेदयि-

तव्याः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—असातवेदनीयम्, स्त्रीनपुसंकवेदद्वयम्, शोकारती, आयुष्क-
चतुष्कम्, नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदारिकद्विकम्, आहारक-
द्विकम्, संहननपट्कम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, अशुभ-
सगतिः, स्थावरदशकम्, आतपोद्योतजिननामानि, नीचैर्गोत्रञ्चेति, अत्रापि विपक्षप्रकृत्यादिवन्ध-
प्रयुक्तं तद्वन्धविच्छेदप्रयुक्तं वाऽवन्धकत्वं स्वयं परिभाषनीयम् ॥ ८०-८४ ॥

साम्प्रतं मार्गणास्तत्प्रकृत्यवन्धकात्राह

सञ्चह अबंधगा खलु सप्पाउग्गाण अधुवबंधीणं ।

आसिण्ण जीवभेआ सप्पाउग्गाऽत्थि ओधव्व ॥ ८५ ॥

(प्रे०) “सञ्चह” इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामधुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः
स्वप्रायोग्यान् जीवभेदानाश्रित्यौधवद् वर्तन्ते, तत्रापि ते यथायोगं वन्धप्रायोग्यगुणस्थानकेषु स्व-
प्रतिपक्षप्रकृतिवन्धकतया प्रतिपक्षसहकारिप्रकृतिवन्धकतया वा प्राप्यन्ते, तथा ऊर्ध्वगुणस्थानकेषु
पुनस्तद्वन्धविच्छेदविधायित्वेन प्राप्यन्ते ॥ ८५ ॥

अथ सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याधुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकानामोधवदतिदेशेन कतिपयासु
मार्गणासु कामांचित्प्रकृतीनामवन्धकानां स्वामित्वविषयां समापतन्तीमापत्तिमपाकतुं कतिपयाभि-
गार्थाभिरपवाद उपदर्श्यते । तत्र प्रथमं नरकादिमार्गणासु तमुपदर्शयन्नाह

परमत्थि ण सव्वणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसुं ।

पच्चिदियुरलडुगपरधाऊसासतसचउग्गाण ॥ ८६ ॥

ण हवन्ति मीससम्मा णरदुगवइराण चरमणिरयम्मि ।

मिच्छत्तिसासणा णो हवन्ति तिरियडुगणीआण ॥ ८७ ॥

(प्रे०) “परमत्थि” इत्यादि, अष्टौ नरकमार्गणाः सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुकसहस्राररूपाः
षड्देवभेदाश्चेति चतुर्दशमार्गणास्थानेषु पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसधादरपर्याप्त-
प्रत्येकरूपाणां नवानां प्रकृतीनामवन्धका न वर्तन्ते, प्रकृतीनामासामधुवन्धित्वेऽपि मार्गणा-
प्रायोग्यधुवन्धित्वात् । ‘ण’ इत्यादि, मनुष्यद्विकवर्षमनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतित्रयस्य मिश्रा-
विरतसम्यग्दर्शा जीवभेदावन्धकौ न भवतः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकत्वात्तयोः । “चरम-
णिरयम्मि” इत्यादि, सप्तमनरकमार्गणास्थाने तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽवन्धकौ मिथ्या-
दृष्टिमास्वादनौ जीवभेदौ न भवतः, तयोस्तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनामेव वन्धकत्वात् ॥ ८६-८७ ॥

इदानीमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्थानेषु तमाह-

असमत्तपणिदित्तिरियमणुयपणिदियतसेसु सव्वेसुं ।

एगिदियविगल्लिदियपणकायेसु य ण उरलस्स ॥ ८८ ॥

सत्त्वागणिवाऊसु ण तिरिडुगणीआण ।

प्रस्तुते तु तेषामप्रवेशात्कथितप्रकृतिपञ्चकस्याऽबन्धका न प्राप्यन्ते, अतः “जो चेव” इत्यादिना निषेधः कृतः ॥ ९२ ॥ इदानीमौदारिकमिश्रकाययोगादिमार्गणासु तमभिदधाति

सम्मो उरालमीसे णत्थि सुरविउवदुगाण तम्मि तहा ।

कम्माणाहारेसु उरालरत्ता ण मिच्छसासाणा ॥ ९३ ॥

(प्रे०) “सम्मो” इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरादिकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य सम्यग्द्विजीवभेदोऽबन्धको नास्ति, तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् । “तम्मि” इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोश्चौदारिकशरीरना-
। गोऽबन्धका मिथ्यादृक्सास्वादनौ जीवभेदौ न भवतः, तयोस्तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनां मनुष्यप्रायो-
ग्यप्रकृतीनां वा बध्यमानत्वात्, ताभिः सहौदारिकशरीरना-गो बन्धस्याऽवश्यंभावित्वाच्च ॥ ९३ ॥

इदानीं शुभलेश्ययोः स उच्यते

तेऊए हुन्ति ण चिअ परधाऊसासबायरतिगाणं ।

पम्हाए तेमि तह पणिदियतसाण वि ण हुन्ति ॥ ९४ ॥

(प्रे०) “तेऊए” इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां पराधातोञ्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां पञ्चप्रकृ-
तीनामबन्धका न भवन्ति, एतन्मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तासाम् । “पम्हाए” इत्यादि, पञ्चलेश्या-
मार्गणायां “तेसिं” ति तामां पराधातोञ्छ्वासवादरत्रिकप्रकृतीनां ‘तर्’ ति तथा पञ्चेन्द्रियजाति-
व्रसना-गोश्चाऽबन्धका न भवन्ति, एतन्मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तासामिति ॥ ९४ ॥

इदानीं शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रकृतमाह—

सुक्काए पचिदियपरधाऊसासतसचउकाणं ।

मिच्छादिद्वीओ अवि होअन्ति अबधगा जेव ॥ ९५ ॥

(प्रे०) “सुक्काए” शुक्ललेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोञ्छ्वासव्रसवादरपर्याप्त-
प्रत्येरूपाणां सप्तप्रकृतीनामबन्धको मिथ्यादृष्टिजीवभेदो न भवति, मार्गणायामस्यां तेनाऽपि निरन्तरं
बध्यमानत्वादिति । अयं भावः—ओघे तु कृष्णाद्यशुभलेश्याकानां तिर्यग्मनुष्याणां तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां
बन्धभावेन प्रस्तुतप्रकृतीनामबन्धकतया लाभेऽपि प्रस्तुते तेषामप्रवेशादासामबन्धको मिथ्यादृष्टिरपि
नैव भवतीत्यत उक्तं ‘मिच्छा’ इत्यादिकमिति । अतः प्रस्तुत इदमायातम्—आसां सप्तप्रकृतीनाम-
बन्धका मिथ्यादृष्टिप्रभृत्यपूर्वकगुणगुणस्थानसंख्यातबहुभागगता जीवभेदा न भवन्ति, मार्गणायाम-
स्यामनवरतं तैर्वध्यमानत्वात्, तद्धर्षगुणस्थानगता जीवभेदाः श्रेणौ तासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदाद-
बन्धका अप्योधवदुपलभ्यन्ते । अत्र शेषप्रकृतीनामबन्धका ओघवत्प्राप्यन्ते ।

अथ कथितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका यथासंभवं ‘सव्यह अबधगा’
इत्यादिना ओधोक्तप्रकारेण ज्ञातव्याः । इति उत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्वाभित्वमुक्तम्, तदुक्तं च
समाप्तिमगात् स्वाभित्वद्वारमिति ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मप्रभाटीकासमलङ्किते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे

॥ तृतीयं साद्यादिद्वारम् ॥

यथोद्देशस्तथानिर्देश इतिन्यायात्साम्प्रतं क्रमप्राप्तं तृतीयं साद्यादिद्वारमोक्त आदेशतथोत्तर-
प्रकृतिवन्धे चिन्तयितुकाम आदौ तावद् ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीराह

चउदसे पयडो आइमवोआवरणाण सोलस केसाया ।

मिच्छतां भयकुच्छा तेअसदुगवण्णचउगाणि ॥ ९६ ॥

अगुरुलहू उवधायो णिम्माण पंच अंतराया य ।

सगचरा धुवबंधी जेया सेसा अधुवबंधी ॥ ९७ ॥

(प्रे०) 'चउदस' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकपावषोढशकमिथ्यात्वमोहनीयभय-
जुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलधूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकलक्षणाः सप्तचत्वारिंशत्प्र-
कृतयो ध्रुवबन्धिन्योऽधिगम्याः, आम्होऽपराः त्रिसप्ततिः प्रकृतयश्चाऽध्रुवबन्धिन्यः । याःप्रकृतयः
स्वबन्धविच्छेदस्थानपर्यन्तमनवरतं बध्यन्ते, ता प्रकृतयो ध्रुवबन्धिन्यो ज्ञातव्याः, याश्च स्वबन्ध-
विच्छेदस्थानात्पूर्वमपि बन्धविरामयोग्याः, ताः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्योऽप्येयाः ॥ ९६-९७ ॥

इदानीमोघादेशाम्यां साद्यादिप्ररूपणा प्रारभ्यते-

बधोऽस्थि साइआई धुवबंधीण चउव्विहोऽण्णोस ।

साइअधुवोऽस्थि एव दुअणाभायतअचक्खुमिच्छेसुं ॥ ९८ ॥

(प्रे०) 'बंधोऽस्थि' इत्यादि, ओघतो ज्ञानावरणादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यः कश्चिज्जीवो यथा-
संभवमुपशमश्रेणो बन्धविच्छेदं विधाय यदाऽव्यस्तनगुणस्थानेष्वनतरति तदा तासां ध्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनां बन्धमारभते अतस्तं जीवमपेक्ष्य तद्वन्धवस्यादिसंभवात् स बन्धः सादिरूप्यते । यस्य कस्य-
चिज्जीवस्यानादिकालतो अद्यावधि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धो निरन्तरं प्रवर्तमान आसीत् तं जीवम-
पेक्ष्य तासां प्रकृतीनां बन्धोऽनादिरूप्यते, तद्वन्धवस्यादिविरहात् । अयमनादिबन्धोऽप्राप्तसम्ब-
धत्वमव्यजीवापेक्षया ज्ञातव्यः । अभव्यजीवापेक्षया ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽऽयत्यामपि बन्ध-
विच्छेदाभावात् स बन्धो ध्रुव उच्यते । यस्य जीवस्य ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धोऽवरयमेवाऽऽयत्यां-
विच्छेदं प्राप्स्यति तस्य तद्वन्धोऽध्रुव उच्यते । स च भव्यजीवापेक्षया विज्ञेयः, यतो भव्यानामा-
यत्यामवरयमेव क्षपकश्रेणिलामेन तद्वन्धविच्छेदो भवति, अन्यथा भव्यत्वस्याऽनुपत्तेरिति ।
'अण्णोसि' इत्यादि, अन्यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां साधध्रुवभेदेन द्विविधो बन्धो भवति, अध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां परावृत्य परावृत्य बन्धसंभवेन बन्धविच्छेदस्य पुनर्बन्धस्य चानेकशो लामात् ।

एवं ओघत उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य साद्यादिभङ्गप्ररूपणा कृता, साम्प्रतमादेशतो गत्यादिमार्ग-
णासु कर्तुकाम आह, 'एवं' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनमिथ्यात्वरूपासु पञ्च-
मार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदेन चतुष्प्रकारोऽस्ति, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां

तु सादिसान्तभेदेन द्विविधोऽस्ति । ननु मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयममिथ्यात्वमार्गणाद्यपशमादिश्रेण्या
अभावेन ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्वन्धाऽसंभवादासां बन्धस्य कथं सादिभङ्ग उप-
पन्नो भवेदिति चेदत्रोच्यते, एतन्मार्गणाचतुष्के वर्तमानः कश्चिज्जीरो तूर्यपञ्चमादिगुणस्थानकं
गच्छति तदा तस्य जीवस्य मार्गणाचतुष्कस्याऽस्याऽन्तो भवति, यदा च तूर्यपञ्चमादिगुणस्थान-
कात्पतितो भवति तदा मिथ्यात्वादिगुणस्थानकेवागतेन तेनैताश्चतस्रोऽपि मार्गणाः पुनः प्राप्यन्ते,
अतो मार्गणाचतुष्कस्यास्यादिः संजाता, मार्गणाचतुष्कस्याऽस्य सादित्वेन मार्गणास्वासु ध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां बन्धस्याऽपि सादित्वमवमातव्यम्, तेन नोक्तानुपपत्तिः ॥ ९८ ॥

अथ भव्यमार्गणायां ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्य साधादिभेदाभिधातुमाह—

मविये ध्रुवबन्धीणं साइअणाइअधुवो ऽत्थि ति विगप्पो ।

बन्धोऽत्थि साइअधुवो, दुविगप्पो सेसपयडीणं ॥ ९९ ॥

(प्रे०) “मविये” इत्यादि, भव्यमार्गणायां साधनाद्यध्रुवभेदेन ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः
त्रिविधोऽस्ति । ‘साइअधुवो’ इत्यादि, शेषाणामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धः साधध्रुवभेदेन द्विविधो
ऽस्ति ॥ ९९ ॥

इदानीमभव्यमार्गणायां शेषमार्गणायां च ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धं साधादिभेदेन प्ररूपयति—

ध्रुवबन्धीणं बधो दुविगप्पो अमविये अणाइधुवो ।

सेसाण साइअधुवो सेसासु हवेज्ज सव्वाणं ॥ १०० ॥

(प्रे०) “ध्रुवबन्धीणं” इत्यादि, अव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्याऽनादिध्रुवभेदेन
विकल्पद्वयं विज्ञेयम्, अध्रुवबन्धिप्रकृतिबन्धस्य च साधध्रुवभेदेन । “सेसासु” इत्यादि, मत्त्यज्ञान-
श्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्मिथ्यात्वमव्यामव्यलक्षणं मार्गणासप्तकमृते सप्तपट्टयधिकशतसंख्याकासु शेष-
मार्गणासु सर्वासां बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां साधध्रुवभेदेन द्विविधो बन्धोऽधिगन्तव्यः, सर्वा-
सामासां मार्गणानां सादिसान्तत्वात् ॥ १०० ॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे

प्रथमाधिकारे तृतीय साधादिद्वार समाप्तम् ॥



॥ चतुर्थ कालद्वारम् ॥

उत्तरप्रकृतिवन्धे साद्यादिद्वारं निरूप्य सम्प्रति क्रमप्राप्तं चतुर्थमेकजीवमाश्रित्य कालद्वारं
निरूपयितुकामः प्रथमं प्रकृतिसग्राहिका गाथा आह

मिच्छथीणद्वितिगमणअपच्चवखाणतदियरकसाया ।

तिरियदुग णीअं तह णरदुगवइराणि उरल च ॥ १०१ ॥

उरलोवगपणिदियतसपरधूससवायरतिगाणि ।

पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुज्जसुरविउवदुग ॥ १०२ ॥

जिणसायेयरदुजुगलयिरसुहजसअयिरअसुहअजसाणि ।

आहारदुगमिमाओ इह जा वुच्चन्ति ता कमा गेज्झा ॥ १०३ ॥ (गीति)

(प्रे०) “मिच्छं” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्विप्रचलाप्रचलानिद्रानिद्रानन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कर्तार्यगतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्राणि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवर्ज्यभनाराचसंहननौदारिकशरीरनामानि चेति त्रयोविंशतिप्रकृतयः प्रथमगाथायामुक्ताः । “उरलोवंग” इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराधातोच्छ्वासवादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि, पुरुषवेदशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्रदेवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गनामानि चेत्येकोनविंशतिप्रकृतयो द्वितीयगाथायामुक्ताः । “जिण” इत्यादि, जिननामसातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरशुभयशःकीर्तिनामानि, अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि चेति त्रयोदशप्रकृतयस्त्वृतीयगाथार्धेनोक्ता आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपमाहारकद्विकं चेति सर्वसङ्ख्यया सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनां संग्रहः । “इमाओ” इत्यादि, आभ्यः प्रकृतिभ्यःकालद्वारे याः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते ताः प्रकृतयः क्रमेण ग्राह्याः, यां प्रकृतिमादौ कृत्वा यावत्यः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते तां प्रकृतिमादौ कृत्वा तावत्यस्ता क्रमेण ग्राह्याः इति भावः । इति गाथात्रयार्थः ॥ १०१-१०३ ॥

अथ ध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकालमोघतः कथयितुमाह

ध्रुववधीण कालो अणाइणतो अणाइसतो य ।

साइसपञ्चवसाणो, तइओ हस्सो मुहुत्ततो ॥ १०४ ॥

परमो अद्धपरदो देसूणो होअए मुहुत्ततो ।

आऊण चउण्ह कुहा भिन्नमुहुत्त जिणस्स लह् ॥ १०५ ॥

उक्कोसो अबमहिथा तेत्तोसा सागरोवमा गेयो ।

एआओ वावण्णा गिरतराओ ऽत्थि पयडीओ ॥ १०६ ॥

(प्रे०) “ध्रुववधीण” इत्यादि, ध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकारः त्रिविधो विद्यते, तदेवमू-
अनाद्यनन्तः, अनादिसान्तः, सादिसान्तः । आद्यो बन्धकालोऽभव्यापेक्षया विज्ञेयः, तस्य प्रकृती-
नामामा सदैव बन्धकत्वात्, द्वितीयोऽनादिसान्तरूपः बन्धकालस्त्वप्राप्तसम्यक्त्वस्य भव्यस्य

बोध्यः । अथावधि कस्या अपि ध्रुवबन्धिप्रकृतेर्बन्धविच्छेदाभावाद्नादिः, भव्य आयत्यामवश्यं बन्ध-
विच्छेद करिष्यति ततो बन्धः सान्तः, इत्थं ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्ध एनं जीवमपेक्ष्याऽनादिसान्तः
प्राप्तः । उक्तबन्धद्वयस्येयत्ताऽभावेन जघन्योत्कृष्टतया वक्तुमशक्यत्वाज्जघन्यत उत्कृष्टतो वा कालो न
कथितः । तृतीयः सादिसान्तरूपो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालः श्रेणिं प्राप्तस्य भव्यस्य भवति । अस्य
तृतीयमङ्गपतितस्य कालस्येयत्तायै भवाज्जघन्यत उत्कृष्टतश्च वक्तुं शक्यते, अत आह 'तद्भो'
इत्यादि । भावार्थः पुनरयम्—ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सादिसान्तरूपबन्धकालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः ।
तत्र मिथ्यात्वस्थानविचित्रिकाद्यद्वादशकपायप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थमवगन्तव्यः, तद्यथा—
यः कश्चित् ५७८गुणस्थानकादनाभोगतः मिथ्यात्वगुणस्थानकं प्राप्य यथा शीघ्रं संयमं प्राप्नोति तं
जीवमपेक्ष्य मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । विभागतो
विचार्यमाणे तु षोडशप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थं प्राप्यते, तद्यथा—प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य
५७८गुणस्थानतोऽनाभोगत पंचमं चतुर्थं प्रथमं वा गुणस्थानकं प्राप्य यथाशीघ्रं संयमं प्राप्नोति,
तदपेक्षया जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । तथैवाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य, नवरं पष्ठपञ्चम-
गुणस्थानतश्चतुर्थं प्रथमं वा गुणस्थानकं प्राप्य यथाशीघ्रं देशविरतिसर्वविरतिं वा प्राप्तजीवापेक्षया,
इत्थमेव मिथ्यात्वादष्टप्रकृतीनामपि, किन्तु पष्ठपञ्चमचतुर्थगुणस्थानतः प्रथमं गुणस्थानकं प्राप्य
यथाशीघ्रं चतुर्थादिगुणस्थाकं प्राप्तजीवापेक्षया जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽधिगन्तव्यः ।

शेषज्ञानावरणाद्येकत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल इत्थम्—यः कश्चिन्मोहोपशमक
उपशान्तमोहगुणस्थानकादद्वादशयेणावतरन् ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां यथासंभव यदा पुनर्वन्धं प्रारभ्य
प्रमत्तगुणस्थानकं प्राप्यान्तर्मुहूर्तं तत्र स्थित्वा ततो यथाशीघ्रं श्रेणिं प्राप्य क्रमशोऽष्टमादिगुण-
स्थानकेषु निद्राद्विकम्प नाग्नौ नवध्रुवबन्धिनीनां भयजुगुप्सयोः संज्वलनस्य क्रोधस्य-मानस्य
मायाया लोभस्य ज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदस्थानं प्राप्य बन्धविच्छेदं करोति
तदाऽऽमां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । “परमो” इत्यादि, ध्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनां तृतीयः सादिसान्तलक्षणो बन्धकालः प्रकृष्टतया देशोनापार्धपुद्गलपरावर्तप्रमितो बोद्धव्यः,
तदेवम्—उपशमश्रेणिमारूढो जीवस्ततोऽवपत्य सम्यक्त्वभाव त्यक्त्वा प्राप्तमिथ्यात्वो भवाटव्यामुत्कृ-
ष्टतः किञ्चिन्नयुनाऽर्धपुद्गलपरावर्तकालपर्यन्तं आभ्यति, एकादशगुणस्थानसत्कोत्कृष्टाऽन्तरस्य
तावत्प्रमाणत्वात्, तदनन्तरं पुनरपि सम्यक्त्वमवाप्य क्षपकश्रेणिं लब्ध्वा सकलानि कर्मेन्धनानि
ध्यानाग्निना भस्मसात्कृत्य मिद्धिमौघं समुपयाति तरगादेतच्छ्रेणिद्वयान्तराले ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां
बन्धकालस्य तावत्प्रमाणता स्तूपयते । “मुहुत्तंतो” इत्यादि, नरनारकामरतिर्यगाधुष्काणां
जघन्योत्कृष्टाभ्यां बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो भवति, आयुर्वन्धकालस्योभयथाऽपि तावन्मितत्वात् ।
“भिन्नमुहुत्तं” इत्यादि, जिननाम्नो जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव, न तु समयप्रमाणः,

यतो जिननामवन्धस्य प्रारम्भानन्तरमन्तर्मुहूर्तद्विगुणं विच्छेदाभावात् । जिननाम्न उपशमश्रेणाव-
 पूर्वकरणे नूतनवन्धं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं तस्यैव गुणस्थानरूपस्य षष्ठभागान्ते वन्धविच्छेदं यः
 करोति तमाश्रित्य जघन्यवन्धकालः स्रूपपद्यते । अथ तस्यैवोत्कृष्टकालं कथयति । ‘उक्कोसो’
 इत्यादि, तीर्थकुन्नाम्न उत्कृष्टवन्धकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितोऽस्ति,
 तदेवम्—पूर्वकोटिर्वर्षायुष्कः कश्चिज्जीवो मनुष्यभवेऽष्टसंवत्सरानन्तरं तीर्थकुन्नामकर्म निष्काच्य स्वायुः-
 समाप्तिं यावद् वद्ध्वा मरणानन्तरं सर्वार्थमिद्विमाने सुरतयोत्पन्नः सन्तत्राऽपि स त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
 पमलक्षणस्वायुष्कस्थितिपर्यन्तं तद् वध्नाति, ततश्च च्युत्वा समवदुत्कृष्टायुष्कमानवभवे यावत्क्षपकश्रेणि-
 नारोहति तावत्कालमविरतं वध्नाति, श्रेणावष्टमगुणस्थानषष्ठभागान्ते पुनस्तद्वन्धविच्छेदं करोति
 अत उक्तप्रमाणो वन्धकालः सुधटः । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—‘तित्थकरनामाए तेत्तीमसागरोवमाइ
 दोहिं पुव्वकोडीहिं देसूणाहिं अब्भत्तिताइ उक्कोसगो सगवन्धकालो’ । ‘एआओ’ इत्यादि, सप्तचत्वा-
 रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयो जिननामकर्म, आयुश्चतुष्कं चेति द्विपञ्चाशत्प्रकृतयो ‘निरन्तरा’ इति-
 नामतो व्यपदिश्यन्ते, जघन्यतयाऽप्यन्तर्मुहूर्तकालं यावदनवरतं वध्यमानत्वात्, याः प्रकृतयो
 जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तकालं निरन्तरं वध्यन्ते, ता अभिधानतो ‘निरन्तरा’ इत्युच्यन्ते । उक्तं च
 पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिसूरिपादैः—‘तमि उ जहन्ने इति-जघन्ये इति जघन्येनाऽपि या. प्रकृतयो-
 ऽन्तर्मुहूर्तं यावन्नैरन्तर्येण वध्यन्ते’ ता निरन्तरा निर्गतं वन्धमविकृत्यान्तर्मुहूर्तमध्येऽन्तरं व्यवधानं व्यवच्छेदो-
 षकाभ्यस्ता निरन्तरा इति व्युत्पत्तेः’ इति ॥१०४-१०६॥

अथ शेषप्रकृतीनां वन्धकालं जघन्यतस्तथा तासु सान्तरनिरन्तरप्रकृतीनां वन्धकालमुत्कृष्टतोऽप्याह—

सेसाण लहू समयो जेट्ठो सायस्स पुव्वकोडतो ।

वत्तीससागरसय भवे पुमाईण सत्तण्ह । १०७ ॥

(प्रे०) ‘‘सेसाण’’ इत्यादि, प्रागभिहितद्विपञ्चाशत्प्रकृतीः परित्यज्याऽष्टषष्टिशेषप्रकृतीनां
 वन्धकालो जघन्यत एकसमयो ज्ञातव्यः, आसामध्रुववन्धित्वेन समयान्तरे पुनर्वन्धसंभवादिति । शेषा-
 स्वष्टषष्टिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालं क्रमादुपदर्शयति—‘‘जेट्ठो’’ इत्यादि, सातवेदनीयस्य प्रकृत्यो वन्धकालो
 देशोनपूर्वकोटिर्वर्षप्रमाणोऽवसातव्यः, सयोगिगुणस्थानकालस्य तावत्प्रमाणत्वात्, तत्र च निरन्तरं
 सातवेदनीयस्यैव वध्यमानत्वाच्च । उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ त्रयोदशगुणस्थानप्रकृष्टकालं प्रसाधयद्भिः
 श्रीमलयगिरिसूरिपादैः ‘‘देशोना च पूर्वकोटी सर्वोत्कृष्टा सप्तमासजातस्य वर्षाष्टिकादूर्ध्वं चरणप्रतिपत्त्या शीघ्र-
 मेवोत्पादितकेवलज्ञानस्य पूर्वकोट्यायुपो वेदितव्या’’ इति । अन्यत्राऽप्युक्तम् ‘‘देसूणपुव्वकोटिं साय’’ इति ।
 ‘‘वत्तीस’’ इत्यादि, ‘‘पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्च’’ इति संग्रहमाथावयवेषूक्तानां पुरुषवेदशुभ-
 विहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गौत्ररूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां प्रकृत्यो वन्धकालः
 साधिकद्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाणो भवति, तदित्थम्—पुरुषवेदादिप्रतिपक्षभूताः स्त्रीवेदादिप्रकृतयो
 गुणप्रत्ययेन भवप्रत्ययेन वा यदा न वध्यन्ते, तदा पुरुषवेदादीनां सप्तप्रकृतीनां वन्धो निरन्तरं संजायते,

यावान् हेतासां पुरुषवेदादिविरोधिस्त्रीवेदादिप्रकृतीनामवन्धकालः, तावानेव पुरुषवेदादिसप्तप्रकृतीनां
 बन्धकालः, स चोत्कृष्टत्वेन साधिकद्वात्रिंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमितोऽस्ति, पुरुषवेदादिप्रतिपक्षभूतस्त्री-
 वेदादिप्रकृतिवन्धकारणीभूतमिथ्यात्वाऽन्तरकालस्योत्कृष्टतया तावन्मात्रत्वात्, उक्तं चैतत्पञ्चसंग्रहवृत्तौ
 श्रीमन्मलयगिरिसूरिपुङ्गवैः—‘उत्कृष्टमन्तरमाह “मिच्छस्ते” त्यादि, मिथ्यादृष्टेः परित्यक्तमिथ्यात्वस्य
 भूयस्तद्भावप्रतिपत्तावुत्कृष्टमन्तर द्वे षट्षष्टी ‘अवराणां’ सागरोपमाणाम्, कथं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणाम् ?
 इति चेद्भ्रूयते—कश्चिन् मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमासाद्य षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत्सम्यक्त्ववानवतिष्ठते,
 ततः तदनन्तरमन्तरालेऽन्तर्मुहूर्तकाल सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय भूयोऽपि षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत्सम्यक्त्व-
 मनुभवति तत एतदनन्तरं कोऽपि महात्मा मुक्तिपदवीमासादयति, कोऽपि पुनरधन्यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते,
 तत्र यो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते तस्य मिथ्यात्वपरिभ्रंशकालादारभ्य भूयो मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानस्यान्तरं द्वे
 षट्षष्टी सागरोपमाणा भवतः । नन्वेव सम्यग्मिथ्यात्वसंबन्धिनामन्तर्मुहूर्तेनाधिके द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां
 प्राप्येते कथमधिकृतसूत्रे ते परिपूर्णे उक्ते ? उच्यते—स्तोकत्वात्तदन्तर्मुहूर्तं न विवक्षितमित्यदोषः । नव्य-
 शतकेऽपि प्रकृतप्रकृतीनां निरुक्तवन्धकालः प्रतिपादितः, तद्यथा—जलधिसवं ।
 वत्तीस सुहृत्रिहगद्गुमसुभगतिगुचचउरसे ॥ इति ॥ १०७ ॥

अथ तिर्यक्त्रिकादीनामुत्कृष्टवन्धकालमाह

तिरियाईण तिण्हं असंखल्लोगाऽत्थि जलहि तेत्तीसा ।

तिणराईण अहिय पल्लतिगं चउसुराईणं ॥ १०८ ॥

(प्रे०) ‘तिरियाईण’ मित्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्ररूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां
 वन्धकाल उत्कृष्टतयाऽसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो भवति, स त्वेवम्—कश्चित् वनस्पति-
 कायिकादिजीवस्तेजोवायुकाययोरन्यतरस्मिन् समुत्पद्यतेजोवायुकायसमुदितोत्कृष्टकायस्थिति यावत्तत्रैव
 परिभ्रमति तत्र भवत्प्रत्ययिकतिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रयोर्निरन्तरं वन्धः प्राप्यते, अतः तं जीवमाश्रित्या-
 ऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितः प्रस्तुतप्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टवन्धकालः सूचयते । उक्तं च “... समयाद्
 सखमाल तिरिदुगानीएसु’ इति । “जलहि” इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीवर्षमनाराचसंहननलक्षण-
 स्य प्रकृतित्रयस्योत्कृष्टो वन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानो ज्ञातव्यः, तदेवम्—विजयादिविमानेषु
 स्थिताः सुरास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितां स्वायुष्कस्थितिं यावदेतत्प्रकृतित्रयमनवरतं बध्नन्ति,
 तेषां मनुष्यप्रायोग्यस्यैव प्रकृतिसमुदायस्य वन्धविधायित्वात्, प्रतिपादितं च नव्यशतके—‘मणुदुग-
 जिणवइरउरलुवगेसु, तित्तीसयरा परमो’ इति । “अहिय” मित्यादि, देवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीर-
 वैक्रियाङ्गोपाङ्गरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां प्रकृष्टो वन्धकालः साधिकपल्योपमत्रयप्रमितोऽवसातव्यः,
 तदेवम्—मनुष्यभवे पूर्वकोटिर्वायुष्कः कश्चित्प्राणी स्वयं स्रभागेऽवशेषे त्रिपल्योपमप्रमितं युगलिक-
 सत्कमायुर्वर्द्ध्वाऽन्तर्मुहूर्ताऽनन्तरं क्षयोपशमसम्यक्त्वमवाप्य क्षायिकसम्यक्त्वमवाप्नोति, सम्यक्त्व-
 प्राप्तेः प्रागन्तर्मुहूर्ततः सुरादिप्रकृतिचतुष्कं बध्नन् ततश्च प्युत्वा युगलिकमवे जातः सन् सम्यक्त्व-

प्रत्ययेन तत्प्रकृतिचतुष्कं पञ्चोपमत्रयमितस्वायुःपूर्णां यावद् बध्नातीत्येवं देशोनपूर्वकोटिप्रमाणा-
धिकपञ्चोपमत्रयप्रमाणो बन्धकालः संगच्छते, स एवाऽत्र साधिकपञ्चत्रयत्वेन बोध्यः । उक्तं च-
“वेऽन्विष्यदेवदुग्धं पल्लतिग” इति ॥१०८॥

पणसीइसागरसयं पणिदिपाईण होइ सत्तण्हं ।

उरलस्स असलेज्जा परिअट्टा पोग्गलाण भवे ॥ १०९ ॥

(प्रे०) “पणसीई” त्यादि, “पणिदियतसपरधूसास्वायरतिगाणि” इति संग्रहभाषांशेषु प्रति-
पादितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकाल उत्कृष्टतया चतुःपञ्चोपमाधिक-
पूर्वकोटिपृथक्त्वोत्तरपञ्चाशीत्याधिकशतसागरोपमप्रमाणो वर्तते, प्रतिपादितं चैतन्नध्यशतके-‘जलहिसयं
पणसीयं परधुस्सासं पणिदितसचओ’ इति भावना पुनरेवम्-पञ्चेन्द्रियजातिप्रसवादत्रिकविरोधिनीनां
प्रकृतीनां योऽबन्धकालः, स एव पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतीनां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धकालो बोध्यः,
स च प्रकृष्टतयाऽबन्धकालोऽभिहितप्रमितोऽस्ति । पराधातोच्छ्वासनामकर्मलक्षणप्रकृतिद्वयबन्ध-
स्य पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धसहचारित्वेन पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिपञ्चप्रकृतिबन्धावसरे पर्याप्तनाम-
कर्मणोऽपि बध्यमानत्वेनाऽवश्यमेव पराधातोच्छ्वासनामरूपे द्वे प्रकृती बध्यते, तस्मात्तयोरपि
तावत्प्रमाण एवोत्कृष्टतया बन्धकालः समधिगम्यः । एतत्सप्तप्रकृतिप्रतिपक्षभूतानां प्रकृतीनाम-
बन्धकालस्य भावना नव्यशतक एवम्-यथा किल कश्चिद् जन्तुस्तभोऽभिधानायां पञ्चपृथिव्यां द्वाविंशति-
सागरोपमाणि भवप्रत्ययादेता प्रकृतीरवर्द्ध्वा पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमासाद्य मनुष्येधूपत्यद्य देशविरति-
मासाद्य चतुःपञ्चोपमस्थितिषु देवेषु देवत्वमनुभूयाऽप्रतिपतितसम्यक्त्व एव मनुष्येधूपत्यद्य सपूर्णसयम
परिपाल्य नवमभ्रैवेक एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिक सुरसङ्गजन्मा समजनि, तत्र चान्तर्मुहूर्तोर्ध्वं मिथ्यात्वं
जगाम, पुनरेव तत्र च व्रतमानो मिथ्यादृष्टिरपि भवप्रत्ययादेवैताः प्रकृतीर्न बध्नाति, तदनु पर्यन्तान्त-
र्मुहूर्ते सम्यक्त्वमवाप्त्याऽप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येधूपत्यद्य सर्वधिरतिमनुपाल्य तथैव गृहीतसम्यक्त्वो
वारद्वय विजयादिगमनेन पट्षष्टिसागरोपमाणि सम्यक्त्वकाल पूरयित्वा मनुष्येध्वन्तर्मुहूर्तं सम्यग्मिथ्यात्व-
मनुभूय तदन्तरित द्वितीय षट्षष्टिप्रमाण सम्यक्त्वकालमच्युतगमनेन पूरयति । “उरल” मित्यादि,
औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टोऽनवरतं बन्धकालोऽसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणोऽवसेयः, तदेवम्-
अव्यवहारराशित उद्भूत्य ये जीवा व्यवहारराशागताः तसत्त्वं चोपगताः, ते यदि सूक्ष्मैकेन्द्रिय-
भवे वादरैकेन्द्रियभवे चोत्पन्ना आवलिकाया असख्याततमभागगतसमयप्रमिताऽसंख्यपुद्गलपरावर्त-
प्रमाणामुत्कृष्टां स्वकापस्थितिं भेदयन्ति, तावत्कालं तत्रस्थैस्तैरौदारिकशरीरनामकर्मप्रकृतिः सततं
बध्यते तदनन्तरं यावत्कालं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्वं विना स्थातुं शक्यते तावत्कालं गमयित्वा पर्याप्त-
पञ्चेन्द्रियतयोत्पद्य सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा यावद्देवनरकान्यतरगत्या सह वैक्रियशरीरं न
बध्नाति तावत्कालमौदारिकशरीरं निरन्तरं बध्नाति तदनन्तरं वैक्रियशरीरनामबन्धादौदारिकशरीर-
नामबन्धो विरमति, एवमुक्तप्रमाणो बन्धकालोऽत्र समुपपद्यते । प्रतिपादितं चैतन्नव्यशतके-
‘उरलि असखपरट्टा’ इति ॥१०९॥

उरलोवंगरस भवे तेत्तीसा सागरोदमाऽन्महिया ।

सतरनिरंतराओ एआओ हुन्ति सगदीसा ॥ ११० ॥

(प्रे०) “उरलोवंगरसे” त्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मणो गुरुर्वन्धकालोऽभ्यधिक-
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, यतो हि सप्तमनरकवासिना केनचित्प्राणिना त्रयस्त्रिंशत्साग-
रोपमप्रमाणोत्कृष्टस्वायुःस्थितिं यावादौदारिकाङ्गोपाङ्गं भवप्रत्ययेन सततं वद्ध्वा तत उद्धृत्याऽन्त-
मुद्धृतं यावत्तद्वध्यते तदा साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः कालः सङ्गच्छते । अभिहितं च
नव्यशतके...“उरलघोसु तिच्चीसायर परमो” । “संतरनिरंतराओ” इत्यादि, सातवेदनीयं पुरुष-
वेदशुभविहायोगातिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतिसप्तकं तिर्यग्गतितिर्यग्ग-
नुपूर्वीनीचैर्गोत्ररूपं प्रकृतित्रिकं मनुष्यद्विकत्रचर्षभनाराचसंहननस्वरूपं प्रकृतित्रिकं देवगतिदेवानुपूर्वी-
वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं प्रकृतिचतुष्कर्मौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातित्रसपरावातोच्छ्वास-
बादरत्रिकरूपं प्रकृतिमप्तकं चेति सप्तविंशतिप्रकृतयः “सान्तरानिरन्तरा” इति नामतो निगद्यन्ते,
यतो जघन्येनैकयमयमुत्कृष्टतया चाऽन्तमुद्धर्तादूर्ध्वमसंख्यातादिकालं यावन्निरन्तरं वध्यन्ते ।
यासां प्रकृतीनां वन्धपद्धतिरेवविधा विद्यते ताः प्रकृतयः ‘सान्तरानिरन्तरा’ इत्युच्यन्ते । उक्तं च
पञ्चसंग्रहवृत्तौ—यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्र वन्धः, उत्कर्षतः समयादारभ्य नैरन्तर्येणान्तमुद्धर्तस्यो-
पर्यव्यमस्येय काल यावत् ता उभयाः सान्तरानिरन्तरा इत्यर्थः ॥११०॥

सेसाणं पयडीण भिन्नमुहुत्त गुरु मुणेयव्वो ।

एआउ सतराओ एआलीसाउ पयडीओ ॥ १११ ॥

(प्रे०) “सेसाणं” इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तानामेकचत्वारिंशत्शेषप्रकृतीनामुत्कर्षतो वन्धकालो-
ऽन्तमुद्धर्तमानोऽवगन्तव्यः । ताश्चेमाः शेषा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः-असातवेदनीयहास्यादिगुणलक्ष्यस्त्री-
नपुमकेवेदद्वयनरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकद्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादिसंस्थान-
पञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकोतपीधोतरूपा इति । आसां प्रकृतीनां भवप्रत्ययेन
गुणप्रत्ययेन चाऽन्तमुद्धर्ताधिककालो नैव प्राप्यते, तथा चाऽन्तमुद्धर्तानन्तरमासां प्रतिपक्षसातादि-
प्रकृतीनामवश्यंभाविवन्धेन स्ववन्धः स्थगितो भवति, तेनाऽन्तमुद्धर्तादधिकवन्धकाल आसां प्रकृ-
तीनां नैव प्राप्यत इति ।

“एआउ” इत्यादि, एताः प्रकृतयः सान्तरा इत्यभिधानतोऽभिधीयन्ते, जघन्यतः समय-
मात्रं प्रकर्षेण चान्तमुद्धर्तं यावदेव वध्यमानत्वादासाम् ।

उक्तं च पञ्चसंग्रहवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिस्वरिपुङ्गवै—‘यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्र वन्ध
उत्कर्षतः समयादारभ्य यावदन्तमुद्धर्तं न परत. ताः सान्तराभिधाना, वन्धमधिकृत्यान्तमुद्धर्तमध्येऽपि-
महान्तरेण व्यवधानेन व्यवच्छेदलक्षणेन वर्तन्ते यास्ताः सान्तरा इति व्युत्पत्तिबलात् इति । इति ओधतो
जघन्यत उत्कृष्टतश्च वन्धकालः ॥१११॥

अथ मार्गणासु प्रकृतीनां बन्धकालस्यावसरः, तत्र कुत्रचित्कोसाञ्चिदुत्तरप्रकृतीनां बन्धकालो ज्ञान्यतया मार्गणाजन्मकायस्थितिः, उत्कृष्टतया पुनः मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिः कथयिष्यते, अतः कायस्थितेश्चानमावश्यक तथापि मूलकृता अत्र तत्प्रतिपादिका गाथा नैव कथ्यन्ते, मूल-प्रकृतिबन्धविधानग्रन्थे तासां कथितत्वात्, किन्तु प्रस्तुते बहूपयोगित्वादस्माभिस्ता मूलप्रकृति-बन्धविधानस्था गाथा दर्श्यन्ते । तत्रापि प्रथम प्रकृष्टकायस्थितिप्रतिपादिका गाथा दर्श्यन्ते, तदथा

कायठिई उक्कोसा णिरयसुराण विभगणाणस्स । किण्हसुइलखइयाणं तेत्तीसा सागरा णेया ॥८४॥
 पढमाइगनिरयाण कमसो एगो य तिण्णि सत्त दस । सत्तरह य बावीसा तेत्तीसा सागरा णेया ॥८५॥
 णेया उ असंखेजा परियट्ठा पुगलाण तिरियस्स । एगिंदियहरिआण कायणपु सगअसणणीणं ॥८६॥
 तिपणिंदियतिरियाणं तिणराण य पल्लिओपमा तिण्णि । अम्महिंया पुत्राणं कोडिपुहुत्तेण णायव्वा ॥८७॥
 सव्वापज्जाण समत्तवायरणिगोअकायस्स । पज्जत्तगसुहमाण पणमणवयउरलमीसाण ॥८८॥
 वेउव्वदुगस्स तहा आहारदुगस्स चउकसायाण । सुहुमुवसममीसाण भिन्नमुहुत्त मुणेरव्वा ॥८९॥
 भवणस्स साहियुद्धी पल्ल यतरसुरस्स विण्णेया । पल्लियोवममम्महिंयं जोइसदेवस्स णायव्वा ॥९०॥
 सोहम्मईण कमा अयरा दो साहिंया दुवे सत्त । अम्महिंया सत्त य दस चउदस सत्तरह णायव्वा ॥९१॥
 एत्तो एगोअहिंया णायव्वा जाव एगतीसुद्धी । उवरिमगोविज्जस्स उ तेत्तीसाअणुत्तराण भवे ॥९२॥
 अगुलअसखभागो वायरएगिंदियस्स सुहुमाण । तह पुह्वाइचउण्हं णेया लोगा असंखेजा ॥९३॥
 वायरपज्जेगिंदियभूवगपत्तेअवाउविगलाणं । संखेज्जसहस्ससमा समत्तवेइवियस्स संखसमा ॥९४॥
 पज्जत्तगतेइ दियवायरतेऊण होइ संखेजा । दिवसा सखियसासा समत्तचउइदियस्स भवे ॥९५॥
 पचिंदियचक्खूणअहियुद्धिसहस्स तस्स त दुगुण । पज्जपणिंदितसपुरिससणणीणाअयरसयपुहुत्तं ॥९६॥
 अद्धतइअपरिअट्ठा भवे णिगोअस्स होइ कम्मठिई । वायरपुह्वाइचउगणिगोअपत्तेअहरिआण ॥९७॥
 बावीससहस्ससमा देसूणुरलस्स तिसमया णेया । कम्माणाहाराणं पल्लसयपुहुत्तमित्थीए ॥९८॥
 देसूणपुव्वकोडी अवेअकसायकेवलदुगाणं । मणणाणसंजमाण सामइआईण पचण्ह ॥९९॥
 दुअणाणाअजयमिच्छाणअणाइणता अणाइसता य । साइसपज्जवसाणा तइया हीणद्धपरियट्ठो ॥१००॥
 साहिअलसट्ठिजलही तिणाणसम्मत्तवेअगोहीण । दुविहा अणाइणंता अणाइसता अचक्खुस्स ॥१०१॥
 णीलाइचउण्ह कमा अयरा दस तिण्णिदोणिण अट्ठार । भवियस्सअणाइसंता अभवस्स अणाइणता उ ॥१०२॥
 सासाणस्सावलिआ छ भवे आहारगस्स णायव्वा । अगुलअसखभागो त्ति पडुआ बधग उत्ता ॥१०३॥
 केइ पुण वित्ति हवए सखसहस्सवरिसा समत्ताण । वेइदियतेइदियचउइदियवायरअगीणं ॥१०४॥
 दो सागरा सहस्सा समत्तसचक्खुदसणाण भवे । सत्तरह सत्त अयरा होइ कमा नीलकाऊण ॥१०५॥
 साइअणंता यधगनिरवेक्खा खइअगकवलदुगाण । सम्मअकसायगयवेअमणाहाराण साइसतावि ॥१०६॥

साम्प्रत जन्मकायस्थितिप्रतिपादिका गाथाः—

कायठिई णायव्वा जहण्णगा दस सहस्सवासाणि । णिरयपढमणिरयाण देवभवणवत्तराणं च ॥१०७॥
 वीआइगनिरयाण सा पढमाइणिरयाण जा जेट्ठा । खुड्ढमवो तिरियपणिंदितिरियमणुसत्तदपज्जाण ॥१०८॥
 पज्जत्तमेअवविज्जअसेसिंदियकायमेअसणणीणं । असणस्स जाणियव्वा आहारस्स तिसमयहीणो ॥१०९॥
 भिन्नमुहुत्तं तु सयलपज्जत्तगजोणिणीण कायस्स । मोसदुजोगपुमाण तिकसायमइसुअकेवलदुगाणं ॥११०॥
 अणणाणदुगस्स तहा देसाजतचक्खुसव्वलेसाण । सम्मत्तखइअवेअगउवसममीसाण मिच्छस्स ॥१११॥

पलियस्स अट्टमागो जोइसिमस्स पलिओवमं पेया । सोहम्मसुरस्स भवे ईसाणस्सऽन्महियपल्लं ॥११२॥
 दोण्णि हवेज्जा जलही सणकुमारस्स दोण्णि अब्भइया । महेदरस हवेज्जा सत्त भवे बन्धदेवस्स ॥११३॥
 लंतगदेवाईण सा बन्धसुराईणाण जा जेट्ठा । सन्वत्थाऽचक्खूण भवियाभविआण णत्थि लहू ॥११४॥
 समयोऽत्थि पणमणवयणउरलदुगाहारविउत्तकम्भाय । इत्थीणपुंसगाण भवेमलोदाकसायाणं ॥११५॥
 मणणाणोहिदुगविमगासजमसमइमछेअसुहमाण । परिहाराइक्खायगासासणऽणाहारगाण च ॥११६॥
 अणो तिकसायाणं समयो मणणाणओहिजुगलाण । संजमपरिहारानं त्रिअसुहुत्तं ति कायठिई ॥११७॥

आसां गाथानां भावार्थोऽस्यैव बन्धविधानस्य मूलप्रकृतिबन्धवृत्तितो ज्ञेयः ।

ओधतो जधन्योत्कृष्टाभ्यां बन्धकाल प्रतिपाद्य सांप्रतमादेशतः सकलमार्गणासु प्रतिपादयितुमनाः प्राथम्येनायुष्कर्मणो बन्धकाल प्रतिपादयति

संवासु मगणासुं सप्पाउग्गाण सव्वेसि ।

भिक्षुहुत्तं जालो भवे जहण्णो तथा जेट्ठो ॥ ११२ ॥

(प्रे०) “संवासु” इत्यादि, आयुर्वन्धाहार्हस्वखिलासु मार्गणासु चतुर्णामपि स्वप्रायोप्यायुष्काणां जधन्योत्कृष्टाभ्यां निरन्तरं बन्धकालोऽन्तर्हूर्तमितो भवति, जधन्याऽन्तर्मुहूर्तादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं बृहत्परमुपादेयम् ॥११२॥

कतिपयासु मार्गणास्वायुर्वन्धकालविषयेऽपवादमुपदर्शयन्नाह

णवरं हरतो समयो पेयो पचमणवयणकायेसुं ।

आहारदुगे विउवे उरालिये चउकसायेसुं ॥ ११३ ॥

(प्रे०) “णवर” मित्यादि, ओध-सत्याऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्यामृषाभेदात् पञ्चमनोयोगेषु तथैव-पञ्चवचनयोगेषु काययोगौघा-ऽऽहारककाययोगा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगवैक्रियकाययोगौदारिक-काययोगक्रोवमानमायालोभरूपासु च सर्वसंख्ययैकोनविंशतिमार्गणासु जधन्याऽऽयुर्वन्धकालः समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, तदित्थम्—यदा मार्गणानामासां चरमसमये केनचिदसुमताऽऽयुर्वन्धः प्रारब्धः, तदन्वेता मार्गणा विलयमिता भवन्ति, तदैतासु मार्गणासु समयमात्र एवायुर्वन्धकालोऽवाप्यते, तथा कश्चिज्जीवो विभिन्नमार्गणास्वायुर्वन्धमारभ्येतासु मार्गणासु प्राप्तप्रवेशः प्रथमसमय एवायुर्वन्धं निष्ठां नयति तदाप्यासु मार्गणासु समयमात्र आयुर्वन्धकालोऽवाप्यते, एवं कासुचिन्मनोयोगादि-मार्गणासु मार्गणाजधन्यकायस्थितिमपेक्ष्याऽपि समयप्रमाणो बन्धकालो वक्तव्यः ॥११३॥

साम्प्रतं सर्वमार्गणासु आयुश्चतुष्कवर्जशेषप्रकृतीनां जधन्यतया बन्धकालं ग्राह

संवह होइ जहण्णो कालो समयो अज्जलमाणाणं ।

सप्पाउग्गाणं खलु आउगवज्जाण पयडोण ॥ ११४ ॥

(प्रे०) “संवह” इत्यादि, सर्वमार्गणास्वायुष्कवर्जानां वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जधन्यबन्धकालः समयप्रमाणो भवति ॥११४॥

प्राक्तनगाथायामायुर्वर्जवक्ष्यमाणेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं सर्वमार्गणासु निरु-
प्येदानीं वक्ष्यमाणप्रकृतीनां सर्वमार्गणासु जघन्यतो बन्धकालं प्ररूपयन्नादां कतिपयामु देवनरक-
मार्गणासु तमाह--

गिरयपदमाइछगिरयतइआइगअदुमंतदेवेसु ।
लधुकायठिई मिच्छाइअदुवजघुवणवुरलाईण ॥ ११५ ॥ (गीति)
मिच्छस्स मुहुत्ततो जिणस्स चुलसीइहायणसहस्स ।
गिरयपदमगिरयेसु साहियजलहो दुइअगिरये ॥ ११६ ॥

(प्रे०) 'गिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभावालुकाप्रमापङ्कजभाधूमप्रभातमः प्रभालक्षणासु सप्तमु नरक-
मार्गणासु मनत्कुमारमाहेन्द्रबलान्तकशुकमहसारूपासु च पटसु देवमार्गणामु 'मिच्छ योणद्विति-
गमण' इति संग्रहगाथोक्तं मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्ब्रुव-
धन्विप्रकृतीनां 'उल च, उरलोवगणणिदियतसपरघूसासवायरतिगाणि' इति संग्रहगाथायामुक्तानामौ-
दारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रसन्नामपराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां नवानां प्रकृतीनां चेत्येवमष्ट-
चत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालः स्वस्वलघुकायस्थितिप्रमाणोऽवगन्तव्यः, अस्मां प्रकृतीनाम-
बन्धस्य प्रस्तुतमार्गणास्वप्राप्यमाणत्वेन तत्र तावत्कालपर्यन्तमनवरतं जघन्यतोऽपि वध्यमानत्वात् ।
'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो भवति, तद्यथा-
मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वादवतीर्य जघन्यतो मिथ्यात्वगुणस्थानकेऽन्त-
र्मुहूर्तकालमुपित्वा पुनः सम्यक्त्वमवाप्नोति तदा सम्यक्त्वद्वयान्तराले मिथ्यात्वावस्थायामन्तर्मु-
हूर्तं मिथ्यात्वमोहनीयं वध्नाति । अथवा प्रकृतमार्गणासु विद्यमानः कश्चिज्जीवो मार्गणाया अन्ति-
मान्तर्मुहूर्ते शेषे प्राप्तमिथ्यात्वोऽन्तर्मुहूर्तकालं यावद् मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं वद्ध्वा मार्गणा-
न्तरं विधत्ते तदाप्यासु मार्गणामु मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धकाल आन्तर्मुहूर्तिकोऽवाप्यते । मिथ्या-
त्वमोहनीयबन्धकालस्यास्मिन् प्रकारद्वये यदन्तर्मुहूर्तमल्पतरं तदेवात्र ग्राह्यम् । "जिणस्स"
इत्यादि, तीर्थकृन्नामकर्मणो लघुबन्धकालो नरकौघरत्नप्रभालक्षणासु मार्गणाद्वये चतुरशीतिसंवत्सरसहस्र-
प्रमितो विद्यते, जिनसत्कर्मणस्ततो न्यूनस्थितिकेषूत्पादाभावात् । "साहियजलहो" इत्यादि, शर्करा-
प्रभाख्यमार्गणायां जिननामकर्मणो जघन्यो बन्धकालः साधिकसागरोपमप्रमाणः । न च नरकौघ-
रत्नप्रभामार्गणयोर्जघन्यतया दशमहस्रवर्षप्रमाणा कायस्थितिर्वर्तते, शर्कराप्रभाख्यमार्गणायाश्च
सागरोपमप्रमाणा, तर्हि प्रस्तुतमार्गणानां जघन्यकायस्थितिप्रमितो जिननामकर्मणो जघन्यो बन्ध-
कालः कथं न प्रतिपादित इति वाच्यम्, मार्गणास्वासु जिननामसत्कर्मणा जघन्योत्कृष्टकायस्थिति-
भवेनोत्पादाभावात्, ते हि मध्यमकायस्थितिमन्वेनैवासु मार्गणास्तपद्यन्ते ॥ ११५-११६ ॥

अथ तृतीयनरकमार्गणाया मनत्कुमारादिदेवमार्गणासु च जिननाम्नो जघन्यबन्धकालमाह--

तद्वज्रिण्यस्मि हवए अस्महिवा सागरोवमा तिष्णि ।

देवेसु अजहण्णा सगसगकायट्ठिं जेया ॥ ११७ ॥

(प्रे०) 'तद्वज्र' इत्यादि, वालुकाप्रभाख्यतृतीयनरकमार्गणायां साधिकसागरोपमत्रयप्रमाणो जिननामकर्मणो जघन्यो बन्धकालो धातव्यः । 'देवेसु' इत्यादि, पूर्वोक्तासु सनत्कुमारादिदेव-
मार्गणासु तीर्थकरनामकर्मणो बन्धकालो जघन्यत्वेन स्वस्वाऽजघन्यकायस्थितिसमयप्रमाणो ज्ञेयः ।
ननु 'अजघन्या' इत्यस्य कोऽर्थः ? इति चेद् जघन्यभि-नोत्यवधार्यताम् । इदमुक्तं भवति-केषांचिन्-
मते जिननामसत्कर्मा प्रकृष्टस्थितिकर्मो धर्मादिदेवत्वेनोत्पद्यते न तु जघन्यमध्यमस्थितिमत्त्वेन, परं
चरित्रग्रन्थे तु मध्यमस्थितिमत्त्वेनाऽपि तीर्थकरनामसत्कर्मण उत्पत्तिर्दृश्यते, अतो मतद्वयसंग्रहार्थ-
मुक्तम् 'अजहण्णा' इत्यादि । स्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धितुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य मार्ग-
णास्वासु जघन्यो बन्धकालः 'संवह होइ जहण्णो कालो समयो अवक्खमाणाण' मितिगाथया
समयमात्रोच्यसेयः । भावना पुनरेवं कार्या-मार्गणास्वासु स्थितः कश्चिदसुमान् स्वकीयस्व-
कीयमार्गणायाश्चरममये सास्त्रादनभावं समामाद्य समयमेकं प्रकृतिसप्तकमेनं यद्व्या मार्गणान्तरं
प्रविशति, तदा प्रकृतिसप्तकस्याऽस्य बन्धकालः समयात्मको लभ्यते । तथा वेदनीयद्विकं हास्यादि-
युगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगती संहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यां खगतिद्वयं
स्थिरपट्कमस्थिरपट्कमुद्योतनाम गोत्रद्वयं चेत्येतासां द्वाचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्ध-
कालः 'संवह होइ' इत्यादिना समयरूपो बोद्धव्यः, प्रकृतीनामामध्रुवबन्धित्वात् ॥११७॥

मत्तमनरकमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमुपदर्शयितुमाह

होइ चरमणिरये अडमिच्छाइपणतिरियाइउच्चेणाणं ।

भिन्नमुहुत्त लघुकायठिई सेसधुवणवरलाईणं ॥ ११८ ॥ (गीति)

(प्रे०) 'होइ' इत्यादि, तमस्तमःप्रभाभिधसप्तमनरकमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्या-
नद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धितुष्करूपाणामष्टानां प्रकृतीनां तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्रमनुष्य-
गतिमनुष्याऽनुपूर्वीरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामुच्चैर्गोत्रस्य च लघुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितो वर्तते ।
तद्यथा-मार्गणायामस्यां विद्यमानः कश्चित् सम्यग्दृष्टिर्जीवः सम्यक्त्वात्परिच्युतोऽन्तर्मुहूर्तं यावज्ज-
घन्यतो मिथ्यात्वमात्रं लब्ध्वा पुनरपि सम्यग्दृष्टिः संजायते तदा सम्यक्त्वद्वयापान्तरालेऽन्तर्मुहूर्तं
यावद् मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपं प्रकृतित्रयं च बध्नाति, तथा कश्चि
देतन्मार्गणावर्ती सम्यग्दृष्टिः स्वकीयमार्गणाया अन्तर्मुहूर्तावशेषे मिथ्यात्वं प्रपद्य मार्गणां परावर्त-
यति तदाप्यन्तर्मुहूर्तं यावत्प्रकृतीनामासां बन्धं विधरो, एतत्प्रकारद्वये यदल्पतरमन्तर्मुहूर्तं तदेवात्र
जघन्यतया ग्राह्यम् । तथैतन्मार्गणागतः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्जीवो मिथ्यात्वमात्रं त्यक्त्वाऽन्तर्मुहूर्तं
सम्यक्त्वमवाप्य पुनरपि मिथ्यादृष्टिर्भवति, तदा मिथ्यात्वद्वयमध्ये सम्यक्त्वावस्थायामन्तर्मुहूर्त-
कालपर्यन्तं मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीर्बध्नाति । 'लघुकायठिई' इत्यादि प्रकृतमार्गणायां

मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकव्यतिरिक्तशेषैकोनचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातिव्रसपराघातोच्छ्रामवादर्पयाप्तप्रत्येकनामकर्मरूपाणां च नवानां प्रकृतीना जघन्यतो बन्धकालः स्वल्पधुकायस्थितिप्रमितोऽस्ति, तावत्कालमत्र सततं बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विह्यास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसहननपट्कसंस्थानपट्कविहायोगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतनामरूपाणां षट्त्रिंशत्शेषप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः 'सञ्चह होइ' इत्यादिना समयप्रमाणोऽवमातव्यः, तदेवम्—उद्योतनामकर्मणस्तथास्वभावादेवैकसामयिको जघन्यबन्धकालः, शेषप्रकृतीनां चासां परावर्तमानभावेन बध्ममानत्वादेव समयप्रमाणो जघन्यतया बन्धकालः ॥११८॥

साम्प्रतं तिर्यगोघादिमार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतीना जघन्यबन्धकालं कथयितुकाम आह—

तिरिधे पणिदितिरिधे विण्णेया ससजहण्णकायठिई ।

धुवबन्धीणेगारसथीणद्वितिगाइवज्जाण ॥ ११९ ॥

(प्रे०) 'तिरिधे' इत्यादि, तिर्यगोघतियेकपञ्चेन्द्रियौघलक्षणमार्गणाद्वये स्त्यानद्वित्रिकाऽन-

न्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीर्विहायशेषाणा षट्त्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां क्षुल्लकमवप्रमाणस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणो जघन्यतो बन्धकालो विज्ञेयः । नन्वत्र मिथ्यात्ववर्जशेषपञ्चत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनामनवरत बध्यमानत्वेन जघन्यकायस्थितिप्रमाणो जघन्यबन्धकालः सुतरां घटामञ्चति, किन्तु मिथ्यात्वमोहनीयस्य सम्यक्त्वद्वयान्तरालवर्ती नरकमार्गणावज्जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणो बन्धकालो वक्तव्यः स्यात्, किमर्थमेवमकृत्वा भवद्भिर्जघन्यस्वकायस्थितिप्रमाणोऽभिहित इति चेत्, सत्यम्, परं सम्यक्त्वद्वयान्तरालवर्त्यन्तर्मुहूर्तलक्षणो बन्धकालः क्षुल्लकमवापेक्षया गुरुतरत्वेन मार्गणयोरनयोः जघन्यरूपतया गणनां प्राप्तुमनर्हः, तस्मात्तावत्प्रमाणता तस्यानभिहिता । प्रस्तुतमार्गणाद्वये वेदनीयद्विकं स्त्यानद्वित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कं जातिपञ्चक्रमादारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं सहननपट्कं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं विहायोगतिद्विकं व्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतोच्छ्रामपराघातरूपप्रत्येकप्रकृतिचतुष्कं गोत्रद्वयं चेति सप्तसप्ततिप्रकृतीना लधुबन्धकालः "सञ्चह होइ" इत्यादिना, समयमात्रो वेदयितव्यः, अत्रापि स्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशध्रुववन्धिप्रकृतीनां समय प्रमाणो बन्धकाल एवमुपपादनीयः, यथा मार्गणाद्वयेऽस्मिन् स्थितोपशमसम्यक्त्वसंयुतदेशविरतो देशविरतिगुणस्थानकान्निपन्य समयमेकं सास्वादनभावमवाप्य मार्गणान्तरमवाप्नोति तदा समयमेकं सास्वादनावस्थायामेता एकादशस्त्यानद्वित्रिकप्रभृतिप्रकृतीर्वध्नाति । शेषाध्रुववन्धिप्रकृतीना समयात्मको बन्धकालोऽध्रुववन्धित्वात् प्राप्यते ॥११९॥

अथ पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणाद्वये तमाह—

पञ्चपणिदियतिरिति रजोणिमईसुं भवे मुहुत्तंतो ।

ध्रुववन्धोणेगारसयीणद्वितिगाइवज्जाणं ॥ १२० ॥

(प्रे०) “पञ्चपणिदिय” इत्यादि, पर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपे मार्गणाद्वये एकादशस्त्यानद्वित्रिकप्रमुखप्रकृतीर्विवर्ज्य शेषपट्त्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं भवति, भावना पुनरेवं भावनीया-मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चित् सम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वात्परिभ्रष्टः सन् जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावन् मिथ्यात्वभावे स्थित्वा भूयोऽपि सम्यक्त्वं लभते तदा मिथ्यात्वावस्थायामन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धको भवति, अथैतन्मार्गणायाश्चरमान्तर्मुहूर्ते कश्चित् प्राणी मिथ्यात्वमासाद्य मार्गणान्तरमश्नुते, तदाप्यसौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तकालं मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नाति, तथा कश्चिन् मिथ्यादृष्टिरसुमान् मनुष्यमवत्यागानन्तरं स मार्गणयोरनयोरुत्पद्य जघन्यस्थित्यात्मकाऽन्तर्मुहूर्तकालं च स्थित्वा मार्गणान्तरं याति तदा स मार्गणयोरनयोरन्तर्मुहूर्तं यावत् सततं स्त्यानद्वित्रिकादिप्रकृत्येकादशकं विना शेषपट्त्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीर्वध्नाति, एतत्प्रकारत्रये यदल्पतममन्तर्मुहूर्तं तदेवेह मिथ्यात्वजघन्यबन्धकालतया ग्राह्यम्, तथा शेषपञ्चत्रिंशतो भ्रुववन्धिनीनां तु तृतीयप्रकारेणैव यदन्तर्मुहूर्तमागतं तज्जघन्यबन्धकालतया ग्राह्यम् । एकादशस्त्यानद्वित्रिकादिप्रकृतीनां पट्पटिशेषाभ्रुववन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालः “सञ्चइ होइ” इत्यादिना सम्यमात्रोऽवसेयः, भावनां प्राप्तवद्भावनीया ॥ १२० ॥ अधुनाऽपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु सर्वासु तेजस्कायवायुकायमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

असमत्तपणिदियतिरिमणुसपणिदियत्सेसुं सञ्चेसुं ।

एगिदियविगलेसुं कायपणगसञ्चमेसुं ॥ १२१ ॥

ध्रुववन्धिउरालाणं ससलहुकायद्विई तहेव भवे ।

तिण्ह तिरियाईण वि सञ्चेसुं तेउवाऊसुं ॥ १२२ ॥

(प्रे०) “असमत्त” इत्यादि, अपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तप्रसरूपासु चतुर्मागणासु, एकेन्द्रियविकलेन्द्रिययोः सर्वेषु मार्गणाभेदेषु, पृथ्वीकायाक्कायतेजस्कायवायुकायवनस्पतिकायानां सर्वेषु मार्गणाभेदेषु चेति मभुदितासु नवपञ्चाशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च जघन्यो बन्धकालः स्वलघुकायस्थितिमितोऽधिगन्तव्यः । तदित्थम्-पृथ्वीकायिकादिमत्क्रौंचवाढरौघसूक्ष्मौघभेदेषु तथा तदपर्याप्तभेदेषु च जघन्यकायस्थितिः सुल्लभभवप्रमाणा विद्यते, पर्याप्तपृथ्वीकायिकादीनां चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा, तावत्कालं ते तासां प्रकृतीनां बन्धं नैरन्तर्येण कुर्वन्ति, अतस्तद्बन्धकालोऽपि तावत्प्रमाणो बोध्यः । तथा वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं, संहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशकं पराघातातपोद्योतोच्छ्वासरूपं प्रत्येक-

प्रकृतिचतुष्कं गोत्रद्वयं चेत्येतासामेकोनपष्टिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणः । “तद्देव” इत्यादि, तेजस्कायवायुकायिकयोः सर्वासु चतुर्दशमार्गणासु ‘तथैव’ ध्रुवबन्धिन्यौदारिकप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालवत् “तिण्ह” इत्यादि, तिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रिकस्याऽपि जघन्यबन्धकालः स्वस्वलघुकायस्थितिसमयप्रमितो बोद्धव्यः, आसामप्यत्र निरन्तरबन्धित्वात् । तथा तिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रमनुष्यद्विकोचैर्गोत्ररूपप्रकृतिपट्क्वर्जितानामनन्तरोक्तशेषत्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः “सव्वह होइ” इत्यादिना समयमितो ज्ञातव्यः, तासामध्रुवबन्धित्वात् ॥१२१-१२२॥

साम्प्रतं मनुष्यनपुंसकवेदमार्गणयोस्तथाऽऽहारकादिमार्गणासु जघन्यबन्धकालमाह—

मिच्छस्स खुडुगभवो णरणपुमेसु जहण्णकायठिई ।

आहारम्मि दुणरथीसु मुहुत्तंतो विभङ्गे वा ॥ १२३ ॥

(प्रे०) “मिच्छस्स” इत्यादि, मनुष्यौघनपुंसकवेदमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतो बन्धकालः क्षुल्लकभवप्रमाणोऽधिगम्यः, यतो मार्गणयोरनयोः क्षुल्लकभवप्रमाणैव जघन्या कायस्थितिर्विद्यते, तावत्कालपर्यन्तं च मिथ्यात्वावस्थायामत्र मिथ्यात्वमोहनीयं बध्यते, तथा मार्गणाद्वयेऽस्मिन् मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः “सव्वह होइ” इत्यादिना समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, सर्वासामासां प्रकृतीनां विषये भावना पुनरेवं कर्तव्या—मार्गणोरनयोर्वर्तमान उपशमसम्यग्दृष्टिः सर्वविरतः प्रमत्तसंयतगुणस्यानकात्पतित्वा प्राप्तसास्वादनभावोऽनन्तरसमये भूत्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदा सास्वादनभाववर्ती स समयमेकं रत्यानर्द्धित्रिकाऽनन्ताधुवन्विचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा पञ्चदशप्रकृतीर्वध्नाति । उशपमश्रेणोऽररोहकः कश्चिन्मनुष्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकादिषोडशप्रकृतिवर्जानामेकत्रिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यथायोग्यं बन्धस्थानं प्राप्य समयमेकं ताः प्रकृतीर्वद्ध्वा भ्रियते, तदा प्रकृतीनामासामेकसमयमितो बन्धकालोऽवाप्यते । शेषाणामेकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वादेकसमयप्रमाणो बन्धकालो लभ्यते, अत्रोपशमश्रेणोऽररोहको जिननामाहारकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य बन्धस्थानं लब्ध्वा समयमेकं च ताः प्रकृतीर्वद्ध्वा कालं कृत्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदाऽपि प्रकृतित्रयस्याऽस्यैकसामयिको बन्धकालः प्राप्यते, तथा कश्चिदसमान् सप्तमगुणस्थानक्रमागत्याऽऽहारकद्विकं बध्नन् समयमेकं स्थित्वा पञ्चत्वं प्राप्नोति तदाऽप्याहारकद्विकस्य समयप्रमाणो बन्धकालोऽवाप्यते । “आहारम्मि” इत्यादि, आहारकमार्गणाया मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतो बन्धकालः त्रिसमयन्यूनक्षुल्लकभवलक्षणस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमितो वर्तते, तावत्कालं तस्य तत्राऽनन्तरं बध्यमानत्वात् । मिथ्यात्वमोहनीयं विना पञ्चदशाधिकशतप्रकृतीनां लघुबन्धकालः ‘सव्वह होइ’ इत्यादिना समयमानोऽवसातव्यः, धटना पुनरिह मनुष्यौघमार्गणावत्कर्तव्या । “दुणर” इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीन्त्रीवेदविभङ्गज्ञानाऽभिधासु चतसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यतया बन्धकालो-

ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वेदयितव्यः, सोऽपि विभङ्गज्ञानमार्गणावर्जप्रकृतमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीय-
स्या-ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बन्धकालः सम्यक्त्वद्वयान्तरालप्रमाणः, मार्गणानां पूर्वोक्तनीत्या चरमकालमितः,
मार्गणानां जघन्यकायस्थितिप्रमितो वा प्राप्यमाणोऽस्ति, एतत्त्रिविधबन्धकाले योऽल्पतमो बन्धकालः
स एव जघन्यतया ग्राह्यः । विभङ्गज्ञानमार्गणायां तु कश्चित् सम्यग्दृष्टिरवधिज्ञानी सम्यक्त्वं त्यक्त्वा
जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वमवाप्य पुनरपि सम्यग्दृष्टिर्जायते तदा मिथ्यात्वभावस्थितः सोऽन्तर्मु-
हूर्तं मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति, 'वा' कारेण तिर्यग्मनुष्यानाश्रित्यापि समयात्मिका जघन्यकायस्थि-
तिरस्ति तन्मते समयप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेयः । विभङ्गज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेष-
पट्यन्वारिशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामाहारकद्विकर्जितशेषपट्यपट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च स्त्रीवेद-
पर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु मार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपञ्चदशधिकशतप्रकृतीनां जघन्यतो
बन्धकालः 'मन्वद् होइ' इत्यादिना समयप्रमाणो वेदयितव्यः । विभङ्गज्ञानमार्गणायामेकसमयप्रमित-
बन्धकालस्य भावनाऽनया रीत्या भावनीया--कश्चिद् देवो नारको वा मार्गणाया अस्या अन्तिमसमये
सम्यक्त्वान्निपत्य सास्वादनगुणस्थानकमागत्य समयमेकमुक्तप्रकृतीर्वद्वा मार्गणान्तरं व्रजति तदा
समयप्रमाणो जघन्यबन्धकाल उक्तप्रकृतीनामुपलब्धो भवति । स्त्रीवेदादिमार्गणासु तु भावना मनु-
ष्यौघवदवसेया ॥ १२३ ॥ अथ देवमार्गणावर्जप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं चिन्तयन्नाह -

मिच्छाद्विभङ्गजिअधुवबन्धिपणपरधाइउरलाणं ।

देवीसाणतेसुं होइ ससजहण्णकायठिई ॥ १२४ ॥

मिच्छत्स मुहुत्ततो जिणस्स सोहमाअलहुकायठिई ।

सुरसोहम्मेसु भवे ईसाणे सअजहण्णकायठिई ॥ १२५ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "मिच्छाद्वि" इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानलक्षणासु षण्मार्गणासु
मिथ्यात्वमोहनीयस्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपं प्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारि-
शद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासवादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम-
कर्मणश्च स्वस्वजघन्यकायस्थितिप्रमितो जघन्यो बन्धकालः, एतावत्कालपर्यन्तं प्रकृतीनामासां मा र्ग-
णास्वासु सततं व्यमानत्वात् । "मिच्छत्स" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यबन्धकालोऽन्त-
र्मुहूर्तप्रमाणो भवति, भावना पुनरत्र नारकौघमार्गणायां यथाकृता तथैव कर्तव्या । "जिणस्स"
इत्यादि, देवौघसौधर्ममार्गणयोजिननामकर्मणो जघन्यतो बन्धकालः सौधर्ममार्गणाया अजघन्यकाय-
स्थितिसमयप्रमाणो बोद्धव्यः । "ईसाणे" इत्यादि, ईशानदेवमार्गणायां तीर्थकृत्नामकर्मणो जघन्य-
बन्धकालः स्वाऽजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽवसातव्यः, भावना त्वत्र सनत्कुमारादिमार्गणावद्
विधेया । तथा स्थानद्वित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कं वेदनीयद्विकं हास्यादिपुगलद्वयं वेदत्रयं
तिर्यग्मनुष्यगती एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाती औदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्म-
नुष्यानुश्रुतीद्वयं खगतिद्वयं त्रसस्थावरे स्थिरपट्कमस्थिरपट्कमातपोधोतनाम्नी गोत्रद्वयं चेति

पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः “सञ्च ह्ये” इत्यादिना समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, तत्र स्थान-
द्वित्रिकप्रभृतिप्रकृतिसप्तकस्य समयात्मकजघन्यबन्धकालत्रयस्य सास्वादनभावमाश्रित्य प्राग्बद्ध भावना
कर्तव्या, शेषप्रकृतीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेवैकसामयिको जघन्यो बन्धकालः प्राप्यते ॥१२४-१२५॥

अथानतादिपञ्चानुत्तरपर्यन्तमार्गणाधुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्रतिपादयति

होइ सलहुकायठिई गेविज्जतेसु घाणयाईसु ।

मिच्छाईअहुवज्जिअधुवणरदुगनपुरलाईण ॥ १२६ ॥

मिच्छस्स मुहुत्ततो जिणस्स होइ ससअलहुकायठिई ।

सायाइबारवज्जाण सकायठिई अणुत्तरेसु भवे ॥ १२७ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “होइ” इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतरूपासु नवग्रैवेयकरूपासु च त्रयोदश-
मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भुवबन्धप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौ-
दारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रसपराधातोच्छ्वासत्रादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मप्रकृतीनां च जघन्यतया बन्ध-
कालः स्वकीयस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमितो भवति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामेतावत्काल-
पर्यन्तमनन्तरं वध्यमानत्वात् । “मिच्छस्स” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य जघन्यो बन्धकालो-
ऽन्तर्बद्धप्रमाणोऽस्ति, अत्र भावना देवौघमार्गणावदवसेया । “जिणस्स” इत्यादि, जिननामकर्मणो-
जघन्यतया बन्धकालः स्वकस्वकाऽजघन्यकायस्थितिप्रमाणो बोध्यः, एतद्विषयेऽपि भावना सनत्कु-
मारादिमार्गणोक्तपद्धत्यैव भावनीया । तथा स्थानद्वित्रिकं वेदनीयद्विकमनन्तानुध्वनिचतुष्कं
हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं संहननपट्कं संस्थानपट्कं विहायोगतिद्विकं स्थिरपट्कमस्थिरपट्कं
गोत्रद्वयं चेति शेषाणां चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिकः “सञ्च ह्ये”
इत्यादिना ज्ञातव्यः, भावनाऽपि प्राग्बद्धसेया । “सायाइ” इत्यादि, विजयाधनुत्तररूपासु पञ्चसु
मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्ति-
नामकर्मरूपा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्यारूपानावरणादि-
द्वादशकषायभयशुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयागुरुलवूपघातनिर्माणवर्णादिचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां
नवत्रिंशद्भुवबन्धप्रकृतीनां पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवर्णभनाराचसंहननसम-
चतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीशुभविहायोगतिप्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराधातोच्छ्वासजिननामोर्चैर्गोत्ररू-
पाणां विशत्यध्रुवबन्धप्रकृतीनां च जघन्यतो बन्धकालः स्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति,
अनुत्तरसुराणां सम्यग्दृष्टित्वेन ध्रुवबन्धकल्पत्वात्प्रकृतीनामासामेतावत्कालपर्यन्तं निरन्तरं वध्य-
मानत्वात् । “सञ्च ह्ये” इत्यादिना सातवेदनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतीनां समयात्मको लघुबन्धकालो
वेदयितव्यः, परावर्तमानभावेन हि वध्यमाना इमाः प्रकृतयः सन्ति ॥१२६-१२७॥

इदानीं पञ्चेन्द्रियप्रसकायसंज्ञिमार्गणाधुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं विचारयन्नाह—

क्षुद्रुगभवो ध्रुवाणं परिणितसप्तजिगेसु तो हीणो ।

थीणद्वितिगाणां तित्थरस भवे मुहुत्ततो ॥ १२८ ॥

(प्रे०) “क्षुद्रुगभवो” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघत्रसौधसंज्ञिरूपासु मार्गणासु स्थानद्वित्रिकान्तानु-
बन्धचतुष्कलक्षणप्रकृतिमत्तत्त्वजितशेषचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालः क्षुल्लकभव-
प्रमाणोऽवसेयः, यतो हि मार्गणा एता जघन्यतया तावत्स्थितिकाः सन्ति, अत्र च तावत्कालं तासां
सततं बन्धः । ननु प्रकृतमार्गणासु वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिजीवः सम्यक्त्वं त्यक्त्वा मिथ्यात्वं
प्रपद्यते, अन्तर्मुहूर्तानन्तरं च पुनः सम्यक्त्वमासादयति, तदपेक्षया सम्यक्त्वद्वयान्तराले, अथवा
प्रकृतमार्गणागतो देवः सम्यक्त्वात्पतित्वा मिथ्यात्वं प्राप्याऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं देवमवाप्नुयैकेन्द्रि-
येषूपपद्यते, तदपेक्षयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यबन्धकालः प्राप्तुं शक्यते, तथापि भवद्भिः प्रकृतप्रकृ-
तीनां जघन्यबन्धकालः कथमन्तर्मुहूर्तप्रमाणो नाभिहित इति चेन्न, एतत्प्रकारद्वयप्राप्ताऽन्तर्मुहूर्त-
कालापेक्षया क्षुल्लकभवप्रमाणप्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेरल्पतरत्वात् । ‘थीणद्वि’ इत्यादि,
स्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालः क्षुल्लकभव-
लान्यूनो वर्तते; तद्यथा—कश्चिदुपशमसम्यग्दृष्टिदेवः सम्यक्त्वतः पतित्वा सास्त्रादनगुणस्थानकं
प्राप्नोति, तदनन्तरं यथासंभवं शीघ्रं कालं कृत्वैकेन्द्रियेषूपपद्यते, तस्य दर्शितसास्त्रादनगुणस्थान-
कालप्रमाणो जघन्यबन्धकालः प्राप्यते, स च कालः क्षुल्लकभवादतीव न्यूनो दृष्टव्यः । ‘तित्थस्स’
इत्यादि, जिननाम्नो जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, तस्य भावनौधवत्कार्या । जिननामा-
युष्कचतुष्करूपं प्रकृतिपञ्चकं परित्यज्य शेषाणामध्रुवबन्धिनीनामष्टपष्टिप्रकृतीनां ‘सञ्चह होइ’ इत्या-
दिना जघन्यो बन्धकाल एकसामयिकोऽधिगम्यः, अध्रुवबन्धित्वात् ॥ १२८ ॥

सम्प्रति पर्याप्तपञ्चेन्द्रियप्रमृतिमार्गणाभूतरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

पञ्जत्तपरिणदियतसचक्खुसु परिणदियव्व सत्तण्ह ।

सेसध्रुवबन्धिणीण तित्थयरस्स य मुहुत्ततो ॥ १२९ ॥

(प्रे०) “पञ्जत्त” इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियपर्याप्तसचक्षुर्दर्शनमार्गणासु स्थानद्वित्रिका-
ऽनन्तानुबन्धचतुष्कलक्षणानां सप्तानां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावज्ञातव्यः ।
स च क्षुल्लकभवादपि न्यूनप्रमाणो ज्ञातव्यः । “सेस” इत्यादि, एतत्प्रकृतिसप्तकमृते शेषध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां जिननामकर्मणश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यतया बन्धकालो विद्यते, तत्रापि मिथ्यात्वस्य
नरकवत्त्रिविधप्रकारेण, जिननाम्ना ओधजघन्यबन्धकालवत्शेषध्रुवाणां च मार्गणाजघन्यकाय-
स्थितिं यावद्बन्धेन जघन्यबन्धकालो भावनीयः । जिननामायुष्कचतुष्कजितशेषाष्टपष्ट्यध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः ‘सञ्चह होइ’ इत्यादिना समयरूपोऽवसातव्यः, अध्रुवबन्धित्वात् ॥ १२९ ॥

अधुनौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमुपदर्शयन्नाह

ओरालमीसजोगे होअइ धुववधिउरलाणं ।

तिलशूणो खडुभवो अतमुहुत्तं सुराडपचण्हं ॥ १३० ॥ (उद्गीति)

(प्रे०) “ओराल” इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च जघन्यभूतो बन्धकालः त्रिधन्यूनक्षुल्लकभवलक्षणस्त्रजघन्यकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा—औदारिकमिश्रमार्गणायां त्रिधन्यूनक्षुल्लकभवान्मिकजघन्यकायस्थितिका लब्धपर्याप्तास्तिर्यग्मनुष्या एव वर्तन्ते, तेषां च प्रथममेवैकं गुणस्थानकं वर्तते, तस्मात्सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयस्तैरेनवरतं बध्यन्ते, औदारिकशरीरनाम च तेषां तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धभावेन तद्विपक्षप्रकृतिबन्धाभावात्तैरेनवरतं बध्यते, अतोऽभिहितप्रमाणो निरुक्तप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल उपपन्नो भवति । ‘अंतमुहुत्तं’ इत्यादि, सुरादिकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमस्ति, तदित्यम्—सुरादिप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकः सम्यग्दृष्टिरेव भवति, स च यदा प्रस्तुतौदारिकमिश्रमार्गणायां वर्तते तर्हि जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तकालमेव, तस्मात्प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । तथा शेषाणां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यतिर्यग्गतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसहननपट्कसंस्थानपट्कमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयसदृशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणामेकोनपट्प्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वाज्जघन्यबन्धकालः ‘सव्वह होइ’ इत्यादिना समयरूपोऽधिगम्यः ॥१३०॥

सम्प्रति वैक्रियमिश्राहारकमिश्रमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमाह

बिउवाइदुभोसेसुं धुवपणपरधाइउरलतित्याण ।

तेरहजिणाइवज्जाण कमा जेयो मुहुत्ततो ॥ १३१ ॥

(प्रे०) ‘बिउवाइदुभोसेसुं’ इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराधातोच्छ्वासवासरपर्याप्तप्रत्येकौदारिकशरीरजिननामप्रकृतीनां च जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तरूपो ज्ञेयः । आहारकमिश्रमार्गणायां तु “तेरहजिणाइवज्जाण” इति जिननामसातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपास्त्रयोदशप्रकृतीः परिहृत्य शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयागुरुलघूपधातनिर्माणवर्णादिचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकममचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रयचतुष्कसुभगत्रिकपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः, वैक्रियमिश्राहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोरजघन्यत्वेनाऽन्तर्मुहूर्तमितकायस्थितिमच्चात्, तावत्कालचतासा सततं बध्यमानत्वात् । वैक्रियमिश्रमार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्या-

पुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्काऽऽतपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्टचत्वारिंशत्शेषाध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः 'सम्बद्ध होइ' इत्यादिना समयात्मकोऽवसातव्यः । ननु स्त्यान-
र्द्धित्रिकादिसप्तप्रकृतीनां वैक्रियमिश्रमार्गाणां सास्वादगुणस्थानमपेक्ष्य समयप्रमाणो जघन्यबन्ध-
कालः सम्भवेत्, तत् कथं नोक्तम् ? इति चेद् उच्यते सास्वादमपेक्ष्य समयप्रमाणः सप्तप्रकृती-
नामासां बन्धकालस्तदा भवेद् यदा प्रकृतमार्गाणावर्तिसम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वगुणस्थानतश्च्युत्वा समय-
मेकं सास्वादेने स्थित्वा मार्गान्तरं व्रजेत्, परं प्रस्तुते तु मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानयोः परा-
वृत्तेरभावेनैतदसम्भवात् प्रकृतसप्तप्रकृतीनां समयप्रमाणो जघन्यबन्धकालः प्राप्यते, अतोऽन्तर्मुहूर्त-
प्रमाणो जघन्यबन्धकालस्तासां प्रकृतीनां भणित इति । आहारकमिश्रकाययोगमार्गाणां तु जिन-
नाममातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणः, तीर्थकृत्नामकर्मण एकसाम-
यिकजघन्यबन्धकालविषये भावनेत्य भावनीया, यथा—कश्चिज्जीवो मार्गाणां स्थितः मार्गाणां
प्रान्तसमये जिननामकर्मबन्धं प्रारभ्य मार्गान्तरं याति तदा तीर्थकृत्नामकर्मणो बन्धस्यैकसामयि-
कत्वमुपलभ्यते । तथा शेषाणां द्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानत्वेन समयमात्रकालोऽधिगम्यः ॥१३१॥

अथ पुरुषवेदादिमार्गाणाद्वृत्तप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालमानं भण्यते—

भिन्नमुहुत्तं पुरिसाजयाणयणअसुहलेसमवियेसु ।

धुवत्तिथाण एवरि अणयीणद्धितिगाण वा पुमे समयो ॥१३२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'भिन्नमुहुत्त' इत्यादि, पुरुषवेदाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनाऽशुमलेश्यात्रयमव्यमार्गाणां
सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितोऽस्ति । अत्राऽ-
चक्षुर्दर्शनमव्यमार्गणयोर्भाविना सर्वथौघवत्कार्या । अशुमलेश्यात्रये ध्रुवबन्धिनीनां जघन्यबन्धकालो
जघन्यकायस्थित्या, जिननाम्नस्तु जघन्यकायस्थितितोऽधिकरूपोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालो जघन्य-
बन्धकालतया प्राप्यते । असंयममार्गाणायामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो जघन्यकाय-
स्थित्या प्राप्यते । पुरुषवेदे तूक्ताऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिभ्यो मिथ्यात्वाष्टकरहितशेषचत्वारिंशत्प्रकृतीनां
जघन्यबन्धकालो जघन्यकायस्थित्या प्राप्यते, तत्राऽपि मध्यमकपायाष्टकस्य मिथ्यात्वगुणस्थानजघन्य-
कालापेक्षया चतुर्थगुणस्थानजघन्यकालापेक्षया वा प्राप्यते तथाऽप्यत्र कालद्वये यः कालोऽप्यतरः स
एव जघन्यबन्धकालतया ग्राह्यः । तथैव मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽपि जघन्यबन्धकालो ज्ञेयः । अनन्तानु-
बन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकालः समयप्रमाण एकेन मतेन प्राप्यते,
तद्धटनेत्यस्मू-यः कश्चित्प्रकृतमार्गाणावर्ती मनुष्यस्तिर्यङ्घ्रौपशमसम्यक्त्व प्राप्य ततः पतित्वा सास्वा-
दनभावे समयमेकं प्राप्नोति तदनन्तरं देवीतयोत्पद्य मार्गान्तरं प्राप्नोति तदा तस्य जीवस्य सास्वा-
दनभावे प्रकृतप्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणो लभ्यत इति समयप्रमाण कालः 'एवरि'
इत्यादिनाऽभिहितः । 'वा'कारेण एतत्प्रकृतिसप्तकस्य जघन्यबन्धकालः समयादधिकोऽन्तर्मुहूर्तादि-

प्रमाणो ऽवाप्यते, तद्ग्रीजं त्वेतत्—सम्यक्त्वादितः पतित्वाऽवाप्तसास्वादनभावो जीवो यदा समयान्तरं कालं करोति तदा पुरुषवेदाद् भिन्नवेदे नोत्पद्यते, तथैव तिर्यग्मनुष्यगतस्थो जीवः देवगतितोऽन्य-
गतिषु नोत्पद्यते, देवनारकौ तु मनुष्यगतितो भिन्नगतौ च नोत्पद्यते, ततः साम्वादनभावे
यावदल्पकालं स्थित्वा पुरुषवेदादेर्भिन्नवेदादिपूत्पद्यते तदा तावत्प्रमाणकालः प्रकृतप्रकृतिसप्तकस्य
जघन्यबन्धकालतया प्राप्यते, अतः 'चा' कारेण मतद्वयस्य संग्रहो ज्ञातव्यः ।

तथाऽपगतवेदमार्गणाया स्वप्रायोग्यज्ञानावरणीयाद्येकविंशतिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालस्तु
'सन्वह होइ' इत्यादिना समयप्रमितोऽवसातव्यः, तद्यथा—नवमधुणस्थानके पुरुषवेदविच्छेदानन्तरं
समयं यावद्वेदीभूय म्रियते, अथवा श्रेणितोऽवतरन् स्वस्वगन्धस्थाने समयमेकं ज्ञानावरणपञ्चकदर्श-
नावरणचतुष्कृमातवेदनीयसञ्चलनचतुष्कयशःकीर्त्यञ्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकलक्षणा एकविंशतिप्रकृती-
र्वध्वा म्रियते तदाऽपगतवेदमार्गणायां प्रकृतीनामासां समयरूपो बन्धकाल उपलब्धो भवति ॥१३२॥

अधुना क्रोधादिमार्गणासूतरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं दर्शयति

कोहाईसुं चउसुं समयो सन्वाण होइ समयुज्झो ।

होइ विसेसो अतोभुहुत्तलहुकायठिइगभये ॥ १३३ ॥

(प्रे०) 'कोहाईसु' मित्यादि क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सर्वासां
ध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिकोऽस्ति यतो हि मार्गणा इमा जघन्यतया
समयमितकायस्थितिभत्यः सन्ति । 'समयुज्झो' इत्यादि जघन्यतोऽपि कायस्थितिर्येषां मतेऽन्त-
र्मुहूर्तार्त्तिका तेषां मते श्रेणौ यामामेकविंशतो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदो जायते तासां प्रकृतीनां
जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः यदि प्रकृतमार्गणाः कालकरणानन्तरमपि जघन्यतोऽप्यन्त-
र्मुहूर्तभवतिष्ठन्ते, अन्यथा तु जघन्यतोऽपि यावत्कालमवतिष्ठन्ते तावत्कालस्तासां ध्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनां जघन्यबन्धकालतया प्राप्यते । शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु जघन्यबन्धकालसमयप्रमाणो विज्ञेयः,
स चेत्थम्—यदा समयप्रमाणावशिष्टाया क्रोधाद्यद्वायां कश्चिज्जन्तुः संयमात् पतित्वा मिथ्यात्वं
ब्रजति, तत्र च समयं यावन्मिथ्यात्वादिषोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धं कृत्वा मार्गणान्तरं प्राप्नोति
तदा तस्य जीवस्य समयप्रमाणकालस्तासां प्रकृतीनामुपलभ्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु समय-
प्रमाणकालोऽध्रुवबन्धित्वादुपलभ्यते ॥१३३॥

साम्प्रत चतसृषु मतिज्ञानादिमार्गणासूतरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं विचारयन्नाह

जेथो भिन्नमुहुत्ता मइसुअणाणेषु सम्भुवसमेसुं ।

सगधुववंधीण तहा गुणवीसणराइतित्थाण ॥ १३४ ॥

(प्रे०) 'जेथो' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानमम्यक्त्वौघांशमसम्यक्त्वलक्षणासु चतसृषु स्व-
प्रायोग्याणां मिथ्यान्वाद्यटप्रकृतिवर्जनविंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'णरुगवइराणि उरलं च उरलोवग

पणिदियतसपरधूसासवायरतिगाणि । पुमसुखगद्वपदमागिद्वसुहगतिगुच्च' इति संग्रहगाथावयवेषु
मणितानां मनुष्यद्विकवचर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवसनमपराघातोच्छ्वास-
बादरपर्याप्तप्रत्येकपुरुषवेदसुखगतिसमचतुरम्भसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपानामेकोनविंशतिप्रकृतीनाञ्च
जघन्यत्वेन बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमानो मिथ्यात्वद्वयान्तरालकालरूपजघन्यमम्यवत्त्वकालप्रमाणो
ज्ञेयः, प्रस्तुतमार्गणासु जिननामकर्मणश्चाऽन्तर्मुहूर्तमितो बन्धकाल ओधवत्प्राप्यते । तथा वेदनीयद्वयं
हास्यादियुगलद्वयं देवद्विकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिनामानि
चेत्यष्टादशानां शेषात्रुद्वन्धिप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालः "संवह होइ" इत्यादिना, समयात्म-
कोऽवमातव्यः, तदित्यम्—उपशमश्रेणितोऽवपतन्नष्टमगुणस्थानषष्ठभागे समयमेकं देवद्विकवैक्रिय-
द्विकप्रकृतिचतुष्कं वद्ध्वा मरणमाप्नोति, तदैतत्प्रकृतिचतुष्कस्यैकं गामयिवो बन्धकालः प्राप्तो
भवति । समयमेकं सप्तमगुणस्थानक आहारकद्विकं वद्ध्वा मृत्युमवैते तदाहारकद्विकस्य समयमात्रो
बन्धकालो लभ्यते । शेषप्रकृतप्रकृतीनां तु समयरूपो बन्धकालः परावर्तमानतया वध्यमानत्वेन
लभ्यः ॥१३४॥

अथाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वये प्रकृतमुच्यते

ओहिदुगे जेयो धुवचउदसपणिदियाइतित्याण ।

भिन्नमुहुत्तं व भवे भिन्नमुहुत्तं तु पणणराईणं ॥१३५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'ओहिदुगे' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशदध्रुव-
बन्धिवप्रकृतीनां 'पणिदियतसपरधूसासवायरतिगाणि । पुमसुखगद्वपदमागिद्वसुहगतिगुच्च' इति संग्र-
हगाथावयवेषु प्रतिपादितानां चतुर्दशानां प्रकृतीनां जिननाम्नश्च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो
ऽधिगम्यः । वा शब्दो विकल्पद्योतकः, विकल्पपक्षे मतान्तरेण समयप्रमाणप्रस्तुतमार्गणासत्कजघन्य-
कायस्थितितुल्योऽवसेयः । प्रथमप्रकारेणाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणबन्धकालभावनापुनरनन्तरोक्तमतिज्ञानमार्ग-
णावत्कार्या । मतद्वयेन "पणणराईणं" ति मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवचर्षभनाराचसंहननरूपस्य
प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यतो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव, यत आसां प्रकृतीनां बन्धका अत्र देवनारका एव
वर्तन्ते, तेषां च जघन्यतोऽपि प्रस्तुतमार्गणाकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवाऽस्ति, तदानीं चैता प्रकृती-
निर्न्तरं ते बध्नन्ति ॥१३५॥

अथ केवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणयोरज्ञानादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्रति-
पादयितुमाह

सायस्स केवलदुगे भिन्नमुहुत्तं अणाणदुगमिच्छे ।

धुवबधीणं अमणे खुहुभवो अमजिये गत्थि ॥१३६॥

(प्रे०) "सायस्स" इत्यादि, केवलज्ञानकेवलदर्शनारूपमार्गणाद्वये सातवेदनीयस्य जघ-
न्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, सयोगिगुणस्थानकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमितकायस्थिति-

मन्वात् । “अणाणदुग” इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानमिथ्यात्वरूपासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भुवनन्धिप्रकृतीनां जघन्यात्मको बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रोऽवसेयः, तद्यथा—मार्गणास्वासु सम्यग्दृष्टिः कश्चित् प्राणी सम्यक्त्वं त्यक्त्वाऽऽयातः, अन्तर्मुहूर्तं चात्र स्थित्वा पुनरपि सम्यक्त्वं लब्ध्वा प्रकृताऽज्ञानादिमार्गणाप्रतिपक्षमार्गणासु याति तदा सम्यक्त्वद्वयान्तराले सोऽज्ञानादिमार्गणावर्ती ध्रुववन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तकालं बन्धं प्रकरोति । तथा मार्गणास्वासु जिननामाहारकद्विकायुश्चतुष्करूपप्रकृतिसप्तकवर्जशेषपट्पृथग्ध्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः, ‘संवद् होइ’ इत्यादिना समयप्रमाणोऽवसातव्यः, अध्रुववन्धित्वात् । “अमणे” इत्यादि, अमंजिमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालः क्षुल्लकभवप्रमितोऽस्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकायस्थिते स्तावन्मित्वात् तावत्कालं चानवरतं तामां बध्यमानत्वाच्च । तथा जिननामाहारकद्विकायुष्कचतुष्कवर्जशेषपट्पृथग्ध्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः “संवद् होइ” इत्यादिना समयमितोऽवसेयः । “अभविथे” इत्यादि, अभव्यमार्गणायां ध्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो नास्ति, यतो हि—मार्गणायामस्यां सर्वदैव ता बध्यन्ते, मार्गणाया अस्या अनादिध्रुवत्वात् । तथा जिननामादिप्रकृतिसप्तकवर्जशेषपट्पृथग्ध्रुववन्धिप्रकृतीनां तु जघन्यबन्धकालः “संवद् होइ” इत्यादिना समयप्रमाणो वेदयितव्यः, अध्रुववन्धित्वात् ॥१३६॥

इदानीं परिहारविशुद्धिप्रभृतिमार्गणासुत्तरप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं चिकथयिषुराह

परिहारदेसवेअगमोसेसु कमाऽत्थि सलहुकायठिई ।

चउदसवारसचउदसवारससायाइवज्जाण

॥१३७॥

(प्रे०) “परिहार” इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां ‘सायेयरदुजुगलथिरसुहजसमथिरवसुहमजसाणि । आहारदुग’ मितिसंग्रहमाथावयवेषु प्रतिपादिताः सातवेदनीयादिचतुर्दशप्रकृतीर्वर्जयित्वा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सार्तजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघून्घातनिर्माणवर्णचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक्रमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपराधातोऽब्ध्वासजिननामोच्चैर्गौरूपाणां चैकोनविंशत्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यो बन्धकालः स्वकीयजघन्यकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा येषां मते विद्यते, तेषां मतेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो जघन्यबन्धकालः, येषां मते समयप्रमाणा कायस्थितिः, तेषां मतेन तु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यबन्धकाल एकसामयिको अधिगम्यः । परिहारविशुद्धिमार्गणाया इयती कायस्थितिः कथमिति चेदुच्यते, परिहारविशुद्धिभयममङ्गीकृत्य समयानन्तरमन्तर्मुहूर्तानन्तरं वा पञ्चन्व यो जीवः प्राप्नोति तदपेक्षयेयती कायस्थितिरुपपद्यते । एतन्मार्गणाया अन्तर्मुहूर्तमितजघन्यकायस्थितिमन्तर्भते सातवेदनीयप्रभृतिचतुर्दशप्रकृतीनामेकसामयिको जघन्यबन्धकालः ‘संवद् होइ’ इत्यादिना ज्ञातव्यः, भावना पुनरेवम्—सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानतया

वध्यमानत्वेनैकसामयिको बन्धकालः प्राप्यते, आहारकद्विकस्य तु समयप्रमाणो बन्धकालो यदा सप्तमगुणस्थानके समयमेकमाहारकद्विकं ब्रूया कश्चिज्जीवो मरणमुपयाति तदा प्राप्यते । देश-
विरतमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्ञवलनचतुष्कमयकुत्सा-
तैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चविंशद्भ्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां सातवेदनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतिवर्जानां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसम-
चतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्कसु भगवन्निकपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोन-
विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितस्वकीयजघन्यकायस्थितिप्रमाणो
योद्धव्यः । तथा सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धकालः समयमेकं 'सञ्चह होइ' इत्या-
दिना वेदयितव्यः, परायतमानत्वेन वध्यमानत्वात् । क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादयो
द्वादशाऽऽहारकद्विकं चेति चतुर्दशप्रकृतिवर्जानां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽनन्तानुबन्धिच-
तुष्कवर्जशेषद्वादशकपायभयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायप-
ञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदनरद्विकसुरद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिक-
द्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवर्षभनाराचसंहननशुभलगतित्रसचतुष्कसु भगवन्निकपराधातोच्छ्वा-
सजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां च चतुर्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यतया बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमित-
स्वीयलघुकायस्थितिप्रमाणो ज्ञातव्यः, प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेस्तावन्मितत्वात्तावत्कालं तासां
निरन्तरवध्यमानत्वाच्च । सातवेदनीयादिचतुर्दशप्रकृतिसत्कजघन्यबन्धकालस्यैकसामयिकत्वं 'सञ्चह
होइ' इत्यादिनाऽवसेयम्, भावना प्राग्बद् । मिश्रमार्गणायां च सातवेदनीयप्रभृतियुगलपट्क-
वर्जानां शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायभयकुत्सा-
तैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थान-
वर्षभनाराचसंहननशुभलगतित्रसचतुष्कसु भगवन्निकपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्रलक्षणानां त्रयोविंशत्यध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमितस्वलघुकायस्थितिप्रमितोऽस्ति । 'सञ्चह होइ' इत्या-
दिना समयलक्षणो जघन्यतो बन्धकालः सातवेदनीयप्रमुखद्वादशप्रकृतीनामधिगन्तव्यः ॥१३७॥

सम्प्रति लेख्यामार्गणासु चतुरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं प्ररूपयिषुरादौ तावत् तेजोलेख्यामार्ग-
णायां तन्निरूपयन्नाह

तेऊअ सुहुत्तंतो पणपरधाआइचउसुराईणं ।

सगयीणद्धितिगाईवज्जिअ धुववधिपयडोण ॥१३८॥

ओरालस्स भवे दससहस्सवासाणि ।

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि तेजोलेख्यामार्गणायां पराधातोच्छ्वासवादनरत्रिकसुरद्विकवैक्रियद्विक-
रूपाणां नवप्रकृतीनां स्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणप्रकृतिसत्कवर्जशेषचत्वारिंशद्भ्रुव-
१० ख

बन्धिप्रकृतीनां च जघन्यो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वर्तते, मार्गणाया अस्याः कायस्थितेर्जघन्यतो-
ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । “ओरालस्स” इत्यादि, औदारिकशरीरनामकर्मणो जघन्यत्वेन बन्धकालो
दशमहस्रसंवत्सराणि भवति, तदित्यम्—तेजोलेश्यामार्गणायामौदारिकशरीरनामकर्मबन्धविधायिनो देवा
एव भवन्ति, नान्ये तिर्यङ्मनुष्याः, यत एते मार्गणायामस्यां देवप्रायोग्या एव प्रकृतीर्भवन्ति, देवानां
च जघन्या कायस्थितिर्दशमहस्रवर्षप्रमिताऽस्ति, ते तु मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनामकर्मप्रकृतिं दश-
सहस्रवर्षपर्यन्तमनवरतं बध्नन्ति । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य
वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गा-
हारकद्विकसहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थि-
रपट्काऽऽतपोधोतजिननामगोत्रद्वयलक्षणानामेकपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां
“संवह होइ” इत्यादिना समयलक्षणो जघन्यबन्धकालो वेद्यः । तत्राऽपि स्त्यानर्द्धित्रिकादि-
प्रकृतिसप्तकस्यैकसामयिकबन्धकालो मार्गणाया अस्याः ग्रान्तसमये सास्वादनाच्चमवाप्य मार्गणापरा
धृतिविधातुः कस्यचिज्जीवस्यैव प्राप्यते । जिननाम्न एकसमयो बन्धकालस्तु यः कश्चिन्मनुष्यस्तेजो-
लेश्यायां चरमसमये वर्तमानो जिननाम्नो नूतनबन्धप्रारम्भानन्तरं पञ्चलेश्यां प्राप्नोति तस्यैवा-
ऽवाप्यते । शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेव समयप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेयः ।

अथ पञ्चलेश्यामार्गणायां तदाह

..... पञ्चलेसाए ।

जेयो अब्भहिधा दो अयरा ओरालियदुगस्स ॥१३९॥

होइ मुहुत्ततो सुखिज्जवदुगसगपणिदियाईणं ।

सगयीणद्धितिगाइगवज्जिअधुववधिणीण च ॥१४०॥

(प्रे०) “पञ्चलेसाए” इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायामौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गरूप-
प्रकृतिद्वयस्य साधिकौ द्वौ सागरोपमौ जघन्यतो बन्धकालोऽस्ति, तद्यथा—एतन्मार्गणायामस्य प्रकृति-
द्वयस्य बन्धकाः सनत्कुमारादयः सुरा भवन्ति, तन्मध्ये येषां जघन्यकायस्थितिः पण्योपमाऽसङ्ख्येय-
भागाधिकसागरोपमद्वयप्रमिता, तेषामौदारिकद्विकबन्धो निरन्तरं तावत्कालं प्रवर्तते । “होइ”
इत्यादि, सुरद्विकर्षक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराधातोच्छ्वासवाटरत्रिकरूपाणामेकादशप्रकृतीनां
स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृतिसप्तकवर्जानां चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्त-
भवति । तदेवम्—प्रकृतीनामासामीदृशो बन्धकालो मार्गणायामस्या तिर्यङ्मनुष्यापेक्षयैव संपद्यते, यतो
मार्गणाया अस्या लब्धी कायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा तेष्वेव संभवति, तत्र चैताः प्रकृतीरेतावत्कालं
ते निरन्तरं बध्नन्ति । तथा स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां सप्तध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेद-
नीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयाहारकद्विकसहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यङ्मनु-

प्यानुपूर्वीद्वयविद्यायोगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननामोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां पञ्चचत्वारिंशद्-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च जघन्यबन्धकाल एकसमयः “सञ्चह होइ” इत्यादिगाथया ज्ञातव्यः,
ननु कपायाष्टकस्याऽपि समयमात्रो बन्धकालो वक्तव्यः स्यात्, तद्यथा—यो जीवः संयमाञ्च्युत्वा
समयमात्रं सास्वादनगुणस्थानं प्राप्नोति तदनन्तरं च लेश्यान्तरं गच्छति, तस्य निरुक्तप्रकृतीनां
समयप्रमाणो बन्धः संभवतीति चेत्, सत्यम्, यदि संयमतः सास्वादनगुणस्थानकं प्राप्तस्य पूर्व-
लेश्याकालः समयमात्रो भवेत् तदा बन्धकालः समयमात्रः सम्भवेत्, यदि च सास्वादनगुण-
स्थानानन्तरं पूर्वलेश्याकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव, तदा बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमेव प्राप्यते, यत्त्वत्र प्रकृत-
बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो दर्शितः, तस्माद् द्वितीयः प्रकारोऽत्र प्रधानीकृत इति । एवं तेजोलेश्या-
शुक्ललेश्ययोरपि भावनीयम् ॥१३९-१४०॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यं बन्धकालं दर्शयिषुमाह

सुक्काए जेयो सगपणिदिआइधुववघिचत्ताणं ।

भिन्नमुहूर्तं अयरा अट्टारस गसरलकुगसरा ॥१४१॥

(प्रे०) “सुक्काए” इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायाम् पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराधोतोच्छ्वास-
बादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां स्थानद्वित्रिकादिप्रकृतिसप्तकवर्जशेषचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां
च जघन्यतो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, भावना तु पञ्चलेश्यावत्कार्या । “अयरा” इत्यादि,
मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिचतुष्कस्य जघन्यो बन्धकालोऽष्टादश-
सागरोपमाणि ज्ञातव्यः, भावना पुनरेवम्—मार्गणायामस्यां देवा एव प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धकाः
सन्ति, तेष्वप्यानतादयो देवा एव, नापरे, तेष्वपि आनतदेवानामेवाऽष्टादशसागरोपमप्रमाणा
जघन्या कायस्थितिर्विद्यते, न परेषाम्, तस्मात् त एव जघन्यतोऽष्टादशसागरोपमकालपर्यन्तमे-
तत्प्रकृतिबन्धकत्वेनोपलभ्यन्ते । तिर्यग्मनुष्या अपि मार्गणायामस्यामुपलभ्यन्ते, पर ते एतत्प्रकृति-
चतुष्कं नैव बध्नन्ति, एतन्मार्गणास्थानां तेषां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वात् । स्थानद्वि-
त्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवगति-
वैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननाम-
गोत्रद्वयरूपाणां चतुश्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च “सञ्चह होइ” इत्यादिना समयमेकं जघन्यबन्ध-
कालो ज्ञेयः, भावना पूर्ववत्कर्तव्या । अत्राऽयं विशेषः—देवद्विकवैक्रियद्विकयोः समयमात्रो जघन्य-
बन्धकालः श्रेणेरवरोहकस्य बन्धममये कालकरणेनाऽवेसातव्यः । तथा पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाय-
योगौघौदारिकवैक्रियाहारककर्मणकाययोगऽकपाययथारूपातसंयमाऽनाहारकरूपासु शेषाष्टादशमार्ग-
णामु सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणोऽत्राऽनुक्तोऽपि ‘सञ्चह होइ जहणो
कालो समयो अवक्खमाणाण’ इत्यादिग्रन्थेन बोध्यः ॥१४१॥

सकलमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कवर्जानामुत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालं निरूप्य साम्प्रत-
मुत्कृष्टबन्धकालं निरूपयन्नादावचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणाद्वये तन्निरूपयति

ओधव्व गुरुकालो ध्रुववधीणं अचक्खुभविण्णुं ।

जवरि अणाइअणतो भगो भवियम्मि णेव भवे ॥१४२॥

(प्रे०) “ओधव्व” इत्यादि, अचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणयोः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां
प्रकृष्टबन्धकालं ओधवद् विज्ञातव्यः, तद्यथा अचक्षुर्दर्शनमार्गणाऽनाद्यनन्तानादिसान्तरूपा वर्तते,
भव्यमार्गणा चानादिसान्तरूपा वर्तते, अतो ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽचक्षुर्दर्शनमार्ग-
णायामनाद्यनन्ताऽनादिसान्तसादिमान्तरूपेण त्रिविधो विज्ञेयः, भव्यमार्गणायां चाऽनादि-
सान्तसादिसान्तरूपेण द्विविधो विज्ञेयः, भावना पुनरिहोद्यतोऽवसेया । भव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालस्यैववद्योऽतिदेशः कृतः, स न युक्तः, यतो हि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां
प्रकृष्टबन्धकालोऽनाद्यनन्तरूपोऽप्योद्ये प्रतिपादितः स चेह भव्यमार्गणाया एवाऽनादिसान्तरूपादनु-
पपन्न इत्यतिप्रसङ्गदोषवारणाय “जवरि” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—भव्यमार्गणायां ध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालतयाऽनाद्यनन्तमङ्गो नास्ति, एतन्मार्गणाया अनादिसान्तरूपत्वात् ॥१४२॥

इदानीमचक्षुर्दर्शनभव्यमार्गणाद्वय उक्तत्वात्तद्व्यतिरिक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां गुरुबन्धकालं लाधनार्थं पूर्वार्धेनातिदिशन्, तथा “परम” इत्याद्युत्तरार्धेन “णाणतिगे”
इत्यादिगाथया चातिदिष्टकाले यदतिप्रसक्तं तदपाकुर्वन्नाह

अण्णह ध्रुववधीण सप्पाउग्गाण सगुक्कायठिई ।

परमइमिच्छाईण सुरमुक्कासु इगतीसुवही ॥१४३॥

णाणतिगे ओहिभि य सम्भत्ते वेअगे मुगेयव्वो ।

मज्झसङ्कसायाणं अहिया तेरोसजलही वा ॥१४४॥

(प्रे०) “अण्णह” इत्यादि, अनन्तरोक्तमार्गणाद्वयव्यतिरिक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो बोध्यः, कायस्थितिं यावत्संततं
वध्यमानत्वात् । “परम” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—देवौघशुक्ललेश्यामार्गणाद्वये मिथ्यात्व-
मोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य प्रकृष्टबन्धकालं एकत्रिंशत्सागरो-
पमप्रमाणोऽवसातव्यः, कथमिति चेदुच्यते, प्रकृतमार्गणाद्वयस्योत्कृष्टकायस्थितिकालस्त्वनुत्तरदेवा-
पेक्षया वर्तते, अनुत्तरसुराश्च प्रकृतप्रकृतीनैव बध्नन्ति, सम्यग्दृष्टित्वात्तेषाम्, अत उत्कृष्टस्थितिक-
नवमग्रैवेयकाऽपेक्षया प्रस्तुतबन्धकालोऽवाप्यते, तद्यथा—एतन्मार्गणयोर्वर्तमानो नवमग्रैवेयकस्थः
कश्चिन्मिथ्यादृष्टिदेवः प्रकृततया स्वकीयोत्कृष्टैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणाऽऽयुःस्थितिं यावदेतत्प्रकृत्य-
ष्टकं बध्नाति । शुक्ललेश्याया पुनरेकत्रिंशत्सागरोपमाप्यनन्तमुद्भूतेनाधिकानि वाच्यानि, नृमवसत्कान्त-

मुहूर्तस्याधिकतया लाभात् । “जाण” इत्यादि; मतिश्रुतावधिज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु, अवधिदर्शनमार्गणायां मन्थकत्वौघक्षयोपशममन्थकत्वमार्गणाद्वये चेति समुदितपणमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां मध्यमाष्टकपायाणां गुरुबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो वेदयितव्यः, तद्यथा—आसु मार्गणासु विद्यमाना अनुत्तरसुरास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणस्योत्कृष्टाधुःममार्गि यावन्मध्यमाष्टकपायान् बध्नतस्ततश्च च्युताः सन्तो मनुष्यभवमागत्य संयमलामं यावदपि बध्नन्ति, तस्मात्ते जाते सति तद्बन्धविच्छेदो जायते, इत्थं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो बन्धकाल उक्तप्रकृतीनामुपपद्यते । “वा” इति शब्दो विकल्पद्योतकः, विकल्पपक्षे पुनः प्रत्याख्यानावरणप्रकृतीनां प्रकृतबन्धकालो मतान्तरेण साधिकद्वाचत्वारिंशत्सागरोपमप्रमाणः, यतोऽस्मिन्मते देशविरताविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानयोः समिलितकालः तावत्प्रमाणः, अन्येषां मते पुनरस्यैव कषायाष्टकस्य बन्धकालः स्वकायस्थितिप्रमाणो वा बोद्धव्यः, यतस्तन्मताभिप्रायेणाऽविरतमन्थगृष्टिगुणस्थानं तावत्कालं निरन्तरं प्राप्यते तत्र च प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्य निरन्तरं बन्धो भवति । तथा प्रकृतमार्गणासु शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां स्वगुरुकायस्थितिप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः “अण्णह” इत्यादिना ज्ञातव्यः ॥१४३-४॥

अथ सर्वासु मार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधायाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां स निरूप्यते—

संवासु मुहूर्ततो अववलमाणाण अध्रुवबंधीणं ।

सप्पाउमाण गुरु आउमवज्जाण विण्णेयो ॥१४४॥

(प्रे०) “संवासु” इत्यादि, सर्वासु चतुःसप्तत्यधिकशतमार्गणासु देवाद्याधुक्चतुष्कवर्जानां स्वप्रायोग्याणां वक्ष्यमाणेनाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः, कुतः ? इति चेदुच्यते, यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीना बन्धो गुणप्रत्ययेन भवप्रत्ययेन वा ध्रुवतया न प्राप्यते तामा प्रकृतीना बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तादधिकतया न प्राप्यत इति हेतोः ॥१४५॥

अथ यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां भवनिमित्तेन गुणनिमित्तेन चान्तर्मुहूर्तपेक्षया गुरुतरो बन्धकालस्तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां बन्धकालं दर्शयितुकाम आदौ तावन्नरकौघमार्गणायामाह—

णिरये गुरुकायळिई होइ तितिरियाइणवरलाईणं ।

सा देसूणा जेयो सत्तपुमाइतिणरलाईणं ॥१४६॥

अब्भहिय अयरतिग जिणस्स - - - ।

(प्रे०) “णिरये” इत्यादि, नरकौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसपराधातोच्छ्रामवादरत्रिकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकाल एतन्मार्गणाया गुरुकायस्थितिप्रमितो बोद्धव्यः, तदित्यम्—नरकौघमार्गणायाः सप्तमनरकान्तर्गतत्वेनोत्कृष्टकायस्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा विद्यते, मिथ्यादृष्टिः सप्तमनरको भवप्रत्ययेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं यावत् तिर्यग्द्विकादिद्वादशप्रकृतीर्निरन्तरं बध्नाति । “सा देसूणा” इत्यादि, पुरुषवेदशुभविहायो-

गतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तप्रकृतीनां मनुष्यद्विकेवर्षभनाराचसंहनन-
 रूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां चोत्कृष्टवन्धकालः किञ्चिन्धूतत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवसातव्यः,
 तद्यथा—मार्गणायामस्यां सप्तमनरकगतजीवस्य सम्यक्त्वावस्थायामुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तन्धूतत्रयस्त्रिंशत्सा-
 गरोपमकालपर्यन्तमेताः प्रकृतयो बन्धतो भवन्ति, तस्य सम्यक्त्वावस्थाया उत्कृष्टतत्तावत्प्रमाणत्वात् ।
 “अवभहिषं” इत्यादि, जिननामकर्मण उत्कृष्टवन्धकालो नरकौघमार्गणाय साधिकपागरोपमत्रय-
 प्रमाणो बोद्धव्यः । नचतीर्थकृन्नामसत्कर्मणो जीवस्य तृतीयनरकयावद्गमनं संभवति, तृतीयनरकस्य
 च गुर्वी कायस्थितिः सप्तसागरोपमप्रमाणा विद्यते, तर्हि कथं सप्तसागरापमप्रमितो जिननामकर्मणो
 गुरुवन्धकालो नाभिहित इति वाच्यम्, तीर्थकरनामकर्ममत्तारस्य नरकगतावुत्कृष्टतत्ताधिक-
 सागरोपमत्रयप्रमितायुष्मन्धैवोत्पादसंभवात् । तथा मार्गणायामस्यां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-
 स्त्रीनपुंसकवेदद्वयप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभस्वगतिस्थिरशुभ-
 यशःकीर्त्यस्थिरपटकोद्योतरूपाणामेकोनत्रिंशत्शेषप्रकृतीनां गुरुवन्धकालः ‘सञ्वासु सुदुत्ततो’ इत्यादि
 ग्राथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो ज्ञातव्यः, अध्रुववन्धित्वे सति गुणप्रत्ययेनाधिककालस्याऽप्राप्यमाणत्वात् ।
 ॥ १४६ ॥

अथ चरमनरककृष्णलेखयोः प्रथमादिष्वनरकनीलकापोतलेश्यामार्गणसु च प्रस्तुतमाह

..... एमेव तित्थवज्जाण ।

चरमणिरयकिण्हासुं सेसणिरयणीलकाऊसु ॥ १४७ ॥

उरलाईण णवण्हं ससगुरुकायडिई मुण्येयव्वो ।

सा देसूणा जेयो सत्तापुमाइतिणराईण ॥ १४८ ॥

णवरि सगुरुकायडिई देसूणा तिरिउरालियदुगाणं ।

किण्हाए ओरालियदुगस्स खलु णीलकाऊसुं ॥ १४९ ॥

(प्रे०) “एमेव” इत्यादि, अन्तिमतमस्तमाख्यसप्तमनरकमार्गणायां कृष्णलेखामार्गणायां च
 “एमेव” पूर्ववत् प्रकृष्टो बन्धकालो ज्ञातव्यः, इदमुक्तं भवति—नरकौघमार्गणायां तीर्थगृद्विकादि-
 द्वादशप्रकृतीनां यः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितः, पुरुषवेदादिसप्तप्रकृतीनां मनुष्यद्विकादिप्रकृतित्रयस्य
 च यो देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो गुरुवन्धकालोऽभिहितः, स एव प्रकृतीनामासां गुरु-
 वन्धकालः प्रकृतमार्गणाद्वयेऽभिधेयः । तथा नरकौघमार्गणायामुक्तानां वेदनीयद्विकहाद्येकोनत्रिंशत्शेषा-
 ध्रुववन्धिप्रकृतीनां गुरुवन्धकालः सप्तमनरके “सञ्वासु सुदुत्ततो” इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्रतिपाद-
 नीयः, कृष्णलेश्यामार्गणाय तु वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयदेवद्विकनरकद्विकै-
 केन्द्रियादिजातिचतुष्कवैक्रियद्विकाद्यसंहननवर्जसंहननपञ्चकाद्यसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभस्वगति-
 स्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतजिननामरूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्शेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां
 ज्येष्ठो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, कुतः ? इति चेद् उच्यते, कासाञ्चिद् देवद्विकजिननामादिप्रकृ-
 तीना बन्धका यथासंभवं तिर्यङ्मनुष्या एवाऽत्र वर्तन्ते, तेषां च लेश्याकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवाऽस्ति,

तस्मादुक्तप्रमाणो बन्धकालः प्राप्यते, तथा तद्व्यतिरिक्तप्रकृतप्रकृतीनां गुणप्रत्ययेनाऽप्यन्तर्मुहूर्ता-
 दधिककालो न प्राप्यते, अतस्तासामपि बन्धकालोऽभिहितप्रमाणो लभ्यते । “सेसगिरय”
 इत्यादि, रत्नप्रभाशर्कराप्रमात्रालुकाप्रमापङ्कप्रमाधूमप्रभातमःप्रमानरकनीलकापोतलेख्यालक्षणास्वष्ट-
 मार्गणासु “उरल च । उरलोवगपणिदियतसपरघूसासत्रायरतिगाणि” ॥ इतिसंग्रहगाथांशेषु भणितानामौ-
 दारिकद्विकप्रमृतीनां नवप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः स्वकीयस्वकीयगुरुकायस्थितिप्रमाणो
 वेदयितव्यः । “सत्तपुमाई” इत्यादि, ‘पुमसुखगइपढमागिइसुहगतियुच’ इतिसंग्रहगाथावयवेषु
 प्रोक्तानां पुरुषवेदादीनां सप्तानां प्रकृतीनां मनुष्यद्विकप्रथमसंहननरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां च
 गुरुतया बन्धकालो देशोनस्वप्रायोग्यप्रकृष्टकायस्थितिप्रमितोऽस्ति, भावना पुनरुभयत्र नरकौघ-
 मार्गणावत्कार्या एतास्वष्टमार्गणासु शेषात्रुवन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः “सव्वासु सुहुतंतो”
 इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः । कृष्णादिलेश्यात्रये कामांचित्प्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकाल-
 विषयेऽपवादमुपदर्शयन्नाह, “णचर” मित्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायां तिर्यग्द्विकौदारिकद्विक-
 रूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां नीलकापोतलेख्यालक्ष्यमार्गणाद्वये चौदारिकद्विकस्य गुरु बन्धकालो देशोन-
 स्वीयोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणः, देशोनत्वं चात्रान्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम्, नरकमवात् प्राक् तिर्यङ्मनु-
 ष्यभवसत्कचरमान्तर्मुहूर्ते नरकद्विकादीनामेव बन्धेन निरुक्तप्रकृतीनां बन्धाभावात् ॥१४७-८-९॥

तित्थस्स पढमगिरये देसुणुदही तिसागरा ऊणा ।

कुइअगिरयम्मि अहिया तइअगिरयकाउलेसासुं ॥१५०॥

(प्रे०) “तित्थस्स” इत्यादि, रत्नप्रभाख्यप्रथमनरकमार्गणायां तीर्थकरनामकर्मण उत्कृष्ट-
 बन्धकालो देशोनमेकसागरोपममस्ति । “तिसागरा” इत्यादि, शर्कराप्रमाभिधद्वितीयनरकमार्गणायां
 जिननाम्नो गुरुबन्धकालः किञ्चिन्पूनसागरोपमत्रयप्रमाणो विद्यते । “अहिया” इत्यादि, वालुका-
 प्रमाख्यतृतीयनरकमार्गणायां कापोतलेख्यामार्गणायां च तीर्थकृत्मान्तो गुरुबन्धकालः साधिकसागरो-
 पमत्रयप्रमाणो भवति । प्रथमद्वितीयनरकमार्गणयोर्देशोनत्वे हेतुस्त्वेवम्-तीर्थकरसत्कर्मजीवास्तथा-
 स्वाभाव्येन नारकेषूत्कृष्टस्थितिकेषु नैवोत्पद्यन्त इति कृत्वा । कापोतलेख्यामार्गणायां तृतीयनरकमा-
 र्गणायां च हेतुर्नरकौघमार्गणायां दर्शितप्रकारेणैव ज्ञेयः ॥१५०॥

अथ तिर्यगौघमार्गणायामध्रुववन्धिप्रकृतिषु कतिपयानां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह

तिरियम्मि तिणि पल्ला पुमाइएगारसण्ह तेऽब्भहिया ।

सत्तपणिदियआईणोघव्व उरालतितिरियाईण ॥१५१॥ (गीतिः)

(प्रे०) “तिरियम्मि” इत्यादि, तिर्यगौघमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचेतुरस्रसंस्थान-
 सुमगत्रिकोऽर्धगोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालस्त्रीणि पल्लोप-
 मानि, स त्वेवम्-मार्गणायामस्यां युगलित्वेन समुत्पन्नेन त्रिपल्लोपमायुष्मतां केनचित् क्षायिकस-
 म्यगृष्टिजन्तुनाऽऽभवमेकादशप्रकृतयो गुणप्रत्ययेनानवरतं वध्यन्ते । “सत्तपणिदिय” इत्यादि,

पञ्चेन्द्रियजातिप्रसपराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः साधिकानि त्रीणि पञ्चोपमानि । तद्यथा—कश्चित् संज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियो मृत्वा युगलिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्वेन जातः स युगलिकावस्थायां पञ्चोपमत्रयप्रमितस्वायुरन्तं यावदेताः सप्तप्रकृतीर्भवप्रत्ययेन निरन्तरं बध्नाति, तथा पूर्वभवस्य चरमान्तमुहूर्तेऽप्येताः सप्तप्रकृतीर्वध्नाति । “ओषध्व” इत्यादि, औदारिकशरीरनाम-तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालौघवदवसेयः, तदेवम्—तिर्यक्सामान्यमार्गणायामौदा-रिकशरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालोऽसख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणोऽस्ति तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोश्चाऽसख्य-लोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितः, भावना पुनरत्रौघवदवसानव्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियु-गलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकमनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथम-सस्थानवर्जसंस्थानपञ्चनरकमनुष्यानुपूर्वीद्रयाऽशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकात-पोद्योतरूपाणां चतुश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मार्गणायामस्यामुत्कृष्टबन्धकालः “रुक्वास्तु मुहुत्ततो” इत्यादिनाऽन्तमुहूर्तेप्रमाणोऽवसातव्यः ॥१५१॥

साम्प्रत तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभेदत्रयात्मकासु तिसृषु मार्गणास्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धकालं कथयितुकाम आह

दुर्पणिदियतिरियेसुं पुमाइएगारसह पल्लतिगं ।
णयो जोणिमईए तेसि देसूणपल्लतिग ॥१५२॥
तोसु पि तिणिण पल्ला अम्महिथा सगपणिदियार्इणं ।

(प्र०) “दुर्पणिदिय” इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियलक्षणमार्गणाद्वये पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणानामेकादशप्रकृतीनामु-त्कृष्टबन्धकालः त्रीणि पञ्चोपमानि, भावना तिर्यगौघमार्गणादत्र ज्ञातव्या । “णयो” इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रिययोनिमतीमार्गणायां पुरुषवेदादीनामेकादशप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालो देशोन-पञ्चोपमत्रयप्रमाणोऽस्ति, योजना पुनरेवम्—मार्गणायामस्यां युगलिकत्वेनोत्पन्ना तिरश्ची सुरद्विक-वैक्रियद्विकात्मकं प्रकृतिचतुष्क्रमपर्याप्तावस्थायामन्तमुहूर्तं न बध्नाति ससम्यक्त्वस्य मार्गणायामस्या-मुत्पादाभावेनाऽपर्याप्तावस्थायां सम्यक्त्वविरहात्, पर्याप्तावस्थाऽवाप्त्यनन्तरं त्वेतत्प्रकृतिचतुष्कं बध्नाति, युगलिकानां पर्याप्तावस्थायां भवप्रत्ययेनैव देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकृत्वात् सुखगत्यादि-प्रकृतिपट्क देवगत्यादिना सह ध्रुवबन्धोपलम्भात्तावत्कालमनवरतं बध्यते, तथाऽपर्याप्तावस्थायां न तस्य सततं बन्धाभावोऽस्ति, सप्रतिपक्षबन्धार्हत्वात् “देसूण पल्लतिग” मित्युक्तम् । पर्याप्तावस्थानन्तरं जघन्यतोऽपि यावत्कालपर्यन्तं सम्यक्त्वं न प्राप्यते तावत्कालपर्यन्तं मार्गणायामस्यां वर्तमानया युगलिकतिरश्च्या पुरुषवेदो निरन्तरं नैव बध्यते, अतस्तावत्कालान्यूनपञ्चप्रथमेतत्प्रकृते-रुत्कृष्टबन्धकालो वेदयितव्यः, अत्राऽपि सम्यक्त्वप्राप्तिकालादवगन्तमुहूर्तकालं यावत् पुरुषवेदस्य नियमतो बन्धसम्भवेन तावान्कालोऽपि तत्र निरन्तरबन्धकालमध्ये प्रक्षपणीयः ।

‘तीसु’ इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु पञ्चेन्द्रियजातित्रयमपराधानोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालः माधिकपल्योपमत्रयप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरत्र तिर्यक्सामान्यमार्गणावत्कर्तव्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयैकेन्द्रियप्रभृतिजाति-चतुष्कौदारिकद्विकमहनपट्कप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चनरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयाऽशुभलक्षण-ताम्रथरुभयशःकीर्तिस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां गुरुबन्धकाल आसु तिष्ठु मार्गणासु ‘सव्वासु मुहुत्ततोऽन्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो ज्ञातव्यः । तथा शेषाऽप्यति-र्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाय । सर्गां स्वप्नयोग्याध्रुववन्धिप्रकृतीनां ‘सव्वासु मुहुत्ततो इत्यादितो गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः ॥१५२॥

अथ मनुष्यमार्गणासु कामाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालं व्याचिरूप्यासुराह—

तिणरेसु पुण्वकोटी देसूणा सायतित्थाणं ॥१५३॥

अवमहिय पल्लतिग होज्जाट्टारहपणिदियाईणं ।

णवरं जोणिमईए पुमाइएगारसण्ह देसूणं ॥१५४॥

(प्रे०) ‘तिणरेसु’ इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुपीरूपासु तिसृषु मार्गणासु सातवेद-नीयतीर्थकरनामकर्मणोरुत्कृष्टो बन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षमितो भवति, तदेवम्—मार्गणास्वासु वर्त-मानः पूर्वकोटीवर्षयुष्कः कश्चिज्जन्तुरष्टमवर्षेऽवाप्तसंयमो नवमसंवत्सरे कैवल्यमवाप्य निरन्तरं सात-वेदनीयं तावद् बध्नाति यावत्त्रयोदशमगुणस्थानकान्तम् । एतन्मार्गणात्रयवर्ती पूर्वकोटिवर्षयुष्कः कश्चिज्जीवोऽष्टमवर्षे नवमवर्षे वा तीर्थकरनामकर्म निकाप्य यावदायुःसमाप्तिं तद् बध्नाति तदा देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणो बन्धकालस्तस्योपलभ्यते । ‘अवमहियं’ इत्यादि, ‘पणिदियतसपरधूमा-सत्रायरतिगाणि, । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुच्चसुरविउवदुग’ इति संग्रहगाथांशेषु प्रोक्तानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणामष्टादशप्रकृतीनामुत्कृष्टतो बन्धकालः किञ्चिदधिकं पल्योपमत्रयमवसेयः, आधिक्य चात्र देशोनपूर्वकोटिभिन्नभागरूपं ग्राह्यम् । तदेवम्—पूर्वकोटिवर्षयुष्कः कश्चन मनुष्यः स्व-कीयायुष्कस्य त्रिभागावशेषे युगतिकमनुरूपमायुर्वद्ध्वा क्रमेण शीघ्रं सम्यक्त्वं प्राप्य क्षायिकसम्प-त्त्वमधिगच्छति, तदा ततः प्रभृति स्वाधुरन्तं यावदेता अष्टादशप्रकृतीबध्नेनमरणमुपेत्य युगलि-कत्वेन चोत्पन्नः सन् तत्रापि पल्योपमत्रयं यावद् बध्नाति । ‘णवर’ मित्यादिना विशेषमिह भावयति, तद्यथा—पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्रसुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणा-मेकादशप्रकृतीनामुत्कृष्टतया बन्धकालो मानुपीमार्गणायां देशोनपल्योपमत्रयप्रमाणः प्रत्येतव्यः, भावना तिरश्चीमार्गणावत्कार्या । तथाऽसातवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं नरकर्तार्यग्म-नुष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकमाहारकद्विकं संहननपट्कं प्रथमसंस्थानवर्ज-

सस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वाप्रथमशुभलक्षणातिः स्थिरनाम शुभनाम यशःकीर्तिनाम स्थावर-
दशकमातपोद्योतनाग्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनपञ्चाशत्शेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणासु 'सञ्चासु
मुदुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो ज्ञातव्यः, तथैव शेषीभूतायां चाऽपर्याप्तमनुष्य-
मार्गणापामपि स्वप्रायोग्यसर्वाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनाम् ॥१५३॥

इदानीं सुरमार्गणासु तत्मादृश्याच्च शुभलेश्यामार्गणासु प्रकृष्टबन्धकालमध्रुववन्धिप्रकृति-
सत्कं विभावयितुकाम आह—

सुरसोहृन्माईसुं पसत्यलेसासु तीसु विष्णयो ।

जेडा सगकायठिई पुणवीसणराइतित्याण ॥१५५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, सुरौघसौधर्मेशानसनत्कुमारभाहेन्द्रप्रह्लोलकलान्तःशुकसहस्राराऽऽ-
नतप्राणनाऽऽरणाऽध्रुवनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरूपामु सप्तविंशतिमार्गणासु तेजःपञ्चशुक्ललेश्यालक्षणासु
च तिसृषु मार्गणासु 'णरदुगवइराणि उरलं च, उरलोवगपणिदियतसपरवूमासवायरतिगाणि । पुमसुख-
गइपढमागिइसुइगतिगुच्च' इति संग्रहभाषांशेषु मापितानां मनुष्यद्विकप्रभृतीनामेकोनविंशतिप्रकृ-
तीनां जिननाग्नश्चोत्कृष्टतो बन्धकालः प्रकृतमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो विज्ञेयः,
मार्गणास्वासु विद्यमानेन सम्यग्दृष्टिनाऽऽदित आरभ्य मार्गणाप्रान्तं यावद् निरन्तरं प्रकृतीनामासां
वक्ष्यमानत्वात् ॥१५५॥

साम्प्रतं प्रशस्तलेश्यामार्गणासु कतिपयानामध्रुववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाले विशेषमुपद-
र्शयन्नाह

णवरं सुहलेसासुं देसूणा होइ पणराईण ।

सुक्काए वेसूणा कोडी पुव्वाण सोयस्स ॥१५६॥

(प्रे०) "णवरं" इत्यादि, तेजःपञ्चशुक्ललेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकौदारिकद्विक-
वर्णर्षभनाराचर्मदहनरूपम्यप्रकृतिपञ्चकस्यात्कृष्टो बन्धकालो देशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो विद्यते,
देशोनत्वमित्यम्—मार्गणात्रयेऽस्मिन् वर्तमानो जीवो देवभवात्पूर्वं तिर्यग्मनुष्यभवयोरन्तिमाऽन्तर्मुहूर्ते
प्रकृतिपञ्चकमेतन्नैव वध्नाति, तस्य देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् । "सुक्काए" इत्यादि, शुक्ललेश्या-
मार्गणायां सातवेदनीयस्य किञ्चिन्न्यूनपूर्वकोटिवर्षप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः, अत्र भावना मनुष्य-
मार्गणावत्समधिगम्या । तथा सुरौघसौधर्मेशानमार्गणात्रये वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंस-
कवेदद्वयतिर्यग्गत्येकेन्द्रियजातिप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसस्थानपञ्चकतिर्यगासु
पूर्वशुभलक्षणातिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावराऽस्थिरपट्काऽऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चविंशत्प्रकृती-
नाम्, सनत्कुमारादिसहस्ररान्तमार्गणास्वनन्तरोक्तानामेकेन्द्रियस्थावरातपवर्जानां द्वाविंशत्प्रकृती-
नाम्, आनतादिनवग्रैवेयकान्तमार्गणासु तिर्यग्द्विकोद्योतवर्जानामेकोनविंशदुपयुक्तप्रकृतीनाम्, पञ्चा-

नुत्तरमार्गणासु वेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां द्वादश-
प्रकृतीनां, तेजोलेश्यामार्गणायां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदयतिर्यग्देवगतिद्वयैकेन्द्रिय-
जातिर्वक्रियद्विकाहासकद्विकाधसंस्थानवर्जमंस्थानपञ्चकाधसंहननवर्जसहननपञ्चकतिर्यग्देवानुपूर्वीद्वया-
ऽशुभलगतस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावगस्थिरपटकाऽतपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां,
पञ्चलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियस्थावगतपप्रकृतित्रयवर्जानां तेजोलेश्यामार्गणोक्तानामष्टात्रिंशद्भ्रुववन्धि-
प्रकृतीनां, शुक्ललेश्यामार्गणायां चैकेन्द्रियस्थावरातपोद्योततिर्यग्द्विकयातवेदनीयवर्जानां चतुस्त्रिं-
शत्प्रकृतीनां “सन्वासु सुदुत्ततो” इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो विज्ञेयः ॥१५६॥

भवनपतिप्रभृतिमार्गणाभूत्कृष्टोऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकाल निरूपयिषुराह

भवनपतिगे समुच्छिद् पणपरधाइउरलाण सा हीणा ।

तिणराइसगपुमाइगपणिदितसउरलुवगणं ॥१५७॥

(प्रे०) “भवनपतिगे” इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु
पराधातोच्छ्रवामवाद्दरत्रिकौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां प्रकृष्टतया बन्धकालः स्वीय-
प्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासामनवरतं बध्यमानत्वात् । ‘सा हीणा’
इत्यादि, नरद्विकेवर्षभनाराचसंहननपुरुषवेदशुभविहायोगतिममचतुरस्रमंस्थानसुभगत्रिकोचैर्गोत्र-
पञ्चेन्द्रियजातित्रिमौदारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टतो बन्धकालो देशोनस्व-
गुरुकायस्थितिमितो विद्यते, तद्यथा—आसु मार्गणासु कोऽपि प्राणी ससम्यक्त्वो नैवोत्पद्यते, अतो-
ऽन्तर्मुहूर्तकालमतिक्रम्य यः कश्चित्सम्यक्त्वमासादयति, उत्कृष्टतया च यावज्जीवं यदा तदवतिष्ठते
तदा तमाश्रित्य देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणबन्धकाल उपपद्यते, एतच्च कर्मग्रन्थिकमता-
भिप्रायेण । सैद्धान्तिकास्तु ससम्यक्त्वं भवनपत्यादिष्वप्युत्पत्तिं मन्यन्ते, ततस्तेषां मतेन यथा-
मंभवं विभावनीयम्, विशेषावरयकवृत्तावेतल्लेशतः प्रतिपादितम्—“तद्यथा”—‘कर्मग्रन्थिकमतेन तु
वैमानिकदेवेभ्योऽन्यत्र तिर्यङ्मनुष्यो वा तेनैव क्षयोपगमसम्यक्त्वेन नोत्पद्यते । इहानन्तरोक्तमौधर्ममार्ग-
णोक्तानां पञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः “सन्वासु सुदुत्ततो” इत्यादितोऽन्तर्मुह-
ूर्तलक्षणो वेदयितव्यः ॥१५७॥

अधुनैकेन्द्रियौघकाययोगौघादिमार्गणासु गुरुभूतोऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकालो निरूप्यते—

जेयो असखलोगा एगिदियकायजोगअमणेसुं ।

तिणहं तिरियाईण उरलस्स असखपरिअट्टा ॥१५८॥

(प्रे०) “जेयो” इत्यादि, एकेन्द्रियौघकाययोगौघाऽसंज्ञिरूपासु तिसृषु मार्गणासु तिर्य-
ग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य प्रकृष्टतया बन्धकालोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो
ज्ञेयः, तेजोवायुकायिकजीवैरियत्प्रमाणस्वकीयोत्कृष्टकायस्थितिकालं यावदनवरतं बध्यमानत्वात् ।

“उरलस्स” इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नो गुरुबन्धकालोऽसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः, यत एकेन्द्रियजीवा उत्कृष्टतयाऽसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमितकायस्थितिकाः सन्ति, ते च तावत्कालपर्यन्तमनवरतं प्रकृतिमिमां बन्धन्ति । तथा काययोगौघमार्गणायां वेदनीयद्विकडास्यादियुगलद्वयवेदनरनरकनरसुरगतित्रयजातिपञ्चकैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकौदारिकाज्ञोपाङ्गमहननपट्कसंस्थानपट्क — नरनरकसुरानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रयमदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां पञ्चपट्यध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनाम्, एकेन्द्रियमार्गणायां वेदनीयद्विकडास्यादियुगलद्वयवेदनयमनुष्यगतिजातिपञ्चकौदारिकाज्ञोपाङ्गसहननपट्कसंस्थानपट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रयमदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां पट्पञ्चाशत्प्रकृतीनाम्, असंज्ञिमार्गणायां च अनन्तरोक्तपट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां वैक्रियपट्कस्य चेति द्वापष्टयध्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः ‘सन्वासु सुहुत्तो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपो विज्ञेयः ॥१५८॥

अथ सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायां वादरपर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणायां चाऽध्रुवबन्धप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह—

सुहमेगिदिग्मि असखा लोगा तितिरियाइउरलाण ।

वाससहस्सा वायरपज्जत्तेगिदिये संखा ॥१५९॥

(प्रे०) “सुहमेगिदिग्मि” इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायां तिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरलक्षणप्रकृतिचतुष्कस्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणो गुरुतया बन्धकालो वेधः, मार्गणायामस्यां तावत्कालं संवतं बध्यमानत्वात्, तत्रेदमवगन्तव्यम्—औदारिकशरीरनाम्नो उत्कृष्टबन्धकालः सम्पूर्णस्वकायस्थितिप्रमाणोऽस्ति, शेषप्रकृतित्रयस्य तु सूक्ष्मतेजोवायुकायसमुदितकायस्थितिरूपोऽस्ति । “वास” इत्यादि, वादरपर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणायां प्रकृतप्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टबन्धकालः संख्येयसहस्रवर्षाणि अस्ति, स च बन्धकालो नीचैर्गोत्रतिर्यग्दिकप्रकृतित्रयस्य वादरपर्याप्ततेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितिमपेक्ष्योपपादनीयः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चैतादृशो बन्धकालो वादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकादिपञ्चावेक्षया भावनीयः, एकेन्द्रियौघमार्गणायां याः शेषपट्पञ्चाशत्प्रकृतय उक्तास्तासामेवाऽत्राऽप्युत्कृष्टबन्धकालो ‘सन्वासु सुहुत्तो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽवसातव्यः ॥१५९॥

अथ वादरैकेन्द्रियौघमार्गणायामुत्कृष्टबन्धकालमाह

गुरुकायिं गेयो वायरएगिदिग्मि उरलस्स ।

अगुलअसखमाणो कम्मिं वाऽत्थि तितिरियाईण ॥१६०॥ (गीतिः)

(प्रे०) “गुरुकाय” इत्यादि, वादरैकेन्द्रियौघमार्गणायामौदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टतया बन्धकालो मार्गणायामस्या उत्कृष्टकायस्थितिप्रमितो ज्ञेयः, मार्गणायामस्यामस्याध्रुवबन्ध-

त्वेऽपि भवप्रत्ययेन सततं वध्यमानत्वात् । “अंगुल” इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽङ्गु-
लासंख्येयभागगताऽऽकाशप्रदेशप्रमितममयप्रमाणो गुरुबन्धकालः । ननु मार्गणायामस्यामौदारिक-
शरीरनाम्न उत्कृष्टबन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितोऽभिहितः, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृ-
तित्रयस्य चाङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणः, अत्रैतन्मार्गणासत्केगुरुकायस्थितिरप्यङ्गुलासं-
ख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणरूपा एवास्ति, अतः कालद्वयेऽरिगन्न किमपि वैलक्षण्यं दृश्यते, उभयो-
रपि समानत्वात्, अत औदारिकशरीरनाम्नस्तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य च गुरुकायस्थितिप्रमितो
गुरुबन्धकालः समुदिततयैव वक्तव्यः, न पृथक् पृथक्, इति चेत्, अत्रोच्यते, माणणादामस्यामौदा-
रिकशरीरनामकर्मणोऽङ्गुलासंख्येयभागरूपस्वगुरुकायस्थितिलक्षणबन्धकालापेक्षया तिर्यग्द्विक-
नीचैर्गोत्रप्रकृतीनामङ्गुलासंख्येयभागरूपबन्धकालो न्यूनोऽस्ति, अङ्गुलासंख्येयभागलक्षणकालस्या-
प्यसंख्यातविधत्वात्, अन्यच्च मार्गणायामस्यामौदारिकशरीरनामकर्मणो गुरुकायस्थितिप्रमितो
गुरुबन्धकालः समुदितपञ्चपृथिवीकायिकादिक्रमाश्रित्यानवरतं व्यवमानत्वेन विधत्ते, तिर्यग्द्विका-
दिप्रकृतीनां चोक्तप्रमाणो बन्धकालस्तेजोवायुकायिकानेवाश्रित्य प्राप्यते, अन्यत्र पृथ्वीकायिकादिषु
तु मनुष्यद्विकादिप्रकृतिभिः सह परावर्तमानतया व्यवमानत्वेन तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तमात्र
एव बन्धकालः, तस्मादौदारिकशरीरनामकर्मणस्तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनां च गुरुबन्धकालस्य पृथक्ता-
यामिधानं कृतम् । “कस्मिन्दि वाऽन्धि” इत्यादिना मतान्तरं कथयति, मतान्तरे वादरतेजस्काय-
वादरवायुकायिकयोः समुदितापि कायस्थितिरुत्कृष्टा सप्ततिकोटिकोटिमागरोपमप्रमाणकर्मस्थिति-
प्रमाणा वर्तते, अतो, मतान्तरेण निरुक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालस्तावन्मितोऽवसातव्यः । तथा
वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्क-
मनुष्यानुपूर्वीविहायोगनिद्विकत्रयदशकस्थावरदशकाऽऽनपोद्योतपराघातोच्छ्वाप्तोच्चैर्गोत्ररूपाणां पट्-
पञ्चाशत्तेशोपाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टतो बन्धकालः ‘सव्वासु मुहुत्ततो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो
बोद्धव्यः ॥१६०॥

अथ द्वीन्द्रियादिमार्गणासु तदाह

गुरुकायठिई उरलस्स विगलपत्तेअतस्समत्तेसु ।

भूदगसाहारणतस्सुहमियरसमत्तवायरेसु धणे ॥१६१॥ (गीतिः)

(प्रे०) “गुरुकायठिई” इत्यादि, द्वीन्द्रियौघत्रीन्द्रियौघचतुरिन्द्रियौघप्रत्येकवनस्पतिकायौघ-
पर्याप्तद्वीन्द्रिय-पर्याप्तत्रीन्द्रिय-पर्याप्तचतुरिन्द्रिय-पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्त्रैष्टमार्गणासु तथा
पृथ्वीकायौघाऽप्यायौघसाधारणवनस्पतिकायौघसूक्ष्मपृथ्वीकायौघसूक्ष्माऽप्यायौघसूक्ष्मसाधारणवन-
स्पतिकायौघ-वादरपृथ्वीकायौघवादरा-ऽप्यायौघवादरसाधारणवनस्पतिकायौघवादरपर्याप्तपृथ्वीकाय-
वादरपर्याप्ताऽप्यायवादरपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकायवनस्पतिकायौघरूपासु त्रयोदशमार्गणास्त्विति सर्व-

संख्यैकविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाण औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टतया बन्ध-
कालः; ध्रुवबन्धिकल्पत्वात्तस्यैतासु । तथा वेदनीयद्विकहास्यादिषु गलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वय-
जातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयसंघातिद्वयत्रयसदशकस्थावर-
दशकातपोधोतपराधातोच्छ्वासमगोत्रद्वयरूपाणामेकोनपष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालोऽन्त-
र्मुहूर्तप्रमाणः सञ्चासु मुहुत्ततो इत्यादिनाऽवगन्तव्यः । पर्याप्तसूक्ष्मकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मकेन्द्रियाऽ-
पर्याप्तादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तद्वीन्द्रियापर्याप्तत्रीन्द्रियाऽपर्याप्तचतुरिन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तपृथ्वीकायसूक्ष्मपर्याप्त-
ऽकायसूक्ष्मपर्याप्ततेजस्कायसूक्ष्मपर्याप्तवायुकायसूक्ष्मपर्याप्तमाधारणवनस्पतिकायाऽपर्याप्तादरपृथ्वी-
कायाऽपर्याप्तादराऽकायाऽपर्याप्तादरतेजस्कायाऽपर्याप्तादरवायुकायाऽपर्याप्तादरसाधारणवनस्पति-
कायरूपासु शेषकायेन्द्रियमार्गणास्वनुक्तोऽपि 'सञ्चासु मुहुत्ततो इत्यादितो स्वप्रायोग्याणां सर्वामाम-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुभूतो बन्धकालोऽवसेयः, यतो ह्येताः सर्वा मार्गणा अन्तर्मुहूर्त-
स्थितिका वर्तन्ते । विशेषस्त्वयमत्र-औदारिकशरीरनामकर्मणोऽत्र ध्रुवबन्धत्वेन प्रकृतमार्गणाप्रायोग्य-
कायस्थितिलक्षणान्तर्मुहूर्तमानो गुरुबन्धकालो वक्तव्यः, तथैव च तेजस्कायवायुकायिकसत्कमार्गणासु
तिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामपि । शेषस्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालसंबन्धयन्तर्मुहूर्तं
स्वकीयगुरुकायस्थितिसत्कोऽन्तर्मुहूर्तसंख्यातमागरूपमवसातव्यम् ॥१६१॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्त्रध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालमाह

ओधव्व दुपंचिदियतसचक्खुअचक्खुभविमसणीसुं ।

तिरियाइअट्ठवीसाअ णवरि णयणिपरसणीसुं ॥१६२॥

सायस्स मुहुत्तंतो दुपणिदितसेसु चक्खुसणीसुं ।

सादियतेत्तीसुवही तिरियदुगोरालणीआणं ॥१६३॥

(प्रे०) 'ओधव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रयचक्षुरचक्षुर्भव्य-
संज्ञिरूपास्वष्टमार्गणासु 'तिरियदुगं णीअं तह णरदुगवइराणि उरळं च ॥ उरलोवगपणिदियतसपरधूमा-
सवायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुइगतिगुच्चसुरविउवदुम ॥ जिणसाय' इतिसंग्रहमाथावयवेषु
गदितानामष्टाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकाल ओघवदवसेयः, परं चक्षुरचक्षुःसंज्ञिमार्ग-
णासु सातवेदनीयं विहाय पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रयचक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु च मार्ग-
णासु तिर्यग्दिकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मलक्षणं प्रकृतिचतुष्कं परित्यज्येति । तदेवम्-पञ्चेन्द्रियौघ-
पर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रयचक्षुरचक्षुर्भव्यसंज्ञिरूपास्वष्टसु मार्गणासु तिर्यग्दिकौघष्टाविंशतिप्रकृति-
भ्यः पञ्चेन्द्रियजातित्रयपराधातोच्छ्वासवादनिकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां किञ्चिदधिकचतुरशीत्य-
धिकशतमागरोपमाणि, सुरदिकैर्वैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कस्य साधिकपण्योपमत्रयं, पुरुषवेदसुखगतिसम-
चतुरस्रसंस्थानसुभगात्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां साधिकद्वित्रिशदधिकसागरोपमशतं, मनु-

अधिकवर्धनमनाराचसंहननप्रकृतीनां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, जिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मणोः
माधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, अचक्षुर्दशनमव्यमार्गणाद्वये तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्यात-
लोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितः, औदारिकशरीरनाम्नश्चाऽसंख्यपुद्गलपरावर्ता गुरुबन्धकालोऽधि-
गम्यः, तावत्कालं तत्र मन्ततं बध्यमानत्वात् । द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रयमव्यमार्गणास्वोधवत्मातवेदनीयस्य
प्रकृष्टबन्धकालो देशोनपूर्वकोटिप्रमाणो विज्ञेयः । अत्र वृत्तौ प्रकृतमार्गणाभ्यो यासु मार्गणालु यासां
प्रकृतीनां वर्जनं कृतं तावद्व्योक्तगुरुबन्धकालस्याऽधटमानत्वाद्विशेषमपदर्शयति 'णञरि' इत्यादि,
चक्षुरचक्षुर्दशनसंज्ञिरूपासु तिसृषु मार्गणालु मातवेदनीयस्य प्रकृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो वर्तते,
स पुनरेवम्—एतासां मार्गणानां द्वादशगुणस्थानं यावदवस्थानादासु मार्गणालु देशोनपूर्वकोटिबन्ध-
प्रमितः सातवेदनीयस्य गुरुबन्धकालो न संभवति, किन्तु षष्ठगुणस्थानं यावदसातवेदनीयेन साकं
सातवेदनीयं परावर्तमानभावेन बध्यते, तत्परावर्तनमपि प्रत्यन्तर्मुहूर्तं प्रजायते, तथा सप्तगुणस्था-
नकादारम्य द्वादशगुणस्थानपर्यन्तं सततं सातवेदनीयस्य बध्यमानत्वेऽपि तेषां गुणस्थानकानां
समुदितकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव अस्ति, अत इह सातवेदनीयस्य गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव
प्राप्यते, नाधिकः । 'दुपणिदिच' इत्यादि पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तप्रसचक्षुर्दशन
संज्ञिरूपासु षण्मार्गणालु तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टबन्धकालः
माधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितोऽस्ति तद्यथा—मत्तमनरकवामी कश्चिन्नारकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरो-
पमलक्षणस्वोत्कृष्टायुष्कपर्यन्तमेताः प्रकृतीर्वध्नाति ततश्च व्युत्पा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमये जातोऽन्तर्मुहूर्त-
पर्यन्तमपि बध्नाति, अतोऽन्तर्मुहूर्ताऽधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो गुरुबन्धकालः प्रकृतप्रकृतीनामत्र
प्राप्यते । नीचैर्गोत्रस्य तु नरकभवत्पूर्वमप्यन्तर्मुहूर्तं यावत् तद्व्यन्धलाभेनाऽन्तर्मुहूर्तद्वयाधिको निरुक्तबन्ध-
कालो प्राप्यते । तथाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकद्विकेकेन्द्रियादिजातिचतुष्का-
हारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभलगतिस्थिरशुभयशःकीर्ति-
स्थावरदशकातपोद्योतरूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां गुरुबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः “सञ्वासु सुदुत्ततो”
इत्यादिना ज्ञातव्यः । शेषाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तसमार्गणाद्वयेऽनुक्तोऽप्यध्रुवबन्धप्रकृतीनां गुरु-
बन्धकालः “सञ्वासु सुदुत्ततो” इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो बोद्धव्यः, योऽपि स्वगुरुकायस्थित्यपेक्षया
सख्येयमागुरुषो बोद्धव्यः, औदारिकशरीरनाम्नश्चाऽन्तर्मुहूर्तभावोऽपि गुरुकायस्थितिप्रमाणो ज्ञात-
व्यः, अस्मिन् मार्गणाद्वये तस्य ध्रुवबन्धित्वात् ॥ १६३ ॥ तेजस्कायौघादिमार्गणालु प्रकृतं कथयति—

तेजमणिलेधु सेसि मुहमियरसमत्तायरेसुं च ।

उरलतितिरिमाईण सगसगकायद्विई मेहु ॥ १६४ ॥

(प्रे०) “तेज” इत्यादि, तेजस्कायिकौधवायुकायिकौधसूक्ष्मतेजस्कायिकौधवादरतेजस्कायि-
कौधसूक्ष्मवायुकायिकौधवादरवायुकायिकौधपर्याप्तवादरतेजस्कायिकपर्याप्तवादरवायुकायिकरूपास्वष्टमार्ग-

णासु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां गुरुबन्धकालः स्वकीयस्व-
कीयज्येष्ठकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, उक्तमार्गणासु प्रकृतिचतुष्टयस्य ध्रुवबन्धकल्पत्वेन सदैव
बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाज्ञोपाङ्गसंहननपट्क-
संस्थानपट्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वाभरूपाणां त्रिपञ्चाशत्शे-
षाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः 'सव्वासु मुहुत्त ॥' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽधिगन्तव्यः,
सूक्ष्मपर्याप्ताऽपर्याप्तिनेजस्काययोर्वादराऽपर्याप्तिनेजस्काये तथा वायुकायिकानां तेष्वेव त्रिभेदेषु जीवानां
कायस्थितिरुत्कृष्टाऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणाऽस्ति, अतः सर्वाणां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्त-
दधिको नैव प्राप्यते, तस्मात् 'सव्वासु मुहुत्तनो' इत्यादिना गतार्थत्वेन पृथग् नोक्तस्तथाऽपि
निरुक्तप्रकृतिचतुष्टयस्य बन्धकालात् शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः संख्येयगुणो हीनो
बोद्धव्यः ॥१६४॥

औदारिककाययोगमार्गणायामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुरुबन्धकालं दर्शयितुकाम आह

उरले सगकायिर्द्धि जेढा ओरालियस्स बोद्धव्वो ।

देसूणा तिसहस्सा वासा तिरियडुगणीआण ॥१६५॥

(प्रे०) "उरले" इत्यादि औदारिककाययोगमार्गणायामौदारिकशरीरनाम उत्कृष्टबन्ध-
कालः स्वकायस्थितिमितो बोद्धव्यः, कायस्थितिर्औदारिकमार्गणाया देशो न द्वाविंशतिसहस्रवर्ष-
प्रमाणा वर्तते, इत्यत्र प्रमाणो बन्धकालोऽत्र वादरपृथ्वीकायापेक्षयोपपद्यते । तद्यथा—वादरपर्याप्तपृथ्वी-
कायानां भवस्थितिर्द्वाविंशतिसहस्रवर्षप्रमिता विद्यते, प्रतिपादिता च तथैव जीवसमासस्य हैमवृत्तौ-
कालद्वारे "सत्र वादरपृथिवीकायिनां 'वाजीसं' ति द्वाविंशति वर्षसहस्राण्युत्कृष्टा भवस्थितिः । अन्तर्मुहूर्त-
न्यूनाभित्प्रमाणां भवस्थितिं यावत् सततमौदारिकशरीरनाम केचन वादरपृथ्वीकायिका बध्यन्ति,
अन्तर्मुहूर्तन्यूनत्वं चात्राऽपर्याप्तावस्थासत्कं गृह्यते, अपर्याप्तावस्थायामौदारिकमिश्रकाययोगसत्त्वेनौ-
दारिककाययोगमार्गणाया एवाभावात् । 'देसूणा' इत्यादि तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य
प्रकृष्टबन्धकालो देशोनानि त्रीणि वर्षसहस्राणि वर्तते, स च वादरपर्याप्तवायुकायिकापेक्षया यदामञ्चति,
वादरवायुकायिकः सहस्रत्रयवर्षभवस्थितिकोऽस्ति । उक्ता च तस्य तावत्प्रमाणा भवस्थितिर्जीवसमा-
सस्य हैमवृत्तौ कालद्वारे "वादरानिलाना त्रीणि वर्षसहस्राणि" वादरवायुकायिकजीवस्याऽपर्याप्ताव-
स्थासत्कमन्तर्मुहूर्तं वर्जयित्वा औदारिककाययोगावस्थायां सततमेताः प्रकृतयो बध्यन्ते, अपर्याप्तावस्थाया-
मौदारिककाययोगमार्गणाया असत्त्वेन न तत्कालस्यात्र गणना क्रियते । ननु पृथिवीकायिकापेक्षयौ-
दारिककाययोगमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिर्देशो न द्वाविंशतिमहस्रप्रमिता वर्तते, अत आसां प्रकृतीनां
गुरुबन्धकालो देशो न द्वाविंशतिवर्षमहस्रप्रमितः कथं नोक्तः ? इति चेन्न, पृथिवीकायिकेषु मनुष्यद्विकोचै-
र्गोत्रप्रकृतिभिः सह यथासंभवं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वात् । वायुकायि-

केषु तु तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां मनुष्यद्विकोचैर्गोत्रप्रकृतिभिः सह परावर्तमानयोग्यतैव नास्ति, वायुकायिकानां मनुष्यभव उत्पत्त्यभावेन मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकत्वात्, अतो वायुकायिकाः सततं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतिप्रयं बध्नन्ति तस्माद् वायुकायिकानां श्रित्यौदारिकमार्गणायामेतासां प्रकृतीनामुक्तोत्कृष्टबन्धकालो घटते । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवनरकमनुष्यगतित्रयजातिपञ्चकैक्रियद्विकहारकद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासजिननामोचैर्गोत्ररूपाणां शेषपञ्चपट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः 'सञ्चामु सुदृढत' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः ॥१६५॥

कर्मणकाययोगाऽनाहारकलक्षणमार्गणाद्वेऽध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधित्सुराह

कम्माणाहारेभुं पंचसुरार्द्धेण होइ दो समया ।

सेसाण पयडीणं सट्ठीए होइ समयतिगं ॥ १६६ ॥

(प्रे०) "कम्मा" इत्यादि, कर्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां गुरुबन्धकालो द्वौ समयौ विद्यते, यत आसां पञ्चप्रकृतीनां बन्धकस्त्रस एव, तस्य चोत्कृष्टतया द्विसामयिकैव विग्रहगतिर्विद्यते । उक्तं च स्थानाङ्गत्रिस्थानकाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशवृत्तौ 'उक्कोसेणं ति त्रसाना हि त्रसनाड्यान्तरुत्पादात् वक्रद्वय भवति ।' 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां षष्टिप्रकृतीनां मार्गणयोरनयोत्कृष्टबन्धकालः त्रिसमयप्रमाणोऽस्ति, स्थावराणामुत्कृष्टतया त्रिसामयिकविग्रहगतिमत्त्वात् ॥१६६॥

स्थावरप्रायोग्यप्रकृतीनां त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनां चोत्कृष्टत्वेन बन्धकारुं मतान्तरेण प्ररूपयितुमाह—

थावरपाउग्गाण बत्तीसाए हवेज्ज समयतिगं ।

कुलणा तेतीसाए तसपाउग्गाण बिति परे ॥ १६७ ॥

(प्रे०) "थावर" इत्यादि, स्थावरजीवः स्थावरत्वेनोत्पद्यते तदा मार्गणयोरनयोर्वर्तमानेन तेन बध्यमानानां स्थावरप्रायोग्यानां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्धकालः त्रिसामयिको भवति । न्यस्त्रिंशत्त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो द्विसमयप्रमाणोऽस्तीति परे ब्रुवन्ति, तद्यथा स्थावरजीवः स्थावरत्वेनोत्पद्यते तदा त्रसप्रायोग्यप्रकृतीर्नैव बध्नातीति परेषां मतम्, अत एतन्मते स्थावरजीवो विग्रहगतौ त्रसप्रायोग्यप्रकृतीर्यदि बध्नाति तदा तस्योत्पादोऽपि त्रसेवेव, तस्माद् त्रसप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकस्थावराणां विग्रहगतिकालस्य द्विसामयिकत्वेन त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धकालः समयद्वयप्रमाण एव प्राप्यते ॥१६७॥

त्रसस्थावरप्रायोग्यप्रकृतयः का इत्याशङ्काऽपनोदाय ता गाथाद्वयेनोपदर्शयति

यावरपाउगाओ दुत्तीसपयडीउ अधुवबंधीओ ।

सायेयरहस्सरई सोगारइणपुमतिरियदुगं ॥ १६८ ॥

एगिदियहुडेउरलपरधाऊसासआयचडुगाणि ।

णवयावराइवायरतिगयिरजुगलजसणीआणि ॥ १६९ ॥

(प्रे०) “थावर” इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजाति-
हुंडकसंस्थानौदारिकशरीरपराधातोच्छ्वासमाऽऽतपोद्योतस्थावररूक्षमाऽपर्याप्तमाधारणाऽस्थिराऽशुभदु-
र्ममानादेयायशःकीर्तिवादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभयशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाः स्थावरप्रायोग्यद्वित्रिशदध्रुव-
बन्धिप्रकृतयः, एतद्व्यतिरिक्ताश्च त्रयस्त्रिशदध्रुवबन्धिप्रकृतयस्त्रसप्रायोग्या बोद्धव्याः । त्रसप्रायोग्य-
प्रकृतिर्नाम-यासां प्रकृतीनां विपाकस्त्रसेषेव न तु स्थावरेषु ताः ‘त्रसप्रायोग्याः प्रकृतयः’ इति व्यप-
दिश्यन्ते । शेषयोगमार्गणास्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः “सव्वासु सुहुत्ततो” इत्यनेन संदिष्टो-
ऽपि शिष्यावबोधार्थत्वंस्मामिः स प्रतिपाद्यते, तदेवम्-औदारिकमिश्रमार्गणायामपर्याप्तावस्थावर्तिसम्य-
गृह्येः पुरुषवेदसुरद्विक्रयैक्रियद्विक्रपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभविहायोगतिपराधातोच्छ्वास-
जिननामत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोचैर्गोत्रप्रकृतीनां निरन्तरबन्धित्वेन तस्यौदारिकमिश्रकाययोगस्योत्कृष्ट-
कालप्रमाणात्मकाऽन्तर्मुहूर्तमात्रो गुरुबन्धकालो ज्ञातव्यः । औदारिकाज्जोपाङ्गस्य च गुरुबन्धकालो
युगलिक्रमवेऽपर्याप्तावस्थासम्यग्यौदारिकमिश्रकाययोगस्योत्कृष्टकालप्रमितोऽस्ति । औदारिकशरीर-
नाम्नस्त्यौदारिकमिश्रकाययोगप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिरूपोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । शेषाध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां तु परावर्तमानत्वापेक्षयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालो विज्ञेयः, स च दर्शितान्तर्मुहूर्ता-
पेक्षया संख्येयभागरूपः ।

वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये पुरुषवेदमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विक्रपञ्चेन्द्रियजा-
त्यौदारिकद्विक्रयर्पभनाराचसंदननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वासजिननामत्रसचतुष्क-
सुभगत्रिकनीचैर्गोत्रलक्षणानां प्रकृतीनां गुरुबन्धकालो मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टकायस्थितिलक्षणाऽन्तर्मु-
हूर्तरूपो वेदयितव्यः, सोऽप्यत्र तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां सप्तमनरकापेक्षया, शेषप्रकृतीनां च देव-
नारकापेक्षया संभवति, शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालः परावर्तमानभावेन
प्राप्यते, सोऽपि कायस्थितिरूपाऽन्तर्मुहूर्तापेक्षया संख्येयभागरूपो विज्ञेयः ।

आहारकाहारक्रमिश्रकाययोगमार्गणयोः सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामेतत्कायस्थितिरूपा-
ऽन्तर्मुहूर्तप्रमितात्संख्येयभागरूपाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो गुरुबन्धकालोऽस्ति, शेषप्रकृतीनां च स एव काय-
स्थित्यात्मको विज्ञेयः

मनोयोगवचनयोगयोः पञ्चसु पञ्चसु मार्गणासु सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽ-
न्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, मार्गणानामासां प्रकृष्टकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् ॥ १६८-९ ॥

वेदेषु प्रकृतीनामध्रुववन्धिनीनामुत्कृष्टवन्धकालं निरूपयन्नादौ स्त्रीवेदमार्गणायां दर्शयितु-
काम आह

थीअ पणवण्णपलिआ देसूणा होइ सगपुमाईण ।
तिणराईणं तिण्हं उरलोवंगाइमाणं च ॥ १७० ॥
अहिअपणवण्णपलिआ पणपरधाइउरलाण तिथस्स ।
देसूणपुव्वकोडी ऊणतिपल्लाडत्थि चउसुराईण ॥ १७१ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “थीअ” इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रि-
कोच्चैर्गौरूपाणां सप्तप्रकृतीनां, भनुष्यद्विकवर्षभनाराचसंहननरूपाणां तिसृणां प्रकृतीना-
मौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातिव्रसनामरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां च देशोनपञ्चपञ्चाशत्पल्यो-
पमप्रमाण उत्कृष्टो वन्धकालः, तदित्यम्—ईशानदेवलोकवर्तिनी पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमिता-
युष्मत्परिगृहिता देवी स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वमवाप्स्येताः प्रकृतीरायुरन्तं यावद्-
वध्नाति । “अरुय” इत्यादि, पराधातोच्छ्रामवाद्रत्रिकलक्षणानां पञ्चप्रकृतीनामौदारिक-
शरीरनामकर्मण्योत्कृष्टवन्धकालः साधिकपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा—काचित्-
तिरश्ची मानुषी वेशानेऽपरिगृहिता पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमायुष्का देवी संजाता, ततश्च पुनरप्युत्वा
तिरश्ची मानुषी वा संजायते, तर्हि सा देवमवात्पूर्वभवसत्के पश्चात्भवसत्के चान्तर्मुहूर्तकाले तथा देव-
भवसत्कपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमकाले पञ्चानां पराधातप्रभृतिप्रकृतीनां वन्धं प्रकरोति । औदारिकशरीर-
नामकर्म च देवमवात्पाश्चात्येऽन्तर्मुहूर्ते देवभवसत्कपञ्चपञ्चाशत्पल्योपमात्मके च काले वध्नाति ।
अथ पूर्वभवसत्कचरमान्तर्मुहूर्तस्य किमर्थमग्रहणमिति चेद्, आह—अत्र देवमवात्पूर्वभवचरमाऽन्तर्मु-
हूर्ते वैक्रियद्विकस्यैव वन्धो भवतीत्यतस्तदग्रहणम् । “तिथस्स” इत्यादि, तीर्थकरनामकर्मण उत्कृष्ट-
वन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितो विज्ञेयः, तदेवम्—पूर्वकोटिवर्षायुष्मती काचिन्मानुषी वर्षाष्ट-
कादूर्ध्वं जिननाम निकाय्य यावदायुरन्तं वध्नाति, तस्मादेतादृशो जिननामकर्मणो गुरुवन्धकालो-
ऽवाप्यते, कालकरणानन्तरं मार्गणाया विच्छेदेन ततोऽधिकतरकालो नावाप्यते । “ऊणतिपल्ला”
इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालो देशोनपल्योपमत्रयमस्ति,
भावना मानुषीमार्गणावत्कार्या । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्ग-
नर-
कगतिद्वयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्काहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानप-
ञ्चकतिर्यग्गनरकानुपूर्वीद्वयाऽशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतनीचैर्गौरूपाणां
पञ्चचत्वारिंशदध्रुववन्धिशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालः ‘सन्वासु मुहूर्ततो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तमकोऽ-
वसेयः ॥ १७०-१॥

पुरुषवेदमार्गणायामधुनाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालं व्याख्यातुकाम आह

पुरिसे ओधव्व भवे वारपुमाईण पणणराईणं ।

तेत्तीसा अयरा सगपणिदिआईण उण तिथद्विसय ॥ १७२ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “पुरिसे” इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायाम्, “पुमसुखं पदमगिइसुदमतिगुचसुरविउवदुग । जिण” इति संप्रदगाथांशेषु प्रतिपादितानां द्वादशपुरुषवेदादिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकाल ओधव्व भवति, तथा—पुरुषवेदसुखगतिममचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकोचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिममकस्य द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमाणि, सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य साधिकं पण्योपमत्रयम्, जिननामकर्मणश्चाभ्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि प्रकृष्टवन्धकालः, भावना पुनर्त्रौधवदवमातव्या । “पण” इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचमहननरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवगन्तव्यः, पुरुषवेदमार्गणावर्तिभिरनुत्तरवामिसुरैरनवरत त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितप्रकृष्टस्वायुःस्थितिं यावदेतत्प्रकृतिपञ्चकस्य बध्यमानत्वात् । अत्र मनुष्यद्विकवर्षमनागचसहननप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टवन्धकालो यद्यप्योववदस्ति, तथापि बन्धकालमाभ्यदौदारिकद्विकेन सह पृथगुक्तमित्यदोषः, । औदारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मण उत्कृष्टवन्धकाल ओधव्वत्कथं नाभिहित इति चेद्, आह—ओवे साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः तदुत्कृष्टवन्धकाङ्गोऽभिहितः, स च सप्तमनरकापेक्षया संघटते, नारकाश्च न पुरुषवेदमार्गणायां वर्तन्ते, नपुंसकवेदवत्त्वात्तेषाम्, अत ओधव्वोक्तम्, अत्र तु परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽभिहितः, स चानुत्तरसुरापेक्षया घटत एव, तेषां पुरुषवेदवत्त्वात् । “सगपणिदिय” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातित्रसपराधातोऽन्ध्यासवादरत्रिकलक्षणानां सप्तप्रकृतीनां गुरुबन्धकालस्त्रियष्टयधिकशतसागरोपमाणि, तदेवममार्गणायामस्या वर्तमानः कश्चित्सम्यग्दृष्टिः पट्पटिसागरोपमकालं यावदेताः प्रकृतीर्गुणप्रत्ययेन बध्नाति, नवमग्रैवेयके चोत्पन्न एकत्रिंशत्सागरोपमकालं मिथ्यात्वभावे वर्तमानोऽपि भवप्रत्ययेन बध्नाति, स्वायुरन्तिमान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वं समासाद्य पुनरपि तथैवाऽऽपट्पटिसागरोपमकालं बध्नाति, तस्मात्प्रकृतीनामासामेतादृशप्रमाणो बन्धकालोऽवाप्तुं शक्यः । “सञ्जासु मुहुत्ततो” इत्यादिनाऽनन्तरस्त्रीवेदमार्गणोक्तानां वेदनीयद्विकशस्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकतिर्यग्गतिद्वयैकेन्द्रियप्रभृतिजातिचतुष्काहारकद्विकाऽऽद्यसंहननवर्जसंहननपञ्चकाऽऽद्यसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यग्नरकानुपूर्वीद्वयाऽशुभसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चवचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः ॥ १७२ ॥

इदानीमध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नपुंसकवेदमार्गणायामुत्कृष्टवन्धकालमभिधित्सुराह

अपुसे तेत्तीसुवहो, सत्तपुमाइतिणराइगापूणा ।

साहिपतेत्तीसुवहो, उरलोवगाइमदुण्ह ॥ १७३ ॥

तिरिक्कुगुरलणीआणं ओधव्व हवेण चउपुराईणं ।

वेसूणपुच्चकोडी तिरयस्स तिसागराऽभाहिया ॥ १७४ ॥

(प्रे०) “पापुमे” इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां पुरुषवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसुभ-
गात्रिकोचैर्गोत्रमनुष्यद्विक्रयञ्चभनाराचसंहननरूपाणां दशप्रकृतीनां गुरुबन्धकालो देशोनत्रयस्त्रिंश-
त्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्—मार्गणायामस्यां वर्तमानस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कः कश्चि-
त्सप्तमनारकः स्योत्पत्त्यन्तर्मुहूर्तानन्तरं समधिगतसम्यक्त्व एताः प्रकृतीर्निरन्तरं वध्नाति यावत्स्वा-
युषोऽन्तिमान्तर्मुहूर्तमवतिष्ठते, चरमान्तर्मुहूर्ते च तिर्यग्भव एव तस्योत्पत्तिभावेन विगतसम्यक्त्वो
भवति, प्रथमचरमान्तर्मुहूर्तयोश्च सम्यक्त्ववैकल्येन तस्य पुरुषवेदादिप्रकृतप्रकृतीनां बन्धः सततं न
भवति, तस्मादत्राऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितो गुरुबन्धकालः प्रकृतीनामासामुपल-
भ्यते । “साह्रिय” इत्यादि, “उरलोचगपणिदियतसपरधूमासनायरतिगाणि” इति संग्रहगाथाशकलेषु
भाषितानामष्टानामौदारिकाङ्गोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातिव्रसपराधातोच्छ्वासवाद्रत्रिकप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्ध-
कालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि विधत्ते, योजनात्वेवं कार्या—एतन्मार्गणागतः सप्तमनारक-
स्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालपर्यन्तमेता अष्टप्रकृतीरनवरतं वध्नाति, सप्तमनारकाच्चोद्धृत्य तिर्यग्भवे
नपुंसकवेदितयोत्पन्नः सन्नन्तर्मुहूर्तकालं वध्नाति । त्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वास-
रूपाः सप्तप्रकृतीस्तु सप्तमनारकमत्रात्पूर्वमप्यन्तर्मुहूर्तकालं वध्नाति । नचौदारिकाङ्गोपाङ्ग-
नामः कथं न सप्तमनारकमत्रात्पूर्वं बन्ध इति वाच्यम् सप्तमनारकं जिगमिषोर्जीवस्य नारक-
प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन वैक्रियद्विकस्य बन्धे वर्तमानत्वात् । “तिरिदुगे” इत्यादि, तिर्यग्गति-
तिर्यगानुपूर्व्यौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकाल ओघवदस्ति, तत्पुन-
रेवम्—तिर्यग्विक्रनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिव्रसस्योत्कृष्टबन्धकालोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणः, औदा-
रिकगरीरानामकर्मणश्चासंख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणः, भावना पुनरत्रौघवद्भावनीया । “चउ” इत्यादि,
सुरद्विवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य देशोनपूर्वकोटिर्वर्षप्रमित उत्कृष्टबन्धकालः, यतो हि
युगलिकेषु नपुंसकवेदोदयाभावेन नपुंसकवेदमार्गणायां वर्तमानः कर्मभूमिज एव पूर्वकोटिर्वर्षायुष्कः
कश्चित्तिर्यङ् मनुष्यो वा जन्मतः सम्यक्त्वानुत्पत्तिप्रायोग्यकालस्य गमनानन्तरं लब्धसम्यक्त्वः
प्रकृतिचतुष्टयमेतत्स्वायुरन्तं यावदनवरतं वध्नाति । “तित्थस्स” इत्यादि, जिननामकर्मणस्साधि-
कसागरोपमत्रयमुत्कृष्टबन्धकालो वेदयितव्यः, अयमपि मुख्यवृत्त्या तृतीयनारकापेक्षया प्राग्बु-
द्धिभावनीयः । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनारकगत्येकेन्द्रियादिजाति
धतुष्काहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकनारकानुपूर्व्यशुभखगति-
स्थिरशुभयगःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणां द्विचत्वारिंशत्शेषाव्रुवबन्धिप्रकृतीनामान्तर्मुहूर्तिको
गुरुबन्धकालः ‘सन्वासु मुहुत्ततो’ इत्यादिगाययाऽधिगम्यः ॥१७३-१७४॥

वेदमार्गणासु प्रकृतीनामव्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालमभिधाय साम्प्रतमपगतवेदमार्गणायां
तत्समतया चाऽकपायादिमार्गणासु तमुपदर्शयन्नाह

गयवेए अकसाये केवलजुगले तहा अहक्खाये ।

सायस्स जाणियद्वो, कोडो पुव्वाण वेसूणा ॥१७५॥

(प्रे०) “गयवेए” इत्यादि, अवगतवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयम-
नामासु पञ्चसु मार्गणासु सातवेदनीयस्य ज्येष्ठो बन्धकालो देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणः, यतो हि पूर्व-
कोटिवर्षायुष्काः केचन मनुष्याः शीघ्रातिशीघ्रं क्षपकश्रेणिं समुपलभ्य मार्गणास्यासु समधिगतप्रवेशाः
त्रयोदशगुणस्थानकस्याऽऽचरमसमयं तद्वन्धन्ति । अत्रापि यो विशेषः स उच्यते—केवलज्ञानकेवल-
दर्शनमार्गणयोरेतद्व्यतिरिक्ताऽपगतवेदादिमार्गणापेक्षया सातवेदनीयस्य प्रकृष्टबन्धकालोऽप्यः,
त्रयोदशगुणस्थानकालप्रमाणत्वात् प्रकृष्टतया तद्वन्धकालस्य, परस्परं तु तुल्यः । तदपेक्षया यथा-
ख्याताऽकषायमार्गणयोः तद्वन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तनाधिकः, मार्गणयोरनयोर्द्वादशगुणस्थानकाल-
स्यापि समावेशात्, ततोऽपि गतवेदमार्गणायामधिकोऽन्तर्मुहूर्तन, नवमगुणस्थानकसत्कक्रिय-
त्कालस्य दशमगुणस्थानकालस्य चापि प्रविष्टत्वादस्यां मार्गणायाम्, अवगतवेदमार्गणायां शेष-
प्रकृतीनां ज्येष्ठो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव ‘सव्वासु सुहुत्ततो’ इत्यादिनावगन्तव्यः । शेषमार्गणा-
चतुष्केऽन्यासा प्रकृतीनां बन्धाभावात् बन्धकालो नास्ति । शेषासु क्रोधमानमायालोमलक्षणासु
मार्गणासु ज्येष्ठो बन्धकालोऽखिलाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः सव्वासु सुहुत्ततो’ इत्यादि-
गाथयाऽवगन्तव्यः, आसां मार्गणानां प्रकृष्टकालस्याऽपि तावत्प्रमाणत्वात् ॥१७५॥

मतिज्ञानादिमार्गणासु सम्यक्त्वौघप्रभृतिमार्गणासु च प्रकृतीनामध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टबन्धकालं
चिन्तयन्नाह

एणाणतिगे ओहिम्मि य सम्मल्लइअवेअगोसु णायवो ।

जेट्ठा सगकायिठि चउहसपणिदियाईणं ॥१७६॥

पचण्ह णराईण तेत्तीसुदही जिणस्स तेऽबमहिंया ।

सुरविउवदुगस्सऽहियतिपल्लोहिदुगम्मि पुव्वकोडो वा ॥१७७॥ (गोतिः)

णवरि चउसुराईण ऊणतिपल्लाणि वेअगे जेयो ।

सायस्स पुव्वकोडो वेसूणा सम्मल्लइएसुं ॥ १७८ ॥

(प्रे०) “णाण” इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षापिकसम्यक्त्व-
क्षयोपशमसम्यक्त्वलक्षणासु सप्तसु मार्गणासु ‘पणिदियतसपरघूसासवायरतिणाणि । पुमसुखगइपढमा-
गिइसुहगतिगुघे’ति सग्रहगाथाशेषु भाषितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां चतुर्दशानां प्रकृतीनां
प्रकृष्टबन्धकालः स्वीयस्वीयोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणो विज्ञेयः, एतन्मार्गणावर्तिभिरसुमद्भिरनवरतं ताव-
त्कालं प्रकृतीनामासां गुणप्रत्ययेन बध्यमानत्वात् । ‘पंचण्ह’ इत्यादि संग्रहगाथासु यथाक्रमतो
गदितस्य मनुष्यद्विक्रीदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्योत्कृष्टबन्धकालस्त्रय-
स्त्रिशत्सागरोपमाणि, विजयाद्यनुत्तरवामिदेवानां तावत्कालं बन्धसद्भावात्तस्य । ‘जिणस्स’
इत्यादि, तीर्थकुभामकर्मण उत्कृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिशत्सागरोपमप्रमाणः, भावना तत्रौघ-

वद् विधेया । 'सुरविचव' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टवन्धकालो देशोनपूर्वकोटिबिभागेनाधिकः पल्योपमत्रयप्रमितो विज्ञातव्यः, भावनौधतुल्या ज्ञातव्या । "ओहि-दुगन्मि" इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकयोत्कृष्टवन्धकालोऽवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणयोः पूर्वकोटिवर्षप्रमाणः, कुतः ? इति चेदाह-युगलधर्मिष्ववधिज्ञानदर्शनौ न स्तः, यतो यः कश्चिद् देवो नारको वा ससम्यक्त्वोऽवधिज्ञानेन सह पूर्वकोटिवर्षायुष्के मनुष्य एवोत्पद्यते, तस्मात्तत्र गुणप्रत्ययेन पूर्वकोटिं यावन्निरन्तरं प्रकृतप्रकृतिचतुष्कं वध्यते, अतो निरुक्तवन्धकालो यटामश्चति । 'वा' इति अत्र वा शब्दो मतान्तरद्योतकः, महावन्धकारादयो युगलधर्मिष्वप्यवधिज्ञानदर्शने इच्छन्ति, अतस्तन्मते मतिज्ञानमार्गणावद् देशोनपूर्वकोटिबिभागेनाधिकः पल्योपमत्रयमितः प्रकृतप्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टवन्धकालो वेदयितव्यः ।

अथ मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासु सुरद्विकादिप्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टवन्धकालोऽभ्यधिकपल्योपमत्रयप्रमितोऽभिहितः, तत्क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां न सङ्गच्छत इत्यतः "णवरि" इत्यादिना विशेषं दर्शयति, तद्यथा-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य प्रकृष्टो वन्धकालो देशोनत्रिपल्योपमप्रमाणो ज्ञेयः, देशोनत्वं चेह-युगलिकमवे कृतकरणभिन्नानां क्षायोपशमिकसम्यक्त्ववतामुत्पादाभावनिमित्तकमेवाऽवसातव्यम् । ततः किं ? युगलिकमवप्रथमसमयाद् जघन्यतो यावत्कालं सम्यक्त्वं न प्राप्नोति तावत्कालमेतत्प्रकृतिचतुष्कस्य निरन्तरं वन्धाभावोऽस्ति, अतः सूक्ष्मतं "ऊणतिपल्लाणि" इति । शेषभावना मानुषीमार्गणावत्कार्या । "सायस्स" इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये सातवेदनीयस्योत्कृष्टवन्धकालः किञ्चिदूनपूर्वकोटिवर्षप्रमितोऽस्ति, स चौघवज्ज्ञातव्यः । मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणात्रयेऽवधिदर्शनमार्गणायां क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां च वेदनीयद्विकहास्यादिपुगलद्वयाहारकद्विकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराशुभऽयशःकीर्तिरूपाणां चतुर्देशप्रकृतीनाम्, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वारूपमार्गणयोश्च सातवेदनीयवर्जानामासामेव त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालः 'सन्वासु मुहुत्ततो' इत्यादिगाथयाऽन्तमुहूर्तरूपो ज्ञातव्यः ॥ १७६-७८ ॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां तत्सादृश्यात्सामायिकसंयमाऽऽदिमार्गणासु चोत्कृष्टवन्धकालमध्रुववन्धिप्रकृतीनामभिदधाति

मणणाणसमइएसुं छेए परिहारदेसविरईसुं ।

जेठ्ठा सगकायठई, गुणवीसपणिदियाईणं ॥ १७९ ॥

(प्रे०) "मण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसामायिकछेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयमलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु 'पणिदियतसपरघूसासत्रायरतिगाणि । पुमसुजगइपढमागिइसुहगतिगुच-सुरविचवदुग ॥ चिण' इति संग्रहगाथावयवेषु गदितानां पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालः स्वीयस्वीयज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणो ज्ञेयः, तदेवम्-मार्गणानामासां गुर्वी कायस्थिति-

देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणा विद्यते, एतावत्प्रमाणः पञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धकालो मनः
पर्यवसामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणासु पूर्वकोटिवर्षाद्युष्कस्य श्रेणिमनुपगतजीवस्यापेक्षया प्राप्यते,
स्त्रायुःपूर्णां यावत्तेन निरन्तरं वध्यमानत्वात्, श्रेणिमुपगते तु तासां प्रकृतीनां तादृशो बन्धकालो
नैव प्राप्यते, श्रेणौ तासां बन्धव्यावृत्तिमात्रात् । परिहारविशुद्धिदेशविरतिसंयममार्गणयोश्च श्रेणेः प्रार-
म्भाऽभावात् पूर्वकोटिवर्षाद्युष्कः कश्चिदसुमान् यथायोग्यकाले परिहारविशुद्धिसंयमं देशविरतिसंयमं वा
समधिगम्य यावज्जीवं प्रकृतप्रकृतीनां बन्धं विधत्त इतिरीत्या निरुक्तबन्धकालः प्राप्यते । तथा वेद-
नीयद्विकहास्यादियुगलद्वयाहारकद्विकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां शेषचतुर्दश-
प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः 'सञ्चासु सुहृत्ततो' इत्यादिना बोद्धव्यः । देशविरतौ शेषतया
द्वादश प्रकृतयो बोध्याः, आहारकद्विकस्य बन्धाभावात् ॥१७९॥

अज्ञानमार्गणासु तत्साम्यान्मिथ्यात्वाभ्यव्यलक्षणमार्गणादये चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्ध-
कालं प्रतिपादयितुमना आह

तिरिवुपुरलणीभाणं अण्णाणदुगे अभवियमिच्छेसुं ।

ओधव्व एगतीसा अयराऽभहिया णरदुगस्स ॥ १८० ॥

ऐसूण पल्लतिगं सुल्लगइभाइछगचउसुराईणं ।

साहियतेत्तोसुवहो उरलोवंगाइअट्टण्हं ॥ १८१ ॥

(प्रे०) 'तिरि' इत्यादि मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभ्यव्यमिथ्यात्वमार्गणाचतुष्टये तिर्यग्गतितिर्य-
गानुभूयैर्दारिकशरीरनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्टयस्योत्कृष्टो बन्धकाल ओधव्वद्वोद्धव्यः, तद्यथा-
तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्यातलोकाकाशप्रदेशप्रमाणः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽसंख्या-
तपुद्गलपरावर्तप्रमाण उत्कृष्टबन्धकालः, अत्र भावनौघत एव वेदयितव्या । 'एगतीसा' इत्यादि
मनुष्यगतमनुष्यानुपूर्वीलक्षणस्य प्रकृतिद्वयस्योत्कृष्टो बन्धकाल एकत्रिशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति,
प्रकृतमार्गणात्तुत्कृष्टस्थितिकनवमग्रैवेयकदेवस्य भवप्रत्ययेनानवरतमेकत्रिशत्सागरोपमप्रमितस्वाधु-
रन्तं यावद् वध्यमानत्वात्, तदूर्ध्वं मनुष्यगतवप्यन्तर्मुहूर्तकालं मनुष्यद्विकस्य वध्यमानत्वाच्च ।
'ऐसूण' मित्यादि, 'सुल्लगइपढभागिइसुहगतिसुल्ल' इति सग्रहगाथावयवेषूक्तानां षण्णां प्रकृतीनां
सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य च प्रकृष्टो बन्धकालो देशोनपञ्चोपमत्रयप्रमाणोऽस्ति,
अपर्याप्ताऽवस्थासत्कमन्तर्मुहूर्तकालं परित्यज्य यावदायुःसमाप्तिं मार्गणास्वासु वर्तमानैर्युगलिकै-
रनिरन्तरं वध्यमानत्वात् । 'साहिय' इत्यादि, 'उरलोवगपणिदियतसपरधूसासवायरतगाणि' इति
संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानामष्टानां प्रकृतीनां साधिकत्रयस्त्रिशत्सागरोपमाणि प्रकृष्टो बन्धकालः,
षट्नाऽत्र नपुंसकमार्गणावद्विधेया । 'सञ्चासु सुहृत्ततो' इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमितो गुरुत्वा-
बन्धकालो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्कसंहननपट्कप्रथम-

संस्थानवर्जमंस्थानपञ्चकनरकानुपूर्व्यशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणां
द्वाचत्वारिंशत्शेषाऽध्ववन्धिप्रकृतीनामवसातव्यः ॥१८०-१८१॥

साम्प्रतं विभङ्गज्ञानमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालं कथयति

विभंगे तिरियउरलदुगणीआण हवेज्ज तेत्तीसा ।

अयरा ते अब्भहिया, सत्तण्ह पणिदियाईण ॥ १८२ ॥

अण्णे उ वारसण्ह वि भणन्ति वेसूणजलहितेत्तीसा ।

मण्णुयदुगस्सिगतीसा अयराऽण्णे विति वेसूणा ॥ १८३ ॥

(प्रे०) “विभंगे” इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकनीचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चप्रकृ-
तीनां प्रकृष्टवन्धकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणावत्युत्कृष्टकायस्थितिकनारकस्या-
नवरतं स्वायुः सन्तं यावद्बध्यमानत्वात् । “ते अब्भहिया” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिप्रसपराघातोच्छ-
वासवादरन्ध्ररूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाण उत्कृष्टवन्धकालोऽस्ति,
तदेवम्—अवाप्तविभङ्गज्ञानः कश्चिज्जीवस्तिर्यग्भवे मनुष्यभवे वा सप्तमनरकमुत्पितुश्चरमान्तर्मुहूर्ते पञ्चे-
न्द्रियजातिप्रभृतिसप्तप्रकृतीर्वध्नाति, सप्तमनरके चोत्पद्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थिति-
पर्यन्तं वध्नाति, अतोऽन्तर्मुहूर्तेनाऽधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणो वन्धकालः प्रकृततयाऽत्रोपलभ्यते ।
“अण्णे” इत्यादिना प्रकृतद्वादशप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालविषयं मतान्तरमुपदर्शयति, अत्रोक्तानां
द्वादशप्रकृतीनां देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं प्रकृष्टवन्धकालं परे ब्रुवन्ति, तेषां मते प्रकृतमार्ग-
णाया उत्कृष्टकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात् । ‘मण्णुय’ इत्यादि, मनुष्यद्विकस्योत्कृष्टवन्धकाल एक-
त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणोऽवसेयः, नवमग्रैवेयके केनचिद्विभङ्गज्ञानिना तावत्प्रमाणकालं संततं मनुष्य-
द्विकस्य बध्यमानत्वात्, तदूर्ध्वं मार्गणाविच्छेदान् साधिकता । “अण्णे” इत्यादि, परे मनुष्य-
द्विकस्योत्कृष्टवन्धकालं देशेनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमितं ब्रुवन्ति, यतस्तेऽपर्याप्तावस्थायां नारकदेवा-
नामपि विभङ्गज्ञानमेव न मन्यन्ते, पर्याप्तावस्थायमेव तस्याऽङ्गीकारात्, अत उभयत्र देशोनत्वं
परमतेनाऽपर्याप्तावस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम्, तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रय-
देवादिकनरकद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कवैक्रियद्विकसहननपट्कसंस्थानपट्कखगतिद्विकस्थिरपट्कस्था-
वरदशकाऽऽतपोद्योतोचैर्गोत्ररूपाणां द्विपञ्चाशत्शेषप्रकृतीनां प्रकृतो वन्धकालः ‘सव्वासु सुद्धत्तो’
इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसातव्यः ॥१८२-८३॥

साम्प्रतं संयमौघाऽसंयममार्गणयोरध्ववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालं निरूपयितुमाह

युक्कायठिई वीसापणिदियाईण संयमे जेयो ।

अंजए पंचदसण्ह उरलोवंगाइपयडीणं ॥ १८४ ॥

विण्णेयो अब्भहिया तेत्तीसा सागराऽत्थि ओघवेव ।

पंचण्ह सुराईण, तिरियाईणं च सत्तण्ह ॥ १८५ ॥

(प्रे०) 'गुरुकाय' इत्यादि संयमौघमार्गणायां 'पणिदियतसपरघूसासचायरतिगाणि । पुम-
सुखगइपढमागिडसुइगतिगुचसुरविज्वदुगं ॥ जिण साय' इतिसंग्रहगाथाशकलेषु कथितानां पञ्चेन्द्रिय-
जातिप्रभृतीनां विंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धकालः स्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवसेयः, मार्गणाया-
भस्यां वर्तमानैरसुमद्भिस्तावत्कालं निरन्तरं बध्यमानत्वात्तामाम् । परमत्र सातवेदनीयस्यैता-
दशोत्कृष्टबन्धकालः किञ्चिन्न्यूनो ज्ञातव्यः, यतः सोऽप्योघवदन्तमुहूर्तेनाधिकस्त्रयोदशगुणस्थान-
प्रकृष्टकालप्रमाण एव ज्ञातव्यः, संयममार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितितत्त्रयोदशगुणस्थानकस्य-
प्रकृष्टकालो हीन एव । असातवेदनीयहास्यादिपुगलद्वयाहारकद्विकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभा-
यशःकीर्तिरूपाणां शेषाणामध्रुवबन्धिनीनां त्रयोदशप्रकृतीनां 'सन्वासु मुहुत्तना' इत्यादिगाथातोऽन्त-
मुहूर्तप्रमाणोऽधिगन्तव्यः ।

'अजए' इत्यादि असंयममार्गणायां 'उरलोवगपणिदियतसपरघूसासचायरतिगाणि । पुमसुख-
गइपढमागिडसुइगतिगुच' इति संग्रहगाथावयवेषु भणितानां पञ्चदशानामौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रमुख-
प्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितः, स पुनरेवम्-औदारिकाङ्गोपाङ्ग-
स्याभिहितप्रकारो बन्धकालः सप्तमनरकापेक्षया सभधिगम्यः, सप्तमनारकेण सततं तावत्कालं
तस्य बध्यमानत्वात्, साधिकत्वं चाऽत्र सप्तमनरकभवादूर्ध्वं तिर्यग्भवेऽन्तमुहूर्तं यावद्बध्यमानत्वा-
दवसेयम्, पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां चतुर्दशप्रकृतीनां चैतत्प्रकारो बन्धकालोऽनुत्तरदेवान्प्रतीत्यैव-
ज्ञातव्यः, साधिकत्वं पुनरत्राऽनुत्तरभवानन्तरं मनुष्यभवेऽन्तमुहूर्तं न्यूनपूर्वकोटिर्वर्षं यावत् प्रकृतीना-
मासां बध्यमानत्वेन तावत्प्रमाणं बोद्धव्यम् । यद्वा सप्ततिकाभाष्यवृत्ती मोहनीयस्य सप्तदशप्रकृत्या-
न्मकबन्धस्थानस्योत्कृष्टकालो द्वाविंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाण उक्त, अत एवद्व्यग्रन्थानुसारेण चतुर्थ-
चतुर्थगुणस्थानकयोः समुदितकालस्य द्वाविंशदुत्तरशतसागरोपमप्रमाणत्वेनौदारिकाङ्गोपाङ्गवर्ज-
शेषपञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखसप्तप्रकृतीनां बन्धकालो दीर्घकालेन ततोऽप्यधिकः, पुरुषवेदादिसप्तानां तु
बन्धकालस्तावन्मात्रो अन्तमुहूर्तेनाधिकः कथयितव्यः । 'ओधव्व' इत्यादि सुरद्विकवैक्रियद्विकजिन-
नामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रनरद्विकवर्षमनाराचसंहननौदारिकशरीरनामकर्म-
रूपस्य च संग्रहाथोक्तस्य प्रकृतिसप्तकस्योघवदुत्कृष्टबन्धकालोऽधिगम्यः, तदेवम्-सुरादिप्रकृति-
चतुष्कस्य साधिकपल्योपमत्रयप्रमाणः, जिननाम्नः साधिकरूपस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितः, तिर्यग्द्विक-
नीचैर्गोत्राणामसख्यलोकाशप्रदेशप्रमाणः, मनुष्यद्विकवर्षमनाराचसंहननप्रकृतिनां त्रयस्त्रिंश-
त्सागरोपमलक्षणः, औदारिकशरीरनामकर्मणश्चासंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमितो गुरुतया बन्धकालः, भाव-
नाप्यत्राववद्भाषनीया । अत्र जिननामबन्धकालेऽयं विशेषो ज्ञातव्यः-प्रस्तुतमार्गणायां न ओघवद्
देशोनपूर्वकोटिद्वयाधिकरूपस्त्रिंशत्सागरोपममितः किन्तु देशेनैरूर्ध्वकोट्यधिक एव, अनुत्तर-
भवात्पूर्वमनुष्यभवे सर्वविरतिधरत्वेन मार्गणाया बहिर्भूतत्वादिति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-

द्वयस्त्रीनिपुंसकवेदद्वयनरकगत्येकेन्द्रियादिजातिचतुष्कप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्ज-
संस्थानपञ्चकनरकानुपूर्व्यशुभखगतिस्थियाशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकोतपोद्योतरूपाणां चत्वारिंशत्शेषा-
ध्रुववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालः, 'सन्वासु सुहुत्ततो' इति गाथातोऽन्तर्मुहूर्तरूपोऽवसेयः ॥ १८४-८५ ॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामध्रुववन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टवन्धकालं निरूपयितुकाम आह-

सासायणम्मि होइ तितिरियाइणरडुगणवुरलाईणं ।

तह सुखगइपढमागिइसुहगतिगुचसुरविउवदुगं ॥ १८६ ॥

(प्रे०) 'सासायणम्मि' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां 'तितिरियदुगं' णीमं तह णर-
दुगं " उरल च ॥ उरलोवगपणिदियतसपरघूसासवायरतिगाणि । सुखगइपढमागिइसुहगतिगुच
सुरविउवदुगं' इति संग्रहगाथासूक्तानां तिर्यग्द्विकादिचतुर्विंशतिप्रकृतीनां स्त्रीयगुरुकायस्थितिप्रमाणो
गुरुवन्धकालः, तद्यथा-पडावलिक्काप्रमिता सास्वादनमार्गणायाः प्रकृष्टकायस्थितिरस्ति, मार्गणाया-
मस्यां वर्तमानं सप्तमनारकजीवमाश्रित्य तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य, आनतादिदेवमाश्रित्य
मनुष्यद्विकस्य, देवनारकावाश्रित्यौदारिकद्विकस्य, युगलिकमपेक्ष्य च सुखगतिप्रभृतीनां दशप्रकृती-
नामेतादृशो वन्धकालो ग्राह्यः यतो हि सर्वेऽप्येते जीवा भवप्रत्ययेनोक्तप्रकृतिप्रतिपक्षप्रकृतिवन्धा-
भावादेताः स्वप्रायोग्याः प्रकृतीर्मार्गणायामस्यां निरुक्तकालं बध्नन्ति । पञ्चेन्द्रियजातिप्रमुखाणां
सप्तप्रकृतीनां तु गतिचतुष्कमाश्रित्यैतादृशवन्धकालो ज्ञातव्यः, चतसृषु गतिषु वर्तमानानां सास्वा-
दनभावप्राप्तानां जीवानां पडावलिक्कां यावत्प्रकृतीनामासां गुणप्रत्ययेन निरन्तरं बध्यमानत्वात् ।
तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयचरमसंहननवर्जसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्का-
ऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिरपट्कोद्योतरूपाणां शेषाणामष्टाविंशत्यध्रुववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो
वन्धकालः 'सन्वासु सुहुत्ततो' इत्यादिगाथयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणो ज्ञातव्यः । उपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्य-
क्त्वरूपयोः शेषमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासामध्रुववन्धिप्रकृतीनामुत्कृष्टो वन्धकालः 'सन्वासु
सुहुत्ततो' इति गाथयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणो ज्ञातव्यः, मार्गणयोरनयोरुत्कृष्टतः कायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात्
तावत्कालं च तासां संततं बध्यमानत्वात् ॥ १८६ ॥

आहारकमार्गणायामुत्कृष्टवन्धकालमध्रुववन्धिप्रकृतीनामभिदधाति

आहारे तिणराइणउरलोवगइएगवीसाण ।

ओधव्व सकायठिई गुरु तितिरियाइउरलाईणं ॥ १८७ ॥

(प्रे०) 'आहारे' इत्यादि, आहारकमार्गणायां "मनुष्यद्विकवर्चर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्य
तथा ॥ उरलोवगपणिदियतसपरघूसासवायरतिगाणि । पुमसुखगइपढमागिइसुहगतिगुचसुरविउवदुगं ।
जिणसाय' इति संग्रहगाथासूक्तानामेकविंशत्यौदारिकाङ्गोपाङ्गादिप्रकृतीनां चेति सर्वसङ्ख्यया चतु-
र्विंशतिप्रकृतीनामोधवदुत्कृष्टवन्धकालः, तदेवम्-नरद्विकवर्चर्षभनाराचसंहननप्रकृतित्रयस्य त्रय-
स्त्रिंशत्सागरोपमाणि, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कस्य साधिकपण्योपमत्रयम्, पञ्चेन्द्रिय-

जातित्रसपराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां किञ्चिदधिकपञ्चाशीत्यधिकसागरोपम-
शतम्, औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य साधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, पुरुषवेदसुखगतिप्रथमसंस्था-
नसुभगत्रिकोचैर्गोत्ररूपाणां सप्तप्रकृतीनां किञ्चिदधिकद्वात्रिंशदधिकं सागरोपमशतम्, सातवेद-
नीयस्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, जिननाम्नश्च साधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीति, भावनाऽप्यत्रौ-
धवत्कार्या । 'सकायठि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां चतसृणां प्रकृती-
नामुत्कृष्टवन्धकालो मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितिसमयप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्-आहारक-
मार्गणाया गुर्वी कायस्थितिरङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमिता विद्यते, एतावत्कालं
निरन्तरं बन्धो मार्गणायामस्यां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य तेजस्कायिकवायुकायिकजीवानाश्रित्य
विज्ञेयः, न पुनरन्यान्पृथ्वीकायादिजीवानाश्रित्य, प्रकृतित्रयस्यास्यैतैः परावर्तमानभावेन बध्यमान-
त्वात्, औदारिकशरीरनाम्नस्तु पृथ्वीकायिकादीन्प्रतीत्यैतादृशबन्धकालो ज्ञातव्यः; तावत्कालं तैर्निर-
न्तरं बध्यमानत्वात् । तथाऽसातवेदनीयहास्यादिपुगलद्वयस्त्रीनपुंसकवेदद्वयनरकगत्येकेन्द्रियादिजाति-
चतुष्काऽऽहारकद्विकप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिनरकानु-
पूर्वीस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरदशकातपोद्योतरूपाणामेकचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टो बन्ध-
कालः 'सव्वासु सुहुत्ततो' इतिगाथातोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसेयः । आमामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुणप्रत्ययेन
भवप्रत्ययेन वाऽधिकत्रयन्धकालस्याऽलामात् । इत्युक्त उत्कृष्टवन्धकालः, तदुक्ते च समाप्तिममगादेक-
जीवाश्रित कालद्वारम् ॥१८७॥

॥ इति श्रीभ्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे
प्रथमाधिकारे चतुर्थे कालद्वार समाप्तम् ॥



॥ पञ्चममन्तरद्वारम् ॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तं पञ्चममेकजीवाश्रयमन्तरद्वारं निरूपयिषुर्ग्रन्थकार आदौ गाथाचतुष्टयेन प्रकृतिसंग्रहमुपदर्शयति

अत्थाइम्मि किरिअ जं जाओ पुच्चन्ति ता कमा गेज्जा ।
एत्तो आहारदुगं निद्दुगं च तइअकसाया ॥ १८८ ॥
दुइअकसाया मिच्छंथीणद्धितिगमणचउगयीणपुमा ।
सधयणागिइपणं दुहगतिगं कुल्लगई णीअं ॥ १८९ ॥
तिरियदुगुज्जोआयवेषावरएगिदिसुहमतिगविगला ।
णिरयसुरविउच्चदुगं उच्चणरदुगवइएरपुवंगाणि ॥ १९० ॥ (गीतिः)
उरल परधूससा बायरतिगतसर्पाणिदिजिणसाया ।
हस्सरइयिरसुहजसा, असायअरइदुगअयिरदुगअजसा ॥ १९१ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) “अत्था” इत्यादि, अन्तरद्वारप्ररूपणायां यां प्रकृतिमादौ कृत्वा याः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते, ता वक्ष्यमाणास्य आस्यः प्रकृतिभ्यः क्रमतो ग्राह्याः । “आहारदुग”मित्यादि, आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गानिद्राप्रचलाप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्काणीति सङ्ख्ययाऽष्टप्रकृतयः प्रथमगाथायां कथिताः । “दुइअ” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणक्रोधादिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदप्रथमसंहननवर्जसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकदुर्मगदुस्वरानादेयाऽशुभखगतिनीचैर्गोत्राणीति द्वितीयगाथायामेकोनविंशत्प्रकृतयो मणिताः । “तिरिय” इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्युद्योताऽऽतपस्थावरैर्केन्द्रियजातिसूक्ष्माऽपयस्ति राधारणद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनरकगतिनरकानुपूर्वीदेवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गोचैर्गोत्रनरगतिनराणुपूर्वीवर्जपन्नाराचसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गानीति तृतीयगाथायां त्रयोविंशतिप्रकृतय उक्ताः । “उरल”मित्यादि औदारिकशरीरपराधातोच्छ्वासावातरपर्याप्तप्रत्येकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामसातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्त्यसातवेदनीयाऽरतिशोकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानीत्येकविंशतिप्रकृतयश्चतुर्थगाथायामभिहिताः । समुदिताश्चैता एकाशीतिसंख्याका ज्ञेयाः, शेषाः पुनः स्वस्थाने नामादितो वक्ष्यन्ते ॥१८८-९१॥

अथौचतः सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं निरूपयितुकाम आह-

अंतरमाहारजुगलतइअकसायाइसोलसाऊणं ।
हस्सं अंतमुहुत्त णिद्दुगस्स व खणो खणोऽण्णोसि ॥ १८२ ॥

(प्रे०) “अंतर”मित्यादि, आहारकद्विकस्य “तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छंथीणद्धितिगमण”इति संग्रहगाथात्रयवेषुक्तानां प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धिविकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां षोडशानां प्रकृतीनामायुश्चतुष्कस्य च बन्धस्य जघन्यमन्तरम-

न्तर्मुहूर्तमस्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्-विश्रितप्रकृतेर्वन्धविच्छेदं विधाय कतिपयकालं तथैव स्थित्वा पुनरपि तद्वन्धं विधत्ते तदा मध्ये यो बन्धश्च्युतः कालस्तदन्तरमिहोच्यते। कश्चिज्जीवो यदोपशमश्रेणेरारोहकोऽपूर्वकरणगुणस्थानकस्य पठे भाग आहारकद्विकस्य बन्धव्युच्छिन्ति विधाय यावदुपशमश्रेणेरन्ततो गत्वा ततश्चाऽवपत्याऽष्टमगुणस्थानकस्य पठं भागमुपलभ्य पुनरपि तद्वन्धं प्राग्भते, तदा तद्वन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, उपशमश्रेणेरारोहाऽवरोहकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । अथवाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानस्थ आहारकद्विकबन्धकः प्रमत्तसंयताख्यगुणस्थानकमागच्छति तदाऽऽहारकद्विकबन्धं व्यवच्छेदयति जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तं तत्र तथैव स्थित्वा पुनरप्रमत्तसंयताख्यगुणस्थानकमागत्य तद्वन्धमारभते, तदाप्यप्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयाऽन्तरेऽन्तर्मुहूर्तरूपमन्तरमाहारकद्विकबन्धस्याऽवाप्यते एतादृशाऽन्तरद्वयमध्ये यत्कनिष्ठमन्तरं तदेवात्रोपादेयम् । देशविरतिगुणस्थानके कश्चित्प्राणी प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बद्ध्वा तदन्ते तदन्तं च विधाय मयमं प्राप्नोति, अन्तर्मुहूर्तकालं च तत्रोपित्वा पुनरपि पञ्चमगुणस्थानं प्राप्नोति तद्वन्धं च विरचयति, तदा मध्ये प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंबन्धि जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणमन्तरं लभ्यते । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽप्येवमेव भावना कर्तव्या, परं देशविरतिगुणस्थानकस्थानेऽविरतिसंयगृह्णिगुणस्थानकं संयमस्थाने तु संयमं देशविरतिगुणस्थानकं च वाच्यम् । अत्र-‘अन्तर्मुहूर्तादारभ्य देशोनपूर्वकोटिं यावत्सयमायुष्कमिति’ आचाराङ्गवृत्त्यभिप्रायेण संयमस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तमस्ति अतस्तत्प्रयुक्तमन्तरमपि तावत्प्रमाणमवसातव्यम् । ‘सजए ण भते । सजतेत्ति पुच्छा, गोयमा ? ज० एग संभय’ इति प्रज्ञापनाद्यभिप्रायेण संयमस्य जघन्यकालः समयोऽस्ति, अतस्तत्प्रयुक्तमन्तरं कपायाष्टकस्य समयमात्रं भवतीत्यपि ध्येयम् । मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणे प्रकृत्यष्टकेऽपि प्रथमत्यगुणस्थानकापेक्षयैवमेव भावना कार्या । आयुश्चतुष्कस्य जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, तद्यथा-चत्वार्यप्यायूँषि अष्टभिराकर्षैरपि बध्यन्ते, तत्र आकर्षद्वयजघन्यान्तरालस्याप्यन्तर्मुहूर्तमितत्वेनायुर्वन्धजघन्यान्तरस्याऽपि तावन्मितत्वमवसेयम्, अत्र विशेषभावना मूलप्रकृतिवन्धवत्कार्या । “निदुग्गस्स” इत्यादि, निद्राप्रचलयोरेकसामयिकं बन्धमत्कं जघन्यमन्तरं वर्तते, तदेवम्-कश्चिन्मनुष्योऽपूर्वकरणाख्याऽष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागान्ते निद्रादिकस्य बन्धविच्छेदानन्तरं समयमेकं तत्र स्थित्वा मृत्युमवैति गत्वा च देवभवं पुनस्तद्वन्धमारभते, तदा तस्य समयमेकं जघन्यतोऽन्तरमायाति । ‘व’ इति वाशब्दोऽभिप्रायान्तरद्योतकः-अन्येषामभिप्रायेणाऽष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागान्ते निद्रादिकबन्धविच्छेदानन्तरं तदैव जीवो न भ्रियते, परं जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तानन्तरमेव, तदा तदभिप्रायेण निद्रादिकस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, तच्च तत्र कर्मेविदा वेद्यम् । “खणो” इत्यादि, उपयुक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषश्रुवाश्रुवप्रवृत्तिप्रकृतीनां जघन्यतः समयात्मकमन्तरमस्ति । अयं भावः-ज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से तैजसकामर्षणशरीरद्वयं वर्ण-

चतुष्कमगुरुलघुरूपघातो निर्माणमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनविंशत्शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां जिननामक-
र्मणश्च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं समयरूपं वर्तते, तद्यथा—कश्चित्प्राण्युपशमश्रेणिमारोहन् यथायोग्यं स्व-
बन्धविच्छेदस्थानं संप्राप्य तादृशप्रकृतीनां बन्धव्यावृत्तिमाधाय समयमेकं चाऽबन्धकतया स्थित्वा
पञ्चत्वमुपैति, सुरगतौ चोत्पद्य पुनस्तद्वन्धमारचयति, तदा तासां प्रकृतीनां जघन्यतया समयल-
क्षणमन्तरं संप्राप्तं भवति । तथाऽऽयुश्चतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामवर्जानां सर्वासामध्रुववन्धिप्रकृतीनां
परावर्तमानभावेन बध्यमानत्वाज्जघन्यबन्धाऽन्तरं समयमात्रं प्राप्यते ॥१९२॥

ओघतः सर्वासां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं निरूप्य साप्रतमोघत एव तदुत्कृष्टतयामि-
धित्सुराह

वत्तीससागरसयं परमं मिच्छाद्विपञ्चवीसाए ।
मज्झमसङ्कसायाण कोवी पुग्वाण देसूणा ॥ १९३ ॥

(प्रे०) “वत्तीसा” इत्यादि, ‘मिच्छं बीणद्धितिगमणवउगथीणपुमा । सववणागिइपणगं दुहग-
तिगं कुल्लगई णीअ’ ॥ इति संग्रहगाथावयवेषु गदितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृ-
तीनां प्रकृष्टमन्तरं द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतप्रमितमस्ति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—कश्चित्प्रकृतप्रकृतयो
मिथ्यात्वगुणस्थानके बन्धप्रायोग्याः सन्ति काश्चिच्च सास्वादनगुणस्थानकेऽपि, मिथ्यात्वगुणस्थान-
कस्य द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतप्रमाणमन्तरमुत्कृष्टतो वर्तते, तदेवम्—कश्चिज्जीवो मिथ्यात्वगुण-
स्थानकं त्यक्त्वा लब्धसम्यक्त्वः षट्षष्टिं सागरोपमाणां यावत्सम्यक्त्वभावे स्थित्वा मिश्रगुणस्थानक-
मधिगच्छति, पुनश्च जातसम्यग्दृष्टिः षट्षष्टिसागरोपमकालं यावत्तथैव स्थित्वा यदा मिथ्यात्व-
गुणस्थानकं प्राप्नोति, तदा तादृशमन्तरमवाप्यते, मिथ्यात्वद्वयान्तरे चाऽस्मिन् मिथ्यात्वमोहनीय-
प्रभृतयः पञ्चविंशतिप्रकृतयो नैव बध्यन्ते, तस्मात्प्रकृतीनामासामीदृशमन्तरं प्रकृष्टतया प्रदर्शितम्,
उक्तं च पञ्चमकर्मग्रन्थे देवेन्द्ररूपिपादैः—अपढमसधयणआगिइखगइअणमिच्छदुभगथीणतिगं । नीय-
नपुइत्थि दुतीस पणिदिमु अबघठिइ परमा ॥ ५७ ॥ अत्र दुतीस ति द्वात्रिंशतमतराणां भवतीति शेषः
इति वृत्तिः । “मज्झ” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां मध्यमा-
ष्टकपायाणां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि, अन्तरप्रयोजकीभूताया देशविरतेः सर्वविरते-
र्वोत्कृष्टकालस्य तावत्प्रमाणत्वात् ॥१९३॥

होइ असखपरट्टा गिरयणरपुराज्जगिरयाईणं ।
तिरियाजस्स पुहुत्त मलहिसयाणं मुणेयव्वं ॥ १९४ ॥

(प्रे०) “होइ” इत्यादि, नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्नरकद्विकं देवद्विकं वैक्रियद्विकं चेति
नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमसंख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणमस्ति, अन्तरप्रयोजकीभूतै-
केन्द्रियकायस्थितेरुत्कृष्टस्तावत्प्रमाणत्वात्, एतदुक्तं भवति—यः कश्चित्द्वन्द्वैकेन्द्रियप्रायोग्यति-
१४ अ

र्यगायुष्कः मंजी द्विचरमान्तमुर्हते वैक्रियपट्कस्य बन्धं कृत्वा स्वभवस्य चरमान्तमुर्हते चाऽबन्धं विधायैकेन्द्रियेषूपपद्यते तत्र भवप्रत्ययेनासां प्रकृतीनामबन्धकतया तिष्ठति, तत्रोत्कृष्टकायस्थितिं यावत् स्थित्वा विकलेन्द्रियेष्वपर्याप्तपञ्चेन्द्रिये च जायते तदा तत्राऽपि भवप्रत्ययेन नैव बध्नाति, पुनरप्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियेषूपकृष्टतो यावत्कालं निर्गमयितुं शक्यते तावत्कालं निर्गम्य पर्याप्तपञ्चेन्द्रियेषूपपद्यते, तत्राऽन्तमुर्हतांनन्तरं वैक्रियपट्कं बध्नाति, तदा साधिकैकेन्द्रियोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमवाप्यते । एवमायुष्मत्रयस्याऽपि भावनीयम्, किन्तु तत्राऽयं विशेषः—कश्चिज्जीवः संज्ञीषु सागरोपमशतपृथक्त्वकालादवागेवाऽऽयुष्मप्रकृतित्रये विवक्षितैकाऽऽयुःप्रकृतेर्वन्धं विधायान्तमुर्हतांनन्तरमबन्धं च कृत्वा स ज्ञिसत्कसागरोपमशतपृथक्त्वं व्यतीत्य दर्शितरीत्योत्कृष्टकालं यावत् पर्याप्तपञ्चेन्द्रियाद् भिन्नजीवभेदेषु स्थित्वा पुनः पर्याप्तपञ्चेन्द्रियेष्वपि सागरोपमशतपृथक्त्वकालादनन्तरं विवक्षिताऽऽयुःप्रकृतेः पुनर्वन्धं विदधाति, तदोत्कृष्टमन्तरं प्राप्यते । अथवा प्रकृतान्तरे एकेन्द्रियकायस्थितितो यत्माधिकत्वमस्ति, तत्तु स्वयं यथागमं ज्ञातव्यमिति । 'तिरिया-खस्स' इत्यादि, तिर्यगायुष्कस्य बन्धसम्बन्धि ज्येष्ठमन्तरं सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमितमवसातव्यम्, तद्यथा—यः कश्चिज्जन्तुस्तिर्यगायुर्वद्भूया तिर्यग्गतौ जातः, तदनन्तरं ततो मृत्वा देवनारकमनुष्यमतीनामन्यतमगतिं सत्कं देवाद्यायुष्कमेव बध्नाति, न पुनस्तिर्यगायुष्कम्, सोऽपि तत्र जातः सन् भूयो भूयः प्रकृष्टतया सागरोपमशतपृथक्त्वकालपर्यन्तं तस्मिन्नेव गतित्रये भ्रमन् तावत्कालपर्यन्तं तत्तद्गतिप्रायोग्यमेवायुर्वध्नाति न पुनस्तिर्यग्गतिप्रायोग्यम्, प्रान्ते भवे यदि बध्नीयादायुस्तर्हि तिर्यगायुरेव, अतस्तिर्यगायुष्कस्येदंशमन्तरं प्राप्तं भवति । उक्तं च जीवाभिगमे—तिरिक्खज्जोणियस्स अतर जहण्णेण अतोमुहुत्तं उक्कोसेण सागरोपमसयपुहुत्तं साइरेकं । तट्ठीका-जघन्येनान्तमुर्हत्तं तच्च कस्यापि तिर्यक्त्वेन मृत्वा मनुष्यमवेऽन्तमुर्हत्तं स्थित्वा भूयस्तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानस्य द्रष्टव्यम्, उत्कर्षतः सातिरेक सागरोपमशतपृथक्त्वम्, तच्च नैरन्तर्येण देवनारकमनुष्यमवभ्रमणेनाऽवसातव्यम् ॥१९४॥

तेवद्विसागरसयं तिरियाद्वतिगस्स णरदुपुच्चाणं ।

लोगाऽसंखा अहिय पल्लतिग तिचइराईण ॥ १९५ ॥

(प्रे०) 'तेवद्वि' इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यद्योतलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कं त्रिपृथक्-विकसागरोपमशतमुत्कृष्टमन्तरमस्ति, तदित्यम्—कश्चिज्जन्तुरेकत्रिशत्सागरोपमलक्षणोत्कृष्टस्थितिके नवमप्रैवेयक उत्पद्यते तत्र मिथ्यात्वमनुभूय चरमान्तमुर्हते च सम्यक्त्वं संप्राप्य नानाभवेषु पट्षष्टिमागरोपमकालं तथैव सम्यक्त्वेन सह व्यतिक्रम्य मिश्रगुणस्थानकमवाप्नोति, अन्तमुर्हतांनन्तरं च पुनर्जातमभ्यगदिरापट्पटिमागरोपमकालमेवमेव सम्यक्त्वेन सह व्यतिक्रमति, तदनन्तरं मिथ्यात्वं प्राप्य पुनरेताः प्रकृतीवेध्नाति, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं प्रकृतप्रकृतित्रयस्य प्राप्यते, मिश्रमभ्यक्त्वसम्यक्त्वावस्थयोरेताः प्रकृतयो नैव बध्न्ते, देवमनुष्यप्रायोग्याणामेव प्रकृतीनां तत्र पश्यमानत्वाद्, नवमप्रैवेयके च सत्यामपि मिथ्यात्वावस्थायां भवप्रत्ययेनैव प्रकृतीनामासां बन्धाभावः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धस्य तत्र विद्यमानत्वाद्, अत्र तदप्यन्तरं व्याख्यानतः

सातिरेकपण्योपमचतुष्केनाधिकं ज्ञेयम्, तच्च नानाप्रकारैः पूर्यत इति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यगति-
मनुष्यानुपूर्वयुच्चैर्गोत्ररूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमित-
समयप्रमाणं वर्तते, तद्यथा—कश्चित्प्राणी प्रकृतित्रयमेतत्तेजस्कायवायुकायव्यतिरिक्तावस्थायां बद्ध्वाऽ-
संख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितोत्कृष्टकायस्थितिकेषु तेजस्कायिकायुकायिकेपूत्यभः सन्
तावत्कालपर्यन्तं न बध्नाति, तत्र तस्य तावत्कालं तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धविधायित्वात्,
पुनः पृथ्व्यादिषु जातः सन् यदा बध्नाति तदाऽभिहितप्रमाणमन्तरमत्र प्राप्यते । 'अहिच' इत्यादि,
वज्रपर्वमनाराचसंहननौदारिकद्विकात्मकस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरं साधिकं पण्योपमत्रयं वर्तते ।
तत्पुनरेवम्—पूर्वकोटिर्वायुष्कः कश्चित्प्राणी स्वायुपस्त्वतीयभागे युगलिकसत्कमायुर्वद्ध्वाऽन्तर्मुहू-
र्तानन्तरं क्षयोपशमसम्भक्तवमासाद्य क्रमेण क्षायिकसम्भक्तं संप्राप्तः स-नेतत्प्रकृतित्रयं यावदायुर्न
बध्नाति; उत्पद्य पुनर्युगलिकमवे पण्योपमत्रयं यावन्न बध्नाति, उभयत्रापि तस्य देवप्रायोग्यप्रकृ-
तीनामेव बन्धविधायकत्वात् । तदनन्तरं देवमवे गत्वा तद्बन्धमारभते तदा तावत्प्रमाणमन्तरं
प्राप्तं भवति ॥१९५॥

पणसीहसागरसयं णवायवाईण अद्धपरिअट्ठो ।

आहारदुगस्सूणो सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥१९६॥

(प्रे०) 'पणसीह' इत्यादि, 'आयवथावरणगिदिसुहुमतिगविगला' इति संग्रहगाथाशकलोक्ताना-
मातपनामकर्मप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य पञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतप्रमाणमुत्कृष्टतया-
ऽन्तरमवसेयम्, तदेवम्—त्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासलक्षणानां प्रकृतीनां यावत्प्रमाणो
गुरुबन्धकालस्तावत्प्रमाण एवाऽधिकृतप्रकृतीनां बन्धविरहकालोऽस्ति । त्रमादिप्रकृतीनां चैतद्वि-
रबन्धकालस्य भावना पुनरोद्यतः प्रकृष्टबन्धकालपरूपणायां भावितैव । 'अद्धपरिअट्ठो'
इत्यादि आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं गुर्वन्तरं देशोनाऽपार्धपुद्गलपरावर्तप्रमितमस्ति, योजना
पुनरेवम्—आहारकद्विकं बद्ध्वाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानकात्पतितः कश्चित्प्राणी मिथ्यात्वादि-
भावं प्राप्य प्रस्तुतद्विकस्याबन्धकः सन्प्रकृष्टतया देशोनार्धपुद्गलपरावर्तकालमेव संसृतिगहने पर्यटति
नाधिकं, तदनन्तरं मोक्षभावात्तस्य, मोक्षप्राप्तेः प्रागन्तर्मुहूर्ते पुनराहारकद्विकं बध्नाति, तदा तं
जीवमाश्रित्य प्रस्तुतान्तरमाहारकद्विकस्य भटते । 'सेसाण' इत्यादि, इहोक्तव्यतिरिक्तानां शेषाणां
प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वर्तते, ताश्चेमाः सप्तपञ्चाशत् शेषप्रकृतयः—झानावरण-
पञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकेवर्जदर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्विकं हास्यषट्कं संज्वलनचतुष्कं पुरुषपदेऽपञ्चेन्द्रिय-
जातिस्तैजसकार्मणशरीरद्वयं समचतुरस्रसंस्थामं वर्णचतुष्कं शुभलगतिः त्रसदशकमस्थिराऽशुभा-
ऽयसःकीर्तिनामत्रयमातपोद्योतवर्जप्रत्येकषट्कमन्तरायपञ्चकं चेति । यासां ध्रुवबन्धिनीनां बन्धविच्छेदः
श्रेणौ, तथाऽध्रुवबन्धिप्रकृतिषु याः प्रकृतयश्चतुर्गतिषु बन्धयोग्यास्तथा यासां बन्धविच्छेदः षष्ठगुण-

स्थानके तदूर्ध्वगुणस्थानके वा तासां ध्रुवाध्रुवप्रकृतीनां बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं नैवाऽऽयाति; अतः शेषसर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टान्तरमन्तर्मुहूर्तमुक्तमिति, तदित्थम्-उपशमश्रेणिमारोहम् कश्चिज्जीवो यथा-योग्यं सातवेदनीयवर्जप्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विदधदेकादशगुणस्थानं प्राप्य पुनस्ततोऽवपतन् स्वप्रायोग्यबन्धस्थानं लब्ध्वैताः प्रकृतीर्वध्नाति तदा बन्धविच्छेदानसरेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरमुपलभ्यते । एतादृशेऽप्यन्तर्मुहूर्तलक्षणेऽन्तरे यदन्पवहुत्वं तदेवम्-सर्वस्तोकमन्तर्मुहूर्तलक्षणमन्तरं ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां, एकादशगुणस्थानसत्कालप्रमितत्वात्तस्य, ततः संज्वलनलोभस्य किञ्चिदधिकम्, आरोहकदशमैकादशावरोहकदशमगुणस्थानकालात्मकत्वात्तस्य । ततो मायामानक्रोधानां यथोत्तरं किञ्चित्साधिकमन्तरम्, श्रेणारोहकस्य किञ्चित्कालं पूर्वं पूर्वमेवासां बन्धविच्छेदस्य भावात्, अवरोहकस्य तु पश्चात्पश्चात्पुनर्वन्धसद्भावाच्च, ततोऽपि भयजुगुप्सयोः किञ्चिदधिकम्, उपशमश्रेणावूर्ध्वं गच्छतो नवमदशमैकादशगुणस्थानत्रयकालप्रमितत्वादधः पततस्तस्यैव पुनरपि नवमदशमगुणस्थानकद्वयकालप्रमितत्वाच्च, ततः पुनर्नवानां ध्रुवबन्धिनामप्रकृतीनां साधिकं, अष्टमगुणस्थानपट्टभागे बन्धविच्छेदेनारोहकावरोहकयोरष्टमगुणस्थानकस्य सप्तमभागरूपस्य किञ्चित्कालस्याऽपि समावेशात्, ततोऽपि निद्रादिकस्याऽधिकं, उपयुक्तकाले किञ्चिदधिककालस्य समावेशात् । आन्योऽतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तलक्षणेऽन्तरे यदन्पवहुत्वं, तत्सन्धिया विभावनीयम् । सातवेदनीयस्य प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरं प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तं ज्ञेयम् ॥१९६॥

ओघतो जधन्योत्कृष्टतया द्विविधं बन्धान्तरं निरूप्य साम्प्रतमादेशतः सर्वमार्गणासु सर्वासामायुष्कर्मवर्जानां प्रकृतीनामेकजीवमाश्रित्य तन्निरूपयिषुरादौ जधन्यतो निरूपयन्नाह

सन्वासु मग्गणासु अवक्खमाणाण आउवज्जाणं ।

सप्पाउग्गाण भवे जहण्णमं अंतरं समयो ॥१९७॥

(प्रे०) “सन्वासु” इत्यादि, सकलासु गत्यादिमार्गणास्वायुष्कचतुष्कवर्जानां वक्ष्यमाणविभिन्नानां ‘सप्पाउग्गाण’ इति मार्गणावन्धार्याणां प्रकृतीनां जधन्यं बन्धान्तरं समयप्रमाणं भवति, तत्र तत्तन्मार्गणासु याः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्यस्तासां समयप्रमाणमन्तरमध्रुवबन्धापेक्षया ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च समयप्रमाणमन्तरमुपशमश्रेणौ समयमेकमबन्धं कृत्वा कालकरणेन पुनर्वन्धं विदधतं जीवमपेक्ष्य विज्ञेयम् ॥१९७॥

नरकमार्गणासु कतिपयासु च देवमार्गणासु यासां प्रकृतीनामेकजीवमाश्रित्य बन्धाऽन्तरं न भवति तासां निषेधयन् यासां पुनः समयादतिरिक्तं भवति तासां जधन्यतो दर्शयन्नाह-

णिरयपढमाइतिणिरयतइआइगअढुमंतदेवेसु ।

जेयं भिन्नमुहत्तं मिच्छाईण अउपयडीणं ॥१९८॥

णो अत्थि अंतरं खलु सेसध्रुवदसुरलुवंगजाईणं ।

तुरियाइतिगिरयेसुं गिरयध्वइत्थि जिणवज्जाणं ॥१९९॥

(प्रे०) “गिरय” इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभारूपासु चतसृषु नरकमार्ग-
णासु सनत्कुमारमाहेन्द्रप्रहलान्तकशुकसहस्राररूपासु च पट्सु देवमार्गणासु ‘मिच्छं’ थीणद्धितिगमण-
चउग’ इति संग्रहगाथावयवेषूक्तानां मिथ्यात्वस्त्यानद्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्ट-
कस्य जघन्यं बन्धान्तरमन्तमुर्हूर्तमकमवसातव्यम्, एतत्प्रकृतिवन्धहेतुभूतस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्था-
नकस्य जघन्याऽन्तरस्याप्यन्तमुर्हूर्तप्रमाणत्वात् । ‘णो’ इत्यादि अप्रत्याख्यानावरणादिकपायद्वादशकं
ज्ञानावरणश्रवकं दर्शनावरणपट्कं भयजुगुप्सेऽन्तरापपञ्चकं वर्णचतुष्कमगुरुलघुरूपधातो निर्माणं
तैजसकर्मणशरीरद्वयं चेति शेषनवत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां ‘उरलुवंगजाणि ॥ उरलं परघूसासा बायरतिग-
तसपणिदिजिण’ इति संग्रहगाथाशकलेषु भणितानामौदारिकाङ्गोपाङ्गादीनां देशप्रकृतीनां चानवरतं
बध्यमानत्वेन बन्धान्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्-
द्विकसंस्थानपट्कसंहननपट्कखगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां द्विचत्वारिं-
शत्शेषप्रकृतीनां मार्गणास्वासु ‘सञ्वासु भग्गणासु’ इत्यादिगाथया समयात्मकं जघन्यं बन्धान्तरमव-
सातव्यम्, प्रकृतिभ्य आभ्यः कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात्, कासाञ्चित्प्रकृती-
नामध्रुवबन्धितत्वाच्च । “तुरियाइ” इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभालक्षणमार्गणात्रये तीर्थकृ-
त्तामकर्म परित्यज्य स्वप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं नरकौघादिमार्गणावद् विज्ञेयम् ।
तीर्थकृत्तामकर्मणस्त्वत्र मार्गणासु बन्धाभावेन वर्जनं कृतम् ॥१९८-१९॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायामाह

अडमिच्छाइतिरियणरगोअकुगाणं भवे तमतमाए ।

भिन्नमुहुत्तमियरधुवणवुरलुवंगगाइगाणं णो ॥२००॥

(प्रे०) “अडमिच्छाइ” इत्यादि, तमस्तमाख्यसप्तमनरकमार्गणायामिथ्यात्वमोहनीय-
स्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टानां प्रकृतीनां तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकगोत्रद्विकरूपस्य
च प्रकृतिपट्कस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तमुर्हूर्तरूपमवसातव्यम्, मात्रना त्वेवम् ॥ अनुष्यद्विकोच्चै-
र्गोत्रप्रकृतित्रयं मार्गणायामस्यां सम्यक्त्वप्रत्ययेन बध्यते, सम्यक्त्वस्य च जघन्यतयाऽन्तरमन्तमु-
र्हूर्तप्रमाणमस्ति, सम्यक्त्वद्वयान्तराले मिथ्यात्वाऽवस्थायामेतत्प्रकृतित्रयं नैव बध्यते, तस्मात्तदन्त-
रमन्तमुर्हूर्तप्रमाणमुपलभ्यते । मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयं च
मिथ्यात्वादिहेतुना बध्यते, मिथ्यात्वादेर्लघ्वन्तरमन्तमुर्हूर्तमस्ति, मिथ्यात्वद्वयाऽन्तराले सम्यक्त्वाव-
स्थायां गुनरेताः प्रकृतयो बन्धतो न भवन्ति, तस्मादामां प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तमुर्हूर्तलक्षणमन्तरं
जघन्यतया प्राप्यते । “इयर” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानां शेषैकोनचत्वारिंशद्-

ध्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकाङ्गोपाङ्गौदारिकशरीरपराधातोच्छ्वासवादरत्रिक्रवसपञ्चेन्द्रियजातिरूपाणां नवानां प्रकृतीनां च बन्धस्याऽन्तरमेव नास्ति, मार्गणायामस्यां बन्धतो सततं प्राप्यमाणत्वात् । नरकौघादिमार्गणाक्षत्तानां शेषाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतिमध्यात् तिर्यग्दिकादिषट्प्रकृतिवर्जपट्त्रिंशत्प्रकृतीनामत्राऽपि 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयात्मकं बन्धसत्कं लब्धन्तरं ज्ञातव्यम् ।

॥२००॥

अथ तिर्यगौघादिमार्गणाक्षत्तरप्रकृतिबन्धस्य जघन्यमन्तरं प्रतिपाद्यते

भिन्नमुद्भूतं तिरियत्तिपाणिदित्तिरियेषु वारसण्ह भवे ।

दुव्वअकसायाईण ण भवे सेसधुववघीणं ॥२०१॥

(प्रे०) "भिन्नमुद्भूतं" इत्यादि, तिर्यगौघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणानां द्वादशप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कमन्तरं प्राग्वद्भाषनीयम् । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य त्वेवम्—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकाच्चतुर्थगुणस्थानकाद्वा कश्चिदप्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकजीवो देशविरतिगुणस्थानं संप्राप्य तत्र तस्याबन्धको भूत्वा जघन्यतया च तत्राऽन्तर्मुहूर्तमवस्थाय पुनरपि अधस्तनं किमपि गुणस्थानकमाप्नोति, तदाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य पुनर्बन्धाद् बन्धान्तरस्य विच्छेदो भवति, इत्थमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य लघुभूतमन्तरं प्राप्यते । "ण भवे" इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसज्ज्वलनचतुष्कभपजुगुप्सतैजसकामेणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां शेषाणां पञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, तासां निरन्तरं वध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोधोतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां शेषाणामध्रुववन्धिनीनां पट्पट्टिप्रकृतीनामेकसामयिकं जघन्यबन्धान्तरं 'सव्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया विज्ञेयम् ॥२०१॥

अथाऽप्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु तथा सकलैकेन्द्रियविकलेन्द्रियपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायभेदेषु तदाह

असमत्तपणिदित्तिरियमणुसपणिवियतसेसु सव्वेसुं ।

एगिदियविगलेसुं कायपणगसव्वेसुं ॥२०२॥

धुवबंघिउरालाण सव्वेसुं तेजवाउमेसुं ।

तिण्ह णीआईण वि णो हवए अंतरं चव ॥२०३॥

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अप्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽप्याप्तमनुष्याप्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽप्याप्तसत्त्वासु चतसृषु मार्गणासु, औघद्वस्मौघवादरौघद्वस्मप्याप्तवादरप्याप्तसूक्ष्माऽप्याप्तवादराऽप्याप्त-

समेदविशिष्टासु सप्तभेकेन्द्रियमार्गणासु ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तमेदमित्रासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु ओधसूक्ष्मौधवादरौधसूक्ष्मपर्याप्तवादरपर्याप्त-
सूक्ष्माऽपर्याप्तवादराऽपर्याप्तमेदेन सप्तसु पृथ्वीकायमार्गणासु सप्तस्वप्कायमार्गणासु सप्तसु तेजस्काय-
मार्गणासु सप्तसु वायुकायिकमार्गणासु ओधप्रत्येकौधपर्याप्तप्रत्येकाऽपर्याप्तप्रत्येकसाधारणौधसूक्ष्मसा-
धारणौधवादरमाधारणौधपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणपर्याप्तवादरसाधारणाऽपर्याप्तवादरसा-
धारणभेदमित्रासु वनस्पतिकायसत्कैकादशमार्गणासु चेत्येवं सर्वसङ्ख्यया नवपञ्चाशन्मार्गणासु सप्त-
चत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च सर्वदैव बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति ।
“सन्देशु” इत्यादि, तेजस्कायवायुकायिकयोः प्रत्येकं सप्तसु सप्तसु मार्गणासु नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्वि-
कल्पस्य प्रकृतित्रयस्याऽपि न विधत्ते बन्धाऽन्तरम्, सततं तत्र बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहा-
स्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्म-
नुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयत्रयसदशकस्थावरदशकातपोधोतपराधतोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां शेषाणा-
मेकोनपटिप्रकृतीनां ‘सन्धासु भगगणासु’ इत्यादिगाथया चतुर्दशतेजस्कायवायुकायिकमार्गणावर्जा-
सृष्ट्युक्तमार्गणासु, तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकगोत्रद्वयवर्जानामासामेव त्रिपञ्चाशत्शेषप्रकृतीनां चतुर्दशसु
तेजस्कायवायुकायिकमार्गणासु च समयात्मकं जघन्यतो बन्धान्तरं वेदयितव्यम् ॥२०२-३॥

अथ मनुष्यौधप्रभृतिषु मार्गणास्तत्तरप्रकृतीनां जघन्यबन्धान्तरं विचारयन्नाह

तिष्ठारेषु मुहुत्ततो आहारदुग्धधुवबंवितित्याणं ।

(प्रे०) “तिष्ठारेषु” इत्यादि, मनुष्यौधपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणास्वाहारक-
द्विकस्य सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्च लघुभूतं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति ।
भावना पुनरवेम्-मिथ्यात्वाद्यद्वादशकपायस्त्यानर्द्धित्रिकप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमोधवज्ज्ञातव्यम् ।
शेषध्रुवन्धिनीनां जिननाम्नश्च जघन्यं बन्धाऽन्तरमुपशमश्रेणौ यः कश्चित् स्वस्वबन्धविच्छेदस्थाने
बन्धविच्छेदं कृत्वा उपशान्तमोहगुणस्थानकं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वाऽद्वाक्ष्येण श्रेणितः पतित्वा
स्वस्वबन्धस्थाने पुनर्वन्धं करोति तं जीवमाश्रित्य तत्तत्प्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं प्राप्यते । विशेष-
भावना जिननामवर्जानां आशां प्रकृतीनामोधतो जघन्यान्तरप्रस्तावे यथाकृता तथा कर्तव्या, नवरमत्र
कालकरणाभावे तत्तद्गुणस्थानकस्य यावदल्पकालः प्राप्यते तावत्कालो ग्राह्यः । आहारकद्विकस्य
जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमोधवज्ज्ञातव्यम् । ‘सन्धासु भगगणासु’ इत्यादिगाथया शेषपट्-
पट्त्रध्रुवन्धिनीनां जघन्यं बन्धान्तरं समयप्रमाणमवसातव्यम् ॥ -२०४॥

अथ देवौघादिमार्गणासु जघन्यं बन्धसत्कमन्तरमाह

सुरपटमडुकप्येषुं अडमिच्छार्द्धिण खलु मुहुत्ततो ॥२०४॥ (गीतिः)

सेसधुवबन्धिणीणं तह जिण्छुरलाहगाण जेव भवे ।

देवोव जाणियहव भवणतिगे तित्थवज्जाण ॥२०५॥

(प्रे०) “सुर” इत्यादि, देवौघसौधभेशानाख्यमार्गणात्रये मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धितुष्कस्वरूपाणामष्टानां प्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, मिथ्यात्वगुणस्थानकविरहकालस्य जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमितत्वात् । ‘सेस’ इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णत्रतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्मणिरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां जिननामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां च बन्धाऽन्तरमेव नास्ति, तासां निरन्तरं बध्यमानत्वादत्र । आसु मार्गणासु तीर्थकृन्नामकर्मणो बन्धः सर्वदैवैर्न क्रियते, परं कैश्चिदेव, स तु सततमेव, अतस्तदन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यजातिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्विकत्रसस्थिरपट्कस्थानवराऽस्थिरपट्कातपोद्योतगोत्रद्वयलक्षणानामष्टचत्वारिंशत्शेषाभ्रुवन्धिप्रकृतीनामेकसामयिकं बन्धसत्त्वं लब्धन्तरं ‘सञ्वासु भगणासु’ इत्यादिगाथया ज्ञातव्यम्, अभ्रुवन्धित्वात्तासाम् । ‘देवञ्च’ इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु केवलं जिननाम वर्जयित्वा शेषाशेषप्रकृतीनां बन्धस्य लघुभूतमन्तरं सुरौघादिमार्गणावदभिधेयम् । जिननामवर्जनं त्वत्र बन्धविरहादेव । ॥२०४-५॥ अथाऽऽनतादिमार्गणासु जघन्यं बन्धान्तरं कथयति

येषां भिन्नमुहुत्तं अहमिच्छार्द्धेण आणयाईसुं ।

सेसध्रुववधिणरवुगवसुरलुवंगाइगाणं णो ॥२०६॥

(प्रे०) “णेष” इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवप्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धितुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं जघन्यं बन्धान्तरं ज्ञेयम्, मिथ्यात्वगुणस्थानसत्काऽन्तरस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात्, तदन्तरे तावत्कालपर्यन्तं तस्याऽबध्यमानत्वाच्च । “सेस” इत्यादि, एतत्प्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयसंहननपट्कसंस्थानपट्कखगतिद्विकस्थिरपट्कास्थिरपट्कगोत्रद्वयरूपाणां सप्तत्रिंशत्शेषप्रकृतीनां जघन्यं बन्धान्तरं ‘सञ्वासु भगणासु’ इतिगाथया समयात्मकमवसातव्यम्, अभ्रुवन्धित्वात् ॥२०६॥

अथानुतरादिमार्गणासु प्रकृतीन्तरमाह

पचसु भणुत्तरेसुं आहारवुगम्मि देसमोसेसुं ।

णो अत्थि अंतर खलु वारहसायाइवज्जाणं ॥२०७॥

(प्रे०) “पञ्चसु” इत्यादि, अनुत्तररूपासु पञ्चसु मार्गणास्वाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगदेशविरतिसंयममिश्रसम्पत्करूपासु चतसृषु मार्गणासु च सातवेदनीयाऽसातवेदनीयस्वरतिहा-

स्वशोकस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्याणां प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, सततं तद्वन्धसद्भावात् । तथा सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां बन्धसत्त्वं जघन्यमन्तरं 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयप्रमाणं वेदयितव्यम्, परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात्तासाम् ॥२०७॥ अथ यासु मार्गणास्त्रोघवज्जघन्यान्तरं तास्त्राह

ओधव जाणियव्वं दुपणिदित्तसणयणेयरभवेसुं ।

सण्णिग्गि तहाहारे आहारदुग्गिहोसाए ॥२०८॥

(प्रे०) 'ओधव' त्यादि पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तसचक्षुरचक्षुर्दर्शनमव्यसंज्ञाहारकरूपासु नवसु मार्गणासु 'आहारदुग्गिहोसाए च तद्वन्धसाया ॥ दुग्गिहोसाया मिच्छ शोणद्धि-तिगमण' इति संग्रहगाथाऽवयवेषु भाषितानामाहारकद्विकादिर्विंशतिप्रकृतीनां जघन्यतो बन्धाऽन्तरमोघवदवसातव्यम्, तदेवम्-आहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रभृतिप्रकृतिपोषकस्य च बन्धसत्त्वं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तं विद्यते, निद्राद्विकस्य च समयः, मतान्तरेण पुनरन्तर्मुहूर्तम्, भावना पुनरत्रौघवदवसातव्या । मार्गणास्त्रस्वेतद्विंशतिप्रकृतिव्यतिरिक्तानां नवविंशतिध्रुवबन्धि-प्रकृतीनां सप्तपट्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च समयप्रमाणं जघन्यं बन्धान्तरं 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम्, विशेषभावना ओधतोऽवसेया ॥२०८॥

अथ पञ्चमनोयोगादिमार्गणासु जघन्यमन्तरमुच्यते

पणमणययउरलेसुं सगयालीसधुवबन्धिणीण तहा ।

तित्थाहारदुग्गण णो हवए अंतरं वेव ॥२०९॥

(प्रे०) "पणमण" इत्यादि मनःसामान्य-सत्यमनो-ऽसत्यमनः-सत्यासत्यमनो-ऽसत्या-मृषामनो-वचनौघ-सत्यवचना-ऽसत्यवचन-सत्यासत्यवचना-ऽसत्यामृषावचनौघादिरिकाययोगरूपासु मार्गणास्वेकादशसु सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां तथा जिननामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धाऽन्तरमेव न भवति, कुतः ? प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदानन्तरं भूयोऽपि बन्धे योऽन्तरकालो-ऽवाप्यते तदपेक्षयौदारिकाययोगवर्जमार्गणानामासां कायस्थितिकालस्याप्यत्वेन मध्य एव मार्गणायाः परावृत्तिभावात्, औदारिकाययोगमार्गणाया एकेन्द्रियजीवापेक्षया दीर्घावस्थानेऽपि तत्राऽपि प्रकृतप्रकृत्यबन्धस्य तु संज्ञिनामेव लभात्, तेषां प्रत्यन्तर्मुहूर्तं योगानां परावृत्तेऽवबन्धोत्तरं बन्धप्रारम्भं यावन्न विद्यते प्रस्तुतमार्गणायामवस्थानम्, तथा च न भवति प्रस्तुतान्तरमपीति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्क-संस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां शेषपट्पट्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथया समयप्रमितं बन्धसत्त्वं लघ्वन्तर-मधिगम्यम् ॥२०९॥ अथ काययोगौघमार्गणायां तदुच्यते

काये आहारजुगलतद्विकसायाइसोलसण्हं णो ।

ओघव्व अंतरं खलु निदापयलाण विण्णेय ॥२१०॥

(प्रे०) “काये” इत्यादि, काययोगौघमार्गणायामाहारकद्विकस्य ‘तद्विकसाया ॥ दुइविकसाया मिच्छ थीणद्धितिगमणचउग’ इत्यादिसंप्रदमाथाशकलेषु भणितानां प्रत्याख्यानावरणकायचतुष्कप्रभृतीनां षोडशप्रभृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, कुतः ? इति चेद् उच्यते, ओघत आमां प्रभृतीनां संज्ञिजीवेष्वेव जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बन्धसत्कमन्तरमवाप्यते, संज्ञिषु प्रकृतकाययोगौघमार्गणा अभिहितजघन्याऽन्तरकालादतीवस्तोककालस्थायिनी वर्तते, तस्मादबन्धानन्तरं पुनर्वन्धादवगमेव प्रकृतमार्गणाया अपगमात् प्रकृतप्रभृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नैवाऽवाप्तुं शक्यत इति । “ओघव्व” इत्यादि, निद्राप्रचलयोर्वन्धस्याऽन्तरमोघवद्विज्ञेयम्, तदेवम्—एकेन मतेन समयलक्षणं तदन्यमतेन चाऽन्तर्मुहूर्तलक्षणं निद्राद्विकस्य बन्धसत्कमन्तरं विधत्ते, अत्र युक्तिः प्रागुक्तैव । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलवूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनविंशद्भुववन्धिप्रभृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदनयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकमदननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां सप्तपट्कध्रुववन्धिप्रभृतीनां च बन्धस्यैकसामयिकमन्तरं ‘सव्वासु मग्गणासु’ इत्यादिगाथातोऽवसेयम् । एकोनविंशद्भुववन्धिप्रभृतीनां जिननाम्नश्च सामयिकमन्तरमोघवद् विभावनीयम्, शेषाध्रुववन्धिप्रभृतीनां त्वध्रुववन्धित्वादेव समयमेकं बन्धान्तरं विज्ञेयम् ॥२१०॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगे तथा वैक्रियद्विके जघन्यमन्तरमाह

णत्थि उरालियमीसे धुववन्धिजिणुरलचउसुराईणं ।

गेव भवे विउवदुगे जिणल्लुरलाइधुववन्धीणं ॥२११॥

(प्रे०) “णत्थि” इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रभृतीनां जिननामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां पण्णां प्रभृतीनां च बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, ध्रुववन्धिप्रभृतीनां बन्धस्याऽन्तरं तदा भवति यदा कश्चिज्जीवो मिथ्यात्वाद्यधस्तनगुणस्थानतः सम्यक्त्वद्युपरितनगुणस्थानकं सम्प्राप्य पुनर्मिथ्यात्वादिगुणस्थानकं प्राप्नोति, अत्र तु मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानकयोः परावृत्तेरभावेन ध्रुववन्धिप्रभृतीनां बन्धसत्कमन्तरं नैवायाति । तथा मार्गणायामस्यां जिननामसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य सम्यग्दृष्टिजीवैस्तथा मार्गणागतशेषभ्रजवैरौदारिकशरीरनाम्नोऽनवरतं बध्यमानत्वादासां पट्प्रभृतीनां बन्धस्यान्तराभावो ज्ञातव्य इति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदनयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपा-

पाणामेकोनपट्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धसम्बन्ध्यन्तरं 'संवासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः सम-
यात्मकं बोद्धव्यम् । "णेव भवे" इत्यादिना वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाख्यमार्गणयोः
प्रस्तुतमाह-निरुक्तमार्गणाद्वये सप्तचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासवादर-
त्रिकजिननामरूपाणां सप्तप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तच्चैवम्-मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृत्यष्टप्र-
कृतिवर्जशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरादिपट्प्रकृतीनां च निरन्तरं बध्यमानत्वेनाऽन्तरं नास्ति,
जिननाम्नस्तु तद्वन्धकजीर्वैः सततं बध्यमानत्वेनाऽन्तराभावो बोद्धव्यः । मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृ-
त्यष्टकस्य बन्धान्तर्गभावो वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वसम्यक्त्वगुणस्थानकयोः परावृत्तेर-
भावादवसातव्यः, तस्यैवाष्टकस्य बन्धान्तराभावो वैक्रियकाययोगमार्गणायां तु मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य
जघन्यान्तराऽपेक्षया मार्गणाकालस्याऽन्पतरत्वाज्ज्ञेयः । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रय-
तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानु-
पूर्वीद्वयखगतिद्विक्रमस्थिरपट्कस्थावरदशकाऽऽतिपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां जघन्यं बन्धसत्कमन्तरं 'संवासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयप्रमाणमवसेयम् ॥२११॥

अधुना कार्मणानाहारकमार्गणयोः प्रकृतं भाव्यते

कम्माणाहारेसु ण ध्रुवबंधिजिणुरलब्धसुराईणं ।

समयो सेसाण भवे अहवा समयुत्तमणमये ॥२१२॥

(प्रे०) "कम्माणाहारेसु" इत्यादि, कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणाद्वये सप्तचत्वारिंश-
दध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तीर्थकरनामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च
बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, यतो मार्गणयोरनयोर्जैर्वैरेता बध्यन्ते तैरनवरतमेव । "समयो" इत्यादि, वेद-
नीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थान-
पट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतिपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरू-
पाणामेकोनपट्टिशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमस्ति । "अहवा"
इत्यादि, अथवा प्रकृतीनामासां बन्धस्य जघन्यमन्तरमन्यमतेन स्वयं विचारणीयम् ।
"अण्णमये" इति शब्देन ये त्रसप्रायोग्यप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालो द्विसमयप्रमाण एव, न
तु मार्गणाकायस्थितिरूपत्रिसमयप्रमाण इति मन्यन्ते, तेऽत्राऽभिप्रेताः, तेषां मते त्रसप्रायोग्यप्रकृ-
तीनांबन्धस्याऽन्तरं नास्ति, त्रसप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालस्य द्विसमयप्रमाणस्यैवोत्कृष्टतया स्वी-
कृतेत्वात्, यत्र हि जघन्यतोऽपि त्रिसामयिको बन्धकालः, तत्रैव द्विर्बन्धसंभवेन बन्धस्याऽन्तरं
प्राप्यते । शेषस्थावरप्रायोग्यप्रकृतिषु यासां सातवेदनीयादिप्रकृतीनां परावर्तमानभावेन बन्धस्तासां
प्रकृतीनां बन्धस्य समयप्रमाणमन्तरमवसातव्यम्, द्विर्बन्धभावात्, शेषाणां तिर्यग्द्विकादीनां जघन्यं
बन्धान्तरं यथासमयं वक्तव्यमिति ॥२१२॥

साम्प्रतं वेदमार्गणामुत्तरप्रकृतिवन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं दर्शयितुकाम आदौ स्त्रीवेदमार्गणाया-

माह-

थोए आहारजुगलतद्वलकसायाइसोलसण्ह भवे ।

मिन्नमुहुत्तं हवए णो जिणसेसधुवबधीणं ॥२१३॥

(प्रे०) “थोए” इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायामाहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणां षोडशप्रकृतीनां च बन्धस्य लघ्वन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तदित्थम्—काचित्स्थप्रमत्तगुणस्थानके आहारकद्विकस्य बन्धं त्रिधाय प्रमत्तगुणस्थानकं गत्वाऽबन्धं करोति ततश्चागत्य पुनरप्यप्रमत्तगुणस्थानके तद्वन्धं करोति तदाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति । शेषषोडशप्रकृतीनां तु भावनाऽत्रौघवदनुसंधेया । ‘हवए’ इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंजालनचतुष्कमयजुगुण्यातैज्रभकर्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तच्चैवम्—संजालनचतुष्कज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीनां सततमिह वध्यमानत्वेन, शेषत्रयोदशत्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्वन्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदेनाऽन्तरं न प्राप्यते, जिननाम्नस्तु श्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्वन्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदेन कालकरणे तु देवगतौ पुरुषवेदितयैवोत्पादेन मार्गणाया विच्छेदात्, नरकाभिमुखानामबन्धलाभेऽपि मरणानन्तरं नरकगतौ नपुंसकवेदितयोत्पादेन मार्गणाया विच्छेदाद् बन्धान्तरं निषिद्धम् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कलगतिद्विक्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां पट्पट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामेकसामयिकं बन्धसत्क जघन्यमन्तरं ‘लब्बासु मग्गणासु’ इत्यादिगाथया ज्ञातव्यम् ॥२१३॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामाह

तित्थयराहारजुगलतद्वलकसायाइसोलसण्ह भवे ।

णपुमे अतमुहुत्त ण होइ सेसधुवबधीणं ॥२१४॥

(प्रे०) “तित्थ” इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां तीर्थकरनामाहारकद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्क जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, तदित्थम्—मार्गणायामस्यां विद्यमानः कश्चिद्बद्धनरकायुष्कः प्राणी जिननामकर्म निकोप्य प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वभावमवाप्य तद्वन्धं न करोति नारके चोत्पन्नः सन्नन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वं संग्राप्य पुनरपि तद्वन्धमारभते तदा तादृशमन्तरं लभ्यते । आहारकद्विकस्य स्त्रीवेदमार्गणावत्, प्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां चौघवद् भावना भाव्या । ‘ण होइ’ इत्यादि, मार्गणायामस्यां प्रत्याख्यानावरणादिषोडशप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषैकत्रिशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति । हेतुस्तु स्त्रीवेदमार्गणावद् विभावनीयः । अत्र स्त्रीवेद-

मार्गणोक्तानामेव शेषपट्यपट्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमेकसामयिकं 'सञ्वासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् ॥२१४॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायामाह

पुरिसे ण अंतरं खलु मंजलणावरणणवगविधाणं ।

ओधव्व जाणियव्वं आहारदुगाइवीसाए ॥२१५॥

(प्रे०) “पुरिसे” इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादेशप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, श्रेणावपि मार्गणाचरमसमयं यावदनवरतेमामां वध्यमानत्वात् । “ओधव्व” इत्यादि ‘आहारदुगं निहदुगं च तद्वअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छंथीणद्धितिममणचउग’ इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानामाहारकद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां विंशते-
र्बन्धस्य जघन्यतयाऽन्तरमोघवदधिगन्तव्यम् । तद्यथा—निद्राद्विकबन्धस्यैकमतेन समयप्रमाणम्, अन्यमतेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं जघन्यमन्तरमस्ति, तथाऽऽहारकद्विकस्य प्रत्याख्यानावरणादिप्रकृति-
षोडशकस्य च बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं विधत्ते । भावना पुनरोघवदत्र परिभावनीया । तथा भयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजमकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपधातनिर्माणरूपाणां ध्रुववन्धिनीनामेकादशप्रकृ-
तीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्के-
संस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कलगतद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोधोतपराधातोच्छ्वासजिननामगोत्र-
द्वयरूपाणां सप्तपट्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कं लघ्वन्तरं ‘सञ्वासु मग्गणासु’ इत्यादि-
गाथया समयप्रमितं ज्ञातव्यम् । भयादिप्रकृतैकादशप्रकृतीनां जिननामनश्चैतादृशमन्तरमुपशमश्रेणौ
यः कश्चित्प्राणी प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थानं प्राप्य बन्धव्युच्छिन्ति कृत्वा स्थित्वा च तत्र
समयमेकं प्राप्तमृत्युर्देवेष्टुत्पन्नः सन् भूयोऽपि स तद्वन्धमारचयति तदा प्राप्यते । शेषाध्रुववन्धि-
प्रस्तुतप्रकृतीनामेतादृशे बन्धसत्केऽन्तरे भावना प्राग्बद् भाव्या ॥२१५॥

इदानीमपगतवेदादिमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुच्यते

सायस्स णो अवेअअकसायकेवलदुगाहखायेसुं ।

गयवेए वीसाए सेसाण ‘भवे मुहुत्तंतो ॥२१६॥

(प्रे०) “सायस्स” इत्यादि, अवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमाख्यमार्ग-
णापञ्चके सातवेदनीयस्याऽनवरतं वध्यमानत्वेन बन्धान्तरं नास्ति । “गयवेए” इत्यादि, गतवेद-
मार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकलक्षणानां
शेषाणां विंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तं भवति, उपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तर-
मन्तर्मुहूर्तादवर्जितप्रत्यवतरणाभावेन प्रकृतीनामासामन्तर्मुहूर्ताऽनन्तरमेव पुनर्बन्धभावात् ॥२१६॥

अधुना क्रोधमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुपदर्शयन्नाह

ध्रुवणीमनिहृदुगमयकुच्छावज्जध्रुवबंधिणीण तहा ।

आहारवुगस्स ण खलु कोहे निहादुगस्स ओघव्व ॥११७॥ (गीति)

(प्रे०) “ध्रुवणाम” इत्यादि, क्रोधमार्गणायां वर्णादिचतुष्कृतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपधातनिर्माणनिद्रादिकभयजुगुप्सावर्जानां चतुस्त्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथाऽऽहारकद्विकस्य च यन्वा-
न्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यामासां ज्ञानावरणादीनां कासाञ्चित् प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात्
मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां कामाञ्चित्प्रकृतीनां बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्वन्धात्पूर्वं प्रकृतमार्गणाया
विच्छेदाच्च । “निहृदुगस्स” इत्यादि, मार्गणायामस्यां निद्रादिकबन्धस्य जवन्यतोऽन्तरभोववद्-
विज्ञेयम् । तदेवम्-एकमतेन समयरूपम्, अन्यमतेन चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं निद्रादिकबन्धस्य जव-
न्यमन्तरमस्ति । तथा वर्णादिचतुष्कृतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपधातनिर्माणमयजुगुप्सालक्षणा-
मेकादशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादिभुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विक-
वैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्यावरदशकातपोद्योतपराधातो-
च्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां सप्तपट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य जवन्यमन्तरं ‘सञ्वासु
मग्गणासु’ इत्यादिगाथया समयलक्षणमवमातव्यम् । तद्भावना त्वेवम्-उपर्युक्तानामेकादशध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां जिननाम्नश्च समयप्रमाणं बन्धान्तरमुपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेद विधाय
समयमेकं च तत्र स्थित्वा मरणमुपगतस्य देवमवे समुत्पद्य पुनर्वन्धप्रारम्भे प्राप्यते । शेषाध्रुवब-
न्धिप्रकृतीनां प्राग्वद् यन्वान्तरं भावनीयम् ॥११७॥

अथ मानादिमार्गणास्वन्तरं दर्शयन्नाह

कोहव्व माणमायालोहेसुं णवरि अंतरं समयो ।

कमसो संजलणाण एगस्स य बोण्ह य चउण्हं ॥११८॥

(प्रे०) “कोहव्व” इत्यादि, मानमायालोभलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु सर्वासां स्वप्रायोग्य-
प्रकृतीनां बन्धमत्कं जवन्यतोऽन्तरं क्रोधमार्गणावज्ज्ञातव्यम् । “णवरि” इत्यादिनाऽपवादं
दर्शयति-मानमार्गणायां सञ्जलनक्रोधस्य, मायामार्गणायां सञ्जलनक्रोधमानयोः, लोभमार्ग-
णायां च सञ्जलनचतुष्कस्य यन्वाऽन्तरं समयप्रमाणं वर्तते, तदित्यम् मार्गणास्वासु वर्तमानः
कश्चिज्जीव उपशमश्रेणिमारोहति, तदा प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदमाधाय तत्रैव
पुनः समयमेकमुपित्वा मृत्युमुपैति, उत्पद्य च देवमवे पुनरपि तद्बन्धमारभते तदा प्रकृतीना-
मासामत्र समयप्रमाणमन्तरं लभ्यते ॥११८॥

अथ त्रिज्ञानादिमार्गणासु प्रकृतमन्तरमाह--

निहादुगस्स हवए ओघव्व तिणाणओहिसम्भेसुं ।

भिन्नमुहुत्त अट्ठकसायाहारदुर्गचउसुराईण ॥११९॥ (गीतिः)

पचण्ह णराईण वासपुहुत्त भवे” ।

(प्रे०) “निदादुगस्स” इत्यादि, भतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु निद्राद्विक्रयबन्धस्य जघन्यमन्तरमोघवद् वर्तते । “भिन्नमुहुत्तं” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्काहारकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्याऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याहारकद्विकस्य च बन्धान्तरविषये भावना सविशेषणौघवत्कार्या । सुरादिचतुष्कस्योपमशमश्रेणौ बन्धविच्छेदं कृत्वा उपशमान्तमोहगुणस्थानकं यावद् गत्वा पुनः क्रमेणावतरतोऽस्य बन्धस्थानं प्राप्य पुनर्बन्धकस्यापेक्षया निरुक्तं जघन्यान्तरं प्राप्यते । ‘पंचपङ्क’ इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य जघन्यबन्धान्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमितं भवति, योजना पुनरेवम्—एतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकः कश्चित्सम्यग्दृष्टिर्देवो जघन्यतया वर्षपृथक्त्वप्रमाणं नराधुर्वद्ध्वा मनुष्यभवे सम्यक्त्वेन साकं समुत्पद्य वर्षपृथक्त्वरूपं स्वायुः परिपालयित्वा पुनरपि देवभवं याति तदा मनुष्यद्विकादिप्रकृतीनामासां देवभवयोरन्तरालीयं मनुष्यभवसत्कं वर्षपृथक्त्वप्रमाणमन्तरं भवति, गुणप्रत्ययाद् देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तस्य मनुष्यगतौ मनुष्यद्विकादिप्रकृतिबन्धाभावात्, सम्यग्दशां वर्षपृथक्त्वतोऽल्पायुषि उत्पादाभावाच्च न ततो न्यूनमन्तरम् । मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिषोडशकं निद्राद्विकं च विहाय शेषाणामेकोनविंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकदास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रयदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं ‘संवासु मग्गणासु’ इत्यादिगाथया समयरूपमवसातव्यम् । ध्रुवबन्धिनीनामेकोनविंशज्ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीनां सातवेदनीयादिद्वादशवर्जशेषपुरुषवेदादिपञ्चदशप्रकृतीनां चोपशमश्रेणौ यथायोगं बन्धविच्छेदस्थाने बन्धविच्छेदं कृत्वा समयानन्तरं भ्रियमाणस्य समयरूपमन्तरं संप्राप्तं भवति, सातवेदनीयादिद्वादशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेनाऽध्रुवत्वेन च बध्यमानत्वात् ॥११९॥

अथ मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोर्बन्धान्तरं जघन्यतयाऽऽह

.. . . . मुहुत्तंतो ।

मणणाणसजमेसुं बारससायाइवज्जाण ॥ १२० ॥

(प्रे०) “मुहुत्तंतो” इत्यादि मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यशोकरत्यरतिस्थिरास्थिरशुभाऽशुमयशःकीर्त्ययशःकीर्तिलक्षणा द्वादशप्रकृतीर्वर्जयित्वा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपचातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकविंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वाशुमखगतिस्थिरशुमयशःकीर्तिवर्जत्रसादिसप्तकपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशतिशेषमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य च जघन्य-

मन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । अत्रापि ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकर्जोक्तानुवन्धिप्रकृतीनां चोपशमश्रेणि प्रतीत्येदमन्तरं प्राप्यते, आहारकद्विकस्य त्वोपवदन्तरं भावनीयम् । सातवेदनीयप्रभृतीनां द्वादशप्रकृतीनां बन्धसत्कं लघुभूतमन्तरं 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथात एकसामयिकं विज्ञेयम्, परावर्तमानतया वध्यमानत्वात् ॥१२०॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणासु ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां च बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामन्तरं निषेधयन्नाह

ध्रुवबन्धीणं न भवे तिमणाणाभविमिच्छामणेसु ।

णो सुहमसंपराये सप्पाजग्गाण सव्वेसि ॥ १२१ ॥

(प्रे०) 'ध्रुवबन्धीण'मित्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमिध्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु षट्सु मार्गणासु सर्वासां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं नास्ति, निरन्तरं वध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकदास्यादिध्रुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कलगतद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासभोत्रद्विकरूपाणां षट्षष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कं जघन्यतयाऽन्तरं समयप्रमाणं 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातोऽवसेयम् । 'णो सुहम' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिसातवेदनीयरूपाणां सप्तदशस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं न विद्यते, अनन्तरं वध्यमानत्वात् ॥१२१॥

एतर्हि सामायिकादिमार्गणासुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमुच्यते

सामाअछेएसुं तह परिहारे भवे मुहुत्तंतो ।

आहारदुगस्स ण खलु भारससायाइवज्जाणं ॥ १२२ ॥

(प्रे०) 'सामाअ' इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयमलक्षणासु तिसृषु मार्गणास्वाहारकद्विकस्य जघन्यबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं भवति, एतादृशमन्तरमत्र सप्तमगुणस्थानकात्पञ्चगुणस्थानकं गत्वाऽन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं पुनः सप्तमगुणस्थानकं प्राप्याहारकद्विकस्य बन्धविधातुरेव प्राप्यते, न तूपशमश्रेण्यपेक्षया, बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्बन्धादवाग्नेवास्य मार्गणाद्वयस्य विच्छेदात्, परिहारविशुद्धिमार्गणायां तु श्रेणेरभावादेव । 'ण खलु' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयास्यशोकरत्यरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीः परित्यज्य शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूप्रधाननिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसादिसप्तपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्तरं नास्ति, परिहारविशुद्धिमार्गणायां सर्वा-

सामनवरतं बध्यमानत्वात् । सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोस्तु कासाञ्चित्प्रकृतीनामनवरतं बध्यमानत्वात्, कासाञ्चित्प्रकृतीनां च बन्धविच्छेदभावेऽपि पुनर्वन्धात्प्राक्प्रस्तुतमार्गणयोर्विच्छेदात् । सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां 'सञ्चासु भगणासु' इत्यादि गाथातो जघन्यं बन्धाऽन्तरं समयात्मकं समधिगम्यम् ॥ १२२ ॥ इदानीमसंयममार्गणायां तदाह

जिणअडमिच्छाईणं भिन्नमुहुत्त असंजमे गेयं ।

गेव भवे सेसाण धुवबंधीण पुणचत्ताए ॥ १२३ ॥

(प्रे०) 'जिणअड' इत्यादि, असंयममार्गणायां जिननामकर्मणो मिथ्यात्वमोहनीयस्त्या-
नर्द्धिविकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य च जघन्यं बन्धाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितं ज्ञात-
व्यम् । तद्यथा—मिथ्यात्वगुणस्थानेऽस्यां मार्गणाया वर्तमानो यः कश्चिन्मनुष्यो नरकायुर्वद्ध्वा
सम्यक्त्वं प्राप्य जिननाम निकाचयति भवप्रान्ते नरकं जिग्मपुर्मिथ्यात्वं प्राप्नोति तत्र जिननाम
न बध्नाति तदनन्तरं नरके समुत्पद्याऽपर्याप्तावस्थायां, पर्याप्तावस्थायामपि जघन्यतो यावत्सम्यक्त्वं न
प्राप्नोति तावत्कालं मिथ्यात्व भावेन जिननाम न बध्नाति सम्यक्त्वकाले पुनर्वध्नाति इत्थं तं
जीवमाश्रित्य मिथ्यात्वकालप्रमाणमन्तर्मुहूर्तं जिननामो जघन्यं बन्धान्तरं प्राप्यते, तथा
मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य जघन्यान्तरकालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमितत्वेन तत्प्रयुक्तं मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृति-
प्रकृत्यष्टकस्य बन्धान्तरं तत्तुल्यं भवति । 'गेव' इत्यादि, मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतीर्विहाय शेषैकोन-
चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां संततं बध्यमानत्वात् । तथा
वेदनीयद्विकदास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्था-
नपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां शे-
पपट्पट्पट्भुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं 'सञ्चासु भगणासु' इत्यादिना समयप्रमाणं वेदयित-
व्यम् ॥ १२३ ॥ अथ त्रिकृष्णादिलेश्यामार्गणाधृतरप्रकृतिबन्धस्य जघन्यमन्तरं निरूपयितुकाम आह—

गेयं मिच्छाईणं अट्ठण्ह किण्हणीलकाकसु ।

भिन्नमुहुत्त हवए णो जिणसेसधुवबंधीण ॥ १२४ ॥

(प्रे०) "गेयं" इत्यादि, कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीय-
स्त्यानर्द्धिविकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तम् ।
'हवए' इत्यादि, जिननामो मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां च
बन्धान्तरं नास्ति, ननु मिथ्यात्वाद्यष्टानामेव कुतः, न पुनरप्रत्याख्यानावरणादीनामपि इति चेत्,
आमां ध्रुवबन्धित्वेन स्थिरलेश्याकजीवापेक्षया एवान्तरस्योत्पत्तेः, न च स्थिरलेश्याकदेवनारकाणां
मिथ्यात्वाद्यष्टप्रकृतीर्विहाय शेषध्रुवबन्धिनीनामबन्धो लभ्यते, इत्यतो मिथ्यात्वाद्यष्टानामेव तद्भवति,
न तु तदितरध्रुवबन्धिनीनाम् । न च मा भवतु यन्मते चतुर्थगुणस्थानं यावदेवाशुभलेश्याः, न

पुनस्तदूर्ध्वम्, तन्मते पञ्चमादिगुणस्थानप्राप्तानामप्रत्याख्यानावरणादेरवन्धलाभेऽपि तत्र प्रस्तुता-
ऽशुभलेश्यामार्गणाया एवाऽप्रवर्तनेन तदवन्धस्य मार्गणावहिर्भोवित्वात्, परं यन्मते षष्ठगुणस्थानं
यावदशुभलेख्याऽङ्गीकारस्तन्मते तु अप्रत्याख्यानावरणादीनां तद्भविष्यतीति वाच्यम्, तेषां हि पञ्च-
मगुणादिगामिनामस्थिरलेश्याकृतेन तद्गुणान्तराभिमुखावस्थात् आरभ्य तद्गुणप्राप्त्यनन्तरमपि,
क्रियत्कालं यावत् नियमतो शुभलेख्याकृतेनाऽप्रत्याख्यानावरणाद्यवन्धप्रारम्भस्य शुभलेश्या-
भावित्वात्, नहि यन्मार्गणायां यस्याः प्रकृतेरवन्धप्रारम्भालाभस्तस्यां मार्गणायां तत्प्रकृतिवन्धस्यै-
कजीवाश्रयमन्तरं सम्भवति, निरन्तरे मार्गणाकालेऽवन्धप्रारम्भस्य तदनु वन्धप्रारम्भस्य च
लाभेऽन्तरसगतात्, अत एव जिननाम्नोऽपि प्रस्तुतान्तरं निषिद्धम्, कृष्णनीलयोस्तद्वन्धाऽवन्ध-
योरप्रारम्भात्, कापोतलेख्यायां जिननामसत्कर्मणि नारकजीवमपेक्ष्य तद्वन्धप्रारम्भसम्भवेऽपि ततः
प्राग् निरन्तरप्रवृत्तायां तन्मार्गणायां तदवन्धप्रारम्भस्यालामादित्यलम् ॥२२४॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायां प्रकृतं प्रतिपादयति

तेजस्य मुहुत्ततो मिच्छार्द्रिणं हवेज्ज अदृष्टम् ।
सेसधुवाहारजुगलजिण्छुरलार्द्रिणं गेव भवे ॥ २२५ ॥
देवविउव्वदुगाणं सहस्सवासाणि दस मुणेयव्व ।

(प्रे०) “तेजस्य” इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकानन्तानु-
बन्धचतुष्करूपाणामष्टप्रकृतीनां जघन्यं वन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितमस्ति, इदञ्चान्तरं देवानाश्रित्य
विज्ञेयम्, भावना प्राग्वत्कार्या । “सेस” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ब्रुवन्नन्विप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य जिननाम्न औदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां
षट्प्रकृतीनां च वन्धान्तरं नास्ति, कासाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं वध्यमानत्वात्कासाञ्चित्प्रकृतीनां च
द्विर्वन्धाभावात् । इदमुक्तं भवति—तेजोलेश्यामार्गणाया मिथ्याद्यष्टिप्रभृतिसप्तगुणस्थानकेष्वेव सत्त्वात्
श्रेणेरभावेन मध्यमकपायाष्टकवर्जज्ञानावरणीयाद्येकत्रिंशद्ब्रुवन्नन्विप्रकृतीनां वादरत्रिकपराघातोच्छ्वास-
प्रकृतीनां च निरन्तरं वध्यमानत्वादन्तराभावोऽस्ति । जिननाम्नो वन्धो येषामस्ति तैस्तन्निरन्तरं
वच्यत इति तस्याप्यन्तराभावः, तथाऽऽहारकद्विकमध्यमकपायाष्टकौदारिकशरीरप्रकृतीनां वन्ध-
विच्छेदानन्तरं पुनर्वन्धादर्वाग् मार्गणाया विच्छेदेन द्विर्वन्धाभावादन्तराभावो ज्ञेयः । ‘देव-
विउव्व’ इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणायां देवद्विकवैकियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य वन्धसत्कं जघन्य-
मन्तरं दशमहस्रवर्षप्रमाणं ज्ञातव्यम्, तदेवम्—मार्गणायामस्यां वर्तमानो मिथ्याद्यष्टिः कश्चिद्विषयं
मनुष्यो वा भवान्तिमान्तर्मुहूर्ते चरमसमयपर्यन्तं प्रकृतप्रकृतिचतुष्कं वध्नाति, ततो मृत्वा जघन्य-
स्थितिकदेवत्वेन जातः स्याद्युःसमाप्तिं यावदेतत्प्रकृतिचतुष्कं न वध्नाति, तत्र सम्यक्त्वं प्राप्य कालं
च कृत्वा मनुष्यमव उत्पन्नः पुनर्वन्धाति, अत एतावदन्तरं संप्राप्यते । तथा वेदनीयद्विकदास्यादि-

युगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थान-
पट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्कातपोद्योतगोत्रद्वयरूपाणामष्ट-
चत्वारिंशत्शेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातः समयप्रमाणं जघन्यबन्धान्तरं
विज्ञेयम् ॥१२५॥ अथ पञ्चलेश्यामार्गणायामह

पञ्चमाअ मुहुत्ततो मिच्छाईण अडपयडोण ॥ १२६ ॥

सेसधुवोहारजुगलदसुरजुवगाइगाण णेव भवे ।

अवमहिग्गा वो अयरा सुरविजवडुगाण विण्णेय ॥ १२७ ॥

(प्रे०) "पञ्चमाअ" इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकान-
न्तानुबन्धचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धसत्कं जघन्यान्तरमन्तर्मुहूर्तमवसातव्यम्, भावना प्राग्-
त्कार्या । "सेस" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानां शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धि-
प्रकृतीनामाहारकद्विकौदारिकद्विकपराधातोच्छ्रामवादरत्रिकत्रयपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां द्वादश-
प्रकृतीनां च बन्धाऽन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां कामाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वात्
कासाञ्चित्प्रकृतीनां पुनर्द्विर्वन्वाभावाच्च । "अवमहिग्गा" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृति-
चतुष्कस्य बन्धसत्कं जघन्यमन्तरं साधिकसागरोपमद्वयं बोद्धव्यम्, भावना पुनरेवम्-पञ्चलेश्या-
मार्गणायां वर्तमानस्तिर्यङ् मनुष्यो वा भवत्तरमममये देवचतुष्कं ब्रुद्ध्वा जघन्यतोऽपि सनत्कुमारदेव-
भवे साधिकसागरोपमद्वयस्थितिमत्त्वेन जायते तदा तावत् कालपर्यन्तं नैव तद् बध्नाति तत्र सम्यक्त्वं
लब्ध्वा कालं च कृत्वा सम्यक्त्वेन मार्कं मनुष्यभव उत्पद्य पुनस्तद्बन्धमारभते तदेयत्प्रमाणमन्तर-
मुपलब्धं भवति । 'सञ्चासु मग्गणासु' इत्यादिगाथातो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्म-
नुष्यगतिद्वयसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतगोत्र-
द्विकरूपाणां द्विचत्वारिंशत्शेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं समयात्मकं समधिगम्यम्
॥१२६-१२७॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां तदाह

सुक्काअ मुहुत्ततो योणद्धितिगाणचउगमिच्छासं ।

सुरविजवडुगाण तहा आहारडुगस्स बोद्धव्व ॥ १२८ ॥

ओधव्व जाणियव्व निदापयलाण अंतरं नत्थि ।

मज्झद्वकसायाणं तह भण्णुपोरालियडुगाणं ॥ १२९ ॥

(प्रे०) "सुक्काअ" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कमिथ्या-
त्वमोहनीयरूपाणामष्टप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्ध-
सत्कं जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति, तदित्यम्-मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृ-
त्यष्टकस्य मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणान्तरापेक्षया, आहारकद्विकस्य सुरादि-

चतुष्कस्य चोपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदानन्तरं पुनरपि बन्धकरणापेक्षयेद्दशमन्तरमवसातव्यम् । आहार-
कद्विकस्य प्रमत्तगुणस्थानकापेक्षयाऽन्तरं नैवाऽऽयाति, तत्रैतन्मार्गणाया विच्छेदाद् । “ओधञ्व”
इत्यादि, निद्राप्रचलारूपप्रकृतिद्वयबन्धस्य जघन्यमन्तरभोधवज्ज्ञातव्यम्, तच्चैवम्—एकमतेन समयप्रमाणं,
द्वितीयमतेन त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणमिति । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदा-
रिकद्विकरूपाणां द्वादशानां प्रकृतीनां मार्गणायामस्यां बन्धान्तरं नास्ति, हेत्वादिकं तेजोलेश्यामार्गणा-
वज्ज्ञेयम्, परं मनुष्यद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मवद् भावना कार्या ।
ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरु-
लघूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनविंशद्भुवन्धिविप्रकृतीनां समयप्रमाणमन्तरभोधवत्तथा
वेदनीयद्विकेहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयपञ्चेन्द्रियजातिसंहननपट्टकसंस्थानपट्टकलगातिद्विकत्रसदशकाऽ-
स्थिरपट्टकपराधातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्विकरूपाणां पञ्चचत्वारिंशद्भुवन्धिविप्रकृतीनां च ‘सञ्वास्तु मग्ग-
णास्तु’ इत्यादिगाथातः समयप्रमाणं जघन्यबन्धान्तरं ज्ञेयम् । अत्राध्रुवबन्धिनीषु कासाञ्चित्पञ्चेन्द्रिय-
जातिपराधातादीनां श्रेणावबन्धापेक्षया, शेषाणामध्रुवबन्धित्वान्निरुक्ताऽन्तरं ज्ञेयमिति ॥ २२८-२२९ ॥

अथ क्षायिकोपशमसम्यक्त्वमार्गणाद्वये उत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरमभिधीयते

लङ्घञ्वसमेसु बारहभाहारदुगाइचउसुराईणं ।

ओहिह्व होइ णो चिअ भवे णराईण पचण्हं ॥ २३० ॥

(प्रे०) “लङ्घञ्वसमेसु” इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपे मार्गणाद्वये
‘आहारदुग निदुग च तइअकसाया । दुइअकसाया’ इति संग्रहगाथावयवेषु कथितानां द्वादशानामाहा-
रकद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां च बन्धस्य जघन्यमन्तरमव-
धिज्ञानमार्गणावद् भवति, तदेवम्—निद्राद्विकस्य समयः, मतान्तरेण पुनरन्तर्मुहूर्तम्, प्रत्याख्या-
नावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽऽहारकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां चान्तर्मुहूर्तम्,
भावनाऽवधिज्ञानमार्गणावद् भावनीया । “णो चिअ” इत्यादि, मार्गणाद्वयेऽस्मिन् मनुष्यद्विकौ-
दारिकद्विकवर्ज्यमनाराचसंहननलक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धान्तरं नास्ति, तदेवम्—उपशमसम्य-
क्त्वमार्गणायां वर्तमाना देवा नारकाश्च प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्याऽनवरतं बन्धकाः सन्ति, देवनारकाणां
मार्गणायामस्यां प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य ध्रुवबन्धिकल्पत्वात्, तस्मात्तद्वन्धस्याऽन्तरं न प्राप्यते ।
क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां वर्तमाना मनुष्या देवप्रायोग्यप्रकृतीर्विघ्नन्ति ततश्च मृत्वा देवे नारके
कोत्पद्ये प्रथमसमयादेव मनुष्यद्विकादिप्रकृतीर्विघ्नन्ति यावदायुश्चरमसमयम्, ततश्च च्युत्वा मनुष्य-
भवमायान्ति तदापि ते देवप्रायोग्यप्रकृतीर्विघ्नन्ति, परं तदनन्तरं पुनर्देवभवे नरकभवे वानोत्पद्यन्ते,
अतो मनुष्यद्विकादिप्रकृतीनामन्तरं नैव प्राप्तं भवति, इदं सर्वं क्षायिकसम्यग्दृष्टेत्कृष्टतोऽपि भवच-
तुष्कादधिका भवा नैव विद्यन्ते इति मतेन विज्ञेयम् । अन्यथा तु स्वयं विभावनीयम् । तथा

ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कमेयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगु-
रेलधूपधातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-
पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकोऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वास-
जिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशत्यध्रुवन्धिप्रकृतीनां जघन्यं बन्धाऽन्तरं 'संवाप्तु मग्गणाप्तु' इति
गाथातः समयप्रमाणमवसातव्यम् । तत्र सातवेदनीयादिद्वादशानां परावर्तमानबन्धवत्त्वेन शेषनवविंशति-
ध्रुवन्धिनीनां तथा सातवेदनीयादिद्वादशवर्जशेषपञ्चदशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवकल्पानां चोपशमश्रेणौ
जघन्यतः समयमात्राबन्धस्य लाभेन जघन्यं समयमात्रमन्तरं ज्ञातव्यमिति ॥२३०॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां तदाह

अट्टकसायाण तहा आहारदुगरा वेअगे वेय ।
भिन्नमुहुत्तं शररलदुगवेइराण वरिसमुहुत्तं ॥ २३१ ॥
देवविउव्वदुगाणिं साहियपलिओवम मुणेयव्वं ।
णो अत्थि अंतरं खलु आरससायाइवज्जाणं ॥ २३२ ॥

(प्रे०) "अट्टकसायाण" इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रत्याख्यानावरणचतु-
ष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणानामष्टकपायप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य च बन्धसत्कं लघुतयाऽन्त-
रमन्तर्मुहूर्तप्रमितं ज्ञातव्यम्-भावना तूक्तग्राया । "णाररल" इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विक-
वर्जपेनाराचसंज्ञनरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं वेदयितव्यम्,
भावनाऽवधिज्ञानमार्गणावत्कार्या । "देवविउव्व" इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां
चतसृणां प्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं साधिकपल्योपममितं ज्ञातव्यम् । योजना पुनरेवं
कार्या-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणावर्ती तिर्यङ् मनुष्यो वा विपद्य एतत्प्रकृतिचतुष्कं वद्व्वा देवमवे
जघन्यतः साधिकपल्योपमप्रमाणायुष्को देवो भवति तत्र च स भवप्रत्ययेन सुरद्विकादिप्रकृतीर्न
बध्नाति ततश्च प्रच्युत्य मनुष्यमवभायातः सन् बध्नाति, अत उक्तप्रमाणमन्तरं लब्धं भवति, आव-
श्यकवृष्याधमिप्रायेण तु प्रस्तुतान्तरं परिपूर्णं पल्योपमप्रमाणमवसातव्यमिति । "णो अत्थि"
इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीरुते शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनच-
तुष्कमेयजुगुप्सावर्णादिचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयाऽगुरलधूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिं-
शद्भुवन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेय-
पराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चदशानां मार्गणाप्रायोग्यध्रुवन्धिकल्पानां च बन्धसत्क-
मन्तरं नास्ति, सततं बध्यमानत्वात् । सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं
'संवाप्तु मग्गणाप्तु' इत्यादिगाथया समयप्रमाणं समधिगम्यम्, परोवर्तमानतो बध्यमानत्वात्
॥२३१-२३२॥ अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां तदुच्यते

सासाणे पयडीणं तेपण्णासाअ अंतरं नत्थि ।

धुवबन्धिपण्णदियपरधाऊसासतसचउगाणं ॥ १३३ ॥

(प्रे०) “सासाणे” इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जाः पट्चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रयचतुष्करूपाः सप्त प्रकृतयश्चेति त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, अनवरतं बन्धभावादासामत्र । वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुष-स्त्रीवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकचरमसस्थानवर्जसंस्थानपञ्चरुचरमसंहनन-वर्जसंहननपञ्चकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतगोत्रद्वयरूपाणां पञ्च-चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतानां बन्धस्य जघन्यतोऽन्तरं “सव्वासु भग्गणासु” इत्यादि गाथया सम-यात्मकं विज्ञेयम् । इत्यायुर्वर्जप्रकृतीनां बन्धस्य जघन्यतयाऽन्तरप्ररूपणा ॥ १३४ ॥

निखिलासु मार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धसत्कं जघन्यतोऽन्तरमभिधाय सम्प्रति गुरुतया तच्चिन्तयितुकाम आह

कम्मणाहारेसुं अणिसिद्धान्तरं गुरुं समयो ।

सेसासु मुहुत्ततो, अवक्खमाणाउवक्खजाणं ॥ १३५ ॥

(प्रे०) “कम्मणाहारेसुं” इत्यादि, कर्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च जघन्यतोऽन्तरप्ररूपणायां मार्गणयोरनयोर्यासा प्रकृतीनामन्तरं निषिद्धमस्ति ताः प्रकृतीर्वर्जयित्वा-ऽन्यासां प्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं समयप्रमाणं ज्ञातव्यम्, मार्गणाकायस्थितेस्त्रिसामयिकत्वे-नाधिकान्तरस्यालाभात् । समयान्तराः प्रकृतय एकेन मतेनैकोनपष्टिरिति, तार्थौदारिकशरीरनाम-वर्जाः कालद्वारोक्ता ज्ञेयाः, अन्यमतेन तु स्वयं विज्ञेया इति । “सेसासु” इत्यादि कर्मणकाय-योगानाहारकमार्गणाद्वयव्यतिरिक्तासु शेषासु मार्गणास्वायुष्कर्मवर्जानां वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तानाम् ‘अणिसिद्धान्तरं गुरु’ इत्यादिकस्याऽत्रापि सम्बन्धनात्, अवक्ष्यमाणानिषिद्धान्तराणां प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमितमधिगन्तव्यम् । अयं भावः—कर्मणानाहारकवर्जासु मार्गणासु जघन्यान्तरप्रस्तावे यासां प्रकृतीनामन्तरं निषिद्धं तामां प्रकृतीनां गुर्वन्तरप्रस्तावेऽप्यन्तरं नैवायाति, ततोऽनिषिद्धान्तरासु प्रकृतिषु प्रस्तुते यासामन्तरं पृथग् न दर्शयिष्यते तासामन्तरमुत्कृष्टतो-ऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवावसातव्यम् । अन्तर्मुहूर्तादधिकं प्रकृष्टमन्तरं भवप्रत्ययेन वा गुणप्रत्ययेन बोधप्रत्ययेन वाऽबन्धप्रयुक्तमायाति, सप्तमादिगुणस्थानादूर्ध्वं व्यवच्छिद्यमानबन्धवर्तीनां ध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां तथा यासां प्रकृतीनां भगदिप्रत्ययेनोत्कृष्टमन्तरं न प्राप्यते तासां प्रकृतीनां तथा-ऽन्तर्मुहूर्तकायस्थितिकमार्गणासु यासां प्रकृतीनामन्तरं प्राप्यते तामां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धसत्क-मन्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं न प्राप्यते । यासु मार्गणासु यासां सातवेदनीयादिद्वादशानां बन्धः तासु तासां द्वादशानामपि बन्धान्तरमुत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिकं नैवाऽऽयातीत्यपि ध्येयम् ॥ १३५ ॥

अथ यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामन्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं तासु तासामन्तरं दर्शयन्नादौ तावत्कमप्राप्तं नरकमार्गणासु प्रकृष्टमन्तरं प्रतिपादयितुमाह

मिच्छाद्वयद्वयोस्ताव सव्वजिरयेसु णरदुगुञ्जाणं ।

जिरयचरमजिरयेसुं देसूणा सगुरुकायठिई ॥ २३६ ॥

(प्रे०) “मिच्छाई” इत्यादि, नरकौघसप्तमनरकमार्गणाप्रभावालोकोप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमः-

प्रभातमस्तमःप्रभारूपासु सर्वासु नरकमार्गणासु “मिच्छं” थोणद्धितिगमणचरगथोणपुमा । सधयणागि-
इपणग दुहगतिग कुल्लगई णोम ॥ तिरियदुगुज्जोम” इति संग्रहगायाधयवेसु प्रोक्तानामष्टाविंशतिप्रकृतीनां
बन्धमत्कमुत्कृष्टमन्तरं किञ्चिन्न्यूनमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमवसेयम्, कथमिति चेद्,
उच्यते, मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिजीवः स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वमुपलभ्य
स्वायुश्चरमाऽन्तर्मुहूर्ते पुनरपि मिथ्यात्वमवाप्नोति तदा सम्यक्त्वावस्थायां मिथ्यात्वमोहनीयादीना-
मष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धव्यावृत्तिभावेनाऽन्तर्मुहूर्तद्वयन्यूनमेतन्मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टकायस्थितिप्रमित-
मुत्कृष्टतयाऽन्तरं प्राप्यते, तस्मादासु मार्गणास्वेतत्प्रमाणमन्तरमभिहितम् । “णरदुगु” इत्यादि,
नरकौघसप्तमनरकलक्षणे मार्गणाद्वये मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरमुत्कृष्ट-
तया किञ्चिदूनस्वगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवति, तच्चैवंरीत्या बोध्यम्-सप्तमनरके कस्यचिन्मिथ्या-
दृष्टिजीवस्य स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यक्त्वप्राप्तिर्जायते, तदा तस्य मनुष्यद्विकादिप्रकृतित्रयस्य
बन्धो भवति, अन्तर्मुहूर्तादनु मिथ्यात्वावाप्तौ सत्यां तद्बन्धव्यावृत्तिर्भवति यावद् देशोनत्रयस्त्रि-
शत्सागरोपमाणि, उपान्त्याऽन्तर्मुहूर्ते पुनः सम्यक्त्वलाभे जाते पुनस्तद्बन्धो भवति, चरमान्त-
र्मुहूर्ते च भूयोऽपि मिथ्यात्वप्राप्तौ पुनरपि तद्बन्धव्यावृत्तिर्जायते, तदा मार्गणाद्वयेऽस्मिन्नन्तर्मु-
हूर्तचतुष्केण न्यूनस्वगुरुकायस्थितिप्रमितमन्तरमुपलब्धं भवति । जघन्यतोऽन्तरप्ररूपणायां यासां
कासाञ्चिद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धसत्कमन्तरं नास्तीति प्रतिपादितम्, तदत्राऽपि सर्वासु मार्गणासु
वेदयितव्यम् । तत्र प्रतिपादितत्वाद् ग्रन्थकारेणाऽत्र “अणिसिद्धाण” इत्यनेन तद्वर्जानामेवात्र कथ-
यिष्यमाणत्वात् निषिद्धान्तराः प्रकृतयः पुनर्नामतः पृथग् न कथयिष्यन्ते, किन्तु विस्मरणशीलस्य
शिष्यस्य रगृत्यर्थमस्माभिस्तु ताः कथयिष्यन्ते । मिथ्यात्वादृष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशत्शेषध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनामौदारिकद्विकपरिघातोच्छ्वासत्रादरत्रिकत्रसपञ्चेन्द्रियजातिजिननामरूपाणां दशानां प्रकृतीनां
च बन्धस्याऽन्तरं न विद्यते । रत्नप्रभाशर्कराप्रभावालोकोप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु ५८सु
मार्गणासु साताऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षमनाराच-
संहननमनुष्यानुपूर्वांशुमखगतिस्थिरपट्काऽस्थिराऽशुमाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां शेषाणां
द्वाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नरकौघसप्तमनरकमार्गणयोश्च मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रवर्जानामासामे-
वैकोनविंशतिप्रकृतीनां, ‘सेसासु सुदुत्तरे’ इत्यादिना प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्,
गुणप्रत्ययेनाऽधिकाऽन्तरस्याऽलाभात् ॥ २३६ ॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायां कासांश्चित्रकृतीनामुत्कृष्टमन्तरमुपदर्शयते ।

तिरिये मिच्छाईणं णवण्हं पल्लाडित्य तिरिणि देसूगा ।

णिरयाईण णवण्हं तह णेय जह भणिअमोहे ॥ १३७ ॥

देसूणपुव्वकोडी हवए णपुमाइअद्वीसाए ।

दुइअकसायाण तहा उरालदुगवइररिसहाण ॥ १३८ ॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां 'मिच्छा' शीणद्वितीयाणचअयी' इति संग्रह-
गाथाशकलेषु भणितानां नवानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोन-
पल्लयोपमत्रयमस्ति, भावना पुनरेवम्-कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्जीवो युगलिकमवे त्रिपल्लयोपमस्थितिमन्वेन
तिर्यग्गतयोत्पद्याऽपर्याप्तावस्थानन्तरं प्राप्तसम्यक्त्वः सन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिनवकं न
बध्नाति, चरमान्तमुहूर्ते मिथ्यात्वमवाप्य पुनर्बध्नाति, अतोऽन्तमुहूर्तद्वयन्यूनपल्लयोपमत्रय-
प्रमितमन्तरं प्रकृततया प्राप्तं भवति । 'णिरयाईण' इत्यादि, मार्गणायामस्यां 'णिरयसुरविउज्ज-
दुगं उच्चणरदुग' इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानां नरकगात्यादीनां नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टतया
बन्धसत्कमन्तरमोघवद् बोद्धव्यम्, तदित्यम्-मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य प्रकृतं
बन्धाऽन्तरमसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणमयप्रमितं, नरकद्विकसुरद्विकैकक्रियद्विकलक्षणां च
पण्णां प्रकृतीनामसंख्यातपुद्गलपराधतप्रमाणं विज्ञेयम्, भावना त्वत्रौघवदवसातव्या । 'देसूण'
इत्यादि, 'णपुमा सचयणागिइपणगं दुइगतिग कुल्लगई णीभ ॥ तिरियदुमुज्जोभायवयावरएणिदिमुहम-
तिगविगला । इति संग्रहगाथाशेषु कथितानां नृपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्कस्य तथौदारिकद्विकवर्चर्षभनाराचमंहननभ्यरूपाणां त्रिप्रकृतीनां बन्धमन्त्रमुत्कृष्टमन्तरं
देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमितं भवति, तदेवम्-पर्याप्तयुगलतिर्यग्भिरैताः प्रकृतयो न बध्यन्ते, देवप्रायोग्य-
प्रकृतिबन्धकेत्वात्तेषाम्, युगलिकव्यतिरिक्तैस्तु तैर्बध्यन्ते, तेभ्यः केचन पूर्वकोटिवर्षस्थितिका
भवन्ति, ते ह्यपर्याप्तावस्थानन्तरं पर्याप्तावस्थायां यथायोग्यकाले देशविरतिमवाप्यैताः प्रकृतीर्न
बध्नन्ति, ग्रान्ते चाऽन्तमुहूर्ते पुनरपि मिथ्यात्वं प्राप्य बध्नन्ति, तदा देशोनपूर्वकोटिवर्षलक्षणं
प्रकृतं बन्धाऽन्तरं लभ्यते । ज्ञानावरणपञ्चदशदर्शनावरणपट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसञ्चलनचतुष्क-
भयजुगुप्सतजसकर्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्कागुरुलघूप्रवातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चरूपाणां शेषाणां
पञ्चत्रिंशद्ब्रुवन्धिप्रकृतीनां बन्धाऽन्तरं नास्ति, सप्रकृष्टगुणस्थानकं यावन्निरन्तरं बध्यमान-
त्वात् । वेदनीयद्विरुहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रस्थानसुखगतित्रसदशका-
ऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपरावातोऽल्लवामरूपाणां पञ्चत्रिंशतिशेषाब्रुवन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य
"सेसासु मुहुत्ततो" इत्यादिना, प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तात्मकं वेदियितव्यम्, परावर्तमानबन्धेनान्त-
रम्य लाभात् ॥ १३७-१३८ ॥

अथ त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणानु तद् बध्यते

तिपणिदियतिरियेसुं मिच्छार्हणं एवम्ह पयडीणं ।
तिणि पलिओवमाइं देसूणाइं मुजेयव्वं ॥२३९॥
देसूणपुव्वकोडी जेयं णपुमाइअट्ठवीसाए ।
दुइअकसायाण तहा णिरयणररलदुगवहराणं ॥२४०॥

(प्रे०) “तिपणिदिय” इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-
रूपासु तिसृषु मार्गणासु ‘मिच्छंथीणद्धितिगमणचउगथी’ इति संग्रहगाथाशकलेष्वभिहितानां
मिथ्यात्वमोहनीयादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धसम्बन्धि गुर्वन्तरं देशोनपण्योपमत्रयप्रमाणमस्ति,
अत्र तिर्यगोघमार्गणावद् भावना कर्तव्या । “देसूणा” इत्यादि, णपुमा । सधयणागिइयणगं दुइगतिगकुल-
गई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिदिसुइमतिगविगला ।” इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां
नपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य नरकद्विकमनुष्यद्विकौदारिकद्विक-
वज्र्यभनाराचसंहननरूपाणां सप्तप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतया देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि,
अत्राऽपि भावना तिर्यगोघमार्गणावत् कार्या, परं मार्गणास्त्रासु नरकद्विकमनुष्यद्विकयोरेतादृशमन्तरं
तिर्यगोवन्न प्राप्यते, एकेन्द्रियादीनामप्रवेशात्, अतस्तासां प्रकृतीनामन्तरभावनाऽयुगलिकतिर्यग-
पेक्षया मिथ्यात्वाद्वाद्यापान्तराले सम्यक्त्वाद्यवस्थायां गुणप्रत्ययेनाव्यन्धेन कर्तव्या । शेषपञ्चत्रि-
शद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति । ‘सेसासु सुहुत्ततो’ इत्यादिना वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
द्वयपुरुषवेदसुरगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुरानुपूर्वीसुखगतित्रसदशकाऽस्थिरा-
ऽशुमाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गौरूपाणां शेषाणां त्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धान्तर-
मन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम् ॥२३९-४०॥

साम्प्रतं मनुष्यमार्गणासुतरप्रकृतिबन्धस्य गुरुभूतमन्तरं दर्शयितुकाम आह

तिणरेसुं ओद्धव्व णवमिच्छार्हणं ऊणपल्लतिग ।
पुव्वाकोडिपुहुत्त, आहारदुगस्स णायव्वं ॥२४१॥
देसूणपुव्वकोडी होअइ णपुमाइअट्ठवीसाए ।
मज्झाऽदुकसायाण णिरयणररलदुगवहराणं ॥२४२॥

(प्रे०) “तिणरेसु” इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुपीरूपासु तिसृषु मार्गणासु ‘मिच्छं-
थीणद्धितिगमणचउगथी’ इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां नवानां प्रकृ-
तीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनपण्योपमत्रयप्रमाणं तिर्यगोघवज्ज्ञातव्यम् । “पुव्वा” इत्यादि,
आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्षप्रमितं ज्ञातव्यम् । तद्यथा—युगलिकेषु
संयमाभावेनैतत्प्रकृतिद्वयस्य बन्धाभावोऽस्ति, तद्वर्जशेषमनुष्यकायस्थितौ प्रथमभवे वर्षाष्टकानन्तरं
संयमं प्राप्य बध्नाति ततः परिणामपातेनाऽविरतो भूत्वा नैव बध्नाति, चरमभवे पुनश्चरमान्तर्मु-
हूर्ते संयमं प्राप्य बध्नाति, तदोक्तप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमुपलब्धं भवति । “देसूणा” इत्यादि, ‘णपुमा ।

संघयणागिइपणम दुइगतिगं कुल्लगई णीअ ॥ तिरियदुग्गजोआयवथावरणगिदियमुइमतिगविगला'
 इतिसंग्रहगाथावयवेपूत्तानां नपुंसकवेदादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्या-
 ख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य नरकादिकनरद्विकौदारिद्रिकवन्धर्मनाराचसंहननरू-
 पाणां सप्तप्रकृतीनां च प्रकृत्यतो बन्धाऽन्तरं देशोनपूर्वकोदिवर्षप्रमाणं भवति, प्रत्याख्या-
 नावरणचतुष्कवर्जानां भावना पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भक्तकार्या । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तु कथित-
 बन्धान्तरं देशोनप्रकृत्यसंयमकालेन ज्ञातव्यमिति । मार्गणास्यासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्टकम-
 ज्वलनचतुष्कमयकुत्मातैजमकर्मणशीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणा-
 मेकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादिपुगलद्वयपुरुषवेदेदेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक-
 समचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रयसदशकास्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चै-
 र्गौरूपाणामेकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसासु सुहुचंतो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तम-
 धिगम्यम् । तदप्यत्र ज्ञानावरणाद्येकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां जिननामकर्मणश्चोपशमश्रेणौ बन्धवि-
 छेदानन्तरं पुनर्वन्धापेक्षया शेषाद्भुववन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानापेक्षया विज्ञेयम् ॥२४१-२॥

अथ देवमार्गणासु प्रकृतीनां गुरुभूतमन्तरमुपदर्शयन्नाह

देवे मिच्छाईसु पणवीसाए य तिण्ह तिण्ह कमा ।

उवरिमगेविज्जऽट्टमवुइअसुरुणगुरुकायठिई ॥२४३॥

(प्रे०) 'देवे' इत्यादि देवौवमार्गणायां 'मिच्छ' धीणद्वितिगमणचउगधीणपुसा । संघयणागिइ-
 पणमं दुइगतिगं कुल्लगई णीअ ॥ इति संग्रहगाथाशेषु प्रतिपादितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रमृतीनां पञ्च-
 विंशतिप्रकृतीनां बन्धसत्कं गुर्वन्तरं नवमग्रैवेयकस्य देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमितोत्कृष्टकाय-
 स्थितिरूपं वर्तते नवमग्रैवेयकेऽपर्याप्तावस्थां परित्यज्य पर्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वद्वयापान्तराले
 सम्यक्त्वावस्थायामेतावत्कालं प्रकृतीनामासां बन्धविरहात् । तिर्यग्विद्वकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य गुरु
 बन्धान्तरमष्टमदेवलोकसत्कदेशोनाष्टादशसागरोपमप्रमितप्रकृष्टकायस्थित्यात्मकमस्ति, यतो हि सह-
 स्राराख्याष्टमदेवलोके वर्तमानाः प्रकृष्टकायस्थितिमन्तो देवाः पर्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वद्वयान्तरे
 सम्यक्त्वावस्थायामभिहितकालं यावत् प्रकृतित्रयमेतन्नैव बध्नन्ति । आतपस्थावरैकेन्द्रियरूपाणां
 तिसृणां प्रकृतीनां च बन्धस्योत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तन्युनेशानाख्यद्वितीयदेवलोकसम्प्रन्धिसाधि-
 कसागरोपमद्वयलक्षणगुरुकायस्थितिस्वरूपमवसेयम्, ईशानदेवलोके वर्तमानानां साधिकसागरोपमद्व-
 योत्कृष्टस्थितिकानां देवानां पर्याप्तावस्थाया मिथ्यात्वाद्वाद्द्वयान्तरे सम्यग्दृष्टित्वावस्थायामुक्तकालपर्यन्तं
 प्रकृतीनामासा बन्धाभावात्, देशोनत्वमत्र भवाद्याऽन्तर्मुहूर्तं तदन्तिमान्तर्मुहूर्तं चेत्यऽन्तर्मुहूर्त-
 द्वयेन ज्ञेयम्, ननु प्रकृतानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां त्रिप्रकृतीनां त्रिप्रकृतीनां चाऽन्तरं देशो
 नत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं वक्तव्यम्, देवानां प्रकृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वादिति चेन्न, उक्ता-

धिकस्थितिकेदेवानां तत्तत्प्रकृतीनां बन्धाभावेन तासां बन्धसत्काऽन्तरस्थाऽसंभवात् । एकोनचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरजिननामपराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य च निरन्तरं बध्यमानत्वेन बन्धाऽन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगति-
पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवज्रपमनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानशुभलगातिमनुष्यानुपूर्वीत्रस-
स्थिरपट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु
मुहूर्ततो' इत्यादिनान्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम् ॥२४३॥

उपरिमगोविज्जऽद्वुमदुइअसुरतेसु सृणजेठुई ।

कमसो मिच्छाईसुं पणवीसाए य तिण्ह तिण्ह कमा ॥२४४॥ (गीति)

(प्रे०) 'उपरिम्' इत्यादि, 'उपरिमग्रैवेयकाष्टमद्वितीयसुरतेषु' अत्र प्रान्तवर्ति 'अन्त'
इति पदं 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाण पद प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायेनोपरिमग्रैवेयकादिपदैः साकं सम्ब-
न्धनीयम्, 'उपरिमग्रैवेयकान्तेषु' = भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कर्मौधर्मे शानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्म-
लान्तकशुकसहस्राराऽऽनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु चतुर्विंशतिमार्गणासु, 'अष्टमान्तेषु'-
भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कर्मौधर्मे शानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुकसहस्रारलक्षणास्वेकादशमार्ग-
णासु, द्वितीयसुरान्तेषु' भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कर्मौधर्मे शानरूपासु पञ्चसु मार्गणास्वित्यर्थः ।
उपरिमग्रैवेयकान्तेष्वष्टमान्तेषु द्वितीयान्तेष्वित्यादिनोपदक्षितेषु त्रिविधमार्गणासमुदायेषु मिथ्यात्व-
मोहनीयादिषु सग्रहमाथायासुक्तासु प्रकृतिषु क्रमेण पञ्चविंशतिप्रकृतीनां, तिसृणां, तिसृणां च
प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'स्वोनज्येष्ठस्थितिः' स्वस्वप्रायोग्यदेशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं
भवति । इदमत्र हृदयम्—भवनपतिप्रभृतिनवमग्रैवेयकपर्यन्तासु चतुर्विंशतिमार्गणासु 'मिच्छाधीन-
द्विगमणच अधीणपुमा । सवयणागिडपणग दुहर्गातग कुजगई णं.आं।' इति सग्रहमाथाशकलोष्वभिहि-
तानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशतिप्रकृतीनाम्, भवनेत्यादिसहस्रारावसानास्वेकादशमार्ग-
णासु तिर्यग्द्विकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य, भवनपतिप्रमुखेशानान्तासु पञ्चसु मार्गणासु चातपस्यावरै-
केन्द्रियस्वरूपाणां तिसृणां प्रकृतीनां स्वस्वप्रायोग्यदेशोनोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणं बन्धमन्त्रन्वि
प्रकृष्टमन्तरं बोद्धव्यम्, मार्गणास्त्रासु मिथ्यात्वाद्वाद्यापान्तराले सम्यक्त्वावस्थायां तावत्कालमेतासां
प्रकृतीनां बन्धविरहात्, अत्राऽपि देशोनत्वं भवाधान्तिमाऽन्तर्मुहूर्तद्वयेनावसेयम् । आनतादि-
नवमग्रैवेयकान्तमार्गणासु एकोनचत्वारिंशद्भुवन्धिनीनां तथा मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराधातोच्छ्-
वायत्रयचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिनामरूपैकादशमार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिनीनां जिननाम्नश्च सर्वसंख्ययै-
कपञ्चाशत्प्रकृतीनां सततं बध्यमानत्वेन बन्धसत्कमन्तरं नास्ति । वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-
पुरुषवेदवज्रपमनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानशुभलगातिस्थिरपट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चै-
र्गोत्ररूपाणां विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहूर्ततो' इत्यादितोऽन्त-

मुहूर्तमवसातव्यम् । सन्तुमारादिसहस्रारान्तमार्गणास्वनन्तरोक्तमनुष्यद्विकवर्जज्ञानावरणीयाद्येकोन-
 पञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्य सततं सद्भावेनाऽन्तरं नास्ति । तथा वेदनीयद्विकदास्यादिभुगलद्वयपुरुषवेद-
 मनुष्यद्विकवर्जमनाराचसंहननसमचतुरक्षसंस्थानस्थिरपट्काऽस्थिराऽशुभायशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां
 द्वाविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमव-
 सेयम् । सौधर्मेशानमार्गणादये मिथ्यात्ममोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां
 जिननामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्रामवादरत्रिकरूपाणां च सप्तप्रकृतीनां निरन्तरं बध्यमानत्वेना-
 ऽन्तरं नास्ति, वेदनीयद्विकदास्यादिभुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यादारिकाङ्गोपाङ्ग-
 समचतुरक्षसंस्थानवर्जमनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभलगतिवसस्थिरपट्काऽस्थिराशुभायशःकीर्ति-
 नामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धमभ्यन्त्युत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्या-
 दिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपं विज्ञेयम् । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु मार्गणासु जिननामवर्ज-
 शेषसकलप्रकृतीनां सौधर्मेशानमार्गणादयग्द् बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं विचारणीयम् । इदानीमुक्त-
 व्यक्तिरिक्तपञ्चानुत्तरदेवमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतिषु यासां प्रकृतीनां बन्धान्तरं विद्यते
 तासां तत् 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । तद्यथा—सातवेदनीयादिद्वादशा-
 नामन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरं ज्ञातव्यम् । शेषबध्यमानप्रकृतीनां सततं बध्यमानत्वादान्तरं नास्ति ।
 ॥२४४॥ अथैकेन्द्रियादिमार्गणासु उत्तरप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धान्तरं प्रदर्श्यते—

विष्णोयमसखेज्जा लोगा भणुसदुगोच्चगोआणं ।

एगिदिये तह सुहुमएगिदियकायजोगेसुं ॥२४५॥

(प्रे०) 'विष्णोय'मित्यादि, एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघकाययोगौघरूपासु तिसृषु मार्ग-
 णासु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसमयप्रमितं
 प्रकृष्टतया विज्ञेयम्, तच्चैवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानस्तेजस्कायवायुकायिकवर्जपृथ्वीकायिकादिजीव
 एतत्प्रकृतित्रयं बद्ध्वैतन्मार्गणासत्कतेजोवायुकाययोरुत्पन्नः सन् प्रकृष्टतयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेश-
 प्रमाणसमयप्रमिततेजोवायुकायिकसमुदितोत्कृष्टकायस्थितिपर्यन्तं पुनः पुनस्त्रैतवोत्पद्यते तदा
 स तावत्कालमेतत्प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति तदनन्तरं पुनरपि पृथ्वीकायिकादित्वेन जायमानो
 बध्नाति, अतस्तेजस्कायवायुकायिकमवयोरेव पुनः पुनरुत्पद्यमानं जीवमाश्रित्यैव तादृशमन्तरम-
 वाप्यते । इदं त्वत्राऽवधेयम्—एकेन्द्रियौघकाययोगौघमार्गणयोरुक्तप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टमन्तरं तेजोवायु-
 कायिकसमुदितकायस्थितिरूपम्, सूक्ष्मैकेन्द्रिये तु तत्सूक्ष्मतेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितिरूपं
 विज्ञेयम् । एकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायोः शेषसप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-
 नाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वात् । तथा वेदनीयद्विकदास्यादिभु-
 गलद्वयवेदनयतिर्यगतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गमंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यगानुपूर्वीलगतिद्वयत्र-

सदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां शेषाणां पट्पञ्चाशदध्रुववन्धिप्रकृतीनां 'सेसासु सुद्वृत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरं प्रकृष्टतोऽवसेयम्, अध्रुववन्धित्वात् । काययोग-
मार्गणायां त्वौदारिकशरीरवैक्रियपट्कजिननामसहितानां चतुःषष्टिध्रुवेतरप्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाण-
मन्तरं ज्ञातव्यम्, ध्रुववन्धिनीषु पञ्चज्ञानावरणपट्दर्शनावरणसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सानवनाम-
ध्रुववन्धिपञ्चान्तरायाणां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् तदित्यम्-श्रेणौ आसां प्रकृ-
तीनां यथास्वं बन्धविच्छेदसमयादर्वाक्समये मार्गणाप्रारम्भः तत्तत्प्रकृतीनां बन्धश्च, तदनन्तरसमये
तत्तत्प्रकृतीनाम अवबन्धको भूत्वावन्धकतया तावत्तिष्ठति यावच्छ्रेणौ काययोगित्वेन चरमसमयम्, तत्र
कालं कृत्वा देवपूतपद्य पुनर्बन्ध करोति तदा प्रकृतान्तरं प्राप्यते, इत्थमेव जिननामबन्धान्तरं
ज्ञातव्यम् । शेषमिध्यात्वादिषोडशध्रुववन्धिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य चान्तरं नास्ति, जयन्यान्तर-
प्रस्तावे निषिद्धत्वादिति ॥२४५॥

अथ वादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तवादरैकेन्द्रियमार्गणयोस्तदुच्यते

सि अंगुलऽसप्तसो कम्मठिई वाऽत्थि बायरेगवसे ।

संखेज्जसहससमा, पज्जत्ते बायरेगवसे ॥२४६॥

(प्रे०) 'सि' इत्यादि, वादरैकेन्द्रियौघमार्गणायां तासामेव मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां
बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमङ्गुलाऽसंख्येयमागताकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणं वेदयितव्यम्, तदप्यन्तरं
मार्गणायामस्यां तेजोवायुकायिकभवयोरेव पुनः पुनरुत्पद्यमानजीवापेक्षया ग्राह्यम्, पृथ्वी-
कायिकादीनामपेक्षया तु तदसंभवः, तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतिभिस्साकं मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्र-
प्रकृतित्रयस्य परावर्तमानत्वेन बन्धभावात् । 'कम्मठिई वा' इत्यादि मतान्तरेण पुन-
र्मार्गणायामस्यां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं सप्ततिकोटिकोटिसागरो-
पमात्मकप्रकृष्टकर्मस्थितिप्रमाणं बोद्धव्यम्, मार्गणायामस्यां वादरतेजोवायुकायिकसमुदितोत्कृष्ट-
कायस्थितेरपि सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणतया तैः स्वीकृतत्वात् ; अत्रापि तेजोवायुकायिक-
तयोत्पद्यमानमाश्रित्य प्रकृतित्रयस्यास्येदृगन्तरं भावनीयम् । 'संखेज्ज' इत्यादि, पर्याप्तवादरैकेन्द्रिय-
मार्गणायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसम्बन्धि ज्येष्ठमन्तरं संख्येयसहस्रवर्षाणि
वर्तते, मार्गणायामस्यां पर्याप्तवादरतेजोवायुकायिकसमुदितकायस्थितेरुत्कृष्टतया तावत्प्रमाणत्वात्,
इहाप्येतादृशमन्तरं तेजोवायुकायिकतयोत्पद्यमानं जीवं प्रतीत्य भावनीयम् । मार्गणाद्वयेऽरिगन् सप्त-
चत्वारिंशदध्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनागश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, सततमत्र बन्धतो
विधमन्त्वात् । तथा वेदनीयद्विकेहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्ग-
संस्थानपट्कसंहननपट्कतिर्यगानुपूर्वीविहायोगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकपराधातोच्छ्वासातपोद्योत-
नीचैर्गोत्ररूपाणां शेषपट्पञ्चाशदध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु सुद्वृत्ततो' इत्यादिना-
ऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् ॥२४६॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणाक्षत्कृष्टमन्तरमाह

तद्विकसायाईण पणचत्ताअ तह तिवइराईण ।

दुपणिदितसेसु णयणसण्णीसुं होइ ओधव्व ॥२४७॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्तत्रयकायचक्षुर्दर्शनसंज्ञि-
रूपासु पट्सु मार्गणासु 'तद्विकसाया ॥ दुड्विकसाया मिच्छ थीणद्वितिगमणचउगथीणपुमां । सवयणा-
गिइपणग दुइगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरणदिंसुइमतिगविगला ।' इति संग्रहगाथां-
शेषु प्रतिपादितानां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कादिपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा 'वइरुलुवंगाणि ॥ उरल'
इति संग्रहगाथांशेनोक्तानां वचर्षमनाराचादीनां तिसृणां प्रकृतीनां चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टचत्वारिंश-
त्प्रकृतीनां बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवद् भवति, तदेवम्-प्रत्याख्यानावरणाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कयो-
र्बन्धस्यान्तरं देशोनपूर्वकोटिर्वर्षप्रमितम्, मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-
स्त्रीवेदनपुंसकवेदप्रथममंदननवर्जसहननपञ्चकप्रथमसस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकेदुर्भगत्रिकाऽशुभलगति-
नीचैर्गौरूपाणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धान्तरं द्वाविंशदधिकसागरोपमशतमानम्, आतपस्थावरै-
केन्द्रियसूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकरूपाणां प्रकृतीनां नवकस्य बन्धमन्कमन्तरमाधिकपल्योपमचतुष्केणाधिक-
पञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमाणि, वज्रपेमनाराचौदारिकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य मातिरेकं पल्योपम-
त्रयम्, तिर्यग्द्विकोद्योतलक्षणप्रकृतित्रयस्य च बन्धसत्कमन्तरं प्रकृततया त्रिपट्यधिकसागरोपमशतं
यथासमं साधिकं च विज्ञेयम्, अत्र भावना पुनरोघवद्भावनीया ॥१४७॥

अथैतास्वेव मार्गणासु नरकद्विकादिप्रकृतीनामुत्कृष्टं बन्धान्तरं भण्यते-

पणसीइसागरसयं निरयदुगस्सऽत्थि सगसुराईणं ।

साहियतेत्तेसुवही आहोरुगस्स ऊणजेठ्ठिई ॥२४८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पणसीइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघादिप्रागुक्तपणमार्गणासु नरकद्विकबन्धस्य प्रकृष्ट-
मन्तरं पञ्चाशीत्यधिकसागरोपमशतप्रमितमस्ति, ओघपरूपाणां स्थावरादिप्रकृतीनामुत्कृष्टान्तरस्य
भावना यथा कृता तथैवाऽत्राऽपि कार्या, यद्यपि पञ्चमकर्मग्रन्थाभिप्रायेण पञ्चेन्द्रियेषु नरकद्विकस्या-
बन्धकालस्त्रिपट्यधिकशतसागरोपमप्रमाणो निर्दिष्टस्तथापि एकेन्द्रियजात्यादीनामबन्धकाल इव
नरकद्विकस्य बन्धान्तरं पञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमप्रमाणं धटते, ग्रन्थान्तरेषु च तस्यान्तरं तथैव
दर्शितम्, अतो ग्रन्थान्तरमवलम्ब्यैतन्निरूपितं प्रस्तुतग्रन्थे, अतो न कश्चिद्विरोधः । 'सगसुराईण'
इत्यादि, सुरविउव्वदुग उच्चणरदुग' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानां सुरद्विकादीनां सप्तानां प्रकृतीनां
बन्धस्याऽन्तरं प्रकृततया साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममानमस्ति, भावना पुनरित्थं भावनीया-
कश्चित् सप्तमनरकामिमुखस्तिर्यङ्मनुष्यो वा स्वभवान्ते सप्तमनरकप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति, सप्तम-
नरके चोत्पद्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वायुःस्थितिपर्यन्तं तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदे-

नन्तरं सप्तमनरकादुद्भूत्य तिर्यग्भवे प्रथमान्तमुद्भूतेऽपि तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीर्वध्नाति तस्मात्ता-
वत्कालं देवप्रायोग्या मनुष्यप्रायोग्याश्च प्रकृतये उच्यैर्गोत्रं च नैव वध्यन्ते, अत उक्तप्रमाणमन्तरं
प्राप्यते, अत्र वैक्रियद्विकस्याऽन्तरप्ररूपणायामुत्तरभवसत्कमेवाऽन्तमुद्भूतं ग्राह्यम्, न पूर्वभवसत्कम्, तत्र
तस्य वध्यमानत्वात् । 'आहारदुग्' इत्यादि, मार्गणास्वास्वाहारकद्विकबन्धस्य देशोनस्वोत्कृष्टकाय-
स्थितिप्रमाणं ज्येष्ठमन्तरं वर्तते, तद्यथा—प्रस्तुतमार्गणासु वर्तमानः कश्चिज्जीवो शीघ्रातिशीघ्रं यथा-
वसरं संयमं सम्प्राप्याऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानक आहारकद्विकं वध्नाति तदूर्ध्वं तदधस्तनेषु गुणस्थान-
केषु गत्वा देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिं यावन्न वध्नाति, तत्पश्चात्स्वकायस्थितेर्द्विचरमान्तमुद्भूतं पुन-
रपि सप्तमगुणस्थानं समुपलभ्य तद्वन्धं प्रकुरुते, इत्थमीदृशमन्तरं प्राप्यते । तथा ज्ञानावरण-
पञ्चकदर्शनावरणपट्टकसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपधात-
निर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननागनश्रौधवत्श्रेणौ दीर्घाबन्ध-
कालेन तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभविहायोगति-
त्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासरूपाणां पञ्चविंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मध्ये
कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन कासाञ्चिच्च प्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्येति बन्धस्य गुर्वन्तरं
'सेसासु सुदुत्तरो' इत्यादिनाऽन्तमुद्भूतप्रमाणं बोद्धव्यम् ॥२४८॥

साम्प्रतं वेदमार्गणाभूतरप्रकृतिबन्धस्याऽन्तरं चिन्तयन्नादौ तावत्स्त्रीवेदमार्गणायामाह—

थीअ पणवण्णपलिआ होअइ मिच्छाइएगतीसाए ।

देसूणाऽअम्महिआ उण वारसमुहुमाइगाण भवे ॥२४९॥

मज्झऽट्ठकसायाण ओधव्व हवेज्ज ऊणपल्लतिग ।

पचण्ह णराईण आहारदुग्गस्स ऊणजेठ्ठिई ॥२५०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'थीअ' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां 'मि-छ थीणद्वितिगमणचउगथीणपुमा । सघ-
यणागिइपणग दुह्गतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरएगिदि' इति संग्रहगाथाशकलेषु
भाषितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनपञ्च-
पञ्चाशत्पण्योपमप्रमाणं भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानया पञ्चपञ्चाशत्पण्योपमप्रमाणायुष्कया
कयाचिद् देव्या मिथ्यात्वाद्वाद्यन्तरे सम्यक्त्वावस्थायां भवप्रथमान्तिमान्तमुद्भूतद्वयन्यूनपञ्चपञ्चा-
शत्पण्योपमकालं यावत् प्रकृतीनामासामबन्धात् । 'अअम्महिआ' इत्यादि, 'सुहमतिगविगलाणिरयसुर-
विअव्वदुग' इति संग्रहगाथांशेषूक्तानां सूक्ष्मत्रिकप्रभृतीनां द्वादशप्रकृतीनां बन्धसम्बन्धिगुरुभूतम-
न्तरं साधिकपञ्चपञ्चाशत्पण्योपमप्रमाणं भवति, भावना पुनरेवम्—एतन्मार्गणागता काचित् तिरश्ची
मानुषी वा देवसत्कमायुर्वध्नाति ततश्चरमेऽन्तमुद्भूतं तस्या देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात् सूक्ष्मत्रिक-
त्रिकलत्रिकनरकद्विकप्रकृतीर्न वध्नाति सा ततश्च मृत्वा देवीतया संजाता सती देवद्विकं वैक्रियद्विकमुत्कृष्ट-

प्रकृतीश्च पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमलक्षणां स्योत्कृष्टायुःस्थितिं यावन्न वध्नाति ततश्च च्युत्वा पुनरपि मनुष्य-
भवे तिर्यग्भवे वा स्त्रीत्वेनोत्पन्नाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत्ता एव द्वादशप्रकृतीन् वध्नाति, अतः उक्तप्रमाण-
मन्तरं सम्पन्नं भवति । 'मज्झइकसायाणं' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्या-
नावरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यमकपायाष्टकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमोघवद् भवति, तच्च देशोनपूर्व-
कोटिर्वर्षप्रमाणं ज्ञेयम् । 'ऊणपल्लतिगं' इत्यादि, 'गरदुगवइरुलुवगाणि ॥ उरल' इति मनुष्य-
द्विकादिपञ्चप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं देशोनपल्योपमत्रयप्रमितं भवति, मार्गणायामस्यां
वर्तमानया पल्योपमत्रयायुष्मत्या युगलिन्याऽपर्याप्तावस्थासत्कमन्तर्मुहूर्तकालं विहाय स्वायुःसमाप्तिं
यावत् प्रकृतीनामासामवध्यमानत्वात् । 'आहारदुगस्स' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धसत्कं
गुर्वन्तरं देशोनस्योत्कृष्टकायस्थितिमानं वर्तते, तदित्यम्-स्त्रीवेदमार्गणायाः प्रकृष्टा कायस्थितिः
पल्योपमश्चतुष्टयप्रमिताऽस्ति, एतन्मार्गणावतिनी काचिन्मानुषी योग्यकाले संयमं समुपलभ्य
सप्तमगुणस्थानके प्रकृतिद्वयमेतद् वध्नाति, ततस्तदधस्तनगुणस्थानकेषु गता सती न वध्नाति,
यावदन्तिमाऽन्तर्मुहूर्तं मार्गणाया अस्या अवतिष्ठते, अन्तिमाऽन्तर्मुहूर्तं च पुनरपि सप्तमगुणस्थानकं
लब्ध्वा वध्नाति, तदाऽत्रेदगन्तरं प्राप्तं भवति । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्टकसंज्वलनचतुष्कमय-
जुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलवूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशद्भ्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नश्च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, कासाञ्चित्प्रकृतीनां निरन्तरं वध्यमानत्वात्
कासाञ्चित्प्रकृतीनां तु पुनर्वन्धात्प्राग् मार्गणाया अस्या विच्छेदात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादि-
युगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानमुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपरा-
घातोच्छ्वासौचैर्गोत्ररूपाणां षड्विंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य 'सेसाहु सुहुत्तो' इत्यादिगाथातो
गुर्वन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमधिगम्यम्, घटना त्वत्र परावर्तमानत्वमाश्रित्य स्वयं समूहनीया । २४९-५०॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायां तदभिधीयते

पुरिसे तेत्तीसाए तइअकसायाइगाण ओघठ्व ।

जलहितिवट्ठिजुअसयं चउइसण्ह तिरियाईणं । २५१॥

अव्वहिय पल्लतिगं गराइपणगरस्स चउसुराईणं ।

साहियतेत्तीसुवही आहारदुगस्स ऊणजेठ्ठिई ॥ २५२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पुरिसे' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां 'तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छं धीणद्धितिगमण-
चउगधीणपुमा । सवयणागिइपणाग दुइगतिगं कुल्लगई णीव' मित्यादि गाथांशेषु भणितानां प्रत्या-
ख्यानावरणचतुष्कादित्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरमोघवदवसेयम्, तदेवम् प्रत्याख्याना-
वरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणकपायाऽष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिर्वर्षाणि, शेषाणां मिध्या-
त्वमोदनीयप्रभृतिपञ्चविंशतिप्रकृतीनां द्वात्रिंशदभ्यधिकागरोपमशतम्, भावनौचवद् भावनीया ।

‘अलङ्घि’ इत्यादि, ‘तिरियदुग्जोआयवथावरएगिदिसुद्धमतिगविगला ॥ गिरय’ इत्यादि संग्रहगाथा-
 शकलोक्तानां तिर्यग्द्विकादिचतुर्दशप्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं त्रिपट्यधिकशतसागरोपम-
 प्रमितं वर्तते, तदपि व्याख्यानतो विशेषप्रतिपतिरितिन्यायान्मूलकारेणाऽनुक्तमपि सातिरेकपल्यो-
 पमचतुष्टयेनाऽधिकं ग्राह्यम्, भावना पुनरेवम्—प्रकृतमार्गणावर्ती यः कश्चित्प्राणी त्रिपल्योपमायुष्केषु
 युगलधार्मिकेषु समुत्पन्नस्तत्र चैतास्तिर्यग्द्विकादिचतुर्दशप्रकृतीर्न बध्नाति देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव
 बन्धकत्वाद् युगलधर्मिणाम्, ततः पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमासाद्य पल्योपमस्थितिकेषु देवेषूत्पन्नस्त-
 त्रापि सम्यक्त्वप्रत्ययादेताः प्रकृतीर्न बध्नाति, ततोऽपरिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य दीक्षामनुपाल्य-
 नवमग्रैवेयके सुर एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिकः समुत्पन्नः, ततोऽन्तर्मुहूर्तोर्ध्वं मिथ्यात्वं जगाम, तत्र
 च वर्तमानो मिथ्यादृष्टिरपि भवप्रत्ययादेवैताः प्रकृतीर्न बध्नाति, तदनु पर्यन्तान्तर्मुहूर्ते सम्य-
 गदर्शनमवाप्याऽप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य सर्वविरतिं परिपाल्य तथैव गृहीतसम्यक्त्वो
 गारत्रयमच्युतगमनेन पट्पट्टिसागरोपमाणि पूरयित्वा मनुष्येष्वन्तर्मुहूर्तं सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय
 तदन्तरितं द्वितीयपट्पट्टिसागरप्रमाणं सम्यगदर्शनकालं चारद्वयं विजयादिगमनेन पूरयति, तं जीवमा-
 श्रित्य प्रकृतमन्तरं प्राप्तं भवति । ‘अव्यभिचयं’ इत्यादि, मनुष्यद्विकप्रथमसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गौ-
 दारिकशरीररूपस्य नरादिपञ्चकस्य बन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं साधिकपल्योपमत्रयप्रमितं भवति,
 तदित्यम्—पुरुषवेदमार्गणायां वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जन्तुः स्वायुषस्तृतीयभागे उत्कृष्ट-
 स्थितिकं युगलिकसत्कमायुर्वद्ध्वा वेदकं सम्यक्त्वमासादयति ततः क्षायिकसम्यक्त्वं च, तदा तस्य
 मनुष्यपञ्चकबन्धस्य विच्छेदभावेन स्वायुःसमाप्तिं यावत्तद्व्यन्धविरहः, ततश्च मृत्वा युगलि-
 कत्वेनोत्पन्नस्य तस्य त्रिपल्योपमप्रमितस्वायुःपर्यन्तमपि तद्व्यन्धविरहः, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्ध-
 कत्वात्तस्य, तदनन्तरं देवलोके जातः सन् प्रकृतिपञ्चकमेतद् बध्नाति तस्मादीदृशमन्तरं संप्राप्तं
 भवति । ‘चउसुरार्हण’मित्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य
 बन्धमभ्यन्वि सुर्वन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, यदना पुनरेवम्—एतन्मार्गणावर्ती कश्चिन्म-
 नुष्य उपगमश्रेणिमारूढ उक्तप्रकृतिचतुष्कस्याग्रन्धं कृत्वा पुनर्बन्धात्प्राक् तत्रैव च पञ्चत्वं प्राप्या-
 ऽनुत्तरदेवभवे जायते तदोपशमश्रेणौ बन्धविच्छेदादनन्तरमनुत्तरदेवभवे च तस्य प्रकृतीनामासाम-
 बन्धकत्वादुपशमश्रेणिगताऽबन्धमत्काऽन्तर्मुहूर्तस्यधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितमुत्कृष्टतयाऽन्तरमुप-
 लभ्यते । “आहारदुग्गस्स” इत्यादि, आहारकद्विकबन्धस्य प्रकृष्टतोऽन्तरं देशोनसागरोपमशत-
 पृथक्त्वरूपस्योत्कृष्टकायस्थितिस्वरूपमवसेयम्, भावना पुनरत्रैवरीत्या कार्या—पुरुषवेदमार्गणायां
 वर्तमानो मनुष्यो यथायोगं शीघ्रतया सप्तमगुणस्थानकं संप्राप्याहारकद्विकं च तत्र पद्ध्वा तद्ध्वं
 तदधस्तनगुणस्थानेषु गच्छति, तत्र च वर्तमानः स तावत्कालमाहारकद्विकं न बध्नाति मार्गणाया
 अस्याश्चरमान्तर्मुहूर्ते पुनरपि स सप्तमगुणस्थानकमवाप्य तद्बध्नाति तदा देशोनसागरोपमशतपृथक्त्व-

प्रमाणमन्तरं लभ्यते, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकस्वरूपाणामष्टाद-
शध्रुवबन्धिप्रकृतीनां सततं बन्धतो विद्यमानत्वेनाऽन्तरं नास्ति, नामनवध्रुवबन्धिनिद्राद्विक्रमयजुप्सा-
रूपाणां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्र-
संस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीतिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशत्य-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपं विज्ञेयम् ।
शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननाम्नः कामाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च श्रेणावबन्धानन्तरं पुरुषवेदोदय-
चरमसमये कालकरणेन कामाञ्चिदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धकालेनाऽन्त-
र्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टमन्तरमवमातव्यम् ॥ २५०-१ ॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामुत्कृष्टमन्तरमाह

णपुमे तेत्तोमुवही हवेज्ज मिच्छाइअट्ठोसाए ।

देसूणाऽअहिया उण होइ णवण्हायवाईण ॥ २५२ ॥

देसूणपुव्वकोडो मज्झाऽट्ठकसायतिवइराईण ।

ओधव्वाहारजुगलणवणिरयाईण बोद्धव्व ॥ २५३ ॥

(प्रे०) "णपुमे" इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां 'मिच्छं थीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा ।
सघयणागिइपणां दुइगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुजोअ' इति संग्रहगाथावयवेषु प्रोक्तानाम-
ष्टाविंशतिमिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमित-
मस्ति, सप्तमनरके केनचिज्जीवेन प्रथमचरमाऽन्तर्मुहूर्तगतमिथ्यात्वद्वयाऽन्तरे सम्यक्त्वावस्थायां
तावत्कालं प्रकृतीनामासामग्र्यमानत्वात् । "अ०अहिया" इत्यादि, 'आयवथावरणदिदुसुहमतिग-
विगणा' इति संग्रहगाथाऽवयवेषूपूक्तानामातपादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिक-
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, घटना पुनरेवम्-नपुंसकवेदमार्गणायां वर्तमानस्य कस्यचिद् तिरिथो
मनुष्यस्य वा सप्तमनरकमवात् पूर्वं चरमान्तर्मुहूर्ते नरकप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकत्वेनाऽऽतपादीनां
नवानां प्रकृतीनां बन्धो न संभवति, सोऽपि ततो मृत्वा सप्तमनरके जातः सन् त्रयस्त्रिंशदब्धिप्र-
मितस्वायुःसमार्तिं यावन्नैताः प्रकृतीर्वध्नाति, सप्तमनरकान्निर्गत्य च तिर्यग्भवे उत्पन्नोऽसावाधे-
ऽन्तर्मुहूर्तेऽपि न वध्नाति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्यते । 'देसूण' इत्यादि, अप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकरूपाणामेकादशप्रकृतीनां बन्धस्य
प्रकृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षमानं बोद्धव्यम् । घटना पुनरत्र कपायाष्टकस्य पुरुषवेदमार्गणावत्
कर्तव्या, अत्र युगलिकानामप्रवेशेन प्रथमसंहननौदारिकद्विकप्रकृतीनां भावना तु द्वितीयकपायवद् देश-
विरत्यादिकालेन कर्मभूमिजतिर्यग्मनुष्यानाश्रित्य कर्तव्या । "ओधव्व" इत्यादि, आहारकद्विकस्य
'णिरयसुरविउव्वदुग उच्चणरदुग' इत्यनेन कथितानां नरकद्विकादीनां नवानां प्रकृतीनां च बन्धस्य
प्रकृष्टमन्तरमोघवद् बोध्यम्, तदेवम्-आहारकद्विकस्य देशोनापार्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, नरकद्विकदेव-

द्विक्रवैक्रियद्विकप्रकृतीनामसङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, उच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विकप्रकृतीनां चाऽसंख्येय-
लोकाकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणम्, भावना पुनरत्रौघवद् विधेया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-
पट्कसंज्वलनचतुष्कमयजुग्मातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपवातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चक-
रूपाणामेकत्रिंशद्भुवन्ध्विप्रकृतीनां बन्धमत्कमन्तरं नास्ति, मार्गणायामस्यां जघन्यान्तरप्रस्तावे
तासामन्तरस्य निषिद्धत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्र-
संस्थानसुखगतिवसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्रामजिननामरूपाणां षड्विंशत्यध्रुव-
न्धिप्रकृतीनां बन्धस्य पुर्वन्तरं 'सेमासु सुकुन्तो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तात्मकं विज्ञेयम् । जिननाम्न इय-
त्प्रमाणमन्तरं नरकाभिमुखस्य मिथ्यात्वावस्थायामबन्धं प्रतीत्याऽत्र वेदयितव्यम्, शेषप्रकृतीनां तु
परावर्तमानत्वमाश्रित्य ॥२५२-२५३॥

अथ मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासूत्तरप्रकृतीनां बन्धमत्कमुत्कृष्टमन्तरमभिधित्सुगद्

मञ्जऽद्वकसायाण ओधव्व तिणाणओहिसम्मेसु ।

पंचण्ह णराईणं कोडी पुट्वाण णायव्व ॥२५४॥

देवविउव्वाहारगडुगाण तेत्तीससागराऽम्भिया ।

उअ जेढा कायठिई देसूणाहारजुगलस्स ॥२५५॥

(प्र०) "मञ्ज" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनमभ्यक्तवौचलक्षणासु पञ्च-
मार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यकपायाष्टकस्य बन्धसत्कं गुर्वन्त-
रमोववदधिगन्तव्यम् । तत्तु देशोनपूर्वकोटिर्वर्षरूपं ज्ञातव्यम् । 'पंचण्ह' इत्यादि, अधिकृतमार्गणासु
'णरदुगवडूरुलुवगाणि ॥ उरल' इति संग्रहमाथावयवोक्तस्य मनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकेस्य बन्धमत्कं
ज्येष्ठमन्तरं पूर्वकोटिर्वर्षप्रमाणमस्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानस्य पूर्वकोटिर्वर्षाद्युम्मतः सम्यग्दृष्टिमनुष्य-
स्य प्रथमत आरम्य यावदायुःपूर्णतां देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन प्रकृतीनामासामबन्धात् ।
"देव" इत्यादि, देवद्विक्रवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धस्य
प्रकृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितं विधत्ते, तदेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमानः कश्चिदुपश-
मश्रेणेरारोहकोऽपूर्वकरणगुणस्थानकषष्ठभागे प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदमाधायोपशमश्रेणेरन्ततो
गत्वा पुनः प्रपतन्नेतत्प्रकृतिबन्धात्प्राक्समये कालं कृत्वाऽनुत्तरेपूत्पन्नः सन् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्र-
माणस्वोत्कृष्टायुःसमाप्तिं यावन्नैताः प्रकृतीर्विघ्नाति ततश्च च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पद्य प्रथमसमयतः
पुनर्देवद्विक्रवैक्रियद्विकयोर्वन्धं करोति, आहारकद्विकस्य तु पूर्वकोट्यायुष्कप्रान्ते संयमं प्राप्य बन्धं
करोति, इत्थं तं जीवमाश्रित्यैतावदन्तरमुपलभ्यते । "उअ" इत्यादिना आहारकद्विकत्रिपथे मतान्तरं
दर्शयति, तच्चैवम्—मतिज्ञानादिमार्गणासु मतान्तेरेणाऽऽहारकद्विकबन्धसम्बन्धि प्रकृष्टमन्तरं देशोनं
साधिकषड्पष्टिसागरोपमप्रमितमतिज्ञानादिमार्गणाप्रायोग्यप्रकृष्टकायस्थितिप्रमाणं विज्ञेयम्, मार्ग-
णास्वासु वर्तमानस्य कस्यचिज्जीवस्याहारकद्विकबन्धप्रायोग्यं पौर्व्यं पाश्चात्यं चान्तर्मुहूर्तकालं

मुक्त्वा मध्यकाले प्राधान्येनाविरतसम्यक्त्वावस्थापामवस्थानेनाहारकद्विकवन्धाभावात् । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयशुभुप्सावर्णचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्वयागुरुलघूपधातनिर्माणाऽन्तरापञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनीयद्विकहास्यादिधुगलद्वयपुरुष-वेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वास-तीर्थकृन्नामोच्चैर्गोत्रस्वरूपाणां सप्तविंशत्यधुवन्धिप्रकृतीनां च बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसास्तु सुदुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम् । भावना पुनरत्र यथायोगं ध्रुववन्धिनीनां जिननाम्नश्चोपशमश्रेणिमाश्रित्य, शेषाधुवन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेन वध्यमानत्वमाश्रित्य ज्ञातव्या ।

॥२५४-५॥

अथाऽज्ञानादिमार्गणास्त्रनरप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं दर्शयितुमना आह

देसूणं पल्लतिग अण्णाणदुगे अभवियमिच्छेसुं ।

सोलसणपुमाईणं तहा उरालदुगवइराण ॥२५६॥

तिरियाइतिगस्स अहियइगतोमुदहो णवायवाईणं ।

साहियतेत्तोमुदहो णवणिरयाईण ओधव्व ॥२५७॥

(प्रे०) “देसूणं” इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिच्छात्वलक्षणे मार्गणाचतुष्टये ‘णपुमा । संवयणागिइपणं दुदुगतिग कुल्लगई णीअ ॥ इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां षोडशानां प्रकृतीनां तथोदा-
रिक्द्विकवज्जर्षमनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमन्तरं प्रकृष्टतो देशोनं पण्योपमत्रयम्, मार्गणास्वासु वर्तमानेन धुगलिकेन प्रकृतीनामासामपर्याप्तिवस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तन्यूनपण्योपमत्रयकालपर्यन्तमवध्यमानत्वात्, अपर्याप्तावस्थायां तु ताः प्रकृतयोऽपि दध्यन्ते, अतोऽपर्याप्तावस्थासत्काऽन्तर्मुहूर्तस्य वर्जनं कृतम् । “तिरियाइ” इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिकैकत्रिंशत्सागरोपमाणि, तदित्थम्—मार्गणास्वासु वर्तमानो वद्वैकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिकदेवायुष्कः कश्चिन्मनुष्यः स्वायुषोऽन्तिमेऽन्तर्मुहूर्ते तिर्यग्द्विकोद्योतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धव्यावृत्तिं विधाय देवप्रायोग्यप्रकृतीर्वध्नाति ततश्च कालं कृत्वा नवमग्रैवेयके सुरतया जातः सन्नेकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वायुरुत्कृष्टस्थितिपर्यन्तं मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तिर्यग्द्विकादिप्रकृतित्रयं न वध्नाति, ततोऽपि प्रच्युत्य मनुष्यभवे चोत्पद्य प्रथमाऽन्तर्मुहूर्ते नैतत्प्रकृतित्रयं वध्नाति, अतोऽनया रीत्याऽभिहितप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति । “णवायवाईणं” इत्यादि, आयवथावरणगिदि-सुद्धमतिगविगळा । इति संग्रहगाथाशकलेषु भणितानामातपादीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, मार्गणास्वासु वर्तमानेन केनचिज्जीवेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालपर्यन्तं तथा सप्तमनरकभवात्पौर्व्ये पाश्चात्ये चाऽन्तर्मुहूर्ते प्रकृतीनामाभामवध्यमानत्वात् । “णवणिरयाईण” इत्यादि, ‘णिरयसुरविउव्वदुग वचणरदुग’ इति संग्रहगाथांशेषु कथितानां नरकद्विकप्रभृतीनां नवानां प्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमोववदवसेयम्, तद्यथा—नरक-

द्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां पण्णां प्रकृतीनामसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य चाऽसंख्येयलोकाऽऽकाशप्रदेशप्रमितसमयप्रमाणमस्ति, अत्र भावनौधवत्कार्या । शेषाणां ज्ञानावरणादिसप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्धान्तरं नास्ति, मिथ्यात्वस्य द्विर्वन्धाभावेन शेषाणां सततं वध्यमानत्वात् । शेषवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषस्त्रीवेदद्वयपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासरूपाणां च षड्विंशत्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं 'सेसासु सुदुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसेयम्, परावर्तमानत्वेन वध्यमानत्वात् ॥२५६॥ ७॥

इदानीमयत्तमार्गणायामचक्षुर्मव्यभार्गणयोश्चोत्तरप्रकृतीनां वन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमुपदर्शयन्नाह

अजए तेत्तीसुदहो जेयं मिच्छाहअद्वीसाए ।

देसूणाऽवमहिया उए होइ णवण्हायवाईणं ॥२५८॥

बारसणिरवाईणं ओधव्व भवे अचक्खुभविथेसुं ।

आहारदुगस्स तहा तइअकसायाइसत्तवण्णाए ॥२५९॥ (गीतिः)

(प्रे०) “अजए” इत्यादि, असंयममार्गणायाम् ‘मिच्छ’ धीणद्वितिगमणचञ्जधीणपुसा । संघयणागिइपणं दुइगतिग कुखगई णीअं ॥ तिरिचदुगुजोअ’ इति संग्रहगाथावयवेषु प्रतिपादितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां प्रकृष्टं वन्धसत्कमन्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञेयम्, एतन्मार्गणावर्तिना सप्तमनरकगतेन केनचिजन्तुनाऽपर्याप्तावस्थामतिक्रम्य पर्याप्तावस्थायां लब्धसम्यक्त्वेन भवद्विचरमान्तर्मुहूर्तयावत्सम्यक्त्वित्यवस्थानेन प्रकृतीनामासां तावत्कालमवध्यमानत्वात् । “अवमहिया” इत्यादि, ‘आयवथावरणदिदिसुइमतिगविगळा’ इति संग्रहगाथांशेषु भाषितानामातपनामकर्मादीनां नवानां प्रकृतीनां वन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञातव्यम्, भावना पुनरत्र मत्तज्ज्ञानादिमार्गणावत् कार्या । “बारस” इत्यादि, नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य वैक्रियपटकस्य वन्धसम्बन्धि सुर्वन्तरं प्रकृतमार्गणायामसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमितम्, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणसमयप्रमितम्, वज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकद्विकलक्षणप्रकृतित्रयस्य च साधिकपण्योपमत्रयप्रमाणमस्ति, भावना पुनरत्रौधवद् विभावनीया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायमयजुगुप्सातैजसकर्मणशीरीरद्वयवर्णचतुष्काऽशुरुलघूपधातनिर्भाणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्धस्याऽन्तरं नास्ति, अनवरतं वध्यमानत्वादत्र तासाम् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामलक्षणानां शेषषड्विंशत्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां ‘सेसासु सुदुत्ततो’ इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तरूपं वन्धसत्कं प्रकृष्टमन्तरं विज्ञेयम्, इह जिननाम्नो वन्धान्तरं नपुंसकमार्गणायां दर्शितप्रकारेण

ज्ञेयम् । “अचक्षुः” इत्यादि, “ओधन्व भवे” इति पदद्वयमत्रापि धण्डालालान्यायेन सम्बन्धनीयम् । अचक्षुर्भोग्यमार्गणयोराहारकद्विकस्य ‘तइअकसाया’ । दुइअकसाया मिच्छा यीणद्धितिगमण-
चउगधीणपुमा । सधयणागिइपणां दुइगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआययथावरएगिदिसुहमतिग-
विगळा । णिरयसुरविउवदुग उच्चणरदुगवइरुरलुवंगाणि ॥ उरल” इति संग्रहगाथाशकलेषु कथितानां
सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनां चेत्येकोनपष्टिप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरमोधवद् भवति, तदेवम्—मिथ्यात्व-
मोहनीयप्रकृतेरारतो नीचैर्गोत्रकर्मपर्यन्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां द्वाविंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणम्,
मध्यकपायाष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिर्वाणि, वैक्रियपट्कस्याऽसंख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, तिर्यग्द्वि-
कोद्योतप्रकृतीनां त्रिपष्ट्यधिकमागरोपमशतम्, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशप्रदे-
शप्रमाणसमयमितम्, औदारिकद्विकवर्ज्यभनागचसहननप्रकृतीनां साधिकपञ्चोपमत्रयम्, आतपादि-
प्रकृतिनयकस्य पञ्चाशीन्यधिकमागरोपमशतम्, आहारकद्विकस्य चाऽपार्थपुद्गलपरावर्तमानम् । भाव-
ना पुनरिहोध्यवद् विधेया । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजमकर्मणश-
रीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनी-
यद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभलगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभा-
ऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननाभरूपाणां पड्विंशत्यध्रुववन्धिनीनां च प्रकृष्टं बन्धसत्कमन्तरं
‘सेसा सुहुत्तो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसेयम्, भावना प्राग्वद् भावनीया । इदमत्राऽवधे-
यम्—अनयोर्मार्गणयोः सर्वासां प्रकृतीनामन्तरस्य सर्वथौधवत्कथने कोऽपि दोषो नास्ति, तथाऽपि
‘सेसा सुहुत्तो’ इत्यादिना शेषप्रकृतीनामत्रान्तर्मुहूर्तप्रमाणान्तरस्य प्राप्यमाणत्वेनैकोनपष्टिप्रकृतीनामेव
प्रकृष्टमन्तरमोधवदतिदिष्टमिति ॥२५८-९॥

साम्प्रतं लेख्यामार्गणासूत्रप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं प्रदर्शयन्नादौ तावत्कृष्णलेश्यामार्ग-
णाय तदाह

किण्हाअ अट्ठवीसामिच्छाईण तह णरकुगुज्जाणं ।
ऊणा गुरकायठिई विउवदुगस्स जलहिबुवीसा ॥२६०॥
किण्हाए णोलाए हवेज्ज सुरकुगतिआयवाईणं ।
पल्लासखियभागो भणन्ति अण्णे सुहुत्ततो ॥२६१॥

(प्रे०) “किण्हाअ” इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायाम् ‘मिच्छं यीणद्धितिगमणचउगधीणपुमा ।
सधयणागिइपणां दुइगतिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोअ’ इति संग्रहगाथाशकलेषु दितानां मिथ्या-
त्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनाञ्च बन्धसत्कं सुर्वन्तरं मार्ग-
णाय अस्या देशोनगुरुकायस्थितिरस्ति, इदञ्चान्तरमुत्कृष्टस्थितिकसप्तमनारकमाश्रित्य ज्ञेयम्
भावनाऽपि सप्तमनरकमार्गणावत्कार्या । “विउवदुगस्स” इत्यादि, वैक्रियद्विकस्य बन्धसत्कं प्रकृ-
ष्टमन्तरं द्वाविंशतिसागरोपमाणि, तदित्यम्—पञ्च नरकं जिगमिषुः स्वायुषः प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्ते मार्गणा-

यामस्यां प्रविष्टः कश्चित्तिर्यङ् मनुष्यो वा वैक्रियद्विकं वध्नाति. ततश्च कालं कृत्वा पृष्ठनरके जातस्य तस्यैतत्प्रकृतिद्वयबन्धो न जायते यावद् द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणस्वायुषश्चरममन्तर्मुहूर्तमवतिष्ठते तस्मिन्वाऽन्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वमवाप्य नरकाभिर्गतोऽसौ मनुष्यत्वेनोत्पद्यते तदाऽऽद्यसमयादेव वैक्रियद्विकं वध्नाति, तस्मात्पृष्ठनरकजीवमाश्रित्य मार्गणायामेतस्यामुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्यते । न च सप्तमनारकमाश्रित्य निरुक्तप्रकृतिद्वयस्यान्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणं कथं नोक्तम्, उत्कृष्टान्तरस्य प्रस्तावादिति वाच्यम्, सप्तमनरकादुद्धृतस्य सम्यक्त्वाभावेनाऽपर्याप्तावस्थायां वैक्रियद्विकस्यावध्यमानत्वात्पर्याप्तावस्थायां बन्धभावेऽपि ततः प्रागेव मार्गणाया विच्छेदाच्च । “किण्हाए” इत्यादि, कृष्णनीललेश्यामार्गणाद्वये सुरद्विकाऽऽतपस्थावरैकैन्द्रियजातिरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्—अनयोर्मार्गणयोस्तिर्यङ् मनुष्यो वा सुरद्विकं वद्ध्वा ततश्च कालं कृत्वा भवनपतिषु व्यन्तरेषु वा देवत्वेन जायते, तदा तत्र भवप्रत्ययेन तावत्कालं सुरद्विकं नैव वध्नाति ततः पुनः सम्यक्त्वेन सह च्युत्वा मनुष्यत्वेन समुत्पद्यते तदा तद्बन्धः पुनः प्रारभत इत्येवं रीत्योक्तमानमन्तरं सुरद्विकस्योपलभ्यते । एतन्मार्गणाद्वये वर्तमानो भवनपतिदेवो व्यन्तरदेवो वा स्वोत्पत्तेरन्तर्मुहूर्तादनु सम्यक्त्वमवाप्याऽऽतपस्थावरैकैन्द्रियजातिरूपं प्रकृतित्रयं न वध्नाति, भवान्तिमाऽन्तर्मुहूर्तं भूयोऽपि मिथ्यात्वमवाप्य वध्नाति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरमस्य प्रकृतित्रयस्योपलब्धं भवति । न च भवनपतिव्यन्तरदेवेष्वधिकेस्थितेर्लभेऽपि प्रकृतप्रकृतिबन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागादधिकं कथं नोक्तमिति वाच्यम्, अशुभलेश्यात्रतां पल्योपमाऽसंख्येयभागादधिकस्थितिकेष्वनुत्पादात् । ‘भणान्ति’ इत्यादि, अन्ये पुनः प्रकृतसुरद्विकप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वदन्ति, यतोऽन्ये देवेषु पर्याप्तावस्थायामशुभलेश्यां न स्वीकुर्वन्ति, अतोऽन्येषां मतेन तिर्यग्जीवं मनुष्यं वाऽऽश्रित्य द्वयोर्बन्धयोरन्तरालेऽन्तर्मुहूर्तमानमेवाऽन्तरमुत्कृष्टतया प्राप्यते । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्यान्तरं नास्ति मार्गणायामस्यां तासामनवरतं बध्यमानत्वात् । जिननाम्नोऽप्यन्तरं नास्ति जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वात् । वेदनीयद्विकहास्यादिद्युगलद्वयपुरुषवेदनरकगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभना—राचसंहनननरकाभुपूर्वासुखगतित्रसदशकक्षमत्रिकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासरूपाणां षट्त्रिंशद्भ्रुवबन्धिशेषप्रकृतीनां बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरं कृष्णायां ‘सेसासु सुहुतंतो’ इत्यादिनाऽन्तर्मुहूर्तरूपमवसतिव्यम् ॥२६०-१॥

गीलाए काऊज य हवेज्ज देसूणजेठुकायठिई ।

वेज्जवुगस्स तहा मिच्छाईगअठ्ठीसाए ॥२६२॥

किण्वं जाणियत्वं काऊए तिण्ह आयवाईणं
खइअणिरयजेद्धुइमाणं नेय सुरडुगरा ॥२६३॥

(प्रे०) 'णीलाए' इत्यादि, नीललेख्यामार्गणायां कापोतलेख्यामार्गणायां च वैक्रियद्विकस्य तथा, 'मिच्छ' थीणद्धिनिगमणचउगथीणपुमा । सवयणागिइयणम दुहगतियं कुल्लगई णीअ ॥ तिरियदु-
गुजोअ' इति संग्रहगाथाशकलेषु कथितानां मिथ्यात्वमोहनीयादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धस-
म्यन्धि गुर्वन्तरं देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति, भावना पुनरेवम्-पञ्चमनरकाभिमुखः
स्वायुषः प्रान्तेऽन्तर्मुहूर्ते नीललेख्यामार्गणायां प्राप्तप्रवेशः कश्चित् तिर्यङ्मनुष्यो वा वैक्रि-
यद्विकं वध्नाति मृत्वा चासौ पञ्चमनरक उत्पद्य पण्योपमासंख्येयभागाधिकदशसागरोपमात्मक-
स्वायुरन्तं मतान्तरेण पुनः सप्तदशसागरोपमात्मकस्वायुरन्तं यावन् नेतत्प्रकृतिद्वयं वध्नाति, तत्रैव-
सम्यक्त्वमवाप्य ततश्च च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नः सन् पुनरपि वैक्रियद्विकं वध्नाति,
अतस्तावदमन्तरमत्र प्राप्यते, कापोतलेख्यामार्गणाया तृतीयनरकस्थं जीवमाश्रित्य वैक्रियद्विक-
बन्धसत्काऽन्तरस्थैवमेव भावना विधातव्या । नीललेख्यामार्गणावती कश्चित्पञ्चमनरकजीवोऽप-
र्याप्तावस्थायां मिथ्यात्वोदयसद्भावेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृत्यष्टाविंशतिप्रकृतीर्वध्नाति, पर्याप्त-
दशायां शीघ्रं संजातसम्यग्दृष्टिः स द्विचरमान्तर्मुहूर्ते यावद् न वध्नाति, चरमाऽन्तर्मुहूर्ते च मिथ्या-
त्वमवाप्य वध्नाति अतः प्रकृतीनामासामुक्तप्रमाणमन्तरमत्रोपलब्धं भवति, एवमेव कापोतलेख्या-
मार्गणायां तृतीयनरकजीवमाश्रित्य स्वप्रायोग्यमुक्तप्रमाणमन्तरं प्रकृतीनामासा विचारणीयम्,
देशोनत्वमत्र वैक्रियद्विकापेक्षया मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टाविंशतिप्रकृतीनामधिकमवसातव्यम् । 'किण्व-
व' इत्यादि, कापोतलेख्यामार्गणायामेकोन्द्रयस्थावरातपप्रकृतित्रयस्थ बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं कृष्ण-
लेख्यामार्गणावदस्ति, तच्च पण्योपमाऽसंख्येयभागमानमिति । हेतुः पुनरत्र कृष्णलेख्यामार्गणावद्
विभावनीयः । 'खइअ' इत्यादि, सुरद्विकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं क्षायिकसम्यग्दृष्टिनरकस्य
प्रकृष्टमवस्थितिप्रमाणं ज्ञेयम् ; कथमिति चेद् उच्यते-अकृतकरणजीवः क्षयोपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा
नरकेषु नैवोत्पद्यते, प्रस्तुतलेख्यागतमिथ्यादृष्टिस्तूत्पद्यते किन्तु नरकाभिमुखः स सुरद्विकं नैव
वध्नाति, अतः क्षयोपशमसम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टेर्वाऽपेक्षया प्रकृतमन्तरं नैव प्राप्यते, तस्मात्क्षायिक-
सम्यग्दृष्टिनरकापेक्षया प्रकृतमन्तरमुपपादनीयम् तद्यथा-कश्चित्क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो भवचरम-
समयं यावद् देवद्विकं वद्ध्वा कालं च कृत्वा नरके समुत्पन्नः सन् भवप्रत्ययेन स्वोत्कृष्टकालपर्यन्तं
न वध्नाति, ततश्च च्युत्वा पुनरपि मनुष्यत्वेन जातः सन् देवद्विकबन्धं प्रारभत इत्येवंरीत्या देव-
द्विकस्य प्रकृष्टमन्तरं क्षायिकसम्यग्दृष्टिनरकप्रकृष्टमवस्थितिप्रमाणमुपलब्धं भवति । क्षायिकसम्यग्दृ-
ष्टीनामुत्पाद एकेन मतेन प्रथमं नरकं यावत्, अन्यमतेन तु तृतीयं नरकं यावद्भवति, तस्मात्तन्मत-
द्वयसंग्रहार्थमुक्तं 'खइअ' इत्यादि । नीलकापोतयोज्ञानावरणपञ्चदशनावरणपट्टकाऽप्रत्याख्याना-

वरणादिद्वादशकपायमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चक-
रूपाणामेकोनचत्वारिंशत्शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां जिननामान्थ मार्गणयोरनयोर्वन्धसत्कमन्तरं नास्ति ।
तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदनरकमनुष्यगतिद्वयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकसम-
चतुरस्रसंस्थानवज्रर्षमनाराचमंहनननरकमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकपञ्चमत्रिकास्थिराऽशुभाऽ-
यशःकीर्तिपगवातोच्छ्वासनामोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनचत्वारिंशत्शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां 'सेसासु मुहु-
त्ततो' इत्यादिना वन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरमन्तमुहूर्तप्रमाणं वेदयितव्यम् ॥२६३॥

अथ तेजःपञ्चलेश्यामार्गणाद्वये ग्राह

तेऽपऽभासु कमसो मिच्छाईराऽस्थि एगतीसाए ।

अडवीसाए तह सुरविउवडुगाणूणजेठुई ॥२६४॥

(प्रे०) 'तेऽपऽभासु' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिच्छा योणद्धितिगमणचउगयीणपुमा ।
मघयणागिदपणग दुइगतिगं कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरमिदि' इति संग्रहगार्थांशेषु
भणितानामेकत्रिंशन्मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य च
वन्धमत्कमन्तरं प्रकृतया मार्गणाया अस्या देशोनप्रकृष्टकायस्थितिरस्ति, अत्रापि मार्गणाया
अस्याः प्रकृष्टकायस्थितिः साधिकमागरोपमद्वयप्रमाणा विद्यते, एतावदन्तरमीशानदेवलोकवासिनं
देवं प्रतीत्य प्रत्येतव्यम्, तद्यथा—मार्गणायामस्या वर्तमानो मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वेशानदेव-
लोके जातः सन्नपर्याप्तदशायां मिथ्यात्वोदयमन्वेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृत्येकत्रिंशत्प्रकृतीर्वध्नाति,
पर्याप्तदशायां च शीघ्रं सम्यक्त्वं लब्ध्वा न वध्नाति, भवचरमाऽन्तमुहूर्ते च भूयोऽपि मिथ्यात्वमवाप्य
वध्नाति, अतोऽत्र साधिकमागरोपमद्वयप्रमाणमन्तरं प्राप्यते । मार्गणायामस्यां वर्तमानः कश्चि-
त्सम्यग्दृष्टिमनुष्यः भ्रमवचरममय यावत्सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणं प्रकृतिचतुष्कं वध्नाति
ततश्च मृत्युमवेत्य सातिरेकमागरोपमद्वयप्रमाणास्थितिकतपेशानदेवलोकं संजातोऽसौ स्वायुर्निष्ठां
यावन्नेव वध्नाति ततोऽपि मन्वक्त्वेन माकं च्युत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नः सन् पुनरपि तद् वध्नाति
तदा तादृशमुक्तप्रमाणमन्तरं प्राप्तं भवति । ज्ञानावगणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणादि-
द्वादशकपायमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामे-
कोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां जिननामाऽऽहारकद्विकौदारिकशरीरपराधातोच्छ्वासवादरत्रिक-
रूपाणां नवानामध्रुववन्धिप्रकृतीनां च मार्गणायामस्यामन्तरं नास्ति, कासाञ्चित्प्रकृतीनामनवरतं
वध्यमानत्वात्, कासाञ्चित्पुनर्द्विर्वन्धाभावात् । वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगति-
पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षमनाराचसहननमनुष्यानुपूर्वीशुभखगतित्रस-
स्थिरपट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणानां पञ्चविंशतिशेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्धस-
त्कमुत्कृष्टमन्तरं सेसासु मुहुत्ततो' इत्यादिनाऽन्तमुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यम् । पञ्चलेश्यामार्गणायां 'मिच्छा

धीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा । सधयणागिइपणगं दुहगतिगं कुल्लगई णीमं ॥तिरियदुमुज्जोम'इति संग्रहमा-
 धाययवेष्वभिहितानां मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृ-
 तिचतुष्कस्य च बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनाष्टादशसागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणम् ,
 मतान्तरेण देशोनदशसागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणम् , सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां परि-
 पूर्णाष्टादशसागरोपममितं दशसागरोपममितं वा ज्ञेयम् , भावना पुनरत्रैकेन मतेन सहस्रारदेवलोक-
 वासिदेवमाश्रित्यान्येन मतेन च ब्रह्मदेवलोकवासिदेवमाश्रित्य तेजोल्लेखामार्गणावत्कार्या । मिथ्यात्व-
 मोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिननामाहारकद्विकौ-
 दारिकद्विकपराघातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रसचतुष्काणां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति, तथा वेद-
 नीयद्विकदास्यादिपुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिवर्षमनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीसु-
 खगतिस्थिरपट्काऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रलक्षणां द्वाविंशतिशेषाभ्रुवबन्धिप्रकृतीनां
 बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं 'सेसासु सुहुत्ततो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तं ज्ञातव्यम् । २६४॥

अथ शुक्ललेखामार्गणायामाह

सुक्काज्जिगतीसा अयरा मिच्छाइपंचवीसाए ।

देवविउव्वुगणं वेसूणा जेठकायठिई ॥२६५॥

(प्रे०) 'सुक्का' इत्यादि, शुक्ललेखामार्गणायामां 'मिच्छं धीणद्धितिगमणचउगथीणपुमा ।
 सधयणागिइपणगं दुहगतिगं कुल्लगई णीमं ॥ इति संग्रहमाधाययवेष्वभिहितानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां
 बन्धसत्कं गुर्वन्तरं देशोनैकत्रिंशद्विधप्रमितं भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानेन प्रकृष्टाधुमता नवम-
 प्रैवेयकदेवेन प्रथमचरमाऽन्तर्मुहूर्तद्वयकालं विहायाऽन्तराले सम्यक्त्वदशायां प्रकृतीनामासामवध्य-
 मानत्वात् । 'देवविउव्व' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धसत्कमन्तरं
 देशोनान्तर्मुहूर्ताधिकत्रयस्त्रिंशदंतरप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं ज्ञेयम्, तदेवम्-एतन्मार्गणावर्ती
 कश्चिन्मनुष्यो भवप्रान्ताऽन्तर्मुहूर्तं शेषे सत्पुपशमश्रेणिमारुह्यापूर्वकरणपष्ठभागान्त एतत्प्रकृतिचतुष्टय-
 स्याऽबन्धं कृत्वोपशान्तमोहगुणस्थानकं स्पृष्ट्वा क्रमेण पतितः पुनर्बन्धप्राप्तसमये कालं कृत्वाऽनुत्तर-
 देवलोकेषु देवत्वेनोत्पद्यते, तत्रापि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितस्वाधुस्थितिं यावन्न तद् बध्नाति ततश्च
 पुनर्मनुष्यत्वेन जातोऽसौ भवप्रथमसमयादेव बध्नाति, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं प्राप्यते । अप्रत्याख्या-
 नावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कनरद्विकौदारिकद्विकप्रकृतीनां मार्गणायामस्यां बन्धस्याऽन्तरं
 नास्ति, द्विबन्धाभावात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सार्तैजसकार्मण-
 शरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्भागाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशत्शेषाभ्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, तथा
 वेदनीयद्विकदास्यादिपुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकवर्षमनाराचसंहननसमचतुरस्र-
 संस्थानसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासतीर्थकरनामोच्चैर्गोत्ररूपाणां च

त्रिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरम् 'सेसासु सुहुत्तो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तस्वरूप-
मवसेयम् ; तदप्यत्र कासाञ्चित्प्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्य कासाञ्चित्प्रकृतीनां परावर्तमानस्य-
माश्रित्य प्राग्वदुपपादनीयम् ॥२६५॥

अथ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य गुरुभूतमन्तरं प्रतिपाद्यते

मज्जसङ्कसायाणं खड्गं ओधेव होइ देसूणा ।

गुरुकायठिई जेथं सुरविउवाहारजुगलाण ॥२६६॥

(प्रे०) 'मज्ज' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्या-
वरणचतुष्कलक्षणस्य कपायाष्टकस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरमोचनं भवति, निरूपितं च तदोद्यतो
निरूपणावसरे देशोनपूर्वकोटिर्पत्रमितम्, भावनाऽपि तद्वदेव भावनीया । 'देसूणा' इत्यादि,
सुरद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्धसत्कमुत्कृष्टतोऽन्तरं देशोन-
माधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमितं भवति, उपपादनीयं चैतदनुत्तरदेवभवम-
वलम्ब्य यथागमं स्वधिया । मनुष्यपञ्चकस्यान्तरं नास्ति, पूर्वं निषिद्धत्वात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शना-
वरणपट्कसंज्ञवलनचतुष्कमयजुगुप्मतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तराय-
पञ्चकलक्षणानामेकत्रिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रिय-
जातिसमचतुरस्रसंस्थानशुभखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चै-
र्गौरूपाणां सप्तविंशतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरं 'सेसासु सुहुत्तो' इत्यादिनाऽन्त-
र्मुहूर्तप्रमाणमवसेयम्, उपपादना पुनरत्र प्राग्वद् विज्ञेया ॥२६६॥

साम्प्रतमसंज्ञिमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं कथ्यते—

अमणे गिरयाईण छण्हं हवए असंखपरिअट्टा ।

लोगा असखिया खलु होइ गरदुगुज्जगोआण ॥२६७॥

(प्रे०) 'अमणे' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां 'गिरयसुरविउवदुग' इतिसंग्रहमाथावयवेधूदि-
तानां नरकद्विकादीनां पण्णा प्रकृतीनां बन्धस्य गुर्वन्तरमसंख्येयपुद्गलपरावर्ताः, मनुष्यद्विकोच्चैर्गो-
त्रप्रकृतीनामसंख्येयलोकाकाशगतप्रदेशप्रमाणसमयप्रमाणमन्तरं भवति, उपपादनं चैतस्यात्रौघोक्तभाव-
नावत्कार्यम् । ज्ञानावरणीयप्रभृतीनां सप्तचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽन्तरं नास्ति, मार्ग-
णायामरयां संततं तासां बध्यमानत्वात् । तथा वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिजाति-
पञ्चकौदारिकद्विकसंज्ञनपट्कसंस्थानपट्कतिर्यगानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोधोत-
पराघातोच्छ्वासनीचैर्गौरूपाणां सप्तपञ्चाशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुनर्बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं
'सेसासु सुहुत्तो' इत्यादितोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम्, कासाञ्चित्प्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वात् कासा-
ञ्चित्प्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेन बध्यमानत्वात् ॥२६७॥

इदानीमाहारकमार्गणायामुत्तरप्रकृतिवन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह

आहारे पणचत्तातइअकसायाइतिवइराईणं ।

ओधन्वूणगुरुठिई आहारकुगणिरयाइणवमाणं ॥२६८॥(गीतिः)

(प्रे०) “आहार” इत्यादि, आहारकमार्गणायां ‘तइअकसाया ॥ दुइअकसाया मिच्छ धीणद्धि-
तिगमणचउगथीणपुमा । सघयणागिइणणग दुइगणिग कुखगई णीअ ॥ तिरियदुगुज्जोआयवथावरणमिदि-
सुइमतिगविगला ।’ इति संग्रहगाथावयवेषूक्तानां प्रत्याख्यानानवरणचतुष्कादिपञ्चवत्वारिंशत्प्रकृतीनां
वर्चस्पभनाराचसंहननौदारिकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य च बन्धसत्कं गुर्वन्तरमोधवद् वेदयितव्यम् ,
तदेवम्—मध्यमकपायाष्टकस्य देशोनपूर्वकोटिर्वर्षप्रमितम् , मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतीनां पञ्चविंशति-
प्रकृतीनां साधिकैर्द्वात्रिंशदधिकशतावधिप्रमाणम् , मतान्तरेण पुनर्देशोनद्वात्रिंशदुत्तरसागरोपमशतम् ,
तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतीनां साधिकत्रिपष्टयधिव सागरोपमशतप्रमितम् , वर्चस्पभनाराचसंहननौदारि-
कद्विकप्रकृतीनां साधिकपल्योपमत्रयम् , आतपादीनां नवानां प्रकृतीनां च साधिकपञ्चाशी-
त्याधिकसागरोपमशतप्रमितम् , भावनीयं चैतत्सर्वमोधवत् । ‘ऊणगुरुठिई’ इत्यादि, आहारक-
द्विकस्य ‘णिरयसुरविउज्जदुगं उच्चणरदुग’ इति संग्रहगाथावयवेषु भणितानां नरकद्विकप्रभृतीनां नवानां
प्रकृतीनां च मार्गणायामस्यां बन्धसत्कमन्तरं प्रकृततया देशोनप्रकृतमार्गणाप्रकृष्टकायस्थिति-
प्रमाणं भवति, कथमिति चेत् , कथ्यते, मार्गणाया अस्याः प्रकृष्टा कायस्थितिरङ्गुलाऽसंख्यातभाग-
गताकाशप्रदेशतुल्यसमयप्रमाणा विद्यते, उत्कृष्टतया तावत्कालमेतन्मार्गणावर्तिनो जीवस्य विग्रहगतौ
गमनाभावात् , मार्गणायामस्यां वर्तमानोऽप्रमत्तसंयत आहारकद्विकं वद्ध्वा पष्टाद्यधस्तनीयगुणस्थानकेषु
गत्वा देशोन्तावत्कालं तत्र स्थितः सन् तत्र बध्नाति, प्रस्तुतमार्गणायाश्च चरमेऽन्तर्मुहूर्ते पुनरप्र-
मत्तसंयतगुस्थानकमागतः सन् बध्नाति, अत आहारकद्विकस्योक्तप्रमाणमन्तरमत्र प्राप्तं भवति, पर्याप्तप-
ञ्चेन्द्रियः प्रकृतमार्गणायाः प्रारम्भे नवानां नरकद्विकादिप्रकृतीनां बन्धं विधाय तदनन्तरं कालं च
कृत्वा प्रकृतमार्गणायां तेजोवायुकायिकतपोत्पद्य भवप्रत्ययेनाऽबन्धं करोति, एतन्मार्गणायाश्चरमा-
न्तर्मुहूर्ते संज्ञितयोत्पद्य यथायोगं बन्धं च करोति, तदा निरुक्तनरकद्विकादिप्रकृतीनामिहाऽन्तर्मुहूर्तेन
न्यूना प्रकृष्टकायस्थितिरन्तरं प्रकृततया प्राप्यते । तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वल-
नचतुष्कमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेक-
त्रिंशत्शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्र-
सस्थानसुखगतिवसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःक्रीर्तिपरावातोच्छ्वाभजिननामरूपाणां पञ्चविंश-
तिशेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां च ‘सेसासु मुहुत्ततो’ इत्यादिना गुर्वन्तरमन्तर्मुहूर्तरूपमधिगम्यम् , कतिप-
यप्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्य, परावर्तमानत्वमाश्रित्य च कतिपयप्रकृतीनां घटना कार्या ।

एवम्—एकोनाशीतिमार्गणासुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरमुक्तम् ; अकपायकेवलज्ञानकेवल-
दर्शनपथाख्यातसयममार्गणासु बध्यमानसानवेदनीयस्यान्तरं नास्ति, तथैव सूक्ष्मसंपरायसंयमे बध्य-

मानानां सप्तदशप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, अत एतद्व्यतिरिक्तासु शेषनवतिमार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धान्तरं विद्यते तासां प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवेतिकृत्वा 'सेसासु मुहुर्ततो' इत्यनेन गतार्थत्वान्मूलकारेण पृथगेतद्विषयकप्ररूपणा न कृता, तथाऽप्यस्माभिस्तत्संक्षेपेण दर्शयते । तद्यथा—

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यापर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तसप्तपृथ्वीकायसप्ताकायैकादश-
वनस्पतिकायनवविकलाक्षरूपास्वष्टात्रिंशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिनीनामौदारिकशरीर-
स्य च बन्धान्तरं नास्ति, शेषवध्यमानाभ्रुववन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्ट-
मन्तरं विद्यते ।

पञ्चानुत्तराहाग्निकद्विकदेशविरतिमिश्रसम्यक्त्वमार्गणासु सातवेदनीयादीनां द्वादशानां परा-
वर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टं बन्धान्तरं विद्यते, शेषवध्यमानप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति,
सततं तामां ग्रह्यमानत्वादिति ।

अपर्याप्तवादरैकेन्द्रियापर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियेषु बन्धान्तरं अपर्याप्ततिर्यकपञ्चे-
न्द्रियवत्कथनीयम्, नवरं मनुष्यद्विकौचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रकृष्टबन्धान्तरस्यान्तर्मुहूर्तमात्रत्वेऽपि तन्मा-
र्गणाप्रारम्भे पृथ्वीकायिकादिभवे वर्तमानो जीवो बन्धं कृत्वा तेजोवायुकायिकयोरन्यतररिगन् ससु-
त्पद्य यथायोगमनेकभवान् यावत्तत्रैव स्थित्वा मार्गणाप्रान्ते पृथ्वीकायिकादितया समुत्पधाऽन्त-
र्मुहूर्तानन्तरं तत्प्रकृतित्रयस्य बन्धं करोति तं जीवमाश्रित्यान्तर्मुहूर्ताधिकान्तरालीयतेजोवायुकायिकाने-
कभवकालप्रमाणमायाति तच्च प्रस्तुतमार्गणासु अनेकतेजोवायुकायिकभवानां समुदितकालस्यान्तर्मुहूर्त-
मात्रत्वादन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, एवमपि परावर्तमानबन्धमाश्रित्य प्राप्तान्तर्मुहूर्तसंख्येयगुणभव-
सातव्यमिति । सप्ततेजस्वायिकेषु सप्तवायुकायिकेषु च सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धितिर्यग्विकनीचैर्गोत्रौ-
दारिकशरीरवर्जानां शेषवध्यमानप्रकृतीनां प्रकृष्टं बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमानबन्धेनाव-
सातव्यमिति ।

पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगौदारिककाययोगमार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिनीनामाहा-
रेकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, बन्धानन्तरं बन्धविच्छेदस्य प्राप्यमाणत्वेऽपि पुनर्ब-
न्धात्प्राग् मार्गणाया विच्छेदादिति । शेषाभ्रुववन्धिनीनां ज्येष्ठबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमान-
बन्धेनावसातव्यमिति ।

औदारिकमिश्रकाययोगे सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिनीनां जिननामौदारिकशरीरसुरद्विकवैक्रिय-
द्विकरूपाणां षट्प्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति, तद्वर्जशेषवध्यमानाभ्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं
प्रकृष्टतयाप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, तत्र मनुष्यद्विकौचैर्गोत्रवर्जशेषाभ्रुववन्धिनीनां परावर्तमानबन्धेन
मनुष्यद्विकौचैर्गोत्रप्रकृतीनां च बन्धान्तरं तेजोवायुकायिकानामबन्धकालेन वादरापर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणा-
वदानेतव्यमिति ।

वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणयोर्ध्रुवबन्धिनीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वास-
जिननामवातरत्रिकप्रकृतीनां च बन्धान्तरं नास्ति । शेषवध्यमानाध्रुवबन्धिनीनां प्रकृष्टबन्धान्तरम-
न्तर्मुहूर्तप्रमाणं परावर्तमानबन्धेन नेतव्यमिति ।

अवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धान्तरं नास्ति, शेषवध्यमानविंशतिप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तर-
मन्तर्मुहूर्तं श्रेणावबन्धकालेन ज्ञेयमिति ।

क्रोधमार्गणायां निद्राद्विकनवनामध्रुवबन्धिभयजुगुप्सारूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धान्तरं
प्रकृष्टतयान्तर्मुहूर्तं श्रेणावबन्धकालेन बध्यमानसर्वाध्रुवबन्धिनीनां च परावर्तमानबन्धेनान्तर्मुहूर्त-
प्रमाणमवसातव्यम् । शेषध्रुवबन्धिनीनां बन्धान्तरं नास्ति ।

एवं मानमायालोभमार्गणासु वक्तव्यं, नवरं माने संज्वलनक्रोधस्य, मायायां संज्वलनक्रोध-
मानयोः, लोभे संज्वलनचतुष्कस्य बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वक्तव्यमिति ।

मनःपर्यवज्ञानसंयममार्गणयोः सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन, आहारक-
द्विकस्य प्रभक्तगुणस्थानेन श्रेणावबन्धकालेन वा, शेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च श्रेणावबन्धकालेन प्रकृष्ट-
बन्धान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यमिति । विभङ्गज्ञानमार्गणायां ध्रुवबन्धिनीनां बन्धान्तरं नास्ति ।
शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेन प्रकृष्टान्तरमन्तर्मुहूर्तं ज्ञेयमिति ।

सामाधिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिचारित्रमार्गणासु सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां
परावर्तमानबन्धेनाहारकद्विकस्य च प्रभक्तगुणस्थानप्रमाणावबन्धकालेनान्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टबन्धान्तरं
नेतव्यमिति । शेषध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति, जघन्यान्तरप्रस्तावे निषिद्धत्वादिति ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतीनां बन्धान्तरं नास्ति ।
सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धेनाहारकद्विकस्य प्रभक्तादिगुणस्थानकेष्वबन्धकालेन
श्रेणावबन्धकालेन वा शेषवध्यमानमार्गणाप्रायोग्यध्रुवाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां श्रेणावबन्धकालेन बन्धान्तरं
प्रकृष्टतयान्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यमिति ।

सास्वादनमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्यत्वारिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रिय-
जातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतीनां च बन्धसत्कमन्तरं नास्ति । शेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवावसातव्यमिति । इति भणितमायुर्वर्जशेषप्रकृतीनां
बन्धमत्कष्टकृष्टमन्तरं मार्गणासु ॥२६८॥

साम्प्रतमायुष्कर्मणां बन्धस्याऽन्तरमेकजीवमाश्रित्य निरूपयितुमना यासु मार्गणासु तत्र
भवति तासु प्रतिषेधयन् शेषासु प्रथमतस्तावज्जघन्यतः प्रतिपादयैश्चाह-

सम्पाज्ज्गाऊण ण अतर होइ पणमणवयेसु ।

विजवे आहारकुणे कसायचऊगम्मि सासाणे ॥२६९॥

सेसासु मुहुरतो लङ् भवे णवरि अंतरं णत्थि ।

कायुरलछलेसासुं णिरयसुराऊण केइ विव्वग्गे ॥२७०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सप्पाउग्गा' इत्यादि, ओघ सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोग-
मार्गणासु पञ्चवचनयोगमार्गणासु च तथा वैक्रियकाययोगमार्गणायाभाहारकाहारकमिश्रकाययोग-
मार्गणयोः क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सास्त्रादनमार्गणायां च स्वप्रायोग्यायुषां
बन्धस्याऽन्तरं न भवति, प्रकृतमार्गणाकायस्थितेरायुःप्रकृतिबन्धजबन्धान्तरकालादन्यत्वेन स्व-
प्रायोग्यायुर्वन्धानन्तरं पुनर्बन्धात्प्राग् मार्गणानामासां विच्छेदात् । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषासु
यास्त्रायुर्वन्धो जायते तासु नरकगत्यादिपञ्चचत्वारिंशदुत्तरशतमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धस्यैकं
जीवमाश्रित्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अथ शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्वन्धस्य जघन्य-
मन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुपदर्शितम्, परं तत्र शेषमार्गणाऽन्तर्गतकाययोगौदारिककाययोगकृष्णादि-
लेश्याषट्करूपास्वष्टमार्गणासु समुपपत्तिमालभते, तद्यथा-नरकदेवायुर्वन्धकास्तिर्यग्पञ्चेन्द्रियमनुष्याः,
ते च प्रकृतैकैकमार्गणावृत्कृतोऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिककालं नावतिष्ठन्ते, यावच्चाऽन्तर्मुहूर्तं ते तत्र
तिष्ठन्ति तावति ह्रस्वेऽन्तर्मुहूर्ते तेषामायुर्वन्धानन्तरं पुनस्तद्वन्धो न जायते, तस्मात् प्रकृताऽष्टमार्ग-
णास्यायुर्वन्धाऽन्तरस्याऽप्राप्यमाणत्वेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्तरमनुपपन्नमिति तामतिप्रसक्तिमपा-
कृतुं विशेषमावेदयति-'णवरि' इत्यादि, काययोगौर्घौदारिककाययोगकृष्णनीलकापोततेजःपञ्च-
शुक्ललेख्यालक्षणास्वष्टसु मार्गणासु नरकदेवायुषोर्यथायोगं बन्धस्याऽन्तरं नास्ति । 'केइ' इत्यादि
केचन महाबन्धकारादयो विभङ्गज्ञानमार्गणायामपि नरकदेवायुर्वन्धस्याऽन्तरं नास्तीति वदन्ति, तेषां
भते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां योगादिवृद्धे इत्यादिवद्वा विभङ्गज्ञानस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तादधिकस्थितेरस्त्री-
कारात् ॥२६९-२७०॥

तदेवं भणितं सर्वमार्गणास्त्रायुर्वन्धसत्कं जघन्यमन्तरं यथासम्भवम्, एतर्हि तदेवोत्कृष्टतो
विमणिषुनिरयगत्योवादिमार्गणाक्रमेणाह

सव्वणिरयदेवेसु अपसत्थितितेउपहलेसासु ।

तिरियणराऊण भवे जेइं देसूणछम्मासा ॥२७१॥

तिरितिपणिबित्तिरिणराऽसणीसुं पुव्वकोडितसंतो ।

तिण्हाऊणऽव्वहिआ कोडो पुव्वारा साउत्स ॥२७२॥

होइ अपज्जत्तेसुं पणिदियतिरिक्खमणुत्तेसु ।

सव्वेसु एगिदियविगल्लिदियपंचकायेसुं ॥२७३॥ (उपगीतिः)

साउत्स गुरुभवठिई, देसूणत्तिमागसजुआ णेयं ।

इयराउत्स त्तिमागो देसूणो गुरुभवठिईए ॥२७४॥

(प्रे०) 'सव्वणिरय' इत्यादि, सर्वेष्वोधादिभेदभिन्नेष्वष्टसंख्याकेषु निरयगतिमार्गणा-
स्थानेषु तथैव सर्वेषु त्रिंशत्संख्याकेषु देवगतिमार्गणास्थानेषु तथाऽग्रथस्तासु तिसृषु कृष्णादिष्वेष्टासु

तेजोलेखायां पञ्चलेखायां च तिर्यग् नरायुषोर्वन्धस्य प्रत्येकमुत्कृष्टमन्तरं अन्तर्मुहूर्तलक्षणैकदेशो-
नोनाः षण्मासा भवन्ति, तत्पुनरेवम्-नारकदेवाः स्वायुषः षण्मासावशेष आयुर्वध्नन्ति, आयुर्वध्न-
तश्च ते प्रथमाकर्षेणायुर्वन्धं समाप्य पुनरप्यवशिष्टषण्मासस्य द्विचरमान्तर्मुहूर्ते द्वितीयाकर्षेण पुनस्तद्
वध्नन्तीत्येवं वारद्वयं तिर्यगायुषो मनुष्यायुषो वा वन्धं कुर्वन्तो ये केचन देवनारकास्तैः प्रकृत-
मार्गणासु प्रस्तुतमन्तरं प्राप्यते । इदमत्र विशेषतोऽवधेयम्-अशुभलेश्यामार्गणासु तिर्यङ्मनुष्यैस्तिर्यग्-
नरायुषोर्वन्धे विधीयमानेऽपि तानाश्रित्य प्रकृतायुर्द्वयवन्धस्याऽन्तरं न प्राप्यते, द्वयोस्तद्वन्धयो-
र्विचाले मार्गणानामासां कायस्थितेरतिह्रस्वत्वेन परावर्तमानत्वात् । 'तिरिच' इत्यादि, तिर्यगोव-
तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौषध्याप्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमनुष्यौषध्याप्यमनुष्यमानुष्यासंज्ञिरूपास्वष्टसु
मार्गणासु वेद्यमानस्वायुरतिरिक्तानां त्रयाणामायुषां प्रत्येकं प्रकृष्टमन्तरं पूर्वकोटितृतीयभागाम्य-
न्तरवर्ति भवति, तत्र चतुर्षु तिर्यगतिभेदेषु असंज्ञिमार्गणस्थाने च तिर्यगायुर्वर्जानां त्रयाणामायुषां
मनुष्यगतिमार्गणाभेदेषु तु मनुष्यायुर्वर्जानां त्रयाणामायुषां तज्ज्ञेयम् । भावना पुनरिहैवं कार्या-
मार्गणास्वासु प्रत्येकं वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागे वेद्यमानव्यतिरिक्ता-
ऽऽयुष्यममध्येऽन्यतमस्यायुषो वन्धमार्गम्यान्तर्मुहूर्तादनु प्रथमाकर्षेण तद्वन्धं समाप्य पुनरपि चर-
मान्तर्मुहूर्तं जघन्यावाधारूपं विहाय पूर्वकोटित्रिभागस्य द्विचरमेऽन्तर्मुहूर्ते तद् वध्नाति तदायुर्वन्ध-
सत्काऽन्तर्मुहूर्तत्रयन्यूनपूर्वकोटिवर्षत्रिभागरूपमन्तरं प्राप्तं भवति । 'ऽवभहिषा' इत्यादि, वेद्य-
मानाऽऽयुषा समं नामतः समानस्योक्तशेषस्य स्वायुषो वन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागे-
नाधिकं पूर्वकोटीवर्षमितमत्रसेयम्, अयं भावः-तिर्यगत्योषादौ नियमायुषो मनुष्यगतिमार्गणाभेद-
त्रये च मनुष्याऽऽयुषः प्रकृताऽन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागेनाधिकं पूर्वकोटिवर्षरूपं विज्ञेयम् । ननु-
असंज्ञिभेदवर्जितिर्यगतिभेदचतुष्टये "साउरस्स" इत्यनेन केवलस्य तिर्यगायुषो ग्रहणं समुचितम्, तत्र
केवलतिरिचामेव प्रवेशात्, तेषां तिर्यगायुष एव वेद्यमानत्वाच्च, परमसंज्ञिमार्गणाभेदेऽपि केवलस्य तिर्य-
गायुषो ग्रहणं न युज्यते तत्र तिरिचामिव मनुष्याणामपि प्रवेशेन तिर्यगायुष इव मनुष्यायुषोऽपि
वेद्यमानायुष्कतया लाभात् ? इति चेत् सत्यम्, तथापीह शतकृदभिप्रायवशादसंज्ञिमार्गणाय
केवलास्तिर्यश्च एव बोद्धव्याः, न मनुष्या अपि, "उक्तं च शतके" "सेसासु जाण दो दो व" ।
तथा तच्छूर्णानपि-णिरयगइमणुयगइदेवगइसु दो दो जीवट्टाणाणि सन्निपचिदियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य ।
अन्याभिप्रायेण तु मनुष्यायुषोऽलकृष्टमन्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणं ज्ञेयम्, तथा च न कश्चिद् दोष
इति । प्रकृताऽन्तरस्य भावना पुनरिहैवं वेदयितव्या-मार्गणास्वासु वर्तमानः पूर्वकोटिवर्षायुष्कः
कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागेऽवशेषे निरुक्तमायुर्वद्ध्वा ततश्च मृत्वा पुनरपि पूर्वकोटिवर्षायुष्कतया
तिर्यग्जीवस्तिर्यक्त्वेन मनुष्यजीवो मनुष्यत्वेन च समुत्पन्नः सन् स्वायुषोऽन्तिमान्तर्मुहूर्ते तिर्यग्जीव-
स्तिर्यगायुर्वन्धो मनुष्यायुर्वध्नाति तदा प्रकृतमन्तरमायाति, साधिकत्वमत्र किञ्चिदनुप्रथमभव-

सत्कपूर्वकोटिनिभागेनावसेयमिति । “होइ अपञ्जत्तेसु” मित्यादि, अपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-
ऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणयोः सर्वेषु सप्तसंख्याकेषु एकेन्द्रियभेदेषु तथैव नवसंख्याकेषु विकलेन्द्रियभेदेषु
सर्वेष्वेकोनचत्वारिंशत्संख्याकेषु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायलक्षणपञ्चकायसम्बन्धिभेदेष्वित्येवं समु-
दितेषु यत्पञ्चाशन्मार्गणास्थानेषु ‘साउस्स’ इति प्राग्वद् वेद्यमानायुषा साकं नामतः समानस्थ-
तिर्यगाद्यैकैकायुषः प्रकृष्टमन्तरं देशोनवतीयभागेन संयुता गुरुभवस्थितिर्विज्ञेयम् तच्चैवम्-मार्गणा-
स्वासु वर्तमान उत्कृष्टस्थितिकः कश्चिज्जीवः स्वीयायुरवशिष्टविभागे प्रकृतमायुर्वन्धमाधाय ततश्च
कालं कृत्वा तास्वेव मार्गणासु गुरुभवस्थितिमन्वेन सजातः सन् तद्भ्रमद्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते निरुक्तमायु-
र्वन्नाति, तदा प्रकृतमन्तरं प्राप्यते, देशोनत्व त्वत्र भवद्रयसत्कायुर्वन्धसम्बन्ध्यन्तर्मुहूर्तद्वयं तथा
जघन्याबाधारूपान्तर्मुहूर्तमित्यन्तर्मुहूर्तत्रये गावसेयम् । उत्कृष्टभवस्थितिप्रदर्शिका गाथास्त्वत्रैव बन्ध-
विधानग्रन्थे भूलप्रकृतिबन्धे प्रतिपादिताः । ताथेमाः

‘तिरियस्स पणिंदितिरियणरतप्पञ्जत्तजोणिणीण च । तिणिण पलिओवमाइ’ उक्कोसा भवठिई जेया ॥१२५॥
एगिदियपुइवीणं वरिससहस्साणि होइ वावीसा । एमेव होइ तेसिं वायरवायरसमत्ताणं ॥१२६॥
देइदियाइगाणं कमसो वारइ समा भउणवण्णा । दिवसा तह छम्मासा एवं तेसिं समत्ताण ॥१२७॥
दगवाउणं कमसो सहस्सवासाणि सत्त तिणिण भवे । तिदिणाऽग्गिस्सेव सिं वायर-वायरसमत्ताण ॥१२८॥
वासाऽत्थि दस सहस्सा वणपत्तेभवणतस्समत्ताण । भिअमुहुत्त जेया सेसाण पचतीसाए ॥१२९॥ इति ।

“इयराउस्स” इत्यादि, प्रकृतमार्गणास्तुक्कशेषबन्धप्रायोग्यायुषां बन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनोत्कृष्ट-
भवस्थितिनिभागप्रमितमवमातव्यम्, इदमुक्तं भवति-तेजस्कायवायुकायसर्वभेदाऽपर्याप्तमनुष्यवर्जशेष-
द्विचत्वारिंशन्मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्याऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां तिर्यगायुष्कस्य च प्रस्तुतमन्तरं
विज्ञातव्यम्, कथमिति चेद् उच्यते, प्रकृतमार्गणासु वर्तमान उत्कृष्टस्थितिकः कश्चित्प्राणी स्वायुस्त्रि-
भागावशेषे आयुर्वन्ध प्रारम्भाऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं तत्समाप्य पुनरपि स्वायुश्चरमान्तर्मुहूर्ते षण्णाति
तदा प्रकृतमन्तरमुपलभ्यते ॥२७१-२३-४॥

प्रतिपादितं गतिमार्गणास्थानेषु तत्तमान्यान्मार्गणान्तरेषु च बन्धप्रायोग्यायुर्वन्धस्योत्कृष्टमन्त-
रम्, अथोक्तशेषेन्द्रियकायमार्गणासु तन्निजिगदिषुस्तत्रादौ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणास्वाह

मणुसाउगस्स हवए पुपरिणवितसेसु चक्खुसण्णीसु ।

पुक्कायठिई ऊणा सेसाणायरसयपुहुत्त ॥२७५॥

(प्रे०) “मणुसाउगस्स” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तसमार्गणा-
चतुष्टये चक्षुर्दर्शनसंज्ञिमार्गणयोश्च मनुष्यायुष्कबन्धस्याऽन्तरं प्रकृष्टतया देशोनोत्कृष्टकायस्थिति-
प्रमाणं भवति, तद्यथा-एकेन्द्रियादिमार्गणान्तरात्पञ्चेन्द्रियौघादिप्रस्तुताऽन्यतममार्गणायां जघन्य-
स्थितिकतयोत्पद्य यः कश्चिज्जीवस्तद्भवतृतीयभागे मनुष्यायुर्वन्नाति तदनु तत्रोत्पद्य मनुष्येतरायु-

बन्धनाति, तदनु तत्रोत्पद्य मनुष्येतरायुर्वर्धनातीत्येवं मनुष्येतरायुर्वर्द्ध्वा वद्ध्वा तत्रोत्पद्योत्पद्य विपद्य विपद्य च किञ्चिद्दूनां पञ्चेन्द्रियादिमार्गणोत्कृष्टकायस्थितिं गमयति पश्चाच्चोत्कृष्टकायस्थितेः शान्तभागेऽन्तर्मुहूर्तादिस्थितिकतिर्यक्तया वर्तमानः सभसंक्षेप्याद्यायां मनुष्यायुर्वर्धनाति तदनु च तत्रोत्पद्य क्रमेण मनुष्यभवस्य पञ्चेन्द्रियादिमार्गणोत्कृष्टकायस्थितेश्च सममेव समाप्तेर्मार्गणान्तरं गच्छति, तदा तस्य प्रदर्शितप्रमाणमन्तरमुपपन्नां भवति । “सेसाण” इत्यादि, मनुष्यायुर्वर्जानां शेषाणां त्रयाणामायुषां तु प्रत्येकं बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं सागरोपमशतपृथक्त्वं भवति, मार्गणास्वासु वर्तमानस्य जीवस्य देवाद्यायुष्कत्रयमध्येऽन्यतमायुषो बन्धानन्तरं शेषत्रिगतिमत्कश्चनकालस्योत्कृष्टतः सागरोपमशतपृथक्त्वेन तत्प्रयुक्तान्तरस्यापि तावन्मितत्वात् ॥२७५॥

अधुनाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमाह

असमत्तपणिबियतसज्जालभोसेसु छलु मुहुत्तंतो ।

बोण्हाऊण उरले पुण्णभवण्णित्तिभागंतो ॥२७६॥

(प्रे०) “असमत्त” इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तप्रसङ्गसौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तमस्ति तच्चैवम्—अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणात्रये मार्गणाकायस्थितिप्रथमभवस्थः कश्चित्द्रवतृतीयभागे तिर्यगायुर्वर्धनाति तदनन्तरं मार्गणास्वास्वेव प्रत्येकमपर्याप्तितिर्यक्त्वेनोत्पद्य तत्र च मनुष्यायुर्वर्द्ध्वा तदनु अपर्याप्तमनुष्यरूपेण भूत्वा पुनरपि मनुष्यायुर्वर्द्ध्वाऽपर्याप्तमनुष्यरूपेण भवतीत्येवं यावद्द्वारमपर्याप्तमनुष्यरूपेण भवितुं शक्यते तावद्द्वारं तद्वरूपेण भूत्वा चरमेऽपर्याप्तमनुष्यभवे पुनरपि तिर्यगायुर्वर्धनाति तदा तस्य निरुक्तमन्तरमुपपद्यते । एवमेव मनुष्यायुषोऽप्यन्तरस्य भावना विधेया, परं यत्र तिर्यगायुस्तत्र मनुष्यायुः, यत्र पुनर्मनुष्यायुस्तत्र तिर्यगायुरुपादेयम् । “उरले” इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्बन्धस्योत्कृष्टतोऽन्तरमुत्कृष्टपृथ्वीकायिकभवस्थितेर्देशोनत्रिभागो ज्ञेयः, प्रकृतमार्गणागतोत्कृष्टमवस्थितिकपृथ्वीकायिकजीवस्य स्वायुषस्त्रिभागवशेषे प्रान्ते चाऽनयोरायुषोः प्राग्गमितप्रकारेण द्विर्बन्धसम्भवात् । देवनरकायुषोरन्तराभावोऽत्र जघन्याऽन्तरप्रस्तावे प्रतिषिद्धत्वात् ॥२७६॥

साम्प्रतं शेषयोगमार्गणामेदेषु तदुच्यते तत्राऽपि मनोवचनयोगभेदेषु वैक्रियकाययोगे आहारकतन्मिश्रयोगद्वये च प्राक् सर्वथा निषिद्धमिति शेषकाययोगभेदे तदाह

काये ऊणगुण्णित्ति मणुसाजस्स तिरियाजगस्स मये ।

जेह्वा पुह्विभवण्णित्ति देसूणतिभागमम्महिया ॥२७७॥

(प्रे०) ‘काये’ इत्यादि, काययोगौघमार्गणायां मनुष्यायुषो बन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनप्रकृतमार्गणाज्येष्ठकायस्थितिर्भवति, काययोगौघमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिस्त्वसंक्षेपपुद्गलपरावर्तप्रमाणा प्राग्भिहितेति, भावना पुनरेवम्—प्रकृतमार्गणार्योऽपर्याप्तप्रसङ्गः स्वभवत्रिभागे मनुष्यायुर्वर्द्ध्वा

कालं करोति, अपर्याप्तमनुष्यतपोत्पद्य कालं च कृत्वैकेन्द्रियेषु भूयो भूय उत्पद्यते, एकेन्द्रियकायस्थितिं निर्वाह्य पुनरप्यपर्याप्तद्वीन्द्रियैकेन्द्रियाणां संवेधेन काययोगमार्गणाया यावत्कालो निर्गमयितुं शक्यते तावत्कालं निर्वाह्य तद्वन्वान्ते यदा मनुष्यायुर्वध्नाति तदा देशोनकायस्थितिप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमुपपद्यते । “तिरिया” इत्यादि, तिर्यगायुष्कस्य बन्धसत्कमुत्कृष्टमन्तरं देशोनत्रिभागाधिकपृथ्वीकायभवस्थितिमानमधिगम्यम्, कुतः, इति चेद् ? उच्यते, एतन्मार्गणायां प्रकृष्टायुष्कपृथ्वीकायिको जीवः स्वायुषस्त्रिभागाऽवशेषे तिर्यगायुर्वध्ना क्रमेण च कालं कृत्वा पुनरपि प्रकृष्टायुष्कपृथ्वीकायिकत्वेन जातः सन् स्वायुर्द्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि तिर्यगायुर्वध्नाति तदा तमपेक्ष्य निरुक्तमन्तरमायाति । ननु अफायादीनामुत्कृष्टभवस्थितिं विहाय पृथ्वीकायोत्कृष्टभवस्थितिरेव कथमुपात्तेति चेद्, उच्यते, निरन्तरकाययोगवद्भवेऽपि तस्यैव दीर्घस्थितिकत्वात् ॥२७७॥

इदानीं वेदमार्गणालु प्रकृतमाह

थोपुरिसेसु तिभागो देसूणो होह पुव्वकोडीए ।

णिरयाउगस्स दोण्हं देसूणा सगुरुकायिंई ॥२७८॥

देवाउगस्स थोए कोडिपुहूत्तेण होह पुव्वाण ।

अहियाऽडवण्णपलिधा पुरिसे अहियुदहितेत्तीसा ॥२७९॥

णपुमे गुरुकायिंई ऊणा दोण्ह जलहीसयपुहूत्त ।

तिरियाउस्स सुराउस्स पुव्वकोडीअ तंसतो ॥२८०॥

(प्रे०) ‘थोपुरिसेसु’ इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये मरकायुष्कस्य गुरु बन्धसत्कमन्तरं देशोनपूर्वकोटित्रिभागप्रमाणं भवति, पूर्वकोटिर्पायुष्कजीवस्य त्रिभागावशेषे आयुपि नरकायुर्बन्धमारभ्याऽन्तर्मुहूर्तादनु तं समाप्य द्विचरमान्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि तद्वन्धभावात् । देशोनत्वमन्त्राऽन्तर्मुहूर्तत्रयेणावसातव्यम् । ‘दोण्हं’ इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोरन्तरं प्रकृष्टतो देशोनस्वोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणं भवति, अत्र नरकायुषोऽन्तरस्याऽनुपदमुत्कृष्टत्वाद् देवायुषोऽन्तरस्य चाऽनुपदमेव बक्ष्यमाणत्वाच्च तद्द्रव्यवर्जितिर्यग्मनुष्यायुषी एव ‘दोण्हं’ इति पदेनोपादेये । भावनिका पुनरेवम्—मार्गणान्तरान्प्रकृतमार्गणयोरन्यतरमार्गणायां समायातः कश्चिज्जीवः स्वायुषस्त्रिभागावशेषे तिर्यगायुर्वध्ना ततश्च कालं कृत्वा तत्रैव तिर्यक्त्वेन सजातः सन् देवायुर्मनुष्यायुर्वा वध्नाति तदनु क्रमेण मृत्वा देवत्वेन मनुष्यत्वेन वोत्पन्नः सन् नरकतिर्यगायुर्वर्जाऽऽयुर्वध्नाति, तत्पश्चात्ततो मृत्वा भूयोऽपि तद्रूपेण जातः सन्नरकतिर्यगायुर्वर्जायुर्वध्नाति, एवं पुनः पुनः कुर्वन् स प्रकृतमार्गणाया द्विचरमान्तर्मुहूर्ते पुनरपि तिर्यगायुर्वध्नाति ततश्च मृत्वा प्रकृतमार्गणां परावर्तयति, तदा तमपेक्ष्य भणितमन्तरमुपपन्नं भवति, इत्थमेव प्रकृतमार्गणाद्वये मनुष्यायुष्कविषयेऽपि भावना विधेया । ‘देवाउगस्स’ इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां देवायुष्कस्योत्कृष्टमन्तरं साधिकपूर्वकोटिपृथक्त्वेनाभ्यधिकोत्कृष्टश्चाशत्पण्योपमप्रमाणभवसातव्यम् । स्त्रीवेदोत्कृष्टकायस्थितेः पण्योपमशतपृथक्त्वप्रमाणत्वेऽपि देवभवैः समं जायमानतिर्यग्मनुष्यभवसवेधस्य प्रस्तुताऽन्तराधिकतया पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्याप्त-
२० ख

मनुष्यभ्रवसंवेधाधीनस्यैकेन देवभवेनाधिकस्य प्रस्तुतान्तरस्यैतावन्मात्रसंभवात्, एतदुक्तं भवति-स्त्री-
वेदोत्कृष्टकायस्थितिर्हि पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यभवानां देवभवैः समं जायमानभ्रवसंवेधप्रधाना, न
पुनर्नरकभवैः सममपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्यभवैर्विकलेन्द्रियैकेन्द्रियादिभवैः समं वा, तेषां
नारकादीनां नपुंसकवेदित्वात् । देवभवैः समं संवेधस्तु देवायुर्वन्धाधीनः, तथा च यः कश्चित्प्रस्तु-
तमार्गणागतः तिरश्चीजीवो मानुषीजीवो वा पूर्वकोटीतृतीयभागलक्षणायास्तत्कृष्टायामन्वाध्यायां वर्तमानः
सन् पञ्चपञ्चाशत्पण्योपममितोत्कृष्टस्थितिकं देव्या आयुष्कं वध्नाति, ततः प्रभृति प्रस्तुतान्तरं प्रार-
भ्यते; तदनु चासौ तत्रोत्कृष्टस्थितिकदेवीतयोत्पद्य भवक्षयेण पुनः प्रस्तुतमार्गणायामेव पूर्वकोट्या-
युष्कमानुषीतया तिरश्चीतया वोत्पद्यते, एवं संख्येयभवान् यावत् पूर्वकोटीस्थितिकमानुष्यादि-
तयोत्पद्योत्पद्य विपद्य विपद्य चरमभवे त्रिपण्योपमस्थितिकयुग्मितया प्रस्तुतमार्गणायामेवोत्पद्या-
ऽसंख्येयाद्वायां देवायुर्वन्धं प्रारभते तदा प्रस्तुतान्तरं निष्ठां याति, न पुनरतोऽप्यूर्ध्वं प्रस्तुताऽन्तर-
संगतः, मनुष्यादिकायस्थितिसमाप्तेस्तस्या मार्गणान्तरे देवीतयोत्पत्तेर्वाऽऽवश्यकत्वादित्येवं तस्य
जीवस्य देवीभवात् पूर्वभ्रवसंवन्धिनाऽन्तर्मुहूर्तोऽनपूर्वकोटित्रिभागाधिकेनोत्तरभ्रवसंवन्धिना च त्रिपण्यो-
पमाभ्यधिकपूर्वकोटीपृथक्त्वकालेनाऽभ्यधिकं देवीभवोत्कृष्टस्थितिप्रमाणं प्रस्तुतान्तरं जायते, तच्च
भूलोक्तमेवेति ।

‘पुरिसे’ इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां देवायुष्कवन्धस्य प्रकृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्साम-
रोपमप्रमाणमस्ति, तद्यथा—पूर्वकोटिवर्षायुष्कः कश्चिन्मनुष्यः स्वायुषस्त्रिभागावशेषेऽनुत्तरदेवसत्को-
त्कृष्टायुर्वद्ध्वा ततश्च मृत्युमवेत्याऽनुत्तरविमाने देवतया संजातस्तत्र चायुः समाप्य पूर्वकोटिवर्षा-
युष्को मनुष्यो जातस्तत्र स्वायुर्द्विचरमाऽन्तर्मुहूर्ते भूयोऽपि देवायुर्वध्नाति तस्य निरुक्तमन्तरं
प्राप्तं भवति, अधिकत्वं पुनरत्र अन्तर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटित्रिभागाभ्यधिकपूर्वकोटिवर्षैरवसातव्यम् ।
“णपुमे” इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां नरकमनुष्यायुषोऽनुत्तरस्यानुपदं वक्ष्यमाणत्वात्तद्वर्ज-
नरकमनुष्यायुषोरेवाऽन्तरं वक्तव्यतायां समुपादेयम् । घटना पुनरिहैवम्—नपुंसवेदमार्गणाया
उत्कृष्टकायस्थितिरसंख्येयपुद्गलपरावर्तमाना वर्तते, मार्गणान्तरान्नपुंसकवेदमार्गणायां तत्प्रायोग्य-
जधन्यस्थितिमन्वेन जातः कश्चिज्जीवः स्वायुस्त्रिभागावशेषे नरकायुर्वद्ध्वा मृत्वा च नरकत्वेन
संजातः सन् तत्र यथायोगं नरकदेवेतरायुर्वद्ध्वा च्युत्वा च नपुंसकत्वेन जातः, ततोऽप्येकेन्द्रिया-
दिषु पुनः पुनः नपुंसकत्वेनोत्पद्योत्पद्य मृत्वा मृत्वा च यावन्मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिमतिकामन् नपुं-
सकपञ्चेन्द्रियरूपे द्विचरमे भवे पुनरपि जधन्यस्थितिकं नरकायुर्वध्नाति तदनु मृत्वा नरके समुत्पद्यते
ततोऽपि च्युत्वान्यत्र नपुंसकमिभवेदितया जायमानो मार्गणां परावर्तयति, तस्य प्रकृतमन्तरं प्राप्तं
भवति । प्रथमनरकायुर्वन्धकालस्तत्प्राक्कालो द्वितीयनरकायुर्वन्धकालस्तत्पश्चात्त्यमार्गणाप्रान्तकाल-

श्वेतिकालचतुष्टयरूपेण देशोनताञ्च ग्राह्या, एवमेव यथायोगं मनुष्यायुषोऽन्तरस्याऽपि भावना स्वयं कार्या । 'जलहो' इत्यादि, तिर्यगायुषोऽन्तरं प्रकृततया सागरोपमशतपृथक्त्वरूपं वर्तते, प्रस्तुत-मार्गणायामविच्छन्नतया प्रवर्तमानायां सत्यां तिर्यग्भवान् विहाय शेषमनुष्यनारकभवानां संवेधस्यो-त्कृष्टतः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रत्वात् । 'सुराउस्स' इत्यादि, देवायुष्कस्य देशोनपूर्वकोटिप्रभाग-रूपमुत्कृष्टमन्तरं भवति, पूर्वकोटिस्थितिके मनुष्यभवे तिर्यग्भवे वोत्कृष्टावाधायामसंक्षेप्याद्धायां च द्विः सुरायुर्वध्नतस्तप्लाभादिति ॥२७८ ९ २८०॥

साम्प्रतं ज्ञानादिमार्गणालु प्रकृतमाह—

पाणतिगो ओहिन्मि य सम्मत्ते वेअगे य विण्णेयं ।
अहमहिया सेत्तीसा जलहोणं णरसुराऊणं ॥२८१॥
भणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारदेसेसुं ।
देवाउस्स तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥२८२॥
अण्णाणकुणे अजए अचक्खुभवियेदरेसु भिच्छत्ते ।
ओधव्व जाणियव्वं णारगतिरिणरसुराऊणं ॥२८३॥
देसूणपुव्वकोडितिभागो आउचउगस्स विभगे ।
अण्णे दोण्ह छमासा णिरयसुराऊण णत्थि ति ॥२८४॥

(प्रे०) 'पाणतिगो' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायामनन्तरं वक्ष्यमाणत्वात् केवलज्ञान-मार्गणायामायुर्वन्धाभावाच्च तद्द्वयवर्जासु तिसृषु मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणालु अवधिदर्शनसम्यक्त्यौष-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणास्थानेषु चेति षण्मार्गणास्थानेषु मनुष्यदेवायुषोरुत्कृष्टमन्तरं साधिकत्रय-स्त्रिंशत्सागरोपममानं विज्ञेयम्, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकदेवभवान्तरितयोः पूर्वकोटिस्थितिक-भवयोः क्रमेणोत्कृष्टावाधायामसंक्षेप्याद्धायामेवैकैकेनाऽऽकर्षेण देवायुर्वध्नतो देवायुषः प्रस्तुतान्तरस्य लाभात्, पूर्वकोटिस्थितिकमनुष्यभवान्तरितयोः क्रमेणाऽनियतस्थितिकोत्कृष्टस्थितिकदेवभवयोर्यथा संख्यं षण्मासात्मिकायामवाधायामसंक्षेप्याद्धालक्षणजधन्यावाधायामेकैकाकर्षेण मनुष्यायुर्वध्नतः प्रस्तुत-मार्गणास्थजीवस्य मनुष्यायुषः प्रस्तुतोत्कृष्टान्तरस्य लाभाच्चेति । अत्राभ्यधिकता तु मनुष्यायुषि किञ्चिदू-नयण्मासाभ्यधिकपूर्वकोटिप्रमाणेन देवायुषि तु किञ्चिदूनपूर्वकोटीप्रभागभ्यधिकपूर्वकोटिप्रमाणेन ज्ञेया । 'भणणाण' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमपरिहारविशुद्धिक-संयमदेशसंयमलक्षणालु षट्सु मार्गणालु देवायुष्कस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रभागरूपमवसे-यम् । पूर्वकोटिवर्षायुष्कस्य त्रिभागावशेषे द्विचरमेऽन्तर्मुहूर्ते च द्विरायुर्वध्नं कुर्वतो जीवस्य प्रस्तुता-न्तरस्य लाभात् । "अण्णाणकुणे" इत्यादि, मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शन-भव्याऽभव्य-मिध्यात्वरूपासु सप्तसु मार्गणालु नरक तिर्यग् नर-देवायुर्लक्षणानां चतसृणामायुःप्रकृतीनां प्रत्येक-मुत्कृष्टमेकजीवाऽऽश्रितमन्तरमोघवत् यथाक्रमसंख्येययाः पुद्गलपरावर्ताः सागरोपमशतपृथक्त्वम-

सङ्क्षेप्यपुद्गलपरावर्ता असंख्येयपुद्गलपरावर्ता भवति, भावना पुनरिहोद्यत एव स्वयभूया । 'देसूणा०'
इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां चतुर्णामायुषां प्रत्येकं प्रस्तुतान्तरं देशोनपूर्वकोटिबिभागप्रमाणं
भवति, मनुष्यतिरश्चाभ्यर्प्यासावस्थायां विभङ्गज्ञानस्याऽनभिमतत्वेन मनुष्यभवे तिर्यग्भवे वोत्कृष्टायां
पूर्वकोटिबिभागलक्षणायामसंक्षेप्याद्बालक्षणायां जघन्याऽवाधायां चाकर्षद्वयेन द्विस्तत्तन्नरकाद्यायु-
श्चतुष्कं बध्नतस्तत्पलाभात् । अत्र ये तिर्यग्मनुष्याणामन्तर्मुहूर्तस्थितिकमेवोत्कृष्टतो विभङ्गज्ञानं
मन्यन्ते तेषां मते प्रस्तुतान्तरं दर्शयन्नाह—'अण्णे' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुषोः प्रकृतमन्तरं पण्मास-
प्रमाणं विज्ञेयम्, प्रकृतायुर्द्वयस्य बन्धकानां यथासंभवं देवनारकाणां प्रकृष्टाऽवाधायाः पण्मास-
प्रमाणत्वेनोत्कृष्टावाधायामसंक्षेप्याद्वायां चाकर्षद्वयेनाऽऽयुर्वध्नतो यथोक्तान्तरस्यैव लाभात् ।
'गिरय' इत्यादि, नरकदेवायुषोः प्रकृष्टमन्तरं नास्ति, एतन्मते प्रकृतायुर्द्वयबन्धस्योत्कृष्टान्तर-
प्रतिषेधस्तु तस्य जघन्यान्तरप्रतिषेधभावनयैव गतार्थ इति ॥२८१ २-३ ४

साम्प्रतं शुक्ललेश्यादिमार्गणासु प्रस्तुतमन्तरमुच्यते—

देसूणा छन्मासा भवे पराजस्स सुक्कल्लहएसुं ।

खइए कोडित्तिभागो पूर्ववाण्णो सुराजस्स ॥२८५॥

आहारगन्मि णेयं गिरयणरसुराजगाण देसूणा ।

उक्कोसा कायठिई तिरियाजस्सऽट्ठिय ओधव्व ॥२८६॥

(प्रे०)'देसूणा' इत्यादि, शुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्मनुष्यायुष्कस्य प्रकृष्टमन्तरं
देशोनपण्मासप्रमितं भवति । शुक्ललेश्यायां देवानामेव तथा क्षायिकसम्यक्त्वे देवानां नारकाणां वा
मनुष्यायुःप्रकृतिबन्धस्वामित्वात् तेषां चोत्कृष्टाया अप्यवाधायाः पण्मासप्रमाणत्वेन प्रस्तुतान्तरस्या-
ऽप्यनन्तरोक्तनीत्या देशोनपण्मासप्रमाणस्य लाभात् । 'खइए' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां
देवायुष्कस्य प्रकृतमन्तरं देशोनपूर्वकोटिबिभागप्रमाणमधिगम्यम्, तद्यथा-प्रस्तुतमार्गणायां देवायुर्वन्धं
तिर्यग्मनुष्या एव प्रकुर्वन्ति ते चाऽनन्तरभवे देवतयैवोत्पद्यन्ते, ततश्च मनुष्यत्वमवाप्य सिद्धयन्ति,
अतो भवद्वयसत्क्रान्तरस्याऽलाभः, तथाऽऽकर्षद्वयसत्कोत्कृष्टान्तरं प्रकृतमार्गणागतयुगलिकतिर्यक्षु
न प्राप्यते, तस्मात् पूर्वकोटिस्थितिके मनुष्यभवे निकाचितजिनसत्कर्मणामेव प्राग्वदाकर्षद्वयेन
द्विरायुर्वध्नतां यथोक्तमन्तरमुपपादनीयम् । इदञ्च क्षायिकसम्यग्दृशामुत्कृष्टतो भवत्रयस्य
भवचतुष्कस्य वा भवनापेक्षया बोध्यम् । क्वचिद् दुष्प्रमहद्भूरिप्रमुखानामिव भवपञ्चकस्य
करणापेक्षया पुनरन्यथा विज्ञेयम्, श्रीमद्भगवद्गीतायामहोपाध्यायैः कर्मप्रकृतिवृत्तौ क्षायिक-
सम्यग्दृशामुत्कृष्टतः पञ्चानां भवानामपि प्रतिपादितत्वात् । शुक्ललेश्यायां त्वेतन्न भव-
त्येव, शुक्ललेश्याक्रमनुष्याणां सकृदायुर्वन्धे जातेऽन्तर्मुहूर्तमध्ये लेश्याया अवस्थं परावर्तनेन
पुनस्तद्वन्धात्प्रागेव मार्गणाविच्छेदभावादिति । 'आहारगन्मि' इत्यादि, आहारकमार्गणायां
निरयनरसुरायुषामेकैकस्य प्रकृष्टमन्तरं देशोना कायस्थितिर्भवति । तद्यथा-आहारकमार्गणाया

एकजीवमाश्रित्योत्कृष्टकायस्थितिर्द्गुलाऽसंख्येयमागक्षेत्रगताकाशप्रदेशनिर्लेपनलक्षणासंख्योत्सर्पि-
ष्यवसर्पिणीमाना वर्तते, मार्गणान्तरादाहारकमार्गणायाभागतः कश्चित्प्रायोग्यजघन्यायुष्कजीवः
स्वायुषस्त्रिभागावशेषे देवायुर्नरकायुर्वा बद्ध्वा मरणमवाप्य च नरकेत्वेन देवत्वेन वोत्पद्यते तत्र च
देवनरकेतरायुर्बद्ध्वा कालं च कृत्वा तेन रूपेण भवतीत्येवं भूयो भूयो देवनरकेतरायुर्बद्ध्वाऽनुभूया-
ऽनुभूय च तत्तद् रूपं मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिमतिगमयन् चरमे भवे वर्तमानः पुनरपि नरकायुर्देवा-
युर्वा वेध्नाति तस्योक्तप्रमितमन्तरमुपलब्धं भवति । इदन्त्वत्रावधेयं कालं कृत्वा तस्य जीवस्योत्पादो
विग्रहेण देवनारकेषु वक्तव्यः । देशोनत्वं त्वत्र यथागममवसेयम् ।

मनुष्यायुष्कस्याप्यन्तरस्योक्तनीत्या भावना भाव्या, परं तदन्तरं किञ्चिद्बृहत् प्राप्यते,
प्रथमायुर्वन्धस्य जघन्यस्थितिकाऽपर्याप्तभवन्निभागप्रारम्भे लाभादिति । 'तिरियाउरस' इत्यादि,
तिर्यगायुष्कस्योत्कृष्टतोऽन्तरमोक्षवदस्ति, तच्च सागरोपमशतपृथक्त्वमिति । भावना पुनरत्रौधवद-
थवा नष्टसकवेदमार्गणायां भणितनीत्या भाव्या । गतमायुः प्रकृतीनामपि प्रकृष्टतो बन्धान्तरम्,
गते च तस्मिन् परिसमाप्तमन्तरद्वारमिति ॥२८५-६॥

॥ इति श्रीब्रह्मसंहितायाऽविष्णुविधेयं बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे पञ्चममन्तरद्वारं समाप्तम् ॥



॥ पष्ठं सन्निकर्षद्वारम् ॥

इदानीं क्रमायातं पष्ठं स्वस्थानपरस्थानभेदमिन्द्रसंस्कारप्रकृतिसत्कं सन्निकर्षद्वारं विविधरि-
ग्रन्थकार आदावोद्यतः स्वस्थानापेक्षया मतिज्ञानावरणादिप्रकृतीराश्रित्य तन्निरूपयितुमाह

एवं शाखावरणं बन्धतो बन्धहन्तं सेसाणि ।
चउणाणावरणाहं हवेज्ज एवेव विगघाणं ॥२८७॥

(प्रे०) 'एवं' मित्यादि, सन्निकर्षो नाम सम्बन्धः, स च प्रस्तुते प्रकृतीनां परस्परं नियत-
बन्धस्याद्वन्धाऽबन्धलक्षणो विज्ञेयः, इदमुक्तं भवति—या काचिद्विवक्षितप्रकृतिर्विध्यते तदानीं
तथा सह तदतिरिक्तप्रकृतीनां यो नियतबन्धस्याद्वन्धाऽबन्धलक्षणः परस्परसम्बन्धः स सन्निक-
र्षोऽधिगम्यः, सोऽपि स्वस्थानपरस्थानाभ्यां द्विधा । मूलप्रकृत्यभिन्नोत्तरप्रकृतीनां यः सन्निकर्षः स
स्वस्थानसन्निकर्षः, अयं भावः—यन्मूलप्रकृतौ कस्याश्चिदेकस्या उत्तरप्रकृतेर्वन्धावसरे तन्मूलप्रकृति-
सत्कान्योत्तरप्रकृतीनां यो नियतबन्धो भवति, कामाश्रितप्रकृतीनां यो विकल्पेन बन्धो भवति,
कासाश्चिच्च प्रकृतीनां योऽबन्धो भवति, स सर्वोऽपि स्वस्थानसन्निकर्षोऽभिधीयते, तद्यथा-ज्ञानावरण-
मूलप्रकृतिसत्कमतिज्ञानावरणलक्षणैकोत्तरप्रकृतिबन्धकाले ज्ञानावरणमूलप्रकृतिसत्कभुतज्ञानावरणाद्यु-
त्तरप्रकृतीनां नियतबन्धो भवति, सहैव सर्वासां बन्धविच्छेदात् ध्रुवबन्धित्वाच्च । मोहनीयमूल-
प्रकृतिसत्काऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिमोहनीयोत्तरप्रकृतीनां बन्धेन सह मोहनीयमूलप्रकृतिसत्कमिथ्या-
त्वमोहनीयोत्तरप्रकृतेर्वन्धो विकल्पेन भवति, सास्वादनेऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धभावेऽपि
मिथ्यात्वबन्धस्याऽलाभात् मिथ्यात्वगुणे सर्वासां बन्धात् । वेदनीयमूलप्रकृतिसत्कसातवेदनीयेन
सहाऽसातवेदनीयस्याऽबन्धो वर्तते, परावर्तमानभावेन वध्यमानत्वात्तयोः । सर्वोत्तरप्रकृतिबन्धविषयकः
सन्निकर्षः परस्थानसन्निकर्षः, अयं भावः—विवक्षितैकतरोत्तरप्रकृतिबन्धेन सार्धमन्यासामुत्तरप्रकृतीनां
नियतबन्धस्याद्वन्धाऽबन्धरूपो यः सम्बन्धः स परस्थानसन्निकर्षो विज्ञेयः, तदेवम्—मिथ्यात्व-
मोहनीयलक्षणैकोत्तरप्रकृतिर्विध्यते तदानीं तथा सह मतिज्ञानावरणोत्तरप्रकृतेर्वन्धो नियमेन भवति,
ध्रुवबन्धित्वे सति मिथ्यात्वमोहनीयबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तद्वन्धविच्छेदात् । मिथ्यात्वमोहनीयेन सह
सातवेदनीयस्य बन्धो विकल्पेन भवति मातासातवेदनीययोः परावर्तमानतया वध्यमानत्वेन
मिथ्यात्वमोहनीयबन्धेन सह सातवेदनीयाऽबन्धस्याऽपि लाभात् । मिथ्यात्वमोहनीयबन्धेन सह
जिननामाहारकद्विकेप्रकृतीनामबन्धोऽस्ति, आमां बन्धस्य सम्यक्त्वादिविशिष्टगुणप्रत्ययिकत्वात्
मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वादिविशिष्टगुणेष्ववध्यमानत्वाच्च, एवं सर्वासु प्रकृतिषु सन्निकर्षो भाव्यः ।

अथ प्रकृतमाह—मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणरूपासु पञ्चप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं
बन्धतो जीवा मतिज्ञानावरणप्रभृतीः शेषाश्चतस्रः प्रकृतीनियमेन बन्धन्ति, आसां प्रकृतीनां ध्रुवबन्धि-

त्वात्, सहैव बन्धविच्छेदाच्च । 'एमेव' इत्यादि, दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायप्रकृतिप्रधान-
सन्निकर्षो ज्ञानावरणीयप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः ॥२८७॥

साम्प्रतं स्वस्थानापेक्षया दर्शनावरणप्रकृतीनां सन्निकर्षमभिदधन्नाह

धीर्गद्धि बंधतो ब्रीडावरणस्तस्य सेसमवयवो ।

नियमा बंधइ एवं पयलपयलनिह्निदाणं ॥२८८॥

निह्निदं बंधेमाणो न वा उ बंधइ धीर्गनिह्निदितं ।

बंधइ चिअ पण सेसा एमेव हवेज्ज पयलाए ॥२८९॥

एगवरिसणावरणं बंधंतो बंधए ऋ सेसाइ ।

तिवरिसणावरणाइ बंधइ न व पंच निह्निदाओ ॥२९०॥

(प्रे०) 'धीर्गद्धि' मित्यादि, स्त्यानर्द्धिदर्शनावरणप्रकृतिं बध्नन् दर्शनावरणस्य चक्षुरचक्षुर-
वधिकेवलदर्शनावरणनिद्राप्रचलानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलारूपा अष्टौ प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, नवप्रकृत्या-
त्मकबन्धस्थान एव स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बध्यमानत्वात्, नवप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्य शेषाष्टप्रकृ-
तिबन्धाऽविनाभावात् । 'एव' मित्यादि, प्रचलाप्रचलानिद्रानिद्राप्रधानसन्निकर्षः स्त्यानर्द्धिप्रधान-
सन्निकर्षवत् समधिगम्यः । 'निह्निद' मित्यादि, निद्राप्रकृतिं बध्नन् जीवः स्त्यानर्द्धिप्रचलाप्रच-
लानिद्रानिद्रालक्षणं दर्शनावरणप्रकृतित्रयं स्याद् बध्नाति, भावना पुनरिहेत्थं भावनीया-निद्रा-
प्रकृतेर्वन्धोऽपूर्वकरणाख्याष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागपर्यन्तं भवति, स्त्यानर्द्धित्रिकस्य च द्वितीय
गुणस्थानकं यावत्, यदा निद्राप्रकृतिबन्धकः प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोर्वर्तते तदा स्त्यानर्द्धित्रिक-
स्य बन्धं प्रकरोति, तद्ध्वंगुणस्थानकेषु च वर्तमानो निद्राप्रकृतिबन्धकस्तद्वन्धं न करोति, अतो
निद्राप्रकृतिबन्धकस्य स्त्यानर्द्धित्रिकबन्धविषयके सन्निकर्षे विकल्पो भवति । 'बंधइ' इत्यादि, चक्षुर-
चक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणप्रचलारूपाः पञ्चदर्शनावरणीयप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, दशमगुणस्थानं यावत्
दर्शनावरणचतुष्कस्य ध्रुवतया बन्धभावात् प्रचलायास्तु निद्रायाः समकमेव बन्धविच्छेदादिति ।
'एमेव' इत्यादि, प्रचलाप्रधानसन्निकर्षो निद्राप्रधानसन्निकर्षवद् भाव्यः । "एगवरिसणावरण"
मित्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमदर्शनावरणं बध्नन् त्रीणि शेषदर्शनावरणानि
नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वात् सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वाच्च । 'बंधइ' इत्यादि, शेषा
निद्रा-प्रचला-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यत एताः प्रकृत-
यश्चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कात् प्राग् बन्धतो व्यवच्छिद्यन्ते ॥२८८-९-२९०॥

अथ वेदनीयायुर्गोत्रकर्मणां स्वस्थानसन्निकर्षं दर्शयन्नाह

एगं तु वेअणीअं बंधेमाणो न चेअ बंधइ ।

तप्पडिअत्वं एव विण्णेयो आउगोआण ॥२९१॥

(प्रे०) 'एग' मित्यादि, सातासातवेदनीययोर्मध्यादेकतरं बध्नन् तत्र प्रतिपक्षभूतं वेदनीयं नैव
बध्नाति, परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्य बन्धेऽपरबन्धविरोधात् । 'एअ' मित्यादि, आयुधा-
२१ क

गोत्रकर्मणोरुत्तरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो वेदनीयप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, आयुष्कर्मणो भावना पुनरित्थं विधेया—एकस्मिन्मवे एकगतिकमेवायुर्व्यव्यते नापरगतिकम्, अतः एकायुर्वन्धेऽपरेषामायुषां बन्धाभायोऽस्ति ॥२९१॥

इदानीं मोहनीयकर्मणां स्वस्थानसन्निकर्षमाह

मिच्छत बंधतो गियमा वधेइ सेसधुववधी ।
 अट्टारस अण्णयरं एग वेअं तहा जुगल ॥२९२॥
 अणमेगं वधंतो बंधइ मिच्छं णवाऽण्णधुवबंधी ।
 मत्तर वधइ गियमा एग वेअं तहा जुगल ॥२९३॥
 मिच्छअणा एगदुइअकसायवधी व ववए गियमा ।
 सेसा धुववधी तह वेअ जुगल च अण्णयरं ॥२९४॥
 मिच्छऽडकसायिगतइअकसायवधी व बंधए गियमा ।
 सेसा धुववधी तह वेअ जुगल च अण्णयरं ॥२९५॥
 वधइ गियमा कमसो वधंतो चरमकोहमयमाया ।
 तिदुइगसंजलणाऽण्णा वा तह अण्णयरवेअजुगलाणि ॥२९६॥ (गीतिः)
 संजलणलोहवधी वा वधेइ धुववधिपयडोओ ।
 सेसा अट्टारस तह वेअं जुगल पि अण्णयरं ॥२९७॥
 पुमवधी संजलणा गियमा वधेइ जेव पडिवक्खा ।
 वा सेसा धुवबंधी पणारस अण्णयरजुगलं पि ॥२९८॥
 बंधइ णपुमवधी वेअदुगं बंधए धुवा गियमा ।
 तह अण्णयरं जुगल एवं थोअ णवरि व मिच्छं ॥२९९॥
 हस्सरइबंधगोऽण्णजुगलं ण वारसकसायमिच्छा वा ।
 गियमेगं वेअं तह सेसेवं अरइसोगाणं ॥३००॥
 वारसकसायमिच्छा वा मयबंधी उ बंधए गियमा ।
 सेसधुवाऽण्णयरजुगलवेओ एमेव कुच्छाए ॥३०१॥

(प्रे०) “मिच्छत्त”मित्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नन्ननन्तानुबन्धिप्रभृतिषोडशकपाया भयकुत्से इत्यष्टादशानां मोहनीयप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदेष्वन्यतमस्य वेदस्य हास्यरतिशोकारति-युगलयोरेकतरस्य युगलस्य च नियमेन बन्धं विदधाति, तत्र ध्रुवबन्धिनीनां ध्रुवबन्धि-त्वात् यथायोगं द्वितीयादिगुणादौ विच्छिद्यमानत्वाच्चाऽन्यामां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वाच्च, अन्यत्राऽप्येतादृशे स्थलेऽयमेव हेतुः समधिगम्यः । “अणमेग” मित्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्क्रमध्येऽन्यतमां क्रोधादिप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयं विक-ल्पेन बध्नाति, तच्चैवम्—मिथ्यात्वप्रकृतेर्वन्धविच्छेदो मिथ्यात्वगुणस्थानकचरमसमये भवति, तस्माद् यदाप्रकृतप्रकृतिबन्धविधायी प्रथमगुणस्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिं बध्नाति द्वितीयगुणस्थानके वर्तते तदा नैव बध्नाति । शेषास्तिस्रोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतयः, अप्रत्याख्यानावरण-

प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपा द्वादशकपायाः, भयजुगुप्से चेति सप्तदशप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंमकेष्वन्यतमवेदस्य, हास्यरतिशोकारतियुगलयोरेकतरस्य च युगलस्य बन्धं नियमेन करोति, उपपत्तिस्त्वह मिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेया । “मिच्छा” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेकां कपायप्रकृतिं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विकल्पतो बध्नाति, भावनाविधिस्त्वित्यम्—मिथ्यात्वमोहनीयं प्रथमगुणस्थानस्य पर्यन्तसमयेऽनन्तानुबन्धिचतुष्कं च द्वितीयगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्येते, अतो यदा प्रकृतप्रकृतिबन्धकः प्रथमगुणस्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयमनन्ताबन्धिचतुष्कं च बध्नाति, द्वितीयतृतीयतुर्यगुणस्थानके वर्तमानो मिथ्यात्वमोहनीयं तृतीयचतुर्थगुणस्थानके वर्तमानश्चानन्तानुबन्धिचतुष्कमपि नैव बध्नाति । स एव प्रधानीकृतक्रोधाद्यन्यतमवर्जाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्के इत्येकादशकपायान् भयजुगुप्से वेदत्रयेऽन्यतम वेदं हास्यादियुगलद्वय एकतरयुगलञ्च नियमेन बध्नाति, धटना पुनरिह मिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेया । “मिच्छाऽञ्च” इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणारूपतृतीयकपायचतुष्केऽन्यतमकपायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कञ्च विकल्पतो बध्नाति, तत्पुनरेवम्—प्रथमद्वितीयतुर्यगुणस्थानकानां प्रान्ते यथाक्रमं मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्केरूपाः प्रकृतयो व्यवच्छिद्यन्ते प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धः पञ्चमगुणस्थानपर्यन्तं वर्तते तस्माद् यदा पञ्चमगुणस्थानके प्रकृतप्रकृतिबन्धकः स्यात् तदा मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीर्न बध्नाति प्रथमगुणस्थानस्थश्च स बध्नाति । शेषास्त्रयः प्रत्याख्यानावरणकपायाः संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से चेति नव ध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीरन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, अत्राऽपि हेतुमिथ्यात्वप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । “बध्” इत्यादि, संज्वलनक्रोधमानमायारूपास्तु तिसृषु प्रकृतिष्वेकतरा प्रकृतिं बध्नन् यथाक्रमं त्रिद्व्येकसंज्वलनप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, इदमुक्तं भवति—संज्वलनक्रोधस्य बन्धकः संज्वलनमानमायालोभरूपास्तिस्रः प्रकृतीः, संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभलक्षणे द्वे प्रकृती, संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति, संज्वलनक्रोधादीनां ध्रुवबन्धित्वे सति क्रमशो व्यवच्छिद्यमानत्वाद्, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायान् भयजुगुप्से अन्यतमवेदमन्यतरञ्च हास्यादियुगलं तथा संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनक्रोधम्, संज्वलनमायाबन्धकः संज्वलनक्रोधमानरूपे द्वे प्रकृतीविकल्पतो बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वेन नवमगुणस्थानकस्य द्वितीयादिभागेषु बोध्यमानत्वेन प्रथमादिगुणस्थानस्थायिना तासां बध्यमानत्वाद्, नवमगुणस्थानद्वितीयादिभागस्थायिनाऽबध्यमानत्वाच्च । “संज्वलन” इत्यादि, संज्वलनलोभस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनक्रोधमानमायात्रयं

भयजुगुप्से चेत्यष्टादशशेषब्रुवन्विमोहनीयप्रकृतीः, अन्यतमवेदं, एकतरं हास्यादियुगलं विकल्पेन बध्नाति, प्रकृतीनामासां प्रथमादिगुणस्थानस्थायिना बध्यमानत्वात्, नवमगुणस्थानपञ्चम-
भागस्थायिना चाऽबध्यमानत्वात् । “पुम” इत्यादि, पुरुषवेदस्य बन्धकः संज्वलनचतुष्कमवश्यमेव
बध्नाति, ब्रुवन्विधत्वे सति पुरुषवेदबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तासां बन्धविच्छेदात् ।

‘णेव’ इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः स्त्रीनपुंसकवेदौ न बध्नाति, एकवेदस्य बन्धे-
ऽपरवेदस्य बन्धविरोधात् । “वा” इत्यादि, पुरुषवेदबन्धविधायी मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धि-
चतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सारूपाणां पञ्चदशब्रुवन्विमोहनीय-
प्रकृतीनामन्यतरस्य च हास्यादियुगलस्य बन्धं विकल्पेन विदधाति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्-पुरुषवे-
दस्य बन्धो नवमगुणस्थानकस्य प्रथमभागपर्यन्तं वर्तते, एतासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदो यथा-
योगं प्रथमगुणस्थानादारभ्याऽष्टमगुणस्थाने भवति, अतो यदा पुरुषवेदबन्धकः प्रथमाद्यष्टमान्त-
गुणस्थानकेषु वर्तमानो यथासम्भवमेताः प्रकृतीर्वध्नाति नवमगुणस्थाने वर्तमानस्तु नैव बध्नाति ।
“बंधह” इत्यादि, नपुंसकवेदं बध्न्न् स्त्रीपुरुषवेदद्वयं नैव बध्नाति, एकवेदस्य बन्धेऽपरस्य बन्धा-
भावात् । मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्ध्यादिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिब्रुवन्वि-
प्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, प्रकृतप्रकृतीनामेकोनविंशतेर्ब्रुवन्विधत्वाद्
अन्यतरहास्यादियुगलस्य च प्रधानीकृतप्रकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वाच्च ।

स्त्रीवेदबन्धकस्यापि मोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो नपुंसकवेदप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः,
नवरं मिथ्यात्वस्य स्याद्बन्धो वक्तव्यः, स्त्रीवेदबन्धविच्छेदादवगोचरं मिथ्यात्वस्य बन्धविच्छेदात्,
तच्च ‘पाधरं’ इत्यादिना विशेषेण दर्शितम् । ‘हस्त’ इत्यादि, हास्यरतियुगलं बध्न्न्
शोकारतियुगलं नैव बध्नाति, तद्विरोधित्वात्तस्य । अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् मिथ्या-
त्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति । आसां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदादूर्ध्वमस्य युगलस्य बन्ध-
विच्छेदादिति । संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से च नियमेन बध्नाति, ब्रुवन्विधत्वे सति संज्व-
लनचतुष्कस्य प्रकृतयुगलस्य पश्चादेव भयकृतसयोश्च तेन सहैव बन्धविच्छेदात्, वेदत्रयेऽ-
न्यतमवेदं नियमेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्-प्रथमगुणस्थानं यावन्नपुंसकवेदमपि बध्नाति
प्रथमद्वितीयगुणस्थानपर्यन्तं स्त्रीवेदमपि बध्नाति तदूर्ध्वं पुनः केवलं पुरुषवेदमेव बध्नातीति ।
वेदत्रयस्याऽब्रुवन्विधत्वेऽपि यथासम्भवमेकवेदस्य नवमगुणस्थानप्रथमभागं यावदवश्यतया बध्य-
मानत्वादिति । ‘एव’मित्यादि, अरतिशोकयोरपि सन्निकर्षो हास्यरतिसन्निकर्षवदवसातव्यः ।
‘भारस्त’ इत्यादि, भयमोहनीयं बध्न्न् अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान्मिथ्यात्वमोहनीयं च
विकल्पेन बध्नाति, यत एताः प्रकृतयो यथायोगं प्रथमादिगुणस्थानकेषु बध्यन्तेऽपूर्वकरणगुणस्थाने
च न बध्यन्ते । संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमवेदं निय-

मेन वध्नाति तत्र संज्वलनचतुष्कस्य जुगुप्सायाश्च क्रमेण ध्रुवबन्धित्वे सति प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तत्समं च बन्धविच्छेदात् शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'एवमेव' इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् विभावनीयः, ध्रुवबन्धित्वे सति सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वादनयोरिति ॥२९२-३०१॥

साम्प्रतमोधतो नामकर्मप्रकृतीनां स्वस्थानसन्निकर्षप्ररूपयिपुरादौ नरकगतिनामप्रकृतेस्तमाह-

गिरयगहं बंधतो, ध्रुवणवगर्पाणिदिविउवदुगहं ।

गिरयाणुपुत्विखगहपरधाऊसासअथिरछयकाणि ॥३०२॥ (गीतिः)

तसचउगं सगवीसा गियमा बंधइ ण सेसगुणचत्ता ।

(प्रे०) 'गिरयगहं' इत्यादि, नरकगतिनामकर्म बध्नन् वर्णचतुष्कतौजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपा नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गहुण्डकसंस्थाननरकानुपूर्वीकुखगतिपराघातोच्छ्वासाऽस्थिराऽशुभदुर्भगदुःस्वराऽनादेयाऽयशःकीर्तिव्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकरूपाः प्रकृतयश्चेति सर्वसंख्यया सप्तविंशतिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, कासाश्चित्प्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वात् कामाश्चित्प्रकृतीनां प्रतिपक्षरहितबन्धप्रायोग्यत्वेन ध्रुवबन्धकल्पत्वाच्च । ' ' इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाहारकद्विके संहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं स्थिरपट्कं स्थावरचतुष्कमातपोद्योतजिननामत्रयं चेत्येकोनचत्वारिंशत्शेषप्रकृतीर्नैव वध्नाति, नरकगतिनाम्ना सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात् ॥३०२॥

अथ तिर्यग्गतिनाम्नः स्वस्थान सन्निकर्षो भण्यते

तिरियगहं बंधतो णवध्रुवउरलतिरिअणुपुव्वी ॥३०३॥

गियमा बंधइ वायवदुगुरलुवंगपरधायऊसासं ।

अण्णयरा वि व बंधइ पयडी सधयणसरखगई ॥३०४॥

गिरयमणुस्ससुरविउवआहारदुगजिणणामकम्माणि ।

बंधेइ णेव गियमाऽण्णाऽण्णयरा जाइआईओ ॥३०५॥

(प्रे०) "तिरिय" इत्यादि, तिर्यग्गतिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीरौदारिकशरीरतिर्यगानुपूर्वीप्रकृतिद्वयं च नियमेन वध्नाति, नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वात् तिर्यग्गतिबन्धस्यौदारिकशरीरतिर्यगानुपूर्वीद्वयबन्धाऽविनाभावित्वात् ।

"वायव" इत्यादि आतपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गपराघातोच्छ्वासनामरूपाः पञ्चप्रकृतीः संहननपट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरदेकं स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरामेकां खगतिं विकल्पेन वध्नाति । किमुक्तं भवति-आतपादिपञ्चकस्य कदाचिद् बन्धकः स्यात् कदाचिच्चाऽबन्धकः, तथा संहननस्वरखगतिप्रकृतिषु प्रत्येकमेकतरप्रकृतेः कदाचिद्बन्धकः स्यात् कदाचिच्चासां सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकः स्यात् । भावना पुनरेवं कर्तव्या-तिर्यग्गतिनामबन्धकः पङ्क्तिविंशति-

बन्धस्थाने आतपनाम षट्त्रिंशतिबन्धस्थाने त्रिंशद्बन्धस्थाने बोधोत्तनाम च वध्नाति, शेषतिर्यक्-
प्रायोग्यबन्धस्थानेषु नैव वध्नाति द्वीन्द्रियादिजातिनामभिरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामैकतमसंहनननाम च
वध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना मह तु नैव वध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले पराघातोच्छ्वास-
नाम्नी वध्नाति अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु नैव वध्नाति । पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृति-
बन्धवेलायामेकतरं स्वरमेकतरं खगतिनाम च वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां तानि
मर्षायपि नैव वध्नाति, तस्मादत्र मन्त्रिकर्षे विकल्पोऽभिहितः । “णिरय” इत्यादि, नरकमनुष्य-
देवगतित्रयं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं देवमनुष्यनरकानुपूर्वीत्रयं जिननाम चेत्येकादशप्रकृतीनैव
वध्नाति, तेन सह बन्धतो विरोधिन्यात्तासामिति । “जियमा” इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातीनामेकतरां
जातिं संस्थानपट्कस्याऽन्यतमसंस्थानं सुस्वरवर्जत्रसनवकेदुःस्वरवर्जस्थावरनवकयुगलानामन्यतरा
नवप्रकृतीनियमेन वध्नाति । किमुक्तं भवति-त्रसस्यावरनाम्नोरेकतरं वध्नाति, आदरक्ष्मनाम्नो
रेकतरं वध्नाति पर्याप्ताऽपर्याप्ताम्नोरेकतरं वध्नाति, एवं प्रत्येकमाधारादिष्वपि वक्तव्यम्
॥३०३-४-५॥

साम्प्रतं मनुष्यगतिनाम्नः स्वस्थानमन्त्रिकर्षं निरूपयन्नाह-

मणुयगड् बंधतो ध्रुवणवगपणिदिउरलजुगलाणि ।

मणुयाणुपुत्विवाधरतसपत्तोभाणि बधए णियमा ॥३०६॥ (गीतिः)

जिणपरधाऊसासं व बंधइ सरखगई वि वाऽण्णयरा ।

सधयणागिइपज्जाइछजुगलाण णियमाऽण्णा णो ॥३०७॥

(प्रे०) ‘मणुयगड्’ मित्यादि, मनुष्यगतिनाम वध्नन् नामनवध्रुवबन्धप्रकृतयः पञ्चेन्द्रिय-
जात्यौदारिकगरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गमनुष्यानुपूर्वीवादरत्रमप्रत्येकरूपाः नवप्रकृतयश्चेति षोडश प्रकृतीनि-
यमेन वध्नाति, नवनामध्रुवबन्धनीनां ध्रुवबन्धत्वात् मनुष्यगतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि बध्यमान-
त्वाच्च तथा मनुष्यगतिबन्धस्य प्रकृतपञ्चेन्द्रियजात्यादिप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । ‘जिण’
इत्यादि, जिनपराघातोच्छ्वासनामानि विकल्पेन वध्नाति, स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरस्वरमन्य-
तरां खगतिं च विकल्पेन वध्नाति । तद्भावना-मनुष्यगतेर्बन्धः पञ्चविंशतिबन्धस्थाने एकोनत्रिंशद्-
बन्धस्थाने त्रिंशद्बन्धस्थाने च भवति तत्रापर्याप्तप्रायोग्यपञ्चविंशतिं वध्नन् खगतिस्वरयोः सर्वथाऽबन्धरु-
स्तथैव जिनपराघातोच्छ्वासप्रकृतीरपि नैव वध्नाति । शेषबन्धस्थानद्वये पराघातोच्छ्वासनाम्नी,
अन्यतरां खगतिमन्यन्तरस्वरनाम च वध्नाति एकोनत्रिंशतो बन्धको जिननाम न वध्नाति त्रिंशतं
वध्नन् सम्यग्दृष्टिर्देवो नास्को वा जिननाम वध्नाति । ‘सधयण’ इत्यादि, देहलीदीपकन्यायेन ‘अन्य-
तर’ पदं बह्वननादिपदैः सार्धमपि मन्वन्धनीयम्, सहननपट्केऽन्यतमबह्वननं संस्थानपट्केऽन्य-
तमसंस्थानं, पर्याप्तापर्याप्तयोः स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः सुभगदुर्भगयोराद्यानादेययोर्यशःकीर्त्य-
यशःकीर्त्याश्च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमतो वध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतमप्रकृति-

बन्धाविनाभावित्वात् । 'अण्णा' इत्यादि, देवद्विकनरकद्विकतिर्यग्द्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकस्थावर-
सूक्ष्मसाधारणाऽऽतपोद्योतरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्न वध्नाति, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तगतिप्रायोग्यप्रकृ-
तिवन्धेन सहाऽऽसां प्रकृतीनां बन्धभावात् ॥३०६-७॥

अथ देवगतिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षं चिन्तयन्नाह-

देवगइ वधंतो ध्रुवणवगपणिदिचिउवजुगलाणि ।

पढमागिइसुखगइपरधाऊसाससुरअणुपुव्वी ॥३०८॥

तसचउगं सुहगतिगं णियमाऽण्णयरा थिराइजुगलतिगां ।

व जिणाहारकुगाइं णाऽण्णा सगइव्व आणुपुव्वीणं ॥३०९॥ (गीति)

(प्रे०) 'देवगइ' इत्यादि, देवगतिनामकर्म वधन् नव ध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पञ्चेन्द्रिय-
जातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वासदेवानुपूर्वीत्रसवादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसु-
स्वरदेयरूपाः पञ्चदशप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां तु तद्वन्धाविना-
भावित्वाद्देवगतिवन्धस्य । 'ऽण्णयरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च
प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति । 'व' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रय विक-
ल्पेन वध्नाति, तद्यथा-जिननामसत्कर्म देवगतिमावधन् तीर्थकृन्नाम वध्नाति, तदितरस्तु न
वध्नाति, कश्चिद् देवगतिं वधन् सप्तमाष्टमगुणस्थानयोराहारकद्विकं वध्नाति तदितर-
स्तु न वध्नाति । 'णाऽण्णा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव वध्नाति, देवगतिभिन्न-
गतिभिः सह यथायोगं बन्धप्रायोग्यत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयमे-
केन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभसुखगतिर्नरकतिर्यग्-
मनुष्यानुपूर्वीत्रयं स्थावरचतुष्कं दुर्भगदुःस्वरानादेयत्रयमातपोद्योतनाग्नी चेति त्रयस्त्रिंशदिति ।
'सगइव्व' इत्यादि, नरकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीचतुष्कप्रधानसन्निकर्षः स्व-स्वगतिप्रधानसन्निकर्षवद्
द्योद्वयः, तद्यथा-देवानुपूर्वीनामप्रकृतेर्देवगतिवत्, मनुष्यानुपूर्वीनामप्रकृतेर्मनुष्यगतिवत्, एवं
तिर्यग्नरकानुपूर्वीनामगोरपि वक्तव्यम् ॥३०८-९॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियजातिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्षो भण्यते-

णियमेगिदियवधी बधेइ खलु णवधुवतिरिकुगाणि ।

ओरालहुं डथावरकुहगाणादेयणात्माणि ॥३१०॥

परधाऊसासायवकुगाणि व ध्ववायराइजुगलाण ।

बंधइ चित्र छऽण्णयरा ण उ सेसा यावरस्सेवं ॥३११॥

(प्रे०) 'णियमे' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौ-
दारिकशरीरद्वुण्डकसंस्थानस्थावरदुर्भगानादेयनामानि च नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां
तु तद्वन्धाविनाभावित्वादेकेन्द्रियजातिवन्धस्य । 'परधा' इत्यादि, पराधातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि
विकल्पेन वध्नाति, तद्यथा-अपर्याप्तनाम्ना सहैकेन्द्रियनाम वधन् पराधातोच्छ्वासनाम्नी न

बध्नाति, पर्याप्तनाम्ना च सह ते बध्नाति, पञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं बध्नन्नातपोद्योतनाम्नो-
रन्यतरद् बध्नाति, त्रयोविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं पञ्चविंशतिप्रकृतिबन्धस्थानं वा बध्नन् नैव
बध्नाति, अतोऽत्र सन्निकर्षे विभाषा प्रदर्शिता । 'छायाचरा' इत्यादि, बादरस्रक्षपार्याप्ताऽपर्याप्ति-
प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपेषु पट्युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
नियमतो बध्नाति, प्रवानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतरप्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् । 'ण छ'
इत्यादि, उक्तातिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धं न करोति, द्वीन्द्रियादिबन्धप्रायोग्यत्वात् ।
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नरकमनुष्यदेवगतित्रयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रिय-
द्विकमाहारकद्विकं संहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं नरकमनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयं त्रस-
सुभगसुस्वरादेयनामानि दुःस्वरनाम जिननाम चेति चतुस्त्रिंशदिति । 'थावरस्सेवं' इति, स्थावर-
प्रधानसन्निकर्ष एकेन्द्रियप्रधानसन्निकर्षवदधिगम्यः, स्थावरनाम्ना एकेन्द्रियजात्या सह नियमेन बध्य-
मानत्वात् ॥३१०-११॥

साम्प्रतं द्वीन्द्रियादिजातित्रयस्य स्वस्थानसन्निकर्षमाह

विगलबलं बंधंतो णवधुवतिरिउरलतसकुगाणि सहा ।

छेवट्टं पत्तमं कुहगाणादेयहुंउाणि ॥३१२॥

णियमाऽणयरा चउरो चउपज्जाइजुगलाण बंधेइ ।

कुसरखगइपरधाकसामुक्खोआणि ब ण सेसा ॥३१३॥

(प्रे०) 'विगल' इत्यादि, 'त्रिकलाक्षं' द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजातिरूपं, तस्मिन्नेक-
तममिन्द्रियजातिनाम बध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्गातितिर्यगानुपूर्व्यौदारिकशरीरौदारि-
काङ्गोपाङ्गत्रयत्वादरसेवातसंहननप्रत्येकदुर्भगाऽनादेयहुण्डकसंस्थानरूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमतो
बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां आश्रित् शेषाणां पुनस्तच्चजातिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । "अण्ण-
धरा" इत्यादि, पर्याप्ताऽपर्याप्तिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपेषु चतुर्युगलेषु प्रत्येक-
मेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुरत्रैकेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'कुसर' इत्यादि, दुःस्व-
राऽशुभखगतिपराघातोच्छ्वासोद्योतरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां बन्धं विकल्पेन करोति, यतोऽपर्याप्तनाम-
बन्धकोद्वीन्द्रियादिजातिं बध्नन्नेताः प्रकृतीर्बध्नाति, तदितरः पुनर्बध्नाति । 'ण' इत्यादि, एतद्व्य-
तिरिक्तनामप्रकृतीनां बन्धं न करोति, शेषप्रकृतीनां द्वीन्द्रियादिजातिनाम्ना सह विरोधित्वात् ।
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—देवनरकमनुष्यगतित्रयं स्वजातिवर्जजातिचतुष्कं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं
प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिर्देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयं सुभगसुस्वरादेयत्रयं
स्थावरस्रक्षसाधारणत्रयमातपजिननामद्वयं चेति त्रयस्त्रिंशदिति ॥३१२-१३॥

अथ पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नः स्वस्थानसन्निकर्ष प्रतिपादयति

पञ्चक्खं बंधंतो णवधुवपत्तोअवायरतसाणि ।

णियमा वाऽऽहारगदुगजिणपरघूसासज्जोअं ॥३१४॥

चउजाइथावरदुगायवसाहाराणि जेव बंधेइ ।

संधयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१५॥

(प्रे०) पञ्चक्खं' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम बन्धनं नवधुवनन्धिनामप्रकृतयः प्रत्येक-
नादत्रसनामप्रकृतयश्चेति द्वादशप्रकृतीनां बन्धं नियमेन विदधाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बद्धं, शेषाणां तु
पञ्चेन्द्रियजातिबन्धस्य शेषबन्धाविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि, आहारकद्विकजिननामपराधातो-
च्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्-अप्रमत्तसंयतेषु कश्चन पञ्चेन्द्रियजाति-
बन्धक आहारकद्विकं बध्नाति, तदितरस्तु नैव बध्नाति । निकाचितजिननामा पञ्चेन्द्रियजाति
बन्धनं जिननाम बध्नाति, न त्वन्यः । अपर्याप्तनामबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिमात्रबन्धनं पराधातोच्छ-
वासनाम्नी न बध्नाति, पर्याप्तनामबन्धकश्च बध्नाति । पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः
कश्चित् पञ्चेन्द्रियजातिनाम बन्धननुद्योतनाम बध्नाति, तदितरो मनुष्यादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः
पञ्चेन्द्रियजातिमात्रबन्धनं नैव बध्नाति तरगादत्र प्रकृतीनामासां बन्धस्य विभाषा कृता ।
'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरसूक्ष्मातपसाधारणनामानि नैव बध्नाति, आसां
प्रकृतीनां बन्धस्य पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सह विरोधात् । 'संधयण' इत्यादि, पट्सु संहन-
नेषु स्वरद्वये खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतमामेकामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, कथमिति चेद्,
आह-पञ्चेन्द्रियजातिं बध्नन् यदा देवनरकप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा संहननं सर्वथैव न
बध्नाति, देवनरकेषु संहननाभावात्, यदा पुनर्मनुष्यतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति तदा संहनन-
मेकतमद् बध्नाति । अपर्याप्तनामबन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाले स्वरखगतिनाम्नी नैव बध्नाति,
तदितरस्तु बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
नियमेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्यैतदन्यतरप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् एवमेतादृशस्थले-
ऽन्यत्राऽपि हेतुः स्वयं भाव्यः । ते चेमे शेषप्रकृतिसमूहाः-गतिचतुष्कम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम्,
औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयम्, संस्थानपट्कम् आनुपूर्वीचतुष्कम्, पर्याप्ताऽपर्याप्ते, स्थिराऽस्थिरे,
शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति ॥३१४ १५॥

इदानीमौदारिकशरीरान्नाम्नः सन्निकर्षं दर्शयति ।

उरलतणुं बंधंतो णवधुवबंधी उ बंधएणियमा ।

वा जिणपरधाऊसासायवदुगउरलुवगाणि ॥३१६॥

बंधइ जेव णिरयसुरविउवाहारजुगलाणि बंधइ वा ।

संधयणस्सरखगई अण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१७॥

(प्रे०) “उरलतणु” इत्यादि, औदारिकशरीरनाम बन्धनन्वध्रुववन्धिनामप्रकृतीनियमेन बध्नाति, ध्रुववन्धित्वे सति तदूर्ध्वं बन्धविच्छेदात् । “वा” इत्यादि तीर्थकृन्नामपराधातोच्छ्वासातपोधो-
 तौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो बध्नाति, जिननामपराधातोच्छ्वासानाम्नां सन्निकर्षविषया
 भावना पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवत्कर्तव्या । आतपोधोतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रकृतीनां तु भाव-
 नैवम्-पञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानमावधनौदारिकशरीरनामबन्धक आतपोधोतयोरन्यतरां प्रकृतिं
 बध्नाति, पञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं त्रयोविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं वा बध्नन् स
 आतपोधोतनाम्नी नैव बध्नाति । एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाल औदारिकशरीरबन्धक औदा-
 रिकाङ्गोपाङ्गं नैव बध्नाति, द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु तद् बध्नातीतिकृत्वाऽत्र
 विकल्पोऽभिहितः । “बध्द णेव” इत्यादि, नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानि स नैव
 बध्नाति, विरोधात् । “संघयण” इत्यादि, संहननपट्के स्वरद्वये खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतमां
 प्रकृतिमपि विकल्पेन बध्नाति, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकाल औदारिकशरीरनामबन्धकेनाऽन्यतमप्रकृतीना-
 मासां बध्यमानत्वात्, एकेन्द्रियजातिबन्धकालेऽवध्यमानत्वाच्च । “णियमा” इत्यादि, उक्ता-
 तिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि प्रकृतिवृन्दानि-
 तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, जातिपञ्चकम्, सस्थानपट्कम्, तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, स्वरवज्रसादि-
 नवशृगलानि चेति ॥३१६-१७॥

अधुनौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः सन्निकर्षं निरूपयिषुराह

ओरालुवगवधी णवधुवपत्तोअवायधेरलतसं ।

णियमां बध्द वा जिणपरधाऊसासउज्जोअं ॥३१८॥

थावरदुगायवविउवछवकाहारदुगिगिदिसाहारं ।

ण उ बध्द सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३१९॥

(प्रे०) “ओरालुवगवधी” इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धको नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीः
 प्रत्येकत्रादरौदारिकशरीरव्रसनानामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां पूर्ववत्, शेषाणां पुनरौदा-
 रिकाङ्गोपाङ्गबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । “वा” इत्यादि, जिनपराधातोच्छ्वासोद्यो-
 तनामानि विकल्पतो बध्नाति, भावना पुनरिह पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नः सन्निकर्षवत्कार्या । “थावर”
 इत्यादि, स्थावरसूक्ष्मातपदेवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकैकेन्द्रियजातिसाधारणनामानि नैव
 बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धस्यौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्ना सह विरोधात् । “सरखगई” इत्यादि,
 स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा-औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धकोऽ-
 पर्याप्तनाम्ना सह प्रकृतीरेता न बध्नाति, पर्याप्तनाम्ना तु बध्नाति । “णियमा” इत्यादि,
 अत्राऽपि ‘ऽण्णयरा’ इति पदमभिसम्बध्यते । अभिहितेतरशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं

नियमेन वध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिप्रजानि—तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, द्वीन्द्रियादि-
जातिचतुष्कम्, संहननपट्कम्, संस्थानपट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, पर्याप्ताऽपर्याप्ते,
स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, आदेयाऽनादेये, यशःकीर्त्यशकीर्तिनाम्नी चेति ॥३१८९॥

अथ वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नोः सन्निकर्षमाह—

विउवं तथुं उवंगं वा बंधंतो ण तिरिणरुल्लदुगं ।

संधयराजाइआगिइथावरचउगायवडुगाणि ॥३२०॥

तित्थाहारदुगाणि व सेसागिइगइणुपुव्विखगईणं ।

छयिराइगजुगलाणं णियमा ऽण्णयरा वि णियमाऽण्णा ॥३२१॥

(प्रे०) “विउवं” इत्यादि, वैक्रियशरीरनाम वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम वा वध्नन् तिर्यग्द्विक-
मनुष्यद्विकौदारिकद्विकसंहननपट्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्थावरचतुष्कातपोधो-
तनामानि नैव वध्नाति, वैक्रियद्विकेन सममामां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । “तित्थाहार”
इत्यादि, तीर्थकृत्नामाहारकद्विकलक्षणं प्रकृतित्रयं विकल्पेन वध्नाति, तच्चैवम्-जिननामसत्कर्मा
वैक्रियद्विकबन्धाऽवसरे जिननाम वध्नाति तद्व्यातिरिक्तश्च न वध्नाति, कश्चिदप्रमत्तसंयतो
वैक्रियद्विकं वध्नन्नाहारकद्विकं वध्नाति तदन्यः पुनर्नैव वध्नाति, अतोऽत्र विकल्पितः ।
“सेसा” इत्यादि, देवनरकगतिद्वये समचतुरस्रहुण्डकसंस्थानद्वये देवनरकानुपूर्वीद्वये शुभाशुभ-
खगतिद्वये स्थिरास्थिरे शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, सुस्वरदुःस्वरे, आदेयानादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ति-
द्वये च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, । ‘णियमा’ इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तानां
शेषप्रकृतीनां बन्धं नियमेन करोति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ध्रुवबन्धिन्यो नव नामप्रकृतयः,
त्रसचतुष्कम्, पराधातोच्छ्वासनाम्नी, पञ्चेन्द्रियजातिरिति षोडशप्रकृतयः, तथा वैक्रियशरीरनाम्नो
बन्धेन सह वैक्रियाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियाङ्गोपाङ्गेन च सार्द्धं वैक्रियशरीरनामेति सप्तदशप्रकृतयः
तत्र शेषासु ध्रुवबन्धिनीनां पूर्ववद्, इतरासां पुनर्वैक्रियद्विकबन्धस्येतरबन्धाविनाभावित्वात्
॥३२०-२१॥

इदानीमाहारकद्विकस्य सन्निकर्षं चिन्तयन्नाह

वाहारगतपुव्वघी जिण धुवऽण्णसुरजोभगसुहावीस ।

णियमा बंधइ सेसा ण एवमाहारवंगस्स ॥३२२॥

(प्रे०) ‘वाहारग’ इत्यादि आहारकशरीरनाम वध्नन् जिननाम विकल्पतो वध्नाति, जिनना-
मसत्कर्माणाऽऽहारकशरीरनामबन्धकेनाऽप्रमत्तसंयतेन बध्यमानत्वात् तदितरेणाऽप्रमत्तसंयतेनाऽब-
ध्यमानत्वाच्च । ‘ध्रुवण्ण’ इत्यादि जिननाम वर्जयित्वा ध्रुवनामनवकशेषदेवप्रायोग्यशुभविंशतिप्रकृती-
नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद्, शेषदेवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वादाहारकशरीर-
बन्धस्य, अयमत्र भावः—त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकदेवप्रायोग्यबन्धस्थानाद् बध्यमानाहारकशरीरवर्जशेषैकोनत्रिं-
२२ख

शब्द प्रकृतयो ग्राह्याः । तत्रैवमा देवप्रायोग्या एकोनत्रिंशत् प्रकृतयः-देवद्विकम्, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियद्विकम् समचतुरस्रसंस्थानम्, सुखगतिः, त्रसदशकम्, नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयः, पराधातोच्छ्वाससे, आहारकाङ्क्षोपाङ्गञ्चेति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषानरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदारिकद्विकम्, संहननपट्कम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, अशुभखगतिः, स्थावरदशकम्, आतपोद्योतनाग्नी चेति पट्त्रिंशत्प्रकृतीर्न वध्नाति आहारकशरीरनाम्ना सह प्रकृतशेषप्रकृतिवन्धस्य विरोधात् । 'एव'मित्यादि आहारकाङ्क्षोपाङ्गप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवद् वेदयितव्यः ॥३२२॥

साम्प्रतं ध्रुववन्धिनामप्रकृतिसत्कं सन्निकर्षमभिव्यक्तुराह

वधंतो एगधुवं सेसधुवा अट्ट वंधए णियमा ।
वाहारायवदुगजिणपरधाऊसासणामाणि ॥३२३॥
अण्णयर वि व ववइ संधयणसरदुउवंगखगईओ ।
सेसा गइआईओ, अण्णयर वंधए णियमा ॥३२४॥

(प्रे०) 'वधंतो' इत्यादि, नामकर्मणो ध्रुववन्धिनीमेकां प्रकृतिं वधन् शेषा अष्टौ ध्रुववन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, एकतरैतत्प्रकृतिवन्धेन सहाऽन्यासामष्टानां वन्धस्याऽविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि आहारकद्विकातपोद्योतजिननामपराधातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो वध्नाति, आहारकद्विकजिननामपराधातोच्छ्वासोद्योतप्रकृतिसत्कसन्निकर्षविषया भावना पञ्चेन्द्रियजातिनामप्रधानसन्निकर्षवत्कर्तव्या । आतपनाग्नाः सन्निकर्षस्य तु भावनौदारिकशरीरप्रधानसन्निकर्षवत्कार्या । 'अण्णयर' इत्यादि, संहननपट्के, स्वरद्वये, औदारिकाङ्क्षोपाङ्गवैक्रियाङ्क्षोपाङ्गद्वये, खगतिद्वये च प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति, सप्रतिषष्ठत्वात्, एकेन्द्रियप्रायोग्यवन्धकस्याऽऽसां वन्धामात्राच्च । 'सेसा' इत्यादि, उक्तभिन्नशेषप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, ते चेमे शेषप्रकृतित्राताः-गतिचतुष्कं, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वये, संस्थानपट्कम् आनुपूर्वीचतुष्कम्, सुस्वरदुःस्वरवर्जत्रसस्थावरनवयुगलानि चेति ॥३२३-२४॥

इदानीं वधर्षमेनाराचसंहनननाम्नः सन्निकर्षमाह

वहरं वधेमाणो णियमा वधइ पणिदिउरलदुगं ।
णवधुववंधी सह परधाऊसासतसचउगाणि ॥३२५॥
विउवछगाहरदुगायवथावरजाइचउगसंधयणा ।
ववइ ण जिणुण्णोअं वा णियमा अण्णयरसेसा ॥३२६॥

(प्रे०) 'वहरं' इत्यादि, वधर्षमेनाराचसंहननप्रकृतिमावधन् पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासत्रसवादरपर्याप्तप्रत्येकनामानि चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति,

तत्र ध्रुवाणां प्रागवत्, इतरासां तु वज्रर्षमसंहननप्रकृतिबन्धस्येतरबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'चिउव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवद्विकनरकद्विकाहारकद्विकातपस्थानवरचतुष्कजातिचतुष्कद्वितीयादिसंहननपञ्चक-
रूपा द्वाविंशतिप्रकृतीर्नैव वध्नाति । भावनाविधिस्त्वेवम्—वज्रर्षमनाराचसंहननप्रकृतिं पर्याप्ततिर्यक्प-
ञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्भनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्वा वधन् वध्नाति, संहननपञ्चकवर्जा एताः प्रकृतयस्तदि-
तरप्रायोग्या वर्तन्ते तरगात्ताः प्रकृतीर्वज्रर्षमनाराचसंहननबन्धको नैव वध्नाति, संहननपञ्चकस्य तु
विरुद्धप्रकृतित्वेन तेन तद्वन्धो न क्रियते । 'जिणु' इत्यादि, जिननामोद्योतनामी विकल्पेन वध्नाति,
तद्यथा—जिननामसत्कर्मणो देवनारका वज्रर्षमनाराचसंहननप्रकृतिमावधन्तो जिननाम वधन्ति,
तदपरे तु नैव वधन्ति । पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले कश्चित्प्राणी वज्रर्षमना-
राचसंहननबन्धक उद्योतनाम वध्नाति, कश्चिच्च नेत्यतो विकल्पतोऽभिधानं कृतम् । "जियमा"
इत्यादि, अत्र भाषितभिन्नशेषप्रकृतित्रयेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमतो वध्नाति, तानि चेमानि
शेषप्रकृतित्रयानि—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयम्, संस्थानपट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम् खगतिद्वयम्,
स्थिरास्थिरपट्के चेति ॥३२५-२६॥

साम्प्रतं द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्कयोः सन्निकर्षं भणति ।

एमेव सण्णियासो दुइआईणं चउण्ह जिण्यो ।

सधयणआगिईणं णवरं बंधइ ण चिअ तित्त्यं ॥३२७॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, ऋषभनाराचनाराचाऽर्धनाराचकीलिकासंहननचतुष्कस्य न्यग्रोधसादि-
वाभनकुञ्जसंस्थानचतुष्कस्य च सन्निकर्षो वज्रर्षमनाराचसंहननसन्निकर्षवद् वक्तव्यः । ननु वज्र-
र्षमनाराचसंहननसन्निकर्षे जिननाम्नः सन्निकर्षो विकल्पेन प्रतिपादितः तदत्र कथं युज्यते, यतो
द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्कबन्धकैर्जिननाम नैव वध्यते, प्रकृतप्रकृत्यष्टकबन्धस्य द्वितीयगुणस्थानं
यावेदेव सद्भावात्, जिननाग्नस्तु चतुर्थादिगुणस्थानकेषु बन्धभावादित्याशङ्कामपहर्तुं "णवर"
मित्यादिनाह—द्वितीयादिसंहननसंस्थानचतुष्काम्यां सह जिननाम्नाः सन्निकर्षो नास्ति ॥३२७॥

इदानीं सेवार्तसंहननसन्निकर्षमावेदयितुमाह—

छेवडुं वधंतो णिगिदियाहारदुगविउवछक्कं ।

पणसधयणजिणायवथावरसुहमाणि साहारं ॥३२८॥

परधूसोसुण्णोअ बंधइ व सरखगई वि अण्णयर ।

धुवणवगउरलतसदुगपत्तेआणि णियमाऽण्णयरसेसा ॥३२९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "छेवडु" इत्यादि, सेवार्तसंहननप्रकृतिं वधन्नेकेन्द्रियजात्याहारकद्विकनरकद्विकदेव-
द्विकेवैक्रियद्विकप्रथमादिसंहननपञ्चकजिननामातपस्थावररक्षमसाधारणनामानि नैव वध्नाति,
तद्यथा—सेवार्तसंहननबन्धकस्य प्रथमादिसंहननपञ्चकस्य विरोधादेव बन्धाभावोऽस्ति । तथा
पर्याप्ताऽपर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्वधन् मिथ्यादृष्टिः सेवार्तसंहननप्रकृतिं

वध्नाति, संहननपञ्चकभिन्नशेषैकेन्द्रियजात्यादिप्रकृतीनां कथितेतरजीवप्रायोग्यत्वात् सम्यग्दृष्टिवन्ध-
प्रायोग्यत्वाद् वा सेवार्तसंहननेन सह बन्धाभावः । “परधा” इत्यादि, पराधातोच्छ्वासोद्योतनामानि
विकल्पेन वध्नाति, तथा स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति । भावना
पुनरेवं विधेया—अपर्याप्तनामबन्धकाले सेवार्तसंहननप्रकृतिवन्धकः पराधातोच्छ्वासनाम्नी अन्य-
तरां स्वरप्रकृतिं खगतिप्रकृतिं च न वध्नाति, पर्याप्तनामबन्धकाले तु वध्नाति । पर्याप्तविकल्-
पतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकः कश्चित् सेवार्तसंहननं वध्नन्नुद्योतनाम वध्नाति कश्चिच्च न
वध्नाति, अतोऽत्र विभाषा प्रदर्शिता । “ध्रुव” इत्यादि, नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीरौदारिकद्विकत्रस-
द्विकप्रत्येकनामानि च नियमेन वध्नाति, हेतुरुभयत्र प्राग्बद्धनुबन्धेयः । “अण्णयर” इत्यादि
उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, इमानि च तानि प्रकृति-
वृन्दानि—तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, संस्थानपट्कम्, तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्,
पर्याप्ताऽपर्याप्तद्वयम्, सुस्वरवर्जस्थिरपञ्चकदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चके चेति सर्वसंख्यया प्रकृतयः पञ्चविंश-
तिरिति । ३२८-२९॥

साम्प्रतं समचतुरस्रसंस्थानस्य सन्निकर्षं कथयति

पढमागिद्वंधी णवध्रुवतसचउगपरधायकसासं ।

पंचिदिय च णियमा व जिणाहारदुगउज्जोवं ॥३३०॥

णिरयदुगजाइयावरचउगागिद्वपणगआयवाणि ण ड ।

वाऽण्णयरं सधयण वधइ णियमाऽण्णयरसेसा ॥३३१॥

एमेव सण्णियासो सुहलगइसुहगतिगाण विण्णेयो ।

(प्रे०) “पढमा” इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानबन्धको नाम्नो नवध्रुववन्धिप्रकृतीस्त्रसप्त-
तुष्कपराधातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातिनामानि च नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बद्ध इतरासां
तु समचतुरस्रसंस्थानबन्धस्येतरबन्धाऽविनाभावात् । “जिणा” इत्यादि, जिननामाऽऽहारक-
द्विकोद्योतनामानि विकल्पेन वध्नाति, भावना पुनरिह पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवत्कार्या । “णिरय”
इत्यादि, नवद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकातपनामानि नैव
वध्नाति, आमां प्रकृतीनां बन्धस्य समचतुरस्रसंस्थानप्रकृत्या साकं विरोधात् । “वा”
इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतमं संहननं विकल्पतो वध्नाति, यतो देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकः
स नैव वध्नाति तिर्यग्मनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकश्च वध्नाति । “णियमा” इत्यादि,
भणितेतरप्रकृतित्रयेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, तानि चेमानि प्रकृति-
त्रयानि—तिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयम्, औदारिकशरीरवैक्रियशरीरे, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे, तिर्यङ्म-
नुष्यदेवानुपूर्वीत्रयम्, खगतिद्वयम्, स्थिराऽस्थिरपट्के चेति सर्वसंख्यया प्रकृतयश्चतुर्विंशतिरिति ।

‘एमेव’ इत्यादि, शुभविहायोगतिसुभगसुस्वरादेयनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः समचतुरस्रसंस्थानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । इदं त्वत्राऽवधेयम्—आसां प्रकृतीनां सन्निकर्षविषये स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतीनामबन्धक एव ज्ञातव्यः, तथा संस्थानपट्केऽन्यतमस्यैव बन्धको ज्ञेयः । एवं सर्वत्र योजनीयम् ।

॥३३०-३१॥

अधुना हुण्डकसंस्थानस्य दुर्भगानादेययोश्च सन्निकर्षमावेदयितुमाह—

हुंडं बंधंतो णवधुवबंधी बंधए णियमा ॥३३२॥

बंधइ देवाहारगवुगपंचागिइजिणाणि णो चेव ॥

परधाऊसासायवकुगणामाई व बंधेइ ॥३३३॥

संधयणुवंगकुगसरखगई वा बंधए वि अण्णयर ॥

णियमाऽण्णा गइआई दुहगाणादेयगाजेवं ॥३३४॥

(प्रे०) ‘हुंड’ मित्यादि, हुण्डकसंस्थानं वध्नन् नवध्रुववन्धनामप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ध्रुववन्धित्वात्, हुण्डकसंस्थानवन्धविच्छेदादूर्ध्वं तद्वन्धविच्छेदाच्च । ‘बंधइ’ इत्यादि, देवद्विकाहारकद्विकप्रथमादिसंस्थानपञ्चकजिननामानि नैव वध्नाति, हुण्डकसंस्थानेन सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात् । ‘परधा’ इत्यादि, पराधातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि विकल्पेन वध्नाति, तद्यथा—पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले हुण्डकसंस्थानवन्धकः पराधातोच्छ्वासनाग्नी वध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले च नैव वध्नाति, तथा तिर्यकप्रायोग्यपट्विंशतिप्रकृतिवन्धस्थानं वध्नन् स आतपनाम, तिर्यकप्रायोग्यं पट्विंशतिप्रकृतिवन्धस्थानं त्रिशत्प्रकृतिवन्धस्थानं वा वध्नन्तुद्योतनाम च वध्नाति, तदितरहुण्डकसंस्थानप्रायोग्यवन्धस्थानानि वध्नन्नातपोद्योतनाग्नी नैव वध्नाति, अतो हुण्डकनाम्ना सहाऽऽसां वन्धोऽनियतो विज्ञेयः । ‘संधयणु’ इत्यादि, संहननपट्के औदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोः स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति, यत एकेन्द्रियजातिवन्धको हुण्डकसंस्थानवन्धकाले प्रकृतीरेता न वध्नाति, द्वीन्द्रियादिजातिवन्धकस्तु यथायोगं वध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रयम्, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम् नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम् स्वरद्वयवर्जव्रतादिनवपुगलानि चेति । ‘दुहग’ इत्यादि, दुर्भगानादेयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो हुण्डकसंस्थानप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः, तुल्यत्वात्, अत्र पुनर्यः कश्चिद् विशेषः, स तु पूर्ववत् सुगमत्वात् स्वयं ज्ञातव्यः ।

॥३३२-३-४॥

अथ कुलगतोः सन्निकर्षमाह

दुखखगई बंधंतो वुज्जोअं संहइ व अण्णयर ॥

णियमा धुवबंधी परधाऊसासतसचउगाणि ॥३३५॥

जिणथावरचउगायवदेवाहारदुगिगिदिखगई णो ।

णियमा सेसाण्णयरा गइआई दुस्सरस्सेवं ॥३३६॥

(प्रे०) 'दुक्खगई' इत्यादि, अशुभविहायोगतिं वधननुद्योतनाम विकल्पेन वध्नाति, यतो विकलत्रिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽशुभविहायोगतिं वध्नता केनचिदुद्योतनाम वध्यते केनचित्तु न वध्यते । 'संहई' इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतमसंहननं विकल्पेन वध्नाति, कुलगतिवन्धकेन नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽन्यतमसंहननस्याऽवध्यमानत्वात्, तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च वध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पराघातोच्छ्वासत्रयचतुष्कप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद् शेषाणां तु कुलगतिवन्धस्य शेषबन्धाविनाभावित्वात् । 'जिण' इत्यादि, जिननामस्थावरचतुष्कातपदेवद्विकाहारकद्विकैकेन्द्रियजातिसुखगतिप्रकृतीर्नैव वध्नाति, भावना पुनर्त्रैवमाधेया-कुलगतप्रकृतिः पर्याप्तप्रस-प्रायोग्यप्रकृतिभिः सार्धमेव वध्यते, तस्मात्तद्विभिन्नैकेन्द्रियप्रायोग्याणामपर्याप्तप्रायोग्याणां वा स्थावरचतुष्कैकेन्द्रियजात्यातपप्रकृतीनां बन्धोऽशुभखगतिनाम्ना सह विरुद्धः, तथा कुलगतप्रकृतेर्वन्धो द्वितीयगुणस्थानं यावदेव भगति, जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां तु यथायोगं चतुर्थादिगुणस्थानकेषु भवति, अत आसां बन्धोऽशुभखगतिप्रकृत्या सह विरुद्धः, देवद्विकेन सार्द्धं सुखगतेरेव बन्धसङ्गावेन कुलगतप्रकृतिबन्धो तेनाऽपि सह विरुद्धः, तथा खगतिसामान्याभिधानेऽपि प्रकृतकुलगतेः प्रतिपक्षभूतायाः सुखगतेरेवादानं कार्यम् । तस्या अपि प्रतिपक्षभूतत्वादेव प्रकृतप्रकृत्या सह बन्धाभावः तस्मादत्र प्रकृतीनामासां निषेधात्मकः सन्निकर्ष उपदर्शितः । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितातिरिक्तशेषप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, इमानि च तानि शेषप्रकृतिव्रजानि-नरकतिर्यङ्मनुष्यगतित्रयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, संस्थानपट्कम्, औदारिकवैक्रियशरीरद्वयम्, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयम्, नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, स्थिरास्थिरपट्के चेति । 'दुस्सरस्सेव' मिति दुःस्वरनामप्रधानसन्निकर्षः कुलगतप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः ॥३३५-६॥

अथ पराघातोच्छ्वासपर्याप्तिनाम्नां सन्निकर्षं प्रतिपादयति

परघाय वंधंतो अपज्जणामं ण वंधए णियमा ।

णवधुवपज्जूसासं व जिणाहारायवदुगाणि ॥३३७॥

बंधइ अण्णयरा अवि वा सधयणदुउवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई पज्जूसासाण एमेव ॥३३८॥

(प्रे०) 'परघायं' इत्यादि, पराघातनाम वधनन्नपर्याप्तिनाम न वध्नाति, तेन सह तद्वन्ध-विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नी च नियमतो वध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदवसेयः । 'व' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि विकल्पतो वध्नाति, अत्र

भावना आतपनाम्न औदारिकशरीरनामसन्निकर्षवत्कार्या, जिननामाहारकद्विकोद्योतप्रकृतीनां च पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवत्कार्या । 'बन्धइ' इत्यादि, संहननपट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरांप्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति, यत एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकः पराघातनाम वध्नन्नेताः प्रकृतीर्न वध्नाति, शेषप्रायोग्यबन्धकस्तु यथायोगं वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, भणितेतरशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, अन्यतरप्रकृतीनां बन्धस्य पराघातनाममहचारित्वात् । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—गतिपञ्चकम्, जातिपञ्चकम्, औदारिकशरीरवैक्रियशरीरे, संस्थानपट्कम्, आनुपूर्वीचतुष्कम्, पर्याप्तिसुस्वरवर्जत्रसाऽष्टकाऽपर्याप्तिसुस्वरवर्जस्थायराष्टके चेति । 'पञ्ज' इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः ॥३३७८॥

साम्प्रतमुद्योतनाग्नः सन्निकर्षमावेदयितुमाह

उज्जोअ वधंतो ध्रुवतिरिदुगउरलवायरतिगाणि ।

तह परधाऊसानं णियमा वधइ वुरलुवगं ॥३३९॥

सुहमतिगणिरयणरसुरविउवाहारदुगआयवजिणं णो ।

सधयणस्सरखगई वाऽणयरा वि णियमा सेसा ॥३४०॥

(प्रे०) "उज्जोअं" इत्यादि, उद्योतनाम वध्नन् नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरवादरत्रिकपराघातोच्छ्वासनामानि नियमेन वध्नाति, तद्यथा—तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद्, तथा पर्याप्तवादरैकेन्द्रियविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवानां बन्धप्रायोग्यमिदमुद्योतनाम वर्तते, अतो यदा तैरुद्योतनाम वध्यते तदा निर्यग्द्विकादिप्रकृतप्रकृतयोऽप्यवश्यंतया वध्यन्ते, तस्मादुद्योतनाग्ना समं निर्यग्द्विकादीनां बन्धो नियतो लभ्यते ।

'पुरलुवंग' मिति, औदारिकाङ्गोपाङ्गं विकल्पतो वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेनोद्योतनामबन्धकाले प्रकृतेरस्या अवध्यमानत्वात्, पर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन च वध्यमानत्वात् । 'सुहम' इत्यादि, सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणरकद्विकमनुष्यद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकादारकद्विकाऽऽतपजिननामानि नैव वध्नाति, उद्योतनाग्ना सार्द्धमासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'संघयण' इत्यादि, संहननपट्के स्वरद्वये खगतिद्वये चैकतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाल उद्योतनामबन्धकेन प्रकृतीनामासामवध्यमानत्वात्, पर्याप्तविकलतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले पुनर्वध्यमानत्वाच्च । 'णियमा' इत्यादि, जातिपञ्चकं संस्थानपट्कं त्रसस्थावरे स्वरवर्जस्थिरास्थिरपञ्चके चेति त्रयोविंशतिभणितेतरशेषप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन वध्नाति ॥३३९-४०॥

इदानीमातपनाम्नः सन्निकर्षमुपदर्शयन्नाह

आयवबंधो णवधुवतिरिदुगएगिदिउरलहुंडाणि ।
 तह परधाऊसासं वायरतिगथावरणि तहा ॥३४१॥
 दुहगाणादेयाइं णियमा बंधइ थिराइजुगलाणं ।
 तिण्हं णियमाऽणयर तिणि ण चिअ सेसअडतीसा ॥३४२॥

(प्रे०) 'आयव' इत्यादि, आतपनामबन्धको नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रिय-जातिमौदारिकशरीरं हुण्डकसंस्थानं पराधातोच्छ्वासनामी वादरपर्याप्तप्रत्येकस्थावरनामानि दुर्भ-गानादेयनाम्नी चेति समुदिता द्वाविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तदेवम्—तत्र ध्रुवाणां प्राग्बुद्ध-शेषाणां पुनरातपनामबन्धस्य पर्याप्तवादरैकेन्द्रियप्रायोग्यत्वेन शेषप्रकृतप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वा-न्नियतबन्धो ज्ञेयः । 'थिराइजुगलाण' मित्यादि, स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । 'ण' इत्यादि; अभिहिताऽतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तासां शेषाणां वादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियाप्रायोग्यत्वात्, आतपस्य तु तथात्रिधैकेन्द्रिय-प्रायोग्यत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—देवनरकमनुष्यगतित्रयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदा-रिकाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम्, संहननपट्कम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, देवनरक-मनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, खगतिद्वयम्, त्रससुभगसुस्वरादेयनामानि, सूक्ष्मसाधारणाऽपर्याप्तदुःस्वरनामानि, जिननाम, उद्योतनाम चेत्यष्टाविंशदिति ॥३४१-४२॥

अथ जिननाम्नः सन्निकर्ष उच्यते

जिणबंधो णियमा णवधुवपढमागिइपणिदियाणि तहा ।
 परधाऊसाससुहगइतसचउगसुहगतिगाणि ॥३४३॥
 वइराहारदुगाणि व बंधइ णियमा उ सत्त अणयर ।
 णरसुवरलविउवदुगतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥३४४॥

(प्रे०) "जिण" इत्यादि, जिननामबन्धको नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीः समचतुरस्रसंस्थान-पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वाससुखगतित्रयसादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वरादेयनामप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तदित्थम्—जिननामबन्धश्चतुर्थादिगुणस्थानेषु जायते तत्र चैताः प्रकृतयो ध्रुवतया बध्यन्ते । "वइरा" इत्यादि, वज्रर्षमनाराचसंहननाहारकद्विकरूप प्रकृतित्रयं विकल्पतो बध्नाति, भावना-विधिस्त्वेवम्—मनुष्यो यदि जिननाम बध्नीयात्तर्हि वज्रर्षमनाराचसंहननं नैव बध्नाति, तस्य देव-प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्, यदि पुनर्देवनारकौ जिननाम बध्नीयाता तदा ताभ्यां वज्रर्षमनाराचसं-हननं बध्यते, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धविधायित्वात् । आहारकद्विकं तु सप्तमादिगुणस्थानस्थायिनः केचिजिननामबन्धका बध्नन्ति केचिच्च न बध्नन्ति तथा चतुर्थादिगुणस्थानस्थायिनश्च ते नैव बध्नन्ति । "जियमा" इत्यादि, मनुष्यद्विकदेवद्विकयोरेकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकयोरप्येकतरं द्विकं स्थि-रस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति त्रिषु युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिमिति सप्ताऽन्यतर-

प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । “ण” इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, आसां शेषप्रकृतीनां तृतीयाद्यधस्तनगुणस्थानेषु बन्धसम्भवेन जिननाम्ना सह बन्धाऽसम्भवात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृ तयः नरकतिर्यग्गतिद्वयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यगानुपूर्वीद्वयमशुभलगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्मगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी चेत्यष्टाविंशतिरिति ॥३४३-३४४॥

इदानीं त्रसनाम्नाः सन्निकर्षं निरूपयितुमाह

तत्संबन्धो बंधइ चिअ णवधुवपत्तेअवायराणि णवा ।

जि उपरधाऊसासुज्जोआहारदुग्गणामाणि ॥३४५॥

बंधइ ण एगिदियथावरसुहमायवाणि साहारं ।

सधयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि णियमा सेसा ॥३४६॥

(प्रे०) “तत्संबन्धो” इत्यादि, त्रसनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः प्रत्येकवादरनाम्नी च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बद्ध, शेषाणां पुनस्त्रसनामबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । ‘ण वा’ जिननामपराधातोच्छ्वासोद्योताहारकद्विकेनामानि विकल्पतो बध्नाति, भावना पुनरत्र पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षानुसारेण भाव्या । “बंधइ” इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मा- तपसाधारणनामानि न बध्नाति, प्रकृतीनामाभामेकेन्द्रियबन्धप्रायोग्यत्वेन त्रसनाम्ना सह बन्धविरोधात् । “संघयण” इत्यादि, संहननपट्के सुस्वरदुःस्वरयोः शुभाशुभलगत्योश्च प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिमपि विकल्पतो बध्नाति, भावना पञ्चेन्द्रियजातिसन्निकर्षवदत्र कार्या । ‘णियमा’ इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, । ते चेमे शेषप्रकृति- त्रयाः-गतिचतुष्कम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम्, औदारिकवैक्रियशरीरे, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गे संस्थानपट्कम्, आनुपूर्वीचतुष्कम्, पर्याप्ताऽपर्याप्ते, स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे, आदेयानादेये, यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति ॥३४५ ६॥

साम्प्रतं वादरनाम्नाः सन्निकर्षमाह

वायरबंधो सुहमं ण वधइ णवधुववधिणी णियमा ।

वा आहारायवदुग्गपरधाऊसासतित्पाणि ॥३४७॥

वधइ अण्णयरा अवि वा सधयणदुऽवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई पत्तेअस्सेवमेव भवे ॥३४८॥

(प्रे०) “वायर” इत्यादि, वादरनामबन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, तद्वन्धस्य वादरनाम्ना सह विरोधात् । “णव” इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति सहैव बन्धविच्छेदात् । “वा” इत्यादि, आहारकद्विकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासजिननामप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यत आहारकद्विकजिदनामप्रकृतीनां यथायोग्य चतुर्थादिगुणस्थानस्थो वादरनामबन्धको

बन्धं विदधाति अन्यत्राऽवन्धको भवति, आतपादिचतुष्प्रकृतयोऽपर्याप्तप्रायोग्यवादर्नामवन्धकेन न बध्यन्ते, पर्याप्तप्रायोग्यवन्धकेन यथासंभवं बध्यन्ते । “बन्धइ” इत्यादि, संहननपट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरप्रकृतिमपि विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यवादर्नामवन्धकेन सर्वथा आसामवध्यमानत्वात्, त्रसप्रायोग्यवन्धकेन यथासंभवं एषु प्रकृतिसमूहेऽप्येकतमस्य बध्यमानत्वाच्च । “णियमा” इत्यादि, इहोक्तातिरिक्तशेषप्रकृतित्रयेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमतो बध्नाति, इमानि च तानि शेषप्रकृतित्रयानि—गतिचतुष्कम्, जातिपञ्चकम् औदारिकवैक्रियशरीरे, संस्थानपट्कम्, आनुपूर्वीचतुष्कम्, वादरसुस्वरवर्जत्रसाष्टकसूक्ष्मद्वयः स्वरवर्जस्थावराष्टके चेति । “एत्तेअ” इत्यादि, प्रत्येकनामप्रधानोऽपि सन्निकर्ष एवमेव भवति, तत्समानत्वात्, अत्राऽपि सूक्ष्मनाम स्याद् बध्नाति तथा स्वप्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नातीति कथनीयम् ॥३४७-८॥

सम्प्रति स्थिरनाम्नः सन्निकर्षमाह

थिरवधी बधइ चिअ णवधुवपज्जपरधायकसास ।

व जिणाहारायवदुगमपज्जणिरयदुगअथिरं ण ॥३४९॥

बधइ अण्णयरा अवि वा संधयणदुउवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई एमेव सुहस्से णायव्वो ॥३५०॥

(प्र०) ‘थिर’ इत्यादि, स्थिरनामवन्धको नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीः पर्याप्तपराधातोच्छ्वासनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बद्, शेषाणां तु स्थिरनामवन्धस्य शेषप्रकृतिवन्धाऽविनाभावित्वात् । ‘व’ इत्यादि, जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि विकल्पतो बध्नाति, भावना पूर्ववत्कार्या । ‘अपज्ज’ इत्यादि, अपर्याप्तनरकद्विकास्थिरनामानि नैव बध्नाति, स्थिरनाम्ना सह प्रकृतीनामासां बन्धस्य विरोधात्, स्थिरनाम्नो हि बन्धोऽपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकैर्नरकप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकैश्च नैव विधीयते, अस्थिरनाम्ना एव तैर्वध्यमानत्वात् । ‘बन्धइ’ इत्यादि, संहननपट्के औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोः स्वरद्वये खगतिद्वये चाऽन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पतो बध्नाति, वादर्नामसन्निकर्षे यथाऽऽसां प्रकृतीनां भावना कृता तथैवात्रापि सा कार्या । ‘णियमा’ इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयम्, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रियशरीरे, संस्थानपट्कम्, देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयम्, त्रसस्थावरे, वादरसूक्ष्मे, प्रत्येकसाधारणे, शुभाशुभे, सुमगदुर्मगे, आदेयानादेये, यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति । ‘एमेव’ इत्यादि, एवमेव सन्निकर्षः शुभनाम्नो ज्ञातव्यः ॥३४९-५०॥

इदानीं यशःकीर्तिनाम्नः सन्निकर्ष उच्यते

असवंधो णेव णिरयदुगसुहमतिगअजसाणि बंधइ वा ।

धुणवोसणवधुवाई तह अण्णयराऽण्णागइआई ॥३५१॥

(प्रे०) 'जसबंधी' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकाऽयशःकीर्तिरूपाः पट्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्ना सममासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'वा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासे वादरत्रिकमातपोद्योतनाम्नी जिननामाहारकद्विकं चेत्येकोनविंशतिध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतीस्तथोक्तातिरिक्तशेषान्यतरगत्यादिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यथा-समं प्रथमाद्यष्टमगुणस्थानपष्टभागपर्यन्तमासां प्रकृतीनां यशःकीर्तिनाम्ना सह बध्यमानत्वात्, तदूर्ध्वं पुनरबध्यमानत्वाच्च । ताश्चेमा गत्याद्यन्यतराः प्रकृतयः-नरकगतिर्जगतित्रयेऽन्यतमा गतिः, अन्यतमा जातिः, औदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरशरीरनाम, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गनाम, अन्यतममंहनननाम, अन्यतमसंस्थानम्, नरकातुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी, अन्यतरा खगतिः, त्रसस्थावरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुमगदुर्भगाऽऽदेयरूपेषु पट्सु युगलेष्वन्यतराः पट्प्रकृतयश्चेति । विशेषतो भावना क्रियते, तद्यथा नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामप्रकृतीनां प्रस्तुतयशःकीर्तिबन्धकः सर्वथाऽबन्धको भवति । नामध्रुवनवप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासवादरत्रिकप्रकृतयश्च यशःकीर्तिनामबन्धकेनाष्टमगुणस्थानपष्टभागं यावद् निरन्तरं बध्यन्ते, तदूर्ध्वं तु नैव बध्यन्ते । आतपोद्योतजिननामाहारकद्विकप्रकृतयः स्वबन्धयोग्यगुणस्थानेऽपि कैश्चिद् बध्यन्ते कैश्चिन्न बध्यन्ते स्वबन्धविच्छेदस्थानोर्ध्वं तु नैव बध्यन्ते । मंहननपट्के, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये खगतिद्वये चान्यतमा प्रकृतिर्विकल्पेन बध्यते, एकेन्द्रियनाम्ना सह यशःकीर्तिबन्धकत्वात् प्रकृतीनां सर्वथाऽबन्धक एव । त्रसनाम्ना सह यथासंभवमन्यतमाया बन्धकः, स्वबन्धविच्छेदादूर्ध्वं तु सर्वथाऽबन्धक एव । गतित्रयजातिपञ्चकशरीरद्वयसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीत्रयत्रसस्थावर-स्थिरास्थिर शुभाशुभ सुमगदुर्भगाऽऽदेयानादेयरूपेषु प्रकृतिसमूहेषु प्रत्येकमेकतमां प्रकृतिं स्वबन्धयोग्यगुणस्थान यावन्नियमेन बध्नाति, तदूर्ध्वं तु सर्वथा न बध्नातीति ॥३५१॥

साम्प्रतं सूक्ष्मनाम्नः सन्निकर्षं दिदशयिपुराह

णियमा उ सुहमवधौ णवधुवतिरिदुगईगिदियाणि तहा ।

ओरालहुंढथावरदुहगाणादेयअजसाणि ॥३५२॥

पज्जाइगजुगलाण चउरोऽणयरा वि वधए णियमा ।

परधाअसासाणि व णऽण्णा साहारणस्सेव ॥३५३॥

(प्रे०) 'णियमा' इत्यादि, सूक्ष्मनामबन्धको नामनवध्रुवबन्धितिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरदुण्डकस्थावरदुर्भगानादेयायशःकीर्तिरूपा अष्टादशप्रकृतीनियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बत्, तिर्यग्द्विकादीनां तु सूक्ष्मनामबन्धस्य तदुबन्धाऽविनाभावित्वात् । 'पज्जाइग' इत्यादि, पर्याप्ताऽपर्याप्ते, प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे चेति चतुर्षु युगलेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, । 'परधा' इत्यादि, पराधातोच्छ्वासनाम्नी स्याद् बध्नाति, यतोऽस्य प्रकृतिद्वयस्य पर्याप्तप्रायोग्यत्वेन पर्याप्तप्रकृतिमात्रेण सूक्ष्मनामबन्धकस्तद्वन्धं निदधाति, अपर्याप्त-

प्रकृतिमावधनं पुनर्न तद्वन्धं विदधाति । 'ण' इत्यादि, उक्तेतरशेषनामप्रकृतीनां बन्धं न विधत्ते, सूक्ष्मनाम्ना सह विरोधात्तासाम् । ताश्चेमा अवन्धप्रायोग्याः शेषनामप्रकृतयः—देवनरक-
मनुष्यगतित्रयम्, द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कम् ; औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम्
संहननपट्कम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयम्, खगतिद्वयम्, व्रसवादर-
सुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि, दुःस्वरनाम, आतपोद्योतजिननामानि चेत्यष्टात्रिंशदिति ।
'साधारणस्स' इत्यादि, साधारणनाम्नोऽप्येवमेव सन्निकर्षो विभावनीयः । केवलं सूक्ष्मवादर-
नाम्नोः स्याद् बन्धः प्रत्येकनाम्नो बन्धाभावश्च विज्ञेयः ॥३५२-३॥

अधुनाऽपर्याप्तनाम्नः सन्निकर्षमाह

असमत्त बधंतो णवधुवुरलहुष्यचअपिराई ।

णियमा बधइ वा उण छेवट्ठोरालुवगाणि ॥३५४॥

दुगइदुअणुपुव्वीण पणजाईण तितसाइणुगलाणं ।

णियमाऽणयरा बधइ ण उ बधइ सेसतेत्तीसा ॥३५५॥

(प्रे०) “असमत्त” मित्यादि, अपर्याप्तनाम बधनं नवध्रुवबन्धप्रकृतय औदारिकशरीरं
हुण्डसंस्थानमस्थिराऽशुभदुर्मगानादेयाऽयशःकीर्तिनामानि चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति,
तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत्, औदारिकशरीरादीनां पुनरपर्याप्तनामबन्धस्य तद्वन्धाविनाभावित्वात् । “वा”
इत्यादि, सेवार्तसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिद्वयं स्याद् बध्नाति, तच्चैवम्-अपर्याप्तनाम बधनं यदैकेन्द्रि-
यप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति, तदैतत्प्रकृतिद्वयं न बध्नाति, यदि पुनर्द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाति
तदा तु तद्वन्धाति । “दुगइ” इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयमेकेन्द्रियादि-
जातिपञ्चकं व्रसवादेर सूक्ष्मे प्रत्येकसाधारणे चेति प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
नियमेन बध्नाति । “ण उ” इत्यादि, इहोक्तव्यतिरिक्तास्त्रयस्त्रिंशत्शेषनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति,
अपर्याप्तनाम्ना सह तद्वन्धस्य विरोधात् । ताश्चेमा अवन्धप्रायोग्यास्त्रयस्त्रिंशत्शेषप्रकृतयः—देवनरक-
गतिद्वयम्, वैक्रियद्विकम्, आहारकद्विकम्, प्रथमादिसंहननपञ्चकम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्,
देवनरकानुपूर्वीद्वयम्, खगतिद्वयम्, पर्याप्तस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनामानि दुःस्वरं जिन-
नामपराधातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि चेति ॥३५४-५५॥

इदानीमस्थिरनाम्नः सन्निकर्ष उच्यते ।

बधइ व अथिरबन्धी, जिणपरधूसासआयवदुगाणि ।

णियमा णवधुववधी णेव थिराहारगदुगाणि ॥३५६॥

बधइ अणयरा अवि वा संधयणकुउवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई एव असुहअजसाण भवे ॥३५७॥

(प्रे०) “बन्धइ” इत्यादि, अस्थिरनामबन्धको जिननामपराधातोच्छ्वासातपोद्योतनामानि
विकल्पतो बध्नाति, वादरनामसन्निकर्ष आसां प्रकृतीनां यथा भावना कृता तथैवेह कार्या । ‘णियमा’

इत्यादि; नवध्रुवबन्धप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्बन्धसन्धेयः । “णैव” इत्यादि, स्थिर-
नामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, तद्यथा—अस्थिरनामा सह विरोधात्स्थिरनाम न बध्यते;
आहारकद्विकमप्रमत्तसंयता एव बध्नन्ति, ते चाऽस्थिरनाम नैव बध्नन्ति, प्रमत्तगुणस्थानं यावदेव
बध्यमानत्वात्तस्य, तस्मादत्र प्रकृतप्रकृतित्रयस्य निषेधात्मकः सन्निकर्षो दर्शितः । “बन्ध”
इत्यादि, संहननपट्टके, औदारिकवैक्रियाऽङ्गोपाङ्गद्वये स्वरद्वये, खगतिद्वये च प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यत्रसप्रायोग्यबन्धकापेक्षया पूर्ववद् भावना कार्या । “णियमा”
इत्यादि, अत्र कथितभिन्नशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुः पुनरत्र प्राग्-
बद्भाष्यः । इमानि च तानि शेषप्रकृतिवृन्दानि- गतिचतुष्कम्, जातिपञ्चकम्, औदारिकवैक्रिय-
शरीरद्वयम्, संस्थानपट्टकम्, आनुपूर्वीचतुष्कम्, सुस्वरदुःस्वरस्थिरास्थिरवर्जत्रयादिसप्रतिपक्षयुग-
लाष्टकं चेति । “एवं” इत्यादि, अशुभाऽयशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्ष एवमेव भवतीति विज्ञेयम् ।
विशेषन्त्वत्र प्राग्बद् वेधः ॥३५६-७॥

इति ओघतो नामप्रकृतिसन्निकर्षः स्वस्थानतः समाप्तः, तत्समाप्तौ चोद्यतः स्वस्थानसन्निकर्षः समाप्तः ।

एतावत्पर्यन्तमोद्यतः स्वस्थानसन्निकर्षमभिधाय माम्प्रतं तमेवादेशतो मार्गणासु निरूपय-
न्नादौ ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायोत्तरप्रकृतिप्रधानं तं दर्शयति

ओघोव सण्णियासो सव्वासु हवेज्ज पढमचरमाणं ।

वीयावरणस्स भवे तिणरदुपचिदियतसेसुं ॥३५८॥

पणमणवयजोगेसुं कायुरल्लतिवेअचअकसायेसुं ।

णयणेयरसुत्तकासु मविये सण्णिग्गि आहारे ॥३५९॥

(प्रे०) “ओघोव” इत्यादि, ‘सव्वासु’ ति, वन्वाहसि सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु ज्ञाना-
वरणपञ्चकाऽन्तरायपञ्चकयोः सन्निकर्ष ओघवद् भवति, स चैवम्-ज्ञानावरणपञ्चकेऽन्यतमां प्रकृति-
भावध्नत एतन्मार्गणागतजीवाः शेषज्ञानावरणचतुष्कं नियमाद् बध्नन्ति, एवमेवाऽन्तरायपञ्चकेऽन्य-
तमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाऽन्तरायचतुष्कं नियमाद् बध्नातीति । हेतुरत्रौघवदवसेयः ।

“ओघोवरणस्स” इत्यादि, अनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौ-
घपर्याप्तत्रसरूपाः सप्तमार्गणाः, ओघ-सत्या-ऽसत्य सत्यासत्या-ऽसत्याऽमृताभेदैः पञ्चमनोयोगमार्गणाः
पञ्चवचनयोगमार्गणाश्च काययोगौघौदारिककाययोगस्त्रीपुरुषनपुंमकवेदकोद्यमानमायालोमरूपा नव-
मार्गणाः, चक्षुरचक्षुर्दर्शनशुक्ललेइयालक्षणास्तिस्रो मार्गणा मन्यमार्गणा संज्ञिमार्गणा आहारकमार्गणा
चेति समुदितासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु दर्शनावरणीयस्य सन्निकर्ष ओघवद् भवति तद्यथा—स्त्यानर्द्धि-
दर्शनावरणप्रकृतिबन्धकः प्रचलाप्रचलाप्रकृतिबन्धको निद्रानिद्राप्रकृतिबन्धको वा शेषाष्टावपि दर्शना-
वरणप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । निद्राप्रकृतिबन्धकः प्रचलाप्रकृतिबन्धको वा स्त्यानर्द्धिप्रचलाप्रचला-

निद्रानिद्राप्रकृतित्रयं विकल्पतो वध्नाति, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं स्वभिन्ननिद्राप्रचल-
योरन्यतरां च नियमेन वध्नाति । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं वध्नन्
शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन वध्नाति, स्त्यानद्वित्रिकनिद्राद्विकरूपाः पञ्चप्रकृतीश्च विकल्पतो वध्नाति,
भावना पुनरोधतोऽवसातव्या ॥३५८-९॥

इदानीमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रभृतिमार्गणासु दर्शनावरणस्य सन्निकर्षमाह

असमत्तपणिदितिरियमणुयपणिदियतसेसु सच्चेसु ।

एगिवियविगलेसु सच्चेसु पचकायेसु ॥३६०॥

तिअणाणअभविसेसु सासणमिच्छामणेसु वधंतो ।

वीआवरणस्सेग वंधइ नियमाऽहु सेसाओ ॥३६१॥

(प्रे०) “असमत्त” इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यापर्याप्तपञ्चेन्द्रिया-
पर्याप्तप्रसूपाश्चतस्रो मार्गणाः, एकेन्द्रियस्य सर्वा मार्गणास्ताश्च सप्त, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रि-
याणां सर्वा मार्गणास्ताश्च समुदिता नव, पृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्पतिकायानां सर्वा
मार्गणास्ताश्चैकोनचत्वारिंशत्, मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽमन्यमार्गणाचतुष्कं सास्वादन-
मिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणात्रयं चेति समुदितासु षट्षष्टिमार्गणासु दर्शनावरणनवके एकतमां प्रकृतिं
वध्नन् शेषा अष्टावपि दर्शनावरणप्रकृतीनियमेन वध्नाति भावनाविधिस्त्वेवम्-दर्शनावरणस्य नव-
प्रकृत्यात्मकस्थानं द्वितीयगुणस्थानकपर्यन्तं वध्यते, आभ्यो मार्गणाभ्यो यथायोगं कासुचिन्मार्गणासु
प्रथममेव गुणस्थानं प्राप्यते कासुचिच्च प्रथमद्वितीयगुणस्थानकद्वयम्, सास्वादनमार्गणायां च केवलं
द्वितीयं गुणस्थानकम्, अतः प्रस्तुतमार्गणासु वर्तमानो जीवो दर्शनावरणनवके एकतरां प्रकृतिं वध्नन्
शेषा अष्टावपि प्रकृतीरवश्यं वध्नाति ॥३६०-१॥

अथाऽनुत्तरसुरादिमार्गणासु दर्शनावरणप्रकृतीनां सन्निकर्ष उपदर्शयते

पंचसु अणुत्तरेसु आहारदुग्गपरिहारदेसेसु ।

धेअगमीसेसु इगं वीआवरणस्स वधंतो ॥३६२॥

बधइ नियमाऽण्णा पण अवेअसुहमेसु दरिसणावरण ।

एगं बधेमाणो सेसतिगं वधए नियमा ॥३६३॥

(प्रे०) ‘पञ्चसु’ इत्यादि, पञ्चाऽनुत्तरमार्गणासु आहारकाहारकमिश्रकाययोगपरिहारविशुद्धि-
देशविरतिचारित्ररूपासु चतसृषु मार्गणासु क्षयोपशमसम्यक्त्वमिश्रमार्गणयोश्चेति समुदितास्वेका-
दशमार्गणासु स्त्यानद्वित्रिकवजशेषदर्शनावरणपट्केऽन्यतमां प्रकृतिं वध्नन् शेषपञ्चदर्शनावरण-
प्रकृतीनियमेन वध्नाति, मार्गणास्वासु षड्दर्शनावरणप्रकृत्यात्मकैकस्यैव बन्धस्थानस्य सञ्ज्ञावादिति ।
“अवेअ” इत्यादि, अपगतवेदसूक्ष्मसंपरायमार्गणयोः चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्क-
मध्येऽन्यतमां प्रकृतिमावध्नन् शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन वध्नाति, एतन्मार्गणाद्वयेऽस्य दर्शना-
वरणचतुष्कस्य युगपद् वध्यमानत्वात् ॥३६२-३॥

अधुना भतिज्ञानादिमार्गणासु दर्शनावरणप्रकृतेः सन्निकर्षं दर्शयति

चक्षणाणसंजमेसुं समश्नयेओहिसम्भलइएसुं ।

तहुवसमे बंधंतो अण्णयरं णिदुपयलाणं ॥३६४॥

बंधइ णियमाऽण्णा पण बंधतो एगबंधसणावरणं ।

णिदुदुगं वा बंधइ सेसतिगं बंधए णियमा ॥३६५॥

(प्रे०) ‘चउ’ इत्यादि, भतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदो-
पस्थापनीयाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघसायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपास्वेकादशमार्गणासु निद्रा-
प्रचलाप्रकृतिद्वयेऽन्यतरां वध्नन् चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं निद्राप्रचलयोःप्रधानीकृतेतरां
चेति पञ्चदर्शनावरणप्रकृतीनियमेन वध्नाति । “बंधंतो” इत्यादि, चक्षुरचक्षुरवधिकेवल-
दर्शनावरणचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं वध्नन् निद्राप्रचलारूपं प्रकृतिद्वयं विकल्पतो वध्नाति, यदना
पुनरित्यं कर्तव्या-निद्राद्विकस्य बन्धविच्छेदोऽपूर्वगुणगुणस्थानकस्याधभागान्ते भवति, अतस्तदूर्ध्वं
निद्राद्विकं मार्गणास्वासु न वध्यते तत्पूर्वं तु वध्यते इतिकृत्वा विकल्पोऽभिहितः । “सेसतिगं”
इत्यादि, अस्मिन् दर्शनावरणप्रकृतिचतुष्केऽन्यतमां प्रकृतिं वध्नन् शेषदर्शनावरणत्रयं नियमेन
वध्नाति, यतो दर्शनावरणचतुष्कं युगपदेव वध्यते ॥३६४-५॥

एतर्हि शेषमार्गणासु दर्शनावरणीयस्य सन्निकर्षं कथयति

अण्णह ओधव्व भवे थोणद्वितिगस्स सेसमेगं तु ।

बंधतो थोणद्वियतिगं व सेसपणग णियमा ॥३६६॥

(प्रे०) “अण्णह” इत्यादि, अन्यत्राऽभिहितेतरशेषमार्गणासु स्त्यानद्वित्रिकस्य सन्निकर्षं
ओधव्व भवति, तद्यथा-शेषमार्गणासु स्त्यानद्वित्रिकेऽन्यतमां दर्शनावरणीयप्रकृतिं वध्नन् जीवो
नियमेन शेषा अष्टावपि दर्शनावरणीयप्रकृतीर्वध्नाति । भावना पुनरोघतोऽनुसन्धेया । “सेसमेगं
तु” इत्यादि, स्त्यानद्वित्रिकवर्जशेषदर्शनावरणपट्के एकतमां प्रकृतिं वध्नन् स्त्यानद्वित्रिकं विकल्पतो
वध्नाति, यतः स्त्यानद्वित्रिकं प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोर्वध्यते, तदूर्ध्वं तु न वध्यते, अतः प्रथम-
द्वितीयगुणस्थानस्यस्तद्वध्नाति तदूर्ध्वगुणस्थानस्यो न वध्नाति । “सेसपणग” इत्यादि, शेषदर्शना-
वरणपञ्चकं च नियमेन वध्नाति, शेषमार्गणासु वर्तमानैर्जीवैः शेषदर्शनावरणपट्कस्य समुदिततयैव
वध्यमानत्वात्, तात्त्रेमाः शेषमार्गणाः-अष्टौ नरकभेदाः अपर्याप्तिवर्जचतुस्तिर्यग्भेदाः, पञ्चानुत्तर-
वर्जपञ्चविंशतिदेवभेदाः, औदारिकमिश्रवैक्रियद्विककर्मणकाययोगाः, असंयममार्गणा, कृष्णनील-
कापोतेतेजःपद्मलोश्यामार्गणाः, अनाहारकमार्गणा चेत्यष्टचत्वारिंशन्मार्गणाः, आसु मार्गणासु दर्शना-
वरणस्य नवप्रकृत्यात्मकं पद्मप्रकृत्यात्मकं च द्वे बन्धस्थाने विद्येते, अतो निद्राद्विकस्य सार्द्धमन्य-
दर्शनावरणचतुष्कमपि नियमेन वध्नाति ॥३६६॥

अथ मार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्षमाह

वेअस्स सण्णियासो अवेअअकसायकेवलदुगेसुं ।

सुहमाहवखायेसु ण होइ ओधव्व सेसासुं ॥३६७॥

(प्रे०) 'वेअस्स' इत्यादि, अपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्ममभ्यराययथाख्यान-
रूपासु ५८सु मार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्षो नास्ति, सातवेदनीयरूपस्यैकस्यैव वेदनीयकर्मणो-
ऽत्र बन्धभावात् । 'ओधव्व' इत्यादि, इहोक्तशेषमार्गणासु वेदनीयकर्मणः सन्निकर्ष ओघ-
वद् विज्ञेयः, तदेवम्-शेषमार्गणास्वेकतरं वेदनीयं वध्नन् तत्प्रतिपक्षभूतं वेदनीयकर्म नैव वध्नाति,
परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्य बन्धेऽपरस्य बन्धविरोधात् ॥३६७॥

साम्प्रतं मार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षमावेदयितुमाह

तिणरदुपचिदियतसपणमणवयकायउरललोहेसु ।

णयणेरसुक्कासु भविये सण्णिम्मि आहारे ॥३६८॥

मोहस्स सण्णियासो ओधव्व " ।

(प्रे०) "तिणर" इत्यादि, मनुष्यौधपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौधपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौ-
धपर्याप्तत्रसमनःसामान्यमत्यमनो-ऽसत्यमनः- सत्यासत्यमनोऽसत्यामृषामनो-वचनौघ-सत्यवचना-
ऽसत्यवचन सत्यासत्यवचना-ऽसत्यामृषावचनकाययोगौधौदारिकाययोगलोभकपायचक्षुरचक्षुर्दर्शन-
शुक्ललेखाभव्यसंज्ञाहारकरूपासु ५९विंशतिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्ष ओघवद् भवति,
तद्यथा-मिथ्यात्वमोहनीयं वध्नन् षोडशकपाया भयकुत्से इत्यष्टादशप्रकृतीनां स्त्रीपुरुषनपुंसकवे-
देभ्यन्यतमवेदस्य, हास्यरतिशोकाऽरतियुगलयोरेकतरस्य युगलस्य च नियमेन बन्धं विधत्ते ।
अनन्ताऽनुबन्धिचतुष्कमध्येऽन्यतमां कपायप्रकृतिं वध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन वध्नाति ।
अन्यतमास्तिस्त्रोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतयोऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्ञलनचतुष्करूपाश्च पञ्च-
दशकपायाः भयजुगुप्से चेति सप्तदशप्रकृतीनां वेदत्रयेऽन्यतमवेदं हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्य-
तरदेकं युगलं च नियमेन वध्नाति ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेककपायप्रकृतिमावध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धि-
चतुष्कं च विकल्पतो वध्नाति । अन्यतमाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्ञलन-
चतुष्कं भयकुत्से चेति त्रयोदशत्रुवन्धिप्रकृतीर्वेदत्रयेऽन्यतममेकं वेदं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं
च नियमेन वध्नाति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमं कपायं वध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानु-
बन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा नवमोहनीयप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, अन्यतमास्त्रयः
प्रत्याख्यानावरणकपायाः संज्ञलनचतुष्कं भयजुगुप्से चेति नवत्रुवन्धिप्रकृतीनामन्यतमवेदस्यान्य-
तरस्यैकस्य हास्यादियुगलद्वये युगलस्य च बन्धं नियमेन करोति ।

संज्वलनक्रोधस्य बन्धकः संज्वलनमानमायालोभरूपास्तिस्रः प्रकृतीः, संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभलक्षणे द्वे प्रकृती, संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभं नियमेन बध्नाति, शेष-
कषाया मिथ्यात्वं भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च विकल्पेन बध्नाति । संज्वलन-
लोभबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कमत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं
संज्वलनक्रोवादित्रयं भयजुगुप्से चेत्यष्टादशशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीरन्यतमवेदमेकतरं च हास्यादियुगलं
विकल्पेन बध्नाति । पुरुषवेदस्य बन्धकः संज्वलनचतुष्कं नियमेन बध्नाति, स्त्रीनपुंसकवेदौ न
बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
भयजुगुप्सारूपपञ्चदशध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीनामन्यतरस्य हास्यादियुगलस्य च बन्धं विकल्पेन
विदधाति । नपुंसकवेदबन्धकः तदन्यवेदद्वयं न बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृति-
षोडशकषायभयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिप्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति ।
स्त्रीवेदबन्धकोऽन्यवेदद्वयं नैव बध्नाति, अनन्तानुबन्धिचतुष्कप्रभृतिषोडशकषायभयजुगुप्सारूपा
अष्टादशप्रकृतीरन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीय च विकल्पेन बध्नाति ।

हास्यरतियुगलं बध्न् शोकाऽरतियुगलं नैव बध्नाति, अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान्
मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदेऽन्यतमं वेदं संज्वलनचतुष्कं भय-
जुगुप्से च नियमेन बध्नाति, एवमेव शोकाऽरतियुगलस्यापि सन्निकर्षो ज्ञातव्यः, केवलं तत्प्रतिपक्ष-
हास्यरतियुगलस्य बन्धो न भवति ।

भयमोहनीयं बध्न् अनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायान् मिथ्यात्वमोहनीयं च विकल्पेन बध्नाति,
संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमवेदं च नियमेन बध्नाति, एव-
मेव जुगुप्सामोहनीयस्य सन्निकर्षो ज्ञातव्यः । भावना सर्वत्रौधानुसारेण कर्तव्या ॥३६८॥

अथ नरकादिमार्गणासु मोहस्य सन्निकर्षमाह

—.... —हवेज्ज सव्वणिरयेसु ।

सुरगेविज्जतेसु उरालमीसे विउव्वदुगे ॥३६९॥

कम्मे असज्जे तह तिअसुहलेसासु तह अणाहारे ।

मिच्छणपुमयीआइमदुइअकसायाण ओधव्व ॥३७०॥

दुइअकसायव्व भवे सेसाण णवरि थोणपुमवेआ ।

पुमवघो बघइ ण उ, एगजुगलवघगो जुगलमण्ण ॥३७१॥ (गीति)

(प्रे०) “हवेज्ज सव्वणिरयेसु” इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्क-
प्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टनरकमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमौघर्मे-
शानमनकुमारमाहेन्द्रप्रललान्तकशुकसहस्रारानतप्राणताऽऽरणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु पञ्चविंशतिदेव-
मार्गणास्त्रौदारिकमिश्रमार्गणायां वैक्रियवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणयोः कार्मेणकाययोगमार्गणायाम-

संयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रये, अनाहारकमार्गणायां चेति समुदितासु द्वाचत्वारिंशन्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदस्त्रीवेदाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशमोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओधवद् बोद्धव्यः, सोऽपि तत एव भाव्यः । शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षस्य द्वितीयाप्रत्याख्यानावरणकपायवत्कथयिष्यमाणत्वादप्रत्याख्यानावरणस्य सन्निकर्षो द्रश्यते, तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमामेकां कपायप्रकृतिं बधनन् मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विकल्पेन बध्नाति । शेषत्रयप्रत्याख्यानावरणकपायान् प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से वेदत्रयेऽन्यतमवेदं हास्यादियुगलद्वय एकतरं युगलं च नियमेन बध्नाति । ‘तुहअ’ इत्यादि, शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षो द्वितीयाप्रत्याख्यानावरणकपायवज्ज्ञातव्यः तद्यथा—प्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्साप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बधनन् शेषप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यान्यतरयुगलस्यान्यतमवेदस्य च नियमेन बन्धकः, मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धकः । एवमेव हास्यरतिशोकारतिपुरुषवेदप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षोऽपि ज्ञातव्यः, नवरं हास्यरत्योरन्यतरबन्धकः शेषा नियमेन बध्नाति, प्रतिपक्षयुगलं नैव बध्नाति, एवमेव शोकारत्योः कथनीयम्, तथा पुरुषवेदबन्धकः स्त्रीनपुंसकवेदौ नैव बध्नातीति विशेषो ‘णवरि’ इत्यादिना चरमगाथायामुक्तः ॥३६९-७० ७१॥

साम्प्रतं तिर्यगोधादिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षं प्रदर्शयितुमाह

ओधव्व सण्णियासो तिरिये तीसुं पण्णितिरियेसुं ।

वारसकसायइत्थीणपुं समिच्छाण विण्णेयो ॥३७२॥

तइअकसायव्व भवे सेसाण णवरि थोणपु साणि ।

पुमबधो बधइ ण उ विरुद्धजुगल जुगलबांधी ॥३७३॥

(प्रे०) “ओधव्व” इत्यादि, तिर्यगोधतिर्यक्पञ्चचेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीरूपासु चतसृषु मार्गणासु अनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपद्वादशकपायाः स्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वमोहनीयानि चेति पञ्चदशप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओधवद् विज्ञेयः, न तु तत एव विभावनीयः, तथाऽपि तृतीयप्रत्याख्यानावरणकपायस्य सन्निकर्षो द्रश्यते, तद्यथा—प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमन्कपायं बधनन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, शेषप्रत्याख्यानाकपायत्रयसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सालक्षणा नवप्रकृतीरन्यतमं वेदमेकतरं हास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति । “तुहअ” इत्यादि, निरुक्तातिरिक्तमोहनीयप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षस्तृतीयकपायवद् विज्ञेयः, तद्यथा—संज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सास्वन्यतमां प्रकृतिं बधनन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपानवमोहनीयप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यतो यदा प्रकृतमार्गणावर्ती प्रकृतप्रकृतिबन्धको जीवो मिथ्यात्वगुणस्थाने वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतीर्बध्नाति

यदा तु पञ्चमगुणस्थानके वर्तते तदा तु न वध्नाति । शेषप्रकृतिपञ्चकं प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
मन्यतमं वेदमेकतरं च हास्यादियुगलं नियमेन वध्नाति, प्रकृतमार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टगुणस्थानकं
यावद् ध्रुवतया वध्यमानत्वात् । शेषमोहनीयप्रकृतीनां तृतीयकपायवदतिदेशे समापतन्तीमापत्तिं
निराकृतुं “णवरि” इत्यादिनाऽऽह-पुरुषवेदस्य बन्धकः, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं नैव वध्नाति,
एकस्य बन्धेऽपरवेदयोरबन्धात् । एवं हास्यादियुगलद्वयस्यैकतरं युगलं वध्नात् विरुद्धं युगलं न
वध्नाति, तथा च पुरुषवेदस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतुष्काप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्करूपा नवप्रकृतीविकल्पेन वध्नाति संज्वलनचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्य-
तरहास्यादियुगलं च नियमेन वध्नाति, अन्यतरहास्यादियुगलबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिनव-
मोहनीयप्रकृतीविकल्पेन वध्नाति, संज्वलनचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्यतम-
वेदं च नियमेन वध्नाति, हेतुस्त्वत्र प्राग्वद् विभावनीयः ॥३७२-३॥

साम्प्रतमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रभृतिमार्गणासु मोहनीयकर्मणः सन्निकर्षं प्रतिपादयितुमाह-

असमत्तर्पणितिरियमण्यपणितिरियतसेसु सत्वेसु ।

एगिदियविगलेसु सत्वेसु पंचकपेसु ॥३७४॥

मिच्छन्नभविअमणेसु वधतो मिच्छमण्णधुववंधी ।

णियमा अट्टारस तह अणयरा वेअजुगलाणं ॥३७५॥

एमेव सणियासो सेसाणं णवरि वेअजुगलाण ॥

एग वधेमाणो ण चेव वधेइ पडिक्खला ॥३७६॥

(प्रे०) “असमत्त” इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिया-
ऽपर्याप्तस्वरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, ओघसूक्ष्मौघाऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मवाद्रौघाऽपर्याप्तवाद्रपर्याप्त-
वाद्रभेदेन सप्तकेन्द्रियमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणाः,
तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणाः, ओघादिसप्तभेदेन सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽप्कायमार्गणाः सप्ततेजस्काय-
मार्गणाः सप्तवायुकायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः, मिथ्यात्वाऽभव्याऽसंज्ञिरूपास्तिस्रो मार्ग-
णाश्चेति सर्वसंख्यया द्वापष्टिमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयं वध्नात् षोडशकपाया भयजुगुप्से चेत्य-
ष्टादशध्रुवबन्धिप्रकृतीरन्यतरवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन वध्नाति, यतो मार्गणास्वासु
प्रथममेव गुणस्थानकं वर्तते, तत्रैताः प्रकृतयोऽवश्यभावेन वध्यन्ते । ‘एमेव’ इत्यादि, मिथ्यात्व-
मोहनीयप्रकृतिव्यतिरिक्तमोहनीयप्रकृतिप्रधानमन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयसन्निकर्षवद् विज्ञेयः,
शेषमोहनीयप्रकृतिममुदायगतस्याऽन्यतमवेदस्यान्यतरहास्यादियुगलस्य च सन्निकर्षविषयकं
‘णवरि’ इत्यादिनाऽपवादमाह-अन्यतमस्य वेदस्य बन्धकः शेषवेदद्वयं न वध्नाति, तथा अन्यत-
रहास्यादियुगलं वध्नात् प्रतिपक्षभूतं युगलं न वध्नाति, विरोधादिति ॥३७४-५-६॥

इदानीं पञ्चानुत्तरसुरादिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षमाह

पराऽणुत्तरभीसेसुं आहारकुगपरिहारसेसुं ।

पुमवधी वधश्च चिअ ध्रुववधी जुगलमणयरं ॥३७७॥

एवं ध्रुववंधीण हवेज्ज एमेव वोण्ह जुगलणं ।

परमेगजुगलवधी ण चेव वधश्च जुगलमणं ॥३७८॥

(प्रे०) 'पण' इत्यादि, पञ्चानुत्तरसुरमार्गणाः, मिश्रमार्गणा, आहारकाहारकमिश्रकाययोग-परिहारविशुद्धिदेशविरतिमार्गणाश्चेति दशमार्गणासु पुरुषवेदयन्धकः स्वप्रायोग्यध्रुववन्धिप्रकृतीर-न्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन वध्नाति, आसु मार्गणासु मोहनीयमत्कैकविधस्यैव वन्धस्थानस्य भावेन स्वोत्कृष्टगुणस्थानं यावदवरयमेव आसां वध्यमानन्वात् । 'एवं' इत्यादि, स्वप्रायोग्यध्रुव-वन्धिप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पुरुषवेदवदस्ति । 'एमेव' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयप्रधानसन्नि-कर्षोऽपि पुरुषवेदवद् विज्ञेयः, तत्राऽपि परमे' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-अस्मिन् युगलद्वये एकतरं युगलं वध्नन्नन्यद् युगलं नैव वध्नाति, विरोधित्वात् । स्वप्रायोग्यमोहनीयध्रुववन्धिप्रकृतयः-परिहाराहारकद्विकमार्गणासु संज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सरूपाः षट्, देशविरतौ ता एव प्रत्याख्याना-वरणचतुष्कसंहिता दश, शेषासु अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंहितास्ताश्चतुर्दश ज्ञातव्याः ॥३७७-८॥

अथ त्रिवेदक्रोधरूपासु चतसृषु मार्गणासु मोहनीयकर्मणां सन्निकर्षमाह-

संजलणतिगूणाणं तिवेअकोहेसु अत्थि ओधव्व ।

तिण्हं संजलणाणं हवेज्ज संजलणकोहव्व ॥३७९॥

णवर वधेमाणो तीसु वेएसु एगमणयरं ।

संजलण णियमेग अणयरं वधए वेअ ॥३८०॥

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदरूपासु तिसृषु मार्गणासु क्रोधमार्गणायां च संज्वलनमानमायालोभवर्जा शेषमोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष ओधवदस्ति । 'तिण्हं' इत्यादि, संज्वलनमानमायालोमरूपं संज्वलनत्रिकं प्रधानीकृत्य सन्निकर्षः ओधोक्तसंज्वलनक्रोध-प्रधानसन्निकर्षवद् भवति, तद्यथा-संज्वलनकपायत्रिकमध्ये एकतमकपाय वध्नन् शेषसंज्वलनकपाय-द्वयं संज्वलनक्रोध च नियमेन वध्नाति, मिश्रत्वात् मोहनीयमनन्तानुगन्ध्यादिद्वादशरूपायान् भय-जुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं विकल्पतो वध्नाति । भावनाऽप्योद्यत एव विज्ञेया । 'णवरं' इत्यादिना त्रिवेदमार्गणास्वन्यतरसंज्वलनप्रधाने सन्निकर्षोऽपवादमुपदर्शयति स्त्रीपुरुषनपुंसक-वेदरूपासु तिसृषु मार्गणासु संज्वलनक्रोधादिष्वन्यतमां कपायप्रकृतिमावध्नन्नेकतमवेदं नियमेन वध्नाति मार्गणास्वासु प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धस्याऽन्यतरवेदयन्धाऽविनाभावित्वात् ॥३७९-८०॥

अथावेदमार्गणायां मोहनीयस्य सन्निकर्षं दर्शयन् तथाऽकपायादिमार्गणासु तं निषेधयन्नाह-

संजलणाण अत्रेए ओधव्वडत्थि चउसंजलणवंधी ।

अकसायकेवलकुगाहखायमुहमेसु णेव भवे ॥३८१॥

(प्रे०) 'संजलणाण' इत्यादि, अवेदमार्गणायां संज्वलनचतुष्कात्प्रत्येकं प्राधान्येन संज्वलनानां सन्निकर्षमोघवद् भवति । अयं भावः—अवेदमार्गणायां केवलं संज्वलनचतुष्कं बन्धार्हम्, तत्र संज्वलनक्रोधं वध्नन् शेषत्रिप्रकृतीनियमेन वध्नाति, संज्वलनमानं वध्नन् मायालोभप्रकृतिद्वयं नियमेन वध्नाति, क्रोधं तु मजनया वध्नाति, संज्वलनमायां वध्नन् लोभं नियमेन शेषक्रोधमानप्रकृतिद्वयं विकल्पेन वध्नाति, संज्वलनलोभं वध्नन् शेषप्रकृतित्रयं विकल्पेन वध्नातीति । अथाकपायादिमार्गणासु मोहनीयबन्धस्याभावात् तस्य सन्निकर्षविचारणापि नास्ति, अतो निषेधयति 'णैव भवे' इति । अकपायादिमार्गणास्त्विमाः—अकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनययाख्यातसंयमसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणा इति ॥३८१॥

अथ मानमार्गणायां सन्निकर्षमाह—

माणम्मि सण्णियासो दुसंजलणवज्जिआण ओधव्व ।

संजलणाण दोण्हं हवेज्जे संजलणमाणव्व ॥३८२॥

(प्रे०) 'माणम्मि' इत्यादि, मानमार्गणायां संज्वलनमायालोभवर्जशेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षमोघवद् विज्ञातव्यः । संज्वलनमायालोभप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः संज्वलनमानवद् भवति, मार्गणाचरममयं यावद्दैतत्प्रकृतित्रिकस्य युगपद् वध्यमानत्वेन समानत्वात् । सन्निकर्षस्त्वेवम्—संज्वलनमानमायालोभप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं वध्नन् शेषद्वयं नियमेन वध्नाति, ध्रुवबन्धित्वे सति मार्गणाचरममयं यावद् वध्यमानत्वात्, तथा मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायान् संज्वलनक्रोधं भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च विकल्पेन वध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानकेषु तासां वध्यमानत्वात् नवमगुणस्थानकद्वितीयभागेऽवध्यमानत्वाच्च ॥३८२॥

सांप्रतं मायामार्गणायां सन्निकर्षोऽभिधीयते ।

ओधव्व सण्णियासो हवेज्जे संजलणलोहवज्जाण ।

मायाअ चरममायव्व अत्थि सजलणलोहस्स ॥३८३॥

(प्रे०) 'ओधव्व' इत्यादि, मायामार्गणायां संज्वलनलोभवर्जशेषमोहनीयप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षमोघवद् भवति । 'चरममायव्व' इत्यादि, संज्वलनलोभस्य सन्निकर्षः संज्वलनमायावद् भवति । स पुनरेवम्—संज्वलनलोभस्य बन्धकः संज्वलनमायां नियमेन वध्नाति तथा भयजुगुप्सेऽन्यतमवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायान् संज्वलनक्रोधमानप्रकृती च विकल्पेन वध्नाति । हेतुः पुनरत्राऽनन्तरमार्गणोक्तानुसारेण ज्ञेयः ॥३८३॥ अधुना मतिज्ञानप्रभृतिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षं कथयति

णाणत्तिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते खाइए उवसमे य ।

इइआण कसायाणं, अणुत्तरसुरव्व विण्णेयो ॥३८४॥

एवं तद्व्यक्तसायं बंधंतो बंधए कसाया वा ।
 बुद्धिश्च बंधइ णियमा पुरिसणवधुवण्णयरजुगलं ॥३८५॥
 बंधइ चिअ बंधंतो पुरिसचरमकोहमाणमाया य ।
 कमसो संजलणाणं घत्तारो तिण्णि दो एवा ॥३८६॥
 वा जुगलमण्णयरमवि तद् सेसा बंधए चरमलोहं ।
 बंधंतो वा बंधइ पुमसेसधुवाऽण्णयरजुगलं ॥३८७॥
 भयवंधी वा बंधइ मज्झकसायाऽट्ठ बंधए णियमा ।
 अण्णयरमेगजुगल पुमसेसधुवा तहेव कुच्छाए ॥३८८॥ (गीतिः)
 हस्सरइतो एग वधतो बंधए ण पडिवक्खं ।
 जुगल वाऽट्ठ कसाया णियमाऽण्णेमेव अरइमोगाण ॥३८९॥ (गीति)

(प्रे०) 'णाण' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाऽवधिदर्शनमभ्यक्त्यौघक्षायिकसम्यक्त्वो-
 पगमसम्यक्त्वलक्षणासु मत्सु मार्गणासु अप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपस्य द्वितीयकपायस्य प्राधान्येना-
 ऽनुत्तरमार्गणावत्सन्निकर्षो विज्ञेयः, तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्येऽन्यतमामेकां कपाय-
 प्रकृतिमावधनं शेषाऽप्रत्याख्यानावरणत्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से
 पुरुषवेदमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, यतो—मार्गणास्वासु द्वितीयकपायश्चतुर्थगुण-
 स्थानके बध्यते तत्र चैता मोहनीयप्रकृतयोऽवश्यंतया तेन सार्द्धं बध्यन्ते इति । 'एगं' इत्यादि,
 प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्ये, एकां कपायप्रकृतिं बध्नन्, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपान् तृतीयकपा-
 यान् विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु पञ्चमगुणस्थानके प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्यते
 तत्राऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं न बध्यते चतुर्थगुणस्थाने तु बध्यते । पुरुषवेद शेषप्रत्याख्यानावरणत्रयं
 संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं नियमेन बध्नाति, तत्र प्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतरकपाय-
 बन्धस्य शेषप्रत्याख्यानावरणत्रयबन्धाऽविनाभावित्वात् शेषध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वे सति प्रत्याख्याना-
 वरणचतुष्कबन्धविच्छेदादनु बन्धविच्छेदात्, अन्यतरयुगलस्याऽध्रुवबन्धित्वेऽपि प्रधानीकृतप्रकृति-
 बन्धस्य तद्वन्धाविनाभावित्वात् । 'बंधइ' इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्बध्नन्
 नियमेन क्रमशः संज्वलनकपायाणां चतस्रः तिस्रो द्वे एकां प्रकृतीर्बध्नाति, एतदुक्तं भवति—पुरुषवेद-
 बन्धकः संज्वलनचतुष्कं नियमेन बध्नाति, संज्वलनक्रोधबन्धकः संज्वलनमानमायालोभरूपा-
 स्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, संज्वलनमानबन्धकः संज्वलनमायालोभरूपे द्वे प्रकृती नियमेन
 बध्नाति, संज्वलनमायाबन्धकश्च संज्वलनलोभलक्षणां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति । विवक्षित-
 प्रकृतिवन्धविच्छेदतो नियमेन बध्यमानप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्योत्तरत्र भावादिति । 'वा'
 इत्यादि, अन्यतरं हास्यादियुगलमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं भयजुगुप्से
 विकल्पतो बध्नाति, तथा संज्वलनक्रोधमानमायाबन्धका उक्तप्रकृतीस्तथा पुरुषवेदमपि विकल्पतो

वधन्ति, यतो विकल्पेन वध्यमानप्रकृतीनां बन्धविच्छेदतो प्रधानीकृतप्रकृतेर्यन्धविच्छेदस्योत्तरत्र भावात् ।

“अरमलोह” इत्यादि, संज्वलनलोभं वधन् पुरुषवेदमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं शेषसंज्वलनत्रिकं भयजुगुप्सेऽन्यतरजुगलं च विकल्पतो वध्नाति, नवम-गुणस्थानस्य पञ्चमे भागेऽवध्यमानत्वात् चतुर्थादिगुणस्थानकेषु यथासम्भवं वध्यमानत्वाच्च । “भयबन्धो” इत्यादि, भयमोहनीयस्य बन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपान् मध्यमाष्टकपायान् विकल्पेन वध्नाति, यतः पट्टादिगुणस्थानके वर्तमानः कपायाष्टकं वध्नाति चतुर्थगुणस्थानके वर्तमानस्तु वध्नाति । “बन्धए” इत्यादि, अन्यतरहास्यादियुगलं पुरुषवेदं संज्वलनचतुष्कं जुगुप्सां चेति नियमेन वध्नाति, एवमेव कुत्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयवद् बोद्धव्यः, समानत्वात् । “हस्स” इत्यादि, हास्यरतिप्रकृतिद्वये एकतरां प्रकृतिं वधन् तत्प्रतिपक्षभूतं शोकार्तियुगलं न वध्नाति, विरोधित्वात् । “वा” इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपं मध्यमकपायाष्टक विकल्पतो वध्नाति, संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से हास्यरतिद्वयेऽन्यतरप्रकृतिं पुरुषवेदं च नियमेन वध्नाति, तत्र संज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोश्च ध्रुवबन्धित्वे सति संज्वलनचतुष्कबन्धस्य हास्यरतिबन्धविच्छेदादुत्तरत्राऽपि भावात् भयजुगुप्सयोश्च हास्यरतिभ्यां सहैव बन्धविच्छेदात् तथा प्रकृतमार्गणासु पुरुषवेदस्य हास्यरतिबन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि स्वबन्धविच्छेदस्थानं यावत्सततं वध्यमानत्वात् । ‘एमेव’ इत्यादि, अरतिशोकप्रकृतिद्वयप्रधानसन्निकर्षो हास्यमोहनीयवद् वेदयितव्यः, तुल्यत्वात् । परमत्र ताभ्यां सह हास्यरत्योरबन्धरूपः सन्निकर्षो वक्तव्य इति विशेषः ॥३८४-५-६-७-८-९॥

साम्प्रतं मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षो भण्यते ।

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु बंधए गियमा ।
मायाइपुरिसगघो कमेगदुत्तिचउगसंजलणा ॥३९०॥
वा जुगलमण्णयरमवि तह सेसाओ भयं तु बंधंतो ।
गियमाऽण्णयरं जुगलं तह सेसेमेव कुच्छाए ॥३९१॥
हस्सरइत्तो एग बंधंतो बंधए अरइसोगं ।
जुगलं ण चेव गियमा सेसेवं अरइसोगाणं ॥३९२॥
बंधंतो संजलणं लोह बंधेइ पुत्तिमयकुच्छा ।
तह संजलणतिगं वा बंधइ वाण्णयरजुगलं पि ॥३९३॥

(प्रे०) “मणणाण” इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु मायादिवन्धकः पुरुषवेदबन्धकश्च क्रमेणैकद्वित्रिचतुःसंज्वलनकपायान् नियमेन वध्नाति, इदमुक्तं भवति-प्रकृतमार्गणासु संज्वलनमायाबन्धकः संज्वलनलोभं संज्वलनमानबन्धकः

संज्वलनमायालोभौ, संज्वलनक्रोधबन्धकः संज्वलनमानमायालोभान्, पुरुषवेदबन्धकश्च संज्वलन-
चतुष्कमवरयमेव वध्नाति, अत्र तत्तत्प्रधानीकृतप्रकृतेर्बन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि यथामन्भवं प्रकृत-
प्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं यावत्सततं वध्यमानत्वात् । “वा” इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनक्रोध-
मानमायाबन्धकाः, हास्यादियुगलद्वये एकतरमपि युगलं शेषप्रकृतीश्च विकल्पेन वध्नाति, हेतुभाव-
नादिकं ज्ञानमार्गणावन्कार्यम् । “भय” इत्यादि, भयमोहनीयं वधन् हास्यादियुगलद्वये एकतरं
युगलं जुगुप्सां संज्वलनचतुष्कपुरुषवेदरूपाः शेषप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति, हेतुरत्र ज्ञानमार्गणाव-
न्ध्यः । “एमेव” इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानमन्निकर्षोऽत्र भयमोहनीयवद् विज्ञेयः, तत्स-
दृशत्वात् । “हस्सरइतो” इत्यादि, हास्यरतिप्रकृत्योरेकतरां प्रकृतिमावधन्नन्तरतिगोकरूपं युगलं
नैव वध्नाति, ताभ्यां सहैतद्युगलबन्धस्य विरोधात् । “णियमा” इत्यादि, हास्यरत्योरन्यतर-
प्रकृतिं पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सारूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति, अत्र ज्ञानमार्गणावद्धेतु-
रवसेयः । “एवं” इत्यादि, अतिशोकप्रकृतिद्वयप्रधानसन्निकर्षो हास्यरतिवद् वक्तव्यः, तत्समानत्वात् ।
“धधंतो” इत्यादि, संज्वलनलोभं वधन् पुरुषवेदमयकुत्मासंज्वलनक्रोधादित्रयरूपाः षट्प्रकृती-
विकल्पेन वध्नाति । “बन्धइ” इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमपि विकल्पेन वध्नाति,
पुरुषवेदादिप्रकृतीनामन्यतरयुगलस्य च बन्धस्य संज्वलनलोभबन्धविच्छेदस्य प्रागेव विच्छेदभावात् ।
॥३९०-१-२-३॥

इदानीमज्ञानत्रिके सन्निकर्षमाह

ओघव्व अणाणतिगे मिच्छाणचउगणपुंसगित्थोण ।

सेसाण अणव्व णवरि पडिवक्खं णेव पुमजुगलवंधो ॥३९४॥ (गीति)

(प्रे०) “ओघव्व” इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभज्ज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु
मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकेवेदस्त्रीवेदप्रकृतिप्रधानमन्निकर्ष ओघवद् विज्ञेयः ।
ओघवदामां यथायोगं प्रथमद्वितीयगुणस्थानद्वयं यावद् बन्धस्य सद्भावात् । सन्निकर्ष-
स्ततो ज्ञेयः । “सेसाण” इत्यादि, निरुक्तमसप्तप्रकृतिव्यतिरिक्तशेषमोहनीयप्रकृतिप्रधान-
सन्निकर्षोऽनन्तानुबन्धिकपायवद् वेदयितव्यः । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-
संज्वलनचतुष्कमध्येऽन्यतमां प्रकृतिं वधन् शेषैकादशकपायानन्तानुबन्धिचतुष्कं भयजुगुप्से-
ऽन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च नियमेन वध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु विकल्पेन वध्नाति ।
भयबन्धकः षोडशकपायान् जुगुप्सामन्यतमवेदमन्यतरयुगलं च नियमेन वध्नाति, मिथ्यात्व-
मोहनीयं च विकल्पेन वध्नाति, एवमेव सन्निकर्षो जुगुप्सामोहनीयस्य ज्ञातव्यः, तत्सदृशत्वात् ।
पुरुषवेदबन्धकः षोडश कपायान् भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं च नियमेन वध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु
विकल्पेन वध्नाति । हास्यरत्योरन्यतरप्रकृतिमावधन्नन्तत्प्रकृतिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं षोडशकपा-
यान् भयजुगुप्सेऽन्यतमवेद नियमेन वध्नाति, मिथ्यात्वमोहनीयं तु विकल्पेन वध्नाति । अति-

शोकप्रधानसन्निकर्ष एवमेवाभिधातव्यः, समानत्वात् । ननु शेषमोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽ-
नन्तानुबन्धिचतुष्कवदत्रादिष्टः, तदनुसारेण त्वन्यतमवेदेन साकं प्रतिपक्षवेदसन्निकर्षापत्तिः स्यात्,
तथा हास्यरतियुगलेन सह शोकार्त्योः सन्निकर्षापत्तिः स्यादित्यापत्तिद्वयमपाकर्तुं मपवादमुप-
दर्शयति “णवरि” इत्यादि, अन्यतमवेदबन्धकस्तत्रातिपक्षभूतौ वेदौ हास्यादियुगलबन्धकस्तद्विपक्ष-
भूतं युगलं च नैव वध्नाति, विरोधात् ॥३९४॥

साम्प्रतं तेजःपद्मलेश्याद्वये सन्निकर्षमाह

वारसकसायदुजुगलवेआणोघव्व तेउपम्हासु ।

एगं वधतो मयकुच्छासजलणचउगोओ ॥३९५॥

वंधेइ पंच सेसा णियमा वा मिच्छवारसकसाया ।

वधइ णियमाऽण्णयरं एगं वेअ तहा जुगल ॥३९६॥

पुमवघी वेअदुगं ण वंधइ व मिच्छवारसकसाया ।

णियमा भयकुच्छाचउसजलणाऽण्णयरंजुगल च ॥३९७॥

(प्रे०) ‘वारस’ इत्यादि, तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयेऽनन्तानुबन्धिचतुष्कादिद्वादशकषायान्
हास्यादियुगलद्वयं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं च प्रधानीकृत्य सन्निकर्ष ओधवज्ज्ञातव्यः । ‘एगं’ इत्यादि,
भयजुगुप्सासंज्वलनचतुष्कप्रकृतिध्वन्यतमा प्रकृतिमावधनन् शेषा एता पञ्चप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति,
मार्गणयोरनयोर्वन्धविच्छेदाभावादामाह । ‘वः’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्का-
दिद्वादशकषायांश्च विकल्पेन वध्नाति । भयादिप्रकृतिबन्धविच्छेदात्प्रागासां बन्धविच्छेदात् ।
‘बंधइ’ इत्यादि, वेदत्रयेऽन्यतमवेदमेकतरं हास्यादियुगलं च नियमेन वध्नाति । पुमबंधो’
इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः शेषवेदद्वयं न वध्नाति, वेदत्रयादन्यतरैकवेदस्यैव बन्धसम्भवात् । ‘व’
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयं द्वादशकषायांश्च विकल्पेन वध्नाति । ‘बंधइ’ इत्यादि, भयजुगुप्से
संज्वलनचतुष्कमन्यतरहास्यादियुगलं च नियमेन वध्नाति, मार्गणयोरनयोर्वन्धविच्छेदाभावात्तासाम् ।
॥३९५-६-७॥

साम्प्रतं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षमाह

ओहिंव्व वेअगे खलु भवे अडकसायहस्सछपकाणं ।

कुच्छव्व सण्णियासो पुमसजलणाण विण्णेयो ॥३९८॥

(प्रे०) ‘ओहिंव्व’ इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्करूपस्य कषायाष्टकस्य हास्यपट्टकस्य च प्रधानभावेन सन्निकर्षोऽवधिज्ञानमार्गणावद्
भवति, तत्पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरणचतुष्केऽन्यतम कषायमावधनन् शेषाऽन्यतमाऽप्रत्याख्यानावरण-
त्रयं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से पुरुषवेदमेकतरहास्यादियुगलं च नियमेन
वध्नाति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्यादेकतमां कषायप्रकृतिमावधनन् शेषाऽन्यतमप्रत्याख्यानावरण-
त्रयं संज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्सेऽन्यतरयुगलं पुरुषवेदं च नियमेन वध्नाति, अप्रत्याख्यानावरण-
२५ ख

चतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । हास्यरतिप्रकृतिद्वय एकतरप्रकृतिबन्धकस्य शोकारत्योर्वन्धो नास्ति । मध्यमकपायाष्टकस्य विकल्पेन बन्धोऽस्ति, संज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोः पुरुषवेदस्य हास्य-
रतिद्वयेऽन्यतरप्रकृतिश्च बन्धो नियमेनाऽस्ति, एवमेवाऽरतिशोकप्रधानसन्निकर्षोऽपि विभावनीयः ।
भयबन्धकस्य मध्यमकपायाष्टकस्य बन्धो विकल्पेन वर्तते, संज्वलनचतुष्कस्य जुगुप्सायाः पुरुष-
वेदस्य हास्याद्यन्यतरयुगलस्य च बन्धो नियमेन वर्तते । इत्थमेव कुत्सामोहनीयप्रधान-
सन्निकर्षोऽप्यभिधेयः । 'कुच्छब्ध' इत्यादि, पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कप्रधानसन्निकर्षो जुगुप्सामोह-
नीयवद् विज्ञेयः, तद्यथा-पुरुषवेदबन्धकस्य संज्वलनचतुष्के एकतमकपायबन्धकस्य च मध्यमकपाया-
ष्टकस्य बन्धो विकल्पेनाऽस्ति, पुरुषवेदबन्धकस्य संज्वलनचतुष्कस्य भयजुगुप्सयोर्हास्याद्यन्यतर-
युगलस्य च नियमेन बन्धो भवति, एकतमसंज्वलनकपायबन्धकस्य तु शेषसंज्वलनत्रयस्य भय-
जुगुप्सयोरेकतरहास्यादियुगलस्य पुरुषवेदस्य च बन्धो नियमेन भवति । इह हेतोरवगतिः पुनरव-
धिज्ञानमार्गणानुसारेण भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवत्कार्या ॥३९८॥

अथ सास्वादनमार्गणायामधिकृतं वक्ति

सासाणे बधेतो एगधुवं बंधएऽण्णधुवबधो ।

णियमा सत्तरस तहा वेअं जुगलं च अण्णयरं ॥३९९॥

एमेव सण्णियासो सेसाण णवरि वेअजुगलाण ।

एगं बधेमाणो ण चेव बधेइ पडिवक्खं ॥४००॥

(प्रे०) "सासाणे" इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामेकां ध्रुवबन्धिप्रकृतिं बध्नन्-
न्याः सप्तदशध्रुवबन्धिमोहनीयप्रकृतीरन्यतरवेदमेकतरहास्यादियुगलं च नियमेन बध्नाति, इदमुक्तं
भवति सास्वादनमार्गणायां षोडशकपाया भयजुगुप्से चेत्यष्टादश प्रकृतयो मोहनीयस्य ध्रुवबन्धिन्यः
सन्ति, अत आसामेकां प्रकृतिमाबध्नन् शेषाः सप्तदशप्रकृतीरपि नियमेन बध्नातीति । एवं स्त्रीपुरुष-
वेदद्वयादेकं वेदं युगलद्वयादेकं च युगलं नियमेन बध्नाति । 'एमेव' इत्यादि, एवमेव शेषाणां वेद-
द्वययुगलद्वयरूपाणां पण्णां मोहनीयप्रकृतीनां सन्निकर्षो विज्ञातव्यः, समानत्वात् । नवरं पूर्वत्रदेकवेद-
स्य बन्धेऽन्यवेदस्य तथैवेकतरयुगलस्य बन्धेऽन्ययुगलस्य बन्धनिषेधो वक्तव्यः, स च 'णवरि'
इत्यादिना दर्शितो मूले ॥३९९-४००॥

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्कविषयं सन्निकर्षं चिन्तयितुकाम आह

आउरस सण्णियासो सत्तमणिरयाणयाइदेवेसुं ।

सव्वतागणिवाऊसुं आहारदुगस्मि मणणाणे ॥४०१॥

संजमसामइएसु छेए परिहारदेसविरईसु ।

एगपयडिवधाओ ण होइ ओधव्व सेसासु ॥४०२॥

(प्रे०) 'आउरस' इत्यादि, तमस्तमःप्रभानरकमार्गणायामानतप्राणताऽऽरणाच्युतनवरैवेयक-
पञ्चानुत्तररूपास्वष्टादशदेवमार्गणासु सप्तसु तेजस्कायिकमार्गणासु सप्तसु वायुकायमार्गणासु, आहारक-

काययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीय-
परिहारविशुद्धिदेशविरतरूपासु पञ्चसु संयममार्गणासु चेति समुदितास्वेकचत्वारिंशन्मार्गणास्वायुष्क-
स्यैकस्यैव बन्धात्मनिकर्षो नास्ति । 'ओधन्व' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणास्वायुष्काणां सन्निकर्ष
ओधन्व विशेषः, तद्यथा—एकस्यायुष्कस्य बन्धेऽपरेषामायुषां बन्धो न भवति । ताश्चेमाः शेषमा-
र्गणाः—सप्तमनरकवर्जशेषसप्तनरकमार्गणाः, पञ्चतिर्यगोघादिमार्गणाः, चतस्रो मनुष्यमार्गणाः, देवौघ-
भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्केप्रथमाद्यष्टमान्तदेवरूपा द्वादशसुरमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः,
सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽष्कायमार्गणाः एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः तिस्रः त्रसकायमार्गणा-
श्चेति समुदिता अष्टाविंशतिकायमार्गणाः, वैक्रियमिश्राहारकाहारकमिश्रकर्मणकाययोगवर्जश्चितु-
र्दशयोगमार्गणाः, वेदत्रयमार्गणाः, कषायमार्गणाचतुष्कम्, मतिश्रुताऽवधिज्ञानमार्गणात्रयम्,
मत्तज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपास्तिस्रोऽज्ञानमार्गणाः, असंयममार्गणा, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमार्गणा-
त्रयम्, पङ्क्तेश्यामार्गणाः, भव्याभव्यमार्गणाद्वयम्, सम्यक्त्वौघक्षायिकवेदकमास्वादनमिथ्यात्वमा-
र्गणापञ्चकम्, संश्रयसङ्गिमार्गणाद्वयम्, आहारकमार्गणा चेति समुदिता द्वाविंशतियुतशतमार्गणा इति ।
वैक्रियमिश्रकर्मणकाययोगाऽवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमोपशमस-
म्यक्त्वमिश्रानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुषो बन्धाभावात्सन्निकर्षो न भावनीय इति ॥४०१-२॥

आदेशतो ज्ञानावरणादिपङ्मूलकमसत्कप्रकृतीनां सन्निकर्ष निरूप्य साम्प्रतं मार्गणासु नामकर्मस-
त्कप्रकृतीनां तं निरूपयन्नादौ कालुचिन्मार्गणासु च तं निषेधयन् पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु
तमुपदर्शयितुमाह—

णामस्स सण्णियासो णो चेव भवे अवेअसुहमेसुं ।

विण्णेयो ओधन्व दुपणिदितसपणमणवयेसुं ॥४०३॥

कायपुरिसणपुमेसुं कोहे माणम्मि मायलोहेसुं ।

चक्खुअचक्खुसु तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥४०४॥

(प्रे०) 'णामस्स' इत्यादि, अपगतवेदसूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणयोर्नामकर्मणः सन्निकर्षो न
भवति, मार्गणाद्वयेऽस्मिन् नामकर्मण एकस्या एव प्रकृतेर्वन्धात् । 'विण्णेयो' इत्यादि, पञ्चेन्द्रि-
यौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तत्रसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचोयोगमार्गणाः,
काययोगौघपुरुषवेदनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनमव्यसंश्रयाहारकरूपा द्वादश-
मार्गणा इति सर्वसंख्यया पङ्क्तिविंशतिमार्गणासु सर्वासां नामप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओधन्व विशेषः,
अनेकविधजीवानां श्रेणेश्चात्र प्राप्यमाणत्वेनौघतः प्राप्यमाणानां नामप्रकृतिसन्निकर्षस्थानानामत्राऽपि
प्राप्यमाणत्वात् ॥४०३-४॥

साम्प्रतं नरकौघादिमार्गणासु नामप्रकृतीनां सन्निकर्षभावेदयितुमाह ।

गिरयपटमाहतिगिरयतद्दमाक्षगयदृभंतदेवेसु ।
 तिरियगह बंधतो, णवधुववधितिरिअणुपुच्ची ॥४०५॥
 पंचिदियुरालियदुगपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
 णियमा वधइ णरदुगतित्याणि ण चेव वुज्जोअ ॥४०६॥
 संधयणागिइखगहछथिराइजुगलाण वधए णियमा ।
 अणयरा णव एव होजुज्जोआणुपुच्चीणं ॥४०७॥
 णरगहबंधी णवधुवपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
 पंचिदियुरलदुगणरअणुपुच्ची वधए णियमा ॥४०८॥
 संधयणागिइखगहछथिराइजुगलाण उ णियमाऽणयरा ।
 तिरिदुगउज्जोआणि ण जिण च एवअणुपुच्चीए ॥४०९॥
 णियमा पणिदिवघो णवधुवबंधिपरधायऊसास ।
 तसचउगुरलदुगाणि य वधइ वुज्जोअतित्याणि ॥४१०॥
 णियमाऽणयरा सेसा गइआई तित्यवज्जसेसाण ।
 एमेव णवरि णवसुहअयिरामुहअजसवधी उ ॥४११॥
 ण उ वधइ पडिवक्खा वधतो पंचसंधयणआई ।
 चउदस ण चेव वधइ तित्यसपडिवक्खणामाणि ॥४१२॥
 जिणबंधी णवधुवणरउरलदुगपणिदितसचउक्काणि ।
 सुखगहसंधयणागिइपरधूमाससुहगतिगाणि ॥४१३॥
 वधइ णियमाऽणयरा थिराइजुगलाण तिण्ण स उ सेसा ।
 एमेव चउत्थाइतिगिरयेसु परं विणा तित्यं ॥४१४॥

(प्रे०) 'गिरय' इत्यादि, नरकौत्तरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभाह्वासा चतसृषु नरकमार्ग-
 णासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुकसहस्राररूपासु पट्सु देवमार्गणासु च तिर्यग्गतिनाम बन्धन्
 नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयस्तिर्यगानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजात्यादारिकद्विकपराघातोच्छ्वाभ्रमवादरपर्याप्तप्रत्ये-
 कप्रकृतयश्चेति समुदिता एकोनविंशतिप्रकृतीनियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बत्, शेषाणां तु मार्ग-
 णास्त्रासु तिर्यग्गतिबन्धकस्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वेन तिर्यग्गतिबन्धस्य
 तद्बन्धाऽविनाभावित्वात् । 'णर' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिननामी नैव बध्नाति, यतः प्रकृतित्रय-
 स्याऽस्य बन्धस्य तिर्यग्गतिनामा सह विरोधो वर्तते । 'वुज्जोअ' इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन
 बध्नाति, प्रकृतमार्गणासु पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले केनचित्तिर्यग्गतिनामबन्धकेन
 तस्य वध्यमानत्वात् केनचिच्चाऽवध्यमानत्वात् । 'संधयणा' इत्यादि, संहननपट्कं सस्थानपट्कं
 खगतिद्वयं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे सुम्बरदुःस्वरे, आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती
 चेति प्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, हेतुगत्रोधवदनुसन्धेयः । 'एव'
 मित्यादि, उद्योततिर्यगानुपूर्वीनामप्रधानमन्निकर्षोऽत्र तिर्यग्गतिनामप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।
 'णरगहबंधी' इत्यादि, मनुष्यगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासत्रसमाद-

रपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतयश्चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् शेषाणां तु मनुष्यगतिनामबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'संघयणा' इत्यादि, संहननपट्कं संस्थानपट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे सुस्वरदुःस्वरे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति प्रकृतिप्रातेषु प्रत्येकमेकतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणासु पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकत्वेनोक्तप्रकृतिबन्धाविनाभावित्वान्मनुष्यगतिबन्धस्य । 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति, मनुष्यगतिनाम्ना सहैतत्प्रकृतिबन्धस्य विरोधात् । 'जिणं च' चि, तीर्थकृन्नाम विकल्पेन बध्नाति, यतोऽधिकृतमार्गणासु जिननामसत्कर्मा मनुष्यगतिनामबन्धवेलायां जिननाम बध्नाति तदितरस्तु न बध्नाति । 'एचं' इत्यादि मनुष्यानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षोऽत्र मनुष्यगतिसन्निकर्षवदवसातव्यः, समानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासे त्रसधादरपर्याप्तप्रत्येकौदारिकद्विकप्रकृतयश्चेति भ्रमुदिताः सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् शेषाणां च प्रकृतमार्गणासु ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'बुज्जोअ' इत्यादि, उद्योतजिननाम्नी विकल्पेन बध्नाति, एतत्प्रकृतिद्वयस्य कथापि प्रकृत्या सह नियमेन बन्धाभावात् सर्वत्र तस्य बन्धो विकल्पेन समायाति । 'णियमा' इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तगत्यादिप्रकृतिप्रातेषु प्रत्येकमन्यतमां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, ते चेते गत्यादिप्रकृतिप्राताः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयम् संहननपट्कम्, संस्थानपट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, खगतिद्वयम्, स्थिरास्थिरे, शुभाशुभे, सुभगदुर्भगे सुस्वरदुःस्वरे, आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'तित्थचज्ज' इत्यादि, जिननामवर्जशेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—औदारिकद्विकं संहननपट्कं संस्थानपट्कं नामध्रुवबन्धिनप्रकृतयः खगतिद्वयं त्रसदशकमस्थिरपट्कं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेति त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतयः । ननु जिनवर्जशेषप्रकृतीनां सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियसन्निकर्षवदितिदिष्टः, स तु वज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिसुभगत्रिकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सन्निकर्षविषये तत्प्रतिपक्षप्रकृतिभिः सहानुपपद्यते तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धस्य ताभिः सहाऽमग्गवादितिशङ्कामुन्मूलयितुं तथैवाऽन्यासां प्रकृतीनां सन्निकर्षविषयेऽप्यनुपपत्तिमपाकर्तुमपवादं 'णवरि' इत्यादिनाह—वज्रर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिशुभगत्रिकस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां नवप्रकृतीनां तथाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिप्रकृतीनां च बन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतीर्न बध्नाति । 'बधंतो' इत्यादि, द्वितीयादिपञ्चसहननपञ्चसंस्थानाशुभखगतिदुर्भगत्रिकरूपासु चतुर्दशप्रकृतिष्वेकतरप्रकृतिबन्धकः सप्रतिपक्षप्रकृतिजिननामकर्माणि नैव बध्नाति । आमां बन्धकोऽसम्यग्दष्टिरतो जिननामापि नैव बध्नाति । अथ जिननाम्नोऽवशिष्टस्तस्माद् 'जिणभंधा' इत्यादिना तस्यैवाह—जिननाम्नो बन्धको नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयो मनुष्यद्विक-

भौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातित्रयमादरपर्याप्तप्रत्येकरूपं त्रयचतुष्कं सुखगतिः प्रथमसंहननं प्रथम-
संस्थानं पराधातोच्छ्वासनां सुभगत्रिकं चेति षड्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तथैवा-
तत्र ध्रुवाणां प्राग्वद्, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतीनां तु प्रकृतदेवनरकमार्गणासु जिन-
नामबन्धविधायिनो मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्, शेषाणां पुनर्जिननामबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धा-
ऽविनाभावित्वान्नियतबन्धो विज्ञेयः । 'अणयरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यथाःकीर्त्ययशः-
कीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतगस्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्रौघोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षव-
द्धेतुरधिगम्यः । 'ण उ' इत्यादि, एतद्वयतिरिक्तशेषनामप्रकृतोर्न बध्नाति, जिननाम्ना सह शेषप्रकृ-
तीना बन्धस्य प्रथमद्वितीयगुणस्थानप्रत्ययिकत्वेन विरोधात् । ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः-तिर्यग्गतिः,
द्वितीयादिसंहननपञ्चकम्, द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकम्, तिर्यगानुपूर्वी, कुलगतिः, दुर्मगत्रिकम्,
उद्योतनाम चेति सप्तदश । 'एमेव' इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु तिसृषु नरकमार्गणासु
नरकौधमार्गणावजिननाम विना नामकर्मणः सन्निकर्षो वेदितव्यः, जिननाम्नो वर्जनमत्र बन्धाभा-
वादवसेयम् ॥४०५४१४॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां नामकर्मणः सन्निकर्षमाह

चरमणिरये तिरियगइबंधी णवधुवपणिदिउरलडुगं ।
परधूससतसचउगअणुपुव्वी बघए णियमा ॥४१५॥
बंधइ णेव णरडुग उज्जोअं व णियमा य अण्णयरा ।
संधयणाई सेसा तहेव उज्जोअतयणुपुव्वीणं ॥४१६॥(गीति.)
एमेव दुहगतिगपणसंधयणागिडकुलगइणामाण ।
णवरं पडिवक्खआओ पयडीओ णेव बंधेइ ॥४१७॥
णरगइबधी णवधुवपणिदिओरालजुगलसुहखगई ।
सुहसंधयणागिडपरधाऊसासणरअणुपुव्वी ॥४१८॥
तसचउगं सुहगतिगं अण्णयरा य तियिराइजुगलाणं ।
णियमा बंधइ सेसाणेमेव णराणुपुव्वीए ॥४१९॥
णियमा पणिदिबंधी णवधुवउरलडुगतसचउवकाणि ।
तह परधाऊसास बंधइ उज्जोअणामं वा ॥४२०॥
णियमा सेसाऽण्णयरा गइआई एवमेव सेसाण ।
णवरि वइराइणधी पडिवक्खआ णेव बंधेइ ॥४२१॥

(प्रे०) "चरमणिरये" इत्यादि, तमस्तमःप्रभाख्यसप्तमनरकमार्गणायां तिर्यग्गतिनाम्नो
बन्धको नवध्रुवबन्धनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं पराधातोच्छ्वासे त्रयचतुष्कं तिर्य-
गानुपूर्वी चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, एतन्मार्गणावतीनां प्रथमद्वितीयगुणस्थाने
पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन तिर्यग्गतिबन्धेन साकमासां प्रकृतीनां बन्धस्याऽवि-
नाभावात् । "एमेव" इत्यादि, मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतिद्वयं नैव बध्नाति, तिर्यग्गतिनाम्ना

सहैतत्प्रकृतिद्वयबन्धस्य विरोधात् । “उज्जोअं व” इति, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति । “णियमा” इत्यादि, संहननादिशेषप्रकृतिष्वन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषसंहननादिप्रकृतयः—संहननपट्कं संस्थानपट्कं खगतिद्विकं स्थिरास्थिरपट्के चेति । “तहेव” इत्यादि, उद्योततिर्यगानुपूर्वीनाम्नी प्रधानीकृत्य सन्निकर्षस्तिर्यग्गतिनामवदस्ति । उद्योतनामबन्धको नियमेन तिर्यग्गतिनाम बध्नातीति विशेषः । “एमेव” इत्यादि, दुर्भगत्रिकद्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादिसंस्थानपञ्चककुखगतिप्रधानमन्निकर्षस्तिर्यग्गतिनामवदस्ति । “णवरं” इत्यादिना विशेषपददर्शयति-परं प्रतिपक्षभूतप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यथा-दुर्भगनामबन्धकः सुभगनाम नैव बध्नाति, दुःस्वरनामबन्धकः सुस्वरनाम, एवं सर्वत्र विज्ञेयम्, आभिः प्रकृतिभिः सह तिर्यग्गतेर्नियमेन बन्धः, आमां बन्धका मिथ्यादृष्टिसास्यादनाः, ते च भवप्रत्ययेन नियमात्तिर्यग्गतिं बध्नन्तीति कृत्वेति । “णरगइयंधो” इत्यादि, मनुष्यगतिबन्धकः नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं सुखगतिः प्रथमसंहननं प्रथमसंस्थानं पराघातोच्छ्वासे मनुष्यानुपूर्वी त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीः स्थिरादिध्रुगलत्रयेऽन्यतराः तिस्रः प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । “सेसा” इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषनामप्रकृतीर्न बध्नाति, तच्चैवम्—मिश्रदृष्ट्यादयो मनुष्यगतेर्बन्धका वर्तन्ते ते च शेषप्रकृतीर्गुणप्रत्ययान्नैव बध्नन्ति, ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः—तिर्यग्द्विकं पञ्चसंहननानि पञ्चसंस्थानानि कुखगतिर्दुर्भगत्रिकं उद्योतनाम चेति । “एमेव” इत्यादि, मनुष्यानुपूर्वीप्रधानमन्निकर्षो मनुष्यगतिनामवदवमातव्यः, तद्बन्धस्य मनुष्यगत्या सहचारित्वात् । “णियमा” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धकः नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय औदारिकद्विकं त्रसचतुष्कं पराघातोच्छ्वासे चेति सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वादेव शेषाणां तु प्रस्तुतमार्गणायां ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । “उज्जोअ” इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषनामप्रकृतिष्वन्यतमप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषगत्यादिनामप्रकृतयः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं संहननपट्कं संस्थानपट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरपट्के चेति त्रिंशत् । “एवमेव” इत्यादि, उक्तशेषनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषनामप्रकृतयः—औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामद्वयं वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थान नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः सुखगतिः त्रसदशकमस्थिराशुभायशःकीर्तित्रिकं पराघातोच्छ्वासे चेति । “णवरि” इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—परन्तु वज्रर्षभनाराचसंहननादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात्, तद्यथा—वज्रर्षभनाराचसंहननबन्धकः शेषसंहननपञ्चकं नैव बध्नाति, समचतुरस्रसंस्थानबन्धकः शेषसंस्थानपञ्चकं नैव बध्नाति, स्थिरनामबन्धकोऽस्थिरनाम नैव बध्नातीत्येवं सर्वत्र योज्यम् ॥४१५-२२॥

इदानीं तिर्यगोवादिमार्गणासु नामप्रकृतिसन्निकर्षं प्रतिपादयति ।

तिरियतिपण्णितिरियअण्णाणअमवियमिच्छअमणेषुं ।

ओधव्व णवरि बंधो णो तित्याहारजुगलाणं ॥४२२॥

जसबधो खलु णवधुवपरधाऊसासबायरतिगाणि ।

णियमा बंधेइ णिरयदुगसुहमतिगाजसाइ एणो ॥४२३॥

बंधेइ आयवदुगं वा सधयणदुउवंगसरखगई ।

वाऽण्णयरं अवि बंधइ एणयमाओ सेसगइआई ॥४२४॥

(प्रे०) “तिरिय” इत्यादि, तिर्यगोव-तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्ची-
मत्यज्ञान-श्रुतज्ञान विभङ्गज्ञानाऽभ्यवमिथ्यात्वऽसंज्ञिरूपासु दशसु मार्गणासु नामकर्मणः सन्निकर्ष
ओघवदवसातव्यः । “णवरि” इत्यादिना समापतन्तीमापत्तिमपाकर्तुमपवादमुपदर्शयति-जिननामाहा-
रकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्याऽत्र बन्धाभावेन सन्निकर्षो न भवति, कयापि प्रकृत्या सह सन्निकर्षो न
वाच्यः, तत्प्रधानोऽपि सन्निकर्षो न भवतीत्यर्थः । “जसबंधो” इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको नवध्रुव
बन्धिनामप्रकृतयः पराघातोच्छ्वासे आदरत्रिकं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अष्टमगुण-
स्थानस्य सप्तमभावनवमादिगुणस्थानवर्जेषु सर्वस्थानेषु तेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्याविनाभावात् ।
“बंधेइ” इत्यादि, नरकद्विकस्रक्षमत्रिकाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनां नो
बन्धेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । “बंधेइ” इत्यादि, आतपोद्योतप्रकृतिद्वयं विकल्पेन
बध्नाति, यतो हि-एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केचन यशःकीर्तिं बध्नन्त एतत्प्रकृतिद्वयं बध्नन्ति
केचिन्नैव बध्नन्ति । द्वीन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धका यशःकीर्तिं बध्नन्त आतपनाम नैव बध्नन्ति,
उद्योतनाम विकल्पेन बध्नन्ति, मनुष्यगतिप्रायोग्यबन्धकस्तूष्ठाप्रकृतिद्वयं नैव बध्नाति । “जा”
इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराऽङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतर-
स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । “नियमाओ” इत्यादि, अन्यतरपदमत्राप्यनु-
वर्तते, उक्तातिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमतो बध्नाति, ताश्चेमाः शेषनामप्रकृ-
तयः-देवद्विकं मनुष्यद्विकं तिर्यगद्विकं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कं त्रसस्थावरे
स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुमगदुर्मगे आदेयाऽनादेये चेति । अत्र श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृत्यात्मकैक-
विधबन्धस्थानस्याभावादोघवत् सन्निकर्षो न प्राप्यते, अतः पृथक् सन्निकर्षः कथितः ॥४२२-२४॥

इदानीमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु सकलैकेन्द्रियविकलेन्द्रियपृथ्वीकायाक्कायवनस्य-
तिकायमार्गणासु च नामकर्मणः सन्निकर्षो निरूप्यते

असमत्तपण्णितिरियमणुयपणिवियतसेसु सध्वेषुं ।

एण्णितियविगलितियपुहवोसलिलवणकायेसुं ॥४२५॥

ओधव्व तिरियणरदुगथावरजाइच्चउगायवदुगाणं ।

णवरि एण एणरदुगधवे जिण अबधे सपाउग्गा ॥४२६॥

बंधइ परिदिबंधी णवधुवपत्तेअतसुरलदुगाणि ।
 णियमाओ वा बंधइ परधाऊसासउज्जोअं ॥४२७॥
 चउजाइआयवसुहमयावरसाहारणाणि बंधइ णो ।
 सरखगई वाऽण्णयरं बंधइ णियमाऽण्णगइआई ॥४२८॥
 उरलतणुं बंधंतो णवधुवबंधोउ बंधए णियमा ।
 परधाऊसासायवदुगुरलुवंगाणि बंधइ वा ॥४२९॥
 संघयणस्सरखगई वाण्णयरं वि णियमाऽण्णगइआई ।
 एमेव सण्णियासो धुवबंधोणं णवण्ह भवे ॥४३०॥
 पचिदियव्व णेयो उरलोवंगस्स णवरि बंधेइ ।
 एगिदियं ण णियमा अण्णयरं सेसजई उ ॥४३१॥
 वइरं बंधेमाणो णियमा बंधेइ उ एवधुवबंधो ।
 पचिदियुरलदुगपरधाऊसासतसचउगाणि ॥४३२॥
 चउजाइआयवाइं पणसधयणाणि थावरचउक्क ।
 चउवसपयडो ण पियअ बंधइ उज्जोअणाम वा ॥४३३॥
 णियमाऽण्णयरं सेसा गइआई एवमेव विण्णेयो ।
 चउसंघयणपणागिइपसत्यखगइसुहगतिगाणं ॥४३४॥
 छेवदुतसाण भवे पणिदियव्व एवर ण बंधेइ ।
 एगिदियपडिवक्खा णियमा सेसाऽण्णयरजई ॥४३५॥
 उरलव्व हुंडवायरपत्तेअयिरदुगाजसाण तहा ।
 दुहगाणादेयाण एवरि ण बंधेइ पडिवक्खा ॥४३६॥
 धुवबधिउरालियदुगपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
 कुखगइवधी णियमा बंधइ उज्जोअणामं वा ॥४३७॥
 बंधइ णउ एगिदियआयवथावरचउक्कसुहखगई ।
 णियमाऽण्णयरं सेसा गइआई दुस्सरस्सेवं ॥४३८॥
 परधाय बंधंतो धुवबंधिउरालपज्जऊसासं ।
 णियमा वधइ वा उण आयवदुगुरालुवंगाणि ॥४३९॥
 बंधइ णअपज्जत्तं सरसंघयणखगई वअण्णयरं ।
 णियमाऽण्णा गइआई पज्जूसासाण एमेव ॥४४०॥
 एमेव यिरसुहाणं णवर वधइ ण चेव पडिवक्खं ।
 एमेव जसस्स णवरि ण सुहमसाहारणाइं पि ॥४४१॥

(प्रे० 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-मनुष्य-पञ्चेन्द्रिय-त्रसरूपासु चतसृष्व-
 पर्याप्तमार्गणासु ओघ-सूक्ष्मौघनादरौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तनादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तनादरभेदेन सप्तै-
 केन्द्रियमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु
 चतुरिन्द्रियमार्गणासु ओघादिसप्तभेदेन सप्तसु पृथ्वीकायमार्गणासु सप्तसु अप्कायमार्गणासु सप्तसु
 साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु ओघ-प्रत्येकौघपर्याप्तप्रत्येकाऽपर्याप्तप्रत्येकभेदेन चतसृषु वनस्पतिकाय-
 २६ ख

मार्गणासु चेति सर्वसंगीलितासु पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु तिर्यग्द्विकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कात-
पोद्योतप्रकृतीनां सन्निकर्षः सर्वयौधवद् भवति, औधवदत्रापि प्रकृतीनामासां बन्धेन सह नियतबन्ध-
वत्यः स्याद्वन्धवत्यो बन्धाभाववत्यः प्रकृतयो लभ्यन्ते, यद्यपि ओघे तु तिर्यग्द्विकादिप्रकृत-
प्रकृतीनां सन्निकर्षे बन्धाभाववत्प्रकृतितया आहारकद्विकेदेवद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकजिननामप्रकृ-
तीनामुक्तेऽप्यत्र नास्ति तत्प्रसङ्गः, यत आसु मार्गणासु आसां सर्वथा बन्धाभावः ।

मनुष्यादिकप्रधानसन्निकर्षोऽप्यौधवत्कथनीयः, किन्तु जिननाम्नोऽत्र बन्धाभावात्स्याद्वन्धो
न वक्तव्य इति विशेषः, मोऽपि 'णचरि' इत्यादिना भूले कथितः ।

'बन्धइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीः प्रत्येकनाम त्रयनाम
वादर्नाम औदारिकद्विकं चेति चतुर्दशप्रकृतीनियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । 'चा' इत्यादि,
पराघातोच्छ्रामोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र निगदमिद्धः । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रिया-
दिजातिचतुष्कातपञ्चस्रमस्थावरसाधारणनामानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजात्या सहामां बन्धस्य
विरोधात् । 'सर' इत्यादि, स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति,
पर्याप्तनाम्ना सह बध्यमानत्वादपर्याप्तनाम्ना च सहोऽवध्यमानत्वात्तासाम् । 'णियभा' इत्यादि, अभि-
हितातिरिक्तशेषगत्यादिनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीनियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । ताश्चेमाः
शेषप्रकृतयः तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं पर्याप्ताऽपर्याप्ते
स्थिरास्थिरे शुभाशुमे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति ।

'उरलतणू' इत्यादि, औदारिकशरीरनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीनियमेन बध्नाति, ध्रुव-
बन्धित्वात् । 'परघा' इत्यादि, पराघातोच्छ्रामातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो बध्नाति,
अपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धावसरे तेनाऽवध्यमानत्वात्पर्याप्तप्रायोग्यादिप्रकृतिबन्धावसरे यथा-
संभवं बध्यमानत्वात्तासाम् । 'संघयण' इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं
खगतिद्वये चान्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनावध्यमानत्वाद्
द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । 'णियभा' इत्यादि, उक्तशेषगत्यादिनामप्रकृ-
तिष्वन्यतमाः प्रकृतीनियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः, ताश्चेमाः शेषा गत्यादिनामप्रकृतयः तिर्यग्मनु-
ष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं सुस्वरदुःस्वरवर्जत्रसंस्थावरनवके चेति ।
'एमेच' इत्यादि नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्ष औदारिकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवञ्ज्यः ।

'पंचिदियञ्च' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्ष-
वदस्ति । किन्तु यो विशेषः सः, 'णचरि' इत्यादिना भण्यते—औदारिकाङ्गोपाङ्गनामबन्धक
एकेन्द्रियजातिनाम नैव बध्नाति, शेषजातिष्वन्यतमां जातिं नियमेन बध्नाति ।

‘च०रं’ इत्यादि, वज्रर्षभनाराचसंहननं वधन् नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजाति-
रौदारिकद्विकं पराधातोच्छ्वासे त्रयचतुष्कं चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, हेतुरत्रौघानुसारेण
भाव्यः । ‘च०’ इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमातपनाम द्वितीयादिसंहननपञ्चकं स्थावरचतुष्कं
चेति चतुर्दशप्रकृतीर्न वध्नाति, आसां वन्धस्य वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्ना सह विरुद्धत्वात् ।
उद्योतनाम विकल्पेन वध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, उक्तशेषगत्यादिचतुर्विंशतिनामप्रकृतिवन्ध-
न्यतमाः प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, वज्रर्षभनाराचवन्धस्याऽन्यतमप्रकृतिवन्धाऽविनाभावित्वात् ।
‘एभेव’ इत्यादि, द्वितीयादिसंहननचतुष्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं सुखगतिः सुभगत्रिकं चेति त्रयो-
दशप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो वज्रर्षभनाराचसंहननप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । किन्तु वन्धनिषेधे
स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतीनां वन्धनिषेधो ज्ञातव्यः ।

‘छेवट्ट’ इत्यादि, सेवार्तसंहननत्रसनाम्नी प्रधानीकृत्य सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजाति-
प्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । ‘णचरं’ इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति—एकेन्द्रियजातिं न वध्नाति, सेवार्त-
संहननत्रसनाम्नोर्वन्धेन सह तद्वन्धस्य विरोधात् । एवं सेवार्तसंहननप्रतिपक्षभूतशेषमंहनन-
प्रकृतीः सेवार्तसंहनननामवन्धको नैव वध्नाति तथा त्रसवन्धकः तत्प्रतिपक्षभूतं स्थावरनाम नैव
वध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, एकेन्द्रियव्यतिरिक्तशेषाऽन्यतमां जातिं नियमेन वध्नाति ।

‘उरलव्व’ इत्यादि हुण्डकसंस्थानवादरप्रत्येकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनाम्नां दुर्मगाऽनादेय-
नाम्नोश्च प्रधानभावेन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । ‘णचरि’ इत्यादिना
विशेषमप्यदर्शयति—आसां प्रकृतीनां प्रतिपक्षभूताः प्रकृतीर्न वध्नाति, यथा—हुण्डकसंस्थानवन्धकः
शेषतत्प्रतिपक्षभूतसंस्थानपञ्चकं न वध्नाति, वादरनामवन्धकः सूक्ष्मनाम नैव वध्नातीत्येवमत्र सर्वत्र
योज्यम् ।

‘ध्रुववन्धि’ इत्यादि, अशुभखगतिवन्धको नाध्रुववन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकं पराधा-
तोच्छ्वासे त्रयचतुष्कं चेति सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, अत्र हेतुर्नरकगतिमार्गणावज्ज्ञेयः । ‘उज्जो-
अणाम्’ इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन वध्नाति । ‘बन्धह’ इत्यादि, एकेन्द्रियजात्यातपनामस्थावर-
चतुष्कसुखगतिरूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव वध्नाति, सुखगतिनाम्ना सहासां वन्धस्य विरोधात् । ‘णियमा’
इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तशेषगत्यादिद्वाविंशत्प्रकृतीष्वऽन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ‘दुस्स-
रस्स’ इत्यादि, दुःस्वर्गनाम्नाः सन्निकर्षोऽशुभखगतिसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । अत्रापि स्वप्रतिपक्ष-
सुस्वरनाम्नोऽवन्धस्तथा खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं नियमेन वध्नातीति विशेषः ।

“परघायं” इत्यादि, पराघातनाम वधन् नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय औदारिकशरीरनाम पर्याप्त-
नाम आसोच्छ्वासनाम चेति द्वादशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, अत्र ध्रुवाणां ध्रुववन्धित्वात्, शेषाणां

प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य शेषप्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् । “वा उण” इत्यादि, आतपोद्योतौदारि-
काङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति “बंधइ” इत्यादि, अपर्याप्तनाम न बध्नाति, पराघातना-
साहाऽस्य बन्धविरोधात् । “सर” इत्यादि, स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं संहननपट्केऽन्यतमसंहनननाम खग-
तिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्वदनुबन्धेयः । “णियभा” इत्यादि, उक्ता-
तिरिक्तगत्यादिप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-तिर्यग्मनु-
ष्यगतिद्वयं जातिपञ्चकं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं त्रसस्थावरे वादरक्ष्मे प्रत्येकमाधारणे
स्थिरास्थिरे शुभाशुमे सुभगदुर्भगे आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति । “पञ्जसासाण”
इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । “एमेव” इत्यादि,
स्थिरशुभनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातनामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । “णवरं” इत्यादिना विशेषमु-
पदर्शयति-स्थिरनामः प्रतिपक्षभूतमस्थिरनाम शुभनामः प्रतिपक्षभूतमशुभनाम नैव बध्नाति,
परस्परं बन्धस्य विरोधात् । “एमेव” इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानः सन्निकर्षोऽपि पराघातप्रधान-
सन्निकर्षवज्ज्ञातव्यः । “णवरि” इत्यादिना विशेषं प्रतिपादयति-यशःकीर्तिप्रतिपक्षभूतमयशः-
कीर्तिनाम सूक्ष्मसाधारणनामी च नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनामा सार्धमासां बन्धस्य विरोधात् ।
॥४२५-४१॥

सम्प्रति मनुष्यौघादिमार्गणासु तमाह

ओधव्व सण्णियासो तिण्णउरलथीसु होइ णामस्स ।

एवरं बंधइ णरलडुगवइराणि ण उ जिणबंधी ॥४४२॥

देवविउव्वियजुगल णियभा वधेइ वधतो ।

णरलडुगवइराइ ए चेव बंधेइ जिणणाम ॥४४३॥ (उपगीतिः)

(प्रे०) “ओधव्व” इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुष्यौदारिकाययोगस्त्रीवेदमार्गणा-
पञ्चके नामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष ओधवदस्ति । “णवरं” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-
जिननामबन्धको मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, मार्गणास्वासु जिन-
नामबन्धकस्य सम्यग्दृष्टित्वेन देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बध्यमानत्वात् । “देव” इत्यादि, देवद्विक-
वैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं नियमेन बध्नाति, मार्गणास्वासु जिननामबन्धस्य देवद्विकादिप्रकृतप्रकृतिबन्धा-
ऽविनाभावित्वात् । स्त्रीवेदमार्गणायां जिननाम मानुष्येव बध्नाति न तु देवीतिरिच्यौ, जिन-
नामबन्धकस्यात्र मनुष्यमानुष्योः देवेषु पुरुषवेदित्वेनोत्पादातिर्यक्षु चाऽनुत्पादात् । “बंधतो”
इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकत्रर्पमनाराचसहननप्रकृतिबन्धको जिननाम नैव बध्नाति,
मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धस्य जिननाम्ना सह विरोधात्, यतो हि मार्गणास्वासु मनुष्य-
द्विकादिप्रकृतीः प्रथमद्वितीयगुणस्थानगता एव बध्नन्तीति ॥४४२-३॥

इदानीं देवीघादिमार्गणासु प्रकृतमाह

सुरसोहृगोविउव्वियदुगेसु णियमा उ तिरियगइबंधी ।
 णवधुवुरलबायरतिगपरधाऊसासतिरियअणुपुव्वी ॥४४४॥ (गीतिः)
 णेय जिणणरदुगाई बंधइ वायवदुगुरलुवंगणि ।
 संधयणस्सरखगई वाऽण्णयर वि णियमा सेसा ॥४४५॥
 एयं उज्जोअतयणुपुव्वीणं बंधए च्च णरबंधी ।
 धुवपंचिदियुरलङ्गपरधूसासतसचउगअणुपुव्वी ॥४४६॥ (गीतिः)
 बंधइ णायधतिरिदुगएगिदियथावराणि वा तित्थं ।
 णियमा सधयणाई अण्णयरवं साराणुपुव्वीए ॥४४७॥ (गीतिः)
 णियमेगिदियबंधी णवधुवतिरियदुगउरलहुंढाणि ।
 परधूसासं थोवरदुहगाणादेयबायरतिगाणि ॥४४८॥ (गीतिः)
 वायवदुगमण्णयर णियमा तिण्णि तियिराङ्गुगलाणं ।
 बंधइ ण उ तेवीसां सेसायवयावराणेवं ॥४४९॥
 णियमा पणिदिबंधी णवधुवबंधिपरधायऊसासं ।
 तसचउगुरलदुगाणि य बंधइ सुज्जोअतित्थाणि ॥४५०॥
 एगिदियावरायवणामाणि ण बंधएऽण्णगइआई ।
 अण्णयरं णियमेवं तसुरालियुवंगणामाणं ॥४५१॥
 सुखगइसंधयणागिइसुहगतिगाणं हवेज्ज एमेव ।
 सन्निकरिसो खलु णवरि ण चेव बंधइ पडिवक्खा ॥४५२॥
 संधयणपणगआगिइचउगअसुहलगइदुस्तराण भवे ।
 एमेव सण्णियासो णवरि ण चिअ तित्थपडिवक्खा ॥४५३॥
 उरलं बंधतो धुवपरधाऊसासबायरतिगाणि ।
 णियमा बंधइ वा जिणआयवदुगउरलुवंगणं ॥४५४॥
 संधयणस्सरखगई वाऽण्णयर वि णियमाऽण्णगइआई ।
 एमेव सण्णियासो सेसाणं तित्थवज्जाणं ॥४५५॥
 णवरि ण चिअ पडिवक्ख थिरमुहजसअथिरदुगअजसबंधी ।
 जिणपडिवक्खा हुंढगदुहगाणादेयबंधी णो ॥४५६॥
 जिणबंधी णवधुवणरउरलदुगपणिदितसचउवकाणि ।
 सुखगइसंधयणागिइपरधूसाससुहगतिगाणि ॥४५७॥
 बंधइ णियमाऽण्णयर यिराङ्गुगलाण तिण्णि णउ सेसा ।
 एमेव उ भवणतिगे णवरि जिणस्स ण भवे बंधो ॥४५८॥

(प्रे०) “सुर” इत्यादि, देवौधसौधमेशानवैक्रियकाययोगवैक्रियामिश्रकाययोगरूपासु पञ्चसु मार्गणासु तिर्यग्गतिवन्धको नयन्नुवचन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरनाम वादरत्रिकं पराधातोञ्चत्रासे तिर्यगानुपूर्वी चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन वच्नाति, तद्यथा—आसु मार्गणासु तिर्यगानुपूर्वीवर्जशेष-पञ्चदशप्रकृतीनां निरन्तरवन्धित्वान्नियमेन बन्धः, अतः प्रकृते सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षे तासां निय-मेन बन्धे अथमेव हेतुर्ज्ञातव्यः । तिर्यगानुपूर्वीतिर्यग्गत्योर्बन्धस्य परस्परभविनाभावित्वादेकस्या बन्धे

ऽपरस्यां बन्धो नियमेन भवति । 'णेव' इत्यादि, जिननाममनुष्यद्विकरूपं प्रकृतित्रयं नैव बध्नाति तिर्यग्गतिनाम्ना सहाऽस्य प्रकृतित्रयबन्धस्य विरोधात् । "वायव" इत्यादि, आतपद्विकौदारिका-
ज्जोपाङ्गप्रकृतित्रयं विकल्पतो बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु तिर्यग्गतिबन्धक एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्ध-
काले न बध्नात्यौदारिकाज्जोपाङ्गम्, आतपद्विकबन्धस्याध्रुवत्वात् । "संघयणा" इत्यादि,
सहननपट्के ऽन्यतमं संहनन स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन बध्नाति,
पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाता तेनासामन्यतरप्रकृतीनां बध्यमानत्वादेकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नाता
चाऽबध्यमानत्वात् । "णियमा" इत्यादि, उक्तातिरिक्तनामप्रकृतिष्वन्यतराः प्रकृतीरपि
नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं संस्थानपट्कं त्रसस्थावरे स्थिराऽस्थिरे
शुभाशुभे सुभगदुभगे आदेयाऽनादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति । "एवं" इत्यादि, उद्योततिर्यगानु-
पूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षः तिर्यग्गतिनामप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । "बधए" इत्यादि, मनुष्यगति-
बन्धको नवध्रुवबन्धनामप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं पराघातोच्छ्वासमनाम्नी त्रसचतु-
ष्कं मनुष्यानुपूर्वीं चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्रौदारिकाज्जोपाङ्गत्रसमनुष्यानुपूर्वी-
वर्जशेषपञ्चदशप्रकृतीनां प्राग्बत्, औदारिकाज्जोपाङ्गत्रसमनुष्यानुपूर्वीनाम्नां मनुष्यगतिबन्धस्य
तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । "बधह ण" इत्यादि, आतपोद्योततिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरनामानि
नैव बध्नाति, आसां बन्धस्य मनुष्यगतिनाम्ना सह विरोधात् । "वा" इत्यादि, जिननाम विक-
ल्पेन बध्नाति, यतो जिननामसत्कर्मा जिननाम बध्नाति तदितरस्तु नैव बध्नाति । "णियमा"
इत्यादि, उक्तातिरिक्तसंहननादिप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चेमे
शेषप्रकृतित्राताः—संहननपट्कं संस्थानपट्कं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरपट्के चेति । "एवं"
इत्यादि, मनुष्यानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिवद् विज्ञेयः ।

"णियमा" इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धको नवध्रुवबन्धनामप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकौदारिक
शरीरहुडकसंस्थानपराघातोच्छ्वासस्थावरदुर्मगाऽनादेयवाद्रत्रिकप्रकृतयश्चेत्येकविंशतिप्रकृतीर्नियमेन
बध्नाति, तत्र पञ्चदशानां प्रागिव शेषाणां पुनरेकेन्द्रियजातिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाऽविनाभावित्वात् ।
"वायव" इत्यादि, आतपोद्योतनाम्नी विकल्पतो बध्नाति, एतत्प्रकृतिद्वयबन्धस्य सर्वत्राध्रुवत्वात् ।
"अण्णयरा" इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्यशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिष्ठः
प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "णज" इत्यादि, उक्तातिरिक्तत्रयोविंशतिनामप्रकृतीर्नैव बध्नाति, एके-
न्द्रियजातिनाम्ना सह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । ताश्चेमाः—मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः,
औदारिकाज्जोपाङ्गम्, संहननपट्कम्, प्रथमादिसंस्थानपञ्चकम्, मनुष्यानुपूर्वी, खगतिद्वयम्, त्रससुभ-
गसुस्वरादेयनामानि, दुःस्वरनाम, जिननाम चेति । "आयव" इत्यादि, आतपस्थावरनामप्रधानः
सन्निकर्ष एकेन्द्रियजातिप्रधानमन्निकर्षवद् वेदितव्यः । "णियमा" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजाति-

बन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्फौदारिकद्विकप्रकृतयश्चेति सप्तदशप्रकृती-
नियमेन बध्नाति, तत्र त्रसौदारिकाङ्गोपाङ्गनामोर्नियतबन्धः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धस्य तद्वन्धाऽवि-
नाभावान्द्विशेषः, शेषपञ्चदशानां च प्राग्वत् । “बुञ्जोअ” इत्यादि, उद्योतजिननाम्नी विकल्पतो
बध्नाति, यतो हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽत्र पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः केचनोद्योत-
नाम बध्नन्ति केचन च न, तथा मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु कोऽपि तन्नैव बध्नाति, जिननाम
च केचन पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः सम्यग्दृशो बध्नन्ति, केचन च न बध्नन्ति, मिथ्यादृष्टिप्रभृतिश्च
कोऽपि तन्न बध्नाति । “एगिदि” इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामानि नैव बध्नाति, पञ्चे-
न्द्रियजातिनाम्ना सार्धमासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । “ऽण्ण” इत्यादि, उक्तातिरिक्तगत्या-
दिनामप्रकृतिष्वऽन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तारचेमाः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संहननपट्कं संस्था-
नपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरपट्के चेति । “एवं” इत्यादि, त्रसौदारिकाङ्गो-
पाङ्गनानप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । “सुखगइ” इत्यादि, शुभखग-
तिवज्जर्षभनाराचसंहननममचतुरस्रमस्थानसुभगत्रिकप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजा-
तिवद् वेदितव्यः । “णवरि” इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-शुभखगतिप्रभृतिप्रकृतप्रकृतीनां प्रत्येकं
प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । “संघयण” इत्यादि, द्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वि-
तीयादिसंस्थानचतुष्काऽशुभखगतिदुःस्वरप्रकृतीनामपि प्राधान्येन यः सन्निकर्षः स पञ्चेन्द्रियजा-
तिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । “णवरि” इत्यादिना विशेषं दर्शयति-जिननाम प्रकृतप्रकृतिप्रतिपक्षभू-
तप्रकृतिं च नैव बध्नाति, विरोधात् । “उरलं” इत्यादि, औदारिकशरीरनामबन्धको नवध्रुवबन्धिनाम-
प्रकृतयः पराधातोच्छ्वासे वादरत्रिकं चेति चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, आसु मार्गणासु निरन्तर
बन्धित्वादासाम् । “वा” इत्यादि, जिननामातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति,
तद्यथा—आसु मार्गणासु केचन सम्यग्दृष्टिजीवा औदारिकशरीरनाम बध्नन्तो जिननाम बध्नन्ति,
केचन च न बध्नन्ति, मिथ्यादृष्टिप्रभृतयश्च नैव बध्नन्ति, आतपनामैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले
केचन बध्नन्ति, केचन च न बध्नन्ति, पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च न कोऽपि बध्नाति,
एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले चोद्योतनाम केचिद् बध्नन्ति,
केचिच्च न बध्नन्ति, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च कोऽपि नैव बध्नाति, औदारिकाङ्गोपाङ्गना-
मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकालेऽसौ न बध्नाति पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च बध्नाति ।
‘संघयण’ इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतमसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरम्बरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं
च विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनासामन्यतरप्रकृतीनामवध्यमानत्वात्
पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले च वध्यमानत्वात् । ‘णियमा’ इत्यादि, अभिहितेतरगत्यादिप्रकृति-
ष्वऽन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तारचेमाः—तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयं

संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं त्रसंस्थानरे स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'एमेव' इत्यादि, तीर्थकृन्नामवर्जानां शेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन मन्नि-
 कर्ष औदारिकशरीरनामवदस्ति । नामनवध्रुवबन्धिपराघातोच्छ्वासादरत्रिकस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थि-
 राशुभायशःकीर्तिह्रुण्डदुर्मगानादेयप्रकृतयः शेषप्रकृतितया ज्ञातव्याः । 'णवरि' इत्यादिनाऽत्राति-
 देशे कामुचित्प्रकृतिष्वपवादमुपदर्शयति-स्थिरशुभयशःकीर्तिनामाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिप्रकृतीनां
 बन्धक एतत्प्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नाति, परस्परं विरोधात् । ह्रुण्डकसंस्थानदुर्मगाऽनादेयप्रकृतीनां
 बन्धको जिननाम तत्प्रतिपक्षप्रकृति च नैव बध्नाति । 'जिणबधो' इत्यादि, जिननामबन्धको नवध्रुव-
 बन्धिनामप्रकृतयो मनुष्यद्विकमौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसचतुष्कं सुखगतिर्विषयमनाराचसंहननं
 समचतुरस्रसंस्थान पराघातोच्छ्वासे सुभगत्रिकं चेति षड्विंशतिप्रकृतीनियमेन बध्नाति, हेतुरत्रौघव-
 दधिगम्यः । 'ऽण्णयरा' इत्यादि, स्थिरास्थिरं शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रये-
 ऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीनियमेन बध्नाति । 'णज' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीनैव बध्नाति, तारचे-
 माः-तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिर्द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुलगतिः स्थावर-
 नाम दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाम्नी चेति । 'एमेव' इत्यादि, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये
 देवौघमार्गणावन्नामप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽस्ति । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-जिननाम्नो
 बन्धाभावादत्र सन्निकर्षो नास्ति । किमुक्तं भवति-जिननामप्रधानीकृतसन्निकर्षो नास्ति तथैव यथा
 प्रकृत्या सह जिननाम्नो विकल्पेन बन्ध उक्तस्तत्रापि मार्गणारवासु जिननामप्रकृतिर्न कथनीयेति
 ॥४४४-५८॥

अधुनाऽऽनतादिव्रयोदशदेवमार्गणासु प्रकृतमाह

बन्धइ चिअ णरवाघो गेविज्जतेमु आणयाईसुं ।

धुवतसचउगपणिदियपरधूसासुरलडुगतयणुपुवी ॥४५१॥ (गीतिः)

व जिण बन्धइ णियमा अण्णयरा सेससंघयणआई ।

एमेव सण्णियासो गुणवीत्ताए धुवाईणं ॥४६०॥

णिरयव्व जिणस्स मणुयगइपयडिक्क इयरण णवरं णो ।

पडिक्कत्ता तह जिणमवि अथिराइतिवज्जअसुहवन्धी णो ॥४६१॥ (गीति)

(प्रे०) 'बन्धइ' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु
 मनुष्यगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः त्रसचतुष्क पञ्चेन्द्रियजातिः पराघातोच्छ्वासे औदा-
 रिकद्विक मनुष्यानुपूर्वी चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीनियमेन बध्नाति, अत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् शेषा-
 णाञ्च ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, अत्र केनचित्सम्यग्दृष्टिना
 बध्यमानत्वान्केनचिच्चाऽवध्यमानत्वात् तथा सर्वैर्मिथ्यादृष्ट्यादिभिरवध्यमानत्वात्तस्य । 'बन्धइ'
 इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीनियमेन बध्नाति, ते चैते-संहनन-

पट्कं खगतिद्वयं स्थिरपट्काऽस्थिरपट्के चेति । ‘एमेव’ इत्यादि, एकोनविंशतिध्रुववन्धिप्रभृति-
नामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिसन्निकर्षवदस्ति, ताश्चेमाः-नवध्रुववन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रिय-
जातिरौदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीत्रयमचतुष्कं पराधातोच्छ्वासे चेति । ‘णिरयन्व’ इत्यादि,
जिननामप्रधानसन्निकर्षो नरकौधवद् विज्ञेयः, तद्यथा—जिननामबन्धको नवध्रुववन्धिप्रकृतयो मनु-
ष्यद्विकौदारिकद्विके पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रयचतुष्कं सुखगतिः प्रथमसंहननसंस्थाने पराधातोच्छ्वासे
सुभगत्रिकं चेति पट्विंशतिप्रकृतानियमेन वध्नाति । स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती
चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीनियमेन वध्नाति, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीनैव वध्नाति,
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिर्दुर्भगत्रिकं चेति
अत्र तिर्यग्विक्रौद्योतप्रकृतयोऽन्ये न वक्तव्याः, प्रस्तुतमार्गणासु बन्धाभावादिति । ‘मणुयगर’
इत्यादि, उक्तातिरिक्तनामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः,
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः संहननपट्कं संस्थानपट्कं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरपट्कद्वयं चेति । “णवरं”
इत्यादिनाऽपवादमाह—शेषप्रकृतिषु स्वप्रतिपक्षप्रकृतिं नैव वध्नाति, तद्यथा—प्रथमसंहननबन्धको
द्वितीयादिसंहननपञ्चकं नैव वध्नाति, एवमेवाऽन्यासु शेषप्रकृतिष्वपि विज्ञेयम् । “तह” इत्यादि,
अस्थिगशुभायशःकीर्तिरूपव्यस्थिरादिप्रकृतिवर्जशेषाशुभप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं जिननाम च
नैव वध्नाति, विरोधात्, ताश्चेमाः शेषाशुभप्रकृतयः—प्रथमवर्जसंहननसंस्थानपञ्चककुखगतिर्दुर्भ-
गदुःस्वरानादेयनामानोति ॥४५९-६१॥

अथ पञ्चानुत्तरमार्गणासु म उच्यते ।

पणऽणुत्तरेसु णरगइवधी तित्थं व बंधए णियमा ।

तिथिराइगजुगलाण अण्णयर त्तिण्णि तह सेसा ॥४६२॥

एमेव सण्णियासो हवेज्ज सेसाण णवरि वधतो ।

त्तिथिराइगजुगलाओ एगं वधइ ण पडिक्कल ॥४६३॥

(प्रे०) ‘पण’ इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणासु मनुष्यगतिबन्धको जिननाम विकल्पतो
वध्नाति, यतः केनचिदत्र तद् वध्यते केनचिच्च न वध्यते । “णियमा” इत्यादि, स्थिरास्थिरे
शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तद्व्यतिरिक्ताः पञ्चविंशति-
नामप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति, मनुष्यगतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । “एमेव”
इत्यादि, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तत्रिंशन्नामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निक-
र्षवद् भवति । “णवरि” इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रये-
ऽन्यतरां प्रकृतिं वध्नात् तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव वध्नातीति ॥४६२-३॥

अथ सर्वतैजोवायुकायभेदेष्वपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवत्सविशेषं सन्निकर्षमतिदिशन्ताह

सत्त्वागणिवाञ्जुं होइ अपज्जगपणिदितिरियव्व ।

णवरि तिरिदुग णियमा बधेइ ण चेव मणुयदुगं ॥४६४॥

(प्रे०) “सन्वा” इत्यादि, सर्वतेजोवायुकायभेदेषु नामप्रकृतीनां सन्निकर्षोऽपर्याप्तपञ्चचेन्द्रियतिर्यग्बद्ध भवति, तथापि तत्र कासाञ्चित् प्रकृतीनां सन्निकर्षविषये मनुष्यद्विकस्य बन्धो विकल्पेनोक्तः, कासाञ्चित्प्रकृतीनां सन्निकर्षे तस्य बन्धनिषेध उक्तस्तथा मनुष्यद्विकप्रधानीकृतसन्निकर्षोऽप्युक्तः, किन्तु सोऽत्र न सम्भवति, मनुष्यद्विकस्य बन्धाभावात्, अतः “णवरि” इत्यादिना विशेष दर्शयति । अत्र सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्षवेलायां तिर्यग्द्विकस्य बन्धो नियमेन वक्तव्यः ॥४६४॥

इदानीमौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां प्रकृतः प्रस्तूयते

णियमोरलमीसे सुरगइबधो धुवपणिदिविउवदुग ।

परधूसाससुहागिइसुखगइअणुसुहगतिगतसचउक ॥४६५॥ (गीतिः)

व जिणं णियमा तिण्ह थिराइजुगलाण तिणिण अण्णयरा ।

ण उ सेसेमेव विउवदुगतित्यसुराणुपुव्वीण ॥४६६॥

णियमा पणिदिवंधो णवधुववधितसजुगलपत्तेअ ।

ण उ जाइचउगआयवथावरसुहमाणि साहारं ॥४६७॥

पत्तेअस्स व चउरो सधयणसरखगई व अण्णयरा ।

गइआई णियमेवं तसस्स णवरि चउजाइअण्णयरा ॥४६८॥ (गीतिः)

णियमाऽज्जागिइबंधी पणिदियधुवपरधायऊसासा ।

तसचउरां णायवथावरजाइचउकपडिववख। ॥४६९॥

व जिणुज्जोआ बधइ अण्णयरं सहइं व अण्णयरा ।

णियमाऽण्णा गइआई एवं सुहगतिगसुखगईण भवे ॥४७०॥ (गीतिः)

परधाय वधतो अप्पज्जत्तं ण बंधए णियमा ।

णवधुवपञ्जूसास वायवदुगतित्यणामाणि ॥४७१॥

बधइ अण्णयरा अवि वा संधयणदुउवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई पञ्जूसासाण एमेव ॥४७२॥

एमेव थिरसुहाणं णवरं वधइ ण चेव पडिववखं ।

एमेव जसस्स णवरि ण सुहमसाहारणाइं पि ॥४७३॥

वायरवधो सुहमं ण वधइ णवधुववधिणी णियमा ।

परधाऊसामायवदुगजिणणामाणि वधइ वा ॥४७४॥

अण्णयरा अवि वधइ वा सधयणदुउवगसरखगई ।

णियमाऽण्णा गइआई एव पत्तेअतिअथिराईण ॥४७५॥ (गीतिः)

सेसाण सणिण्यासो भवे अपज्जगपणिदितिरियव्व ।

णवरि व णवधुववधो देवविउवदुगजिण णियरवधो ॥४७६॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘णियमो’ इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां देवगतिबन्धको नवध्रुवबन्धि-प्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्यद्विकपराघातोऽन्वासासमचतुरस्रसंस्थानसुखमतिदेवानुपूर्वीसुभगात्रिकप्रस-

चतुष्करूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, देवप्रायोग्याष्टाविंशतिवन्धस्थानस्य बन्धकाले प्रधानी-
कृतप्रकृतिसहितप्रकृतचतुर्विंशतिप्रकृतयोऽवश्यंतया वध्यन्त इति नियमेन देवगतिवन्धस्य प्रकृत-
चतुर्विंशतिप्रकृतिवन्धाऽविनाभावित्वाद् । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन वध्नाति, यतोऽस्यां
मार्गणायां सम्यग्दृष्टिमनुष्येण केनचिज्जिननाम देवगतिभावध्नता वध्यते केनचिच्च न वध्यते ।
'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः
प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'णउ' इत्यादि, कथितशेषनामप्रकृतीर्नैव वध्नाति, शेषप्रकृतीनां बन्ध-
स्य देवगतिनाम्ना सह विरोधात् । ताश्चेमाः—तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकमेकेन्द्रियादिजाति-
चतुष्कर्मौदारिकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं खगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगात्रिक-
मातपोद्योतनाग्नी चेत्येकत्रिंशदिति । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीजिननामप्रधानसन्निक-
र्षो देवगतिप्रधानमन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवन्धको नवध्रुववन्धिनाम-
प्रकृतित्रयसादरप्रत्येकनामानि नियमेन वध्नाति । 'ण' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपस्थावर-
सूक्ष्मसाधारणनामानि नैव वध्नाति, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सममेपां बन्धस्य विरोधात् । 'पत्ते-
अस्स' इत्यादि, जिनपगवातोच्छ्वासोद्योतरूपाश्चतस्रः प्रत्येकप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, हेतुरत्र प्राग्व-
दनुसन्धेयः । 'संध्यण' इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतरसंहननं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्य-
तरां खगतिं विकल्पेन वध्नाति, तद्यथा-देवप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकः संहननं नैव वध्नाति तिर्यग्मनुष्य-
प्रायोग्यप्रकृतिवन्धकस्त्वन्यतरसंहननं वध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले स्वरखगतिप्रकृतीः
पञ्चेन्द्रियजातिवन्धको नैव वध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले च वध्नाति । 'गइआई'
इत्यादि, उक्तातिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ते चेमे
प्रकृतित्राताः—देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानपट्कं
देवमनुष्यतिर्यग्गत्युपूर्वीत्रयं पर्याप्ताऽपर्याप्ते स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशः-
कीर्त्ययशःकीर्ती चेति । 'एवं' इत्यादि, त्रसनामप्रधानसन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्ष-
वद् बोद्धव्यः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं वक्ति—द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्यतमां जातिं नियमेन
वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानवन्धकः पञ्चेन्द्रियजातिनवध्रुववन्धिनामप्रकृति-
पगवातोच्छ्वात्रसचतुष्करूपाः षोडश प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । हेतुरत्रौघतोऽनुसन्धेयः । 'ण'
इत्यादि, आपनामस्थावरचतुष्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव
वध्नाति, समचतुरस्रसंस्थाननाम्ना सह बन्धविरोधादासाम् । 'व' इत्यादि, जिननामोद्योतनाग्नी
विकल्पेन वध्नाति, अत्र समचतुरस्रसंस्थानवन्धकेन केनचित्सम्यग्दृष्टिनैव जिननाम वध्यते, केन-
चिच्च न वध्यते, उद्योतनाम तु पर्याप्तिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले केनचिद् वध्यते केनचिच्च नैव
वध्यते, तथा मनुष्यगतिवन्धकालेऽपि नैव वध्यते । 'अण्णयरं' इत्यादि, अन्यतरत्संहनननाम

विकल्पेन बध्नाति, अत्र देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन तस्याऽवध्यमानत्वात् तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन च बध्यमानत्वात् । 'अण्णयरा' इत्यादि, उदितव्यतिरिक्तगत्यादिनामप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चैते—नरकगतिवर्जगतित्रयं औदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरपट्के चेति । 'एवं' इत्यादि, सुभगमुस्वरादेयसुखगतिनामप्रधानसन्निकर्षः समचतुरस्रसंस्थानप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । नवरं संस्थानपट्केऽन्यतमसंस्थानं नियमेन बध्नाति तथा स्वप्रतिपक्षप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'परधा' इत्यादि पराघातनामबन्धकोऽपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, पराघातनाम्ना सहाऽपर्याप्तनाम्नो बन्धस्य विरोधात् । 'जियमा' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिपर्याप्तोच्छ्वासनामानि नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, आतपोद्योतजिननामानि विकल्पेन बध्नाति, संहननपट्केऽन्यतरत्संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वर खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवम्—अत्र जिननाम पराघातं बध्नता केनचित्सम्यग्दृष्टिर्नैव बध्यते, न सर्वैः । पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले केनचिदातपनाम बध्यते केनचित्च न बध्यते तथा द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले केनापि न बध्यते । पराघातं बध्नता मनुष्यगत्यादिवन्धकाले उद्योतनाम नैव बध्यते पर्याप्ततिर्यक्प्रायोग्यबन्धकाले च केनचिदेन बध्यते न सर्वैः । एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तेन संहननपट्कं स्वरद्वयं खगतिद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं च नैव बध्यन्ते पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले चाऽन्यतमसंहननमन्यतरस्वरखगती औदारिकाङ्गोपाङ्गं च बध्यन्ते, वैक्रियाङ्गोपाङ्गं च देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन बध्यते तस्मादत्र बन्धस्य विकल्पितम् । 'जियमा' इत्यादि, अभिहितेतरगत्यादिनामप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ते चेमे—देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयं स्वरपर्याप्तापर्याप्तवर्जसंस्थावराण्टके चेति । "पञ्ज" इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'एमेव' इत्यादि, स्थिरशुभनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदेशयति—स्थिरशुभनाम्नोः बन्धकः प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । 'एमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानोऽपि सन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनापवाद उच्यते—अयशःकीर्तिनाम सूक्ष्मसाधारणनाम्नी च यशःकीर्तिनामबन्धको नैव बध्नाति, यशःकीर्तिनाम्ना सहाऽऽसां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । वादरप्रत्येकनाम्नी नियमतो बध्नाति । 'आयरा' इत्यादि, वादरनामबन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णव' इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र सुगमः । 'परधा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासातपोद्योतजिननामानि विकल्पेन बध्नाति, प्राग्वदत्र हेतुरनुसन्धेयः । 'अण्णयरा' इत्यादि, संहननपट्केऽन्यतरत्संहननमौदारिक-

कवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन
बध्नाति, अत्राऽपि हेतुः प्राग्वद् विभाव्यः । 'णियमाऽण्णा' इत्यादि; उक्तव्यतिरिक्तगत्यादि-
प्रकृतिप्रज्ञेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तानि चेमानि प्रकृतिप्रज्ञानि-देवमनुष्य-
तिर्यग्गतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कं देवमनुष्यतिर्यग्गानुपूर्वीत्रयं त्रसस्था-
वरे पर्याप्ताऽपर्याप्ति प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशः-
कीर्ती चेति । 'एवं' इत्यादि, प्रत्येकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रधानसन्निकर्षो वादरनामप्रधानसन्नि-
कर्षवज्ज्ञेयः । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षोऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-
मार्गणावद् विज्ञेयः । 'णचरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-नवध्रुववन्धिनामबन्धको देवद्विकवैक्रिय-
द्विकजिननामरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तथा तद्वर्जशेषप्रकृतिभिः सह जिननामसुरद्विकवैक्रि-
यद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य सन्निकर्षो नास्तीति वक्तव्यम्, शेषप्रकृतिबन्धेन सह तद्वन्धस्य
विरोधात् । ताश्चेमाः-तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थान-
पञ्चकमौदारिकद्विकं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं कुखगतिः स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणदुर्भगानादेयदुः-
स्वरनामानि आतपोद्योतनाम्नी नवध्रुववन्धिप्रकृतयश्चेत्येकत्रिंशदिति ॥४६५-४७६॥

इदानीमाहारकाहारकमिश्रकाययोर्देशविरतिमार्गणासु तमाह

आहारदुगे देसे सुरगइवंधी जिणं व वधेइ ।
णियमाऽण्णायरा तिण्णि तियिराइजुगलण तह सेसा ॥४७॥
एमेव सण्णियासो सव्वाण णचरि थिराइजुगलतिगा ।
एग वधेमाणो एग चेव वधेइ पडिवक्ख ॥४७॥

(प्रे०) 'आहारदुगे' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोर्देशविरति-
संयममार्गणायां च सुरगतिबन्धको जिननाम विकल्पेन बध्नाति, मार्गणास्वासु केषाञ्चिज्जीवानामेव
तद्वन्धकत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रये-
ऽन्यतरास्तिलः प्रकृतीस्तथोक्तातिरिक्तनामप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
नवध्रुववन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रम-
चतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेति चतुर्विंशतिरिति । 'एमेव' इत्यादि, देवगतिव्यति-
रिक्तप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णचरि' इत्यादिना विशेष-
मुपदर्शयति-स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरां प्रकृतिं बध्नन्
तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयः
पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसदशकमस्थिराऽशुभाऽयशः-
कीर्तिनामानि पराधातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्येकत्रिंशदिति ॥४७७-८॥

सन्निकर्षवद् भवति । 'जसबंधो' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सिआ' इत्यादि, देवमनुष्यगतिद्वयोदारिकवैकियाऽऽहारकशरीरत्रयोदारिकवैकियाऽऽहारकाङ्क्षोपाङ्गत्रयदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरास्थिरद्वयशुभाशुमद्वयरूपेषु पट्प्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः पट्प्रकृतीरुक्तातिरिक्तप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु नवमादिगुणस्थानगतो यशःकीर्तिनामबन्धक एतान्प्रकृतित्रातान् शेषप्रकृतीश्च नैव बध्नाति अविरतमम्यगृष्टिप्रभृतिगुणस्थानगतः स यथासंभवं तेष्वन्यतमाः प्रकृतीः शेषप्रकृतीश्च बध्नाति । 'जिण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको जिननामवर्ष्पभनाराचसंहननाहारकद्विकरूपाश्चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—जिननामाऽऽहारकद्विकबन्धयोग्यतावद्भिः जिननामाऽऽहारकद्विकप्रकृतित्रयं बध्यते, नापरैः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेन वर्ष्पभनाराचसंहननं बध्यते, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु न बध्यते । 'णिचमा' इत्यादि, गतिद्वयशरीरद्वयाङ्क्षोपाङ्क्षद्वयानुपूर्वीद्वयस्थिरादियुगलत्रयेष्वन्यतराः सप्त प्रकृतीरुक्तातिरिक्तविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, हेतुश्च सुगमत्वात्स्वयं विभाव्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेति । 'एवं' इत्यादि, अभिहितेतरपट्विंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विधत्ते । 'णचरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—स्थिरशुभनामबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतास्थिराशुभनाम्नी नैव बध्नाति, विरोधात् । अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् अस्थिरादिप्रकृतिबन्धस्याऽऽहारकद्विकबन्धात् प्रागेव विच्छेदाच्च ॥४८१-८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघादिमार्गणासु च प्रकृतमाह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु वधए वा उ ।
 देवगइं बंधंतो तित्थाहारदुगणामाणि ॥४८९॥
 णियमाऽण्णयरा तिणिए त्थिराइजुगलाण सेसचउवीसा ।
 एमेव सण्णियासो जसआहारदुगवज्जाणं ॥४९०॥
 णवरं थिरसुहवंधी पडिवक्खं णेव वधेइ ।
 अथिरदुगअजसववी पडिवक्खआहारजुगलाणि ॥४९१॥ (उपगोति)
 आहारगतणुवधी वधेइ ण अथिरअसुहअजसाणि ।
 वधइ जिणं व णियमा तेसा एवं उवंगस्स ॥४९२॥
 जसबधी वंधेइ ण अजस बोण्णि दुथिराइजुगलाणं ।
 वधइ अण्णयरा अवि वा वधइ सेसअज्जीसा ॥४९३॥
 परिहारविमुद्धीए हवेज्ज मणपज्जवव्वे सव्वेसि ।
 परमत्थि सण्णियासो जसणांमस्स थिरणामव्व ॥४९४॥

(प्रे०) "मणणाण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमरूपासु

चतसृषु मार्गणासु देवगतिनामबन्धको जिननामाहारकद्विकं च विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्ध-
योग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना स्वयं प्रागुक्तानुसारेण कार्या । “णियमा” इत्यादि, स्थिरादियु-
गलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तथोक्तशेषचतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्वत् ,
शेषाणां तु देवगतिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनाम-
प्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिर्देवानुपूर्वी त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं परा-
धातोच्छ्वासनाम्नी चेति । “एमेव” इत्यादि, यशःकीर्तिनामाहारकद्विकवर्जशेषत्रिंशत्प्रकृतीनां प्राधा-
न्येन सन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवद् वर्तते । “गचरं” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—स्थिरशुभ-
नाम्नोर्वन्धकः तत्प्रतिपक्षभूताऽस्थिराऽशुभनाम्नी नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् । अस्थि-
राऽशुभायशःकीर्तिनाम्नां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव
बध्नाति, विरोधात् । “आहारगतणु” इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकोऽस्थिराशुभायशःकी-
र्तिनामानि नैव बध्नाति, तथाहि—आहारकद्विकमप्रमत्तसंयतादिगुणस्थानयोर्बध्यते, अस्थिरादिप्रकृति-
त्रयं च प्रमत्तमंपतगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्यते, तस्मादाहारकद्विकबन्धकोऽस्थिरादिप्रकृतित्रयं
नैव बध्नाति । “जिणं” इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य
भावना विधेया । “णियमा” इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुत्र प्राग्व-
दनुबन्धेयः । ताश्चेमाः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकाङ्गो-
पाङ्गं ममचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयदशकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेत्यकोनत्रिंशदिति । “एवं”
इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनामप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवमानव्यः ।
“जसबन्धी” इत्यादि, यशःकीर्तिबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । “दोष्णि”
इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती उक्तशेषाष्टाविंशतिनामप्रकृतीश्च
विकल्पेन बध्नाति, नवमप्रभृतिगुणस्थानकेषु यशःकीर्तिनामबन्धकेनामामवध्यमानत्वात्प्रमत्तसंय-
तादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चे-
न्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातो-
च्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्यष्टाविंशतिरिति । “परिहारविसुद्धो” इत्यादि, परिहारविशु-
द्धिसयममार्गणाया स्वप्रायोग्यमवर्षप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्यग्नानमार्गणावद् भवति । “परमन्थि”
इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—यशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्षः स्थिरनामवद् विज्ञेयः, अस्यां मार्गणायां
श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृतिरेकाकिनी नैव बध्यत इति कृत्वा ॥४८९-९४॥

अथ प्रशस्तलेश्यामार्गणासु सन्निकर्षं दर्शयन्नाह-

तित्याहारदुगाणि व पस्त्यलेसासु देवगद्विबन्धी ।

ध्रुवसुखगद्विआगिहपरधाऊसासतसचउगमुहगतिग ॥४९५॥ (गीति.)

अधुना कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः स उच्यते

कर्मणाहारेषु उरालभीसव्व सव्वपयडीणं ।

णवरि एरुरलदुगवइरवधो तित्थं व वंधेइ ॥४७९॥

तित्थयर वंधतो णरसुरालियविउव्वियदुगाणं ।

अण्णयरा चत्तारो णियमा वधेइ वा वइरं ॥४८०॥

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोः सर्वासां नामप्रकृतीनां सन्निकर्ष औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावद् वेदितव्यः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयति-मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवञ्चभनाराचसंहननपञ्चकेऽन्यतमस्य वन्धको जिननाम विकल्पतो वध्नाति, यतो हि मार्गणयोरनयोजिननामवन्धकतया केचन सम्यग्दृष्टिदेवनारका अपि प्राप्यन्ते ते च मनुष्यद्विकादिपञ्चप्रकृतिवन्धकाले जिननाम वध्नन्ति, शेषा न वध्नन्ति । तित्थयरं' इत्यादि, जिननामवन्धको मनुष्यसु द्विकयोरन्यतरद्विकमौदारिकवैक्रिद्विकयोरन्यतरद्विकं च नियमेन वध्नाति, जिननामवन्धस्य प्रकृतान्यतरप्रकृतिवन्धाविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि, वञ्चभनाराचसंहननं विकल्पतो वध्नाति, अनयोर्मार्गणयोर्देवगतिप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले जिननामवन्धकेन तस्याऽवध्यमानत्वात् मनुष्यगतिप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले तु वध्यमानत्वात् ॥४७९ ८०॥

अथ भत्यादिज्ञानत्रयप्रभृतिमार्गणासु तमाह

मणुयगइं वधतो तिणाणऽवहिंसम्मखइउवसमेसुं ।

तित्थं वा वधेइ ण सुरविउवाहारजुगलाणि ॥४८१॥

णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसपणवीसा ।

एमेवोराऽलियदुगवइरमणुस्साणुपुव्वीणं ॥४८२॥

देवगइं वधतो मणुयोराऽलदुगवइररिसहाण ।

णच्चिअ वधइ वा उण तित्थयराहारजुगलाणि ॥४८३॥

णियमाऽण्णयरा तिण्णि तिथिराइजुगलाण सेसचउवीसा ।

एमेव सण्णियासो विउवदुगसुराणुपुव्वीण ॥४८४॥

णाहारगतणुवधो णरुरलअथिरदुगअजसवइराणि ।

वधइ जिण व णियमा सेसा एवं उवंगस्स ॥४८५॥

जसवधो अजसं णो चेव सिआ वधए छ अण्णयरा ।

गइतएवगऽणुपुव्वियदुयिराइजुगलाण तह सेसा ॥४८६॥

जिणवइराहारदुग पणिविधो व वधए णियमा ।

अण्णयरा गइआई सत्त तहा सेसवीसाओ ॥४८७॥

एव सेसाण णवरि थिरसुहवधो ण चेव पडिवक्खं ।

अथिरदुगअजसवधो पडिवक्खाराहारगदुगाणि ॥४८८॥

(प्रे०) 'मणुय' इत्यादि, भतिश्रुतावधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तसु मार्गणासु मनुष्यगति वध्नन् जिननाम विकल्पेन वध्नाति केषाञ्चिद्-

देवनारकाणां तद्वन्धकत्वात् शेषाणां त्ववन्धकत्वात् , उपशमे तु केवलं देवानामेव तद्वन्धक-
त्वाच्च । 'ण' इत्यादि, सुरदिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानि नैव बध्नाति, मनुष्यगतिनाम्ना सहामां
बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुमे यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नी चेति
युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, उक्तातिरिक्तपञ्चविंशति-
प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिक-
द्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं मनुष्यानुपूर्वी सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं परा-
घातोच्छ्वासनाम्नी चेति पञ्चविंशतिरिति , तत्र ध्रुवाणां ध्रुवबन्धित्वात् , प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धवि-
च्छेदादूर्ध्वं तद्वन्धविच्छेदात् , वज्रर्षभनाराचसंहननस्य मनुष्यगतिनाम्ना सहात्र तत्प्रतिपक्षसंहननप्रकृ-
तिवन्धाभावात्, औदारिकद्विकमनुष्यानुपूर्वीप्रकृतीनां मनुष्यगतिवन्धस्य तद्वन्धाविनाभावित्वात्, शेष-
प्रकृतीनां च प्रकृतमार्गणासु तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाभावेन ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् । 'एमेव' इत्यादि,
औदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः ।
'देवगङ्' इत्यादि, देवगतिं बध्न् मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव
बध्नाति, तद्वन्धस्य देवगतिनाम्ना सह विरोधात् । 'वा' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकं च
विकल्पेन बध्नाति, केषाञ्चिज्जीवानामेव तद्वन्धकत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरादियुगलत्रये-
ऽन्यतराः तिस्रः प्रकृतीः शेषचतुर्विंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नव
ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नी समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी
सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति, हेतुः पुनरिदोक्तदेवगतिप्रधान-
सन्निकर्षवद् भाव्यः । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीनाम्नी प्रधानीकृत्या सन्निकर्षो
देवगतिप्रधानसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णाहारग' इत्यादि, आहारकशरीरनामबन्धको मनुष्यद्विकौ-
दारिकद्विकाऽस्थिराद्विकाऽयशःकीर्तिवज्रर्षभनाराचसंहनननामानि नैव बध्नाति, तद्यथा—आहारक-
शरीरनामबन्धकस्य देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धकत्वेन न मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धः,
प्रमत्तगुणस्थानकान्तेऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदेन तस्यास्थिरादिप्रकृतित्रयस्या-
ऽपि बन्धविरहः । 'जिणं' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्धयोग्यतावद्भिर्वध्यमान-
त्वात्तदपरैस्त्ववध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, देवद्विकं नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजाति
वैक्रियद्विकमाहारकाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति
नवविंशतिशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तद्यथा—नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वे सत्पाहारक-
शरीरनाम्ना सममेव बन्धतो व्यवच्छिद्यमानत्वेनाहारकशरीरनाम्ना सह नियतबन्ध एव प्राप्यते, तथा-
देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धं विनाऽऽहारकशरीरनाम नैव बध्यत इति कृत्वा तासामपि
बन्धो ध्रुवतया प्राप्यते । 'एवं' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधान-

सन्निकर्षवद् भवति । 'जसबंधो' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सिआ' इत्यादि, देवमनुष्यगतिद्वयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकशरीरत्रयौदारिकवैक्रियाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गत्रयदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरास्थिरद्वयशुभाशुमद्वयरूपेषु षट्प्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः षट्प्रकृतीरुक्तातिरिक्तप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, यतो मार्गणास्वासु नवमादिगुणस्थानगतो यशःकीर्तिनामबन्धक एतान्प्रकृतिव्रातान् शेषप्रकृतीश्च नैव बध्नाति अविरतसम्यग्दृष्टिप्रभृतिगुणस्थानगतः स यथासंभवं तेष्वन्यतमाः प्रकृतीः शेषप्रकृतीश्च बध्नाति । 'जिण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको जिननामवर्ज्यभनाराचसंहननाहारकद्विकरूपाश्चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तद्यथा—जिननामाऽऽहारकद्विकबन्धयोग्यतावद्भिः जिननामाऽऽहारकद्विकप्रकृतित्रयं वध्यते, नापरैः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेन वर्ज्यभनाराचसंहननं वध्यते, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तु न वध्यते । 'णियमा' इत्यादि, गतिद्वयशरीरद्वयाङ्गोपाङ्गद्वयानुपूर्वीद्वयस्थिरादियुगलत्रयेष्वन्यतराः सप्त प्रकृतीरुक्तातिरिक्तविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, हेतुत्र सुगमत्वात्स्वयं विभाव्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धनामप्रकृतयः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुमग्निकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेति । 'एवं' इत्यादि, अभिहितेतरषड्विंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—स्थिरशुभनामबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतास्थिराशुभनाम्नी नैव बध्नाति, विरोधात् । अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् अस्थिरादिप्रकृतिबन्धस्याऽऽहारकद्विकबन्धात् प्रागेव विच्छेदाच्च ॥४८१-८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघादिमार्गणासु च प्रकृतमाह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु बधए वा उ ।
 देवगइं बंधतो तित्थाहारदुगणामाणि ॥४८९॥
 नियमाऽण्णयरा तिण्ण तित्थिराइजुगलाण सेसचउवीसा ।
 एमेव सण्णियासो जसआहारदुगवज्जणं ॥४९०॥
 णवरं थिरसुहबंधी पडिवक्ख नेव बंधेइ ।
 अथिरदुगअजसबधी पडिवक्खाहारजुगलाणि ॥४९१॥ (उपगोति)
 आहारगतणुबधी बधेइ ण अथिरअसुहअजसाणि ।
 बधइ जिणं व नियमा सेसा एवं उवंगस्स ॥४९२॥
 जसबधी बधेइ ण अजस बोण्णि दुथिराइजुगलाणं ।
 बधइ अण्णयरा अवि वा बंधइ सेसअडवीसा ॥४९३॥
 परिहारविमुद्धीए हवेज्ज मणपज्जवव्व सव्वेसि ।
 परमत्थि सण्णियासो जसणामस्स थिरणामव्व ॥४९४॥

(प्रे०) "मणणाण" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमरूपासु

चतसृषु मार्गणासु देवगतिनामबन्धको जिननामाहारकद्विकं च विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्ध-
योग्याऽयोग्यतामाश्रित्य भावना स्वयं प्रागुक्तानुमारेण कार्या । “णियमा” इत्यादि, स्थिरादियु-
गलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीस्तथोक्तशेषचतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्राग्बत् ,
शेषाणां तु देवगतिबन्धस्य तत्प्रकृतिबन्धाविनाभावित्वात् , ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनाम-
प्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिर्देवानुपूर्वी त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं परा-
धातोच्छ्वासनाम्नी चेति । “एमेव” इत्यादि, यशःकीर्तिनामाहारकद्विकवर्जशेषत्रिंशत्प्रकृतीनां प्राधा-
न्येन सन्निकर्षो देवगतिप्रधानसन्निकर्षवद् वर्तते । “णवरं” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्थिरशुभ-
नाम्नोर्वन्धकः तत्प्रतिपक्षभूताऽस्थिराऽशुभनाम्नी नैव बध्नाति, परस्परं बन्धस्य विरोधात् । अस्थि-
राऽशुभायशःकीर्तिनाम्नां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतस्थिरशुभयशःकीर्तिनामान्याहारकद्विकं च नैव
बध्नाति, विरोधात् । “आहारगतणु” इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकोऽस्थिराशुभायशःकी-
र्तिनामानि नैव बध्नाति, तथाहि—आहारकद्विकमप्रमत्तसंयतादिगुणस्थानयोर्वध्यते, अस्थिरादिप्रकृति-
त्रयं च प्रमत्तसंयतगुणस्थानान्ते बन्धतो व्यवच्छिद्यते, तस्मादाहारकद्विकबन्धकोऽस्थिरादिप्रकृतित्रयं
नैव बध्नाति । “जिणं” इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्धयोग्याऽयोग्यतामाश्रित्य
भावना विधेया । “णियमः” इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र प्राग्ब-
दनुबन्धेयः । ताश्चेमाः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकाङ्गो-
पाङ्गं ममचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयदशकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी चेत्यकोनविंशदिति । “एवं”
इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनामप्रधानसन्निकर्ष आहारकशरीरनामप्रधानसन्निकर्षवदवमातव्यः ।
“जसवंची” इत्यादि, यशःकीर्तिबन्धकोऽयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । “दोष्णि”
इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलत्रयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती उक्तशेषाष्टाविंशतिनामप्रकृतीश्च
विकल्पेन बध्नाति, नवमप्रभृतिगुणस्थानकेषु यशःकीर्तिनामबन्धकेनाममवध्यमानत्वात्प्रमत्तसंय-
तादिगुणस्थानकेषु बध्यमानत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयो देवद्विकं पञ्चे-
न्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातो-
च्छ्वासनाम्नी जिननाम चेत्यष्टाविंशतिरिति । “परिहारविसुद्धो” इत्यादि, परिहारविशु-
द्धिसयममार्गणाया स्वप्रायोग्यमवप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्ययज्ञानमार्गणावद् भवति । “परमस्थि”
इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—यशःकीर्तिप्रधानसन्निकर्षः स्थिरनामवद् विज्ञेयः, अस्यां मार्गणायां
श्रेणेरभावाद् यशःकीर्तिप्रकृतिरेकाकिनी नैव बध्यत इति कृत्वा ॥४८९-९४॥

अथ प्रशस्तलेश्यामार्गणासु सन्निकर्षं दर्शयन्नाह-

तित्याहारदुगाणि व पसत्थलेसासु देवगइवंधो ।

धुवसुखगइआगिइपरधाऊसासतसचउगसुहातिग ॥४९५॥ (गीति.)

विज्वदुगपणिदियसुरअणुपुव्वी य तिथिराइजुगलाणं ।
 अण्णयरा णियमाऽण्णा णेव विज्वदुगसुरऽणुपुव्वीण ॥४९६॥ गीतिः)
 आहारदुगस्तेव णवरि अथिरअसुहअजसणामाणि ।
 णो चिअ बधइ णियमा थिरसुहअजसणामकम्माणि ॥४९७॥
 सेसाण हवेज्ज कमा पढमतइअणवमकप्पदेवव्व ।
 णवरि अथिरअसुहअजसबंधी व सुरविज्वदुगाणि ॥४९८॥
 धुवसुखगइआगिइजिणपरधाऊसासतसदसगवधी ।
 पच्चिदियवधी य व सुरविजवाहारगदुगाणि ॥४९९॥
 सुक्काअ व जसवधी धुवसयलजिणपरधायऊसासा ।
 तसचउगाहारदुगं तह सेसाऽण्णवरगइआई ॥५००॥

(प्रे०) 'तिथि' इत्यादि, त्रिप्रशस्तलेश्यामार्गणासु लाघवार्थमतिदेशेन बाहुल्यतया संनि-
 कर्षं दर्शयति । तत्रापि प्रथमं देवगतिविषयकर्मनिकर्षं व्यक्तं दर्शयति । तद्यथा—
 सुरगतिबन्धको नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासे सुभगत्रिकं त्रयचतुष्कं देवानुरूपीं सुखगतिः
 समचतुरस्रसंस्थानं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं चेति चतुर्विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र
 प्राग्वद्वशेयः । जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति, तद्वन्धयोग्याऽयो-
 ग्यतां प्रतीत्य भावना कार्या । 'तिथिराइ' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्ययशः-
 कीर्ती चेति युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, । 'ऽण्णाण' इत्यादि, उक्तव्य-
 तिरिक्ताः प्रकृतीर्नैव बध्नाति, देवगतिनाम्ना सार्धं शेषप्रकृतीनां बन्धविरोधात् । 'एवं' इत्यादि,
 वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीनामप्रधानसन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'आहारदुग' इत्यादि,
 आहारकद्विकप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानसन्निकर्षवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवाद-
 भाद—आहारकद्विकबन्धकोऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि नैव बध्नाति, प्रमत्तसंयतगुणस्थानान्त
 एव तेषां बन्धविच्छेदात् । 'णियमा' इत्यादि, स्थिरशुभयशःकीर्तिनामकर्माणि नियमेन बध्नाति ।
 'सेसाण' इत्यादि, प्रकृतप्रशस्तमार्गणात्रयेऽभिहितेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः
 क्रमेण प्रथमतृतीयनवमदेवमार्गणावद् बोद्धव्यः, इदमुक्तं भवति—तेजोलेश्यामार्गणायां स्वप्रायोग्य-
 शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षः सौधर्मदेवमार्गणावत्, पञ्चलेश्यामार्गणायां सनत्कुमारदेवमार्गणावत्, शुक्ल-
 लेश्यामार्गणायां चानतदेवमार्गणावद् विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—अस्थिराऽ-
 शुभायशःकीर्तिनामबन्धको देवद्विकवैक्रियद्विके विकल्पतो बध्नाति, तथा नवध्रुवबन्धिनामप्रकृति-
 पञ्चेन्द्रियजातिसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानजिननामपराधातोच्छ्वासप्रसदशकबन्धको देवद्विकवैक्रिय-
 द्विकआहारकद्विकरूपाः पदप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, तद्यथा—सौधर्मादिमार्गणासु केवलं देवानामेव
 प्रवेशोऽस्ति, प्रस्तुतमार्गणासु पुनर्मनुष्यादिजीवानामपि प्रवेशोऽस्ति, ते च नवध्रुवबन्धिनाम-
 प्रभृतिप्रकृतप्रकृतिबन्धकास्ते देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणागता

देवाः पुनर्नैव बध्नन्ति, आहारकद्विकं तु प्रकृतेमार्गणागताः केचन एवाऽप्रमत्तसंयता बध्नन्ति न पुनः सर्वे, अतोऽत्र विकल्पो दर्शितः, शुक्ललेखामार्गणायां नवध्रुवबन्ध्यादिवन्धकस्य मनुष्यद्विकौदारिकद्विकयोर्भूले साक्षादनुक्तोऽपि देवद्विक-वैक्रियद्विकविकल्पबन्धाभिधानसामर्थ्येन गम्यमानः स्याद्बन्धोऽवसेयः ।

अथ यामां प्रकृतीनां सन्निकर्षो निरपवादस्ताश्चेमाः—तेजोलेखामार्गणायां एकेन्द्रियजाति-स्थावरातपतिर्यग्द्विकोद्योतमनुष्यद्विकौदारिकद्विकसंहननपट्कद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगति-दुर्भगत्रिकरूपाः पञ्चविंशतिरिति, पञ्चलेखामार्गणायामेकेन्द्रियजातिस्थावरातपनामवर्जा द्वाविंशतिः, शुक्ललेखामार्गणायां चैकेन्द्रियजातिस्थावरातपतिर्यग्द्विकोद्योतवर्जा एता एवैकोनविंशतिर्ग्राह्याः । शुक्ललेखामार्गणायां यो विशेषतः सन्निकर्षोऽस्ति, तं 'सुक्काअ' इत्यादिना दर्शयति—यशःकीर्ति-नामबन्धको नवध्रुवबन्धनामप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिजिननामपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्काहारकद्विक-प्रकृतीनां बन्धो विकल्पेन भवति तथा देवद्विकमनुष्यद्विकयोर्दौदारिकद्विकवैक्रियद्विकयोः संहननपट्के संस्थानपट्के खगतिद्वये स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः, सुभगदुर्भगयोः सुस्वरदुःस्वरयोरादेयानादेय-योरन्यतराः प्रकृतीरपि विकल्पेन बध्नाति, यदा श्रेणौ केवलं यशःकीर्तिं बध्नाति तदा शेषाः सर्वाः प्रकृतीर्नैव बध्नाति शेषकाले तु यथायोग्यं बध्नाति न बध्नाति चेति कृत्वा विकल्पेन सर्वासां प्रकृतीनां बन्धो भणित इति ॥४९५-५००॥

इदानीं क्षयोपशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनमार्गणासु नामप्रकृतिसन्निकर्ष प्रतिपादयितुकाम आह

ओहिंव होइ वेअगमोसेसु णवरि जसस्स उ थिरव्व ।

मोसे ण चेव वधो तित्थाहारजुगलाण भवे ॥५०१॥

पम्हव्व सण्णियासो सासाणे णवरि एणे भवे वधो ।

अतिममधयणागिइतित्थाहारजुगलामाण ॥५०२॥

(प्रे०) “ओहिंव” इत्यादि, वेदकसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वमार्गणाद्वये नामप्रकृतिसन्निकर्षोऽवविज्ञानमार्गणावद् भवति, न तु स्वयमेव ततोऽवलोक्यः, अन्यगौरवभियाऽत्र नोच्यते । “णवरि” इत्यादिना विशेष प्रतिपादयति—यशःकीर्तिनाम्नाः सन्निकर्षः स्थिरनामसन्निकर्षवद् वर्तते, तद्यथा—यशः-कीर्तिनाम्नो बन्धको नवध्रुवबन्धनामपराधातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगति-प्रसचतुष्कसुभगत्रिकप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । जिननामाहारकद्विकप्रथमसंहनननामानि विकल्पतो बध्नाति । देवमनुष्यगतिद्वये, औदारिकवैक्रियशरीरद्वये, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये, देवमनुष्यानु-पूर्वीद्वये, स्थिरादियुगलद्वये चाऽन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, अयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति, विरुद्धत्वात् । मिश्रे आहारकद्विकजिननाम्नोर्बन्धाभावात्तद्विषयकसन्निकर्षो नास्ति, स तु “मोसे” इत्यादिना दर्शितः । ‘पम्हव्व’ इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां नामप्रकृतीनां सन्निकर्षः पञ्चलेखामार्गणा-

विज्ञेयः । “णवरि” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—सेवार्तसंहननहुण्डकसंस्थानजिननामाहारकद्विक-
नाम्नां सन्निकर्षो नारित, मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासां बन्धविरहात् । एवं नामकर्मणः स्व-
स्थानसन्निकर्षो मार्गणास्थानेषु समाप्तः ॥५०१॥ २॥

इदानीं मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्षं निरूपयिषुराह

पणऽणुत्तरसंवागणियवणाहारगदुगेसु गयवेए ।

चउणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारेसुं ॥५०३॥

देससुहभोहिसम्मगवेअगखइएसु उवसमे मीसे ।

गोअस्स सणियासो ण भवे ओधव्व सेसासुं ॥५०४॥

(प्रे०) “पण” इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणाः, ओघ-सूक्ष्मौघ-वाद्रौघ-पर्याप्तसूक्ष्म पर्याप्तवाद्राऽ-
पर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तवाद्रभेदभिन्नाः सप्त तेजस्कायमार्गणाः सप्तवायुकायमार्गणा आहारकाययोगाहारक-
मिश्रकाययोगमार्गणे गतवेदमार्गणा मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानरूपाश्चतुर्ज्ञानमार्गणाः,
सयमौघमामागिव च्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिसूक्ष्ममम्पभायरूपाः पट्मंयममार्गणाः,
अवधिदर्शनमार्गणा सम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकमम्यक्त्वोपशममिश्रमम्यक्त्वरूपाः पञ्च-
सम्यक्त्वमार्गणाश्चेत्यष्टात्रिंशन्मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्षो नास्ति, तेजोवायुकायवर्जमार्गणा-
स्वास्त्वचैर्गोत्रस्यैकस्यैव बन्धभावात् तेजोवायुकायमार्गणासु केवलं नीचैर्गोत्रस्यैव बन्धमानत्वाच्च ।
“ओघव्व” इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तासु मार्गणासु गोत्रकर्मणः सन्निकर्षो ओघवदस्ति, तद्यथा-
अन्यतरदेकं गोत्रकर्म बन्धन् तद्व्यतिरिक्तं गोत्रं नैव बध्नाति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अष्टौ नरक-
मार्गणाः, तिर्यगोघादिपञ्चमार्गणाः, मनुष्यौघादिचतुर्मागणाः, पञ्चानुत्तरवर्जशेषपञ्चविंशतिदेवौघादि-
मार्गणाः, ओघादिसप्तभेदेन सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, ओघादिभेदत्रयेण तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः तिस्रः
त्रीन्द्रियमार्गणास्तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणास्तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाश्चेत्येकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः,
ओघादिसप्तभेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽस्कायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः तिस्र-
स्त्रसकायमार्गणाश्चेत्यष्टात्रिंशतिः कायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्यसत्यासत्याऽमृषाभेदेन पञ्चमनो-
योगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगवैक्रियकाय-
योगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणापञ्चकम्, कर्मणकाययोगमार्गणा चेति षोडश योगमार्गणाः, स्त्रीपुरुष-
नपुंसकवेदमार्गणात्रयम्, क्रोधमानमायालोभमार्गणाचतुष्कम्, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्ग-
णात्रयम्, असंयममार्गणा चक्षुरक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वयम्, कृष्णादिलेश्यामार्गणापट्कम्, भव्याभव्य-
मार्गणाद्वयम्, सास्वादनमिध्यात्वमार्गणाद्वयम्, संज्ञ्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारकानाहारकमार्गणा-
द्वय चेति द्वात्रिंशदधिकशतमिति । अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथारूपातसंयममार्गणाचतुष्के सर्वथैव
गोत्रकर्मणो बन्धविरहात्, तत्सन्निकर्षप्रसङ्ग एव नास्ति, ‘भूलं नास्ति कुतः शाखा’ इति न्यायात् ।
इति गोत्रकर्मणः स्वस्थानसन्निकर्षः समाप्तः, तत्समाप्ते च स्वस्थानसन्निकर्षः समाप्तिमगात् ॥५०३-४॥

॥ इति बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे स्वस्थानसन्निकर्षः ॥

॥ अथ परस्थानसन्निकर्षः ॥

साम्प्रतं परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नादाबोधतो ज्ञानावरणादिप्रकृतिप्रधानं परस्थानसन्निकर्षं निरूपयति

जियमा बंधइ एग विन्धावरणवगाउ बंधंतो ।

सेसा तेरस अण्णयरवेअणीअजसअजसगोआणि ॥५०५॥ (गीति.)

बंधइ व सेसधुवचउआउगआहारेआयवडुगाणि ।

जिणपरधाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥५०६॥

(प्रे०) 'णिधमा' इत्यादि, अन्तरायपञ्चकं ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शना-
वरणचतुष्कं चेति चतुर्दशप्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमावधन्न् शेषास्त्रयोदशप्रकृतीः साताऽसातवेदनीययो-
रन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिमुर्चनीचैर्गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च निय-
मेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, निद्रापञ्चकं मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रभृतिषोडश-
कपायमयजुगुप्सारूपा एकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतयस्तैजसकर्मणशरीरद्वयं वर्णचतुष्कमयुरुलधू-
पधातनिर्माणनामानि चेति नव नाम्नो ध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति शेषत्रयस्त्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतय
आयुष्कचतुष्कमाहारकटिकमातपोद्योतनाम्नी जिननामपराधातोच्छ्वासनामानि चेति चतुश्चत्वारिंश-
त्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'तह' इत्यादि, तथाऽभिहितेतरप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
विकल्पेन बध्नाति, तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि-हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जाति-
पञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननपट्कं संस्थानपट्कमाद्युपूर्वीचतुष्कं
खगतिद्वयं त्रयस्थायरादियुगलनवकं चेति, शेषध्रुवबन्धिनीनां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदस्थानं यावद्
बन्धः, तदूर्ध्वं त्वबन्ध इति कृत्वा तथा शेषाध्रुवबन्धिनीनां त्वध्रुवबन्धित्वादेव विकल्पेन बन्धः ।

अत्र परस्थानसन्निकर्षे विवक्षितप्रकृता सह तदितरप्रकृतीनां कुत्रचिन्नियतबन्धरूपः कुत्र-
चिद् विकल्पबन्धरूपः कुत्रचित्तदितराऽन्यतरप्रकृतीनां नियतबन्धरूपः कुत्रचित् तद्विकल्पबन्धरूपः
सन्निकर्षोऽस्ति, तत्र हेतोरवगत्यै तथा ग्रन्थलाघवार्थं नियमाः प्रदर्श्यन्ते । तद्यथा-

(१) यामां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं प्रधानीकृतप्रकृतेर्वन्धविच्छेदस्थानेन समं
यद्वा तत ऊर्ध्वं वर्तते तासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नियमेन बन्धो वक्तव्यः । मार्गणासु पुनः स्वोत्कृष्ट-
गुणस्थानं यावद् वध्यमानध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिकल्पानां नियमेन बन्धः
सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षे कथनीयः । इति प्रथमनियमः ।

(२) यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्थानं प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदस्थानीदवर्ग-
वर्तते तासां प्रकृतीनां बन्धो विकल्पेन प्राप्यते । इति द्वितीयनियमः ।

(३) (अ) यस्याः प्रधानीकृतप्रकृतेर्वन्धेन सहैकेन्द्रियजातिनाम्नो देवनरकान्यतरगतेर्वा विकल्पेन
बन्धाहृत्वं तत्र क्रमेणाङ्गोपाङ्गसंहननस्वरखगतिनाम्नां संहननस्य च विकल्पेन बन्धाहृत्वं विज्ञेयम् ।

(३) (ब) यत्रातोपोद्योतनाम्नोर्वन्धार्हत्वं तथैवायुष्कचतुष्काहारकद्विकजिननाम्नामपि बन्धार्हत्वं तत्र तेषां विकल्पेन बन्धो भवति ।

(३) (क) यत्राऽपर्याप्तनाम्नो विकल्पेन बन्धार्हत्वं तत्र पराधातोच्छ्वासनाम्नोस्तथा तत्रैव केवलस्थावरप्रायोग्यातिरिक्तप्रधानीकृतप्रकृतिसन्निकर्षे खगतिस्वरनाम्नोरपि विकल्पेन बन्धो भवति ।

(४) यत्र सप्रतिपक्षप्रकृतिष्वेकतरस्याः प्रकृतेर्वन्धविच्छेदस्थानं यस्याः प्रधानीकृतप्रकृतेर्वन्धविच्छेदस्थानेन समं यद्वा तत् ऊर्ध्वं प्राप्यते तत्र सप्रतिपक्षप्रकृतिष्वेकतरस्याः प्रकृतेर्नियमेन बन्धः प्राप्यते ।

यथा—अनन्तरवक्ष्यमाणप्रधानीकृतनिद्राप्रकृतिसन्निकर्षे प्रथमनियमेन भयजुगुप्सायञ्जलनचतुष्काणां ज्ञानावरणादिचतुर्दशानां नवध्रुववन्धिनामप्रकृतीनां प्रचलायाश्च नियमेन बन्धः, द्वितीयनियमानुसारेण शेषध्रुववन्धिनीनां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमप्रथमांशेनाऽङ्गोपाङ्गसंहननस्वरखगतिनाम्नां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमद्वितीयांशेनायुश्चतुष्कातपोद्योताहारकद्विकजिनप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धः, तृतीयनियमतृतीयांशेन पराधातोच्छ्वासयोर्विकल्पेन बन्धः, चतुर्थनियमेन सातासातवेदनीययोरेकतरस्य युगलद्वय एकतरयुगलस्य वेदत्रयेऽन्यतमवेदस्य इत्येवं स्थिरास्थिरादिष्वपि नियमेन बन्धः कथितः । एवं सर्वत्र प्रकृतनियमानुसारेण हेतुभावनिकाप्रभृतयोऽनुसन्धेयाः ॥५०५-६॥

इदानीं निद्राद्विकप्रधानं परस्थानसन्निकर्षमाह

बंधइ व णिद्बंधी जिणथीणद्धितिगवारसकसाया ।

मिच्छाहारायवदुगपरधाऊसासचउआऊ ॥५०७॥

णियमाऽण्णा धुवबंधी वा सधयणदुउवंगसरखगई ।

अण्णयराऽण्णा णियमा एमेव हवेस्ज पयलाए ॥५०८॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, निद्राप्रकृतिबन्धको जिननामस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिवचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयाऽऽहारकद्विकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासाऽऽयुष्कचतुष्करूपाः सप्तविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयातपनामनरकायुःप्रकृतित्रयं मिथ्यात्वगुणस्थाने वर्तमानः सन् निद्राद्विकप्रकृतिबन्धको बध्नाति तदितरगुणस्थानकेषु च वर्तमानो नैव बध्नाति, प्रथमद्वितीयगुणस्थानगतः स स्त्यानद्धित्रिकानन्तानुबन्धिवचतुष्कतियगायुद्योतनामरूपा नवप्रकृतीर्वध्नाति तृतीयादिगुणस्थानगतश्च नैव बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानत्रयवर्ती स जिननाम नैव बध्नाति तूर्यादिगुणस्थानकेष्वपि तद्बन्धयोग्यतावान् बध्नाति, नापरः, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्पायुष्कप्रकृतिपञ्चकं प्रथमादिगुणस्थानेषु वर्तमानः स बध्नाति, पञ्चमादिगुणस्थानकेषु च नैव बध्नाति, प्रथमादिगुणस्थानपञ्चके स्थितः स प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्नाति, न तु तदपरगुणस्थानकेषु, देवायुस्तृतीयवर्जप्रथमादिसप्तमान्तगुणस्थानगतः कश्चिद् बध्नाति कश्चिन्न बध्नाति, पराधातोच्छ्वासनाम्नीस

पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां वध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धवेलायां च नैव वध्नाति । आहारकद्विकं तद्वन्धयोग्यतावान्नैव कश्चिदप्रमत्तापूर्वकरणसंयतः स वध्नाति, न तु तदितरः, तस्मादत्रासां प्रकृतीनां निद्राप्रकृत्या सह सन्निकर्षो विकल्पितः । “णियमा” इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्ता ध्रुवबन्धप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन भावना कार्या । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं प्रचला सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से नाम्नो नवध्रुवबन्धिन्योऽन्तरायपञ्चकं चेति त्रिंशदिति । “चा” इत्यादि, संहननपटकेऽन्यतरत्संहननमङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं विकल्पेन वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले तेनासां प्रकृतीनामवश्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च वध्यमानत्वात् । “अपणयरा” इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन वध्नाति, हेतोस्वगतिश्चतुर्थनियमेन कार्या । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि—वेदनीयद्विकं द्वास्यादिषुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रयस्थायरादिषुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति । “एमेव” इत्यादि, प्रचलाप्रकृतेः प्राधान्येन सन्निकर्षो निद्राप्रधानसन्निकर्षवद् भवति ॥५०७८॥

साम्प्रतं स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽनन्तानुबन्धचतुष्कस्य च परस्थानसन्निकर्षं निरूपयितुमाह

थोणद्धितिगमणचउगबंधी बंधइ व मिच्छचउआऊ ।

परधाऊसासायवदुगाणि णियमाऽण्णधुवबंधी ॥५०९॥

तित्याहारदुगाणि ण बंधइ संघयणुवंगसरखगई ।

वाऽण्णयरा णियमाऽण्णा अण्णयरा पेअणीआई । ५१०॥

(प्रे०) “थोणद्धि” इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कप्रकृतिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयायुष्कचतुष्कपराधातोच्छ्वासातपोधोतरूपा नव प्रकृतीर्विकल्पतो वध्नाति । तद्यथा-प्रकृतप्रकृतिबन्धकः प्रथमगुणस्थाने वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीयं वध्नाति द्वितीयगुणस्थानके तु नैव वध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले आतपोधोतनाग्नी पराधातोच्छ्वासनाम्नी च नैव वध्नाति, पर्याप्तपरादेर्केन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाले चातपनाम पर्याप्तैकेन्द्रियादिबन्धकाले चोद्योतनाम कश्चित्प्रकृतप्रकृतिबन्धको वध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले च पराधातोच्छ्वासनाग्नी वध्नाति, आयुषो बन्धस्य तु सर्वत्र कादाचित्कत्वात् नियमेन बन्धः, तस्मादासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पितोऽभिहितः । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, हेतुरत्र प्रथमनियमेन भाव्यः । “तित्याहार” इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव वध्नाति, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कप्रकृतिभिः सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च जिननाम्नो बन्धस्य तुर्यादिगुणस्थानकेषु आहारकद्विकस्य चाऽप्रमत्तादिसंयतस्यैव भावात् स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धप्रकृतीनां

च द्वितीयगुणस्थानकान्त एव बन्धविक्रमेदाद् विज्ञेयः । “संघयण” इत्यादि, अन्यतरगन्धननमन्य-
तरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति, अत्र हेतुस्मृतीयनियमस्य प्रथमां-
शेन विज्ञेयः । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतित्रयेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं
नियमेन बध्नाति, भावना पुनरत्र चतुर्थनियमेन भाव्या । तानि चेमानि प्रकृतित्रयानि-वेदनीय-
द्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं मंस्थानपट्कमानु-
पूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रयसंस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति ॥५०९, १०॥

इदानीं सातवेदनीयस्य परमस्थानमभिकर्षमाह

वधइ ण सायवधो असायणारगतिगाणि सगवण्णा ।

धुववधिआइगा वा तह वाऽण्णयरा वि जुगल्आई ॥५११॥

(प्रे०) “संघइ” इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धकोऽसातवेदनीयनरकत्रिकप्रकृतीर्नैव
बध्नाति, यतः सातवेदनीयस्य बन्धेन महाऽसातवेदनीयस्य परावर्तमानतया ग्रह्यमानत्वेन विरोधोऽ-
स्ति, तथा सातवेदनीयबन्धकस्य नरकत्रिकबन्धप्रायोग्यपरिणामाभावोऽस्ति । तथा मसचत्वारिंशद्भुव-
बन्धिप्रकृत्यातपोद्योतरूपायातोच्छ्वात्मजिननामाहारकद्विकनरकायुर्वर्जायुष्यरूपाः भक्षपञ्चाशत्प्रकृती-
स्तथा शेषप्रकृतिवृन्देऽन्यतरहास्यादियुगलादिपञ्चतीरपि विकल्पेन बध्नाति, यत उपशान्तमोहादि-
गुणस्थानेषु सातवेदनीयवर्जसर्वशेषप्रकृतीनां बन्धाभावः, अन्यत्र तु यथासंभवं शेषभ्रुवाभ्र-
प्रकृतीनां बन्धभाव इति, शेषप्रकृतिवृन्दानि चेमानि-हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं नरकगति-
वर्जगतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं मंहननपट्कं संस्था-
नपट्कं नरकानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रयं खगतिद्वयं त्रयसंस्थावरादियुगलदशकं गोत्रद्वयं चेति ॥५११॥

सम्प्रत्यसातवेदनीयस्याऽरतिशोकाऽस्थिरादिप्रकृतीनां च प्रकृतं भणति

वधइ असायवधो वा थोणद्धितिगवारसकसाया ।

मिच्छाउगतिगजिणपरधाऊसासायवदुगाणि ॥५१२॥

णियमाऽण्णा धुववधो णो सायाहारदुगसुराऊणि ।

वधइ अण्णयरावि व सघयणउवगसरखगई ॥५१३॥

अट्टारस अण्णयरा णियमा बधेइ तेसवेआई ।

एमेव हवेज्ज अरइसोगअधिरअसुहअजसाणं ॥५१४॥

(प्रे०) “संघइ” इत्यादि, असातवेदनीयबन्धकः स्त्यानद्धिप्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्र-
त्यारूपानावरणचतुष्कप्रत्यारूपानावरणचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयदेवायुर्वर्जायुष्कत्रयजिननामपराधातो-
च्छ्वासातपोद्योतरूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरिह भ्रुवाणां द्वितीयनियमेन
तथा शेषाणां तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाम्नां यथायोगं कार्या । “णियमा” इत्यादि, उक्त-
शेषैकत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धस्याऽसातवेदनीयबन्ध-

विच्छेदादूर्ध्वमपि प्रवर्तनात् । “णो” इत्यादि, सातवेदनीयाहारकद्विकदेवायुष्करूपाश्चतस्रः प्रकृती-
नैव बध्नाति, तद्यथा—साताऽसातवेदनीयप्रकृत्योः परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकस्या बन्धेऽपरस्या
बन्धाभाव इति नियमेनासातवेदनीयबन्धकः सातवेदनीयं नैव बध्नाति, असातवेदनीयं प्रमत्तसंयत-
गुणस्थानं यावदेव बध्यते तर्ह्यहारकद्विकमप्रमत्तसंयतगुणस्थानाद्यपूर्वकरणगुणस्थानषष्ठभागपर्यन्तं
च बध्यते, अतोऽसातवेदनीयबन्धकराहारकद्विकबन्धानवमरः । असातवेदनीयबन्धप्रायोग्यपरि-
णामस्य देवायुर्बन्धाप्रायोग्यत्वेनाऽसातवेदनीयबन्धविधायी देवायुर्नैव बध्नाति । “बधइ” इत्यादि,
अन्यतरत्संननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, हेतुरत्र तृतीय-
नियमस्य प्रथमांशेन भावनीयः । “अङ्गारस” इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिव्रजेषु प्रत्येकमन्यतरा
अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या । तानि चेमानि शेषप्रकृतिव्रजानि-वेद-
प्रयं हास्यादियुगलद्वयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपदकमानुपूर्वीचतुष्कं
स्वरवर्जत्रयस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति । “एमेव” इत्यादि, अरतिशोकाऽस्थिराऽशुभाऽय-
शःकीर्तिनाम्ना प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवदेव भवति । नवरमरतिशोकयो-
रन्यतरप्रकृतेर्बन्धकस्तदन्यस्याः प्रकृतेर्नियमेन बन्धकः, हास्यरत्योस्त्वबन्धक एव ॥५१२-१४॥

इदानीमप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककपायाणां प्रकृतसन्निकर्ष प्रतिपादयन्नाह—

मञ्जुऽद्वकसायाणं योणद्धितिगच्च णवरि बंधइ वा ।

योणद्धितिगाणजिणा दुइअकसाया वि वा तइअवधो ॥५१५॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘मञ्जु’ इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टमध्यमकपा-
याणां प्रधानभावेन सन्निकर्षः स्त्यानद्धित्रिकप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । ‘णवरि’ इत्यादिना
विशेषं दर्शयति, तद्यथा—स्त्यानद्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीर्बध्यमाप्रकपायबन्धको
विकल्पेन बध्नाति, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति ।
विकल्पेन बन्धस्त्वेवम्—मध्यमाष्टकपायबन्धकः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोर्वर्तते तदा स्त्यानद्धित्रि-
कानन्तानुबन्धिचतुष्कमनवरतं बध्नाति, तृतीयादिगुणस्थानकेषु च नैव बध्नाति । कश्चित्तद्वन्धाहो
जीवोऽप्रत्याख्यानावरणबन्धकश्चतुर्थगुणस्थानके प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकश्च चतुर्थपञ्चमगुणस्था-
नकयोर्जिननाम बध्नाति न तु प्रथमादिगुणस्थानत्रये । तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धकः प्रथ-
मादिगुणस्थानचतुष्केऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं बध्नाति, न तु पञ्चमगुणस्थानक इति कृत्वाऽऽसां
प्रकृतीनां सन्निकर्षो विकल्पतयैव प्राप्यत इति ॥५१५॥

इदानीं सञ्जलनकपायचतुष्कस्य स प्रतिपादये

संजलणकोहबंधी आवरणणवगतिंसंजलणविग्धा ।

णियमा बधइ अणायरेअणीयजसअजसगोआणि ॥५१६॥ (गीतिः)

वाऽण्णधुववधिआई तह अण्णयरा वि सेसजुगलाई ।

चरममयाईणें णवरि कमा वेगडुतिगसजलणा ॥५१७॥ (गीति')

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शना-
वरणचतुष्कं सञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयमन्तरायपञ्चकं चेति सप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, सञ्ज्वलन-
क्रोधबन्धविच्छेदानन्तरमासांबन्धविच्छेदस्य भवनात् । 'अण्णयर' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयं यशः
कीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरप्रकृतिमन्यतरश्च गोत्रं विकल्पेन बध्नाति । 'ऽण्णधुवबंधि' इत्यादि,
उक्तातिरिक्तध्रुवबन्धिप्रकृतीः पराघातोच्छ्वासातपोद्योताहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्करूपास्तथाऽ-
भिहितेतरप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरामपि प्रकृतिं विकल्पेन बध्नाति, ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः-
स्थानद्वित्रिकं निद्राद्विक मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धचतुष्कप्रमृतिद्वादशकषाया भयकुत्से नव-
ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेत्येकोनत्रिंशदिति । तथा शेषप्रकृतित्राताश्चैते-हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गति-
चतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननपट्कं संस्थानपट्क-
मानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं यशःकीर्तियुगलवर्जत्रसंस्थावरादियुगलनवकं चेति । भावना पुनरिहैवम्-
सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्यतराध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्व-
मपि जायते, अत आसां प्रकृतीनां बन्धं तद्वन्धस्थानं यावदनवरतं सञ्ज्वलनक्रोधबन्धविधायी
विदधाति, तदूर्ध्वं गुणस्थानकेषु नैव तद्वन्धं विदधातीति हेतोरासां प्रकृतीनां सञ्ज्वलनक्रोधेन सह
सन्निकर्षो विकल्पतया लभ्यते, आतपोद्योताहारकद्विकजिननामप्रकृतीनामायुष्कचतुष्कस्य चतु भावना
तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन कार्या, पराघातोच्छ्वासयोश्च तृतीयांशेन कार्या । 'चरम' इत्यादि,
सञ्ज्वलनमानमायालोभप्रकृतित्रयप्रधानसन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।
'णवरि' इत्यादिनाऽपवादपदमुपदर्शयते-सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं, सञ्ज्वलनमाया-
बन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ, सञ्ज्वलनलोभबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्विकल्पेन
बध्नाति । तन्पुनरेवम्-सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धविच्छेदानन्तरमपि सञ्ज्वलनमानस्य बन्धो जायते
तस्मात्तद्वन्धस्थानं यावत् सञ्ज्वलनक्रोधं सञ्ज्वलनमानबन्धविधायी बध्नाति, तदूर्ध्वं तु नैव
बध्नाति, एवमुत्तरत्राऽपि भावना कार्या ॥५१६-१७॥

अथ भयकुत्सयोस्तमाह ।

भयवधी गियमाओ णवावरणविग्धसजलणकुच्छा ।

बंधइ वा अडवीसा सेसा धुवबंधिआईओ ॥५१८॥

गियमाऽण्णयरा जसियरवेअजुगलवेअणीअगोआण ।

वाऽण्णयरा गइआई सेसा एमेव कुच्छाए ॥५१९॥

(प्रे०) 'भयबंधी' इत्यादि, भयमोहनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तराय-
पञ्चकसञ्ज्वलनचतुष्ककुत्सामोहनीयरूपा एकोनत्रिंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन

भावना कार्या । 'बंधइ' इत्यादि, भार्धभाथा कण्ठ्या, भावनाहेत्वादिकं संज्वलनक्रोधप्रकृतिवत्कार्य-
मिति । नवरमत्र वेदत्रयस्यान्यतमवेदस्यान्यतरयुगलस्य च नियमेन बन्धो वक्तव्य इति विशेषः, यतो
भयबन्धविच्छेदानन्तरं पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदः, हास्यरत्योर्भयेन समं बन्धविच्छेद इति । 'एमेव'
इत्यादि, जुगुप्सामोहनीयप्रधानसन्निकर्षो भयमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः ॥५१८-१९॥

साम्प्रत हास्यरत्योः परस्थानसन्निकर्षमाह

रइहस्सजुगलवधो णेव अरइसोगणिरयतिगपयडो ।

णियमा आवरणणवगभयकुच्छासजलणविग्धा ॥५२०॥

वाऽण्णधुववधिआई सगतीसाऽण्णयरवेअणीआई ।

णियमा चउरो बंधइ वाऽण्णयर सैसगइआई ॥५२१॥

(प्रे०) 'रइहस्स' इत्यादि, हास्यरतियुगलस्य बन्धकोऽरतिशोकनरकत्रिकरूपाः पञ्चप्रकृती-
नैव बध्नाति । तद्यथा—हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयस्य परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनैकतरयुगलस्य
बन्धेऽपरस्य बन्धाभावोऽस्ति तथा हास्यरतिबन्धप्रायोग्यपरिणामस्य नरकत्रिकबन्धानर्हत्वान्नरक-
त्रिक हास्यरतिबन्धको नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कभय-
कुत्सासञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्नियमतो बध्नाति, आसां ध्रुवबन्धित्वे सति
हास्यरतियुगलबन्धविच्छेदेन सह भयकुत्साबन्धविच्छेदस्य शेषाणां पुनस्तयोर्बन्धविच्छेदादूर्ध्व
बन्धविच्छेदस्य भावादिति । 'वा' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रभृतिसप्तविंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन
बध्नाति, ताव्येमाः—स्थानद्वित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशक
पाथा नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासात्पोधोतजिननामाहारकद्विकनरकायुर्वर्जायुस्त्रि-
कप्रकृतयश्चेति । भावना पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन पराधातोच्छ्वासयोस्तृतीयनियमस्य तृतीयां-
शेन शेषाणां पुनर्द्वितीयांशेनाऽवगन्तव्या । "ऽण्णयर" इत्यादि, अन्यतरवेदनीयमन्यतरगोत्रं यशः-
कीर्त्ययशःकीर्त्योर्न्यतरां प्रकृतिं वेदत्रयेऽन्यतमवेदं च नियमेन बध्नाति, हेतुः पुनरिह चतुर्थ-
नियमेन ज्ञेयः । 'वाऽण्णयर' अभिहितशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन
बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धविच्छेदात्प्राग् बन्धविच्छेदादासां प्रकृतीनाम्, तानि चेमानि शेष-
प्रकृतिवृन्दानि—नरकवर्जगतित्रिकं जातिपञ्चक्रमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं
संहननपट्क सस्थानपट्कं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं त्रसस्थावरादियुगलनवकं चेति ॥५२०-
२१॥ अथ स्त्रीवेदस्य स उच्यते

मिच्छाउतिगुज्जोआ थीवधो व ण जिणायवाणि तहा ।

वेआहारडुगणिरयतिगयावरजाइचउगाणि ॥५२२॥

णियमाऽण्णधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ।

वाऽण्णयर संघयण णियमाऽण्णयरऽण्णवेअणीआई ॥५२३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'मिच्छा' इत्यादि, स्त्रीवेदवन्धको मिथ्यात्वमोहनीयं देवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयसु-
 धोतनाम च विकल्पेन बध्नाति, भावना पुनरेवं कार्या-स्त्रीवेदवन्धकः प्रथमगुणस्थानके वर्तते तदा
 मिथ्यात्वमोहनीयं बध्नाति, द्वितीयगुणस्थानके च नैव बध्नाति, उधोतनाम देवमनुष्यप्रायोग्यप्रकृ-
 तिवन्धकाले नैव बध्नाति, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रकृतिवन्धकाले कश्चिदेव बध्नाति न सर्वे स्त्रीवेद-
 वन्धकाः, नरकायुर्वर्जायुष्कत्रयस्य विकल्पेन बन्धः पूर्ववद् विज्ञेयः । नरकायुर्वर्जनं चात्र स्त्रीवेदेन
 सह तद्वन्धविरोधादवसेयम्-विरोधश्च नपुंसकवेदेन सहैव तस्य वध्यमानत्वात् । 'ण' इत्यादि, जिन-
 नामातपनाम्नी पुरुषनपुंसकवेदाहारकद्विकनरकत्रिकस्थायरचतुष्कजातिचतुष्कप्रकृतीश्च नैव बध्नाति,
 स्त्रीवेदेन सहासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्चात्रानया रीत्या विज्ञेयः-जिन-
 नामचतुर्थ्यादिगुणस्थानकेषु वध्यते आहारकद्विकं चाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानकाश्च पूर्वकरणगुणस्थान-
 पष्ठमागपर्यन्तं वध्यते तर्हि स्त्रीवेदः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोरेव वध्यते । नरकत्रिकस्थायरचतुष्क-
 जातिचतुष्काऽऽतपनामभिः सह नपुंसकवेदे एव वध्यते, नापरः, एकतरवेदवन्धेऽपरवेदव्यवन्धाभाव
 इति नियमात् स्त्रीवेदेन सह पुरुषनपुंसकवेदौ न वध्यते । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीय-
 वर्णशेषपट्यत्वारिंशद्भुवन्विप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वाभत्रसचतुष्करूपा सप्त प्रकृतीश्च
 नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां ध्रुववन्धित्वात् शेषाणां च प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धकस्य पर्याप्तपञ्चे-
 न्द्रियप्रायोग्यवन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'वा' इत्यादि,
 अन्यतरत्संहननं विकल्पेन बध्नाति, यतः स्त्रीवेदवन्धको देवप्रायोग्यप्रकृतीर्वध्नाति तदा संहननं
 नैव बध्नाति, यदा च तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीर्वध्नाति तदा तद् बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि,
 उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिसमुदायेषु अन्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना
 भाव्या, ते चेमे शेषप्रकृतिसमुदायाः-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं नरकगतिवर्जगतित्रिकमौदारिक-
 वैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानपट्कं खगतिद्वयं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं स्थिरा-
 स्थिरादियुगलपट्कं गोत्रद्वयं चेति ॥५२२-२३॥

अथ नपुंसकवेदस्य सन्निकर्षं निरूपयति

वधश्च ण नपुंसकवेदो वेदाहारद्विकजिनसुरतिगाणि ।

व तिस्रोऽप्यवदुगपरधाऊसासणामाणि ॥५२४॥

णियमा ध्रुववन्धो वा सधयणदुजवगसरखगई ।

अण्णयर। अवि वधश्च णियमाऽण्णा वेअणोयाई ॥५२५॥

(प्रे०) 'वधश्च' इत्यादि, नपुंसकवेदवन्धकः स्त्रीपुरुषवेदद्वयाहारकद्विकजिननामदेवायुर्वर्ज-
 गतिदेवानुपूर्वीरूपा अष्टौ प्रकृतीर्नैव बध्नाति, नपुंसकवेदेन सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च
 स्त्रीवेदसन्निकर्षानुसारेण वेदद्वयाहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां विज्ञेयः, देवत्रिकस्य च नपुंसकवेदेन

सह देवत्रिकेतरत्रिकाणामेव वध्यमानत्वाद् विज्ञेयः । 'व' इत्यादि, देवायुर्वर्जायुष्कत्रयातपोधोतपरा-
घातोच्छ्वामनामानि विकल्पेन वध्नाति, तत्र पराघातोच्छ्वामयोस्तृतीयनियमस्य तृतीयांशेन
शेषाणां तद्द्वितीयांशेन भावना कार्या । 'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीर्निय-
मेन वध्नाति, प्रथमनियमेन भावना विधेया । 'वा' इत्यादि, संहननषट्केऽन्यतरसहननमौदा-
रिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरस्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन
वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तेनासामवध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्ध-
काले च वध्यमानत्वाद् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिमूहेषु प्रत्येकमन्यतरां
प्रकृतिं नियमेन वध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरवसेयः । ते चेमे शेषवेदनीयादिप्रकृति-
समूहाः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं गतित्रिकं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थान-
षट्कमानुपूर्वीत्रिकं स्वरद्वयवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयचेति ॥५२४-२५॥

सम्प्रति पुरुषवेदस्य प्रकृतः प्रस्तूयते

णिरयतिगद्वेआयवथावरजाइचउगाणि पुमबंघी ।

ण ञ्चिअ बधइ णियमा णवावरणसजलणविग्धा ॥५२६॥

बंघइ णियमाऽण्णयरा वि वेअणीअजसजुगलगोआणं ।

वाऽण्णधुवाइतिचत्ता वाऽण्णयरा सेसजुगलाई ॥५२७॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धको नरकत्रिकस्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्क-
जातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव वध्नाति, भावना पुनरत्र स्त्रीवेदसन्निकर्षानुसारेण भाव्या ।
'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा अष्टा-
दशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, आसां प्रकृतीनां भ्रुवबन्धित्वे मति पुरुषवेदबन्धविच्छेदानन्तर बन्ध-
विच्छेदादिति । 'बंघेइ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिमन्यतर-
गोत्रं च नियमेन वध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाव्या । 'वा' इत्यादि, उक्तशेषभ्रुवबन्ध्यादित्रि-
चत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धं विकल्पेन करोति, । 'वाण्णयरा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येक-
मन्यतरां प्रकृतिं विकल्पेन वध्नाति, शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतीनामन्यतरप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि
पुरुषवेदस्य बन्धसत्त्वात् । ताश्चेमा एकोनत्रिंशत् शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतयश्चतुर्दशाभ्रुवबन्धिप्रकृतयश्च-स्त्यान
द्वित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपाया भयजुषु से नवभ्रुवबन्धनाम-
प्रकृतयश्चेति तथाऽऽयुस्त्रयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकपराघातोच्छ्वासोद्योतजिननामत्रसचतुष्करूपा-
श्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति त्रिचत्वारिंशत् प्रकृतयः । तथा शेषप्रकृतिवृन्दानि चेमानि—हास्यादियुगल-
द्वयं नरकवर्जगतित्रिकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं
नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं खगतिद्वयं स्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकं चेति ॥५२६-५२७॥

णियमा ध्रुवगुणचत्ता णवरत्तेसदुगपणिदिपत्तेआ ।

बंधव व मिच्छयीणद्वितिगअणजिणपरधायऊसासा ॥५३६॥ (गीतिः)

वाऽणयर सरसगई णियमाणुणा-ऽणयरवेअणीआई ।

एव मणुयदुगस्स उ णवरं बंधव मणुयाउ ॥५३७॥

(प्रे०) “बंधव” इत्यादि, मनुष्यायुष्कवन्धको नरत्रिकान्तिकत्रिकदेवत्रिकाणि वैक्रियद्वि-
काहारकद्विकातपोद्योतस्थावरद्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमाधारणनामानि चेति द्वारिगतिप्रकृतीर्नैव
बध्नाति, मनुष्यायुष्केण महाभां प्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । “णियमा” इत्यादि, ज्ञानावरण-
पञ्चक दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानारणादिद्वादशरूपाया भयकुत्से नयनाम्नो ध्रुव-
न्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेन्मेकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीर्नैव द्विकैकारिकद्विकत्रमद्विकरूपचेन्द्रि-
यजातिप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमेन भावना कार्या, शेषाणां तु
मनुष्यायुष्कवन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । “व” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धविका-
ऽनन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामपराधातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो बध्नाति । “वा” इत्यादि, अन्य-
तरत्स्वमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । “णियमा” इत्यादि, उक्तान्यवेदनायादिप्रकृ-
तित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन बध्नाति, अत्र स्थलत्रयेऽपि भावना ध्रुववन्धिनीनां प्रथम-
नियमेन अन्यतरप्रकृतीनां चतुर्थनियमेन शेषाणां पुनस्तृतीयनियमस्याशैथिल्यार्थमव विधेया । ते चेमे
शेषप्रकृतित्राताः—वेदनीयद्विकं वेदत्रिकं हास्यादियुगलद्वयं मंहननपट्कं संस्थानपट्कं पर्याप्तापर्याप्त
द्विक स्वरवर्जस्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्विकञ्चेति । “एवं” इत्यादि, मनुष्यगतमनुष्या-
नुपूर्वीद्वयप्रधानसन्निकर्षो मनुष्यायुःप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । “णवरं” इत्यादिना विशेषमुपद-
र्शयति—मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति, स्वायुपस्त्वतीयादिभागेऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रमायुषो बध्यमानत्वात् ।
॥५३५ ६-७॥ अथ देवायुपस्तमभिदधाति-

देवाउगवधो यीणद्वियतिगमिच्छवारसकसाया ।

तित्थाहारदुगाणि व णियमा यीपुरिसवेअमणयर ॥५३८॥ (गीतिः)

सायरइहस्सियरध्रुवदेवविजवदुगपणिदिसुहखगई ।

परधूसासुहागिइतसदसगुच्चाणि ण उ सेसा ॥५३९॥

एमेव सुरदुगस्स उ णवर वा णिदुगसुराऊणि ।

णियमाऽणयर छ दुजुगलवेअणीअतिथिराइजुगलार्ण ॥५४०॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘देवाउगवधो’ इत्यादि, देवायुष्केनन्धकः स्यान्नर्द्धविकमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्ता
नुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायजिननामाहारकद्विकरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुव-
वन्धिनीनां द्वितीयनियमेन तथा जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन
भावना भाव्या । ‘णियमा’ इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतरवेदं नियमेन बध्नाति । तथा सात-
वेदनीयं हास्यरती ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्जलनचतुष्कं भयकुत्से नव-

ध्रुववन्धिनामानि अन्तरायपञ्चक चेति एकत्रिशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयः, देवद्विकं वैक्रियद्विकं पञ्चेन्द्रिय-
जातिः सुखगतिः पराघातोच्छ्वासनाम्नी समचतुरस्रसंस्थानं त्रसदशकमुच्चैर्गोत्रं चेति चतुःपञ्चाश-
त्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् तथा शेषप्रकृतीनां देवायुर्वन्धकस्य देव-
प्रायोग्यप्रकृतिस्थानवन्धकत्वेन देवायुर्वन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'ण उ' इत्यादि, उक्तशेष-
प्रकृतीर्नैव वध्नाति । ताश्चेमाः-असातवेदनीयपरतिशोकमोहनीये नपुंसकवेदो नरकतिर्यग्मनुष्यगतित्रय-
मकेन्द्रियादिजातिचतुष्कर्मौदारिकद्विकं संहननषट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वी-
त्रयं कुलगतिः आतपोद्योतस्थावरदशकं नीचैर्गोत्रं चेत्येकत्रिशदिति । 'एभेव' इत्यादि, देवगति-
देवानुपूर्वीप्रधानसन्निकर्षो देवायुर्वद् विज्ञेयः । 'णवर' मित्यादिना विशेषोऽभिधीयते-निद्राद्विकदेवायुः-
प्रकृतित्रयं विकल्पेन वध्नाति, तद्यथा-देवद्विकं निद्राद्विकवन्धविच्छेदादूर्ध्वमपि वध्यते, अतो देवद्विक-
वन्धको निद्राद्विक तद्वन्धस्थान यावदनवरतं वध्नाति, तदनु च नैव वध्नातीति कृत्वाऽत्र विकल्पेन
सन्निकर्षोऽभिहितः देवायुःसन्निकर्षस्य भावना प्राग्बत्कार्या । 'णियमा' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वये-
ऽन्यतरयुगलं वेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरयोरन्यतरां प्रकृतिं शुभाशुभयोरन्यतरां प्रकृतिं
यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन वध्नाति, देवद्विकवन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् ॥५३८ ३९-४०॥

अथ क्रमप्राप्तस्य नामकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्षस्यावसरः । तत्र प्रथमं गति-
नामकर्मणामभौ प्ररूपणीयस्तथापि तस्य तत्तदायुष्केण सममुक्तत्वादथ जातिनामकर्मणोऽवसरस्तत्रा-
दावेकेन्द्रियजातेस्तत्समत्वेन स्थावरनाम्नोऽपि सोऽभिधीयते

णियमेगिदियवंधी वंधइ ध्रुवणपुमतिरिदुगाणि तहा ।

ओरालहृडयावरदुहगाणादेयणीआणि ॥५४१॥

णियमाऽण्णयरा दुजुगलछवायराइ दुगवेअणीआणं ।

परधाऊसासायवदुगतिरियाऊणि व ण सेसा ॥५४२॥

एमेव यावरस्स य ॥

(प्रे०) 'णियमे' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनाम्नो वन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृति-
नपुंसकवेदतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरह्रंडकसंस्थानस्थावरदुर्मगानादेयनीचैर्गोत्ररूपाः पट्पञ्चाशत्प्रकृती-
र्नियमेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, वेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयवाद्दसूक्ष्मद्वयपर्याप्ताऽपर्या-
प्तद्वयप्रत्येकसाधारणद्वयस्थिराऽस्थिरद्वयशुभाशुभद्वययशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं
नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, अन्यतरप्रकृतीनां चतुर्थनियमप्रसरात्, शेषाणां
पुनरेकेन्द्रियजातिवन्धस्य तद्वन्धाविनाभावित्वात् । 'परधा' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासात्तपोद्योत-
तिर्यग्गायूरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, भावना पुनरिह तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशान्यां
यथासंभवं कर्तव्या । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव वध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्ना सहासां प्रकृ-
३० ख

अथ मिथ्यात्वमोहनीयस्य परस्थानसन्निकर्षं प्ररूपयति

बंधेह मिच्छबंधी णियमा छायालसेसधुवबंधी ।

वाऽऽजगज्जगायवदुगपरधाऊसासणामाणि ॥५२८॥

तित्योहारदुगाणि ण वा सधयणदुउवगसरखगई ।

अण्णयरा अवि बंधइ णियमाऽण्णा वेअलोआई ॥५२९॥

(प्रे०) “बंधेह” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतिबन्धकः शेषपट्चत्वारिंशद्भुवनन्धि-
प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, अत्र प्रथमनियमेन हेतुरधिगम्यः । “वा” इत्यादि, आयुष्कच-
तुष्काऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासनामानि विकल्पतो बध्नाति, तथाहि—आयुश्चतुष्कं मिथ्यात्वमो-
हनीयप्रकृतिबन्धकः स्वायुषस्तृतीयादिभागे कदाचिद् बध्नाति, तदितरकाले च नैव बध्नाति, आत-
पोद्योतपराधातोच्छ्वासनामान्यपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धावसरे नैव बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्ध-
काले च पराधातोच्छ्वासनाम्नी बध्नाति, पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले आतपनाम कश्चि-
द्बध्नाति, पर्याप्तैकेन्द्रियद्वीन्द्रियादिप्रकृतिबन्धकाले च कश्चिदुद्योतनाम बध्नाति, अतोऽत्रासां प्रकृ-
तीनां सन्निकर्षो विकल्पितः । “तित्या” इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति,
जिनस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वेनाहारकद्विकस्य संयमप्रत्ययिकत्वेन मिथ्यात्वमोहनीयेन सहास्य प्रकृति-
त्रयस्य बन्धविरोधात् । “वा” इत्यादि, अन्यतरत्संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोरन्यतरदङ्गो-
पाङ्गं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वर खगतिद्वयेऽन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्ध-
काले तासामवध्यमानत्वाद् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले च बध्यमानत्वात् । “णियमा” इत्यादि,
उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेन
माव्यः, ते चेमे शेषप्रकृतित्राताः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चक-
मौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति ।
॥५२८-२९॥

इदानीं नरकायुष्कस्य परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

णिरयाउं बधंतो णियमा बंधइ असायधुवबंधी ।

तह णपुमसोगअरई णिरयविउवदुगपरिणदिहुंढाणि ॥५३०॥ (गीतिः)

कुल्लगइपरधाऊसासतसचउगअथिरछक्कणीआणि ।

सेसा बधइ ण णिरयदुगस्स एव पर व णिरयाउ ॥५३१॥ (गीतिः)

(प्रे०) “णिरयाउं” इत्यादि, नरकायुर्बन्धकोऽसातवेदनीयसप्तचत्वारिंशद्भुवनन्धिनपुंसक-
वेदशोकाऽऽतितनरकद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिहुंढकसंस्थानाऽशुभविहायोगतिपराधातोच्छ्वास-
त्रसचतुष्काऽस्थिरपट्कनीचैर्गोत्ररूपा एकमसतिः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र भ्रुवाणां प्रथमनियम-
प्रसगात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । “सेसा” इत्यादि, उक्त-
शेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, शेषप्रकृतीनां बन्धस्य नरकायुषा सह बन्धविरोधात्, तावमेवाः शेषप्रकृतयः—

मातवेदनीयं हास्यगती स्त्रीपुरुषेद्वयं देवमनुष्यनिर्यग्गतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्क्रमौदारिक-
द्विक्रमाहागकद्विकं मंहननपट्कं प्रथमाङ्गिमस्थानवन्धकं नरकवर्जानुपूर्वीत्रिकं सुखगतिगतपोद्योतजिन-
नामानि स्थिरपट्कं स्थायप्रचतुष्क्रमुचैर्गोत्रमायुषिकं चेत्यष्टचत्वारिगदिति । “जिद्वय” इत्यादि,
नरकगतिनरकानुपूर्वीप्रधानमन्त्रिकर्षो नरकायुःप्रधानमन्त्रिकर्षवदस्ति । “पर” इत्यादिनाऽपवाद
उच्यते-नरकायुर्नरकद्विकवन्धको विकल्पेन वध्नाति, यतः स्थायुषस्तृतीयादिभागे कदाचित्तद् वध्यते
तदितरकाले च न ॥५३०-३१॥ अथ तिर्यगायुः स उच्यते

तिरियाउ वंवतो मिच्छत्तोरगुणगणामाणि ।

परधाऊसासायवदुगणामाणि य व वंधेइ ॥५३२॥

सेमधुववधितिरिदुगडरालणीणि वधए णियमा ।

ण जिणणिरचणरसुरतिगविज्जवाहारगडुगुप्पाणि ॥५३३॥

संधयणस्सरखगई वाऽणयरा सेसवेअणीआई ।

णियमा एमेव तिरियदुगस्स णवरं व तिरियाउ ॥५३४॥

(प्रे०) “तिरियाउ” इत्यादि, तिर्यगायुर्वन्धको मिच्छात्वमोहनीयौदारिकाङ्गोपाङ्गगणा
नोच्छ्रयमानपोद्योतरूपाः पट्प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, भावना पुनरेवम्-प्रथमगुणस्थानस्थितेन
तिर्यगायुर्वन्धकेन मिच्छात्वमोहनीयं वध्यते, द्वितीयगुणस्थानस्थितेन नैव वध्यत इतिकृत्वाऽत्र
विकल्पोऽभिहितः, प्रकृतशेषप्रकृतिपञ्चकस्य भावना तृतीयनियमस्य प्रथमद्वितीयतृतीयांशानुसारेण
कार्या । “सेस” इत्यादि, शेषपट्चत्वारिंशद्भुवनन्धितिर्यग्द्विकौदारिकशरीरगोत्ररूपाः
पञ्चाशत्प्रकृतीनियमेन वध्नाति, तत्र भुवणां प्रथमनियमप्रभगात्, शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृ-
तिवन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । “ण” इत्यादि, जिननामनरकत्रिकनरत्रिकदेवत्रिकश्रेक्रिय-
द्विकाहारकद्विकोचैर्गोत्ररूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नैव वध्नाति, आसां प्रकृतीनां वन्धस्य तिर्यगायुषा सह
विरुद्धत्वात् । “संधयणा” इत्यादि, अन्यतम मंहनन स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वयेऽन्यतरां
खगतिं विकल्पेन वध्नाति, हेतुत्र तृतीयनियमस्य प्रथमांशानुसारेण विज्ञेयः । “सेस” इत्यादि,
उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिव्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, इह चतुर्थनियमेन हेतु-
र्निमाव्यः, शेषप्रकृतिव्राताश्चमे-वेदनीयद्विकं जातिपञ्चकं सस्थानपट्कं स्वरवर्जसस्थावरनवकं
वेदत्रय हास्यादियुगलद्वयं चेति । “एमेव” इत्यादि, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीप्रधानमन्त्रिकर्ष-
स्तिर्यगायुःप्रधानमन्त्रिकर्षवद् भवति । “णवर” इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-तिर्यगायुर्विकल्पेन
वध्नाति, यतस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीवन्धकः स्थायुषस्तृतीयादिभाग एवायुर्वध्नाति, न तदितरकाले ।
॥५३२-३४॥ अधुना मनुष्यायुष्कस्य प्रकृत उच्यते

वधइ णराउवघी ण चेव निरयतिरिसुरतिगाणि तहा ।

विज्जवाहारायवथावरदुगचउजाइसाहारा ॥५३५॥

तीना बन्धस्य विगेधात् । ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयमायुस्त्रयं देवनरकमनुष्यगतित्रयं द्वीन्द्रियादि-
जातिचतुष्कर्मोदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विक्रमादारकद्विकं मंहननपट्कं प्रथमादिमस्थानपञ्चकं देवनरक-
मनुष्यानुपूर्वीत्रयं सुखगतिद्वयं जिननाम त्रयनाम सुभगनामादेवनाम स्परद्वयमुच्चैर्गोत्राच्चेति चत्वारिंश-
दिति । 'एवं' इत्यादि, अनेनैव प्रकारेण स्थावरनामप्रधानोऽपि मन्त्रिकर्षो बोध्यः, विशेषाभावादिति ।
॥५४१-४२॥ अथ द्वीन्द्रियादित्रयस्य परस्थानमन्त्रिकर्षो भण्यते ।

... .. णियमा खलु बधए विगलवधी ।

अण्णयरा सत्त जुगलचउपज्जाइजुगवेअणीआण ॥५४३॥ (गीति.)

णियमा धुववधिणपुमतिरियोरालतमजुगलहुडाणि ।

छेवट्ट पत्तेअ दुग्गाणादेयणीआणि ॥५४४॥

तिरियाउगअसुहुगइसरउज्जोअपरधायऊसासा ।

वा बधइ णो चिअ उण गुणयालोसाउ सेमाओ ॥५४५॥

(प्र०) 'णियमा' इत्यादि, द्वीन्द्रियादिजातित्रयेऽन्यतमं प्रकृतिं बध्नेन हात्पादियुगलद्वय-
पर्यासाऽपर्यासद्वयस्विराऽस्थिरद्वयशुभाशुमद्वययशःपर्यासयशःक्रीन्द्वयवेदनीयद्वयेष्वन्यतमं प्रकृति निय-
मेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन साधना भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, मन्त्रचत्वारिंशद्ब्रुवन्निप्रकृति-
नष्टमहवेदतिर्यग्दिशौदारिकद्विक्रमवाद्गण्डकमस्थानसेवार्तमंहननपट्येकनामदुर्भेगानादेऽनीचैर्गोत्र-
रूपाः पट्टिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसगात् शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृति-
बन्धस्य तद्वन्ध्याऽविनाभावित्वात् । 'तिरिया' इत्यादि, निर्यगायुष्काऽशुमसुखगतिदुःस्वरोद्योत-
पराधातोन्ध्रवामनामानि विकल्पेन बध्नाति, अत्र तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्या यथा
संभव साधना साधनीया । 'णो चिअ' इत्यादि, उक्तशेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति,
विगेधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यनरकगतित्रयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाति-
द्वयं द्वीन्द्रियादित्रयेऽन्यतमजानिद्वयं वैक्रियद्विक्रमादारकद्विकं प्रथमादिमहननपञ्चकं प्रथमादि
मस्थानपञ्चकं देवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयं सुखगतिः सुभगत्रिक स्थावरसूक्ष्मनाधारणत्रयमातपनाम
जिननामोच्चैर्गोत्रमायुस्त्रिकं चति ॥५४३-४-५॥

अथ पञ्चेन्द्रियजानिः परस्थानमन्त्रिकर्षः कथ्यते

व पणिवियवधी पणणिदावारसकसायचउआऊ ।

मिच्छाहारगदुगजिणपरधायसासउज्जोआ ॥५४६॥

सेसा धुववधी तसदुगपत्तेआणि बधए णियमा ।

चउज्जाइआयवसुहमथावरसाहारणाणि ण उ ॥५४७॥

सधयणस्सरखगई वा अण्णयरा वि बधए णियमा ।

सोलस उ वेअणीअप्पभिई सेसा उ अण्णयरा ॥५४८॥

(प्र०) 'व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकः स्थावनद्वित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धिप्रसृति-

आदशरूपायाधुक्चतुष्कमिध्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामपराधातोच्छ्रामोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमस्य द्वितीयतृतीयांशाभ्यां यथायोगं हेतुर्विभाव्यः । 'सेसा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्के संञ्जलनचतुष्कमवकुत्से नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनविंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीस्त्रयमादरप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमेन शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'चउ' इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कापसृक्षमस्थायरसाधारणानि नैव बध्नाति, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्ना सहास्रं प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतरमंहननमन्यतरस्वरमन्यतरां च स्वगतिं विकल्पेन बध्नाति । तदेवम्-देवनरकगतिप्रायोग्यबन्धकः बध्ननं न बध्नाति, तदन्यः पुनर्बध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकः स्वरखगतिनाम्नी न बध्नाति, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकस्तु बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतराः षोडशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरिह भाव्यः । तानि चेमानि शेषप्रकृतिवृन्दानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानपदकमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्ताऽपर्याप्ते स्थिरास्थिरे शुभाशुमे सुभग दुर्भगे आद्यानादेये यज्ञःकीर्त्यशःकीर्ती गोत्रद्वयं चेति ॥५४६ ७ ८॥

अधुनौदारिकगरीरनाम्नः मांऽभिधीयते -

त्रयद्वयं व उरलवधो थोणद्वित्तिगाणमिच्छआउदुगं ।

ओरालुवगजिणपरघाऊमासायवदुगाणि ॥५४९॥

णियमाऽण्णा ध्रुवववी आहारदुगविउवदुगाणि ण उ ।

सधयणस्सरखगई वा अणायरा वि णियमाऽण्णा ॥५५०॥

(प्रे०) 'बध्द' इत्यादि, औदारिकगरीरनाम्नो बन्धकः स्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिध्यात्वमोहनीयनिर्यग्मनुष्यागुष्कद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गजिननामपराधातोच्छ्रामातपोद्योतरूपा अष्टादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, भावनिका पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां यथासंभव तृतीयनियमस्यांशैस्त्रयेया । 'णियमा' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायमयजुगुप्सानवध्रुववन्धिनामप्रकृत्यन्तरायपञ्चकरूपा एकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रमरात् । 'आहार' इत्यादि, आहारकद्विकदेवत्रिकनरकत्रिकवैक्रियद्विकरूपा दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, औदारिकशरीरनाम्ना सहास्रां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां स्वगतिं च विकल्पेन बध्नाति, तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन भावनाऽत्र भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृति नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरिह भाव्यः, तानि चेमानि शेष-

प्रकृतिवृन्दानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्विकं जातिपञ्चकं संस्थानपट्कं तिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्विकं स्वरवर्जत्रसंस्थावर।दियुगलनवकं गोत्रद्विकं चेति ॥५४९-५०॥

अथ वैक्रियद्विकस्य परस्थानसन्निकर्ष उच्यते

व विउव्वियदुगवघी वधइ पणणिद्वारसकसाया ।

मिच्छणिरयदेवाउगतित्थाहारदुगणामाणि ॥५१॥

वधइ ण चेव तिरिणरतिगजाइचउगुरलायवदुगाणि ।

सधयणछग मज्झिमआगिइथावरचउवकाणि ॥५२॥

णियमाऽण्णधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउवकाणि ।

णियमा पणरस सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥५३॥

(प्रे०) 'व' इत्यादि, वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोर्वन्धकः स्त्यानद्वित्रिक्रनिद्राद्विकाऽ-
नन्तानुबन्धिप्रभृतिदशकपायमिथ्यात्वमोहनीयनरकायुर्देवायुस्तीर्थकृन्नामाहारकद्विकरूपास्त्रयोविंश-
तिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवबन्धिनीनां द्वितीयनियमेन शेषाणां तु तृतीयनियमांशानुसारेण
हेतुरत्र विभावनीयः । 'ण चेव' इत्यादि, तिर्यक्त्रिक्रमनुष्यत्रिकजातिचतुष्कां दारिकद्विकातपोद्योत-
सदननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्थावरचतुष्करूपा अष्टाविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, वैक्रियद्विकेन
महासां बन्धस्य विरोधात्, निरोधश्चात्र देवायुःमन्निकर्षानुसारेण समधिगम्यः । 'णियमा'
इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्कभयजुग्मपानवध्रुवबन्धिनामप्रकृत्य-
न्तरायपञ्चकरूपा एकोनत्रिंशत्शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिः पराधातोच्छ्वासनाम्नी त्रम-
चतुष्कं चेति षट्त्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसारात्, शेषाणां पुनः
प्रधानीकृतप्रकृतीर्बन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतित्रातेषु
प्रत्येकं पञ्चदशाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसारात् । ते चेमे शेषप्रकृतित्राताः-
वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं देवनरकगतिद्वयं समचतुरस्रहुण्डकसंस्थानद्वयं खगतिद्वयं
देवनरकानुपूर्वीद्वयं स्थिरास्थिरादियुगलपट्कं गोत्रद्वयं चेति ॥५१-२३॥

साम्प्रतमाहारकशरीराङ्गोपाङ्गयोर्भण्यते-

आहारगतलुबन्धी णियमा धुवऊणतीससायपुमा ।

हस्सरइसुरविउवदुगपणिदिआहाएवगाणि ॥५४॥

तह सुखगइआगिइपरधाऊसासतसदसगउच्चाणि ।

णिद्वुगजिणसुराऊ वाऽण्णा णेव उवगस्स ॥५५॥

(प्रे०) "आहार" इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतु-
ष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नत्रध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्र-
कृतीः सातवेदनीयपुरुषवेदहास्यरतिसुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकाङ्गोपाङ्गनामानि
सुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराधातोच्छ्वासत्रसदशकोर्चगोत्रप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां

प्रथमनियमप्रसारात्, शेषाणां पुनराहारकशरीरनामबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । “णिह”
इत्यादि, निद्राद्विकजिननामदेवायुःप्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । भावना पुनरिहैवम्-आहारक-
शरीरनाम्नो बन्धो निद्राद्विकबन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्वमपि जायते, अतो निद्राद्विकं स्वबन्धस्थान याव-
दनवरतमाहारकशरीरनामबन्धको बध्नाति तदनन्तरं तु नैव बध्नातीति हेतोरत्र बन्धो विकल्पितः ।
जिननामदेवायुर्बन्धः केनचिदेव क्रियते अतोऽनयोर्बन्धो विकल्पितः । “ऽण्णा” इत्यादि,
अभिहितेतरप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । स्थानद्वित्रिकमसातवेदनीयं शोकारती मिथ्यात्वमोह-
नीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायाः स्त्रीनपुमकवेदद्वयं नरकतिर्यग्मनुष्यायुष्कत्रयं नरकतिर्यग्मनु-
ष्यगतित्रयमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं नरकतिर्यग्म-
नुष्यानुपूर्वीत्रयं कुलगतः स्थानदशकमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकषष्टिरिति ॥५५४-५५॥

अथ नवध्रुवबन्धिनाम्नां परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

एगध्रुवणामवधौ वाउगपणणिह्वारसकसाया ।
मिच्छाहारगदुगजिणपरधाऊसासआयवदुगाणि ॥५५६॥ (गीति०)
रिणयमाऽण्णा ध्रुवबंधौ वा सधयणदुउवगसरखगई ।
अण्णयरा अवि बंधइ रिणयमाऽण्णा वेअणीआई ५५७॥

(प्रे०) “एगध्रुव” इत्यादि, नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिष्वेकतरां प्रकृतिं बध्नन्नायुष्कचतु-
ष्कस्थानद्वित्रिकनिद्राद्विकोऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननाम-
पराधातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा नवविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, हेतुस्तु द्वितीयतृतीयनियमानुमा-
रेण योज्यः । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति प्रथमनियमेन
हेतुत्र विज्ञेयः, ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकृत्सेऽन्यतरा
नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिध्रुवैः प्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टाविंशतिरिति । ‘चा’ इत्यादि,
अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत् स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति, तृतीयनि-
यमप्रथमांशस्यात्र प्रसारात् । ‘णियमा’ इत्यादि, भणितशेषवेदनीयादिप्रकृतिष्वन्त्यतरप्रकृती-
र्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमस्यात्र प्रसारात् । तानि चेमानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेद-
त्रयं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं स्वरवर्जसंस्था-
वरादियुगलनवक गोत्रद्विकं चेति ॥५५६ ५७॥

उदानामीदारिकाङ्गोपाङ्गनामः स कथ्यते

ओरालुवगवधौ बंधइ ण उ णिरयसुरतिगेगिदी ।
विउवाहारदुगायन्यावरसाहारसुहमाणि ॥५५८॥
वा बंधइ सरखगई अण्णयरा अवि व योरुगिद्धितिग ।
अणमिच्छआउदुगजिणपरधाऊसासउज्जोआ ॥५५९॥

णियमाऽण्णा धुवबधी तहुरलपत्तेअवायरत्तमाणि ।

बधइ णियमा मेमा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६०॥

(प्रे०) "ओरालु" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धको नरकत्रिकदेवत्रिकैकेन्द्रिय-जातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकातपस्थावरमाध्यायसूक्ष्मनामरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तेन महामर्षं बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगलं च विकल्पेन बध्नाति । 'अवि' इत्यादि, स्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयतियमनुप्यायुर्द्वयजिननाम पराघातोच्छ्वासोद्योतनामानि विकल्पेन बध्नाति, उभयत्र हेतुस्थानमभवं द्वितीयतृतीयनियमानुमारेण समधिगम्यः । "णियमा" इत्यादि, उदितशेषध्वनिप्रकृतीरौदारिकशरीरव्यप्रत्येकवादरनामानि च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनिर्देशप्रमरात् शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चक दर्शनावरणचतुष्क निद्राद्विक्रमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपाया भयकुत्से नवध्रुवबन्धिनामान्यन्तरायपञ्चकं चैत्येकोनचत्वारिंशदिति । 'बधइ' इत्यादि, भणितशेषवेदनीयादिप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थनियमेन भावनीयः । ते चेमे शेषप्रकृतित्राताः-वेदनीयद्वय हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय तिर्यग्मनुष्यगतिद्वय द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं सहननपट्क संस्थानपट्कमानुपूर्वीद्वयं पर्याप्तापर्याप्तद्विक स्ववर्जस्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति ॥५५८ ६०॥

अथ बन्धर्पभनाराचसहनननाम्नस्तत्साम्येन द्वितीयादिसहननमस्थानचतुष्कयोरपि स उपदश्यते ।

व वइरबधी मिच्छऽणायीणद्धितिगाउदुगजिणुज्जोआ ।

णियमाऽण्णधुवपणिदियपरघूसामुरलजुगलत्तसचउगं ॥५६१॥ (जीनि)

विउवडगाहारदुगायवथावरजाइउगपडिवक्ख ।

ण उ बधइ णियमाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६२॥

वइरव्व मज्झिमाण चउसधयणागिईण होइ पर ।

ण जिण बधइ णियमा थीणद्धितिगाणचउगाणि ॥५६३॥

(प्रे०) 'व' इत्यादि, बन्धर्पभनाराचसहनननाम्नो बन्धकः मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतुष्कस्त्यानद्वित्रिकनिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयजिननामोद्योतरूपा द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । भावना द्वितीयतृतीयनियमानुमारेण भाव्या । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रमरात्, शेषाणां प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविनाभावित्वात् । 'विउव' इत्यादि, देवत्रिकनरकत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकातपस्थावरचतुष्कैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कद्वितीयादिसहननपञ्चकूपारचतुर्विंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, बन्धर्पभनाराचसहनननाम्ना महासां प्रकृतीनां बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, कथितशेषवेदनीया-

दिप्रकृतिमसूत्रेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना कार्या । ते चेमे प्रकृ-
तिसमूहाः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्या-
नुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिराऽस्थिरादियुगलपट्कं गोत्रद्वयं चेति । 'वधइ' इत्यादि, मध्यमसंहनन-
चतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्कयोः प्राधान्येन सन्निकर्षो बन्धपेननाराचसंहननप्रधानसन्निकर्षपञ्चैः ।
'परं' इत्यादिना विशेष उपदर्श्यते—जिननाम नैव बध्नाति, एतच्चतुष्काभ्यां जिननाम्नो बन्धस्य विरो-
धात्, विरोधश्च जिननाम्नो बन्धस्य तुर्यादिगुणस्थानकेषु सद्भावात् द्वितीयगुणस्थानकान्ते च प्रकृत-
संहननसंस्थानचतुष्कद्वयस्य बन्धविच्छेदादवसेयः । 'णियमा' इत्यादि, स्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुव-
न्धिचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् ॥५६१-२३॥

इदानीं सेवार्तसंहननस्य परस्थानमन्निकर्षमाह

छेवहुं बंधतो अण्णयरा बंधए व सरखगई ।
बधइ व तिरिणराउगपरधाऊसासउज्जोआ ॥५६४॥
बधइ ण गिरयसुरतिगविउवाहारदुगतित्यपडिववला ।
एगिदिवायवसुहमथावरसाहारणाइ च ॥५६५॥
णियमा धुवत्रधिउरलदुगपत्तेयतसवायराइ तु ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥५६६॥

(प्र०) 'छेवहुं' इत्यादि, सेवार्तसंहननं बध्नुं स्वरद्वयेऽन्यतरत्स्वरं खगतिद्वये चान्यतरां
खगतिं विकल्पतो बध्नाति । 'बधइ' इत्यादि, तिर्यग्मनराधुर्द्वयपराधातोच्छ्वासोद्योतरूपाः पञ्च-
प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, तृतीयनियमाशैर्यथायोगं भावना विधेया । 'बंधइ' इत्यादि, नरक-
त्रिकसुरत्रिकैकक्रियद्विकहारकद्विकजिननामप्रथमादिसंहननपञ्चकैकेन्द्रियजात्यातपसूक्ष्मस्थावरसाधारण-
रूपा एकविंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति, सेवार्तसंहननेन सहामां बन्धस्य विरोधित्वात् । 'णियमा'
इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकप्रत्येकमवादनानामानि चेति द्विपञ्चाशत्प्रकृती-
र्नियमेन बध्नाति, तत्र भुवणां प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धावि-
नाभात् । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितेतरवेदनीयादिप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन
बध्नाति चतुर्थनियमप्रसरात्, इमे च ते शेषप्रकृतित्राताः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं
तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं पर्याप्तापर्याप्ते
स्थिराऽस्थिरे शुभाशुभे सुमगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्यशःकीर्ती गोत्रद्वयं चेति ॥५६४-५६६॥

सम्प्रति समचतुरस्रसंस्थानस्य तत्समतया सुखगतिसुमगत्रिकप्रकृतीनां च परस्थानसंनिकर्षः
प्रकथ्यते

पढमागिइवधी वा बधइ पणणिइवरसकसाया ।
मिच्छतिरिणरसुराउगतित्थाहारदुगउज्जोआ ॥५६७॥

णियमाऽण्णधुवर्षणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।

णायवपडिवक्खणिखतिगथावरजाइचउगाणि ॥५६८॥

सधयण वाऽण्णयर णियमाऽण्णयरऽण्णवेअणीआई ।

एमेव सण्णिघात्तो पसत्थखगइसुहगतिगाणं ॥५६९॥

(प्रे०) 'पढमा' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थाननाम्नो बन्धकः निद्राद्विकम्पानर्द्धित्रिकाऽनन्ता-
नुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यगाधुर्नरायुःसुरायुजिननामाहारकद्विकोद्योतनामरूपाः
पञ्चविंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, दर्शितद्वितीयतृतीयनियमानुसारेण भावना कार्या । 'णियमा'
इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्रामत्रयचतुष्करूपाः पट्
त्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसगात् शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्ध-
स्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं
मञ्जलनचतुष्कं भयकुत्से नवनाम्नो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'णायव'
इत्यादि, आतपनामद्वितीयादिसंस्थानपञ्चकनरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव
बध्नाति, समचतुरस्रसंस्थानप्रकृत्या सहासां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । 'संघयणं' इत्यादि, अन्यतम
सहननं विकल्पेन बध्नाति तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाले तस्य बध्यमानत्वाद् देवप्रायोग्य-
प्रकृतिबन्धकाले चाऽवध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतिममुदायेषु प्रत्येक-
मन्यतरां प्रकृतिं नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसगात्, ते चेमे शेषप्रकृतिसमुदायाः—वेदनीयद्विकं-
हस्यादिधुगलद्वय वेदत्रय गतित्रयमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय खगतिद्वयं नर-
कवर्जानुपूर्वीत्रयं स्थिरपट्कमस्थिरपट्कं गोत्रद्वयं चेति । 'एमेव' इत्यादि, सुखगतिमुभयसुस्वरादेय-
नाम्ना प्राधान्येन मन्त्रिकर्षः समचतुरस्रसंस्थानवदवमातव्यः । नवरं स्वप्रतिपक्षप्रकृतीनामबन्धस्तथा
संस्थानपट्केऽन्यतमसंस्थानस्य नियमेन बन्धो वाच्यः ॥५६७-८९॥

अथ हुण्डकसंस्थाननाम्नः परस्थानमन्त्रिकर्षमावेदयितुमाह

हुण्डकबधो वधइ णियमा धुवबंधिसत्तचत्ताओ ।

वधइ व आउतिगपरघाऊसासायवडुगाणि ॥५७०॥

देवतिगाहारगडुगजिणपडिवक्खला ण वधएऽण्णयर ।

सरसधयणउवगखगई व णियमाऽण्णवेअणीआई ॥५७१॥ (गीति)

(प्रे०) 'हुण्डका' इत्यादि, हुण्डकसंस्थानबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन
बध्नाति, प्रथमनियमप्रसगात् । 'वधइ व' इत्यादि, नरकतिर्यग्मनुष्यायुष्मत्रयपराघातोच्छ्रवासातपो-
द्योतरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, हेतुरिह तृतीयनियमानुसारेण विभावनीयः । 'देव' इत्यादि,
देवायुर्देवगतिदेवानुपूर्वीरूपं देवत्रिकमाहारकद्विकं जिननाम हुण्डकसंस्थानप्रतिपक्षभूताः प्रथमादिपञ्च-
संस्थानप्रकृतयश्चेत्येकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, हुण्डकसंस्थाननाम्ना सहासां बन्धस्य विरोधात् ।

‘ऽपणधरा’ इत्यादि, अन्यतरस्वरमन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरां च खगति विकल्पतो वध्नाति, एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकालेऽवध्यमानत्वात् द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यबन्धकाले च वध्यमानत्वात् । ‘णियमा’ इत्यादि उक्तशेषप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरप्रकृतिं नियमेन वध्नाति, हेतुरत्र चतुर्थ-नियमेनाऽवसेयः । ते चेमे शेषप्रकृतित्राताः—वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं देवगतिवर्जगति-त्रयं जातिपञ्चकं शरीरद्वयमानुष्यत्रयं स्वरवर्जत्रयसंस्थावरादियुगलनवकं गोत्रद्वयं चेति ॥५७० ७१॥

अथाऽशुभखगतिनामस्तत्समत्वेन दुःस्वरनामनाश्च परस्थानसन्निकर्षः प्ररूप्यते

अपसत्थखगद्वघो ण चेव बंधेइ सुरतिगेगिदी ।
आहारदुगजिणायवथावरचउगसुहखगईओ ॥५७२॥
मिच्छत्तुजोअणिरयतिरियणराऊ व बंधए णियमा ।
छायालसेसधुवपरधाऊसासतसचउगाणि ॥५७३॥
सधयण वाऽण्णयर वधइ अण्णयरवेअणोआई ।
सेसा णियमा वधइ विण्णेयो दुस्सरस्सेव ॥५७४॥

(प्रे०) ‘अपसत्थ’ इत्यादि, अप्रशस्तेविहायोगतिनाम्नो बन्धको देवत्रिकैकेन्द्रियजातिनामा-हारकद्विकजिननामातपस्थावरचतुष्कसुखगतिरूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्नैव वध्नाति, कुखगतिनाम्ना सहासां बन्धस्य विरोधात् । ‘मिच्छत्तु’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयोद्योतनरकतिर्यग्मतुष्यायुष्कत्रयरूपाः पञ्च-प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, तत्र मिथ्यात्वस्य द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमस्य द्वितीयांशेन भावना कार्या । ‘णियमा’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्चत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतीः पराघातो-च्छ्वासत्रयचतुष्करूपाः पट्प्रकृतीश्च नियमतया वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसारात्, शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । ‘संधयणं’ इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पतो वध्नाति, यतो नरकप्रा-योग्यबन्धकः संहननं न वध्नाति तदितरगतबन्धकस्तु तद् वध्नाति । ‘अपणधर’ इत्यादि, उक्तशेष-वेदनीयादिप्रकृतित्रातेषु प्रत्येकमन्यतरां प्रकृतिं नियमतो वध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुरत्र ज्ञेयः । ते चेमे प्रकृतित्राताः—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं देववर्जगतित्रयमानुष्यत्रयमौदारिक-वैक्रियशरीरद्वयं तदङ्गोपाङ्गद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कं संस्थानपट्कं स्थिरास्थिरादियुगलपट्कं गोत्र-द्वयं चेति । ‘विण्णेया’ इत्यादि, दुःस्वरनामप्रधानसन्निकर्षोऽशुभखगतिवद् विज्ञेयः ॥५७२-३-४॥

अधुना पराघातनामस्तत्समतया पर्याप्तोच्छ्वासनामनाश्च परस्थानसन्निकर्षः प्रोच्यते

परधायं वधतो वा वधइ मिच्छवारसकसाया ।
पणणिदाचउआउगतित्याहारायवदुगाणि ॥५७५॥
बंधइ ण अपज्जत्तं णियमासेसधुवपज्जऊसासा ।
दुउवंगसधयणसरखगई बंधइ व अण्णयरा ॥५७६॥

वधइ णियमाऽद्वारस सेखी अण्णयरवेअणीआई ।

एमेव सण्णियासो पञ्जत्तूसासणामाण ॥५७७॥

(प्रे०) 'परधायं' इत्यादि, पराघातनाम वधन् मिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वा-
दशकपायाः स्त्यानर्द्धिन्निकनिद्राद्विकायुष्कचतुष्कं जिननामाहारकद्विकातपोद्योतनामानि चेति सप्त-
विंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो वध्नाति, घटना तु द्वितीयतृतीयनियमानुभारतः कार्या । 'बंधइ' इत्यादि,
अपर्याप्तनाम नैव वध्नाति, विरोधान्, विरोधश्च पराघातनाम्ना सह पर्याप्तनाम्न एव वध्यमान-
त्वादवसेयः । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीः पर्याप्तोच्छ्वापनाम्नी च नियमेन
वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रमगात् पराधातोच्छ्वापयोश्च प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्धा-
विनाभावित्वात्, तादृचेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वरनचतुष्कं मयकुत्से-
नामनवध्रुवबन्धिन्योऽन्तरायपञ्चकञ्चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'दुडवंग' इत्यादि, औदारिकवैक्रि-
याङ्गोपाङ्गयोरन्यतरद्वयोपाङ्गमन्यतमसंहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगति च विकल्पतो वध्नाति,
तृतीयनियमानुभारेणात्र भावना स्वयं परिभाषनीया । 'बंधइ' इत्यादि, भाषितशेषवेदनीयादि-
प्रकृतिवृन्देषु प्रत्येकमन्यतरा अष्टादशप्रकृतीनियमेन वध्नाति, चतुर्थनियमेन भावना भाषयितव्या ।
तानि चेमानि—वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं जाति-
पञ्चकं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्ताऽपर्याप्तस्वरवर्जसंस्थावगादियुगलाष्टक गोत्रद्वयं चेति ।
'एमेव' इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वापनामप्रधानसन्निकर्षः पराघातप्रधानसन्निकर्षश्च विज्ञातव्यः
॥५७५-६-७॥ अथाऽऽतपनाम्नः स उच्यते

धुवणपुमेगिदियुरलतिरिडुगडुंडपरघायऊसाता ।

तह वायरतिगथावरदुहगाणादेयणीआणि ॥५७८॥

णियमाऽऽयवबंधी तिरियाडं बंधइ व छ णियमाऽण्णयरा ।

जुगलदुगवेअणीअतिथिराडुगुगण ण उ सेसा ॥५७९॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, आतपनाम्नो बन्धकः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो नपुंसकवेदै-
केन्द्रियजात्यौदारिकशरीरनामतिर्यग्द्विकनृण्डकभ्रंस्थानपराघातोच्छ्वासवाद्भ्रिकस्थायरदुर्भगानादेय-
नीचैर्गोत्ररूपाः पञ्चदशप्रकृतयश्चेति द्वापष्टिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रमगात्
शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकत्वेन प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्व-
न्धाऽविनाभावित्वात् । 'तिरियाडं' इत्यादि, तिर्यगायुर्विकल्पतो वध्नाति । 'छ' इत्यादि,
हास्यरतिशोकारतियुगलयोरन्यतरद् युगलमन्यतरद् वेदनीय स्थिरास्थिरयोरन्यतरां शुभाशुभयोर-
न्यतरां यशःकीर्त्यशःकीर्त्योरन्यतरां प्रकृति चेति पञ्चन्यतरप्रकृतीनियमेन वध्नाति, चतुर्थनिय-
मेन भावना ज्ञातव्या । 'ण उ' इत्यादि, भणितशेषप्रकृतीर्नैव वध्नाति, आतपनाम्ना सह शेषप्रकृ-
तीना बन्धविरोधात् । तादृचेमाः शेषप्रकृतयः स्त्रीपुरुषवेदद्वयं, देवनरकमनुष्यत्रिक्रयं द्वीन्द्रियादि-

जातिचतुष्कं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं मंहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं स्वगति-
द्वय त्रयमुभयत्रिकनामानि भूक्ष्ममयपरिससवारणदुःस्वरनामानि उद्योतनाम जिननाम उच्चैर्गोत्रं चेति
चतुश्चत्वारिणदिति ॥५७८९॥

अधुनोद्योतनाम्नः परस्थानसन्निकर्षोऽभिधीयते-

उज्जोअं बंधतो वधइ ण उ णिरयमणुयदेवतिगें ।
तह विजेवाहारगदुगसुहमतिगायवजिणुच्चाणि ॥५८०॥
सधयणस्सरखगई वाऽण्णयरा वि शियमा छवत्तधुवा ।
तिरिदुगुरलवायरतिगपरवाऊसासणोआणि ॥५८१॥
वधइ वा मिच्छत्त ओरालियुवगतिरियाऊ ।
वधइ विवमा सेसा अण्णयरा वेअणीयई ॥५८२॥ (उपगोतिः)

(प्रे०) “उज्जोअ” इत्यादि, नरकत्रिकं मनुष्यत्रिकं देवत्रिकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं
भूक्ष्मत्रिकमातपनाम जिननामोच्चैर्गोत्रं चेत्येकोनविंशतिप्रकृतीर्नैव वध्नाति, यत उद्योतनाम्ना सहामां
प्रकृतीनां बन्धो विरुद्धो वर्तते । “संघयण” इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरत्स्वरमन्यतरां
स्वगतिं च विकल्पेन वध्नाति, तृतीयनियमानुसारेणह भावना भाव्या । “णियमा” इत्यादि,
मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्क्यन्वारिणद्भ्रुववन्धिप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकौदारिकगरीरनामवाटरत्रिकपराधातो-
च्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियम-
प्रसारात्, शेषाणां पुनः प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धस्य तद्वन्धाविनाभावित्वात् । “वधइ” इत्यादि,
मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकाङ्गोपाङ्गतिर्यग्गायुःप्रकृतित्रयं विकल्पतया वध्नाति, भावना मिथ्यात्वम्य
द्वितीयनियमानुसारेण शेषद्वयोश्च तृतीयनियमानुसारेण स्वयमवधेया । “णियमा” इत्यादि,
उक्तशेषवेदनीयादिप्रकृतित्रयेषु प्रत्येकमन्यतराः प्रकृतीर्नियमतो वध्नाति, चतुर्थनियमप्रसारात् ।
तानि चेमानि शेषप्रकृतित्रयजानि-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं जातिपञ्चकसंस्थानपट्कं
त्रयस्थावरद्वयं स्वरवर्जस्थिरादियुगलपञ्चकं चेति ॥५८०-१-२॥

सम्प्रति जिननाम्नः सौऽभिधीयते

जिणवधो णियमा गुणतोसधुवपुरिससुहागिइपणिदी ।
परधूसारलसचउगसुखगइसुहगतिगउच्चाणि ॥५८३॥
णियमाऽअयरा दस जुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाण ।
सुरणरगइअणुपुवो उरलविउवदेहुवगाण । ५८४॥
मज्झइठुककाया तह णिदाहाराउजुगलवइराणि ।
वा वंधइ ण उ वंधइ सेसाओ एगचत्ताओ ॥५८५॥

(प्रे०) “जिण” इत्यादि, जिननामवन्धविधायी एकोनविंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेद-
समचतुस्संस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रयचतुष्कसुखगतिमुभयसुम्भरादेयोच्चैर्गोत्रप्रकृत -

यश्चेति सम्मीलितास्त्रयश्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतबन्धकस्य सम्यग्दृष्टित्वेन जिन-
नाम्नो बन्धविच्छेदं यावदासां प्रकृतीनां निरन्तर बध्यमानत्वात् । ‘णियमा’ इत्यादि, हास्यादि-
युगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरयोरन्यतरां शुभाशुभयोरन्यतरा यशःकीर्त्ययशः
कीर्त्योरन्यतरां सुरमनुष्यगत्योरन्यतरां सुरनरानुर्वीद्वयेऽन्यतरामौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरामौ-
दारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गयोरन्यतरां च प्रकृतिं चेति दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ‘मज्झसङ्कसाया’
इत्यादि, अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणचतुष्के निद्राद्विकारहारकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयचर्पभनाराचसह-
ननप्रकृतिसप्तकं च विकल्पतो बध्नाति, ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयनियमानुसारेण शेषाणां तृतीय-
नियमानुसारेण भावना कार्या । ‘ण उ’ इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, जिननाम्ना सह
शेषप्रकृतीनां बन्धविरोधात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्यानद्वित्रिकं मिध्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धि
चतुष्कं स्त्रीनपुंसकवेदौ नरकत्रिकं त्रिकत्रिकमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं द्वितीयादिसंहननपञ्चकं द्वितीया
दिमंस्थानपञ्चकं कुलगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनाग्नी नीचैर्गोत्रं चेत्येकचत्वारिंशत् ।
॥५८३-४५॥ साम्प्रतं त्रसनाम्नः प्रकृतसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

तसंबंधो बधइ व पणणिद्वारसकसायचउआऊ ।

मिच्छाहारगदुगजिणपरधाऊसासउण्णोआ ॥५८६॥

णियमा ध्रुवबधीओ सेसा पत्तेअबायराइ च ।

णेगिदिययावरदुगआयवसाहारणामाणि ॥५८७॥

सधयणस्सरखगई अण्णयरा अवि व बधए णियमा ।

सत्तर अण्णयराओ सेसाओ वेअणीयाई ॥५८८॥

(प्रे०) ‘तसंबंधो’ इत्यादि, त्रसनाम्नो बन्धकः स्त्यानद्वित्रिकनिद्राद्विकानन्तानुबन्धि-
प्रमृतिद्वादशकपायायुश्चतुष्कमिध्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामपरीघातोच्छ्वासोद्योतरूपा अष्टाविं-
शतिप्रकृतीः स्याद् बध्नाति, भावना पुनरिह ध्रुवाणां द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमेन म-
धिगम्या । ‘णियमा’ इत्यादि, उक्तशेषैकोनविंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतीः प्रत्येकवादरनाम्नी च निय-
मेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात्, शेषाणां तु प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्बन्धाविना-
भावित्वात् । ‘णेगिदिय’ इत्यादि, एकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मांतपसाधारणनामानि नैव बध्नाति,
त्रसनाम्ना सहासां प्रकृतीनामेकेन्द्रियप्रायोग्यत्वेन बन्धविरोधात् । ‘संघयण’ इत्यादि, अन्यतमं-
संहननमन्यतरत् स्वरमन्यतरां खगति च स्याद् बध्नाति, भावना तृतीयनियमानुसारेण कार्या ।
‘णियमा’ इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवृन्देऽन्यतरवेदनीयादिसप्तदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थ-
नियमप्रसरात् । तानि चेमानि प्रकृतिवृन्दानि—वेदनीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रय गतिचतुष्कं
द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकवैक्रियशरीरद्वयं तदङ्गोपाङ्गद्वयं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं पर्याप्त-
पर्याप्तद्वयं स्वरवर्जस्थिरादियुगलपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति ॥५८६-७८॥

अथ वादरनाम्नः स उच्यते-

चायरवधी वा पणणिद्धारसकसायचउआऊ ।

मिच्छाहारगदुगजिणपरघाऊसासआयवदुगाणि ॥५८९॥ (गीति.)

णियमाऽण्णा घुववधी सुहम ण उ वंधए व अण्णयरा ।

सययणउवगस्सरखगई णियमाऽण्णवेअणोआई ॥५९०॥ (गीतिः)

पत्तेअस्सेव ।

(प्रे०) “चायर” इत्यादि, वादरनाम्नो बन्धकः स्त्यानर्द्धिद्विकं निद्राद्विकमनेन्तानुबन्धि-
प्रभृतिद्वादशकपाया आयुष्कचतुष्कं मिथ्यात्वमोहनीयमाहारकद्विकं जिननाम पराघातोच्छ्वासनाम्नी
धातपोद्योतनामी चेत्त्येकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पतो वध्नाति, भावना तत्र यथासंभवं द्वितीयतृतीय-
नियमानुसारेण कार्या । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति,
प्रथमनियमप्रसारात् । “सुहम” इत्यादि, सूक्ष्मनाम नैव वध्नाति, विरोधात् । ‘व’ इत्यादि,
अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्त्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पतो वध्नाति । तृतीयनिय-
मानुसारेण भावनात्र समधिगम्या । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन
वध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरादिति । ताश्चेमा अन्यतरप्रकृतयः-अन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वये-
ऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्तशरीरनामा-
न्यतमं सस्थानमन्यतराऽऽनुसूत्री त्रसस्थावरपर्याप्ताऽपर्याप्त-प्रत्येकसाधारण स्थिराऽस्थिरशुभाशुम सुभगा-
दुर्भगा-देयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेषु प्रत्येकमन्यतरा अष्टप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति सर्व-
सम्मीलिता अष्टादशप्रकृतय इति । “पत्तेअरस” इत्यादि, प्रत्येकनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्षो वादर-
नामवदवसेयः, यो विशेषः स तु सुगमत्वात् स्वयं भावनीयः ॥५८९-९०॥

अथ स्थिरनाम्नस्तममिधातुमाह

थिरवधी वधइ व वारसकसाया ।

पणणिद्दामिच्छतिआउजिणाहारायवदुगाणि ॥५९१॥

णियमाऽण्णा घुववधी तह पज्जत्तपरघायऊसासा ।

णिरयतिगअपज्जाऽयिरणामाणि ण चेव वधेइ ॥५९२॥

अण्णयरा अबि वंधइ व छसययणउवगसरखगई ।

सेसाऽण्णयरा णियमा वंधइ एव सुहस्स भवे ॥५९३॥

(प्रे०) “थिरवधी” इत्यादि, स्थिरनाम्नो बन्धकोऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायस्त्यान-
र्द्धिद्विकनिद्राद्विकमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयजिननामाहारकद्विकातपोद्योतरूपाः पङ्-
विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, भावना पुनरत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमानुसारेण शेषाणां तु तृतीय-
नियमानुसारेण कार्या । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीस्तथा पर्याप्तपराघातो-
च्छ्वासनामानि नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसारात् शेषाणां च पर्याप्तप्रायोग्यप्रकृति-

बन्धकत्वेन स्थिरनामबन्धय तद्वन्धाविनाभावित्यात् । ताश्चेमाः शेषत्रुवन्धिप्रकृतयः-ज्ञानावरण-
पञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुवबन्धनामान्यन्तरायपञ्चकं चेत्येको
नत्रिंशदिति । “णिश्य” इत्यादि, नरकत्रिकाऽपर्याप्ताऽस्थिरनामानि नैव बध्नाति, स्थिरनाम्ना
महामां बन्धविरोधात् । “अण्णयरा” इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वर-
मन्यतरां च खगति विकल्पतो बध्नाति, हेतोरवगतिस्तृतीयनियमानुमारेण विधेया । ‘वेअणी-
आई’ इत्यादि, अभिहितेतरा अन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, हेतुश्च चतुर्थनियमेन
विज्ञेयः, ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यति-
र्यगतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनाम संस्थानपट्केऽन्य-
तमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी, पर्याप्तापर्याप्तिस्थिरास्थिरस्वरद्वयवर्जसंस्था-
वरादियुगलसप्तकेऽन्यतराः सप्तप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति । ‘एव’ मित्यादि, एव शुभनाम्नोऽपि
मन्त्रिणो विज्ञेयः ॥५९१-२-३॥

अथ यशःकीर्तिनाम्नः स उच्यते

बधइ णियसाऽण्णयरा जसबंधो वेअणीअणोआण ।

विग्घणवावरणाणि य ण णिरयसुहमतिगअजसाणि ॥५९४॥

आहारायवडुगजिणपरघाऊसासबायरतिगाणि ।

सेसधुवतिआऊ वा वाऽण्णयरा सेसवेआई ॥५९५॥

(प्रे०) “बधइ” इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको वेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं गोत्रद्वयेऽन्यतरद्
गोत्रं ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कमन्तरायपञ्चकं च नियमेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथम-
नियमप्रभरात् शेषाणां चतुर्थनियमप्रसराच्च । ‘ण’ इत्यादि, नरकत्रिकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामप्रकृ-
तीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । “आहार” इत्यादि, आहारकद्विकातयोद्योतजिननामपराघातोच्छ्वास-
वादपर्याप्तप्रत्येकरूपा दशप्रकृतीः स्त्यानर्द्धित्रिकं निद्राद्विकं मिथ्यात्वमोहनीय षोडशकपाया भयकुत्से
नवध्रुवबन्धनामानि चेति शेषास्त्रयस्त्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीर्नरकवर्जायुस्त्रयमन्यतरा वेदादिप्रकृतीश्च
विकल्पतो बध्नाति, आसां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदस्य यशःकीर्तिनाम्नः पूर्वमेव जायमानत्वेन तद्-
बन्धस्थानं यावत्तासां यथासमं बध्यमानत्वादूर्ध्वं त्ववध्यमानत्वात् । अन्यतरवेदादिप्रकृतयश्चे माः-
वेदत्रयेऽन्यतमवेदो हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं नरकवर्जगतित्रयेऽन्यतरा गतिर्जातिपञ्चकेऽन्य-
तमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं संस्था-
नपट्केऽन्यतमं संस्थानं संहननपट्केऽन्यतमं संहननं खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिर्नरकवर्जानुपूर्वीत्रये-
ऽन्यतमानुपूर्वी त्रयस्थावर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभगदुर्भग-सुस्वरदुःस्वरादेयाऽनादेययुगलपट्केऽन्य-
तराः पट्प्रकृतयश्चेति ॥५९४-५॥

अथ सूक्ष्मनाम्नस्तत्त्वमत्वेन साधारणनाम् । अथ परस्थानसन्निकर्षमाह

वधेइ सुहमवधी णियमा धुवरापुमत्तिरिदुगोदि ।

ओरालहड्यावरदुहगाणादेयजसणीआणि ॥५९६॥ (गीति)

णियमाऽणायरा दुजुगलचउपण्णाइजुगवेअणीआणं ।

वा तिरियाउगपरधाऊसासा णऽणचउचत्ता । ५९७॥

साहारणस्स एव

।

(प्र०) 'वधेइ' इत्यादि, सूक्ष्मनामग्रन्थकः मत्तवत्तारिंशद्भुववन्धिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकै-
केन्द्रियजातिनामौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानस्थायरदुर्मगानादेयाऽयशःकीर्तिनामनीचैर्गोत्ररूपा अष्ट-
पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तत्र भुवाणां प्रथमनियमप्रसारात् शेषाणां पुनः प्रवानीकृतप्रकृति-
ग्रन्थस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् । 'णियमा' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगल पर्याप्ता-
ऽपर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभयुगलचतुष्केऽन्यतराश्चतस्रः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थ-
नियममाश्रित्य भावना ग्रिधेया । 'वा' इत्यादि, तिर्यगाद्युःपराधातोच्छ्वासप्रकृतित्रय विकल्पतो
बध्नाति, नृनीयनियमानुसारेण भावनात्र भावनीया । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषवतुश्चत्वारिंशत्
प्रकृतीर्नैव बध्नाति, विगोधात् । ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यनरकत्रिरूप द्वीन्द्रियादि-
जातिचतुष्कं वैक्रियद्विक्रमाहारकद्विक्रमौदारिकाङ्गो गङ्गं सहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं स्वगति-
द्वयं त्रसमादरसुभगादेयसुस्वरयशःकीर्तिनामानि दुःस्वरनामाऽऽतपोद्योतजिननामानि उच्चैर्गोत्र
चेति चतुश्चत्वारिंशदिति । 'साहारणस्स' इत्यादि, साधारणनाम्नः प्राधान्येन सन्निकर्षः सूक्ष्म-
नामवदवसेयः, विशेषस्तु सुगमत्वात् स्वयं बोध्यः ॥५९६-७॥

इदानीमपर्याप्तनाम्नाः सोऽभिधीयते तदनन्तरं दुर्मगानादेयनाम्नोरपि—

अपज्जबधी उ वधए णियमा ।

धुववंधिणपुमुरालियहुडगपचेअयिराइणीआणि ॥५९८॥ (गीति.)

वधइ णियमा दुजुगलदुवेअणीअतितसाइजुगलाण ।

तिरिणरगइअणुपुव्वीपणजार्इण णव अणायरा ॥५९९॥

व दुआउछिवट्टाणि य उरालुवगं ण सेसअडतीसा ।

दुहगाणादेयाण हुडव्व परं व भिच्छत्तं ॥६००॥

(प्र०) 'अपज्जबधी' इत्यादि, अपर्याप्तनामग्रन्थकः मत्तवत्तारिंशद्भुववन्धिनपुंसकवेदौदा-
रिकशरीरहुण्डकसंस्थानाऽस्थिराऽशुभदुर्मगाऽनादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाः पट्पञ्चाशत्प्रकृतीर्निय-
मेन बध्नाति, तत्र भुवाणां प्रथमनियमप्रसारात् शेषाणां पुनः प्रवानीकृतप्रकृतिग्रन्थस्य तद्वन्धा-
विनाभावित्वात् । 'वधइ' इत्यादि, हास्यादियुगलद्वयसाताऽसातवेदनीयद्वयत्रसस्थावरद्वयवादेर-
सूक्ष्मद्वयप्रत्येकसाधारणद्वयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयजातिपञ्चकरूपेषु वृन्देषु प्रत्येक-
मन्यतरा नवप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसारात् । 'व' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वय-
३२ क

सेवार्तमहननौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपाश्चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, यथायोगं तृतीयनियमांशैर्भावना भाव्या । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषाष्टत्रिंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, अपर्याप्तानामना मह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात् । तारचेमाः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं देवनरकात्रिकद्वयं वैक्रियद्विकमाहारकद्विक प्रथमादिमहननपञ्चकं प्रथमादिमंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं पर्याप्तस्थिरशुभसुभगसुस्वर्गादेयशःकीर्तिनामानि दुःस्वरनाम पराधातोच्छ्रामातपोद्योतजिननामानि उच्चैर्गोत्रं चेति । 'दुहग' इत्यादि दुर्भगानादेयनामोः प्रधान्येन मन्त्रिकर्पो हुण्डकसंस्थानवद् वेदितव्यः । 'परं' इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयन्नाह-दुर्भगानादेययोर्वन्धकः मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति, प्रथमगुणस्थानस्थितेन तेन मिथ्यात्वमोहनीयस्य बध्यमानत्वाद् द्वितीयगुणस्थानस्थितेन तेनाऽबध्यमानत्वाच्च ॥५९८-९-६००॥

अथ गोत्रकर्मणः परस्थानमन्त्रिकर्पं प्ररूपयन्नादौ नीचैर्गोत्रस्य तमाह—

बन्ध इ व णीअबन्धो भिच्छतिआउपरधायऊसासा ।

आयवदुग च बध इ णियमाऽण्णच्चत्तधुवबन्धो ॥६०१॥

सुरतिगआहारागदुगजिणुच्चगोआणि जेव वाऽण्णयरा ।

दुउवगसंघयणसरत्तगई णियमाऽण्णवेअणीआई ॥६०२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'बन्ध इ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रस्य बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयतिर्यङ्मनुष्यनरकायुष्कत्रय-पराधातोच्छ्रामातपोद्योतनामरूपा अष्टप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, तत्र मिथ्यात्वस्य द्वितीयनियमेन शेषाणां च तृतीयनियमेन भावना विज्ञेया । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयत्रजषट्-चत्वारिंशद्भ्रुववन्विप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, भावना प्रथमनियमानुसारेण कार्या । 'सुर' इत्यादि, देवत्रिकाहारकद्विकजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति, नीचैर्गोत्रेण सहामां बन्धस्य विरोधात् । 'दुउवग' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्य-तरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति तृतीयनियमानुसारेण हेतुर्वोच्यः । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, चतुर्थनियमेन हेतुत्र विज्ञेयः । तारचेमाः—साताऽसातवेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीय हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं वेदत्रयेऽन्यतमो-वेदो नरकतिर्यङ्मनुष्यगतित्रयेऽन्यतमा गतिर्जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्-शरीरनाम संस्थानपट्केऽन्यतमसंस्थान नरकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसंस्थाव-रादिनवयुगलेऽन्यतरा नवप्रकृतयरेति ॥६०१-२॥

अथोच्चैर्गोत्रस्य परस्थानसन्निकर्पं प्रतिपादयन्नाह

णियमा उ उच्चवघी विग्धावरणवगाणि वाऽण्णधुवा ।

तसच्चउगाहाराउदुगपणिदिजिणपरधायऊसासा ॥६०३॥ (गीतिः)

णो णिरयतिरितिगायवदुगयावरजाइचउगणीआणि ।

जसअजसवेअणीआ णियमाऽण्णयरा व सेसवेआई ॥६०४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णियमा' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रवन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चक-
रूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रथमनियमप्रसरात् । 'चा' इत्यादि, उक्तान्यध्रुववन्धित्रयस्त्रि-
शत्प्रकृतीस्त्रिसचतुष्काहारकद्विकदेवमनुष्यायुष्कद्वयपञ्चेन्द्रियजातिजिननामपराधातोच्छ्वासनामानि च
विकल्पेन बध्नाति, तत्र ध्रुवाणां द्वितीयनियमप्रसरात्, आहारकद्विकजिननामदेवमनुष्यायुष्कद्वय-
प्रकृतीनां तृतीयनियमस्य द्वितीयांशप्रसरात्, पराधातोच्छ्वात्रसचतुष्कपञ्चेन्द्रियजातिनामां च
बन्धविच्छेदस्य प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धविच्छेदात्प्राक्मच्चात् । 'णो' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिका
तपोधोतस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, उच्चैर्गोत्रेण सहासा बन्ध-
स्य विरोधात् । 'जस्' इत्यादि, यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यामंकरां प्रकृतिमेकतरं च वेदनीय निय-
मेन बध्नाति, चतुर्थनियमप्रसरात् । 'व' इत्यादि, उक्तशेषवेदाद्यन्यतराः प्रकृतीरपि विकल्पतो
बध्नाति, यत उच्चैर्गोत्रेण महैताः शेषान्यतरप्रकृतयोपयास्वं बन्धस्थान यावदनवरत बध्यन्ते तदुत्तर
च नैव बध्यन्ते, नवरं एकतममपि संहननं देवगतिप्रायोग्यप्रकृतबन्धकेन न बध्यते तदन्येन पुन-
र्बध्यते । ताश्चेमाः—वेदत्रयेऽन्यतमो वेदो हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद्वयुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा-
गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरं तदङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं संहननपट्टकेऽन्यतमं संहननं
संस्थानपट्टकेऽन्यतमं संस्थान खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलेऽन्यतराः पट्ट-
प्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति ॥६०३-४॥

॥ इति ओधतः परस्थानसन्निकर्ष समाप्त ॥

ओधतः परस्थानसन्निकर्षं प्ररूप्य साम्प्रतमादेशतो मार्गणासु निरूपयन्नादौ पञ्चेन्द्रियौधादि-
मार्गणासु तमाह

परठाणसण्णियासो दुपणिबितसपणमणवयेसु तहा ।
कायणयणेयरेसु भविये सण्णिम्मि आहारे ॥६०५॥
सर्वेसि पयढीण ओधव्वडिय

(प्रे०) 'परठाण' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौधपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तत्रसमार्गणाचतुष्के ओध-
सत्याऽसत्यसत्यासत्याऽसत्यामृपाभेदभिन्नासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु पञ्चसु च वचनयोगमार्गणासु
काययोगौधमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये मव्यसख्याहारकमार्गणाप्रये चेति विंशतिमार्गणासु
सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओधवदस्ति. ओधवच्चातुर्गतिकजीवानां श्रेणेश्च सद्भावेन सर्वविधबन्ध-
स्थानानां लामादिति ॥६०५॥

अथ नरकौधादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्नाह

..... " ... " गिरये तिगिरयेसु ।

पढमहिंसु तह छसु सण्णुमारुद्धवेसु ॥६०६॥

गुणचत्तधुवपणिदियपरधूससुरलजुगलतसचउगा ।
 एग वधतोऽण्णा सगचत्ता वधए गियमा ॥६०७॥
 थोणद्धियतिगमिच्छगअणवउगदुआउतित्थउज्जोआ ।
 वा वधइ गियमाऽण्णा अण्णयरा वेअणीआई ॥६०८॥
 सुखगइसधयणागिइपुमतिथिराइजुगवेअणीआण ।
 डुजुगलसुहगतिगाण य एव णवर ण पडिवक्खा ॥६०९॥
 थोणद्धि वधतो वधइ वाउदुगमिच्छउज्जोआ ।
 गियमाऽण्णधुवपणिदियपरधूससुरलजुगलतसचउग ॥६१०॥ (गीति)
 तित्थ ण चेव वधइ गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
 एव गिदाणिदापयलापयलाऽणचउगाण ॥६११॥
 थोचउसधयणागिइकुखगइदुहगतिगणीअगोआण ।
 एमेव जाणियव्वो णवर वधइ ण पडिवक्खा ॥६१२॥
 मिच्छत्तं वधतो वधइ वा खलु दुआउउज्जोआ ।
 गियमाऽण्णधुवपणिदियपरधूससुरलजुगलतसचउग ॥६१३॥ (गीति)
 तित्थ ण चेव वधइ गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
 एमेव छिवट्ठणपुमहुंडाण पर ण पडिवक्खा ॥६१४॥
 तिरियाउ वधतो मिच्छुज्जोआ व वधए गियमा ।
 धुवतिरियउरलदुगपरधूससपणिदित्तसचउगणीअ ॥६१५॥ (गीति)
 णरतिगजिणउज्जाणि ण गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
 तिरिदुगउज्जोआण एव णवरं व तिरियाउ ॥६१६॥
 थोणद्धितिगचउअणा णराउवधी व य गियमाऽण्णधुवा ।
 णरउरलदुगपणिदियपरधूससतसचउगाणि ॥६१७॥
 णेव तिरिदुगुज्जोआ गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ।
 णरदुगउच्चाणेव णवर वधइ व मणुयाउं ॥६१८॥
 गुणचत्तधुवपुमउरलणरदुगसधयणागिइपणिदी ।
 परधूससतसचउगसुखगइसुहगतिगउच्चाणि ॥६१९॥
 जिणवधी वधइ चिअ णराउगं व गियमा छ अण्णयरा ।
 डुजुगलदुवेअणीअतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥६२०॥

(प्रे०) 'णिरये' इत्यादि, नरकौघरन्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभारूपासु चतसृषु नरकमार्ग-
 णासु सनत्कुमारमाहेन्द्रप्रहलोलोकाऽन्तकशुक्रमहत्साररूपासु पट्सु देवमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीय-
 स्त्यानर्द्धिविकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भुवन्नन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातो-
 च्छ्वाप्तौदारिकद्विक्रमचतुष्करूपाभ्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृति वधन् शेषसप्तचत्वारिंशत्प्र-
 कृतीर्नियमेन वध्नाति, तत्र ध्रुवाणां प्रथमनियमप्रसरात् शेषाणां तत्र ध्रुवबन्धिकल्पत्वात् ।
 'थोणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धिविक्रमिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतुष्कतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वय-
 जिननामोद्योतरूपा द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, तद्यथा—एकतरप्रकृतप्रकृतिवन्धकः प्रथमगुण-

स्थानके वर्तते तदा मिथ्यात्वमोहनीय वध्नाति, द्वितीयादिगुणस्थानकेषु वर्तते तदा न वध्नाति, प्रथम-
द्वितीयगुणस्थानकयोर्वर्तते तदा स्त्यानर्द्धिप्रक्राऽनन्तानुबन्धितुष्करूपा, सप्तप्रकृतीवध्नाति, उद्यो-
त्तनाम च कश्चिदेव वध्नाति तृतीयतुर्थगुणस्थानयोर्वर्तमानः स्यात्तदा नैव वध्नाति, आयुष्कं कदाचि-
देव वध्नाति, जिननामबन्धयोग्यतावान् स जिननाम वध्नाति, तदितरश्च नैव वध्नातीत्यत्राणां प्रकृ-
तीनां सन्निकर्षो विकल्पतयाऽभिहितः । 'णिचभा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाग्रन्यतरप्रकृतीर्नियमेन
वध्नाति, चतुर्थनियमप्रवगात् । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीय हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं वेदत्रयेऽ-
न्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतममहन्ननमन्यतममस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी अन्यतरा स्वगतिः स्थिरा-
स्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयो गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं चेति पौडशेति । 'सुख' इत्यादि,
सुखगतिवन्धनपमनागचमहननमचतुरस्रंस्थानपुरुषवेदस्थिरास्थिरशुभाशुभयज्ञः कीर्त्ययज्ञः कीर्तिभा-
ताऽपातवेदनीयहास्यशोकरत्यरतियुगलमुभयसुखरादेयप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रधानी-
कृतध्रुववन्ध्यादिप्रकृतिसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते-सुखगतिप्रभृति-
प्रकृतिवन्धकः प्रधानीकृतप्रकृतेः प्रतिपक्षभूताऽशुभस्वगतिप्रभृतिप्रकृतीर्नैव वध्नाति

'थोणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धिप्रकृति वध्नात्तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयमिथ्यात्वमोहनीयो-
द्योत्तनामप्रकृतिचतुष्क विकल्पतो वध्नाति । 'णिचभा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिर्वर्ज-
शेषपञ्चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृती. पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विक्रसचतुष्करूपा नव-
प्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'तित्थं' इत्यादि, जिननाम नैव वध्नाति, तस्य चतुर्थगुणस्थानक
एव वध्यमानत्वेन स्त्यानर्द्धिनिद्रया सह बन्धविरोधात् । 'णिचभा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीया-
ग्रन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलं वेद-
त्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतममहन्ननमन्यतममस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी अन्यतरा स्वगतिः
स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति पौडशेति । 'एच' इत्यादि, निद्रा-
निद्राप्रचलाप्रचलाऽनन्तानुबन्धितुष्करूपस्य प्रकृतिपट्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धि-
प्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः । 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदमध्यममहननचतुष्कमध्यमसस्थानचतुष्का-
ऽशुभविहायोगतिदुर्मगत्रिकनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः स्त्यानर्द्धि-
प्रधानसन्निकर्षवद्विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-स्त्रीवेदादिप्रकृतिवन्धकस्तत्प्रति-
पक्षभूतपुरुषपुंमकवेदादिप्रकृतीर्नैव वध्नाति, विरोधात् ।

'मिच्छत्तं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयमावधनंतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयोद्योत्तनामप्रकृतित्रयं
विकल्पेन वध्नाति । 'णिचभा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्त्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीः
पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासौदारिकद्विक्रसचतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'तित्थं'
इत्यादि, जिननाम नैव वध्नाति, जिननाम्नो बन्धस्य सम्यक्त्वप्रत्ययिकत्वेन मिथ्यात्वेन सह

विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, अमिहितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीनियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—
अन्यतरवेदनीयं हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतरगतिरन्यतरानुपूर्वी अन्यतमं सं-
हननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं
चेति षोडशेति । 'एमेव' इत्यादि, सेवार्तमंहनननपुंसकवेदद्वण्डकसंस्थानप्रकृतित्रयप्रधानसन्निक-
र्षो मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसन्निकर्षवद् बोद्धव्यः । 'परं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति सेवार्त-
संहननादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतानैव बध्नाति, विरोधात् ।

'तिरियाउ' इत्यादि, तिर्यगायुरावधनम् मिथ्यात्वमोहनीयोद्योतनामप्रकृतिद्वयं विकल्पतो
बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्विक-
पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासादौदारिकद्विकप्रसचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा द्वादशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति ।
'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकजिननामोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनैव बध्नाति, तिर्यगायुषा सहासां बन्धविरोधात्,
विरोधश्च तिर्यगायुषा सह तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य बध्यमानत्वात्, तीर्थकृन्नाभ्यश्च सम्प-
ग्दशैव बध्यमानत्वाद् विभावनीयः । 'णियम' इत्यादि, उक्तातिरिक्ताऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृती-
नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमवेदोऽन्यतरत्संहननमन्य-
तमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति त्रयोदशेति ।
'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्गतिस्तिर्यगानुपूयुद्योतनामप्रधानसन्निकर्षस्तिर्यगायुःप्रधानमन्निकर्षवदस्ति ।
'णचरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—तिर्यगायुर्विकल्पनं बध्नाति, आयुर्वन्धस्य कादाचित्कत्वादिति ।

'थोणद्धि' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धिप्रिकानन्तानुबन्धि-
चतुष्कप्रकृत्यष्टकं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिं-
द्भुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासात्रसचतुष्करूपा एकादशप्रकृ-
तीश्च नियमेन बध्नाति । 'णोव' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनामानि नैव बध्नाति, मनुष्यायुषा
सहासां बन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीनियमेन बध्नाति ।
ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलवेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्था-
नमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति चतुर्दशेति ।
'णर' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुर्वद् विज्ञेयः । 'णचरं'
इत्यादिना विशेषं प्रदर्शयति—मनुष्यायुर्विकल्पतो बध्नाति, तथा मनुष्यद्विकबन्धनन्तुच्चैर्गोत्रं विकल्पतो
बध्नाति, उच्चैर्गोत्रबन्धकस्तु मनुष्यद्विकं नियमेन बध्नाति, उच्चैर्गोत्रेण सह तिर्यग्द्विकस्य बन्धा-
भावात् । 'गुणचत्त' इत्यादि, जिननामबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्-
भुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रिय-
जातिपराधातोच्छ्वासात्रसचतुष्कसुखगतिषुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनविंशतिप्रकृतीश्च नियमेन

वन्नाति । ‘णराउगं’ इत्यादि, मनुष्यायुर्विकल्पतो वन्नाति । ‘छ’ इत्यादि, हास्यादि-
युगलद्वयेऽन्यतरयुगलमन्यतरवेदनीयं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतराः
तिस्रः प्रकृतयश्चेति षट्प्रकृतीर्नियमेन वन्नाति । ‘ण उ’ इत्यादि, उक्तव्यनिरिक्तप्रकृतीर्नैव
वन्नाति, विरोधात् । ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धितुष्करूपप्रकृत्यष्टकं
श्रीनपुंसकवेदद्वयं तिर्यक्त्रिकं द्वितीयादिसहननपञ्चकं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुलगतदुर्भग-
त्रिकमुद्योतनाम नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशदिति । इह यत्र हेतुभावनिकाप्रभृतयो नोक्तास्ते
प्रागुक्तनियमानुसारेण तथोचानुसारेण स्वयमेव विज्ञेयाः, एवमेवाग्रेऽप्यस्मिन् द्वारे विज्ञेयम्, ग्रन्थ
गौरवमयादस्माभिस्तु विशेषस्थल विहाय नैव कथयिष्यन्ते । ६०६-६२०॥

अथ चतुर्थादिनरकत्रये प्रकृत उच्यते—

परठाणसण्णिभासो सञ्चेत्ति तितुरिआइणिरयेसुं ।

णिरयव्व होइ णवर जिणस्स णेव हवए वघो ॥६२१॥

(प्रे०) “परठाण” इत्यादि, पङ्कप्रभाधूमप्रमातमःप्रभारूपासु तिसृषु नरकमार्गणासु सर्वासां
प्रकृतीनां नरकौधवन्मन्निकर्षोऽस्ति । “णवरं” इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति जिननाम नैव
वच्यते, अतोऽत्र तत्प्रधानमन्निकर्षो नास्ति, तथा शेषप्रकृतिभिः सहापि तस्य सन्निकर्षो न वक्त-
व्य इति ॥६२१॥

साम्प्रतं सप्तमनरकमार्गणायां स उच्यते

थीणद्धितिगाणेग वंधतो तमतमाअ बंधेइ ।

णेव णरदुगुच्चाणि व मिच्छतिरिवसाउउज्जोआ ॥६२२॥

सेसधुवतिरिउरलदुगणीअपणिदिपरघायऊसासा ।

तसचउगं णियमाऽण्णा अण्णयर वेअणीआई ॥६२३॥

थीतिरिदुगमज्जिमचउसधयणागिइकुलगाइणीआणं ।

दुहगतिगुज्जोआण य एवं णवरं ण पडिवक्खा ॥६२४॥

णियमाउ मिच्छबंघी सेसधुवपरिणदितिरियउरलदुगं ।

परधूसासतसचउगणीआणि य ण खलु णरदुगुच्चाणि ॥६२५॥ (गीतिः)

वा तिरियाउज्जोआ णियमाऽण्णयरऽण्णवेअणीआई ।

एवं तिरियाउणपुमच्छिवदुहंढाण ण उण पडिवक्खा ॥६२६॥ (गीतिः)

गुणचत्तधुवपुमउरलदुगसुहसधयणागिइपरिणदी ।

परधूसाससुहलगाइणराणुपुव्वितसचउगाणि ॥६२७॥

सुहगतिगुच्चाणि य णरगइबंघी बंधए च्च छडणयर ।

दुजुगलदुवेअणीअतिथिराइजुगलाण ण उ सेसा ॥६२८॥

एमेव हवेज्ज णराणुपुव्वितउच्चाण सेसपयवीण ।

णिरयव्व भवे णवरं जिणस्स णेव हवए वघो ॥६२९॥

इत्यादि, मनुष्यानुपूर्व्युच्चैर्गोत्रप्रकृतिद्वयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यगतिवद् विज्ञेयः ।
 “सेसपयडोर्ण” इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो नरकौधवद् भवति ।
 ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकजर्जशैर्कोनवत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयो वेद-
 नीयद्विक हास्यादियुगलद्वयं पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विक वर्षभनाराचसहननं सम-
 चतुरस्रमंस्थानं सुखगतिस्त्रयदशकमस्थिराशुमायशःकीर्तित्रयं परायातोच्छ्वामनाम्नी चेति सप्त-
 षष्टिरिति । “णवरं” इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-अत्र जिननाम्नो बन्वाभावात्तस्य सन्निक-
 र्षो नास्ति ॥६२२-२९॥

अथ तिर्यगोवादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

एग वधतो ऽण्णा गियमा तिरियतिर्पणिदितिरियेसु ।
 थोणद्वियतिगमिच्छऽडकसायवज्जधुवबंधीणं ॥६२०॥
 वाऽण्णधुवाऽगपरधाऊसासायवदुगाणि वाऽण्णयरा ।
 दुउवगसधयणसरखगई गियमाऽण्णवेअणीआई ॥६२१॥ (गीतिः)
 एमेव असायअरइसोगअधिरअसुहेअजसणामाण ।
 णवर ण चेव बंधइ पयडो देवाऽपडिववला ॥६२२॥
 गियमा धुवपणचत्ता वधंतो थोणगिद्वितिगऽणेगं ।
 वा मिच्छाऽउचउगपरधाऊसासायवदुगाणि ॥६२३॥
 अण्णयरा अवि बंधइ वा संधयणदुउवंगसरखगई ।
 बंधइ गियमा सेसा अण्णयरा वेअणीआई ॥६२४॥
 बंधेइ सायबंधी वा थोणद्वितिगमिच्छऽडकसाया ।
 तिरिमणुयसुराऽगपरधाऊसासायवदुगाणि ॥६२५॥
 गियमाऽण्णा धुवबंधी ण असायगिरयतिगाणि वाऽण्णयरा ।
 दुउवगसधयणसरखगई गियमाऽण्णवेअणीआई ॥६२६॥ (गीतिः)
 एव रइहरताणं एमेव जसरता णवरि सुहमतग ।
 णो चिअ बंधइ गियमा परधाऊसासवायरतिगाणि ॥६२७॥ (गीतिः)
 पणतोसधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
 पुमबंधी बंधइ चिअ वा बारसधुवतिआऽउज्जोआ ॥६२८॥ (गीतिः)
 ण दुवेअआयवणिरयतिगयावरजाइचउगाणि ।
 वाऽण्णयरं सधयणं गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥६२९॥ (उद्गीतिः)
 बंधइ व उज्जबधी थोणद्वितिगऽडकसायमिच्छाऊ ।
 गियमाऽण्णधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ॥६३०॥ (गीतिः)
 णो गिरयतिरितिगायवदुगयावरजाइचउगणीआणि ।
 वाऽण्णयरं सधयण गियमाऽण्णयराऽण्णवेअणीआई ॥६३१॥ (गीतिः)
 सेसाणोधव्व णवरि तित्थाहारगदुगाणि बंधइ णो ।
 णरतिगउरलदुगवइरबंधो गियमाऽण्णथोणगिद्वितिगं ॥६३२॥ (गीतिः)

तद्वैकसायदुणिहा णियमा देवतिगविउवदुगबन्धो ।

सुखगइआगिइपरधाऊसासपणिदितसणवगबन्धो ॥६४३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'एगं' इत्यादि, तिर्यग्गोधतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौधपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चनसृषु मार्गणासु स्त्यानद्वित्रिकामिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क रूपद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमावधनं शेषचतुस्त्रिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृती-
नियमेन बध्नाति । 'चा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्या-
ख्यानावरणचतुष्करूपाः शेषद्वादशभ्रुवबन्धप्रकृतोरायुष्कचतुष्कपराधातोच्छ्वाभातपोद्योतनामानि चेति
मरगीलिता विंशतिप्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । 'चा' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतर-
दङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पतो बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि,
उक्तातिरिक्ताऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्या-
दियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरन्यतरत्शरीरनामाऽन्यतमं संस्थानमन्यतमानुपूर्वी
भ्रुववर्जत्रयस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नव प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्येकोनविंशतिरिति । 'एमेव'
इत्यादि, असातवेदनीयारतिशोकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेव भवति ।
'णवरं' इत्यादिना विंशतिप्रकृति-असातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिबन्धको देवायुस्तन्प्रतिपक्षसातवेदनीयादि-
प्रकृतीश्च नैव बध्नाति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां परावर्तमानतया बध्यमानत्वेनासातवेदनीयादिप्रकृतिभिः
सह बन्धस्य विरोधात्, देवायुष्कस्य चाऽसातवेदनीयादिप्रकृतिभिः सह बन्धाऽसम्भवात् ।

'णियमा' इत्यादि स्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्करूपे प्रकृतिसप्तकेऽन्यतमां प्रकृतिं बध्नन्
मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतैकतमप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'चा'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयायुष्कचतुष्कपराधातोच्छ्वाभातपोद्योतप्रकृतिनवकं च विकल्पेन बध्नाति ।
'अण्णयरा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्य-
तरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाधन्यतराः प्रकृतीर्निय-
मेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एव नवदशप्रकृतयोऽत्र ग्राह्याः ।

'बन्धे' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः स्त्यानद्वित्रिकामिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतु-
ष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कतिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कत्रयपराधातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा एकोनविंशति
प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषपञ्चत्रिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृतीर्नियमेन
बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयनरकत्रिकप्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, सातवेदनीयेन सह तद्
बन्धविरोधात् । 'चा' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं संहननमन्यतर-
स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिमभूद्वेकतम-
प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—हस्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यदेव-

गतित्रयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामान्यतमं संस्थानमानुपूर्वी-
त्रयेऽन्यतमानुपूर्वीस्वरवर्जत्रसंस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरनवप्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेत्यष्टादशप्रकृतयः ।
'एवं' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयवद् बोध्यः । 'एमेव' इत्यादि,
यशःकीर्तिनाम्नः सन्निकर्षः सातवेदनीयवद् बोध्यः । 'णवरि' इत्यादिना विशिनष्टि सूक्ष्मत्रिकं
यशःकीर्तिनामवन्धको नैव वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, पराधातोच्छ्वासवासरत्रिकप्रकृतिपञ्चकं
नियमेन वध्नाति ।

'पण' इत्यादि, पुरुषवेदवन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्भ्रुव-
वन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'वा'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादश-
भ्रुववन्धिप्रकृतीर्देवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतनामप्रकृतिचतुष्कं च विकल्पतो वध्नाति । 'णो'
इत्यादि, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपनरकत्रिकस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव वध्नाति ।
'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननं विकल्पेन वध्नाति, देवप्रागोप्यवन्धकाले तेन तस्याऽवध्यमानत्वान्म-
नुष्यप्रायोग्यादिवन्धकाले च वध्यमानत्वात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृती-
नियमेन वध्नाति । तारचेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यगतित्रये-
ऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपा-
ङ्गनामाऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिरन्यतरानुपूर्वी स्थिराऽस्थिरादियुगलपट्केऽन्यतरपट्प्रकृतयो
गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति ।

'बंध' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रवन्धकः स्थानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यायुर्द्वयरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पतो वध्नाति । 'णियमा' इत्या-
दि, मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जशेषपञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराधातो-
च्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'णो' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिका-
तपोद्योतस्थावरचतुष्कजातिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव वध्नाति, । 'वा' इत्यादि,
अन्यतमसंहननं विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन
वध्नाति । तारचेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतरो वेदो देवमनुष्यगतिद्वये-
ऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गम-
न्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिरन्यतरानुपूर्वी स्थिराऽस्थिरादियुगलपट्केऽन्यतरपट्प्रकृतयश्चेति
षोडशेति ।

'सेसाण' उक्तशेषप्रकृतीनां सन्निकर्षं बोधयदस्ति, तारचेमाः—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं मिथ्यात्व-
मायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं वैक्रियद्विकं संहननपट्कं संस्थानपट्कमानुपूर्वी-

चतुष्कं खगतिद्वयं त्रयमनवकं स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमातपोद्योतपराधातोच्छ्वासनामानि नीचैर्गोत्रं
चेति नवपञ्चाशदिनि । लाघवार्थं कृतातिदेशे समापतन्तीमापत्तिं निवारयितुकाम 'णचरि' इत्यादि-
नाऽपवादमाह—जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयस्य प्रकृतमार्गणासु बन्धविग्रहात् भक्तिकर्षो नैव
कथनीयः ।

'णरतिग' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवर्षमनागचसंहननप्रकृतिबन्धकोऽनन्तानुव-
न्धिचतुष्कस्त्यानद्वित्रिकप्रकृतिमत्तकं नियमेन बध्नाति, प्रस्तुतमार्गणासु मनुष्यद्विकोदिप्रकृतीनां
द्वितीयं गुणस्थानकं यावदेव बध्यमानत्वादिति ।

'तद्वज्र' इत्यादि, देवायुष्कदेवद्विकवैक्रियाद्विकबन्धकः सुखगतिममचतुरस्रमंस्थानपराधातो-
च्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रयमनवकबन्धकश्च प्रत्यःस्थानागणचतुष्कनिद्राद्विकरूपप्रकृतिषट्कं नियमेन
बध्नाति, प्रकृतमार्गणायां तद्बन्धविच्छेदस्यैवाभावात् ॥६३० ४३॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु सकलैकेन्द्रियादिमार्गणासु च प्रकृतं प्रकथयितु-
मना आह

असमत्तर्पणितिरियमणुयर्पणदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिदियविर्गालिदियपुह्वीसलिलवणकायेसु ॥६४४॥
एग बंधतो ध्रुवबधिरालाउ बधए गियमा ।
सेसा सगचत्ता वाऽण्णयरसधयणसरखगई ॥६४५॥
वा आउगआयवदुगपरधाऊसासउरलुवगारिणि ।
बधइ गियमा सेसा अण्णयर वेअणीआई ॥६४६॥
दुजुगलदुवेअणीअणपुमहुंडपणअथिराइणीआणं ।
एमेव णवरि बधइ एा चेव पडिवक्खपयडोओ ॥६४७॥
तिरियमणुयाउज्जोआ इत्थीबधी व बधए गियमा ।
ध्रुवउरलदुगर्पणदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ॥६४८॥ (गीतिः)
थावरजाइचउगआयवपडिवक्खा ण वेअणीआई ।
सेसाऽण्णयर गियमा एमेव पुमस्स विण्णेयो ॥६४९॥
तिरियाउं बंधतो गियमा ध्रुवतिरिदुगुरलणीआणि ।
बधइ वायवदुगपरधाऊसासुरलुवगारिणि ॥६५॥
णरतिगउज्जाणि ण वा सरसधयणखगई वि अण्णयर ।
गियमाऽण्णवेअणीआई एव तिरिदुगस्स आउ वा ॥६५१॥ (गीतिः)
मणुयाउगवधी ध्रुवणरुरलतसदुगर्पणदिपत्तेआ ।
गियमा परधूसासा बधइ वाऽण्णयरसरखगई ॥६५२॥
णो तिरितिगजाइचउगसाहारणथावरायवदुगारिणि ।
गियमाऽण्णयर सेसा मणुयदुगस्सेवमेव व णराउं ॥६५३॥ (गीतिः)

णियमा पर्णिदिबधी उरलतसदुगधुवर्धधिपत्तेआ ।
 बंधइ व तिरिणराउगपरधाऊसासउज्जोआ ॥६५४॥
 चउजाइआयवसुहमथावरसाहारणाणि बंधइ णो ।
 सरखगई वाऽण्णयर गियमाऽण्णा वेअणीआई ॥६५५॥
 संघयणागिइपंचगदुखगइसुहगतिगदुस्सराणेव ।
 णवरं ण अपज्जत्त गियमा पज्जपरधायऊसासा ॥६५६॥ (गीतितः)
 तसुरलुवंगछिवट्ठाणा सण्णियासो पर्णिदियव्व परं ।
 एगिदिय ण बंधइ गियमा सेसाऽण्णयरआई ॥६५७॥
 परधायं बघतो गियमा धुवउरलपज्जऊसासा ।
 ण अपज्ज व दुआउगआयवदुगउरलुवंगाणि ॥६५८॥
 संघयणस्सरखगई वाऽण्णयर सेसवेअणीआई ।
 गियमा एमेव भवे पज्जत्तूसासणामाणं ॥६५९॥
 चायरबधी बंधइ सुहम ण चिअ गियमा धुवुरलतणू ।
 वाउगआयवदुगपरधाऊसासुरलुवगाणि ॥६६०॥
 संघयणस्सरखगई वाऽण्णयर सेसवेअणीआई ।
 गियमा बंधइ एव हवेज्ज पत्तेअणामरता ॥६६१॥
 सायव्व यिरसुहाण णवर ण उ बंधए अपज्जत्त ।
 गियमाहिन्तो बंधइ परधाऊसासपज्जत्ता ॥६६२॥
 सायव्व जसस्स परं परधाऊसासचायरतिगाणि ।
 गियमाहिन्तो बंधइ ण चेव बंधेइ सुहमतिग ॥६६३॥
 धुवणरुरलदुगपरधाऊसासपर्णिदितसचउकाणि ।
 गियमा उ उच्चवधी बंधइ वा उणा मणुस्साउ ॥६६४॥
 तिरियदुगजाइयावरचउगायवजुगलणीअगोआणि ।
 णउ बंधइ गियमाऽणा अण्णयरौधठव सेसाणं ॥६६५॥

(प्रे०) 'अस्समत्त' इत्यादि, अपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽ-
 पर्याप्तसरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, ओषपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदैस्तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणा-
 स्तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणास्तिस्रश्चतुरिन्द्रियमार्गणाश्चेति षोडशेन्द्रियमार्गणाः, ओधादिमत्तभेदैः सप्त-
 पृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताध्यायमार्गणा एकादशवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति पञ्चविंशतिकायमार्गणा इति
 सर्वसंख्यया पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भुवधन्विप्रकृत्यौदारिकशरीरनागनामेकां प्रकृतिं
 बध्नन् शेषसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'चा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरस्वर-
 मन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'धा' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपोद्योतपराघातोच्छ्वा-
 सौदारिकाङ्गोपाङ्गनामरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनी-
 याधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो
 वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरं गतिरन्यतमा जातिरन्यतमं संस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्य

तरानुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नवप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्यष्टादश । 'हुञ्-
गल' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयसाताऽसातवेदनीयनपुंसकवेद-
दुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'णवरि' इत्या-
दिना विशेषं दर्शयति-हास्यादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभूतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, परावर्तमान-
प्रकृतित्वादासाम्, उक्तप्रकृतिबन्धकाले एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तप्रायोग्यबन्धकत्वाच्च ।

'तिरि' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धकस्तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयोद्योतरूपं प्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति ।
'णियमा' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीरौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासम-
चतुष्करूपा नवप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, अत्रौदारिकशरीरनाम्नो ध्रुवबन्धिकल्पत्वेन नियतबन्धो
विज्ञेयः । 'थावर' इत्यादि, स्थावरचतुष्कजातिचतुष्कातपनामानि पुरुषनपुंसकवेदौ च नैव
बध्नाति. स्त्रीवेदेन सहासां बन्धस्य विरोधात्, विरोधश्च स्थावरादिप्रकृतिबन्धकेन नपुंसकवेद-
स्यैव बध्यमानत्वाद् वेदद्वयस्य च परावर्तमानमप्रतिपक्षप्रकृतित्वाद् विज्ञेयः । 'वेअणोआई' इत्यादि,
अभिहितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-वेदनीयद्वय एकतरं वेदनीयमन्यत-
रद् हास्यादियुगलमन्यतरा तिर्यग्मनुष्यगतिद्वये गतिरन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगति-
स्तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी स्थिरादियुगलवट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति
पञ्चदशेति । 'एमेव' इत्यादि, पुरुषवेदस्य सन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् विज्ञेयः ।

'तिरियाङ' इत्यादि, तिर्यगायुर्वध्नन् नियमेन सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्वि-
कौदारिकशरीरनाम्नीचैर्गोत्रप्रकृतीश्च बध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, आतपोद्योतपराधातोच्छ्वासौ-
दारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकोच्चैर्गोत्रप्रकृतिचतुष्कं नैव
बध्नाति, तिर्यगायुषा सह तस्य बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, स्वरमन्यतरत्संहननमन्यतममन्यतरां
खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन
बध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा जातिरन्यतमं
संस्थानं स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति । 'एवं' इत्यादि,
तिर्यग्द्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षोस्तिर्यगायुष्कवदवसेयः । 'आउ' इत्यादिना विशेषं दर्शयति-
तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति, ।

'मणुयाउगचंधी' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौ-
दारिकद्विकत्रसद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रत्येकनामानि च नियमेन बध्नाति । 'परघा' इत्यादि, परा-
धातोच्छ्वासनाम्नी विकल्पेन बध्नाति । 'अण्ण' इत्यादि, अन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च
विकल्पेन बध्नाति । 'णो' इत्यादि, तिर्यक्त्रिकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमाधरणम्यावरसूक्ष्मातपोद्यो-
तरूपा द्वादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषान्यतरप्रकृतीर्नियमेन

वध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानं पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयाऽनादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयश्चेति द्वादशेति । “मणुय” इत्यादि, मनुष्यद्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुष्कवदस्ति, परं मनुष्यद्विकवन्धको मनुष्यायुर्विकल्पेन वध्नाति ।

‘णियमा’ इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो बन्धक औदागिकद्विक्रसद्विकसप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतिप्रत्येकनामरूपा द्वापञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ‘व’ इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयपराधातोच्छ्वासमोद्योतनामानि विकल्पेन वध्नाति । ‘खल’ इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कातपञ्चस्रमस्थावरसाधारणनामानि नैव वध्नाति, पञ्चेन्द्रियजात्या सहासां प्रकृतीनां बन्धविरोधात् । ‘स्तर’ इत्यादि, अन्यतरस्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन वध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, उदितशेषान्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतममंहननमन्यतमं संस्थानमन्यतमानुपूर्वी पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्र चेति पञ्चदशेति । ‘संघयण’ इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकप्रथमादिसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयसुभगत्रिकदुःस्वरनाम्नां प्रधानभावेन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानमन्निकर्षवदवसेयः । ‘णवर’ मित्यादिनाऽपञ्चादमाह—अपर्याप्तनाम नैव वध्नाति । पर्याप्तपराधातोच्छ्वासनामानि नियमेन वध्नाति, अन्यतरस्वरखगती नियमेन वध्नाति, पर्याप्ततिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यबन्धकत्वात्प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धकस्य । ‘तसु’ इत्यादि, त्रसौदागिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननप्रकृतित्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवदस्ति । ‘पर’ इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनाम नैव वध्नाति, तद्व्यतिक्तान्यतमजाति नियमेन वध्नाति ।

‘परधाय’ इत्यादि, पराघातनाम वध्नात् सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीरौदागिकशरीरनाम पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नी च नियमेन वध्नाति । ‘ण’ इत्यादि, अपर्याप्तनाम नैव वध्नाति । ‘व’ इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रकृतिपञ्चकं विकल्पेन वध्नाति, । “संघयण” इत्यादि, संहननमन्यतममन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन वध्नाति । ‘सेस्’ इत्यादि, उदितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिमन्यतमं संस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी पर्याप्तापर्याप्तस्वरत्रैत्रमस्थावरादियुगलाष्टकेऽष्टान्यतरप्रकृतयोऽन्यतरगोत्र चेति सप्तदशेति । “एमेव” इत्यादि, पर्याप्तोच्छ्वासनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्षः पराघातप्रधानमन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।

“वाचर” इत्यादि, वादरनाम्नो बन्धकः सूक्ष्मनाम नैव बध्नाति, विरोधात् । “णियमा” इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतीर्गौदारिकशरीरनाम च नियमेन बध्नाति । ‘वा’ इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयात्पोद्योतपराधानोच्छ्वासादौदारिकाङ्गोपाङ्गरूपाः सप्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । “संधयण” इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरस्वरभन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । ‘सेस्’ इत्यादि, कथितशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तारचेमाः अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदस्तिर्यग्मनुष्यगतिश्चेऽन्यतरग गतिरन्यतमा जातिरन्यतमसंस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी वादरसूक्ष्मनामस्वरवज्रेणपस्थावगदियुगलाष्टकेऽन्यतरा अष्टप्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति सप्तदशेति । “एवं” इत्यादि, प्रत्येकानामाः प्राधान्येन सन्निकर्षो वादरनामप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः, नवरं व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिगितिन्यायेन सूक्ष्मवादरनाम्नो बन्धो विकल्पेन साधारणस्य चाऽन्यो ज्ञेयः । “सायन्व” इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोः परस्थानमन्निकर्षः मातवेदनीयसन्निकर्षवद् भवति, तुल्यप्रायत्वात्, अथ विशेषमावेदयति “णचर” इत्यादि, अपर्याप्तनाम नैव बध्नाति, विरोधित्वेन स्वस्थानमन्निकर्षेऽपि तद्वन्वस्य निषिद्धत्वात्, पराधातोच्छ्वासपर्याप्तनामानि नियमतो बध्नाति, प्रकृतप्रकृतिभ्यां सार्धं तद्वन्वस्य नियतत्वेन स्वस्थानमन्निकर्षेऽपि तथैव भणितत्वात् । ‘सायन्व’ इत्यादि, यशःकीर्तिनाम्नः प्राधान्येन मन्निकर्षः मातवेदनीयप्रधानमन्निकर्षवद् विज्ञेयः । ‘पर’ इत्यादिना विशेषमृषदर्शयति-पराधातोच्छ्वासवादरत्रिकनामानि नियमेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिबन्धस्य तद्वन्वाविनाभावित्वात् । ‘णउ’ इत्यादि, सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्नाति । “धुव” इत्यादि, उच्चैर्गोत्रं बध्नन् सप्तचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतीर्नियमेन निर्वर्तयति, उच्चैर्गोत्रेण महामां बन्धस्य नैयत्यात्, मनुष्यायुषो बन्ध विकल्पेन विदधाति, तस्य कदाचिदेव बध्यमानत्वात् । निर्यग्विक जातिचतुष्कस्थावर चतुष्काऽऽतपद्विकनीचैर्गोत्ररूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, विरोधात् । उक्तेभ्योऽवशिष्टानां वेदनीयादीनामन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतप्रकृत्या महामां बन्धस्थावश्यम्भाविन्वात् । शेषप्रकृतयश्चेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमवेदोऽन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतरखगतिः स्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति । “ओधन्व” इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो धोषवद् विज्ञेयः । तारचेमाः शेषप्रकृतयः-एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कं स्थावरचतुष्कमातपोद्योतनाम्नी चेति ।

॥६४३-६५॥ अथ मनुष्यौघादिमार्गणसु तमाह

तिमणुयजोरासेसु सप्ताणोधन्व णवरि जिणवधो ।

णररलदुगवहराणि ण देवविज्जियदुग णियमा ॥६६६॥

णरतिगउरलदुगवहरवधो णो चेव वधए तित्यं ।

णियमाहित्तो वधइ यीणद्धितिगाणचउगाणि ॥६६७॥

(प्रे०) 'तिमणुय' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणास्वौदारिक-
काययोगमार्गणायां च सर्वाणां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-
जिननामवन्धको मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव वध्नाति, देवद्विक-
चैक्रियद्विके च नियमेन वध्नाति, मार्गणास्वासु जिननाम सह देवप्रायोग्यप्रकृतीनामेव वन्धभावात् ।
'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननप्रकृतिवन्धको जिननाम नैव वध्नाति,
तुर्यादिगुणस्थानकेष्वेव तस्य वध्यमानत्वान्मनुष्यत्रिकादिप्रकृतीनां चात्र प्रथमद्वितीयगुणस्थानकयोरेव
वध्यमानत्वात् । 'णियमारिणो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धितुष्कप्रकृतिसप्तकं निय-
मेन वध्नाति ॥६६६-६७॥

अथ देवौघादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षं प्रतिपादयन्माह

गुणचतधुवोरालिधपरधाऊसासवायरतिगाणं ।
एग बंधतो सुरईसाणंतविउवदुगेसुं ॥६६८॥
बंधइ गियमा सेसा चउचत्ता बंधए व अणमिच्छा ।
थीणद्धितिगाडुआउगजिणुरलुवगायवदुगाणि ॥६६९॥
अणयरा अवि बंधइ वासरसंधयणखगइयडोओ ।
बंधइ गियमा सेसा अणयरा वेअणीआई ॥६७०॥
पणयालीसधुवउरलपरधाऊसासवायरतिगाणि ।
णियमेग बंधंतो थीणद्धितिगाणचउगाणं ॥६७१॥
मिच्छायवाउदुगुरलुवगाणि व ण उ जिणं व अणयरा ।
संधयणस्सरखगई गियमाऽण्णा वेअणीआई ॥६७२॥
बंधइ व सायवधो थीणद्धितिगाणचउगमिच्छाणि ।
तिरिमणुयाउगआयवदुगतित्थोरालुवगाणि ॥६७३॥
सेसगुणचतधुवुरलपरधाऊसासवायरतिगाणि ।
बंधइ गियमाहिन्तो ण चेव वधेइ पडिवक्खो ॥६७४॥
संधयणस्सरखगई वाऽणयरा वि गियमाऽणवेआई ।
एव हवेज्ज दुजुगलअसायतिथिराइजुगलाणं ॥६७५॥
बंधइ व मिच्छत्रघो दुआउआयवदुगुरलुवगाणि ।
णियमा धुवत्रंघिउरलपरधाऊसासवायरतिगाणि ॥६७६॥ (गीतिः)
तित्थयरं णोबंधइ सरसंधयणखगई वि वाऽणयरा ।
बंधइ गियमा सेसा अणयरा वेअणीआई ॥६७७॥
एमेव णपुमहुं डगदुहगाणावेयणीअगोआणं ।
णवरि ण पडिवक्खो वा मिच्छं दुहगाइतिगत्रंघो ॥६७८॥
तिरियाउ बंधंतो मिच्छत्तायवदुगुरलुवगाणि ।
वा बंधए ण चेव हि णरतिगतित्युच्चगोआणि ॥६७९॥

ध्रुवणीअतिरिदुगउरलपरधाऊसासवायरतिगाणि ।
 वधइ णियमाऽणायरा अवि वा संघयणसरखगई ॥६८०॥
 वधइ णियमा सेसा वारस अणायरवेअणीआई ।
 तिरिदुगउज्जोआणं एव णवरं व तिरियाउ । ६८१॥
 णियमेगिदियवघी ध्रुवणपुमतिरिदुगहुंडुरलणीअ ।
 परधूससा थावरदुहगाणादेयवायरतिगाणि : ६८२ । (गीति)
 णियमाऽणायरा छ दुजुगलवेअणीअतिथिराङ्गुगलणं ।
 तिरियाउआयवदुगं व ण सेसा थावरायवाणेवं । ६८३ । (गीति)
 णिरयववऽणायण णवरि जिणस्त वंधो भवे ण भवणतिगे ।
 वेउव्वमीसजोगे वधो आऊण जेव मवे ॥६८४॥

(प्रे०) 'शुण' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधमेशानरूपासु पट्सु देवमार्गणासु
 वैक्रियकाययोगवक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये च मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोन-
 चत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृत्यौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपासु पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वे-
 कतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अनन्तानुबन्धि-
 चतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धिंत्रिकनिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गनामपोधोतनामरूपा-
 श्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'अणायरा' इत्यादि, अन्यतरस्वरमन्यतमसंहननमन्यतरां च
 खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अभिहितशेषवेदनीयाधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।
 ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतरा तिर्यग्मनुष्यद्वये गतिरन्यतमा
 जातिरेकतमसंस्थानं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्वरवर्जसस्थावरादिनययुगलेष्वन्यतरा
 नप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेत्यष्टादशेति ।

"पणयालीस' इत्यादि, स्त्यानद्धिंत्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्करूपे प्रकृतिसप्तकेऽन्यतमां प्रकृतिं
 बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानीकृतप्रकृतिवर्जशेषपञ्चचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृत्यौदारिकशरीरनामपरा-
 घातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपा एकपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'मिच्छायवा' इत्यादि, मिथ्यात्व-
 मोहनीयातपोधोततिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, जिन-
 नाम नैव बध्नाति, तुय्यगुणस्थानक एव कस्यचिद्बन्धसत्त्वेन तद्वन्धस्य तथा सह विरोधात् । 'व' इत्यादि,
 अन्यतमसंहननमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, कथितशेषवेद-
 नीयाधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चाऽनन्तरोक्ताजानावरणीयादिप्रधानसन्निकर्षे कथिता एवा-
 देयाः । 'बंधइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः स्त्यानद्धिंत्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीय-
 तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयातपद्विकजिननामौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि,
 मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीरौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वास
 वादरत्रिकनामानि च नियमेन बध्नाति । 'ण वेव' इत्यादि, सातवेदनीयप्रतिपक्षभूताम-

सातवेदनीयप्रकृतिं नैव बध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वात् । 'संघयण' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषवेदाध्न्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्च पूर्ववज्ज्ञेयाः, नवरं सातासातवेदनीयद्वयं न कथनीयम् । 'एवं' इत्यादि, हास्यशोकारत्यग्न्यसातवेदनीयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नां प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'बन्धह' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसन्निकर्षः कथ्यते, य चानन्तरोक्तनिद्रानिद्रासन्निकर्षवद् भाव्यः । गाथाद्वयी कण्ठ्या ।

"एमेव" इत्यादि, नपुंसकवेदहुण्डकसंस्थानदुर्भगानादेयनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मिथ्यात्वमोहनीयवद् विज्ञातव्यः । "णचरि" इत्यादिनाऽपवाद उच्यते-नपुंसकवेदप्रभृतिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षभृतां प्रकृतिं नैव बध्नाति, दुर्भगानादेयनाम्नोर्नीचैर्गोत्रस्य च बन्धको मिथ्यात्वमोहनीयं विकल्पेन बध्नाति, प्रथमगुणस्थानके तेन तस्य बध्यमानत्वाद् द्वितीयगुणस्थानके च तेनाऽवध्यमानत्वात् ।

"तिरियाड" इत्यादि, तिर्यगायुर्वधनम् मिथ्यात्वमोहनीयातपोद्योतौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृतिष्वुष्क विकल्पतो बध्नाति । "ण चेव" इत्यादि, मनुष्यत्रिकजिननामोच्चैर्गोत्रप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, प्रकृतिबन्धविरोधात् । 'धुव' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृतीर्नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपा नव प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'चा' इत्यादि, अन्यतमं संहननमन्यतरं स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । "बन्धह" इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमा जातिरेकतमं सस्थानं त्रयस्थावर-स्थिराऽस्थिर-शुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति । 'तिरि' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनाम्नां प्रधानतया सन्निकर्षस्तिर्यगायुष्कवदस्ति, तिर्यग्द्विकादिप्रकृतिबन्धकस्तिर्यगायुर्विकल्पेन बध्नाति ।

"णियमे" इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धप्रकृतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डकसंस्थानौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासस्थावरदुर्भगानादेयवादरत्रिकरूपा एकषष्टिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "णयरा" इत्यादि, हास्यगतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलं साताऽसातवेदनीयद्वयेऽन्यतरद् वेदनीयं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्त्रः प्रकृतयश्चेति षडन्यतराः प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । "तिरिया" इत्यादि, तिर्यगायुरातपोद्योतप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, एकेन्द्रियजातिनाम्नामह शेषप्रकृतीनां बन्धस्य विरुद्धत्वात्, ताश्चे माः स्त्रीपुरुषवेदद्वयं मनुष्यत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयं त्रसनाम सुभगत्रिकं दुःस्वरं जिननामो-

चैर्गोत्रं चेति सप्तविंशतिरिति । “थावर” इत्यादि, स्थावराऽऽतपनाम्नोः प्राधान्येन सन्निकर्ष एकेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवदवसेयः । “णिरयव्व” इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो नरकौधसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । “णवरि” इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तिसृषु देवमार्गणासु जिननाम्नो बन्धो नास्ति तस्मात्तदाश्रित्य सन्निकर्षोऽपि नास्ति । व्याख्या-
नतो विशेषप्रतिप्रचिरितिन्यायेन प्रकृतदेवौवादिमार्गणासु यथा यथा प्रकृत्या सह जिननाम्नः सन्निकर्षोऽभिहितः, स सन्निकर्षो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणासु तद्वन्धाभावान्न ग्राह्यः । वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामायुपः सन्निकर्षो नास्ति, अस्यां मार्गणायामायुर्वन्धाभावात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-स्त्रीपुरुषेदमनुष्यायुर्मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कहृण्डवर्जसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयजिननामत्रसमुभगत्रिकदुःस्वरोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तविंशतिरिति ॥६६८८४॥

अथा-ऽऽनतादित्रयोदशमार्गणासु स प्रतिपाद्यते

एगं वंधेमाणो गेविज्जंतेसु आणयाईसुं ।
गुणचत्तधुवणरउरलजुगलपणिदितसचउवाणं ॥६८५॥
परधाऊसासाओ णियमाऽण्णा वधए व वधेइ ।
यीणद्धितिगाणचउगमिच्छणराउजिणणामाणि ॥६८६॥
बंधइ णियमाऽण्णयरऽण्णवेअणीआईगा णराउस्स ।
एवं एमेव भवे पुमदुजुगलवेअणीआणं ॥६८७॥
आइमसधयणागिइपसत्त्यखगइयिरछत्रकअयिराणं ।
असुहअजसउज्जाण य णवरं बंधइ ण पडिवक्खा ॥६८८॥
एगं वंधेमाणो अणयीणद्धियतिगाण वधेइ ।
मिच्छत्तणराऊणि व ण चेव वधेइ तित्तययर ॥६८९॥
धुवणररलदुगपरधाऊसासपणिदितसचउवकाणि ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरऽण्णवेअणीआई ॥६९०॥
यीचउसंधयणागिइकुखगइहुहगतिगणीअगोआणं ।
एमेव सण्णियासो णवर वधइ ण पडिवक्खा ॥६९१॥
धुवणररलदुगपरधाऊसासपणिदितसचउवकाणि ।
बंधइ मिच्छववी णियमा ण जिणं व मणुयाउं ॥६९२॥
बंधइ णियमा चउदस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एवं णपुमखिवदुगहुंडाण पर ण पडिवक्खा ॥६९३॥
जिणवधो वाउं जुगलवेअणीअतिथिराइजुगलाण ।
अण्णयरऽण्ण व णियमा धुवगुणचत्तपुमसेसमुहा ॥६९४॥

(प्रे०) “एगं” इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशदेवमार्गणासु मिथ्या-
त्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्ब्रुववन्धिप्रकृतिमनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवस-

चतुष्केषु पराधातोच्छ्वासयोश्चैकतमां प्रकृतिं बध्नन् नियमेनैतास्तदन्याः प्रकृतीर्वध्नाति ।
 'च' इत्यादि, स्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिध्यात्वमोहनीयमनुष्यायुर्जिननामरूपा दशप्रकृती-
 र्विकल्पेन वध्नाति । "बध्" इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः-
 एकतरं वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः
 स्थिरास्थिरादिपट्युगलेधन्यतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति चतुर्दशेति । "णाराउस्स" इत्यादि,
 मनुष्यायुष्कस्य सन्निकर्ष एवमेव त्रिवेयः । "एमेव" इत्यादि, पुरुषवेदहास्यशोकरत्य-
 रतिसाताऽसातवेदनीयप्रकृतीनां वचर्षमनाराचमंहननममचतुरस्रसंस्थानतुल्यगतिस्थिरपट्काऽस्थिरा-
 ऽशुभाऽयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रप्रकृतीनां च प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञात-
 व्यः । "णवरं" इत्यादिनापवादं प्रदर्शयति-आमां प्रकृतीनां बन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव
 वध्नाति । 'एगं' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानद्वित्रिकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन्
 मिध्यात्वमोहनीयमनुष्यायुष्कप्रकृतिद्वयं विकल्पतो वध्नाति । 'ण चेव' इत्यादि, जिननाम नैव
 वध्नाति, प्रस्तुतबन्धकस्य सम्प्रगृष्टित्वाभावात् । 'धुव' इत्यादि, शेषपञ्चचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृती-
 र्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराधातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रयचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमेन
 वध्नाति । 'सेसा' इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चानन्तरोक्ताश्चतु-
 र्दश । 'थी' इत्यादि, स्त्रीवेदमध्यमसंहननचतुष्कमध्यमसंस्थानचतुष्काशुभखगतिदुर्मगत्रिकनीचैर्गोत्र-
 प्रकृतीनां प्रधानतया सन्निकर्षोऽनन्तानुबन्धिप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् वेदितव्यः । 'णवरं' इत्यादिना
 विशेषं दर्शयति-एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव वध्नाति । 'धुव' इत्यादि, मिध्यात्वमोहनीय-
 बन्धकः पट्चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीर्मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपराधातोच्छ्वासपञ्चेन्द्रियजातित्रयचतु-
 ष्करूपा एकादशप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'ण' इत्यादि, जिननाम नैव वध्नाति । 'च' इत्यादि,
 मनुष्यायुर्विकल्पेन वध्नाति । "बध्" इत्यादि, अभिहितशेषचतुर्दशवेदनीयाधन्यतरप्रकृती-
 र्नियमेन वध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एवात्र ग्राह्याः । 'एवं' इत्यादि, नपुंसकवेदसेवार्तसंहननहुण्डक-
 संस्थानप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मिध्यात्वमोहनीयवद् वेद्यः । 'परं' इत्यादिनाऽपवादं प्रद-
 र्शयति-नपुंसकवेदादिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव वध्नाति । 'जिण' इत्यादि, जिननामबन्ध-
 विधायी विकल्पेनायुष्कं वध्नाति, आयुःसामान्याभिधानेऽपि नरायुषो ग्रहणं बोध्यम्, तदतिरि-
 क्तायुषा प्रकृते बन्धाभावात् । 'जुगल' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलम-
 न्यतरवेदनीयं स्थिरास्थिरशुभाशुमयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति पट्-
 प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'जियभा' इत्यादि, मिध्यात्वमोहनीयाद्यष्टकवर्जैर्कोनचत्वारिंशद्भ्रुव-
 बन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदं शेषशुभप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः शेषशुभप्रकृतयः-मनुष्यद्विकं
 पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं शुभसंहननं प्रथमसंस्थानं शुभखगतिः पराधातोच्छ्वासे त्रयचतुष्कं सुभग-

त्रिकमुच्चैर्गोत्र-चेति । शेषप्रकृतीः पुनर्न वध्नाति, तासां प्रथमद्वितीयगुणस्थानद्वयं यावद् वध्य-
मानत्वादिति ॥६८५-९४॥

अथ पञ्चाऽनुत्तरमार्गणासु तमाह

पचसु अणुत्तरेसुं गुणयालीसधुववधिपुरिस्ताणं ।
सायमणुयाजयिरसुहजसज्जिणवज्जसुहसेसाणं ॥६८५॥
एग वधतोऽण्णा गियमा वधेइ व जिणणराऊणि ।
वधेइ गियमा सेसा छऽण्णयर। वेअणीआई ॥६९६॥
मणुयाउगतित्थाण एव एमेव वारसण्ह भवे ।
सायाईण एवर ण चेव वधेइ पडिवक्खा ॥६९७॥

(प्रे०) 'पंचसु' इत्यादि, पञ्चानुत्तरमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिरुपवेदप्रकृतिषु मातवेदनीयमनुष्यायुःस्थिराशुभयशःकीर्तिजिननामधर्मशेषशुभप्रकृतिषु चैकतमा प्रकृतिं वधन् तदतिरिक्ता अन्याः प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'व' इत्यादि, जिननाममनुष्यायुःप्रकृतिद्वयं विकल्पतो वध्नाति । ताश्चेताः- शेषशुभप्रकृतयः-मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं वज्रपमनाराचमंहननं समचतुरस्रमंस्थानं मनुष्यानुपूर्वी सुखगतिश्चमचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्रामनाः ॥ उच्चैर्गोत्र चेति । 'गियमा' इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिष्वष्टप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेताः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिराशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतगास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'मणुया' इत्यादि, मनुष्यायुर्जिननामप्रकृत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिप्रधानमन्निकर्षवदवसातव्यः । 'एमेव' इत्यादि, माताऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिराशुभयशःकीर्त्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिसन्निकर्षवदधिगन्तव्यः । 'एवरं' इत्यादिनाऽपवादं प्रतिपादयति-मातवेदनीयादिप्रकृतिवन्धकस्तन्प्रतिपक्षभूताऽमातवेदनीयादिप्रकृतीर्नैव वध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वात् ॥६९५-७॥

अथ तेजःकायवायुकायमार्गणासु परस्थानसंनिकर्षोऽभिधीयते

सत्त्वागणिवाऊसु एग धुवतिरिदुगुरलणीआणं ।
वधतो गियमाऽण्णा मधयणसरखगई व अण्णयर। ॥६९८॥ (गीतिः)
तिरियाउगआयवदुगपरघाऊसासउरलुवगाणि ।
वा गियमाऽण्णयर।ऽण्णा तिरियाउस्सेवमेव भवे ॥६९९॥
एवं णपुमजुगलवेअणीअहुं डगपणायिराईण ।
वायरपत्तेआण य एवरं वधइ ण पडिवक्खा ॥७००॥
इत्थि वधतो धुवतिरिधउरलदुगपणिदिपरघाया ।
तेह कसासतसवज्जणीआई वधए गियमा ॥७०१॥

वेजदुगायवयोवरजाइचउक्ताणि जेव बंधइ वा ।
तिरियाउज्जोआइण्णा गियमाइण्णयरा भवे एवं ॥७०२॥
पुमपणसंधयरागिइसुहलगइसुहमतिगाण एमेव ।
कुलगइसराण णवरं गियमा अण्णयरचउजाई ॥७०३॥
पच्चिदियबंधी धुवतिरिउरलतसदुगणीअपत्तेआ ।
गियमा वा तिरियाउगपरधाऊसासउज्जोआ ॥७०४॥
जाइचउगयावरुगआयवसाहारणाणि बंधइ णो ।
सरलगई वा गियमाइण्णयरा वेप्रणीआई ॥७०५॥
उरलोवंगछिवदुगतसाण पच्चिदियउ होइ पर ।
एगिदियं ण बंधइ गियमा सेसाइण्णयराई ॥७०६॥
परधाऊसासाण पज्जथिरसुहाण होइ उरलव्व ।
णवरं ण अपज्जत्तं गियमा पज्जपरधायऊसासा ॥७०७॥
धुवणपुमतिरिदुगउरलहुं डगपंचमथिराइणीआणि ।
गियमा अपज्जबंधी वाउछिवदुगलुवंगाणि ॥७०८॥
सत्त पणजाइकुजुगलदुवेमणीअतितसाइजुगलाणं ।
बंधइ गियमाइण्णयरा ण उ बंधइ सेसछब्बीसा ॥७०९॥
उरलव्व जसरा णवरि परधाऊसासबायरतिगाणि ।
गियमा ण उ अजससुहमतिगाणि सेसाण ओधव्व ॥७१०॥

(प्रे०) 'संव' इत्यादि, ओषध्दुगौधवाद्रौधपर्याप्तद्वक्ष्मपर्याप्तवाद्राऽप्याप्तद्वक्ष्माऽप्याप्तवाद्र-
भेदेन सप्तसु तेजस्कायभार्गवाणामु सप्तसु च वायुकायभार्गवाणामु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतिषु तिर्यग्-
द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रप्रकृतिचतुष्के चैकतमां प्रकृतिं बध्नान् तदतिरिक्ताः शेषा एताः प्रकृतीर्निय-
मेन बध्नाति । 'संधयण' इत्यादि, अन्यतमसंहननमन्यतरस्वरमन्यतरां स्वगतिं च विकल्पेन-
बध्नाति । 'तिरिय' इत्यादि, तिर्यगायुरातपोद्योतपराधातोच्छ्वासौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानि विकल्पतो-
बध्नाति । 'गियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तास्वेमाः—एकतरं
वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिरन्यतमसंस्थानं स्वर-
चर्जत्रसस्यावरादिनवयुगलेभ्वन्यतरा नवप्रकृतयश्चेति पञ्चदशेति । 'तिरिया' इत्यादि, तिर्यगायुषः
प्राधान्येन सन्निकर्षो निरुक्तैकतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । 'एवं' इत्यादि, नष्टुंसकवेदहास्य-
शोकरत्यरतिमाताऽसातवेदनीयद्वडकसंस्थानास्थिराशुभदुर्मगानादेयायशःकीर्तिवादरप्रत्येकेनामप्रकृ-
तीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतैकतरप्रकृतिसन्निकर्षवज्ज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—
नष्टुंसकवेदादिप्रकृतिवन्धकेस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'इत्थि' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धकः सप्त-
चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्र-
प्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वेअ' इत्यादि, पुरुषनष्टुंसकवेदद्रयातपस्यावरचतुष्केजातिचतुष्करूपा
एकादशप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तिर्यगायुरुद्योतप्रकृती विकल्पतो बध्नाति । 'ऽण्णा'

इत्यादि, उक्तातिरिक्तान्यतरप्रकृतीनियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादि-
युगलमेकतमं संहननमेकतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्टकेऽन्यतराः पट्प्रकृतय-
स्येत्येकादशेति । ‘भवे’ इत्यादि, पुरुषवेदप्रथमादिपञ्चसंहननसंस्थानशुभखगतिमुभयत्रिकलक्ष-
णानां पञ्चदशप्रकृतीनां सन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् विज्ञेयः । ‘एभेव’ इत्यादि, कुखगति दुःस्वरना गो-
रपि परस्थानसन्निकर्षः स्त्रीवेदवद् बोध्यः केवलं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्यतराजातिनियमतो
वध्यते । तथा निरुक्तपुरुषवेदादिसप्तदशप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे स्वप्रतिपक्षप्रकृति नैव वध्नातीति व्या-
ख्येयम् । “पंचिदिय” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतितिर्यग्द्वि-
कौदारिकद्विक्रयसवादरनीचैर्गोत्रप्रत्येकनामप्रकृतीनियमेन वध्नाति । ‘वा’ इत्यादि, तिर्यग्गायुःपराधातो
ञ्छ्वासोद्योतनामप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । ‘जाह’ इत्यादि, एकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरद्विकौ-
तपमाधारणनामानि नैव वध्नाति । ‘सर’ इत्यादि, अन्यतरत्स्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन
वध्नाति, अपर्याप्तप्रायोग्यप्रकृतिवन्धवेलायां तेनासा प्रकृतीनामवध्यमानन्वाप्याप्तप्रायोग्यवन्धवेलायां
च वध्यमानत्वात् । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषवेदनीयाद्यन्यतरप्रकृतीनियमेन वध्नाति,
ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलमन्यतमो वेदोऽन्यतमं संस्थानमन्यतमं संहननं
पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुमाशुभसुभगदुर्मगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपट्टकेऽन्यतराः पट्-
प्रकृतयश्चेति द्वादशेति । “उरलो” इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननत्रयनामप्रकृतित्रयस्य
प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः । ‘पर’ इत्यादिनाऽपवादमाह—एके-
न्द्रियजातिमेतत्प्रकृतिवन्धको नैव वध्नाति । तदतिरिक्तशेषाऽन्यतरजातिं नियमेन वध्नाति ।
‘परचा’ इत्यादि, पराधातोञ्छ्वासपर्याप्तस्थिरशुभप्रकृतिपञ्चकस्य सन्निकर्षे औदारिकशरीरनामवदस्ति ।
“णवर” इत्यादि, एतत्प्रकृतिवन्धकोऽपर्याप्तनाम नैव वध्नाति, पर्याप्तपराधातोञ्छ्वासनामानि
नियमेन वध्नाति ।

‘ध्रुव’ इत्यादि, अपर्याप्तनामवन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतिनपुंसकवेदतिर्यग्-
द्विकौदारिकशरीरनामहण्डकसंस्थानाऽस्थिराशुमदुर्मगानादेयायशःकीर्तिनामनीचैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चा-
शत्प्रकृतीनियमेन वध्नाति । ‘वाड’ इत्यादि, तिर्यग्गायुःसेवार्तसंहननौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रकृती-
र्विकल्पेन वध्नाति । ‘सत्त’ इत्यादि, जातिपञ्चकेऽन्यतमा जातिर्हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरयुगल-
मन्यतरद् वेदनीय त्रयस्थावर-वादरसूक्ष्म-प्रत्येक साधारणलक्षण-युगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति
सप्तप्रकृतीनियमेन वध्नाति । ‘णड’ इत्यादि, उक्तातिरिक्तपट्विशतिप्रकृतीनैव वध्नाति ।
ताश्चेमाः—स्त्रीपुरुषवेदत्रय प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्वयमातपोद्योतद्वयं परा-
धातोञ्छ्वासनामी पर्याप्तस्थिरपट्टकदुःस्वरप्रकृतयश्च । “उरलव्व” इत्यादि, यशःकीर्तिनाम्नः
प्राधान्येन सन्निकर्षे औदारिकशरीरनामवज्ज्ञेयः । ‘णवरि’ इत्यादि, पराधातोञ्छ्वासनामादरत्रिकनामानि

नियमेन वक्ष्णाति, अयशःकीर्तिस्सूक्ष्मत्रिकनामानि नैव वक्ष्णाति । “सेसाण” इत्यादि, उक्तव्य-
तिगित्तनवप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष ओषवद्वसेयः, नवरमवधमानाः प्रकृतयः स्वप्रायोग्याः
कथनीया इति । ताश्चेमाः शेषनवप्रकृतयः-जातिचतुष्कमातपोद्योतनाम्नी स्यात्वा सूक्ष्म-साधारणनाम-
त्रयं चेति ॥६९८ ७१०॥

इदानीमौदाहिकमिश्रभार्गवायां स उच्यते

बंधंतो एगमुलमीसे धुववधिऊणचत्ताणं ।
णियमाऽण्णा वाऽण्णयरं संधयणउवगसरखगई ॥७११॥
व अडधुवआउदुगजिणपरधाऊसासआयवदुगाणि ।
बंधइ णियमा सेसा अण्णयरं वेअणीआई ॥७१२॥
दुजुगलअसायवायरपत्तेअयिराइतिजुगलाणेव ।
णवरं ण उ पडिवक्खे थिरसुहवंधी ण उ अपज्जं ॥७१३॥
णियमा य पज्जपरधाऊसासा बंधए ण जसवधी ।
सुहमतिगं खलु णियमा परधाऊसासवायरतिगाणि ॥७१४॥ (गीतिः)
बंधइ व सायवंधी धुववधिदुआउआयवदुगाणि ।
जिणपरधाऊसासा ण असायं वाऽण्णयरसेसा ॥७१५॥
पुमवधी थीणद्धियतिगमिच्छाणाउदुगजिणुज्जोआ ।
बंधइ सिआ बंधइ वा अण्णयर पि संधयण ॥७१६॥
णियमाऽण्णधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
बंधइ ण दुवेआयवयावरजाइचउगाणि खलु ॥७१७॥
बंधइ णियमा सोलस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एमेवे आइमागिइपसत्यखगइसुहगतिगाणं ॥७१८॥
सुरगइवधी णियमूणचत्तधुवपुमपणिदिविउवदुगं ।
सुखगइमागिइपरधाऊसाससुराणुपुव्वी य ॥७१९॥
तसचउगं सुहगतिगं उच्चं छऽण्णयरवेअणीआई ।
व जिणं सेसा पेवं विउवदुगसुराणुपुव्वितित्थाणं ॥७२०॥ (गीतिः)
णियमा पणिदिवंधी गुणचत्तधुवतसजुगलपत्तेआ ।
चउजाइआयवसुहमथावरसाहारणाणि ण उ ॥७२१॥
व उण अडधुवदुआउगपरधाऊसासतित्यउज्जोआ ।
बंधइ वाऽण्णयरं अवि पयडी संधयणसरखगई ॥७२२॥
बंधइ णियमा सोलस सेसा अण्णयरवेअणीआई ।
एवं तसस्स णवरं णियमा अण्णयरचउजाई ॥७२३॥
एवं बंधंतोऽण्णा परधाऊसासपज्जणामाण ।
णियमा दो ण अपज्जं णाणावरणव्व सेसाओ ॥७२४॥
बंधइ व उच्चवंधी मिच्छऽअथीणद्धितिगणराउजिण ।
णियमाऽण्णधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ॥ ७२५॥ (गीतिः)

ण तिरितिगजाइयावरचउनायवजुगलणीअगोआणि ।
 वाऽणयरं संधयणं णियमाऽणयरऽणवेअणीआई ॥७२६॥
 सेसाण अपज्जत्तगपणिदितिरिखव्व परमवघोऽत्थि ।
 सुरविउवदुगजिणाण उ सव्वह वघइ व मिच्छत्तं ॥७२७॥
 थोणद्धितिरिणरदुहगतिगचउअणइत्थिउरलदुगवधे ।
 अचरमसधयणागिइकुखगइउज्जोअवधे य ॥७२८॥

(प्रे०) 'बन्धन्तो' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैको-
 नचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमावधन् तदन्या अष्टात्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीर्नियमेन
 वध्नाति । 'चा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वर-
 मन्यतरां च खगतिं विकल्पतो वध्नाति । 'व' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्थानद्वित्रिकानन्तानु-
 न्धिचतुष्करूपा अष्टौ भ्रुवबन्धिप्रकृतीस्तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयजिननामपराधातोच्छ्वासातपोधोतनाम-
 प्रकृतीश्च विकल्पेन वध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, अभिहितेतरवेदनीयाधन्यतरप्रकृतीर्नियमेन
 वध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीय हास्यादियुगलद्वयेऽन्यतरद् युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्य-
 तिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामान्यतमसंस्थानं
 देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वित्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्वरवर्जत्रयस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरानवप्रकृतयोऽन्य-
 तरद् गोत्रं चेत्येकोनविंशतिरिति । 'दुजुगल' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतियुगलद्वयाऽसातवेदनीय-
 वादरप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नामेवमेवाऽनन्तरोक्तवत्सन्निकर्षो विज्ञेयः ।
 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—एतत्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव वध्नाति, स्थिर-
 शुभनागोर्बन्धकोऽपयस्तिनाम नैव वध्नाति, ताभ्यां सह पर्याप्तनाम्न एव वध्यमानत्वात् ।
 'णियमा' इत्यादि, पर्याप्तपराधातोच्छ्वासनामानि नियमेन वध्नाति । 'ण' इत्यादि, यशः-
 कीर्तिनामबन्धकः सूक्ष्मत्रिकं नैव वध्नाति, पराधातोच्छ्वासवादरत्रिकनामानि नियमेन वध्नाति ।

'बन्धइ' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीरातपोधोततिर्यग्मनु-
 ष्यायुःप्रकृतिचतुष्कं जिननामपराधातोच्छ्वासनामानि च विकल्पेन वध्नाति, यतः सातवेदनीयस्य
 बन्धकः सयोगिकेवली निरुक्तप्रकृतीर्न वध्नाति, तदन्यः सातवेदनीयबन्धकस्तु यथायोगमुक्तप्रकृती-
 र्वध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव वध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वेन विरोधात् । तथोक्त-
 शेषाऽन्यतरप्रकृतीरपि विकल्पेन वध्नाति, सयोगिकेवली आसामन्यतरप्रकृतीनामपि सर्वथाऽबन्धकः
 शेषाः पुनर्बन्धकाश्चेति कृत्वा । ताश्चेमाः—अन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्ग-
 तित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरं तद्दङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्ग-
 मन्यतमं संहननमन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिर्देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वित्रयेऽन्यतमानुपूर्वी त्रसस्थावरा-
 दिदशयुगलानामन्यतरा दशप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति द्वाविंशतिरिति । 'पुमबन्धो' इत्यादि, पुरुषवेद-

पञ्चकः स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयानन्तानुबन्धचतुष्कतिर्यग्मनुष्यायुर्द्रव्यजिननामोद्योतनामरूपा
द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'बन्धइ चा' इत्यादि, अन्यतमं संहनन विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराधा-
तोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपप्रकृतिमत्तकं च नियमेन वध्नाति । 'ण' इत्यादि, स्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्था-
वरचतुष्कजातिचतुष्करूपा एकादशप्रकृतीर्नैव वध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तवेदनीया-
धन्यतरपोडशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देव-
मनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरशरीरमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये-
ऽन्यतराङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानमन्यतरा स्वगतिर्देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्थरास्थिरा-
दियुगलपट्केऽन्यतरपट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रञ्चेति । 'एभेव' इत्यादि, समचतुरस्रसंस्थानसुखगति-
सुभगत्रिकप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः पुरुषवेदप्रधानमन्निकर्षवदवसेयः ।

“सुरगहबन्धो” इत्यादि, देवगतिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिं-
शद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराधातोच्छ्वास-
सुरानुपूर्वीत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाः मत्तदशप्रकृतीस्तथाऽन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादि-
युगलं स्थिराऽस्थिरशुभाशुमयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतीश्चेति पडन्यतर-
प्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन वध्नाति । 'सेसा' इत्यादि,
उक्तशेषप्रकृतीर्नैव वध्नाति, ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्करूपं
प्रकृत्यष्टकं स्त्रीनपुंसकवेदौ तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमेकेन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकद्विकं संहनन-
पट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभसुखगतिः स्थावरचतुष्कं दुर्भगत्रिकमाद्योद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं
चेति चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतयः । 'एवं' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीजिननामरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य
प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरगतिप्रधानमन्निकर्षवदवसेयः ।

'णियमा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोन-
चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीस्त्रमत्रादरप्रत्येकप्रकृतित्रयं च नियमेन वध्नाति । 'चउ' इत्यादि, एके-
न्द्रियादिजातिचतुष्कातपञ्चदशस्थायमावरणनामानि नैव वध्नाति । 'व' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनी-
यस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्करूपं भ्रुवबन्धिप्रकृत्यष्टकं तिर्यग्मनुष्यायुर्द्रव्यपराधातोच्छ्वासती-
र्थकृत्नामोद्योतरूपाः पट्प्रकृतीरन्यतमं संहननमन्यतरस्वरमन्यतरां स्वगतिं च विकल्पेन वध्नाति ।
'बन्धइ' इत्यादि, उदितेतरवेदनीयाधन्यतरपोडशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद्
वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रिय-
शरीरनामद्वयेऽन्यतरद् शरीरनाम तदन्यतरोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यत-
मानुपूर्वी पर्याप्ताऽपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिपुगलपट्केऽन्य-

तराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति । 'एवं' इत्यादि, व्रसनाम्नः प्रधानतया सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रिय-
जातिवदवसेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति- व्रसनामबन्धको द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्केऽन्य-
तरां जातिं नियमेन वध्नाति ।

'एगं' इत्यादि, पराधातोच्छ्वासपर्याप्तिष्वेकां प्रकृतिमावधनन् नियमादन्यतरे प्रकृती
वध्नाति, अपर्याप्तनाम नैव वध्नाति । 'णाणा' इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां प्रकृते
सन्निकर्षो ज्ञानावरणप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवद् विज्ञेयः ।

'वधइ' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिक-
मनुष्यायुर्जिननामप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टकवर्ज-
शेषब्रुवन्धिप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासव्रमचतुष्करूपाः सप्तप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति ।
'ण' इत्यादि, तिर्यग्त्रिकजातिचतुष्कस्थावरचतुष्कात्तपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव वध्नाति ।
'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषवेदनी-
यादन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो-
वेदो देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिक-
वैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरद्गङ्गोपाङ्गनामान्यतमसंस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी खगतिद्वये-
ऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्टकेऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति षोडशेति । 'सेसाण' इत्यादि,
उक्तमतिज्ञानावरणादिमसतिप्रकृतीर्निहायावशिष्टानां स्थानर्द्धित्रिकादिचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां पर-
स्थानसन्निकर्षः 'अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्' अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणोक्ततत्तत्प्रकृतिप्रधानपर-
स्थानसन्निकर्षवदवगन्तव्यः, प्रोक्तप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणायां सम्यग्दृशामबन्धप्रायोग्यत्वेन तत्तुल्य-
प्रायत्वात्, केवलं प्रकृतमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विक-जिननामलक्षणानां पञ्चप्रकृतीनां केवल-
सम्यग्दृग्बन्धार्हाणामबन्धोऽधिकतस्तत्तच्छेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे वाच्यः, तासां केवलसम्यग्दृग्बन्धत्वेन
प्रधानीकृतशेषप्रकृतीनां सम्यग्दृग्बन्धत्वेन शेषप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे तामामवध्यमानत्वात् अपर्याप्त-
पञ्चेन्द्रियमार्गणायां पुनः सुरद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्य मूलत एवावन्धाच्च । तथा प्रकृतमार्गणायां स्थान-
र्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्रीवेद-नरत्रिक-तिर्यक्त्रिकौ-दारिकद्विका ऽचरमसंहननपञ्चक-मध्यम-
संस्थानचतुष्क-कुलगत्यु-द्योत दुर्मगत्रिकलक्षणानामेकत्रिंशतः प्रकृतीनां सास्वादनगुणस्थानकेऽपि
वध्यमानत्वेन तत्र च मिथ्यात्वस्यावध्यमानत्वेन स्थानर्द्धित्रिकाद्येकत्रिंशत्प्रकृतिमध्यादन्यतम-
प्रकृतिप्रधाने परस्थानसन्निकर्षे मिथ्यात्वमोहनीयस्य स्याद्बन्धो लभ्यते, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्य-
ग्मार्गणायां केवलमिथ्यादृशमेव प्रवेशेन तत्स्याद्बन्धस्यालामः, अत एवापवदन्नाह-'परम' इत्यादि,
गतार्थम् । अक्षरगमनिकाऽपि सुगमा ॥७११-७२८॥

अथा ऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये परस्थानसन्निकर्षं निरूपयन्नाह

आहारदुगे एग वंभतो घुविगतोसपुरिसाओ ।
 सुरविजवदुगपणिदिसुआगिइखगइपरधायाओ । ७२९॥
 ऊसासमुहगतिगतसचउगुच्चाउ गियमाऽण्णअडचत्ता ।
 तित्थिअणि व गियमा छऽण्णयर वेअणीआई ॥७३०॥
 तित्थस्सेमेव तह छुसायाईणं परं ण पडिवक्ख ।
 तह छअसायाईणं णवर ण सुराउपडिवक्खला ॥७३१॥
 ण असायसोगअरइअथिरदुगअजसाणि वधेइ ।
 देवाउगवघो वा तित्थं वंभेइ गियमाऽण्णा ॥७३२॥ (उपगीतिः)

(प्रे०) 'आहार' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये मिथ्यत्वमोहनी-
 यस्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुयन्धिप्रभृतिद्वादशरूपायवर्जशेषैकत्रिंशद्ब्रुवन्नन्धिप्रकृतिपुरुषवेददेवद्विकषैक्रि-
 यद्विकषच्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वाससमगत्रिक्रसचतुष्कोच्चैर्गोत्ररूपास्वे-
 कोनपञ्चाशत्प्रकृतिभेदकमां प्रकृतिमावधनन् शेषाष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'तित्थ' इत्यादि, जिननामदेवायुःप्रकृती विकल्पेन वध्नाति । 'गियमा' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीय-
 अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृत-
 यश्चेति षडन्यतरप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननाम्नः प्रधानभावेन सन्निक-
 र्षः प्रकृतान्यतरप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षवदस्ति । 'तह' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभ-
 यशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽपि प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रकृतान्यतरप्रकृतिवद् वर्तते केवलं प्रति-
 पक्षभूतां प्रकृतिं नैव वध्नाति, परावर्तमानप्रकृतित्वेन विरुद्धत्वात् । 'तह' इत्यादि, असातवेदनीय-
 भोकाऽरत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽप्येवमेव सन्निकर्षो बोद्धव्यः । 'णवर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-असातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धको देवायुस्तत्प्रतिपक्षभूतां सातवेदनीयादि-
 प्रकृतिं च नैव वध्नाति, अमातादिप्रकृतिभिः सह सुरायुगो बन्धस्य विरोधात् प्रतिपक्षप्रकृतेश्च परावर्तमानत्वेन वध्यमानत्वात् ।

'ण' इत्यादि, देवायुर्वन्धकोऽसातवेदनीयशोकारत्यास्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाः षट्प्रकृती-
 नैव वध्नाति, सुरायुषा सह तासां विरोधात् । 'चा' इत्यादि, तीर्थकृन्नाम विकल्पेन वध्नाति, केषा-
 ञ्चिज्जीवानामेव वध्यमानत्वात् । 'गियमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति
 प्रकृतप्रकृतेस्तद्वन्धाऽविनाभावित्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-एकत्रिंशज्ज्ञानावरणीयप्रभृतिब्रुव-
 न्धिप्रकृतयः सातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेददेवद्विकषच्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थान-
 सुखगतिपराधातोच्छ्वासत्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतयश्चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतय
 इति ॥७२९-७३२॥

इदानीं कर्मणकाययोगानाहारक्रमार्गणयोः स उच्यते ।

कम्माणाहारेषु उरालमीसव्व सव्वपयडीण ।

णवरि ण दुआउवधो जिण व णरउरलदुगवइरवधो ॥७३३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कर्मणकाययोगानाहारक्रमार्गणाद्वये सर्वासा प्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष औदारिकमिश्रमार्गणोक्तमन्निकर्षवदस्ति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवाद निर्दिशति—श्रौदारिकमिश्रमार्गणायां तय्यग्मनुष्यायुर्द्वयस्य सन्निकर्षोऽभिहितः, परं प्रकृतमार्गणाद्वये स नास्ति, तद्वन्वाभावात् । 'जिणं' इत्यादि मनुष्यद्विकौदारिकद्विकन्निकर्षमनागचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धको जिननाम विकल्पतो बध्नाति ॥७३३॥

साम्प्रतं वेदमार्गणासु तमाह

सजलणावरणणवगविग्धाहितो इग तिवेएसुं ।

वधतो णियमाऽण्णा तह चउरोऽण्णयरवेअणीआई ॥७३४॥ (गीतिः)

बधइ व सेसधुवचउआउगआहारगायवदुगाणि ।

जिणपरधाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥७३५॥

बधेइ सायवधो णवआवरणचउसंजलणविग्धा ।

णियमा अण्णयरा य तिवेअजसाजसदुगोआप ॥७३६॥

ण उ णिरयतिगअसाया वा अण्णधुवाउतित्थपरधाया ।

ऊसासाहारायवदुगाणि अण्णयरसेसजुगलाई ॥७३७॥ (गीतिः)

जसवंधी णिरयसुहमतिगअजसाणि ण उ बंधए णियमा ।

सजलणावरणणवगविग्धा ऽण्णयरा तिवेअणीआई ॥७३८॥ (गीतिः)

वा सेसधुवतिआउगआहारदुगपरधायऊसासा ।

तित्थायवदुगत्रोयरतिगाणि अण्णयरसेसजुगलाई ॥७३९॥ (गीतिः)

उच्च वधतो चउसजलणावरणणवगपणविग्धा ।

बंधइ णियमा तिण्णि य अण्णयरा वेअणीआई ॥७४०॥

बधइ वा धुवबंधी गुणतोसऽण्णा दुआउगपणिदी ।

आहारगदुगजिणपरधाऊसासतसचउगाणि ॥७४१॥

ण उ णिरयतिरितिगायवदुगथावरजाइचउगणीआणि ।

वाऽण्णयरा जुगलाई सेसा ओधव्व सेसाणं ॥७४२॥

णवरि जिणं बंधतो णरतिगउरलदुगवइररिसहाणि

थीए ण चेव बधइ णियमा देवविउवदुगाणि ॥७४३॥

(प्रे०) 'संजलण' इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदमार्गणात्रये संज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषप्रकृतप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । एकतरवेदनीय वेदत्रय एकतरं वेदं यशःकीर्त्यशःकीर्तिद्वयेऽन्यत्रां प्रकृतिं गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धि-

प्रभृतिद्वादशकपायमयजुगुप्सानवनामध्रुववन्धिप्रकृतीरायुष्कचतुष्काहारकद्विकाऽऽतपोद्योतजिननाम-
पराधातोच्छ्वासनामानि तथा शेषाऽन्यतरयुगलादिप्रकृतीश्च विकल्पेन वध्नाति । ताश्चेमाः शेषा-
न्यतरप्रकृतयः—अन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरेकतरमौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वये
शरीरनामौदारिकवैक्रियाज्जोपाङ्गद्वय एकतरमज्जोपाङ्गमन्यतममंहननमन्यतमसंस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्व-
न्यतरा खगतिस्त्रसस्थावरसदियुगलदशक एकतरा दशप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्र चेति ।

‘बंधेइ’ इत्यादि, सातवेदनीयवन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्त-
रायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीः स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयेऽन्यतमो वेदो यशःकीर्त्यशःकीर्ति-
युगलेऽन्यतरा प्रकृतिरुच्चैर्नौचैर्गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं चेति तिस्रोऽन्यतरप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति ।
‘ण’ इत्यादि, नरकत्रिकाऽभातवेदनीयप्रकृतिचतुष्कं नैव वध्नाति, विरुद्धत्वात् । ‘वा’ इत्यादि,
शेषध्रुववन्धिन्यायुष्कचतुष्कतीर्थकरनामपराधातोच्छ्वासाऽऽहारकद्विकातपोद्योतप्रकृतीस्तथा शेषा-
न्यतरयुगलादिप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, नवमगुणस्थाने आसां सर्वथाऽवन्वात्, अधस्तनगुणस्थाने
यथायोग्य वन्वात्, विकल्पेन बन्ध उक्तः । अन्यतरशेषप्रकृतयोऽनन्तरकथिता एव ज्ञेयाः । केवलं
नरकवर्जगतित्रयेऽन्यतमा गतिर्नरकवर्जानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी च वाच्या ।

‘जसबंधो’ इत्यादि, यशःकीर्तिनामवन्धको नरकत्रिकसूक्ष्मत्रिकायशःकीर्तिनामानि नैव
वध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, सञ्ज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चक
रूपा अष्टादशप्रकृतीरेकतरं वेदनीयं वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतरद् गोत्रं चेति तिस्रोऽन्यतराः प्रकृतीश्च
नियमेन वध्नाति । ‘वा’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्थानद्वित्रिकनिद्राद्विकाऽनन्तानुबन्धि-
प्रभृतिद्वादशकपायमयजुगुप्सानवनामध्रुववन्धिदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयाहारकद्विकपराधातोच्छ्वास-
जिननामातपोद्योतवादरत्रिकरूपा द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीरन्यतरशेषयुगलादिप्रकृतीश्च विकल्पेन वध्नाति,
ताश्चेमाः शेषाऽन्यतरयुगलादिप्रकृतयः—अन्यतरयुगलं देवमनुष्यतिर्यगतित्रयेऽन्यतमा गतिरन्यतमा
जातिरौदारिकवैक्रियशरीरनामद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाज्जोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदज्जोपाङ्गमन्य-
तमं संहननमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिस्त्र-
सस्थावरस्थिरास्थिरशुभाशुमसुमगदुर्भागसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययुगलपट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयश्चेति
षोडशेति ।

‘उच्चं’ इत्यादि, उच्चैर्गोत्रवन्धकः सञ्ज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्त-
रायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीरन्यतरद् वेदनीयमन्यतमं वेदं यशःकीर्त्यशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं
चेति तिस्रोऽन्यतराः प्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । ‘बंधे’ इत्यादि, उक्तशेषैकोनत्रिंशद्भ्रुववन्धि-
प्रकृतीर्देवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकद्विकजिननामपराधातोच्छ्वासात्रसचतुष्करूपा द्वादश-

प्रकृतीश्च विकल्पेन वध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, नरकत्रिकतिर्यक्त्रिमातपोद्योतस्थावरचतुष्कजाति-
चतुष्कनीचैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतीर्नैव वध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतिवृन्देषु प्रत्येक-
मन्यतरां प्रकृतिमपि विकल्पेन वध्नाति । अन्यतरद् युगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिक-
द्विकवैक्रियद्विकयोः अन्यतरद्विकमन्यतमं संहनेन मन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतगाऽऽनुपूर्वी
खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतयश्चेति चतुर्दशेति ।
'ओधव' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षं ओधवदवसेयः । ताश्चेमाः शेषप्रकृ-
तयः—स्त्यानद्वित्रिकं निद्राद्विकममातवेदनीयं मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपाया
हास्यपट्क वेदत्रयमायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकं नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय औदारिकवैक्रिया-
हारकशरीरत्रयमौदारिकवैक्रियाहारकाङ्गोपाङ्गत्रयं सहननपट्कं सस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं
त्रसनवकं स्थावरदशकं परावातोच्छ्वासजिननामातपोद्योतनामानि नीचैर्गोत्रं चेति नवनवतिरिति ।
'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमुपदिशति—स्त्रीवेदमार्गणायां जिननाम वधन् मनुष्यत्रिकौदारिकद्विक-
वज्रर्षभनाराचसहननप्रकृतिपट्कं नैव वध्नाति, देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्कं च नियमेन
वध्नाति, जिननामबन्धकस्याऽस्यां मार्गणायां देवप्रायोग्याणामेव प्रकृतीनां बन्धविधायित्वाद्
जिननामबन्धको हि स्त्रीवेदमार्गणायां मानुष्येव प्राप्यते ॥७३४ ४३॥

साम्प्रतमपगतवेदमार्गणायां प्रकृतसन्निकर्षः प्रोच्यते ।

गयवेए वधतो आवरणणवगजसुञ्जविग्धाओ ।

एग चउसजलणा वा वधइ सोल णियमाऽण्णा ॥७४४॥

सजलणलोहवघी सायणवावरणउच्चजसविग्धा ॥

वधइ णियमाहिन्तो वा वधइ तिण्णि संजलणा ॥७४५॥

अतिमकोहाईण एव णवरि तिट्ठुएगसजलणा ।

कमसो णियमा वधइ वोसाऽण्णा सायवघी वा ॥७४६॥

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशः-
कीर्तिनामोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं वधन् संञ्ज्वलनचतुष्कं विकल्पेन
वध्नाति, नवमगुणस्थानस्थो वध्नाति दशमगुणस्थानस्थो न वध्नातीति कृत्वा संञ्ज्वलन-
चतुष्कस्य बन्धो विकल्पितः । 'बंधइ' इत्यादि, एकतरप्रकृतिव्यतिरिक्तपञ्चदशप्रकृतयः सात
वेदनीयं चेति षोडशप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति ।

'संजलणा' इत्यादि, संञ्ज्वलनलोमबन्धकः सातवेदनीयज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-
चतुष्कोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिपञ्चान्तरायरूपाः सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, संञ्ज-
वलनमानादित्रयं विकल्पेन वध्नाति, एतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धविच्छेदस्थानादूर्ध्वं संञ्ज्वलनलोमस्य
बन्धविच्छेदस्थानस्य सत्त्वात् । 'अंतिम' इत्यादि, संञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतित्रयस्य सन्निकर्षः

सञ्ज्वलनलोभवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशिनष्टि-सञ्ज्वलनक्रोधवन्धकः सञ्ज्वलन-
मानादित्रयं सञ्ज्वलनमानवन्धकः सञ्ज्वलनमायालोभौ सञ्ज्वलनमायावन्धकश्च सञ्ज्वलनलोभं
नियमेन बध्नाति ।

'सोसा' इत्यादि, सातवेदनीयवन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्क-
यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति मार्गणायामस्यामासां प्रकृतीनां
बन्धस्थानं यावत्सातवेदनीयेन सह बध्यमानत्वात्तदूर्ध्वमेकादशादिगुणस्थानेषु पुनरबध्यमानत्वाच्च ।
॥७४४-४६॥

इदानीं क्रोधमार्गणायां स उच्यते ।

सत्त्वाणोधव्व भवे कोहे णवरि णियमा उ संजलणा ।

पणविग्धावरणणवगतिसंजलणउच्चजसबंधी ॥७४७॥

सायं बंधंतो चउसजलणावरणणवगपणविग्धा ।

बंधइ णियमाऽणायरा दुगोअजसअजसजुगलाण ॥७४८॥

(प्रे०) 'सत्त्वाणो' इत्यादि, क्रोधमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्ष ओववद्
भवति । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कक्रोधवर्जसञ्ज्वलन-
त्रिकोच्चैर्गोत्रयशःकीर्त्यन्तरायपञ्चकरूपास्वेकोनविंशतिप्रकृतिवन्धतमां प्रकृतिं बध्नन् सञ्ज्वलन-
चतुष्कं नियमेन बध्नाति, नवरं सञ्ज्वलनमानमायालोभवन्धकाः स्ववर्जशेषसञ्ज्वलनत्रिकं नियमेन
बध्नन्ति, ओवे सञ्ज्वलनक्रोधवन्धविच्छेदानन्तरं ज्ञानावरणादिप्रकृतप्रकृतीनां वन्धविच्छेदो भवति,
परं क्रोधमार्गणायां त्वेताः प्रकृतयस्तथा सञ्ज्वलनक्रोधोऽपि मार्गणाचरमसमयं यावद् बध्यन्त इति
कृत्वाऽयं विशेषो दर्शितः ।

'साय' मित्यादि, सातवेदनीयं बध्नन् सञ्ज्वलनचतुष्कज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्त-
रायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, प्रकृतमार्गणाचरमसमयं यावदासां बध्यमानत्वात् ।
'ऽणायरा' इत्यादि, गोत्रद्वयेऽन्यतरगोत्रं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन
बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतिवन्धस्य तद्वन्धाऽविनाभावित्वात् ॥७४७-४८॥

अथ मानमार्गणायां तमाह

माणे सत्त्वाणोधव्वे णवरि णियमा अकोहसंजलणा ।

विग्धणवावरणचरममायालोहुच्चजसबंधी ॥७४९॥

सायं बंधंतो उण आवरणणवगतिसंजलणविग्धा ।

बंधइ णियमाऽणायरा दुगोअजसअजसजुगलाण ॥७५०॥

(प्रे०) 'माणे' इत्यादि, मानमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां परस्थानसन्निकर्ष ओववदवसेयः ।

'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनमायालोभान्तरायपञ्चको-

चैर्गोत्रयशःकीर्तिरूपास्वष्टादशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् क्रोधवर्जसंज्वलनत्रिकं नियमेन बध्नाति,
किन्तु सञ्ज्वलनमायालोभबन्धकाः संज्वलनमानमायालोभेभ्यः स्ववर्जसंज्वलनद्वयं नियमेन
बध्नाति । 'साय' मित्यादि, सातवेदनीयं बध्नन् ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कक्रोधवर्ज-
संज्वलनत्रिकान्तरायपञ्चकरूपाः सप्तदश प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ऽणायरा' इत्यादि, अन्य-
तरद्भोत्रं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वयेऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, उभयत्र हेतुः क्रोधमार्गणा-
वज्ञेयः ॥७४९-५०॥

इदानीं मायामार्गणायां सोऽभिधीयते

सञ्वाणोघञ्च भवे मायाए णवरि बधए णियमा ।
पणविग्धावरणणवगजसुच्चवधी दुसंजलणा ॥७५१॥
साय बधंतो उण आवरणनवगदुसंजलणविग्धा ।
बधेइ णियमाऽणायरा दुगोअजसअजसजुगलण ॥७५२॥
सजलणलोहवधी णियमा बधेइ सजलणमायं ।

(प्रे०) 'सञ्वाण' इत्यादि, मायामार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां सन्निकर्ष ओघवदस्ति ।
'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—अन्तरायपञ्चकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्र-
प्रकृतिबन्धकः सञ्ज्वलनमायालोभात्मकं संज्वलनद्वयं नियमेन बध्नाति । 'साय' इत्यादि
सातवेदनीयं बध्नन् अन्तरायपञ्चकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनमायालोभप्रकृतीर्निय-
मेन बध्नाति, गोत्रद्वययशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती च नियमेन बध्नाति ।
'संजलण' इत्यादि, संज्वलनलोभबन्धकस्त्वोघे नियमेन बध्यमानप्रकृतितोऽधिकां संज्वलन-
मायामपि नियमेन बध्नाति ॥७५१-२॥

इदानीमकपायादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षनिषेधयन्नाह

णेव भवे अकसाये केवलजुगले अहक्खाये ७५३॥

(प्रे०) 'णेव' इत्यादि, अकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयमरूपासु चतसृषु मार्ग-
णासु परस्थानसन्निकर्षो नास्ति, एकस्याः सातवेदनीयप्रकृतेरेव बन्धसङ्क्रान्तात् ॥७५३॥

इदानीं मतिज्ञानादिमार्गणासु परस्थानसन्निकर्षः प्रतिपाद्यते—

बधइ णियमाऽण्णा चउदस णाणतिगोहिसम्मखइएसुं ।
बधेमाणो एगं णवावरणउच्चविग्धाण ॥७५४॥
वाऽण्णधुवपुमाउगदुगपणिदिआहारजुगलवइराणि ।
सुखगइआगिइजिणपरधाअसासतसचउगैसुहेगतिगं ॥७५५॥ (गीतिः)
बधइ णियमाऽणायरा दुवेअणीअजसअजसजुगलणं ।
वा सेसा जुगलाई अणायरा बधए पयडी ॥७५६॥

बधेइ णिद्वंधी णियमा तीसधुवपुमपणिदी य ।
 उच्चसुहागिइसुखगइपरधूसासतसचउगसुहगतिगं ॥७५७॥ (गीतिः)
 वा मज्झकसायड्ढुगआहाराउड्ढुगतिथ्वइराणि ।
 णियमाऽण्णयरा सेसा एमेव हवेज्ज पयलाए ॥७५८॥
 दुजुगलतिथिराइजुगलड्ढुगइतणुउवंगआणुपुव्वीणं ।
 बधइ व सायबधी अण्णयरा णो असायमण्णा वा ॥७५९॥ (गीति)
 बधइ असायबधी णियमा इगतीसधुवपुमपणिदी ।
 उच्चसुहागिइसुखगइपरधूसासतसचउगसुहगतिग ॥७६०॥ (गीति)
 णउ पडिवक्खसुराउगआहारड्ढुगाणि वा अड्कसाया ।
 जिणवइरणराअणि य णियमाऽण्णयरा-ऽण्णजुगलाई ॥७६१॥
 सोगअरइअथिरअसुहअजसाणेव तहा थिरसुहाणं ।
 णवर वा णिदाड्ढुगसुराउगआहारगड्ढुगाणि ॥७६२॥
 भयकुच्छाबंधी पुमणवावरणउच्चसंजलणविग्धा ।
 णियमाऽण्णयरा दुजुगलदुवेअणीअजसजुगलाण ॥७६३॥
 बंधइ दुथिराइजुगलगइदेहउवगआणुपुव्वीण ।
 वाऽण्णयरा वाऽण्णेवं रइहत्साणं परं ण पडिवक्खा ॥७६४॥ (गीतिः)
 दुइअकसाय एगं बधतोऽण्णयरवेअणीआई ।
 बधइ णियमा दस वा वंधेइ दुआउवइरजिणा ॥७६५॥
 आहारड्ढुगं बधइ नियमा बधेइ सेसवावण्णा ।
 तइअकसायाणेव णवरि व बंधइ विअकसाया ॥७६६॥
 संजलणकोहवधी उच्चणवावरणसंजलणविग्धा ।
 बधइ णियमाऽण्णयरा दुवेअणीयजसजुगलाणं ॥७६७॥
 दुजुगलथिराइजुगलगइदेहउवगआणुपुव्वीण ।
 अण्णयरा वि व बधइ वा बधइ सेसचत्ताओ ॥७६८॥
 एव पुमस्स एव चिअ संजलणमयमायलोहाणं ।
 णवरं वा उण बंधइ कमसो एगदुतिसजलणा ॥७६९॥
 बधइ णराउवधी णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ।
 सुरतिगविउवाहारगड्ढुगाण ण उ बधए व जिणं ॥७७०॥
 णियमाऽण्णा णरुलदुगवइराजेमेव णवरि व णराउं
 व सुराउगबंधी अड्कसायआहारड्ढुगतिथ्वा ॥७७१॥
 वंधइ ण असायअरइसोगणरतिगुरलजुगलवइराणि ।
 अथिरअसुहअजसाण य बंधइ णियमाऽण्णपणपण्णा ॥७७२॥
 सुरगइवधी वंधइ णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ।
 वाऽड्कसायदुणिदासुराउआहारड्ढुगतिथ्वा ॥७७३॥
 बंधइ ण उ णरतिगुरलदुगवइराणि णियमाऽण्णध्यायाला ।
 एमेव जाणियव्वो विउवदुगसुराणुपुव्वीणं ॥७७४॥

बधइ पर्णिदियबंधी दस गियमाऽण्णयरवेअणीआई ।
 गिदाहाराउगदुगमञ्जकसायवइरजिणा वा ॥७७५॥
 गियमाऽण्णा बायाला एवं सुहखगइआगिईण तहां ।
 परधाऊसासाणं जिणतसचउगसुहगतिगाण ॥७७६॥
 आहारगदुगवधी बंधइ ण असायमञ्जिमकसाया ।
 सोगअरइणरतिगुरलदुगवइराथिरअसुहअजसा ॥७७७॥
 गिद्वुशसुराउजिणा वा बधेइ गियमाऽण्णचउवणा ।
 एवमुवसमे वि परं बधो आऊण णेव भवे ॥७७८॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघशायिकसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपासु पञ्चदशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमावधन् तद्व्यतिरिक्तप्रकृतचतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, आमां प्रकृतीनां युगपद् बन्धविच्छेदादिति । 'वा' इत्यादि, अभिहितशेषप्रवृत्तिप्रकृतीः पुरुषवेददेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकवज्रर्पभनाराचसंहननसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानजिननामपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति, प्रधानीकृतप्रकृतीनां बन्धविच्छेदतोऽर्वागासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदादिति । 'बंधइ' इत्यादि, अन्यतरद्वेदनीयं यशःकीर्त्ययशःकीर्तिद्वय एकतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तयुगलादिव्यन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरशेषप्रकृतयः—अन्यतरद्वास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विक देवमनुष्यानुपूर्वीद्वय एकतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरयोरेका शुभाशुभयोरेका प्रकृतिश्चेति ।

'बंधेइ' इत्यादि, निद्राप्रकृतिबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं प्रचलां सञ्ज्वलनचतुष्कं भयजुगुप्से नवप्रवृत्तिबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेति त्रिंशद्प्रवृत्तिबन्धिप्रकृतीः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजात्युच्चैर्गोत्रसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा मध्यमाऽष्टकपाया आहारकद्विकजिननामवज्रर्पभनाराचसंहननप्रकृतयश्चेति द्वादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'गियमा' इत्यादि, उक्तशेषान्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद्वेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वय एकतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'एमेव' इत्यादि, प्रचलाप्रकृतेः प्राधान्येन सन्निकर्षो निद्रासन्निकर्षवदवसेयः ।

'द्वुजुगल' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धको हास्यादियुगलद्वय एकतरयुगलं स्थिराऽस्थिरशुभा-

शुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयो देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवै-
क्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्य-
तराऽऽनुपूर्वी चेति नवाऽन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'णो' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव
वध्नाति । 'अण्णा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञाना-
वरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विक्रमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषाया भयकुत्से पुरुषवेदो देव-
मनुष्यायुर्द्वयं पञ्चेन्द्रियजातिः वज्रर्षभनाराचसंहनन समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं
सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकमुच्चैर्गोत्रं चेति
सप्तपञ्चाशदिति ।

'बन्धइ' इत्यादि, असातवेदनीयवन्धको ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं
संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीः
पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिनामोच्चैर्गोत्रसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वास-त्रसचतुष्कसुभग-
त्रिकरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन वध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, तत्प्रतिपक्षसातवेदनीयं देवायुग-
हारकद्विकप्रकृतित्रयं च नैव वध्नाति । 'अ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्के जिननामवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यायूरूपं प्रकृतित्रिकं च विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा'
उक्तशेषान्यतरयुगलादिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरद्वास्यादियुगलं देवमनुष्य
गतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरम-
ङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगल-
त्रयेऽन्यतरास्तिस्रःप्रकृतयश्चेति नवेति । 'सोग' इत्यादि, शोकारत्यस्थिराशुमायशःकीर्ति-
नामप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्राधानसन्निकर्षवदवसेयः । 'तहा' इत्यादि, तथा
स्थिरशुभनान्नोरपि प्रधानभावेन सन्निकर्षस्तथैवाऽसातवेदनीयवदवसातव्यः । नवरं निद्रा-
द्विकदेवायुष्काहारकद्विकप्रकृतीनां विकल्पेन बन्धः कथनीय इति विशेषो 'पाचर' इत्यादिना
दर्शितः ।

'भयकुच्छावन्धो' इत्यादि, भयकुत्सावन्धकः पुरुषवेदज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्को-
च्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्हास्यादियुगलद्वय एकतरं युगल वेदनीयद्वय
एकतर वेदनीयं यशःकीर्त्यशःकीर्तियुगल एकतरां प्रकृतिं चेत्यन्यतराश्चतस्रः प्रकृतीश्च नियमेन
वध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, स्थिरास्थिरद्वय एकतरां प्रकृतिं शुभाशुभद्वय एकतरां प्रकृतिं देव-
मनुष्यगतिद्वय एकतरां गतिमौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय
एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरामानुपूर्वी चेत्यन्यतराः षट्प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'वा
अण्णा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । ताश्चेमाः—निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरण-

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं देवमनुष्यायुष्कद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिः समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराच-
संहननं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासजिननामानि नवनामो ध्रुववन्धनामप्रकृतय-
श्चेति पञ्चत्रिंशदिति । 'एव' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षो भयकुत्सावद् बोध्यः ।
'पर' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—हास्यरतिवन्धकस्तत्प्रतिपक्षशोकारतिप्रकृतीर्नैव वध्नाति ।

'दुहअकसाय' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्याद्वितीयकपायचतुष्कंऽन्यतरामेकां कपाय-
प्रकृतिं वधन् च वेदनीयद्वय एकतरं वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा
गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्या-
नुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरद्वय एकतरा प्रकृतिः शुभाशुभद्वय एकतरा प्रकृतिर्यशःकीर्त्यशः-
कीर्तिद्वय एकतरा प्रकृतिश्चेति दशाऽन्यतरप्रकृतीनियमेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवमनुष्यायुर्द्वयं
वज्रर्षभनाराचसंहननं जिननाम चेति चतस्रः प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'पा' इत्यादि, आहारकद्विकं
नैव वध्नाति, अप्रत्याख्यानावरणकपायचतुष्केन समं तद्वन्धविरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्त-
शेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीनियमेन वध्नाति ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्या-
ख्यानावरणचतुष्केऽन्यतमकपायत्रयं प्रत्याख्यानावरणमञ्ज्वलनचतुष्के भयकुत्से पुरुषवेदः पञ्चे-
न्द्रियजातिः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासे नवध्रुववन्धिनाम
प्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तगयपञ्चक चेति द्वापञ्चाशदिति । 'तद्वअ' इत्यादि, द्वितीयकपायाणां प्राधा-
न्येन सन्निकर्षो द्वितीयकपायवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—द्वितीयकपायवन्धको
द्वितीयकपायचतुष्कं विकल्पेन वध्नाति, यतश्चतुर्थगुणस्थानक एव प्रकृतमार्गणासु तद्वन्धो भवति,
न तु तदूर्ध्वम्, तस्मात्तृतीयकपायवन्धकश्चतुर्थगुणस्थानके वर्तेत तदा द्वितीयकपायचतुष्कं वध्नाति,
पञ्चमगुणस्थाने वर्तेत तदा नैव वध्नाति ।

'संजलण' इत्यादि, संञ्ज्वलनक्रोधवन्धक उच्चैर्गोत्रज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्व-
लनमानमायालोभत्रयाऽन्तरायपञ्चकरूपा अष्टादशप्रकृतीन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलं
एकतरप्रकृतिं च नियमेन वध्नाति । 'द्व' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरयोः शुभा
शुभावोश्च प्रत्येकमेकतरप्रकृतिद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरयोरेकतरं
शरीरमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतराऽऽनुपूर्वी चेत्यष्टा-
वन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन
वध्नाति, ताश्चेमाः—निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्के भयकुत्से पुरुषवेदो
देवमनुष्यायुपी पञ्चेन्द्रियजातिराहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं सुखगति-
स्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासजिननामानि नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयश्चेति । 'एवं'
इत्यादि, पुरुषवेदस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः संञ्ज्वलनक्रोधवदवसोत्तव्यः । 'एवं' इत्यादि,

सञ्ज्वलनमानमायालोभप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवद् बोध्यः । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—सञ्ज्वलनमानवन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं सञ्ज्वलनमायावन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ सञ्ज्वलनलोभवन्धकश्च सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति ।

'बन्धइ' इत्यादि, मनुष्यायुष्कवन्धकोऽन्यतरवेदनीयादिपट्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिष्ठः प्रकृतयश्चेति । 'सुर' इत्यादि, देवत्रिकवैक्रियद्विकारकद्विकरूपाः सप्तप्रकृतीर्नैव वध्नाति, मनुष्यायुषा सहासां वन्धस्य विरोधात् । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशरूपाया भयकुत्से पुरुषवेदो मनुष्यद्विक पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षमनाराचसंहननं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनामी नवध्रुववन्धिप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टपञ्चाशदिति । भावना पुनरिहेत्यम्—मनुष्यायुः प्रकृतमार्गणसु तुर्यशुणस्थानक एव वध्यते, तद्गुणस्थानके चावरयंतयैतायां प्रकृतीनां वन्धो भवति, अतोऽत्र मनुष्यायुषा सहासां प्रकृतीनां सन्निकर्षो नैयत्येनाऽभिहितः । 'णरु' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षमनाराचसंहननप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुवद् विद्यते । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—मनुष्यद्विकादिप्रकृतिवन्धको मनुष्यायुर्विकल्पतया वध्नाति ।

'व' इत्यादि, देवायुष्कवन्धकोऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयाहारकद्विकजिननामरूपा एकादशप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, असातवेदनीयारतिशोकमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षमनाराचसंहननाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपा द्वादशप्रकृतीर्नैव वध्नाति, देवायुषा सहासां वन्धस्य विरोधात् । 'बन्धइ' इत्यादि, अभिहितशेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं हास्यरतीभयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसदशकं पराघातोच्छ्वासनामी नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति ।

'सुरगइ' इत्यादि, देवगतिवन्धकोऽन्यतरपट्वेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिष्ठः प्रकृतयश्चेति । 'चा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयनिद्राद्विकदेवायुराहारकद्विकजिननामरूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षमनाराचसंहननरूपाः पट् प्रकृतीर्नैव वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषपट्चत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिः त्रसचतुष्कं

सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । 'एमेव' इत्यादि, वैक्रियद्विकदेवानुपूर्वीप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो देवगतिवदवसेयः ।

“बन्धइ” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवन्धकोऽन्यतरवेदनीयादिदशप्रकृतीनियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादिषुगलं देवमनुष्यगतिद्वयेऽन्यतरा गतिरौदारिक वैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गाम्यामेकतरमङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरयोरेकतरा प्रकृतिः शुभाशुमयोरेकतरा प्रकृतिर्यशःकीर्त्यशःकीर्त्योरेकतरा प्रकृतिश्चेति । ‘णिदा’ इत्यादि; निद्रादिकाहारकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कद्वयवर्षभनाराचसंहननजिननामरूपाः षोडशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । “णियमा” इत्यादि, उक्तशेषद्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदः समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । ‘एवं’ इत्यादि, शुभविद्यायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासजिननामत्रयचतुष्कसुभगत्रिकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवदवसेयः ।

“आहारग” इत्यादि, आहारकद्विकवन्धकोऽसातवेदनीयाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कद्वयशोकारतिमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपा विंशतिप्रकृतीर्नैव बध्नाति । ‘णिद’ इत्यादि, निद्रादिकदेवायुर्जिननामरूपं प्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । “णियमा” इत्यादि, भणितशेषचतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं मातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं हास्यरतिभयकुत्सामोहनीयानि पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकं भयचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिः त्रयसदशकं पराघातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्यतरायपञ्चकं चेति । “एवमुवसमे” इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सन्निकर्षे एवमेव विज्ञेयः, परमायुष्कमत्र वर्जनीयं, अस्यां मार्गणायां तद्वन्वाभावात् ।

साम्प्रतं मनःपर्यवज्ञानमंयमौघमार्गणाद्वये प्रकृतं प्रतिपादयति

एष बधेमाणो णवावरणउच्चपचविधाओ ।

मणणारणसजमेसुं णियमा बधेइ सेसाओ ॥७७९॥

बन्धइ णियमाऽण्णयरा दुवेअणीअजसअजसजुगलानं ।

अण्णयरा जुगलाई चउरो वा बन्धइ व सेसा ॥७८०॥

एमेव जसस्स भवे णवरं बन्धेइ णेव पडिक्कल ।

णियमा णिदावघी छऽण्णयरा वेअणीआई ॥७८१॥

वाहारदुगाजिणा गियमा सेसा तहेव पयलाए ।
 सुरविजवदुगपणिदियघुवणामसुहागिईण तहा ॥७८२॥
 सुहल्लगइसुहगतिगजिणपरधाऊसासतसचउवकाणं ।
 एमेव भवे णवर णिहापयला व वंधेइ ॥७८३॥
 बंधेइ सायवधी जुगलदुगयिराइतिजुगलाण वा ।
 अण्णयरं ण असायं बंधइ वा सेसतेवण्णा ॥७८४॥
 गियमा असायवधी पच दुजुगलतियिराइजुगलाणं ।
 अण्णयरं व जिणं ण उ सायाहारदुगदेवाऊ ॥७८५॥
 गियमा सेसा एव सोगअरइअथिरअसुहअजसाण ।
 तह थिरसुहाण वि णवरि व दुगिहाऽऽहारदुगसुराऊणि ॥७८६॥ (गीतिः)
 सजलणकोहवधी कुवेअणीअजसअजसजुगलाण ।
 गियमाऽण्णयरं वंधइ वा चउअण्णयरजुगलाई ॥७८७॥
 गियमाऽदुगारस बंधइ उच्चणवावरणसजलणविग्धा ।
 बंधइ वा सेसाओ चउतीसाओ उ पयडीओ ॥७८८॥
 एव पुमस्स एव चिअ सजलणमयमायलोहाणं ।
 णवर वा उण बंधइ कमसो एगदुतिसजलणा ॥७८९॥
 भयकुच्छावंधी पुमणवावरणउच्चसजलणविग्धा ।
 गियमा ऽण्णयरं दुजुगलदुवेअणीअजसजुगलाणं ॥७९०॥
 दुयिराइगजुगलाणं वाऽण्णयरं वधए व सेसेव ।
 रइहस्साणं णवरं वंधइ सोगारई णेव ॥७९१॥
 तित्थाहारदुगाणि व सुराउवधी ण उ छ असायाई ।
 वंधइ गियमाऽण्णेव आहारदुगस्स णवरि व दुगिहा ॥७९२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'एग' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शना-
 वरणचतुष्कोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपासु पञ्चदशप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं वधन् शेषाश्चतुर्दशप्रकृती-
 नियमेन वध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयं यशकीर्त्ययशःकीर्तियुगलेष्वेकतरां प्रकृतिं
 च नियमेन वध्नाति । 'अण्णयरं' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरयुगलेऽन्यतरा
 प्रकृतिं शुभाशुभयुगलेऽन्यतरां प्रकृतिं चेति चतस्रोऽन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'व' इत्यादि,
 उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । ताश्चेमाः-निद्राद्विकं संज्वलनचतुष्कं भयकृत्से पुरुषवेदो देव-
 त्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रिसचतुष्कं सुभगत्रिकं परा-
 चातोच्छ्वासजिननामानि नवत्रुवयन्धिनामप्रकृतयश्चेत्यष्टात्रिंशदिति । 'एमेव' इत्यादि, यशः-
 कीर्तिनामप्रधानः सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-यशःकीर्तिनाम-
 पञ्चकस्तत्प्रतिपक्षभूतायशःकीर्तिनाम नैव वध्नाति । 'गियमा' इत्यादि, निद्रापञ्चकोऽन्यतरद्
 वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिस्रः

प्रकृतयश्चेति पठन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, आहारकद्विकसुरायुजिननामानि विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः--ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्यष्टचत्वारिंशदिति । 'तद्देव' इत्यादि, प्रचलाप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो निद्रावदस्ति । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनवध्रुवबन्धिनामप्रकृतिममचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकजिननामपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपषड्विंशतिप्रकृतिप्रधानोऽपि --- परस्थानसन्निकर्षो निद्रावद् भवति । 'णवर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति-एतत्प्रकृतिबन्धको निद्रा-प्रचलाप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'बधेद्' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धकोऽन्यतरहास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, उक्तशेषत्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः--ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति । 'णियमा' इत्यादि, असातवेदनीयबन्धकोऽन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिष्ठः प्रकृतयश्चेति पञ्चान्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तद्यथा-प्रकृतमार्गणाद्वयेऽसातवेदनीयं षष्ठगुणस्थानक एव बध्यते तत्रैता अन्यतराः पञ्चप्रकृतयोऽवश्यं बध्यन्ते तस्मादासां सन्निकर्षोऽसातवेदनीयप्रकृत्या सह नियततया प्राप्यते । 'व' इत्यादि, जिननाम विकल्पेन बध्नाति । 'साया' इत्यादि, सातवेदनीयाहारकद्विकदेवायूरूपं प्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, असातवेदनीयेन सह तद्वन्धस्य विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, उक्तान्यप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः--ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेत्येकोनपञ्चाशदिति । 'एवं' इत्यादि, शोकारत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षोऽसातवेदनीयवदवसेयः । 'तद्देव' इत्यादि, स्थिरशुभनाम्नोः सन्निकर्षोऽप्यसातवेदनीयवदवसेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवदति-आहारकद्विकदेवायुनिद्राद्विकप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति ।

'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धकोऽन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्यशःकीर्तियुगले-ऽन्यतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरे द्वे प्रकृती चेति चतस्रोऽन्यतराः प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति, यथास्वं बन्धस्थानं

यावदायां प्रकृतीनां सञ्ज्वलनक्रोधेन समं बध्यमानत्वात्तदूर्ध्वमवध्यमानत्वाच्च । 'णिचमा' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रं ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं सञ्ज्वलनमानमायालोभत्रयमन्तराय-पञ्चकं चेत्यष्टादशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'चा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तवतुस्त्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पतो बध्नाति । ताश्चेताः—निद्रादिकं भयकुत्से पुरुषवेदो देवायुर्देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विक-माहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं देवानुपूर्वी सुखगतिस्त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयश्चेति । 'एवं' इत्यादि, पुरुषवेदप्रधानसन्निकर्षः सञ्ज्वलन-क्रोधवदवसातव्यः, केवलं सञ्ज्वलनक्रोधस्य नियतबन्धो वक्तव्यः । 'एवं' इत्यादि, सञ्ज्वलन-मानमायालोभप्रकृतित्रयप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवद् बोध्यः । 'णवरं' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधं सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ सञ्ज्वलनलोभबन्धकश्च सञ्ज्वलनक्रोधमानमायाप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'भय' इत्यादि, भयकुत्साबन्धकः पुरुषवेदज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्रसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा विंशतिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'अण्णायरा' इत्यादि, अन्यतरद् हास्यादियुगलं वेदनीयद्वये-ऽन्यतरद् वेदनीयं यशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलेऽन्यतरां प्रकृति चेति चतस्रोऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'दु' इत्यादि, स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयुगलद्वयेऽन्यतरप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'व' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेताः—निद्रादिकं देवत्रिक पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्त्रयचतुष्कं सुभगत्रिकं पराधातोच्छ्वासजिन-नामानि नवध्रुववन्धिनामप्रकृतयश्चेत्येकत्रिंशदिति । 'रइ' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्नि-कर्षो भयकुत्सावद् भवति । 'णवरं' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते—हास्यरतिबन्धकः शोकारती नैव बध्नाति, हास्यरतिभ्यां सह परीवर्तमानतया बध्यमानत्वात्तयोः । 'तित्था' इत्यादि, सुरायुर्वन्धक-स्तीर्थकृन्नामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, असातवेदनीयशोकारत्य-स्थिराऽशुभायशःकीर्तिरूपं प्रकृतिपट्कं नैव बध्नाति, देवायुषा महासां बन्धस्य विरोधाद्, विरोधश्च प्राग्वद् विभाव्यः । 'णिचमा' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेताः—ज्ञानावरणपञ्चकं चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कं निद्रादिकं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं भयकुत्से हास्यरती पुरुषवेदो देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुखगति-स्त्रयचतुष्कं पराधातोच्छ्वासनाम्नी नवध्रुववन्धिनामप्रकृतय उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकं चेति पञ्च-पञ्चाशदिति । 'एवं' इत्यादि, आहारकद्विकप्रधानसन्निकर्षः सुरायुर्वदस्ति केवलं निद्रादिकस्य बन्धो विकल्पतो भवतीति विशेषः ॥७७९-९२॥

अथ मत्तज्ज्ञानादिमार्गणात्रये उच्यते—

अण्णायतिगे एग छवत्तधुवबधिणीण बंधंतो ।

नियमाऽन्धो बाऽनयरा उवगसधयणसरखगई ॥७८३॥

वा मिच्छताउचउगपरधाऊसासआयवदुगाणि ।
 णियमा गुणवीसाऽण्णा अण्णयर वेअणीआई ॥७९४॥
 साय वंधेमाणो बधइ णियमा छत्तधुववधो ।
 वा मिच्छतिआउगपरधाऊसासायवदुगाणि ॥७९५॥
 वधइ ण असायणिरयतिगाणि सधयणुवंगसरखगई ।
 अण्णयर वि व वधइ णियमाऽण्णाऽण्णयरवेआई ॥७९६॥
 एवं रइहस्ताण एमेव जसस्स णवरि वंधेइ ।
 ण उ सुहमतिग णियमा परधाऊसासवायरतिगाणि ॥७९७ (गीति.)
 छायालधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणि ।
 पुमवधो णियमा वा मिच्छताउतिगउज्जोआ ॥७९८॥
 णिरयतिगदुवेआयवथावरजाइचउगाणि वंधइ णो ।
 वाऽण्णयरं सधयण णियमाऽण्णयर-ऽण्णवेअणीआई ॥७९९॥ (गीतिः)
 एव उच्चस्स णवरि ण चेव वंधेइ तिरितिगुज्जोआ ।
 सेसाणोघव्व णवरि तित्याहारदुगवधो णो ॥८००॥
 अट्टारससुरजोगाऽण्णणामवधो उ वारसकसाया ।
 तह पणणिहा णियमा णरतिगवइररलदुगवंधो ॥८०१॥
 अणयीणद्धितिगाणि य छश्रसायाइगसुराउबंधो उ ।
 वधइ णियमा वारसकसायथीणद्धियतिगाणि ॥८०२॥

(प्रे०) 'अण्णाणतिगे' इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु त्र्यज्ञानमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्त्वार्तिशद्भ्रुववन्धिप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमावधनन् शेषपञ्चचत्वारिंशद्भ्रुव-
 वन्धिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमं
 संहननमन्यतरत् स्वरमन्यतरां स्वगतिं च विकल्पेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीया-
 युष्कचतुष्कपराधातोच्छ्वासातपोद्योतरूपा नव प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । "णियमा" इत्यादि,
 उक्तव्यतिरिक्तैकोनविंशत्यन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन वध्नाति, तारचेमाः—अन्यतरवेदनीय-
 मन्यतरहास्यादियुगल वेदत्रयेऽन्यतमो वेदोऽन्यतमा गतिरन्यतमा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय
 एकतरं शरीरनामाऽन्यतमं सस्थानमन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्वरवर्जत्रसस्थावरादियुगलनवकेऽन्यतरा नव
 प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति ।

'साय' इत्यादि, सातवेदनीयं वधनन् मिथ्यात्वमोहनीयवर्जाः पट्त्वार्तिशद्भ्रुववन्धि-
 प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयपराधातो-
 च्छ्वासातपोद्योतरूपा अष्टौ प्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । 'बंधइ' इत्यादि, असातवेदनीयनरकत्रिक-
 रूपं प्रकृतिचतुष्क नैव वध्नाति । 'संधयण' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वये-
 ऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतरत्स्वरमन्यतरां स्वगतिं च विकल्पेन वध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभि-

हितशेषाऽन्यतमवेदादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तात्थानन्तरोक्ताः सातामानवेदनीयवर्जा अन्यतरा अपृष्टादशप्रकृतयो ज्ञातव्याः । 'एवं' इत्यादि, हास्यरत्योः प्राधान्येन सन्निकर्षः सातवेदनीयवदस्ति । 'एवमेव' इत्यादि, यशःकीर्तिनामप्रधानोऽपि सन्निकर्षः सातवेदनीयवदस्ति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवाद दर्शयति यशःकीर्तिनामबन्धकः सूक्ष्मत्रिकं नैव बध्नाति, पगधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपं च प्रकृतिपञ्चक नियमेन बध्नाति ।

'छायाल' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्टचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृति-पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासवचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतरूपाः पञ्चप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'गिरय' इत्यादि, नरकत्रिकस्त्रीनपुंसकवेदद्वयातपस्थावरचतुष्कजातिचतुष्करूपाश्चतुर्दशप्रकृतीर्नैव बध्नाति, पुरुष-वेदेन सहामां बन्धविरोधात् । 'वा' इत्यादि, अन्यतममंहननं विकल्पेन बध्नाति, देवप्रायोग्यप्रकृति-बन्धकेन तेन तस्याऽवध्यमानत्वान्मनुष्यतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकेन तेन बध्यमानत्वाच्च । 'णिचमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—अन्यतरद् वेदनीयमन्यत-रद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यगतित्रयेऽन्यतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरत्शरीरनामौ-दारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरभङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानमन्यतरा खगतिर्देव-मनुष्य तिर्यगानुपूर्वी-त्रयेऽन्यतमाऽऽनुपूर्वी स्थिरास्थिरादियुगलपट्टकेऽन्यतराः पट्टप्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्र चेति पोटशेति । 'एवं' इत्यादि, उच्चगोत्रप्रवानसन्निकर्षः पुरुषवेदवद् विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-तिर्यग्त्रिकनीचैर्गोत्रोद्योतरूपं प्रकृतिचतुष्कं नैव बध्नाति, वेदत्रयस्य च स्याद्वन्धो भवति । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां सन्निकर्ष ओधवदस्ति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—असातवेदनीयं मिथ्यात्व-मोहनीयं शोकारती स्त्रीनपुंसकवेदद्वयमायुष्कचतुष्कं गतिचतुष्कं जातिपञ्चकमौदारिकद्विकं वैक्रियद्विकं संहननपट्टकं संस्थानपट्टकमानुपूर्वीचतुष्कं खगतिद्वयं त्रसनवकं स्थावरदशकंपराधातोच्छ्-वासाऽऽतपोद्योतनामानि नीचैर्गोत्र चेति पञ्चगदिरिति । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति-जिननामाहारकद्विकत्रयस्य सन्निकर्षोऽन नास्ति, आसु मार्गणासु प्रकृतित्रयस्याऽस्य बन्धविरहात् । "अङ्कारस" इत्यादि, लाघवार्थमोधवदतिदिष्टेऽपि शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षविषये यासां मिथ्यात्व-वर्जशेषत्रुवबन्धिनीनां ओधे स्याद्वन्धः प्राप्यते, किन्तु स स्याद्वन्धोऽत्र न युक्तः, प्रस्तुतमार्गणासु आद्यगुणस्थानद्वयस्यैव सङ्गावात्, अत एव "अङ्कारस" इत्यादिगाथाद्वयेनापवादपदानि कथयन्ति, तद्यथा—'सुर' इत्यादि, देवप्रायोग्यशेषशुभभ्रुवाष्टादशनामप्रकृतिबन्धक आद्यद्वादशकपाथपञ्चनिद्राप्रकृती-नियमेन बध्नाति, देवप्रायोग्यशुभप्रकृतय इमाः—देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रथमसंस्थानशुभ-खगतिपराधातोच्छ्वासत्रमनवकप्रकृतयः । 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकप्रथमसंहननप्रकृति-बन्धकोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्थानद्वित्रिकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां नियमेन बन्धको ज्ञातव्यः । असात-

वेदनीयारतिशोकास्थिराशुभायशःकीर्तिरूपाणामभातवेदनीयादिषट्प्रकृतीनां तथा देवायुषो बन्धक
आद्यद्वादशकपायस्त्यानद्वित्रिकरूपाः पञ्चदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नातीति विशेषः “छअसायाइ”-
इत्यादिना दर्शितः ॥७९३-८०२॥

अथ सामायिकछेदोपस्थापनीयमार्गणयोः स उच्यते

सामाइअछेएसुं मणणाणव्व णवरं चरमलोहं ।

विग्धुच्चावरणणव्वजसवंधी बंधए णियमा ॥८०३॥

बंधेइ सायबंधी णवावरणचरमलोहउच्चाणि ।

विग्धा णियमा-ऽण्णयर पुणो जसाजसजुगलसक्कं ॥८०४॥

(प्रे०) ‘सामाइअ’ इत्यादि, सामायिकछेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्यप्रकृ-
तीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानचद्वसेयः । ‘णवरं’ इत्यादिनाऽपवादं कथयति-अन्त-
रायपञ्चकोच्चैर्गोत्रज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्तिबन्धकः सञ्ज्वलनलोभं निय-
मेन बध्नाति, अनयोर्मार्गणयोः सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धविच्छेदाभावात् । ‘बंधेइ’ इत्यादि,
सातवेदनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभाऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्ररूपाः
षोडशप्रकृतीर्यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनागोरेकतरां प्रकृतिं च नियमेन बध्नाति, मार्गणाचरमसमर्थं
यावदासा प्रकृतीनां बध्यमानत्वात् ॥८०३-४॥

अथ परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां प्रकृतोऽभिधीयते

धुवपुरिससुरविउवडुगसुहागिइल्लगइपणिदिउच्चाणं ।

परधाऊसाससुहगतिगतसचउगाण परिहारे ॥८०५॥

‘एग’ बधंतो ऽण्णा णियमाहारडुगजिणसुराऊणि ।

वा बधइ णियमाऽण्णा छऽण्णयर वेअणीआई ॥८०६॥

एवं जिणस्स एव हवेज्ज सायाइगाण छ्ह परं ।

ण उ बंधइ पडिक्खं मणणाणव्वऽत्थि सेसाणं ॥८०७॥

(प्रे०) ‘धुव’ इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं
निद्राद्विकं संज्वलनचतुष्कं भयकुत्से नव नागो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकत्रिंशद्-
ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुर्लसस्थानसुखगतिपञ्चेन्द्रियजातिनामोच्चैर्गोत्र-
पराधातोच्छ्वाप्तुभेगात्रिकत्रसचतुष्करूपा अष्टादशप्रकृतयरचेत्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिं
बध्नन् शेषाऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ‘आहार’ इत्यादि, आहारकद्विकजिननाम-
देवायुःप्रकृतिचतुष्कं विकल्पेन बध्नाति । ‘णियमा’ इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिषट्-
प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभा-
शुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतराः तिस्रः प्रकृतयश्चेति । ‘एव’ इत्यादि, जिननामप्रधानः

सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'एष' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृति-
पट्कस्याऽपि प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'पर' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते-सातवेदनीयादि-
प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षाऽसातवेदनीयादिप्रकृतीर्नैव वध्नाति । 'भणणाणव' इत्यादि, उक्त-
शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षो मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् वेदितव्यः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-अमातवेद-
नीयं शोकारती देवायुः अस्त्रिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानि चेति सप्तेति ॥८०५-७॥

साम्प्रतं देशविरतिमार्गणायां तमाह

ध्रुवपुरिससुरविजवदुगसुहागिद्वलगइपणिदिउज्जाणं ।
परधाऊसाससुहगतितगतसचउगाण वैसम्मि ॥८०८॥
एग बधतोऽण्णा णियमा छऽण्णपरवेअणीआई ।
बघइ व सुराउजिणा एमेव हवेज्ज सेसाणं ॥८०९॥
णवरं छअसायाई सुराउबघी ण सेसबघी णो ।
पडिवक्खं देवाउं पि ण छअसायाइवंघो उ ॥८१०॥

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्ज-
पञ्चत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिपुरुषवेदेवद्विक्रैक्रियद्विकममचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपञ्चेन्द्रियजात्युच्चै-
र्गोत्रपराधातोच्छ्रवामसुभगत्रिकत्रसचतुष्करूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतमां प्रकृति वध्नन् शेष-
द्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति । 'छ' इत्यादि, अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं
स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेत्यन्यतराः पट्प्रकृती-
नियमेन वध्नाति । 'व' इत्यादि, देवायुर्जिननामप्रकृतिद्वयं विकल्पेन वध्नाति । 'एमेव' इत्यादि,
अभिहितशेषचतुर्दशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेद-
नीयद्वयं हास्यादियुगलद्वयं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयं जिननाम देवायुश्चेति
चतुर्दशेति । 'णवर' इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति-देवायुष्कवन्धकोऽसातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभा-
यशःकीर्तिरूपं प्रकृतिपट्कं नैव वध्नाति । 'सेस' इत्यादि, हास्यादिशेषद्वादशप्रकृतिबन्धकः स्व-
प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव वध्नाति । 'देवाउं' इत्यादि, असातवेदनीयादिपट्प्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्ष-
प्रकृतिं नैव वध्नाति, तथा देवायुरपि नैव वध्नाति ॥८०८-१०॥

अथ सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायामसंयममार्गणायां कृष्णादिलेख्यात्रयमार्गणासु च परस्थान-
सन्निकर्ष प्रतिपादयन्नाह

सुहमम्मि एगवंघो णियमाऽण्णा अजयअसुहलेसासुं ।
परठाणसेण्णियासो अण्णाणतिगव्व सव्वेसि ॥८११॥
णवरं सुरजोगा विण थीणद्धितिगाणमिच्छइत्थिजिणा ।
सयरी तह णरैतिपुरलडुगवइराणि खलु वंघंतो ॥८१२॥

थोणद्धितिगाणचउगजिणा व वधेइ किण्हणीलासुं ।
 णरतिगउरलदुगवइरवधी वंधइ ण चेव जिण ॥८१३॥
 कम्मव्व जिणस्स अजयकाउसु पर व सुरणराऊणि ।
 दोसु उरलमीसव्व उ णवर वा वधइ सुराउं ॥८१४॥

(प्रे०) 'सुहसम्भि' इत्यादि. सुहसम्परायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-
 चतुष्कसातवेदनीयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकप्रकृतिष्वेकतमां प्रकृतिमावधनं शेषषोडश-
 प्रकृतीर्नियमेन वध्नाति ।

अथ असंयमाशुभलेश्यामार्गणासु प्रकृतमाह-

'अजय' इत्यादि, असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु च
 सर्वासां प्रकृतीना प्रधानभावेन परस्थानसन्निकर्षोऽज्ञानत्रिकमार्गणावदस्ति । 'णवरं' इत्यादिना-
 ऽपवाद कथयति-स्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयस्त्रीवेदजिननामवर्जशषदेव-
 प्रायोग्यमसतिप्रकृतीस्तथा मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवर्चमनाराचसंहननप्रकृतिषट्कं च वधनं
 स्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीर्विकल्पेन वध्नाति । तच्चेमा देवप्रायोग्यप्रकृतयः-
 ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणचतुष्कम्, निद्राद्विकम्, वेदनीयद्वयम्, अप्रत्याख्यानावरणादि-
 द्वादशकपायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपा मोहनीयस्यैकोनविंशतिप्रकृतयः, देवायुः, देवप्रायोग्याष्टाविंशति
 स्तथाऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनामानि, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकं चेति सप्ततिः प्रकृतयः ।
 कृष्णनीललेखयोरतिप्रमत्तिवारणायाह 'किण्ह' इत्यादि, प्रस्तुतमार्गणाद्वये मनुष्यत्रिकौदारिक-
 द्विकवर्चमनाराचरूपप्रकृतिषट्कस्य बन्धको जिननाम नैव वध्नाति, अत्र केवलं मनुष्यस्य जिन-
 नामबन्धकत्वेन देवप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकत्वात् । अथ जिननाम्नः सन्निकर्षो द्वयोर्द्वयोर्मार्गणयोः
 पृथक् पृथगातिदेशेन कथ्यते ।

'कम्मव्व' इत्यादि, असंयममार्गणाकापोतलेश्यामार्गणयोजिननामप्रधानसन्निकर्षः कार्मण-
 मार्गणोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति परमत्र देवायुषो मनुष्याद्युपश्च बन्धः प्रस्तुतबन्धकेन
 विकल्पेन क्रियत इति विशेषः । तथा कृष्णनीललेखयोजिननामप्रधानसन्निकर्ष औदारिकमिश्र-
 काययोगमार्गणोक्तजिननामप्रधानसन्निकर्षवदस्ति परमत्रापि देवायुर्विकल्पेन प्रस्तुतबन्धको वध्ना-
 तीति विशेषः । शेषप्रकृतीनां सन्निकर्षः सर्वथाऽज्ञानमार्गणावदस्ति तस्माल्लाधवार्थं तत एवावधार्यः,
 नात्र दर्श्यते ॥८११-१४॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायां स उच्यते-

एमां धुवेगतीसा परधाऊसासबायरतिगाओ ।
 तेकए वधंतो वंधइ गियमाऽण्णव्वतीसा ॥८१५॥

वा बंधइ थीणद्धितिगमिच्छत्तऽज्जवारसकसाया ।
 आउगतिगभाहारगभायवदुगतित्थणामाणि ॥८१६॥
 बंधइ वा अण्णयरं अवि सधयणदुउवगसरखगई ।
 णियमा बंधइ सेसा अण्णयरं वेअणीआई ॥८१७॥
 बारससायाईण एवं णवर ण चेव पडिवक्खं ।
 छअसायाइगबधी बंधइ णाहारदुगसुराऊणि ॥८१८॥ (गीतिः)
 थीणद्धितिगअणचउगबधी मिच्छाउआयवदुगाणि ।
 व उण णियमाऽण्णधुववायरतिगपरघायऊसासा ॥८१९॥
 तित्थाहारदुगाणि ण वा सधयणदुउवगसरखगई ।
 अण्णयरंऽण्णा णियमा एमेव हवेज्ज मिच्छस्स ॥८२०॥
 एगं तइअकसाय बंधतो मिच्छमडकसाया य ।
 थीणद्धितिगतिआउगजिणायवदुगाणि वधइ वा ॥८२१॥
 णियमाऽण्णा धुवबंधो परघाऊसासबायरतिगाणि ।
 बंधइ वा अण्णयरं सधयणउवगसरखगई ॥८२२॥
 णाहारदुग बंधइ णियमाऽण्णयरंऽण्णवेअणीआई ।
 दुइअकसायाणें णवरं णियमा तिमकसाया ॥८२३॥
 बंधेइ पुरिसवधी वा थीणद्धितिगवारसकसाया ।
 मिच्छतिरिणरसुराउगतित्थाहारदुगउज्जोआ ॥८२४॥
 णियमाऽण्णधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
 बंधइ ण उ एगिदियआयवथावरदुपडिवक्खला ॥८२५॥
 वाऽण्णयरं सधयणं णियमा अण्णयरवेअणीआई ।
 एमेव आइमागिइपसत्थखगइसुहगतिगाण ॥८२६॥
 छायालधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणि ।
 योबंधो णियमा वा मिच्छत्ततिआउउज्जोआ ॥८२७॥
 ण दुवेआहारगदुगएगिदियथावरायवजिणा उ ।
 वाऽण्णयरं सधयण णियमाऽण्णाऽण्णयरवेअणीआई ॥८२८॥ (गीतिः)
 बंधइ सुराउवधी वा थीणद्धितिगवारसकसाया ।
 मिच्छाहारदुगजिणा णियमाऽण्णयरित्थिपुमवेअ ॥८२९॥
 णियमाऽण्णधुवपणिदियपरघाऊसाससायहस्सरई ।
 सुरविउवदुगसुहागिइसुखगइतसदसगउज्जाणि ॥८३०॥
 बंधइ ण चेव सेसा सुरविउवदुगस्स एवमेव पर ।
 वा देवाउ णियमा छऽण्णयरं वेअणीआई ॥८३१॥
 बंधइ पणिदिबंधो वा थीणद्धितिगवारसकसाया ।
 तह मिच्छत्ततिआउगतित्थाहारदुगउज्जोआ ॥८३२॥
 णियमाऽण्णा धुवबंधो परघाऊसासतसचउक्काणि ।
 एगिदियआयवथावरणि णो चेव बंधेइ ॥८३३॥

वा बन्धइ सधयणं अण्णयरं सेसवेअणीआई ।
 णियमाऽण्णयरं बन्धइ एमेव तसस्स विण्णेयो ॥८३४॥
 आहारगदुगवधी बन्धइ णियमेगतीसधुवबन्धी ।
 तह सायहस्सरइपुमसुरवेउव्वियदुगपणिदी ॥८३५॥
 तह परधाऊसांसुअगिइखगइतसदसगउज्जाणि ।
 व सुराउगतित्थयरं ण उ बन्धइ सेसवावण्णा ॥८३६॥
 जिणवधी मज्झिमअडक्सायआहारआउदुगवइरा ।
 वा बन्धइ णियमा दस अण्णयरं वेअणीआई ॥८३७॥
 णियमिगतीसधुवपुरिसपणिदिसुहस्रिगइआगिई उज्ज ।
 परधाऊसांसुहगतितगतसचउगाणि णऽण्णबत्तीसा ॥८३८॥ (गीतिः)
 बन्धइ व उज्जवधी जिणधीणद्धितिगवारसकसाया ।
 मिच्छाउगआहारगदुगाणि अण्णयरसंधयणं ॥८३९॥
 णीअतिरिदुगेगिदिययावरआयवदुगाणि णो णियमा ।
 अडतीसाऽण्णधुवाई सोलस अण्णयरवेअणीआई ॥८४०॥ (गीतिः)
 देवव्व सण्णियासो गुणतीसाए हवेज्ज सेसाण ।
 णवरि अवधे सुरतिगविउवाहारगदुगाणि अवि ॥८४१॥

(प्रे०) 'एगं' इत्यादि, तेजोलेख्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धि त्रिकाऽनन्तानुबन्धि-
 चतुष्कादिद्वादशकपायवर्जशेषैकत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिपराघातोच्छ्वासवाहरत्रिकरूपासु षट्त्रिंशत्प्रकृति-
 ष्वेकतमां प्रकृतिं बध्नन् नियमेनाऽन्यपञ्चत्रिंशत्प्रकृतीर्वध्नाति । 'वा' इत्यादि, स्त्यानर्द्धि त्रिकमि-
 थ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कदेवमनुष्यतिर्य-
 गायुष्कत्रयाहारकद्विकातपद्विकजिननामरूपाश्चतुर्विंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'बन्धइ' इत्यादि,
 अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्यतमां च खगतिं विकल्पेन
 बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमाः—
 अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यग्गतित्रय एकतमा गतिरे-
 केन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वय एकतरा जातिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामाऽन्यतमं संस्थानं
 देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रय एकतमाऽऽनुपूर्वी सूक्ष्मत्रादरादियुगलत्रयसुस्वरदुःस्वरवर्जसंस्थावरादियुग-
 लषट्क एकतराः षट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति षोडशेति ।

'चारस' इत्यादि, साताऽमातवेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशः
 कीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्राधान्येन सन्निकर्ष एवमेव वर्तते । 'णवर' इत्यादिनाऽपवादं वक्ति-सात-
 वेदनीयादिप्रकृतिवन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नाति, विरुद्धत्वात् । 'छ' इत्यादि, असातवेदनीय-
 शोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिवन्धकः पुनराहारकद्विकदेवायुःप्रकृतित्रयमपि नैव बध्नाति, असातवे-
 दनीयेन महासांन्यस्य विरोधात् । 'थोणद्धि' इत्यादि, स्त्यानर्द्धि त्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवन्धको

मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यग्मायुस्त्रयातपोद्योतरूपाः षट् प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कमध्यादेकप्रधानीकृतप्रकृतिमिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपञ्च-
 चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिवाटरत्रिकपराधातोच्छ्वासरूपाः पञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'नित्य' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकप्रकृतित्रयं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकं वैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्यतरां खगतिं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरज्ञानावरणीयादिप्रधानसन्निकर्षे उक्ता एव षोडश ज्ञातव्याः । 'एमेव' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रधानसन्निकर्षः स्त्यानर्द्धि-
 त्रिकप्रधानसन्निकर्षेवद् विज्ञेयः । 'एवा' इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमध्यादेकं कषायं बध्नन् मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकदेवमनुष्यतिर्यग्मायु-
 ष्कत्रयजिननामातपोद्योतरूपा अष्टादशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, प्रधानीकृत-
 प्रकृत्या सहोपयुक्तत्रयोदशभुवबन्धिप्रकृतिवर्जचतुस्त्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः पराधातोच्छ्वासवाटरत्रिक-
 रूपाः पञ्चप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमसंहननमौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतरस्वरमन्यतरां च खगतिं विकल्पेन बध्नाति । 'णा' इत्यादि, आहारकद्विकं नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्च पूर्वोक्ता एव षोडशाऽत्रापि ग्राह्याः । 'दुहज' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणाख्यद्वितीयकषायचतुष्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः प्रत्याख्यानावरणकषायवदवसेयः । 'पावरं' इत्यादिना विशेषमभिदधाति—
 प्रत्याख्यानावरणाख्यतृतीयकषायचतुष्कं नियमेन बध्नाति, । 'बधेह' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयतिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कत्रयजिननामा-
 हारकद्विकोद्योतरूपास्त्रयोविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीय-
 स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायवर्जशेषैकत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिष्वेन्द्रियजातिपराधातो-
 च्छ्वाससप्तचतुष्करूपा अष्टात्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामातप-
 स्थावरस्त्रीनपुंसकवेदद्वयरूपाः पञ्चप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अभिहितशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।
 तारचेमाः-अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यग्मातित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रिय-
 शरीरनामद्वयेऽन्यतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानमन्यतरा—
 खगतिः देव-मनुष्य-तिर्यग्मानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽ-
 न्यतरगोत्रं चेति षोडशेति । 'एमेव' इत्यादि, ममचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकरूपस्य प्रकृति-
 पञ्चकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः पुरुषवेदवदस्ति, प्रतिपक्षप्रकृतीना वर्जनादिकं तु स्वयं बोद्धव्यमिति ।
 'आपाल' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धको मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषषट्चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिष्वे-

न्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयोद्योतरूपं प्रकृतिपञ्चकं विकल्पेन बध्नाति । 'ण दुवेअ' इत्यादि, पुरुष-नपुंसकवेदद्वयाऽऽहारकद्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरानपजिननामानि नैव बध्नाति । 'ऽपणपर' इत्यादि, अन्यतमसंहननं विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । तारचेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यतिर्यगातित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमसंस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रय एकतमानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति षोडशेति । 'ध्वइ' इत्यादि, देवायुर्वन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायमिथ्यात्वमोहनीयाहारकद्विकजिननामरूपा एकोनविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतरं वेदं नियमेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ब्रुवन्निप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वाससातवेदनीयहास्यरतिदेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रयदशकोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्नैव बध्नाति, तारचेमाः—असातवेदनीयं शोकारती नपुंसकवेदस्तिर्यगमनुष्यत्रिकद्वयमेकेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकमशुभखगतिः स्थावरनामाऽस्थिरपट्कमातपोद्योतनाम्नी नीचैर्गोत्रं चेति पञ्चत्रिंशदिति । 'सुर' इत्यादि, सुगद्विकवैक्रियद्विकयोः प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरायुर्वद् भवति । "पर" इत्यादिनाऽपवादोऽभिधीयते—देवायुर्विकल्पेन बध्नाति । साताऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुमयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपयुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ध्वइ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिनामवन्धकः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकपायमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यतिर्यगायुष्कत्रयजिननामाहारकद्विकोद्योतरूपास्त्रयोविंशतिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ब्रुवन्निप्रकृतिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तत्रिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'एगिंदिय' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिनामातपस्थावरनामानि नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'सेस' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, तारचेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यतिर्यगातित्रय एकतमा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरमङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयेऽन्यतमानुपूर्वी खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्क एकतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरगोत्रं चेति सप्तदशेति । 'एमेव' इत्यादि, त्रसनामप्रधानः सन्निकर्षः पञ्चेन्द्रियजातिवद् वेदितव्यः ।

'आहारग' इत्यादि, आहारकद्विकवन्धको मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धि-

प्रभृतिद्वादशकषायवर्जशेषैकविंशद्भुवन्धिप्रकृतिं सातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेददेवद्विक्रवैक्रियद्विक्रपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वाससमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसदशकोञ्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवायुस्तीर्थकृत्नामप्रकृतिद्वयं विकल्पेन बध्नाति । 'ण उ' इत्यादि, उक्तातिरिक्तद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—असातवेदनीय मिथ्यात्वमोहनीयं स्थानद्वित्रिकमनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायाः शोकारती स्त्रीनपुंसकवेदौ तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमेकेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकं कुलगतः स्थावरनामाऽस्थिरषट्कमातपोद्योतनास्नी नीचैर्गोत्रं चेति ।

'जिण' इत्यादि, जिननामवन्वकोऽप्रेत्याख्यानावरणप्रत्यानावरणचतुष्कद्वयाङ्गकद्विकदेवमनुष्यायुर्द्वयवर्षभनाराचसंहननरूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, वेदनीयाद्यन्यतरदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलं देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वय एकतरं शरीरनामौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतरदङ्गोपाङ्गं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रयेऽन्यतरास्तिष्ठः प्रकृतयश्चेति । 'णियमा' इत्यादि, शेषैकविंशद्भुवन्धिपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोञ्चैर्गोत्ररूपाः पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तशेषद्वाविंशत्प्रकृतीर्नैव बध्नाति, ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयं स्थानद्वित्रिकमनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कं स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं तिर्यक्त्रिकमेकेन्द्रियजातिद्वितीयादिसंहननसंस्थानपञ्चके अशुभखगतिः स्थावरनाम दुर्भगत्रिकमातपोद्योतनास्नी नीचैर्गोत्रं चेति ।

'बध्ने' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रवन्वको जिननामस्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिप्रभृतिद्वादशकषायमिथ्यात्वमोहनीयदेवमनुष्यायुर्द्वयाहारकद्विकरूपा एकविंशतिप्रकृतीरन्यतमसंहननं च विकल्पेन बध्नाति । 'णोअ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रतिर्यक्त्रिकैकेन्द्रियजातिस्थावरातपोद्योतरूपा अष्टौ प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाष्टाविंशद्भुवादिप्रकृतीः षोडशाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्जशेषैकविंशद्भुवन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्काणि तथाऽन्यतरवेदनीयमन्यतरहास्यादियुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यगतिद्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियशरीरद्वयेऽन्यतरशरीरनामौदारिकवैक्रियाऽऽङ्गोपाङ्गद्वयेऽन्यतराङ्गोपाङ्गमन्यतमं संस्थानं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयेऽन्यतरानुपूर्वी खगतिद्वयेऽन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलषट्केऽन्यतराः षट् प्रकृतयश्चेति ।

'देवञ्च' इत्यादि, लाघवार्थं शेषनवविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षं सापवादं दर्शयति । प्रस्तुतमार्गाणां शेषप्रकृतयः केवलं देवैर्वध्यन्ते इति कृत्वा देववत्सन्निकर्षो दर्शितस्तथाऽऽसां सर्वासां सन्नि-

कर्षेऽवन्धप्रकृतितया सुत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाः सप्तप्रकृतयोऽधिकतया कथनीयाः, यत आमां प्रकृतीनां बन्धोऽत्र विद्यते, शेषप्रकृतयः पुनरिमाः—नपुंसकवेद-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिकैकेन्द्रियजात्यौ दारिकद्विकसंहननपट्काद्यवर्जमस्थानपञ्चककुलगत्यातपोद्योत स्थावर दुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्ररूपा एको-नत्रिंशत्प्रकृतयः ॥८१५-४१॥

अथ पञ्चलेश्यामार्गणायां मोऽभिधीयते

अत्थि ध्रुवबधिवारससायाईण पञ्चमाअ तेउळ्व ।

णवरि पणिदितसाणि य णियमा-ऽण्णयरा उवंगसरखगई ॥८४२॥ (गीति)

एगिदिथावरायवणीमाणि ए पुरिससुरतिगाण तहा ।

जिणविउधाहारगदुगमुल्लगइआगिइपणिदीणं ॥८४३॥

परधाउराससुहगतिगतसचउगुञ्जगाण तेउळ्व ।

परमेगिदियआयवथावरणाभाणि ण अरुद्धे ॥८४४॥

णिरयळ्व सण्णियासो सगवीसाए हवेज्जे सेसाण ।

णवरि अबधे सुरतिगविउधाहारगदुगाणि अवि ॥८४५॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, लाघवार्थमतिदेशेन सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षः कथ्यते, तथापि तेजोलेश्यामार्गणायामेकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतीनां बन्धो विद्यते अत्र तु न, तेन तेजोलेश्यामार्गणायां यायां प्रकृतीनां सन्निकर्ष एतत्प्रकृतित्रयस्य बन्धो विकल्पेन विद्यते सोऽत्र न संभवति, तस्मात् 'णवरि' इत्यादेः 'नामाणि' इत्यन्तस्य प्रथमविशेषस्य कथनम्, तथैव यासां प्रकृतीनां सन्निकर्षे तत्रावन्धे तत्प्रकृतित्रयस्य कथनं तदपि प्रस्तुते न संभवति तेन द्वितीयविशेषस्य 'परमे' इत्यादि-नोपादानम्, इत्येवमाद्यगाथात्रयेण केवलं देवैर्बध्यमानाः सप्तविंशतिप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषबन्धा-र्हाणां सर्वप्रकृतीनां सन्निकर्षः भविष्येतिदिष्टः, अथ चतुर्थगाथया शेषसप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षो नरकवत्कथ्यते, यत आमां सर्वासां बन्धकतया केवलं तृतीयादिकल्पगता देवा एव, तृतीयादि-कल्पदेवमार्गणासु नरकवत्सन्निकर्षो दर्शितस्तेन नरकवत् सन्निकर्षोऽतिदिष्टः । यद्यपि नरकवत्स-न्निकर्षेऽतिदिष्टेऽपि प्रस्तुते नरकमार्गणातः सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाणां सप्तप्रकृतीनां बन्धोऽधिकतया विद्यते, अत आमां सप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षेऽवन्धतयाऽऽसां सप्तप्रकृतीनां प्राप्यमाणत्वाद् 'णवरि' इत्यादिना तृतीयविशेषस्य कथनमिति । अक्षरार्थः पुनरयम्—'ध्रुव' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिद्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनां सन्निकर्षस्तेजोलेश्यामार्गणायां यथा कथितं स्तथैवात्र कथनीयः किन्तु पञ्चेन्द्रियजातिप्रसन्नाः गोस्तथौदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वय एकतरस्य तथाऽन्यतरस्वरस्यान्यतरखगतिनाम्नश्च बन्धो नियमेन कथनीयः, एकेन्द्रियस्थावरातपनाम्नां बन्धो न कथनीयः प्रस्तुते तासामवन्धादिति । 'पुरिस' इत्यादि, पुरुषवेदसुरत्रिकजिननाभवैक्रिय-द्विकाहारकद्विकशुभखगतिप्रथममस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोऽत्राससुभगत्रिकत्रयचतुष्कोच्चैर्गोत्र-

रूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्षस्तेजोलेश्यामार्गणावज्ज्ञातव्यः परमबन्धप्रकृति-
तयैकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतयो न कथनीयाः, प्रस्तुतेऽगन्धादिति । 'गिरयन्व' इत्यादि, केवलं
देवैर्बध्यमानानां स्त्रीवेदनपुंसकवेदतिर्यक्त्रिकमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकमंहननपट्कप्रथमवर्जसंस्थान-
पञ्चककुलगतदुर्भगत्रिकोद्योतनीर्गोत्ररूपाणां सप्तविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षो नरकवज्ज्ञातव्यः,
केवलमन्धे सुरत्रिकत्रिक्रियद्विकोद्धारकद्विकप्रकृतयोऽधिकतयाऽत्र कथनीयाः ॥८४२-४५॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां स उच्यते

सुक्लाए बंधंतो एगं आवरणणवगविग्धाओ ।
बंधइ गियमाऽण्णा तह अण्णयर तिण्णि वेअणीआई ॥८४६॥ (गीतिः)
वाऽण्णयर जुगलाई पणचत्ताऽण्णा व सायबधी उ ।
ण असायं वाऽण्णयर जुगलाई व धुवआइयुणसद्धी ॥८४७॥ (गीतिः)
सजलणकोहबधी आवरणणवगतिसंजलणविग्धा ।
बंधइ गियमा तिण्णि य अण्णयर वेअणीआई ॥८४८॥
वा सेसधुवदुआउगपणिदिआहारदुगतसचउक्क ।
जिणपरधाऊसासा तह सेसाऽण्णयरजुगलाई ॥८४९॥
एवं पुमस्त एवरि ण पडिक्खलेमेव तिण्ह चरमाणं ।
मायाईण जवरि वा कमसो एगदुतिसंजलणा ॥८५०॥
बधेइ हत्सबंधी गियमा आवरणणवगसंजलणा ।
रइभयकुच्छाविग्धा चउरो अण्णयरवेअणीआई ॥८५१॥ (गीतिः)
वा सेसा धुवबंधी सगवीसा तह दुआउगपणिदी ।
आहारगदुगजिणपरधाऊसासतसचउगाणि ॥८५२॥
सोगारई ण बंधइ वा उणं अण्णयरसेसगइआई ।
एवं रईअ एवं भयकुच्छाणि परमण्णयरजुगलं ॥८५३॥ (गीतिः)
जसबधी बंधइ वा तेत्तीसधुवाउदुगपणिदिजिणा ।
तह आहारगदुगपरधाऊसासतसचउगाणि ॥८५४॥
अजसं ण अण्णयरवेअणीअणीआणि बंधए गियमा ।
तह विग्घणवावरणाऽण्णाऽण्णयर वेवमुच्चस्स ॥८५५॥
पम्हव्व चोरहिअपणवण्णऽण्णसुरारिहाण परमत्थि ।
ण तिरितिगुज्जोआ धुवसुणामबधे दुणिदा वा ॥८५६॥
सेसाण सण्णियासो तेवीसाएऽत्थि आणयसुरव्व ।
जवरि अबधे सुरतिगविउवाहारगदुगाणि अवि ॥८५७॥

(प्रे०) 'सुक्लाए' इत्यादि. शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकचक्षुरादिदर्शनावरणचतु-
ष्काऽन्तरायपञ्चकरूपासु चतुर्दशप्रकृतिष्वन्यतमां प्रकृतिं बध्नन् शेषत्रयोदशप्रकृतीरन्यतरवेदनीयं
यशःकीर्त्यशःकीर्तियुगल एकतरं गोत्रद्वय एकतरं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, पञ्चदशा-
ऽन्यतरयुगलादिप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः—एकतरं युगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यमति-

द्वय एकतरा गतिरौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकमन्यतमसंहननमन्यतमसंस्थानं देवमनुष्यानु-
पूर्वीद्वय एकतरानुपूर्वी खगतिद्वय एकतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतय-
श्चेति । 'व' इत्यादि, उक्तशेषपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । ताश्चेमाः-निद्राद्विकं
स्त्यानद्वित्रिक मिथ्यात्वमोहनीय षोडशकपाया भयकुत्मे देवमनुष्यायुर्द्वयं पञ्चेन्द्रियजातिराहारक-
द्विकं त्रयचतुष्कं पराधातोच्छ्वासनाम्नी जिननाम नवध्रुवबन्धिनामप्रकृतयश्चेति । प्रकृतप्रकृतीनां
मन्यतरप्रकृतीनां च बन्धविच्छेदानन्तरमपि प्रधानीकृतप्रकृतीनां बन्धभावात् ।

'सायबन्धो' इत्यादि, सातवेदनीयस्य बन्धकोऽमातवेदनीयं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि,
अन्यतरयुगलादिप्रकृतीरेकोनषष्टिध्रुवबन्धिप्रभृतिप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति ताश्चेमाः-सप्तचत्वा-
रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिनामाहारकद्विकत्रयचतुष्कपराधातोच्छ्वासजिननामदेवमनुष्या-
युष्कद्वयरूपा द्वादशप्रकृतयश्चेत्येकोनषष्टिध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतय इति । अन्यतरयुगलादिप्रकृतयः पुन-
रिमाः-अन्यतरयुगलमन्यतमो वेदो देवमनुष्यद्विकद्वयेऽन्यतरद् द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वयेऽन्यतरद्-
द्विकमन्यतममंहननमन्यतमसंस्थानमेकतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्टकेऽन्यतराः षट्प्रकृतयोऽ-
न्यतरगोत्रश्चेति सप्तदशेति । 'संजलण' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शना-
वरणचतुष्कसञ्ज्वलनमानादित्रयाऽन्तरायपञ्चकरूपाः सप्तदशप्रकृतीरन्यतरवेदनीयं यशःकीर्त्ययशः-
कीर्तियुगल एकतरप्रकृतिं गोत्रद्वयेऽन्यतरद् गोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, शेषैको-
नत्रिंशद्भ्रुवबन्धिदेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चेन्द्रियजात्याहारकद्विकत्रयचतुष्कजिननामपराधातोच्छ्वासरूपा
एकचत्वारिंशत्प्रकृतीः शेषाऽन्यतरप्रकृतीश्च विकल्पेन बध्नाति । ताश्चाऽन्यतरप्रकृतयः पूर्वोक्ता एव
ज्ञातव्याः । 'एवं' इत्यादि, पुरुषवेदबन्धकस्तत्प्रतिपक्षवेदद्वयं नैव बध्नाति । 'एमेव' इत्यादि, सञ्ज्वलनमान-
मायालोभत्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसेयः । 'णचरि' इत्यादि-
नाऽपवादं कथयति -पुरुषवेदबन्धकस्तत्प्रतिपक्षवेदद्वयं नैव बध्नाति । 'एमेव' इत्यादि, सञ्ज्वलनमान-
मायालोभत्रयस्य प्राधान्येन सन्निकर्षः सञ्ज्वलनक्रोधवदवसेयः । 'णचरि' इत्यादिनाऽपवादपद-
मुच्यते सञ्ज्वलनमानबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोध सञ्ज्वलनमायाबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानौ सञ्ज-
लनलोभबन्धकः सञ्ज्वलनक्रोधमानमायात्रयं च विकल्पेन बध्नाति ।

'बन्धेह' इत्यादि, हास्यमोहनीयबन्धको ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्कप्रति-
भयकुत्माऽन्तरायपञ्चकरूपा एकविंशतिप्रकृतीरन्यतरवेदनीयमन्यतमो वेदो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्यैरि-
तरामन्यतरगोत्रं च नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, सप्तविंशतिध्रुवबन्धिदेवमनुष्यायुर्द्वयपञ्चे-
न्द्रियजात्याहारकद्विकजिननामपराधातोच्छ्वासत्रयचतुष्करूपा नवत्रिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति ।
'सोग' इत्यादि, शोकारती नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, अन्यतरशेषगत्यादिप्रकृतीर्विकल्पेन
बध्नाति, ताश्चेमाः-देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकमन्यतम-
संहननमन्यतमसंस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिराऽस्थिरादियुगलपञ्चकेऽन्यतराः पञ्चप्रकृतयश्चेति

द्वादशेति । 'एवं' इत्यादि, रतिमोहनीयप्रधानसन्निकर्षो हास्यमोहनीयवद् वर्तते । 'एवं' इत्यादि, भयकुन्सामोहनीययोरपि प्राधान्येन सन्निकर्षो हास्यमोहनीयवदस्ति । 'पर' इत्यादिनाऽपवादमाह-- अन्यतरहास्यादियुगलं भयादिवन्धको नियमेन बध्नाति ।

'जस' इत्यादि, यशःकीर्तिनामबन्धको ज्ञानावरणीयप्रभृतिचतुर्दशप्रकृतिवर्जत्रयस्त्रिंशद्भ्रुवबन्धि- देवमनुष्यायुष्कद्वयपञ्चेन्द्रियजातिजिननामाहारकद्विकपराघातोच्छ्वामत्रमचतुष्करूपाः एञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । 'अजस' इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम नैव बध्नाति । 'अपणायर' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयमन्यतरच गोत्रं तथा ज्ञानावरणीयादिचतुर्दशप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । 'अपणा' इत्यादि, अभिहितेतरान्यतरप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति, ताश्च मतिज्ञानावरणीयप्रधान- सन्निकर्षे कथिता एवाऽत्र प्राक्षाः । 'एवं' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रप्रधानसन्निकर्षो यशःकीर्तिप्रधानसन्नि- कर्षवज्ज्ञातव्य इति ।

'पञ्च' इत्यादि, स्त्रीवेदरहितदेवप्रायोग्यशेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतिप्रधानसन्निकर्षः पञ्चलेश्यायां तत्तत्प्रकृतिप्रधानसन्निकर्षो यथा कथितस्तद्वदेवाऽत्रापि स वक्तव्यः किन्तु तत्र तिर्यगायुष्क- तिर्यग्विद्वकोद्योतप्रकृतीनामबन्धप्रकृतितया स्याद्बन्धवत्प्रकृतितया वा यथायोग्यं ग्रहणं कृतम्, तदत्र न कर्तव्यम्, प्रस्तुते तामामबध्यमानत्वादिति । तथा 'ध्रुव' इत्यादि, नवनाम-ध्रुवबन्धिशेषशुभ- नामप्रकृतिप्रधानसन्निकर्षे निद्राद्विकस्य प्रस्तुते स्याद्बन्धः कथनीयः, निद्राद्विकबन्धविच्छेदानन्तर- मासां प्रकृतीनां बन्धविच्छेदात् । शेषपञ्चपञ्चाशद्देवगतिबन्धप्रायोग्यप्रकृतयः पुनरिमाः—निद्रापञ्च- कासातवेदनीयारतिशोकमिथ्यात्वमोहनीयाद्यद्वादशकषायदेवायुष्कदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनवनामध्रुव- बन्धिवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रथमसंस्थानसुखगतिजिनपराघातोच्छ्वामयशःकीर्तिवर्जत्रयसन्निकर्षास्थिराशु- भायशःकीर्तिनामप्रकृतयः । यासां नवनामध्रुवबन्धिशेषशुभनामप्रकृतीनां सन्निकर्षे निद्राद्विकस्य स्याद्बन्धस्ताः पुनरिमाः नवनामध्रुवबन्धिवेदवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकप्रथम- संस्थानशुभसुखगतिजिनपराघातोच्छ्वामत्रमनवकरूपास्त्रिंशत्प्रकृतयः ।

'सेसाण' इत्यादि, शेषत्रयोविंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षे आनतसुरवज्ज्ञातव्यः । अत्रापि यो विशेषस्तं 'णवरि' इत्यादिना कथयति—स्त्रीनपुंमकवेदत्रयमनुष्यत्रिकौदारिकद्विकसंहननपट्प्रथम- वर्जसंस्थानपञ्चकुलगतदुर्भगात्रिकनीचैर्गोत्ररूपाणां प्रस्तुतमार्गणावर्तिकेवलदेवैर्वध्यमानानां त्रयो- विंशतिप्रकृतीनां सन्निकर्षे आनतदेववज्ज्ञातव्यः, किन्त्वबन्धे सुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रकृतयो- ऽधिकतया कथनीयाः ॥८४६-८५७॥

अथाऽमव्यादिमार्गणासु सोऽभिधीयते

पर०ाणसण्णियासो सञ्जेसि अभविमिच्छअमणेसुं ।

अपणाणतिगत्थ णवरि िच्छत्तं वचए णियमा ॥८५८॥

(प्रे०) 'परठाण' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणात्रये सर्वासां प्रकृतीनां परस्थान-
सन्निकर्षोऽज्ञानमार्गणात्रिकवद् विज्ञातव्यः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-मिथ्यात्वमोहनीयं
नियमेन बध्नाति । ८५८॥

इदानीं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतमभिधातुमना आह

इगतीसधुवपणिदिसुआगिइलगइपरधायऊसासा ।
तसचउगसुहगतियपुमउच्चाओ वेअगे एगं ॥८५९॥
बंधतो णियमाऽण्णा तह दस अण्णयरवेअणीआई ।
सेसा व जिणररोव छण्हं सायाइगाणं पि ॥८६०॥
णवरि एण चिअ पडिवक्खां सेसाणोहिण्व णवरि बंधेइ ।
णियमा णिहापयला सुरचिउवाहारकुगबंधो ॥८६१॥

(प्रे०) 'इग०' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्कवर्जशेषैकत्रिशदध्रुवबन्धप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिपराधातोच्छ्वासत्रस-
चतुष्कसुभगत्रिकपुरुषवेदोच्चैर्गौरूपासु पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वेकां प्रकृतिमावधनन् शेषचतुश्चत्वा-
रिंशत्प्रकृतीस्तथाऽन्यतरवेदनीयादिदशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरदशप्रकृतयः-अन्य-
तरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यादिकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एक-
तरं द्विकं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलत्रय एकतरास्तिष्ठः प्रकृतयश्चेति । 'सेसा'
इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीर्विकल्पेन बध्नाति । तारचताः-अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
द्वयं आहारकद्विकं वज्रर्षमनाराचसंहननं जिननाम देवमनुष्यायुष्कद्वयं चेति चतुर्दशेति । 'जिणरस'
इत्यादि, जिननाम्नः प्रधानतया सन्निकर्ष एवमेवाऽस्ति । 'छण्हं' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरति-
स्थिरशुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपट्कस्याऽपि सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं
प्रदर्शयति-सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिर्नैव बध्नाति, विरोधात् । 'सेसाण' इत्यादि,
उक्तशेषप्रकृतीनां प्राधान्येन परस्थानसन्निकर्षोऽवधिज्ञानमार्गणावदवसेयः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
असातवेदनीयमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्के शोकारती देवमनुष्यत्रिकद्वयमौदारिकवैक्रिय-
द्विकद्वयमाहारकद्विकं वज्रर्षमनाराचसंहननमस्थिराऽशुभायशःकीर्तित्रयं चेति सप्तविंशतिरिति ।
'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह-सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकबन्धको निद्राद्विकं नियमेन बध्नाति,
क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणाऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानं यावद् वर्तते तावत्पर्यन्तं च सुरद्विकादिप्रकृतिभिः
सह निद्राद्विकबन्धस्य नैयत्यं वर्तते इति कृत्वेति ॥८५९ ६१॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां परस्थानसन्निकर्षं निरूपयितुमाह

मीसे एग धुवगुणचत्तपणिदियसुहागिइपुमाण ।
परधाऊसाससुहगतिसचउगसुहलगइउच्चाणं ॥८६२॥ (गीतिः)

बंधतो णियमाऽण्णा दस णियमाऽण्णयरवेअणीआई ।
 चइरं वेवं बारससायाईण परं ण पडिववला ॥८६३॥
 बंधतो णररलदुगवइराणेग ण देवविउवदुगं ।
 णियमा छवेअणीआई अण्णयर तहा सेसा ॥८६४॥
 सुरविउवदुगणेगं बंधतो ण णररलदुगवइरा ।
 णियमा छ वेअणीआई अण्णयर तहा सेसा ॥८६५॥

(प्रे०) 'भोसे' इत्यादि, मिश्रमभ्यवत्यमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपुरुषवेदपराधातोच्छ्वाससुभगत्रिकत्रसचतुष्कसुखगतिनामोच्चैर्गोत्ररूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिष्वेकतरां प्रकृतिं बध्नन् शेषद्वापञ्चाशत्प्रकृतीर्दशाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतरप्रकृतयः-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं स्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशः-कीर्त्ययशःकीर्तिरूपगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेति । 'चइरं' इत्यादि, वज्रर्षमनाराचसंहननं विकल्पेन बध्नाति, देवप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकाले तेन तस्याऽवध्यमानत्वान्मनुष्यप्रायोग्यवन्धकाले बध्यमानत्वाच्च । 'एवं' इत्यादि, माताऽमातवेदनीयद्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशः-कीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'परं' इत्यादिनाऽपवादमाह सातवेदनीयादिप्रकृतिवन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं नैव बध्नाति । 'बंधतो' इत्यादि, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षमनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकेऽन्यतमामेकां प्रकृतिं बध्नन् देवद्विकवैक्रियद्विके नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयादिपट्प्रकृतीस्तथाभिहितशेषप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । ताश्चेमा अन्यतराः प्रकृतयः शेषप्रकृतयश्च-अन्यतरद् वेदनीयमन्यतरद् हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपगलत्रय एकतरास्तिस्रः प्रकृतय इति पट्प्रकृतयः, एकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतिपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकपरधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपास्त्रिपञ्चाशदिति । 'सुरे' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिष्वेकतरामेकां प्रकृतिं बध्नन् मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षमनाराचसंहननप्रकृतिपञ्चकं नैव बध्नाति, विरोधात् । 'णियमा' इत्यादि, अन्यतरवेदनीयादिपट्प्रकृतीस्तथोक्तशेषप्रकृतीश्च नियमेन बध्नाति । ताश्चानन्तरोक्ता एवाऽत्रोपादेयाः । ८६३-६५॥

अथ सास्त्रादनसम्यवत्यमार्गणायां प्रकृतः प्रकथ्यते

छायालघुवपणिदियपरधाऊसासतसचउदकाणि ।
 सासाणे बंधतो एतां बधेइ णियमाऽण्णा ॥८६६॥
 उज्जोअ वाऽण्णयर संधेयण व णियमाऽण्णयरसेसा ।
 सायरइहत्तपुमचोसुत्तगेइअगिइयिरछगाणं ॥८६७॥

एवं एवमि ए वंधइ पडिवक्ता एवमेव विष्णोयो ।
 छण्ह असायाईण णवर वंधइ ण देवाउं ॥८६८॥
 तिरियाउगवघो धुवतिरियउरलदुगपणिणविपरधाया ।
 तह ऊसासतसचउगणीआइ वंधए एयिमा ॥८६९॥
 वृज्जोअ णरसुरतिगविउवदुगुच्चाणि णेव णियमाऽण्णा ।
 अण्णपरैव तिरिदुगउज्जोआण णवरं य तिरियाउं ॥८७०॥ (गीतिः)
 मणुयाउ वंधंतो वंधइ एयिमा छचत्तधुवबंधो ।
 णरउरलदुगपणिणदियपरधाऊसासतसचउयकाणि ॥८७१॥ (गीतिः)
 ण तिरिसुरतिगविउवदुगउज्जोआऽण्णयरवेप्रणीआई ।
 चउदश णियमेवं एरदुगन्स णवरं णराउं वा ॥८७२॥
 धुवसायहरशरइसुरविउवदुगमुखगइआगिइपणिवो ।
 परधाऊसासगतसदशगुच्चाणि य सुराउबंधो उ ॥८७३॥ (गीतिः)
 णियमाऽण्णयर वेअ णऽण्णेमेव सुरविउवदुगलण ।
 णवरि सुराउं वा खलु णियमा छऽण्णयरवेअणीआई ॥८७४॥ (गीतिः)
 उरलतणुं वंधंतो णियमा वंधइ छचत्तधुवबंधो ।
 उरलोवगपणिणदियपरधाऊसासतसचउयकाणि ॥८७५॥ (गीतिः)
 सुरतिगविउवदुगाणि ए चिम वंधइ या दुआउउज्जोआ ।
 णियमाऽण्णा अण्णयर एव ओरालुवगस्स ॥८७६॥
 सधयणपंचगागिइचउगदुहगतिगकुखगइणीमाणं ।
 एमेव हवेज्ज णवरि ण चेव वंधेइ पडिवक्ता ॥८७७॥
 छायालधुवपणिणदियपरधाऊसासतसचउयकाणि ।
 वंधेइ उज्जवघो णियमा वाऽण्णयरसंधयण ॥८७८॥
 णोअतिरितिगुज्जोआ ण चेव वंधइ व एरसुराऊणि ।
 वंधइ णियमा सेसा अण्णयर वेअणीआई ॥८७९॥

(प्रे०) 'छायाल' इत्यादि, सास्वादनाममयवत्प्रमार्गिणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्त्वार्ति-
 शब्दध्रुववन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोऽन्नामत्रसचतुष्करूपासु त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिध्वेकतमां प्रकृ-
 ति बध्नन् शेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, देवमनुष्यतिर्यगायुरेव्योत-
 प्रकृतिचतुष्कमन्यतमं संहननं च विकल्पेन बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तान्यतरशेषप्रकृतीर्निय-
 मेन बध्नाति । ताश्चेमाः--अन्यतरद् वेदनीयमेकतर हास्यादियुगल स्त्रीपुरुषवेदद्वयेऽन्यतमो वेदो देव-
 मनुष्यतिर्यग्द्विकत्रय एकतरं द्विकर्मादारिकर्वाक्रियद्विकत्रय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्य-
 तम संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्क् एकतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतरद् गोत्रं चेति
 सप्तदशेति । 'साय' इत्यादि, सातवेदनीयरतिहास्यपुरुषवेदस्त्रीवेदसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानस्थिर-
 पट्कप्रकृतीनां सन्निकर्ष एवमेव विज्ञेयः । 'णवरि' इत्यादिनाऽपवाद उच्यते--एतत्प्रकृतिबन्धकस्त-
 त्प्रतिपक्षप्रकृतिर्नैव बध्नाति । 'एवमेव' इत्यादि, असायवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुभायशःकीर्तिलक्ष-

णस्य प्रकृतिपट्कस्य प्राधान्येन सन्निकर्षोऽप्येवमेव विज्ञेयः । 'णचर' इत्यादिनाऽपवादमभिधत्वाति-
असातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृतिं देवायुश्च नैव बध्नाति ।

'तिरियाउगबन्धो' इत्यादि, तिर्यगायुर्वन्धकः पट्चत्वारिंशद्भुवन्विधितिर्यग्द्विकौदारिक-
द्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।
'बु' इत्यादि, उद्योतनाम विकल्पेन बध्नाति । 'णर' इत्यादि, मनुष्यत्रिकसुरत्रिकवैक्रियद्विकोच्चै-
र्गोत्ररूपा नव प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णियमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमतो बध्नाति ।
ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदः प्रथमादिसंहननपञ्चके-
ऽन्यतमं मंहननं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्-
केऽन्यतराः पट्प्रकृतदशचेति त्रयोदशेति । 'एवं' इत्यादि, तिर्यग्द्विकोद्योतनाम्नोः प्राधान्येन सन्नि-
कर्षस्तिर्यगायुर्वन्धकः । 'णचर' इत्यादिनाऽपवादं कथयति—तिर्यग्द्विकोद्योतनामबन्धकस्तिर्यगायु-
र्विकल्पेन बध्नाति ।

'मणुयाउ' इत्यादि, मनुष्यायुष्कं बध्नन् पट्चत्वारिंशद्भुवन्विधिमनुष्यद्विकौदारिकद्विक-
पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि,
तिर्यक्त्रिकदेवत्रिकवैक्रियद्विकोद्योतनामरूपा नवप्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'णयचर' इत्यादि, उक्तातिरि-
क्तवेदनीयादन्यतरचतुर्दशप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चाऽनन्तरोक्ता अन्यतमगोत्रेण सहिता एवात्र
ग्राह्याः । 'एवं' इत्यादि, मनुष्यद्विकस्य प्राधान्येन सन्निकर्षो मनुष्यायुर्वन्धकः । 'णचर' इत्यादिना
विशेषमुपदर्शयति—मनुष्यद्विकबन्धको मनुष्यायुर्विकल्पेन बध्नाति ।

'धुव' इत्यादि, देवायुर्वन्धकः पट्चत्वारिंशद्भुवन्विधिसातवेदनीयहास्यरतिसुरद्विकवैक्रिय-
द्विकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसदशकोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनमसति-
प्रकृतीरेकतरं स्त्रीपुरुषवेदद्वये वेदं च नियमेन बध्नाति । 'ण' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीर्नैव बध्नाति,
ताश्चेमाः—असातवेदनीयं श्लोकारती तिर्यक्त्रिकं मनुष्यत्रिकमौदारिकद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं मध्य-
मसंस्थानचतुष्कं कुलगतिरस्थिरपट्कमृद्योतनाम नीचैर्गोत्रं चेत्येकोनत्रिंशदिति । 'एभेव' इत्यादि,
सुरद्विकवैक्रियद्विकयोः प्राधान्येन सन्निकर्षः सुरायुर्वन्धकः । 'णचरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—देव-
द्विकादिप्रकृतिबन्धको देवायुर्विकल्पेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तथा स एव देवद्विकादिप्रकृति-
बन्धक एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रय
एकतरास्तिस्रः प्रकृतयश्चेत्यन्यतरपट्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति ।

'उरललणु' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम बध्नन् पट्चत्वारिंशद्भुवन्विधिप्रकृत्यौदारिका-
प्रोपाङ्गपञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'सुर'
इत्यादि, सुरत्रिकवैक्रियद्विकप्रकृतिद्विकं नैव बध्नाति । 'वा' इत्यादि, तिर्यग्मनुष्यायुर्वन्धकोद्योत-

प्रकृतित्रयं विकल्पेन बध्नाति । 'णिथमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—एकतरं वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदस्तिर्यग्मनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकेऽन्यतमं संहननं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकेऽन्यतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट्प्रकृतयोऽन्यतराद् गोत्रं चेति षोडशेति । 'एवं' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नः प्रधानतया सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदवसातव्यः । 'संध्यया' इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्कदुर्भगात्रिकृत्वखगतिनीचैर्गोत्रप्रकृतीनां प्रधानभावेन सन्निकर्ष औदारिकशरीरनामवदवसेयः । 'णचरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—एतेऽप्रकृतिबन्धकस्तत्प्रतिपक्षप्रकृति नैव बध्नाति ।

'छायाल' इत्यादि, उच्चैर्गोत्रबन्धकः पट्चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रयचतुष्करूपास्त्रिपञ्चाशन्प्रकृतीर्नियमेन बध्नाति । 'वा' इत्यादि, प्रथमादिसंहननपञ्चकेऽन्यतमं संहननं विकल्पेन बध्नाति । 'जीअ' इत्यादि, नीचैर्गोत्रतियेकत्रिकोद्योतरूपाः पञ्च प्रकृतीर्नैव बध्नाति । 'व' इत्यादि, मनुष्यदेवायुषी विकल्पेन बध्नाति । 'णिथमा' इत्यादि, उक्तशेषाऽन्यतरवेदनीयादिप्रकृतीर्नियमेन बध्नाति, ताश्चेमाः—अन्यतराद् वेदनीयमेकतरं हास्यादियुगलं स्त्रीपुरुषवेदद्वय एकतरो वेदो देवमनुष्यद्विकद्वय एकतरं द्विकमौदारिकवैक्रियद्विकद्वय एकतरं द्विकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चक एकतमं संस्थानमन्यतरा खगतिः स्थिरास्थिरादियुगलपट्केऽन्यतराः पट् प्रकृतयश्चेति षोडशेति ॥८६६ ७९॥ तदेवं परस्थानसन्निकर्षः परिसमाप्तस्तत्परिसमाप्ते च सन्निकर्षद्वारमपि समाप्तमिति ।

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे पष्ठं सन्निकर्षद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ सप्तमं भङ्गविचयद्वारम् ॥

साम्प्रतं 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायान्क्रमलब्धं सप्तमं भङ्गविचयद्वारं प्ररूपयितुमना
ग्रन्थकार आदौ तावद्भेदानां संख्यां स्वरूपं च गाथायुगलेन दर्शयितुमाह

भङ्गाऽट्ट वंधगो खलु पढमो दुइओ अवंधगो तइओ ।

सव्वे वि वंधगा तह सव्वे वि अवंधगा तुरिओ ॥८८०॥

एणेण वंधणेणं एणेऽणेणे अवंधगा कमसो ।

णेगेहि वंधगेहि सह एवं पंचमाइचअ । ८८१॥

(प्रे०) 'भङ्गा' इत्यादि, भङ्गानां एकद्वित्रयादिसंयोगनिष्पन्नानां विकल्पानां 'विचयो' नाम समूह
इति भङ्गविचयशब्दार्थः । भावार्थः पुनरेवम्—विवक्षितपदार्थानामेकद्वित्रिचतुरादिपदार्थसंयोगैः नेके
भङ्गाः प्रकरणग्रन्थेषु प्ररूपिता उपलभ्यन्ते परमत्र तूत्तरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकपदद्वयस्यैकसंयोगिन-
श्चत्वारो भङ्गा द्विसंयोगिनश्चत्वारो भङ्गा इत्यष्टावेव भङ्गा लभ्यन्ते, ते चैवम्

(१) एको बन्धक एव (२) एकोऽबन्धक एव (३) सर्वे बन्धकाः (४) सर्वेऽबन्धका इति चत्वार
एकसंयोगिभङ्गाः । (५) एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धकः, (६) एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः,
(७) अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः (८) अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धका इति द्विसंयोगिनश्चत्वारो-
भङ्गाः । एतदेव ग्रन्थकारोऽत्र निरूपयति—'भङ्गाऽट्ट' इति, अत्र भङ्गविचयद्वारप्ररूपणायामष्टौ
भङ्गा भवन्तीति भावः । अथाऽष्टानामपि भङ्गानां क्रमशः स्वरूपं दर्शयति । 'बंधगो खलु पढमो'
इति खलुशब्दोऽत्राऽवधारणार्थकः, 'बन्धक एव' इति रूप आद्यभङ्गः संवृतः, स चैवमुपपादनीयः,
मार्गणा हि खलु द्विविधा विद्यन्ते, सान्तराः कारिचद्, कारिचच्च निरन्तराः, यथा नरकौधादिमार्गणा
निरन्तराः सन्ति, जीवानां नरकौधादिमार्गणानु सदैव सद्भावात्, नैतत्कदापि भूतं, भविष्यति,
भवति वा यन्नाशकत्वादिपर्यायापन्ना जीवा नोपलभ्येरन् । अपर्याप्तमनुष्यसूक्ष्मसंपरायाहारककाययोग-
प्रभृतिमार्गणास्तु सान्तराः सन्ति, सान्तरमार्गणानु जीवसत्ताया अनेकान्तिकत्वात्, भवति ह्यपर्या-
प्तमनुष्यादिमार्गणाम्यः सर्वेषां जीवानां निर्गमने जाते तासां मार्गणानामभावः । यदा खलु
विवक्षितमार्गणायामेक एव जीवो विद्यते, स एव च कारिचद् विवक्षितोत्तरप्रकृतीर्ब्रूनाति, तदा
'एक एव बन्धकः' इति प्रथमभङ्गस्य चरितार्थता भवति । ननु भङ्गेऽस्मिन्नेवकारपदप्रयोगस्य किं
प्रयोजनमिति चेद्, उच्यते, यद्यत्रैवकारपदप्रयोगो न कृतः स्यात्, तर्हि षष्ठभङ्गेन साक
प्रथमभङ्गस्य साङ्कर्यभावेन प्रथमभङ्गस्य व्यर्थता स्यात्, तद्यथा—विवक्षितमार्गणायामनेके जीवा
वर्तन्ते, तेभ्य एक एव जीवो विवक्षितप्रकृतिबन्धविधायी, अन्ये पुनर्न तथा, तदा 'एक एव
बन्धक अनेकेऽबन्धकाः' इत्येवंरूपः षष्ठो भङ्गो भवति, षष्ठे भङ्गेऽस्मिन्नेकजीवस्य विवक्षितप्रकृतीनां
बन्धकत्वेनैवकारानुपहितस्य 'एको बन्धकः' इति प्रथमभङ्गस्य समावेशात्साङ्कर्यभावेनाद्यभङ्गस्य

वैयर्थ्यं स्यात्, अत एव प्रथमभङ्ग एवकारपदं प्रयोक्तव्यम्, तेन नोक्तदोषापत्तिः, यतो हि प्रथमभङ्गे विवक्षितमार्गणायामेकस्यैव जीवस्य सत्त्वमस्ति स एव विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकः, पष्ठ-भङ्गे पुनर्विवक्षितमार्गणायामनेके जीवा भवन्ति, तेभ्यश्चैक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकः, न त्वन्ये, इति प्रथमपष्ठभङ्गयोर्वैलक्षण्यमस्ति । अथात्र गाथायां 'बन्धकः' इति पदप्रयोगो विहितः न तु 'एक' इति पदप्रयोगः, 'एको बन्धक एव' इति प्रथमभङ्गे 'एक' इति पदं भवद्भिर्व्याख्यातम्, तत्कृत आयातमिति चेद्, अत्रोच्यते—'बन्धकः' इत्यत्र सिद्धिभक्तेरेकत्वार्थं कत्वेन 'एक' इति पदोपादानं प्रथमभङ्गे कृतमिति । अथ द्वितीयभङ्गं 'तद्विओ अबन्धगो' इत्यनेन दर्शयति, द्वितीयोऽबन्धकः, खलुशब्दस्याऽत्राप्यायोजनाद् 'एकोऽबन्धक एव' इति लक्षणो द्वितीयभङ्गः सम्पद्यते, तद्धटना पुनरेवम्—विवक्षितमार्गणायामेक एव जीवो विद्यते स च विवक्षितप्रकृतीनां बध्नाति, तदाऽयं भङ्गो घटां याति, अत्राऽप्येवकारपदोपादानं सप्तमभङ्गाद् द्वितीयभङ्गस्य पार्थक्यप्रदर्शनार्थं विज्ञेयम्, अन्यथा द्वितीयसप्तमभङ्गयोरैक्यप्रसक्तेर्द्वितीयभङ्गस्य विलोपापत्तिः स्यात्; तदित्यम्—विवक्षितमार्गणायामनेके जीवाः स्युः, तेभ्य एकरवर्जाः सर्वे जीवा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धं विदधते, एकस्तु न तदा सप्तमो भङ्गो भवति अत्रैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनामबन्धकतया विद्यत एव, तस्माद् 'एकोऽबन्धकः' इत्याकारकद्वितीयभङ्गस्य सप्तमभङ्गेऽन्तर्भावाद् भवति द्वितीयभङ्गविलोपः । "तद्विओ" इत्यादिना तृतीयभङ्गमुपदर्शयति, 'सर्वेऽपि बन्धकाः' इति स्वरूपतृतीयो भङ्गो भवति, भावना पुनरेवम्—विवक्षितमार्गणायां वर्तमानाः सर्वे जीवा विवक्षितप्रकृतीर्वध्नीयुस्तदाऽयं भङ्ग उपपत्तिं लभते । "सन्वे चि" इत्यादितस्तुर्यभङ्गमभिदधाति—'सर्वेऽबन्धकाः' इत्यात्मकस्तुर्यो भङ्गो जायते, तद्यथा—विवक्षितमार्गणायां विद्यमानाः सर्वेऽपि जीवा विवक्षितप्रकृतीनामबन्धका भवेयुः, तदा भङ्गोऽयमत्राप्यते । कृतैवं प्रथमगाथया चतुर्णामेकसंयोगिनां भङ्गानां स्वरूपप्ररूपणा, साम्प्रतं सैव परेषां द्विसंयोगिनां चतुर्णां भङ्गानां द्वितीयगाथया क्रियते, एकेन बन्धकेन एकानेके अबन्धका क्रमशः' इति यथाक्रममत्र एकेन बन्धकेनेतिपदेन माकं 'एकाऽबन्धकः' इतिपदस्यायोजनात् 'एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धक इतिस्वरूपः पञ्चमभङ्गः संजायते, एकेन बन्धकेन समं अनेकाऽबन्धका इति पदस्यायोजनाच्च 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽबन्धकाः' इति पष्ठभङ्गो भवति तत्र पञ्चमभङ्गस्य घटना पुनरेवं भवति—विवक्षितमार्गणायां द्वौ जीवावेव स्याताम्, ताभ्यां चैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनां बन्धं प्रकुरुते, अन्यस्तु न, तदा पञ्चमभङ्गो घटते । ननु मौल 'अबन्धकाः' इतिपदं बहुवचनान्तमस्ति भवद्भिस्तु भङ्गेऽस्मिन् 'अबन्धकः' इतिपदमेकवचनान्तमुपदर्शयते, तत्कथं न विरोधभागिति चेन्न 'स्यान्नवसंख्येयः' इति भिद्धहेमव्याकरणसूत्रेणैकशेषनामा समासो जायते, तेन अबन्धकश्चाऽबन्धकाश्चेति अबन्धकाः इतिममामविग्रहान्मौलात् 'अबन्धकाः' इतिपदादेकवचनान्तं 'अबन्धकः' इतिपदं लब्धुं शक्यम्,

तस्माद् भङ्गेऽप्यस्मिन्नेकवचनान्तत्वेन तदुपादानं नानुपपन्नम् । 'खलु' शब्दस्य प्रथमगाथातोऽत्रा-
 ऽपि संयोजनात् भङ्गेऽस्मिन् 'एव' इति पदं निविष्टम्, अन्यथा तदनिवेशे 'एको वन्धक एको-
 ऽवन्धकः' इत्याकारकः पञ्चमभङ्गो भवति, तस्य चाष्टमभङ्गेऽन्तर्भावेन पञ्चमाष्टमभङ्गयोरैक्यात्
 पञ्चमभङ्गस्य व्यर्थता स्यात्, तदेवम् विवक्षितमार्गणायां दशादयो जीवा विद्येरन्, तेभ्यश्च पञ्चादयो जीवा
 विवक्षितप्रकृतीनां वन्धकाः पञ्चादयश्च न तथा, तदा 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इति रूपोऽष्टमो
 भङ्गो लभ्यते, अनेकेष्वेकस्यापि प्रतीतेस्तत्रैको जीवो विवक्षितप्रकृतीनां वन्धकत्वेन एकश्चाऽवन्धकत्वे-
 नोपलभ्यते, प्रतीयते हि लोकेऽप्येवंविधा प्रतीतिः, यद् यस्य पार्श्वेऽनेकानि रूपकाणि सन्ति, तमन्यः
 कश्चिदेकरूप्यकार्थी प्रक्षयति, यत्तत्र समीप एकं रूप्यकं वर्तते ? न तदानीमस्तीत्येवमेवोत्तरयति
 न तु नास्तीति, परं यदि तं कश्चिदेकमेव रूप्यकमस्तीति पृच्छेत् तर्हि स नास्तीत्येवमेव प्रतिवचो
 दधाद्, नन्वस्तीति । तथैव प्रकृताष्टमभङ्ग एक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीनां वन्धक एक एव
 जीवोऽवन्धकः इतिप्रतीतिरनुपपन्ना, किन्तु एकजीवो विवक्षितप्रकृतीनां वन्धक एकोऽवन्धक इति
 प्रतीतिभावे न किमपि बाधकमुपलभामहे, अत्र एवाऽष्टमभङ्गात्पञ्चमभङ्गस्याऽभेदभावनिवारणार्थं खलु-
 पदोपलभ्यं 'एवकारपद' वन्धकाऽवन्धकपदाभ्यां पञ्चमभङ्गे सम्बन्धनीयम्, एवं कृते सति भिद्य-
 तेऽष्टमभङ्गात् पञ्चमो भङ्गः, अष्टमभङ्गवेलायां पञ्चादिजीवानां विवक्षितप्रकृतीनां वन्धकतया पञ्चादि-
 जीवानामवन्धकतया विद्यमानत्वेनैक एव जीवस्तद्वन्धक एक एव जीवस्तदवन्धक इति प्रत्ययाभावात् ।
 अथ पञ्चमाष्टमभङ्गयोरभेदभावव्यावृत्त्यर्थं पञ्चमे भङ्गे वन्धकावन्धकपदाभ्याममा पृथक् पृथक् एवकार-
 पदसम्बन्धो विहितस्तदसम्भक्, यतः सा व्यावृत्तिस्तु यद्येकवन्धकपदेन सह 'एव' इति पदं सम्ब-
 द्ध्यते, यद्वा अवन्धकपदेन सह 'एव' पदं संबध्यते तदर्थं भवितुमर्हा, तस्मादुभयत्र 'एव'पदयोजन-
 प्रयत्नस्य वैफल्यमिति चेद्, अत्र प्रतिविधानमन्यदि 'एको वन्धकः' इत्यत्र एवपदस्य योजनं न विधीयते,
 परं 'एकोऽवन्धकः' इत्यत्र 'एव' इतिपदं विधीयते तर्हि भङ्गस्याऽस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तद्यथा 'अनेके
 वन्धका एक एवाऽवन्धकः' इति सप्तमभङ्गेऽवन्धकस्त्वेक एवास्ति वन्धकाः पुनरनेके मन्ति, अनेके-
 ष्वेकस्य सद्भाव इति न्यायेनाऽनेकवन्धकेष्वेकवन्धकस्यापि सत्त्वेन 'एको वन्धक एक एवाऽवन्धकः'
 इत्याकारकस्यैकत्र 'एव' पदेनाऽसम्बद्धस्य पञ्चमभङ्गस्य सप्तमभङ्गे प्रवेशाद् वैयर्थ्यप्रगतिर्भवति । ननु
 तर्हि 'एको वन्धकः' इत्यत्रैव एवपदं प्रयुज्यताम्, कृत 'एकावन्धकः' इत्यत्र 'एव'पदप्रयुज्जानेनेति-
 चेन्न, एवं हि विधाने भङ्गस्यास्य नैरर्थक्यमापद्यत, प्रागुक्तयुक्त्या पष्ठमङ्गेन तस्य साङ्कर्यभावात्, अत
 उभयत्रापि 'एवपद' भङ्गेऽस्मिन् योजयितव्यम् । पष्ठमङ्गस्य पुनर्भाविनाऽनया पद्धत्या भावयितव्या-
 विवक्षितमार्गणायां त्रयादिजीवा वर्तेरन्, तेभ्यश्चैक एव जीवो विवक्षितप्रकृतीर्विधीयात्, नान्ये तदा 'एक
 एव वन्धकोऽनेकेऽवन्धकाः' इति पष्ठमङ्ग उपपन्नो भवति । अत्रापि 'एव' पदप्रयोगस्य बीजं पञ्चमभङ्गे
 ऽभिहितपद्धत्या यथासंभवं स्वयमेव भावनीयम्, उक्तप्रापत्वात् । इदानीं सप्तमाष्टमभङ्गा 'णेगेहि'

इत्यादिना विप्रियेते, तद्यथा-इहापि पञ्चमभङ्गवद् 'अनेकवन्धकैरमा एकाऽवन्धकपदस्य, अनेकाऽवन्धकपदस्य च यथाक्रमं योजना कार्या, एवं च कृते 'अनेके वन्धका एक एवाऽवन्धकः' इतिरूपः सप्तमो भङ्गो भवति 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इति रूपोऽष्टमभङ्गश्च । यदा विवक्षितमार्गणायां त्रयादि-जीवास्स्युः, तेभ्यश्च द्वयादिजीवा विवक्षितप्रकृतीनां वन्धकाः स्युः, एकश्च न तथा, तदा सप्तमभङ्गो घटते, सप्तमभङ्गेऽस्मिन् 'एव' पदप्रयोगस्य प्रयोजनं स्वयमेव स्वधिया शोधनीयम् । यदा पुनर्विवक्षितमार्गणायां चतुरादिसख्याप्रमाणा अनेके जीवा विधेरन्, तेभ्यश्च केचन विवक्षितप्रकृतीनां वन्धका भवेयुः, अवन्धकाश्च केचन, तदाऽष्टमो भङ्गो घटते । एवमुक्तरीत्या पञ्चम आदौ येषां ते इति पञ्चमादयश्च ते चत्वार इति पञ्चमादिचत्वार इति समासविग्रहः । पञ्चमादिचत्वारो भङ्गा इत्यर्थः, 'ज्ञातव्याः' इतिसम्प्रन्धनीयम् । इति भङ्गानां संख्यास्वरूपयोर्निरूपणम् ॥८८०-८९॥

इदानीमुत्तरप्रकृतीनामोघत आदेशतश्च भङ्गान् निरूपयिपुरादावोघत आयुष्कत्रयप्रकृतीनां तदनन्तरं शेषसर्वप्रकृतीनां च भङ्गान्निरूपयितुमाह

गिरयणरसुराळणं सिआ तुरिअछट्टअट्टमा भंगा ।

सेसाण पयडीणं विण्णेयो अट्टमो भगो ॥८८२॥

(प्रे०) 'गिरय' इत्यादि, नरकमनुष्यसुरायुष्काणां तुर्यपञ्चाऽष्टमास्त्रयो भङ्गा असहभावेन भवन्ति । इदमुक्तं भवति-नरकायुष्कस्य नरायुष्कस्य सुरायुष्कस्य च 'सर्वेऽवन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, एवम् 'एक एव वन्धकोऽनेकेऽवन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गो भवति, तथा 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गश्च, एते त्रयोऽपि भङ्गाः परस्परमसहभावेन भवन्ति, कदाचित्तुर्यः, कदाचित्षष्ठः, कदाचिदष्टमश्च । नरकायुर्विषये भङ्गात्रयस्याऽस्य भावना पुनरित्थं भाव्या-यदि विवक्षितायुष्कवन्धविधायिनो जीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यया न्यूनतरा भवेयुस्तदैव तेषामन्तरं प्राप्यत इत्यायुः-सत्केन्याप्त्या नरकायुष्कवन्धका जीवास्तादृशसंख्यया न्यूनतराः सन्ति, अतस्तेषामन्तरं संभवति, न चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्याप्रमाणा नरकायुर्वन्धविधातारः कथं न भवन्तीत्यारेकणीयम्, यदि तावत्प्रमाणा नरकायुर्वन्धविधायिनो भवेयुस्तर्हि नरकगतौ नारकजीवानां तावत्प्रमाणता प्राप्येत, न हि नारकजीवास्तावत्प्रमाणाः सन्ति, प्रतरासंख्येयभागगतासंख्येयसूचीश्रेणिगतप्रदेशप्रमाणत्वेनैकलोकाकाशस्याप्यसंख्येयभागमात्रवर्तित्वात्तेषाम् । अपि च नरकायुर्वन्धप्रायोग्याः पञ्चेन्द्रियजीवा एव भवन्ति, ते चोत्कृष्टतः प्रतरासंख्येयभागप्रमाणाः सन्ति, अतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा नरकायुर्वन्धका न भवन्ति । यदा च तेषां नरकायुर्वन्धकानां शून्यतालक्षणमन्तरं भवति, तदा जीवास्तिर्यगादिसत्कान्यायूँषि घटन्ति, केचन जीवाः सर्वथा-ऽऽयुषो-ऽवन्धकाश्च भवन्ति, अरिगंश्चावसरे सर्वेऽपि नरकायुष्कस्याऽवन्धका वर्तन्ते, ततः 'सर्वेऽवन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गोऽत्रोपपद्यते । यदि नरकायुरेक एव जीवो बध्नाति, नापरे तदा 'एक एव वन्धकोऽनेकेऽवन्धकाः' इति षष्ठो भङ्गो घटते, यदि च

कतिपया जीवा नरकाधुर्वर्धनन्ति, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गोऽत्रोपपत्तिं लभते । एवमेव देवमनुष्याद्युर्विपयेऽप्येते त्रयोऽपि भङ्गा भावनीयाः । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्त-प्रकृतित्रयवर्जानां शेषसर्वोत्तरप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो विज्ञेयः । तद्यथा—सर्वासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकास्त्रयोदशमगुणस्थानकेऽनेककोटिप्रमाणा जीवा अनन्ताः सिद्धाश्च सदैव विद्यन्ते, तद्व्यतिरिक्ताश्च जीवा यथासंभवं तद्वन्धकतया विद्यन्ते, तथा शेषाध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां केचन जीवा बन्धका भवन्ति, अबन्धकाश्च केचन, परावर्तमानत्वेनाऽध्रुवत्वेन च बध्यमानत्वात् ॥८८२॥

साम्प्रतमादेशतः सर्वासु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कर्मवर्जप्रकृतीनां भङ्गान्प्ररूपयितुकामो ग्रन्थकार आदौ यास्त्रोधवद् भङ्गाः प्राप्यन्ते तासु मनुष्यगत्यादिमार्गणासु तान् दर्शयन्नाह

तिणरदुर्णिदियतसतिमणवयकायुरलसजमेसु तहा ।

सुकमवियसगलखड्गआहारियरेसु ओधव्व ॥८८३॥

सप्पाजग्गाणाजगवज्जाण णवरि सिआ अणाहारे ।

सुरविजवदुग्गाजिणाण चउत्थछट्टुडुमा भंगा ॥८८४॥

(प्रे०) 'तिणर' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौघपर्याप्त-त्रसमनःसामान्यमत्यमनोऽसत्यामृषामनो गोमवचनयोगौघमन्यवचनाऽसत्यामृषावचनयोगकाययोगौ-धौदारिककाययोगसंयमौघशुक्ललोभ्याभयमन्यक्त्वौघक्षायिकमन्यक्त्वाहारकाऽनाहारकरूपासु द्वाविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कर्मवर्जानां शेषप्रकृतीनामोषवदष्टमभङ्गो ज्ञेयः । मार्गणास्त्रासु केषांचिज्जीवानां प्रकृतप्रकृतीनां बन्धकत्वेन केषांचिच्चाऽबन्धकत्वेन मर्यदैव विद्यमानत्वात् ।

अथ भावनाऽवबोधसुगमार्थमत्र काश्चन व्याप्तयो व्याक्रियन्ते । तद्यथा

ध्रुवमार्गणायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां व्याप्तिः

(१) प्रथमा व्याप्तिः—ध्रुवमार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थानके या ध्रुवबन्धिप्रकृतयो बध्यन्ते, तामां तत्र तृतीय एव भङ्गो भवति,—यथा देवमार्गणा ध्रुवा विद्यते, तस्यां स्वोत्कृष्टं गुणस्थानकं चतुर्थमेव, चतुर्थगुणस्थानके बध्यमाना या ज्ञानावरणीयादिध्रुवबन्धिप्रकृतयो वर्तन्ते तासां देवमार्गणा-स्थैः सर्वैरेव बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीय एव भङ्गोऽत्र प्राप्यते । याः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्यः सन्ति, परं मार्गणावशाद् ध्रुवबन्धिन्यः संजायन्ते, तथा मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टगुणस्था-नकं यावद् बध्यन्ते तामां प्रकृतीनामपि तत्र तृतीय एव भङ्गो भवति ।

(२) ध्रुवमार्गणायां स्वोत्कृष्टगुणस्थाने बध्यमानाभ्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतिभ्यो व्यतिरिक्तानां ध्रुव-बन्धिप्रकृतीनां द्वितीया व्याप्तिः

यस्यां मार्गणायां जीवाः सदैव बन्धप्रायोग्ये गुणस्थानके वर्तन्ते, तथाऽबन्धप्रायोग्येऽपि गुणस्थानके वर्तन्ते, तत्र स्वोत्कृष्टगुणस्थानके बध्यमानाभ्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतिभ्यो व्यतिरिक्तानां ध्रुव-

वन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो भवति, यथा देवरूपायां जाधवत-
मार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्य प्रथमगुणस्थानके बध्यमानत्वेन द्वितीयादिगुणस्थानत्रये पुनर-
बध्यमानत्वेन च तद्वन्धप्रायोग्यगुणस्थाने तदवन्धप्रायोग्यगुणस्थाने च जीवाः सदा लभ्यन्ते तत्र च
मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिथ्यादृष्टिनो जीवा बन्धकतया प्राप्यन्ते, तदपरे पुनरवन्धकतया प्राप्यन्ते,
तस्मादत्र मार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्य 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिलक्षणोऽष्टमो भङ्ग एव
भवति ।

[३] तृतीया व्याप्तिः—यासामध्रुववन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानप्रकृतीनां चाष्टम एव भङ्गो भवति
तद्विषये व्याप्तिरियम् ।

या मार्गणा ध्रुवा विद्यते तत्र च भवगुणयोर्निमित्ततामृते महजन एव यासां प्रकृतीनां
बन्धस्याऽन्तरमुत्कृष्टतोऽप्यन्तर्मुद्गर्तादधिकं न भवति तासां प्रकृतीनां तत्र बन्धकाऽबन्धकानां
सर्वदैव प्राप्यमाणत्वेनाऽष्टमो भङ्गो भवति ।

[४] ध्रुवमार्गणायां ध्रुववन्धिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धिकल्पानां च तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गविषया तुर्या
व्याप्तिः—

शश्वन्मार्गणायां बन्धप्रायोग्यगुणस्थानकं नित्यमेव स्यात्, अवन्धप्रायोग्यगुणस्थानकं च
कादाचित्कं स्यात्, तर्हि तत्र कस्मिंश्चित्समये कस्याप्यवन्धकस्यानुपलभ्यमानत्वेन तथा कस्मिंश्चि-
त्समये एकस्याऽबन्धकस्य, कस्मिंश्चिच्च समयेऽनेकाऽबन्धकानां प्राप्यमाणत्वेन तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गा
भवन्ति, यथा ध्रुवभूतायामज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयबन्धप्रायोग्यप्रथमगुणस्थानसत्तायां
नैयत्यमस्ति, परं न तदवन्धप्रायोग्यगुणस्थानसत्तायाः, मार्गणायामस्यां कस्मिंश्चिदवसरे द्वितीय-
गुणस्थानकविरहोपलब्धेः, तस्मादत्र यदाऽबन्धप्रायोग्यगुणस्थानक एकोऽपि जीवो न स्यात् तदा
प्रथमगुणस्थानस्थायिनां सर्वेषां मिथ्यात्वमोहनीयबन्धविधायित्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गो
भवति । यदा तदवन्धप्रायोग्यद्वितीयमास्वादनगुणस्थान एक एव जीवो वर्तेत तदा तस्य मिथ्यात्व-
मोहनीयाबन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इतिसप्तमो भङ्गो भवति । यदा च सास्वा-
दनगुणस्थानकेऽनेके जीवाः स्युः, तदा तेषां तदवन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इति-
लक्षणोऽष्टमो भङ्गो भवति, प्रथमगुणस्थानस्था जीवास्तु मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धविधायकाः
सन्त्येव ।

(५) पञ्चमी व्याप्तिः—अध्रुवमार्गणायां स्रोतकृष्टगुणस्थानकप्रायोग्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां व्याप्ति-
रियम्—अनित्यायां मार्गणायां स्रोतकृष्टगुणस्थानकवन्धप्रायोग्यध्रुववन्धिप्रकृतीनां प्रथमतृतीयभङ्गौ
भवतः, कदाचिदेकस्य तदवन्धकस्य कदाचिदनेकेषां तदवन्धकानां चाऽत्रोपलभ्यमानत्वात्, तत्पुन-
रेवम्—वैक्रियमिश्रमार्गणाऽध्रुवा विद्यते तस्यां च स्रोतकृष्टप्रायोग्यगुणस्थानं चतुर्थमेव, तत्र पुनर्मिथ्या-
त्वमोहनीयस्त्यात् द्विविकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कलक्षणं प्रकृत्यष्टकं विना शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्-

ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धो भवत्येव, यदा मार्गणायामेतस्यामेक एव जीवः स्यात्, स च प्रकृतीनामाया बन्धक एव, तदा 'एक एव बन्धकः' इति प्रथमभङ्गो भवति । यदा चाऽनेके जीवाः स्युः, ते च सर्वे प्रकृतीनामासां बन्धकाः, तदा 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः सम्पद्यते ।

[६] पृष्ठी व्याप्तिः-अद्यानामापि भङ्गानां व्याप्तिः । यामार्गणाऽध्रुवा स्यात्, तस्यां च मार्गणायां विवक्षितप्रकृतीनामबन्धका अप्युपलभ्यन्ते, तदा तत्र तासामष्टावपि भङ्गा भवन्ति ।

तदित्थम्ः--उपशमसम्यक्त्वमार्गणाऽध्रुवाऽस्ति, तत्रोपशमश्रेणिमाश्रित्य ज्ञानावरणीयादीनां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका अप्युपलभ्यन्ते, तस्मादत्र प्रकृतीनामासामष्टौ भङ्गाः संजायन्ते ।

(१) तदेवम्-यदा मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स एव च ज्ञानावरणीयादिस्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकः, तदा 'एक एव बन्धकः' इति प्रथमभङ्गो भवति ।

(२) मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स एव चोक्तप्रकृतीनां बन्धं न विधत्ते, बन्धप्रायोग्यगुणस्थानत ऊर्ध्वं गमनात्, तदा 'एक एवाऽबन्धकः' इति द्वितीयभङ्गः सम्पद्यते ।

(३) यदाऽनेके जीवाः स्युः, ते च सर्वे प्रकृतप्रकृतीनां बन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः संजायते ।

(४) यदा च ते सर्वेऽपि प्रकृतप्रकृतीनामबन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थो-भङ्गो जायते ।

(५) यदा मार्गणायामस्यां द्वावेव जीवौ स्याताम्, ताभ्यां चैक एवैताः प्रकृतीर्वध्नाति, न पुनरपरः, तदा 'एक एव बन्धक एक एवाऽबन्धकः' इति पञ्चमभङ्गो भवितुमर्हति ।

(६) यदाऽनेके जीवाः स्युः, तेभ्य एक एव जीवः प्रस्तुतप्रकृतीर्वध्नाति, नेतरे, तदा 'एक एव बन्धको-ऽनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपः षष्ठो भङ्गः संजायते ।

(७) यदाऽनेकेभ्यो जीवेभ्य एको जीवो प्रकृतप्रकृतीनामबन्धकः स्यात्, अपरे पुनर्बन्धकाः स्युः, तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इत्यात्मिकः सप्तमो भङ्गो भवति ।

(८) यदा मार्गणायामस्यामनेके जीवा वर्तेरन्, तेभ्यः केचन जीवाः प्रकृतीनामासां बन्धं कुर्वन्ति, केचन च न, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गः सम्पद्यते ।

अथानाहारकमार्गणायां "णचरि" इत्यादिना विशेषमृपदर्शयति-अनाहारकमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणप्रकृतिपञ्चकस्य 'सर्वेऽबन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गः, एक एव बन्धको-ऽनेकेऽबन्धकाः' इति षष्ठभङ्गः, 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्ग इति त्रयो भङ्गा भवन्ति, भावना पुनरेवम्-अनाहारकमार्गणायां सुरपञ्चकस्य बन्धका अविरतमम्यगृह्य एव ते च मार्गणाया-

मस्यां कदाचिद् विद्यमाना भवन्ति, कदाचिन्न, कदाचिच्चैक एव, यदा कोऽप्यविरतसम्पृग्दृष्टिर्न-
स्यात्, तदा 'सर्वेऽवन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः केवलं मिथ्यादृष्टिभि-
स्तु सुरपञ्चकस्यावध्यमानत्वात् । यदा पुनरेकस्म्यगृष्टिः स्यात्, स एव च सुरपञ्चकस्य वन्धकः
स्यात्, नेतरे मिथ्यादृष्टयः, तदा 'एक एव वन्धकोऽनेकेऽवन्धकाः' इति पष्ठो भङ्गो धत्ते । यदा पुन-
रनेके सम्यग्दर्शनिनो वर्तेरन्, त एव च तद्वन्धका भवेयुस्तदा 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः'
इत्यात्मकोऽष्टमभङ्गो धटामञ्चति ॥८८३-८८४॥

अथ सकलनरकमार्गणासु कतिपयदेवमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयन्नाह

संव्वणिरयमेदेसु तद्विहाणप्रदुमतदेवेसु ।
गुणचत्तालीसाए धुववधीण पयडीण तहा ॥८८५॥
ओरालदुगपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणं ।
तद्विओ चेव विगप्पो सेसाण अट्टमो भगो ॥८८६॥

(प्रे०) 'संव्वणिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमः-
प्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टसु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रप्रबलान्तिकशुकसहस्रारलक्षणासु च
पट्सु देवमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकपायमयजुगुप्ता-
तैजयकर्मणशीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकोनचत्वारिंशद्ब्रुव
वन्धिप्रकृतीनामौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजानिपराघातोच्छ्वासप्रसन्नादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मलक्षणानां च
नवानां प्रकृतीनां 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गोऽस्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सर्वैर्जीवैरनवरतं
प्रकृतीनामासां वध्यमानत्वेन प्रथमव्याप्त्या भावना भाव्या । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीय-
स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्करूपाणां शेषाऽष्टध्रुववन्धिप्रकृतीनां, वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
द्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकसंहननपट्कसस्थानपट्कविहायोगतिद्विकस्थिरपट्कास्थिरपट्कोद्योत-
जिननामगोत्रद्वयरूपाणां च शेषाणामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इतिरूपोऽष्ट-
मभङ्गो वर्तते, मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकेऽभिध्यादृष्टिभिर्वध्यते सम्यग्दृष्टिभि-
श्च न वध्यते, तथा शेषाध्रुववन्धिप्रकृतयः कैश्चिर्जीवैर्वध्यन्ते कैश्चिच्च न वध्यन्ते, तस्मान् मिथ्यात्व-
मोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या, शेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या भावना भावनीया ।
॥८८५ ६॥ इदानीं तिर्यगोघप्रभृतिमार्गणास्तत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथयितुमारभते

तिरिये त्तिपणिदितिरियतिगे य धुववधिपंचतीसाए ।

अत्थि विगप्पो तद्विओ सेसाणं अट्टमो भगो ॥८८७॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-
लक्षणासु चतसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कर्मज्वलनचतुष्क-

भयजुष्पसार्तैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुलधूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चविंश-
त्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो विद्यते, हेतुरत्र प्रथमव्याप्त्या विभावनीयः । 'सेसाणं'
इत्यादि, मिथ्यान्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिचक्राऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां द्वाद-
शानां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिक-
द्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतपराधा-
तश्वासोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां पट्षष्टिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च सर्वसंख्यायाऽष्टसप्ततिप्रकृतीनां
'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो जायते, हेतुरत्र शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीय-
व्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्याऽवसातव्यः ॥८८७॥

अधुनाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणासु तथैकेन्द्रियादीनां सकलमार्गणास्तत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्
विभण्णिपुराह

असमत्तेसु पणिदियतिरियपणिदियतसेसु सव्वेसु ।
एणिदियविगलिदियपुहविदगवणप्फईसु च ॥८८८॥
सगचत्तालीसाए धुवबधीणं तहा उरालस्स ।
तइओ हवेज्ज भगो सेसाणं अट्ठमो भगो ॥८८९॥

(प्रे०) 'असमत्तेसु' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रस-
रूपासु तिसृषु मार्गणासु तथौघसूक्ष्मौघवादरौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तवादराऽपर्या-
प्तवादरभेदेनैकेन्द्रियाणां सप्त मार्गणाः, सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताकायमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽ-
पर्याप्तभेदेन द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां नव मार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति मीलितासु चतुश्च-
त्वारिंशन्मार्गणासु च सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'सर्वे बन्धकाः'
इति तृतीयभङ्गो लभ्यते, प्रथमव्याप्त्या धटनेह कार्या । 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियु-
गलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्या-
नुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणामेकोनपट्षष्टिशेषाऽध्रु-
वबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्गोऽस्ति । भावना पुनरत्र तृतीयव्या-
प्त्या भावनीया ॥८८८-८९॥

साम्प्रतमपर्याप्तमनुष्यमार्गणायास्तत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिपुराह

अत्थि अपज्जत्तणरे, सगयालीसधुवबंधिउरलाणं ।
आइमतइआ भगा अडभंगा सेसपयडीण ॥८९०॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां ज्ञानावरणादिसप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'एक एव बन्धकः' इत्याद्यभङ्गः 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गश्च
भवतः । भावना पुनरत्र पञ्चमव्याप्त्या विधेया, तदेवम्-इयं मार्गणाऽध्रुवा विद्यते, तस्मादत्र कदाचि-

देक एव जीवः प्राप्यते, कदाचित्पुनरनेके, यदा पुनरेक एव जीवोऽत्र प्राप्यते, तदा प्रथममङ्गो धटने प्रकृतप्रकृतीना तस्यैव बन्धविधायित्वेन विद्यमानत्वात् । यदा पुनरनेके जीवा इह प्राप्यन्ते, तदा तृतीयमङ्गो भवति, अधिकृतप्रकृतीनां तत्रस्थैस्तैस्मर्वैरेव बध्यमानत्वात् । 'अड' इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणाभूतानामेकोनपष्टिशेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति । योजना पुनरत्र पष्टव्याप्त्या कर्तव्या, तदेवम्-मार्गण्यमध्रुवाऽस्ति, तस्मादत्र कदाचिदेक एव जीवोऽवाप्यते, कदाचिच्चेनेके, वेदनीयद्विकादिप्रकृतयोऽपि परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन तत्रस्थैः कैश्चिद् बध्यन्ते, कैश्चिच्च न बध्यन्ते, तस्मादत्राऽष्टानामपि भङ्गानामुपलब्धिरस्ति ॥८९०॥

अथ सुरसामान्येशानान्तदेवादिमार्गणाभूतरप्रकृतीनां भङ्गान्मावयन्नाह

तइओ चेव विगप्पो सुरईसाणतविच्चजोगेसुं ।

एवए धुववधीण इयूणचत्ताअ पयडीण ॥८९१॥

तह छण्होरालियतणुनरधाऊसासवायरतिगाण ।

भगोऽत्थि अट्टमो खलु सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥८९२॥

(प्रे०) 'तइओ' इत्यादि, देवौवभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमौधर्मेजानवैक्रियकाययोगरूपासु ममसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकमृते शेषाणामेकोनचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुववन्धिप्रकृतीना तथोदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपाणां पण्णा प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयमङ्गो भवति, उपपाठन चात्र प्रथमव्याप्त्या कार्यम् । 'भगो' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्न्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्विक्रमस्थिरपट्कस्थायराऽस्थिरपट्कातपोद्योतजिननामगोत्रद्विकरूपाणामध्रुववन्धिप्रकृतीनां चेति सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीना देवौवमौधर्मेजानवैक्रियकाययोगलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु, तथा जिननामविगहितानामासामेव पट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो भवति, युक्तिरत्र मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या शेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या ज्ञातव्या ॥८९१ ९२॥

इदानीमानतादित्रयोदशमार्गणाभूतरप्रकृतीनां भङ्गान्मावयन्नाह

तेराणयाइगेसुं धुववधीण इयूणचत्ताए ।

पच्चिदियणरुलदुगपरधूससतसचउगाण ॥८९३॥

तइओ चेव विगप्पो पण्णासाअ पयडीण एएसि ।

भगोऽत्थि अट्टमो खलु सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥८९४॥

(प्रे०) 'तेराणयाइ' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽणाऽच्युतनवग्रेवेयकलक्षणासु त्रयोदशमार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जैकोनचत्वारिंशध्रुववन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजातिमनुष्य-

द्विकौदारिकद्विकपराधातश्वासोच्छ्वासत्रयसचतुष्करूपा एकादशप्रकृतयश्चेति सर्वसंगीलितानां पञ्चाश-
त्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, भावना प्रथमव्याप्त्या विधातव्या । 'भङ्गो'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादिपुगलद्वयवेदत्रयसंस्थानपट्कसंहन-
नपट्कखगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननामगोत्रद्वयरूपाणां स्वप्रायोग्याष्टात्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृ-
तं नां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, घटना पुनरत्र मिथ्यात्व-
मोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य द्वितीयव्याप्त्या कार्या, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या ॥८९३-४॥

साम्प्रतं पञ्चानुत्तरमार्गणासुत्तरप्रकृतीनां भङ्गानभिधित्सुराह

पणऽणुत्तरदेवेसु, साधारणं युगलाणं छह तहा ।

तित्थस्स अट्ठमो खलु भङ्गो तइओऽत्थि सेसाण ॥८९५॥

(प्रे०) 'पणऽणुत्तर' इत्यादि, विजयादिपञ्चानुत्तरमार्गणासु सातवेदनीयाऽयातवेदनीय-
हाम्परतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपस्य युगलपट्कस्य जिननामकर्णश्च
'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गोऽस्ति, भावना तृतीयव्याप्त्या करणीया ।
'तइओ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुष-
वेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वीशुभख-
गतित्रयसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयोच्छ्वासपराधातोच्चैर्गोत्ररूपाणां शेषाणामेकोनत्रिंशत्यध्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, घटना प्रथमव्याप्त्या कार्या ॥८९५॥

अथ तेजोवायुकायमत्कमकलमार्गणासुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथन्नायह

ध्रुवबधितिरिदुगाउरलणीआण सव्वतेउवाऊसु ।

तइओ चेव विगप्पो सेसाण अट्ठमो भङ्गो ॥८९६॥

(प्रे०) 'ध्रुवबन्धि' इत्यादि, ओघसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तिवादरौघवादरपर्याप्तिवादरा-
ऽपर्याप्तिभेदभिन्नासु सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु च वायुकायमार्गणासु ज्ञानावरणीयादीनां सप्त-
चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनीचैर्गोत्रलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनां च
'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो वेदयितव्यः, योजनाऽप्राद्यव्याप्त्या विधेया । 'सेसाण' इत्यादि,
वेदनीयद्विकहास्यादिपुगलद्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कखगतिद्विक-
त्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासरूपाणां त्रिपञ्चाशच्छेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके
बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो बोद्धव्यः, भावना पुनरिह तृतीयव्याप्त्याऽवसातव्या ॥८९६॥

अधुना मनोवचनयोरसत्यसत्यासत्यमार्गणासु चक्षुरादिमार्गणासु चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्
विचारयन्नाह-

अट्ठमसत्तमतइआ कुमणवयणयणअचक्खुसण्णीसु ।

ध्रुवबधित्तिताए सेसाणं अट्ठमो भङ्गो ॥८९७॥

(प्रे०) 'अद्वयसत्तम' इत्यादि, अमत्यमनः-मत्यासत्यमनोऽसत्यवचः-मत्यामन्यवच-
 श्वधुरचक्षुःसंज्ञिरूपासु सप्तसु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सा-
 वर्णचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां
 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गः, 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इत्यात्मकः सप्तम-
 भङ्गः, 'सर्वे बन्धकाः' इत्यात्मकस्तृतीयभङ्ग इति त्रयो भङ्गा भवन्ति, यदना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या
 ज्ञातव्या, तदेवम्—इमा मार्गणा द्वादशगुणस्थानकं यावद् विद्यन्ते, तथा प्रकृतीनामायां बन्धमिच्छेदः श्रेणा-
 वष्टमगुणस्थानकाद् दशमगुणस्थानकं यावद् जायते, तस्माद् ये जीवाः श्रेणावेकादशगुणस्थानके द्वादश-
 गुणस्थानके वा वर्तन्ते त इमाः प्रकृतीर्न बध्नन्ति, ततस्तत्राऽनेके तदबन्धका जीवा उपलभ्यन्ते,
 तथा प्रथमादिगुणस्थानस्था अनेके जीवा नैगन्तर्येण तदबन्धकतपोपलभ्यन्ते, अतोऽत्राष्टमभङ्गः स्रप-
 पद्यते, यदा त्वेकादशे द्वादशे वा गुणस्थानके जीव एक एव वर्तते, तदा तस्यैकस्यैव जीवस्य प्रकृतीनामा-
 सामबन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन तथा तदघस्तनगुणस्थानकेषु त्वनेकेषां जीवानां तदबन्धकतया
 प्राप्यमाणत्वेन सप्तमो भङ्ग इहोपपन्नो भवति, यदा श्रेणौ कोऽपि जीवो न विद्यते, तदा मार्गणा-
 स्वासु वर्तमानानां सर्वेषामपि जीवानां प्रकृतीनामासां बन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वान्तृतीयभङ्गोऽत्र धटते ।
 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
 प्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणस्य ध्रुवबन्धिशेषप्रकृतिपोडशकस्य, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेद-
 त्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विरुसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्क-
 खगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्विकरूपाणामेकोनसप्ततिशेषा-
 ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो ज्ञेयः । भावना पुनरिह
 द्वितीयव्याप्त्या प्रकृतध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तृतीयव्याप्त्या चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां विधातव्या ॥८९७॥

इदानीमौदारिकमिश्रकर्मणकाययोगमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् कथयितुकाम आह

अद्वयसत्तमतद्वा भगा ओरालभोसकम्भेसु ।
 हविरे ध्रुववघीणं सगचत्ताअ तह उरलस्स ॥८९८॥
 सुरविजवदुगजिणाण सिआ तुरिअछट्टुअद्वमा भगा ।
 भंगोऽत्थि अद्वमो खलु सप्पाजग्गाण सेसाण ॥८९९॥

(प्रे०) 'अद्वय' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगकर्मणकाययोगरूपे मार्गणाद्वये ज्ञानावरणी-
 यादिसप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः'
 इति रूपोऽष्टमो भङ्गः, 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इतिलक्षणः सप्तमभङ्गः, 'सर्वे बन्धकाः'
 इत्यात्मकस्तृतीयभङ्गश्च भवन्ति, चतुर्थव्याप्त्या योजनाऽत्राऽवसेया, तद्यथा—यदा तिर्यग्मनुष्यगता-
 वृत्पत्तिसमये औदारिकमिश्रमार्गणायां तथा भत्यन्तराले कर्मणकाप्रयोगमार्गणाया च वर्तमानानां

जीवानां प्रस्तुतप्रकृतिवन्धकतयोपलभ्यमानत्वेन केवलिसमुद्धातावसरेऽनयोर्मार्गणयोर्वर्तमानानां भगवतां केवलज्ञानिनां तदवन्धकतयोपलभ्यमानत्वेन च 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्ग उपपन्नो भवति । यदैक एव केवलज्ञानी समुद्धातावसरे मार्गणयोरनयोर्वर्तते तदा 'अनेके वन्धका एक एवाऽवन्धकः' इति सप्तमो भङ्गोऽत्रोपपत्तिमालभते । यदा पुनः केवलिसमुद्धाते कोऽपि न वर्तते तदा मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानां सर्वेषामपि जीवानां प्रकृतीनामासां वध्यमानत्वेन 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो घटामेति । 'सुरविउच' इत्यादि, अधिकृतमार्गणाद्वये सुरद्विक्रियद्विक्रियजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य तुर्यपष्टाष्टमभङ्गा भवन्ति, तदेवम्-यदा मार्गणयोरनयोः कोऽपि जीवश्चतुर्थगुणस्थानके न स्यात् तदैतत्प्रकृतिपञ्चकस्य न कोऽपि वन्धकत्वेन प्राप्यते, तस्मादत्र 'सर्वेऽवन्धकाः' इति चतुर्थभङ्गो घटां याति । यदैक एव सम्यग्दृष्टिमार्गणयोरनयोर्वर्तमानस्स्याद्, स एव च सुरपञ्चकस्य वन्धकस्स्यात्तदा 'एक एव वन्धको ऽनेकेऽवन्धकाः' इति पष्ठभङ्गोऽत्र समुपपन्नो भवति । यदा मार्गणयोरनयोरनेके मिथ्यादृशः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्याऽवन्धकाः सम्यग्दर्शनिनश्च वन्धकाः स्युस्तदा 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इति लक्षणोऽष्टमभङ्ग उपपन्नो भवति । 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वाभगोत्रद्विकरूपाणामेकोनपट्टिशेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो ज्ञातव्यः, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या विधेया ॥८९८-९॥

सम्प्रति वैक्रियमिश्रमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दिदर्शयिपुराह ।

गुणचत्तधुवोरानियपरधाऊसासवायरतिगणं ।

विक्रियमीसे आइमतइआ भगाऽट्ट सेसाण ॥९००॥

(प्रे०) 'गुणचत्ता' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्विविक्रियानन्तानुवन्धिचतुष्कलक्षणप्रकृत्यष्टकवर्जितानामेकोनचत्वारिंशद्ज्ञानावरणीयादिध्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वाभवाद्रपर्याप्तप्रत्येकरूपाणां प्रकृतीनां च प्रथमतृतीयभङ्गौ जायेते, भावना पुनरत्र पञ्चमव्याप्त्या भाव्या । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रमस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्कातपोद्योतजिननामगोत्रद्विकरूपाणामेकोनपञ्चाशच्छेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां चाष्टावपि भङ्गा भवन्ति, भावना पञ्चमव्याप्त्या कर्तव्या ॥९००॥

साम्प्रतमाहारकद्विककाययोगमार्गणयोरुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् निरूपयिपुराह

आहारदुग्गम्मि सिआ सायाईण जुगलाण छण्ह तहा ।

तित्यस्स अङ्गमंगा सेसाणाइमतइअमंगा ॥९०१॥

(प्रे०) 'आहारदुग्गन्धि' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगाभिधयोर्भाग्ययोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतियुगलपट्कस्य जिननामकर्मणश्चाष्टौ भङ्गा भवन्ति, पट्टव्याप्त्या भावना कार्या । 'सेसाणां' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रयचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाद्यतृतीयभङ्गौ भवतः, युक्तिरत्र पञ्चमव्याप्त्या करणीया । ॥९०१॥ अथ वेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां चोत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिपुराह

तद्वओ चेव विगप्पो थोपुरिसणपुंसवेअकोहेसुं ।

हवए णवावरणचउसंजलणपणतरायाणं । ॥९०२॥

णिहादुग्गन्धकुच्छाधुवणामाणं च होइरे भंगा ।

अद्धमसत्तमतेइआ सेसाणं अद्धमो भंगो ॥९०३॥

(प्रे०) 'तद्वओ' इत्यादि, स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंमकवेदक्रोधलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकलक्षणां नामष्टादशप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति रूपस्तृतीयभङ्गो भवति, भावना प्रथमव्याप्त्या भावनीया । 'णिहादुग्ग' इत्यादि, निद्राद्विकभयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामष्टमसत्तमचतृतीयभङ्गा भवन्ति, भावना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या भाव्या, तद्यथा-मार्गणास्वासु वर्तमानाः केचन जीवाः स्वबन्धविच्छेदस्थानमवाप्य प्रकृतीनामासामबन्धकाः स्युः, तद्व्यतिरिक्ताश्च बन्धकाः स्युः, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो घटामायाति, यदा पुनः श्रेणावेक एव जीवः स्वबन्धविच्छेदस्थानं संप्राप्यैताः प्रकृतीन् बन्धीयात्, तदन्धे जीवास्तु मार्गणास्वासु स्थितास्तद्वन्धकतया सन्त्येव, तदवसरे 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमो भङ्ग उपपन्नो भवति, यदा कोऽपि जीवः श्रेणौ न वर्तते, तदा मार्गणास्वासु विद्यमानानां सर्वेषां जीवानां प्रकृतप्रकृतीनां बन्धकतया सद्भावेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपत्तिमालभते । 'सेसाणां' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां षोडशानां शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थानरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासमजिननामगोत्रद्विकरूपाणामेकोनमस्रतिशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाऽष्टमो भङ्गो विज्ञेयः, भावना पुनरिह शेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या कर्तव्या ॥९०२-३॥

अधुना मानादिमार्गणात्रय उत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् दिदर्शयिषुमाह

कोहृव्व माणमायालोहेसु णवरि कमेणदुचउण्ह ।

सजलणाण हविरे तिमसत्तमअट्टमा भगा ॥६०४॥

(प्रे०) 'कोहृव्व' इत्यादि, मानमायालोमलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां भङ्गाः क्रोधमार्गणावत्कथनीयाः । 'णवरि' इत्यादिना, विशेषमुपदेशयन्नाह-मानमार्गणायां संज्वलन-क्रोधस्य मायामार्गणायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोममार्गणायां च संज्वलनचतुष्कस्य तृतीयसप्तमा-ष्टमभङ्गा भवन्ति, भावना पुनरत्र चतुर्थव्याप्त्या विभावनीया ॥९०४॥

अथ सातवेदादिमार्गणाक्षतरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयितुमाह--

सायस्सऽट्टमभगो अवैअअकसायकेवलदुगेसुं ।

गयवेए सेसाणं चउत्यछट्टुडुमा भगा ॥९०५॥

(प्रे०) 'सायस्स' इत्यादि, अवेदाऽकसायकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्य चतुर्दशगुणस्थानकगतानां सिद्धानां चाऽवन्धकत्वेन शेषजीवानां च बन्धकत्वेन 'अनेके बन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो वेदयितव्यः । 'गयवेए' इत्यादि अवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्ज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकयशःकीर्त्युच्चैर्गौरूपाणां विंशतिप्रकृ-तीनां चतुर्थपष्टाऽष्टमभङ्गा भवन्ति, तद्यथा-मार्गणायामस्यां स्थिताः सर्वेऽपि जीवा दशमगुणस्थानक-मतिक्रान्ता भवन्ति तदा प्रकृतीनामामां 'सर्वेऽवन्धकाः' इतिरूपस्तुर्यो भङ्गो भवति, तैस्तदा तदवन्धक-त्वात् । नवमे दशमे वा गुणस्थानके यद्येक एव जीवो वर्तते, स एव च प्रकृतीनामेतामां बन्धकस्स्यात् तथा त्रयोदशगुणस्थानके सिद्धिगतौ च पुनः सर्वदा तदवन्धका जीवाः प्राप्यन्त एव तस्मादत्र 'एक एव बन्धकोऽनेकेऽवन्धकाः' इति पष्ठो भङ्गः संगच्छते । यदाऽनेके जीवा नवमे दशमे वा गुणस्थानके वर्तमाना भवेयुस्तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो घटते, तदा तैस्तासां बध्यमानत्वात्, त्रयोदशगुणस्थानस्थैश्चाऽबध्यमानत्वात् ॥९०५॥

साम्प्रतं ज्ञानत्रिकादिमार्गणाक्षतरप्रकृतिसत्त्वान् भङ्गान् दर्शयिषुमाह--

णाणतिगे ओहिम्मि य बारससायाइअडकसायाण ।

तह वइरणरसुरउरलविउवाहारदुगतिट्ठाण ॥६०६॥

अंगोऽत्थि अट्टमो खलु सिआ तइअसत्तमऽट्टमा भंगा ।

हविरे अवसेसाणं पयडीण पंचवत्ताए ॥६०७॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपे मार्गणाचतुष्टये सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वाद-शप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य तथा वचनार्थम-नाराचसंहननदेवमनुष्यगतिद्वयौदारिकद्विक्रयक्रियाद्विकाहारकाद्विकदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयजिननामरूपाणां

द्वादशानां च प्रकृतीनामष्टमो भङ्गोऽस्ति, भावना पुनरत्र ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्या-
ऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च तृतीयव्याप्त्या कार्या । तदेवम्—सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमान-
तया बध्यमानत्वेन मार्गणास्वासु वर्तमानाः केचन जीवा बन्धका भवन्ति, केचन चाऽबन्धकाः, देश-
विरत्यादिगुणस्थानगता जीवा अत्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धका भवन्ति, तुर्यगुणस्थानगताश्च
बन्धकाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रमत्तसयतादिगुणस्थानस्था अबन्धका भवन्ति, चतुर्थपञ्चमगुण
स्थानस्थाश्च बन्धकाः, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचसंहननप्रकृतीनां मार्गणास्वासु वर्त-
माना नारकदेवा बन्धका भवन्ति, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम्, तिर्यग्मनुष्यास्त्वबन्धका
भवन्ति, देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्तेषाम्, सुरद्विकवैक्रियद्विकयोश्च तिर्यग्मनुष्या बन्धका भवन्ति,
देवप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्, देवनारकाश्चाऽबन्धकाः, मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकत्वात्, मनुष्ये-
ष्वपि श्रेणेरारोहका अपूर्वकरणगुणस्थानपट्टभागमतिक्रम्योपरितनगुणस्थानकेषु गता जीवास्तद-
बन्धकाः, तदितरे पुनर्बन्धका भवन्ति, एवं रीत्या सर्वासामासां प्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेके-
ऽबन्धकाः' इतिस्वरूपोऽष्टमो भङ्ग उपादनीयः । 'सिआ' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-
पट्टकमज्जलनचतुष्कमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चक-
रूपा एकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिममचतुरस्रमस्थानसुखगतित्रसचतुष्क-
सुभगसुस्वगदेयपराघातोच्छ्वामोच्चैर्गोत्ररूपाश्च चतुर्दशाऽध्रुवबन्धिप्रकृतय इति मीलितानां पञ्चचत्वारिंश-
च्छेषप्रकृतीनां तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गा असहभावेन भवन्ति, भावना पुनरत्र प्रकृतध्रुवबन्धिप्रकृ-
तीनां चतुर्थव्याप्त्या भाव्या, तदेवम्—यदा न कोऽपि जीवः श्रेणिमुपपद्यते, तदा मार्गणास्वासु
स्थितैः सर्वैर्जीवैः प्रकृतशेषप्रकृतीनां बध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः सम्पद्यते ।
यदैक एव जीवः श्रेणौ प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधायाऽबन्धकः स्यात्, तथा श्रेणैर्वहिर्भूताः
मर्षे जीवास्तु बन्धकाः सन्त्येव, तदा 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमो भङ्गो घटते ।
यदा चानेके जीवाः श्रेणौ प्रकृतीनामामामबन्धकाः स्युः, तथा श्रेणिबाह्यास्तु सदैव तद्बन्धकत्वेन
विद्यन्त एव, तदा 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमभङ्गः संगच्छते ॥९०६-७॥

उदानो मनःपर्यवज्ञानमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् भावयन्नाह

तित्याहारदुगाण बारससायाइगाण मणणाणे ।

अट्टमभगोऽण्णेसि अत्थि तइअसत्तमऽट्टमा भगा ॥९०८॥

(गीति.)

(प्रे०) 'नित्या' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां जिननामाहारकद्विकमातवेदनीयाऽ-
सातवेदनीयहास्यरनिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिराशुमाऽशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिलक्षणां पञ्चदश-
प्रकृतीनामष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या कार्या । 'अण्णेसि' इत्यादि, ज्ञाना-
वरणपञ्चकदर्शनावरणपट्टकसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्कागुरुलघूपघात—

निर्माणाऽन्तर्गतपञ्चकस्याणामेकत्रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रिय-
द्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वोत्खगतिप्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराधातोच्छ्वाभोचैर्गोत्ररूपाणाम-
ष्टादशानामभ्रुवन्धिप्रकृतीनां च तृतीयमष्टमाष्टमभङ्गा अभवभावेन भवन्ति, भावना पुनरिह चतुर्थव्या-
प्त्या भाव्या, तद्यथा—मार्गणायाभस्यां वर्तमानेभ्यो जीवेभ्यो यदा न कोऽपि श्रेणिमारोहति, तदा प्रकृती-
नामासां सर्वैर्वध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपत्तिमाप्नोति । यदा च तेभ्यः श्रेणा-
चेक एव जीवः प्रकृतीनामासां बन्धाभावं विधायाऽबन्धकः सजायते, तदा अनेके बन्धका एक
एवाऽबन्धकः' इति स्वरूपः सप्तमभङ्ग उपपद्यते । अष्टमभङ्गश्च तद्वैपपद्यते यदा तेभ्यो जीवेभ्यः
श्रेणावनेके जीवाः प्रकृतीनामामां बन्धाभावमाधायाऽबन्धका जायन्ते ॥९०८॥

साम्प्रतमजानत्रिकलक्षणासु तिसृषु मार्गणास्तत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिन्तयन्नाह

मिच्छस्स अणाणतिगे सिआ तइअसत्तमअट्टमा भगा ।

सेसधुवाण तइओ भंगो खलु अट्टमोऽण्णेसि ॥९०९॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्या-
त्वमोहनीयस्य तृतीयसप्तमाष्टमभङ्गाः प्रत्येकमभवभावेन भवन्ति, योजना पुनरत्र तुर्यव्याप्त्या विधात-
व्या, तदिन्धम्—यदा मार्गणाभ्यासु वर्तमानाः सर्वेऽपि प्राणिनो मिथ्यादृष्ट्य एव स्युस्तदा तैस्म-
र्वैस्तस्य वध्यमानत्वेन 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्ग उपपन्नो भवति । यदा पुनस्तेभ्य एक एव
जीवः सास्वादनगुणस्थानके वर्तते, तदा स मिथ्यात्वमोहनीयं न बध्नाति, तदपरे पुनर्मार्गणाभ्यासु
वर्तमाना वन्नन्ति, तस्मात् 'अनेके बन्धका एक एवाऽबन्धकः' इति सप्तमभङ्गो धटते । यदा
मार्गणाभ्यासु स्थिताः केचिजीवाः सास्वादनगुणस्थानके वर्तेरन्, केचिच्च मिथ्यात्वगुणस्थाने, तदा
मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽनेकेषां जीवानां बन्धकत्वेनाऽनेकेषां जीवानां चाऽबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वाद्
'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्ग उपपत्तिमालभते । 'सेसधुवाणं' इत्यादि,
मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपट्वत्त्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति,
मार्गणाभ्यासु वर्तमानैः सर्वैरनवरतं प्रकृतीनामासां बध्यमानत्वात् । 'खलु' इत्यादि, वेदनीयद्विक-
हास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनु-
पूर्वोचतुष्कखगतिद्विकत्रसदशकस्थावर्गदशकोत्पद्योत्पराधातोच्छ्वासगोत्रद्विकरूपाणां पट्पट्टिप्रकृतीनां
'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, भावना पुनरत्र तृतीयव्याप्त्या भावनीया ।
॥९०९॥ अथ सामायिकमार्गणायास्तत्तरप्रकृतिसत्कभङ्गान् दर्शयन्नाह

भगो आवरणणवगअतिमलोहुच्चपचविग्घाण ।

तइओ चेव समइए भणणाणव्वऽत्थि सेसाणं ॥९१०॥

(प्रे०) 'भंगो' इत्यादि, सामायिकमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसञ्जलन-
लोभोचैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपाणां षोडशानां प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति,

एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैः संततं ग्रध्यमानत्वात् । 'भणणाणव' इत्यादि, निद्रादिकसंज्वलन-
क्रोधमानमायाभयजुग्मातैजसकर्मणशीरद्वयवर्णयतुष्काऽगुरुलूपधातनिर्माणात्मकानां पौडगध्रुव-
धन्विप्रकृतीनां वेदनीयद्विकृतास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाऽऽहारक-
द्विक्रममचतुस्त्रयंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रयमदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिन-
नामरूपाणां द्वात्रिंशदध्रुवधन्विप्रकृतीनां च भङ्गा मनःपर्यायज्ञानमार्गणावद् भवन्ति, तदेवम् सात-
वेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामाहार्कद्विकजिननामप्रकृतीनां चेति पञ्चदशप्रकृतीनां 'अनेके ग्रन्थका
अनेकेऽग्रन्थकाः' इत्यष्टमभङ्गो भवति, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतप्रकृतीनां च तृतीयमष्टमाऽष्टमभङ्गा
भवन्ति, भावना प्राग्बद् भावनीया ॥११०॥

अथ छेदोपस्थापनीयसंयमपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोर्भङ्गानां स्वयं ज्ञेयत्वमुपदर्शयति

छेए तह परिहारे सख जीवाण लहुपए णाउं ।

भगा सय च्च णेया सप्पाउग्गाण सव्वाणं ॥१११॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासां
प्रकृतीनां भङ्गा लघुपदे जीवानां संख्यां ज्ञात्वा स्वयमेव ज्ञेयाः । कथमिति चेदाह-मार्गणयोरनयो-
र्जीवानां जघन्यसंख्यायाः सम्यक्ताया परिज्ञानाभावात्, तच्चैवम् श्रीपञ्चमाङ्गे-छेदोपस्थापन्या पुच्छा
गोयमा । पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि सिय नत्थि, जइ अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्को-
सेण सयपुहुत्त, पुव्वपडिवज्जए सिय अत्थि, सिय नत्थि जइ अत्थि जहन्नेण कोडिसयपुहुत्त उक्कोसेण वि
कोडिसयपुहुत्त । इत्यनेन जघन्यपदे छेदोपस्थापनसंयतानां कोटिशतपृथक्त्वमभिहितम् । तट्टीकायां तु
श्रुतिबलाजघन्यतस्तेषां त्रिंशतिरेव मग्भाविता । तथा च टीकाक्षराणि-"दुपमान्ते भरतादिपु दशसु क्षेत्रेषु
प्रत्येकं तद्द्वयस्य भावाद्विशतिरेव तेषां श्रूयते" इति । एवं परिहारविशुद्धिसंयममार्गणास्थाने, "परिहार-
विशुद्धिया जहा पुलाना" इत्यनेनाऽतिदेशतः श्रीभक्त्यां भगवत्प्रां जघन्यपद एकोऽभिहितः, पञ्चवस्तु-
प्रकरणे पुनः, "उक्कोमज्जहणेण सयसोक्किचय पुव्वपडिवज्जणा ॥ गाथा १५३४ ॥" इत्यनेन जघन्यतोऽपि
ते शतशः प्रतिपादिताः ।

न चैवं सति तत्तन्मतेन यथामंभवं भङ्गका द्रष्टव्या भवन्तीति वाच्यम्, यत एतेषामनुपपत्ति-
पादकानां भिन्नभिन्नमतावलम्बित्वमेव न पुनरभिप्रायविशेषावलम्बित्वमिति न केनाऽपि निश्चितम् ।
यत उक्तमभयदेवधूरिवादैः-इहोत्कृष्ट छेदोपस्थापनीयसंयतपरिमाणमादितोर्थकरतीर्थान्याश्रित्य संभवति
जघन्यं तु तत्तन्मयं नावगम्यते' इति । पञ्चवस्तुके च प्रक्षेपपक्षापेक्षया जघन्यपद एक एव परिहारवि-
शुद्धिको भवतीत्युक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थः

पडिवज्जमाण भट्ठया उक्को वि हुव्व ऊणपक्खेवे । पुव्वपडिवज्जया वि हु भइया एगो पुहुत्त वा ॥ ॥

केचित्पुनरेवमाहुः-छेदोपस्थापनीयं तु प्रथमचतुर्विंशतितमजिनतीर्थे तु नियमत आदर्तव्यम्, पूर्व- ॥
गृहीतचारित्रस्य विशेषोद्यतार्थमथवा मूलगुणभङ्गे पुनर्महाप्रतारोपणम्, एतत्तु सर्वजिनतीर्थेषु प्राप्यते' इति

ग्रन्थैर्जघन्यपदे मार्गणयोरनयोर्जीवसंख्याया निर्णयो न भवति, तरणात् स्वयमेव ग्रन्थाऽविरोधेन भङ्गा अत्र भावनीया इति ॥९११॥

अधुना सूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमाभिधमार्गणाद्वय उत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयिषुराह

सुहमे सत्तरसण्ह भगा पढमतइआ सिआ गेया ।

सायस्स अहक्खाये त्तिसत्तमअट्ठमा भंगा ॥९१२॥

(प्रे०) 'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चरुदर्शनावरणचतुष्क-
सातवेदनीयशःकीत्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपाणां सप्तदशप्रकृतीनामसहभावेन प्रथमतृतीयभङ्गौ
भवतः, भावना पुनरत्र पञ्चमव्याप्त्या भावनीया । 'सायस्स' इत्यादि, यथाख्यातसंयमाख्यमार्ग-
णायां सातवेदनीयस्य तृतीयमष्टमाष्टमभङ्गा अमहभावेन भवन्ति । तदित्थम्-मार्गणेषुपशान्तमो-
हादिषु चतुर्षु गुणस्थानकेषु विद्यते, तथा सातवेदनीयस्य वन्धोऽपि मार्गणायामस्यां त्रयोदश-
गुणस्थानकं यावद् भवति, एतन्मार्गणावतिनोऽनेके जीवा उपशान्तमोहादिगुणस्थानत्रयमध्यात्त्रयो-
दशगुणस्थानके सर्वदा विद्यन्ते एव, परं यदा न कोऽप्ययोगिगुणस्थानके, तदा तत्र सातवेद-
नीयस्य सर्वैरेव वध्यमानत्वेन 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो घटामेति । यदा पुनरयोगिगुण-
स्थानक एक एव जीवो वर्तेत, तदा 'अनेके वन्धका एक एवाऽवन्धकः' इति सप्तमभङ्ग उपपत्ति-
मेति । यदा चाऽयोगिगुणस्थानकेऽप्यनेके जीवाः स्युः, तदा 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः'
इतिरूपोऽष्टमभङ्गः मङ्गलच्छेदे ॥९१२॥

साम्प्रतमसंयमादिमार्गणासूतरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयितुमना आह

अजयासुहलेसासु ध्रुवबंधीण इगुणचत्ताए ।

तइओ हवेअ भंगो सेसाण अट्ठमो भंगो ॥९१३॥

(प्रे०) 'अजया' इत्यादि, असंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेखालक्षणासु तिसृषु च
मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कलक्षणं प्रकृत्यष्टकमृते ज्ञानावरणी-
याधिकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयो भङ्गो भवति, मार्गणास्त्रासु
वर्तमानैः सकलैर्जीवैः प्रकृतीनामासां ध्रुवबन्धित्वेन सततं वध्यमानत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि,
मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्करूपस्य शेषध्रुवबन्धिप्रकृत्यष्टकस्याऽऽहारक-
द्विकार्युर्वर्जशेषमष्टाष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च 'अनेके वन्धका अनेकेऽवन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो
भङ्गो भवति, भावना पुनरिह तृतीयव्याप्त्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्या च शेषध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां विभावनीया ॥९१३॥

इदानीं तेनोलेख्यमार्गणासूतरप्रकृतीनां भङ्गान् दर्शयितुमना आह

धुववधिपुगतीसा परघाऊसासबायरतिगाणं ।

तेऊअ तइअभंगो अहुमभंगोऽत्थि सेसाणं । ९१४ ।

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कमंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्मातैजम-
कार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भुववन्धिनीनां परा-
घातोच्छ्वासमवादरत्रिकरूपपञ्चप्रकृतीनां च तेजोलेश्यामार्गणायां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो
भवति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः सर्वैर्जीवैः प्रकृतीनामां बध्यमानत्वात् । 'अहुमभंगो' इत्यादि,
मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाद्यद्वादशकपायरूपाणां शेषाणां षोडशभुववन्धिप्रकृतीनां वेदनीय-
द्विकहास्यादियुगलद्वयवेदनयदेवतिर्यग्मनुष्यगतित्रयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयोदारिकद्विकवैक्रियद्वि-
काहारकद्विकसंहेननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीत्रिकखगतिद्विकत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्कातपोद्यो-
तजिननामगोत्रद्विकलक्षणानां पट्पञ्चाशच्छेषाभुववन्धिप्रकृतीनां च 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः'
इतिरूपोऽष्टमो भङ्गो भवति, योजना पुनरत्र भुववन्धिप्रकृतीनां द्वितीयव्याप्त्याऽभुववन्धिप्रकृतीनां
च तृतीयव्याप्त्या विधेया ॥९१४॥

अथ पञ्चलेश्यामार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्कथयितुकाम आह

इगतीसधुवपणिदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।

पउमाअ तइअभंगो अहुमभंगोऽत्थि सेसाणं ॥९१५॥

(प्रे०) 'इगतीस' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिभ्यो विना ज्ञानावरणीया-
दीनामेकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तप्रकृतीनां च
'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गोऽस्ति, अत्रस्थैः सर्वैर्जीवैर्वध्यमानत्वात्तात्ताम् । 'अहुम' इत्यादि,
तेजोलेश्यामार्गणोक्तानां मिथ्यात्वादेषोडशभुववन्धिप्रकृतीनां तथैकेन्द्रियस्थावरातपत्रसपञ्चेन्द्रियवर्ज-
वेदनीयद्विकाधेकपञ्चाशद्भुववन्धिशेषप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो
भवति, मावना पुनरिह पूर्ववदवसेया ॥९१५॥

अथाऽभव्यादिमार्गणास्तत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् प्रतिपादयति

अमवियमिच्छेसु तहा अमणे धुववंधिसत्तचत्ताए ।

तइओ चेव विगण्णो सेसाणं अहुमो भगो ॥९१६॥

(प्रे०) 'अमविय' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु ज्ञानावरणीयप्रभृतीनां सप्त-
चत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणास्वासु स्थितैः सकलै-
र्जीवैः प्रकृतीनामासां सततं बध्यमानत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, आहारकद्विकजिननामायुर्वर्जपट्-
पट्टिशेषाऽभुववन्धिप्रकृतीनां 'अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः' इत्यष्टमो भङ्गो भवति, उपपत्तिरत्र
तृतीयव्याप्त्यनुसारेण विधातव्या ॥९१६॥

साम्प्रतं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान्निरूपयन्नाह

वेअगसम्मत्ते खलु बारससायाइअडकसायाणं ।

वहरणरसुरोराणियविउवाहारकुगतिट्थाणं ॥९१७॥

भगोऽत्थि अट्टमो खलु तइओ सेसाण पवचत्ताए ।

(प्रे०) 'वेअग' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनाम-
प्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टकषायाणां वज्रवर्षमनागचसंहननमनुष्यद्विक-
सुगद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां च 'अनेके वन्धका अनेके-
ऽवन्धकाः' इत्यात्मकोऽष्टमो भङ्गो भवति, भावना यथासंभवं द्वितीयतृतीयव्याप्त्या कार्या । 'तइओ'
इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्का-
ऽगुरुलघूपधातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसम-
चतुरस्रसंस्थानशुभलगतित्रयचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति
शेषाणां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयभङ्गो भवति, मार्गणायामस्यां स्थितैः
सर्वैर्जीवैर्विध्यमानत्वादासाम् ॥९१७॥

अधुनोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गा अभिधीयन्ते

भंगा अट्ट उवसमे सप्पाउग्गाण सव्वेसि ॥९१८॥

(प्रे०) 'भंगा' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जित-
ज्ञानावरणीयप्रभृत्येकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनुष्य-
गतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकवज्रवर्षमनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थान-
देवानुपूर्वीमनुष्यानुपूर्वीशुभलगतित्रयसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्र-
रूपाणामष्टात्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां चाष्टौ भङ्गा भवन्ति, घटना पुनरिह पटुव्याप्त्यनुसारेण स्वयमेव
कर्तव्या ॥९१८॥

सम्प्रति सास्त्रादनमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् विचारयति

छायालधुवपणिदियपरधाऊसासतसचउक्काणं ।

सासाणम्मि सिआइमतइआ भगाऽट्ट सेसाण ॥९१९॥

(प्रे०) 'छायाल' इत्यादि, सास्त्रादनसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जज्ञानावरणी-
यादिपट्चत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रयचतुष्करूपाणां सप्तप्रकृतीनां
प्रथमतृतीयभङ्गावसहभावेन भवतः, तद्यथा-मार्गणायामस्यामेकएव जीवो वर्तमानः प्रकृतीनामासां च
वन्धकः, तदा 'एक एव वन्धकः' इति प्रथमो भङ्गः समुपपद्यते । यदा मार्गणायामस्यामनेके जीवा
वर्तमानाः स्युस्तथा ते सर्वेऽपि प्रस्तुतप्रकृतीनां वन्धका भवेयुः, तदा 'सर्वे वन्धकाः' इति तृतीयभङ्गः

प्राप्यते । 'ऽह' इत्यादि, वेदनीयद्विषयास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदस्त्रीवेददेवमनुष्यतिर्यग्गतियौदारिकद्विकर्त्रैक्रियद्विकसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकवर्जर्षभनाराचादिसंहननपञ्चकखगतिद्विकाऽऽनुपूर्वीप्रय-स्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतगोत्रद्विकरूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति, भावना पुनरिह पृथ्व्याप्तिमनुसृत्य विधातव्या ॥९१९॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामुत्तरप्रकृतीनां भङ्गान् चिकथयिष्यामि

वारससाधार्हण णरसुखरलविउवजुगलवहराण ।

सोसम्भि अट्ट भंगा सेसाणाद्वमतद्वभगा ॥९२०॥

(प्रे०) "वारस" इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायाम् सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां मनुष्यद्विक-सुरद्विकौदारिकद्विकर्त्रैक्रियद्विकवर्जर्षभनाराचसंहननलक्षणाणां च नवानां प्रकृतीनामष्टौ भङ्गा भवन्ति, घटना तु पृथ्व्याप्त्या विज्ञेया । "सेसाण" इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जवध्यमान-ज्ञानावरणीयाद्येकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानसुखगति-त्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां च प्रथमतृतीयौ भङ्गौ भवतः, उपपत्तिः पुनरेवम् मार्गणायामस्यामेक एव जीवः स्यात्, स एव च प्रकृतीनामासां बन्धकः, तदा प्रथमभङ्गो घटां लभते, यदा चाऽनेके जीवा विद्येन्, तथा ते सर्वेऽपि ताः प्रकृतीर्वर्धन्ति, तदा तृतीयभङ्ग उपपन्नो भवति ॥९२०॥

इति आदेशतो मार्गणास्वायुष्ककर्मवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भङ्गप्ररूपणा कृता ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्मबन्धकानां भङ्गान् प्रतिपादयन्नादौ नरकौघादिमार्गणासु जन् दर्शयति ।

संव्वणिरयपचिदियतिरियसुरविगलपणिदियतसेसुं ।

तिणरेसु पज्जवायरचउक्कपत्तेअहरिएसुं ॥९२१॥

पणमणवयणेसु तहा विउव्वथीपुरिसणाणचउगेसुं ।

विउमंगसजमेसुं समद्वअदेसोहिचक्खुसुं ॥९२२॥

तीसुं सुहलेसासुं सम्मखद्वअवेअगेसु सण्णिम्मि ।

सप्पाउग्गाऊणं चउत्थेछट्टऽट्टमा भंगा ॥९२३॥

(प्रे०) "संव्व" इत्यादि, नरकौघरत्नप्रमाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधुमप्रभातमः-प्रभातमस्तमःप्रभारूपास्वष्टसु नरकमार्गणासु पञ्चेन्द्रियतिर्यगोषपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्त-तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीरूपासु चतसृषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्यो-तिष्कसौघमैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रप्रललान्तकशुकसहस्राराऽऽनतप्राणताऽऽरणाऽऽयुतनङ्गैवेयकपञ्चा-नुत्तररूपासु त्रिंशद्देवमार्गणासु ओषपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रिय-मार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु तिसृषु पञ्चेन्द्रियमार्गणासु चेति द्वादशेन्द्रियमार्गणासु

तिसृषु च त्रयकायमार्गणासु मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मनुष्यमार्गणासु पर्याप्तवादर्-
पृथ्वीकायाऽप्यायतेजस्कायचायुकायप्रत्येकवनस्पतिकायरूपासु पञ्चसु कायमार्गणासु ओघ-सत्या-ऽसत्य-
सत्यासत्या-ऽसत्याऽसृपाप्रकारेण पञ्चसु मनोमार्गणासु पञ्चसु वचनमार्गणासु वैक्रियकाययोग-
मार्गणायां चेत्येकादशयोगमार्गणासु स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये सृतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवज्ञानरूपासु
चतुर्ज्ञानमार्गणासु विभङ्गज्ञानमार्गणायां संयमौघमामार्गिकदेशविगतिरक्षणसु तिसृषु संयममार्गणासु
अवधिदर्शनचक्षुदर्शनमार्गणाद्वये तेजःपञ्चशुक्ललेख्यालक्षणासु तिसृषु शुभलेख्यामार्गणासु सम्यक्त्वौघ-
आधिक्ययोपशमरूपासु तिसृषु सम्यक्त्वमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां चेति सर्वसंख्यया पञ्चनवति-
मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां चतुर्थपष्टाष्टमभङ्गा भवन्ति, तदित्थम्-ओघे तथा मार्गणासु नरक-
मनुष्यदेवायुष्कत्रयस्य बन्धान्तरं भवत्येव, आसां बन्धकानामसंख्येयलोकप्रदेशसंख्यातो हीनत्वात्,
तथा यत्र मार्गणासु तिर्यगायुर्वन्धकतया जीवा असंख्येयलोकराशितो हीना भवन्ति, तत्राऽपि
तिर्यगायुषोऽन्तरं भवति, इति नियमः, प्रकृते नरकमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं वध्यते, प्रोक्तनियमेन
प्रकृतेऽपि तिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयबन्धस्याऽन्तरं भवति, नारकादिमार्गणागतजीवानामप्यसंख्येयलोका-
काशप्रदेशसंख्यातो न्यूनतरत्वात् । यदा नरकमार्गणासु तिर्यगायुष्कबन्धसत्कमन्तरं भवति तदा
तिर्यगायुष्कस्य 'सर्वोऽबन्धकाः' इति तुर्यभङ्गो भवति, तद्वेलायां तिर्यगायुर्वन्धकत्वेन कस्याऽप्य-
नुपलभ्यमानत्वात् । यदा पुनरेक एव जीवस्तिर्यगायुर्वन्धनाति, नान्ये तदा 'एक एव बन्धको-
ऽनेकेऽबन्धकाः' इति पष्ठभङ्गः संगच्छते, यदा च नरकमार्गणासु केचन जीवास्तिर्यगायुर्वन्धीयुः,
केचन च न, तदा अनेके बन्धका अनेकेऽबन्धकाः, इतिरूपोऽष्टमो भङ्ग उपपद्यते । एवमेव रीत्या
त्रयोऽप्येते भङ्गा मनुष्यायुष्कविषयेऽपि योजनीयाः । तथाऽन्यैव रीत्या त्रयोऽप्येते भङ्गा
अत्रोक्तासु समस्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कविषये स्वयमेव विचारणीयाः ॥९२१-२३॥

अथाऽप्यस्मिन्नुष्याहारकद्विकसास्वादनछेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणासु शेषमार्गणासु
च तमाह

भङ्गा अदु अपज्जगमपुयाहारदुगसासणेसु सिआ ।

छेए परिहारे सयमुज्जा ओघव्व सेसासु ॥९२४॥

(प्रे०) 'भङ्गा' इत्यादि, अपूर्णास्मिन्नुष्याहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमास्वादन-

सम्यक्त्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणामष्टौ भङ्गा भवन्ति, मार्गणानामासामध्रुवत्वात् ।

'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुर्वन्धकानां भङ्गाः स्वय-

भूताः । स्वयभूतत्वं चात्र पूर्वप्रदर्शितन्यायेन जीवानां जघन्यसंख्याया निर्णयमायात् । 'ओघव्व'

इत्यादि, अत्राभिहितव्यतिरिक्तासु शेषमार्गणासु चतुर्णामायुष्काणां यथायोग्यमोघवद् भङ्गा भवन्ति,

ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-तिर्यगौघमार्गणा सप्तैकेन्द्रियमार्गणा ओघक्षमौघक्षमपर्याप्तक्षमाऽपर्याप्तभेदेन

चतस्रः पृथ्वीकायमार्गणाश्चतस्रोऽप्यायमार्गणाश्चतस्रस्तेजस्कायमार्गणाश्चतस्रो वायुकायमार्गणाश्चेति
 षोडश, पृथिव्यादिचतुष्कस्य वादरौघवादराऽपर्याप्तभेदेनाऽष्टौ मार्गणाः वनस्पतिकायौघप्रत्येक-
 वनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्तिस्रो मार्गणाः, ओधसूक्ष्मौघवादरौघसूक्ष्मपर्याप्त
 सूक्ष्माऽपर्याप्तवादरपर्याप्तवादराऽपर्याप्तभेदेन मत्तमाधारणवनस्पतिकायमार्गणाश्चेति चतुस्त्रिंशत्कायमा-
 र्गणाः, काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपास्त्रिकाययोगमार्गणाः नपुंसकवेदमार्गणा
 क्रोधमानमायालोभमार्गणाचतुष्कं मत्तज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वयमसंयममार्गणा अचक्षुर्दर्शनमार्गणा
 कृष्णनीलकापोतलेस्यामार्गणात्रयं भव्याभव्यौ मिथ्यात्वमार्गणा आहारकमार्गणा असंज्ञिमार्गणा
 चेति द्वापष्टिः ।

नैकियमिश्रकर्मणकाययोगाऽवेदाऽकपायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्पराययथाख्यातसंयमकेवलदर्शनो-
 पशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपाम्बेकादशमार्गणास्वायुष्काणां बन्धो न भवति तरगाद् भङ्ग-
 विचारणाऽपि न सम्भवति । निर्यगाघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभ
 मत्तज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेस्यात्रयभव्याभव्यमिथ्यात्वाहारकाऽसंज्ञिरूपासु
 विंशतिमार्गणासु देवनिरयमनुष्यायुष्काणां तेजोवायुकायसत्कदादशमार्गणावर्जेकेन्द्रियादित्रिंशन्मा-
 र्गणासु केवलं मनुष्यायुपरचतुर्थपष्टाऽष्टमरूपास्त्रयो भङ्गा असहभावेन भवन्ति, प्रोक्तद्वापष्टिमार्ग-
 णासु तिर्यगायुष्कस्य चाष्टमो भङ्गो भवति । तदेवं परिसमाप्तं मार्गणास्वायुष्कबन्धकानां भङ्ग-
 निरूपणम्, तत्परिसमाप्ते च समाप्तिमगाद् भङ्गविचयद्वारम् ॥९२४॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे

प्रथमाधिकारे सप्तमं भङ्गविचयद्वारम् समाप्तम् ॥



॥ अथाष्टमं भागद्वारम् ॥

साम्प्रतं क्रमायातमष्टमं भागद्वारं कथयितुं कामो ग्रन्थकारः प्रथमतयौघनस्तन्निरूपयति

ध्रुववधिरालाणमणंतसा वंधगा अणतसो ।

णिरयणरसुराउविउवछक्काहारदुगतित्थाण ॥६२५॥

(प्रे०) “ध्रुव” इत्यादि, ओवतः सर्वेषां जीवानामादेशतश्च मार्गणसु तद्गतमर्बजीवानाम-
पेक्षया विवक्षितप्रकृतीनां बन्धविधायिनः, उपलक्षणतया तद्वन्धाविधायिनश्च कतमेषु भागेषु
विद्यन्ते इत्यत्र भागद्वारे चिन्तयिष्यते । ‘ध्रुव’ इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ज्ज्ञानावरणीयादिद्रुवबन्धि-
प्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका जीवा अनन्तबहुभागप्रमाणाः सन्ति, तदेवम्-विश्वविश्वे-
ऽनन्तानन्तजीवराशिर्विद्यते, तस्य चानन्ता भागा विधातव्याः, तेषु यः सकलसिद्धानां भवस्थकेवल-
प्रभृतीनां च राशिप्रमाण एकोऽनन्ततमो भागः, तं विहायापरेऽनन्तबहुभागाः सप्तचत्वारिंश-
द्द्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकत्वेन भवन्ति, तादृशश्चैकोऽनन्ततमो भागस्तद्वन्धकतयाऽस्ति । वैक्रिया-
द्वारकशरीरनामकर्मबन्धकानां तथा सिद्धानां भवस्थकेवलिप्रभृतीनां च राशिप्रमाणमेकमनन्ततमं भागं
त्यक्त्वा शेषानन्तबहुभागा औदारिकशरीरनामकर्मणो बन्धका वर्तन्ते, अस्य बन्धकतया सूक्ष्म-
वादरनिगोदानामपि प्रवेशात्, तेषां च सिद्धादिजीवानामपेक्षयाऽनन्तगुणत्वात्, उक्तस्तादृशोऽनन्त-
तमो भागः प्रकृतेरस्या अवन्धक इति । “अणंतंसो” इत्यादि, नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्नरकद्विकं
सुरद्विकं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं जिननाम चेति द्वादशप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वजीवानाम-
नन्ततमभागे वर्तन्ते, यत आहारकद्विकवर्जशेषदशप्रकृतिबन्धका जीवा असंख्येया आहारकद्विकबन्धकाश्च
संख्येयाः, अस्य मुख्ययाद्वयस्य सर्वजीवसङ्ख्यापेक्षयाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । प्रकृतीनामासा-
मबन्धका अनन्तेषु भागेषु वर्तन्ते ॥९२५॥

एगिदियजोग्गअसुहतमअडुारपयडीण संखंसा ।

सेसाणं सखंसोसव्वत्थ अबंधगा सेसा ॥९२६॥

(प्रे०) “एगिदिय” इत्यादि, तिर्यग्विद्वकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्ववर्जस्थावरबन्ध-
काऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामशुभतमाष्टादशप्रकृतीनां
बन्धकाः संख्येयतमबहुभागप्रमाणा वर्तन्ते, भावनाप्रकारस्त्वेवम्-तिर्यग्विद्वकादिप्रकृतिप्रतिपक्षभूतप्रकृ-
तीनां बन्धकालापेक्षया तिर्यग्विद्वकप्रभृतिप्रकृतीनामासां बन्धकालस्य संख्येयगुणाधिकत्वात् । अत्राऽयं
नियमो ज्ञातव्यः-ओघे मार्गणसु च ये जीवा बहुभागरूपास्तदपेक्षयैव तेषां पारमविकं यन्निकृष्टस्थानं
तत्प्रायोग्याऽशुभतमाऽद्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालः शेषाऽद्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकालतः संख्येयगुणः
तथास्त्राभाव्याद् विद्यते, अतः प्रस्तुतेऽसातवेदनीयतिर्यग्विद्वकादिप्रकृतीनां बन्धकाः सातवेदनीयादि-
प्रकृतिबन्धकापेक्षया संख्यातगुणा आगताः । “सेसाणं” इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुष-

वेदतिर्यगायुर्भुव्यगर्थेकेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गमंहननपट्कर्मस्थानपञ्चकमनुप्या-
नुपूर्वीखगतिद्विक्रमदशकदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराघातश्वासोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशच्छेषप्रकृ-
तीनां बन्धकाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अशुभतमप्रकृतिबन्धकालापेक्षया प्रकृतप्रकृति-
बन्धकालस्य संख्याततमभागप्रमाणत्वात्, निगोदजीवानधिकृत्य तिर्यगायुषो बन्धकालतस्तद्वन्ध-
कालस्य सख्येयगुणत्वात् । ‘सञ्चत्व’ इत्यादि, ओघतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां तथाऽऽदेशतः सर्वमार्ग-
णासु स्वप्रायोग्याणां सर्वोत्तरप्रकृतीनां मार्गणागतजीवापेक्षया सर्वत्र बन्धकेभ्यो व्यतिरिक्ताः शेषा
अबन्धका ज्ञातव्याः, बन्धकसत्कमागार्वांशप्रभागोऽबन्धकानां भवतीति भावः । सर्वजीवापेक्षया पुन-
र्मार्गणासु तत्तत्प्रकृतीनामबन्धकानां भागं स्वमेव ग्रन्थकारोऽग्रे दर्शयिष्यते ॥९२६॥

साम्प्रतं मार्गणासुत्तरप्रकृतिबन्धविधायिनामायुर्वर्जानां भागमुपदर्शयन् यास्वोघवत्तासु तथैवा-
ऽतिदिशन्नाह

ओघच्चाउगवज्जसपाउग्माणऽतिथ वधगा काये ।

उरलदुगकम्मअणयणभविधाहारइयरेसुं च ॥९२७॥

(प्रे०) ‘ओघव’ इत्यादि, काययोगौधौदारिकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगकर्मणकाय-
योगाचक्षुर्भुव्याहारकानाहारकरूपास्वप्नमार्गणास्त्रायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्धका ओघ-
वत्मन्ति, कर्मणानाहारकयोर्नरकद्विकाहारकद्विकवर्जप्रकृतीनां शेषासु षोडशोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका
अबन्धकाश्च सर्वथौघवज्ज्ञेयाः ॥९२७॥

इदानीं नरकदेवसत्कासु कासुचिन् मार्गणासुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागं दर्शयितुमाह

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्टमतदेवेसुं ।

तइप्रो चेव विगप्पो जाण ण सि अट्टचत्ताए ॥९२८॥

भागा असखिया खलु थीणद्धितिगाणचउगमिच्छाणं ।

भागो असखिययमो हवेज्ज जिणणामकम्मस्स ॥९२९॥

तिरिपाउग्गअसुहतमसोलसपयडीण अतिथ संखंसा ।

भागो सखेज्जइमो सप्पाउग्माण सेसाण ॥९३०॥

(प्रे०) ‘णिरय’ इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभा-
सनत्कुमारमाहेन्द्रप्रहलान्तकशुक्रसहस्रारूपासु त्रयोदशमार्गणासु यागामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ‘सर्वे
बन्धकाः’ इति तृतीय एव विकल्पः, तामां प्रकृतीनां बन्धविधायिना भागो नास्ति; कथमिति चेदुच्यते,
स्वोन्कृष्टगुणस्थानं यावन्निरन्तरं बध्यमानानां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिकल्पानां
भागप्ररूपणा नास्ति, निरन्तरतया सर्वैर्जीवैर्वध्यमानत्वादिति । अयमेव हेतुरन्यत्रापि विज्ञेयः ।
ताश्चेमाः प्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जा एकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतय औदा-
रिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतयश्च । “भागा” इत्यादि, प्रकृतनरकादि-

त्रयोदशमार्गणासु स्नानान्द्वित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य बन्धका
असंख्येयबहुभागप्रमाणाः सन्ति, यतो मार्गणास्वासु प्रकृतीनामासां बन्धका मिथ्यादृशः,
सम्यग्दृष्टिभ्यश्च मिथ्यादृशोऽसंख्येयगुणा विद्यन्ते । शेषाः पुनरेतत्प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका असंख्ये-
यतमे भागेऽवसेयाः । 'भागो' इत्यादि, जिननामकर्मणो बन्धकाः पुनरासु मार्गणासु संख्येय-
तमभागप्रमाणा वर्तन्ते, मार्गणास्वासु वर्तमानेभ्यो जीवेभ्यः सम्यग्दृष्टिजीवानामसंख्येयतमभाग-
वर्तिन्यात्, तेष्वपि जिननामकर्मबन्धयोग्यतावतामल्यतमत्वात् । तदबन्धकाः पुनरसंख्येयबहु-
भागेषु विज्ञेयाः । 'तिरि' इत्यादि, अमातवेदनीयशोकारतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकसेवार्तसहनन-
हुण्डकसंस्थानाऽशुभलगत्यस्थिरपट्कनीचैर्गोत्ररूपाणा षोडशाना तिर्यक्प्रायोग्याऽशुभतमप्रकृतीनां
बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु सन्ति, एतत्प्रतिपक्षभूतप्रकृतीनां बन्धकापेक्षया प्रकृतीनामासां बन्धकालस्य
संख्येयगुणत्वात् । तदबन्धकाश्च संख्येयतमभागेऽवसेयाः । 'भागो' इत्यादि, मातवेदनीयहास्यरति-
भ्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिमहननपञ्चकर्मस्थानपञ्चक्रमनुष्यानुपूर्वीशुभलगत्यस्थिरपट्कोद्योतोच्चै-
र्गोत्ररूपाणां स्वप्रायोग्यपड्विंशतिशेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमभागप्रमाणाः सन्ति, एतत्प्रकृति-
विराधिप्रकृतिबन्धकालापेक्षयैतत्प्रकृतिबन्धकालस्य संख्येयगुणहीनत्वात् ॥९२८-३०॥

इदानीं मत्तमनस्कमार्गणायामुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागं निरूपयन्नाह

चरमणिरये विगप्पो तइओ चिअ जाण सिमडचत्ताए ।

भागो णत्थि असखियभागो खलु णरदुगुच्चाण ॥९३१॥

भागाऽसखा तिरिदुगथीणद्वितिगाणमिच्छणीआण ।

असुहतमतेरसण्ह सखसाऽण्णाण सखसो ॥९३२॥

(प्रे०) 'चरम' इत्यादि, तमस्तमः प्रभास्यमार्गणायां यामामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'सर्वे बन्धकाः'
इति तृतीयभङ्गो विद्यते, तामां प्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, ताश्चेमा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः—
मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जिता एकोनचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतय औदारिकद्विकपञ्चेन्द्रिय-
जानिपरावातोच्छ्वाभ्रसचतुष्प्रकृतयश्चेति । 'असंख्यभागो' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्र-
प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयतमो भागोऽस्ति, यतो हि मार्गणायामस्यामेताः प्रकृतयः सम्यग्दृष्टिभिरेव
बध्यन्ते, ते च मिथ्यादृशामसंख्येयतमभाग एव वर्तन्ते, तदबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमाणा
विज्ञेयाः । 'भागा' इत्यादि, तिर्यग्द्विकस्नानान्द्वित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयनीचैर्गोत्र-
लक्षणानामेकादशानां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते, प्रकृतीनामासां बन्धकस्य
मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिरूपायोदयप्रत्ययिकत्वात्, मिथ्यादृष्टीनां च सम्यग्दृष्टिभ्यो मार्गणायामस्याम-
संख्येयगुणत्वात् । शेषा अबन्धकाः पुनरसंख्येयभागेऽवसातव्याः । 'असुहतम' इत्यादि, असात-
वेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदसेवार्तसहननहुण्डकर्मस्थानाऽशुभलगत्यस्थिरपट्करूपाणामशुभतमत्रयो-

दशप्रकृतीनां वन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः, अवन्धकाश्च पुनः संख्येयतमे भागे ।
'ऽण्णाण' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयसंस्थानपञ्चकयन्तनपञ्चकशुभलगति-
स्थिरपट्कोद्योतरूपाणां त्रयोविंशतिशेषप्रकृतीनां वन्धकाः संख्याततमे भागेऽवसेयाः, अवन्धकाश्च
संख्येयबहुभागेषु । भावना पुनरिहोद्यवदधिगम्या ॥९३१-२॥

साम्प्रतं तिर्यग्मार्गणाधुत्तरप्रकृतीनां वन्धकानां भागमभिदधाति

तिरिये णो चेव भवे भागो धुववधिपचतीसाए ।

ओधव्व जाणियव्वा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥९३३॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोद्यमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानु-
बन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादशप्रकृतीः सत्यज्य शेषाणां ज्ञानावरणीयप्रमुख-
पञ्चविंशद्ब्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां स्थितैः सर्वैर्जीवैः प्रकृती-
नामासामनवरतं वध्यमानत्वात् । 'ओधव्व' इत्यादि, स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां वन्धका मार्गणा-
यामस्यामोद्यवद् वेदयितव्याः, तद्यथा—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्या-
ख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरनामकर्मरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां वन्धका अनन्तेषु भागेषु वर्तन्ते, यतो
हि मार्गणायामस्यां सम्यग्दृष्टिदेशविरतजीवानामपेक्षया मिथ्यादृशो जीवा अनन्तगुणा वर्तन्ते, ते
चैताः प्रकृतीर्निरन्तरं वध्नन्ति । औदारिकशरीरनामोऽवन्धकाः पञ्चेन्द्रिया एव तेभ्य औदारिक-
शरीरस्य वन्धकानामेकेन्द्रियाणामनन्तगुणत्वात् तद्वन्धका अनन्तबहुभागप्रमाणा भवन्ति, शेषाः पुनर-
वन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते । सुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिपट्कस्य वन्धका अनन्त-
तमभागे विद्यन्ते, मार्गणायामस्यामनन्तबहुभागप्रमाणैकेन्द्रियादिजीवानामासामवन्धकत्वात् । शेषा
अनन्तबहुभागप्रमिता जीवाः प्रकृतीनामासामवन्धका इति विज्ञेयम् । असातवेदनीयशोकाऽरति-
नष्टसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टादशाना-
मेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमप्रकृतीनां वन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति, संख्याततमभागप्रमाणाश्च
जीवास्तद्वन्धकाः सन्ति । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौ-
दारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीलगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतोच्छ्वास-
पराधातोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां वन्धकाः संख्येयतमे भागे ज्ञेयाः, अवन्धकाश्च
संख्यातबहुभागेषु । उभयत्रापि भावना पुनरोद्यवद् विधेया ॥९३३॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोद्यमार्गणायामुत्तरप्रकृतिवन्धकानां भागान् विचारयन्नाह

णत्थि पण्हियतिरिये भागो धुववधिपचतीसाए ।

जेया असखभागा वारसधुववधिउरलाण ॥९३४॥

एण्हियजोग्गअसुहत्तमअट्टारपयडीण संखसा ।

विक्किथध्वक्त्स असखसो सेसाण संखसो ॥९३५॥

(प्रे०) “णत्थि” इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणद्वादशप्रकृतिवर्जानां पञ्चत्रिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वात्तात्ताम् । ‘णोधा’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिद्वादशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका असंख्येयतमबहुभागेषु विद्यन्ते, तच्चेत्थम्—मार्गणायामस्यां सम्यग्दृष्टिभ्यो मिथ्यादृष्ट्योऽसंख्येयगुणाः सन्ति, तैश्चैता द्वादशध्रुववन्धिप्रकृतयो बध्यन्ते, तस्मादियत्प्रमाणतैस्तत्प्रकृतिबन्धविधायिनामुपलभ्यते । तथा प्रकृतमार्गणायां शेषजीवापेक्षयाऽसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानानां लब्ध्यपर्याप्तजीवानामौदारिकशरीरस्य निरन्तरबन्धो भवतीतिकृत्यौदारिकशरीरबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणा उक्ता इति । शेषाः पुनरसंख्येयतमे भागे तदबन्धका वेदयितव्याः । “एगिंदिय” इत्यादि, एकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमाऽमातवेदनीयाद्यद्वादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहुभागेषु भवन्ति, संख्याततमभागे च तदबन्धकाः, मार्गणायामस्यामसंख्येयबहुभागेषु लब्ध्यपर्याप्तजीवाः सन्ति, तेषां चाऽशुभतमोत्पत्तिस्थानं सूक्ष्माऽऽपर्याप्तमाधारणरूपमस्ति तेषु जीवेषु संख्येयबहुभागप्रमाणा जीवाः सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतप्रकृतिबन्धका वर्तन्ते, संख्याततमभागे च मनुष्यादिप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः । “विक्किअ” इत्यादि, सुरद्विक्रवैक्रियद्विकनरकद्विकलक्षणस्य प्रकृतिपट्टकस्य बन्धका असंख्याततमे भागेऽवसातव्याः, मार्गणायामस्यां देवनरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामितरेभ्योऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । तदबन्धकाः पुनरिहाऽसंख्येयबहुभागेषु बोद्धव्याः । “सेसाण” इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाज्जोपाङ्गसंहननपट्टकसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विक्रवसदशकदुःस्वरतपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे सन्ति अबन्धकाश्च संख्येयबहुभागेषु । भावना पुनरत्रौघवदधिगम्या ॥९३४-५॥

इदानीं तिर्यग्योनिमतीपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणयोरुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

दुपरिणदियतिरियेसुं पणतोसाअ धुववंधिपयडीण ।
भागो णत्थि अमखियमागा बारधुववधीणं ॥९३६॥
चउवीसाए पारगपाउग्गाणं हवेज्ज सज्जसा ।
संखेज्जइमो भागो बायालीसाअ सेसाणं ॥९३७॥

(प्रे०) “दुपणिंदिय” इत्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जानां पञ्चत्रिंशज्ज्ञानावरणीयादिध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, प्रकृतमार्गणागतैः सर्वैर्बध्यमानत्वात् । “असंखिय” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणा द्वादशानां ध्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयबहुभागेषु सन्ति,

प्रकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानैः सर्वैर्मिथ्यादृष्टिभिर्नवरतं बध्यमानत्वान् । “चञ्च-
वीसाए” इत्यादि, अमातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदः नरकद्रिकवैक्रियद्रिकपञ्चेन्द्रियजातिहुण्डकमं-
स्थानाऽगुभखगतित्रयचतुष्काऽस्थिरपट्कप्रगवातोच्छ्वायनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशतैर्नारकप्रायोग्यप्रकृ-
तीनां बन्धकाः प्रकृतमार्गणयोः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, अग्न्यकाश्च मन्थेयतमे भागे वर्तन्ते । नन्व-
त्रैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते इत्यनुक्त्वा नारकप्रायोग्यबन्धकाः संख्येयबहुभागेषु
वर्तन्ते इति कथमुक्तम्, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोषमार्गणायामेकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहु-
भागेषु वर्तन्ते इत्युक्तत्वात्, अत्रोच्यते—पञ्चेन्द्रियतिर्यगोषेऽसंख्येयबहुभागप्रमाणा लब्धपर्याप्ता
जीवा वर्तन्ते, अत्र तु पर्याप्ता एव जीवाः, तत्र बहुभागजीवानां निकृष्टबन्धस्थानमेकेन्द्रियरूपं वर्तते,
अत्र तु सर्वेषां निकृष्टबन्धस्थानं नरकगतिरूपं वर्तते, सर्वत्र निकृष्टगतिप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाल
उत्कृष्टतया शेषप्रकृतिबन्धकालपेक्षया संख्येयगुणोऽस्तीति नियमेनह नरकप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां
संख्येयगुणत्वमुक्तम् । तासां पुनरबन्धकाश्च संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः । ‘संचेज्जहमो’ इत्यादि,
निरुक्तप्रकृत्यतिरिक्तद्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः, तासां पुनर-
बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वय-
मनुष्यतिर्यग्गतित्रयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कादारिकादिकमहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चक्रममनुष्य-
तिर्यगानुपूर्वीत्रयसुखगतिस्थिरपट्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतोच्चेर्गोत्ररूपा द्विचत्वारिंशत्प्रकृतय इति ।
॥९३६-७॥ अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणास्वाह

असमत्तपणिदितिरियमणुसपण्णियतसेसु सव्वेसु ।

एणिदियविगल्लिदियपुह्विदगवणेसु णो भागो ॥९३८॥

धुववधिउरालाण सेसाणोघव्व तेउवाऊसुं ।

सव्वेसु तहेव णवरि भागो ण तिरिदुगणोआण ॥९३९॥

(प्रे०) ‘असमत्त’ इत्यादि, अपर्याप्तनिर्यगपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽप-
र्याप्तसंरूपासु चतसृषु मार्गणासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु पृथ्वीकायिकमार्गणासु सप्त-
स्वप्नायिकमार्गणास्वोषपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदमिन्नासु तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्ग-
णासु तिसृषु चतुर्गिन्द्रियमार्गणासु एकादशवनस्पतिकायमार्गणासु च ज्ञानावरणीयप्रमुखाणां सप्तचत्वा-
रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणास्वासु स्थितैः
सर्वैर्जीवैर्बध्यमानत्वात् । ‘सेसाण’ इत्यादि, प्रकृतमार्गणाभूक्तव्यतिरिक्तबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका
ओधवदभिधातव्याः, तद्यथा—तिर्यग्द्विकप्रभृत्येकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टाधानां प्रकृतीनां बन्धकाः
संख्यातबहुभागेषु मन्ति, तदबन्धकाश्च संख्याततमे भागे । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वय-
मनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कादारिकाङ्गोपाङ्गमहननपट्कमंस्थानपञ्चक्रममनुष्यानुपूर्वीत्रयगतिद्विक-

त्रयदशकदुःस्वराऽऽतपोद्योतोच्छ्वासपराघातोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यात-
तमे भागे भवन्ति, तद्वन्धकाः पुनः संख्यातबहुभागेषु । भावना पुनर्गौघवदवसेया । 'तेजवाञ्जसु'
इत्यादि, सप्तसु तेजस्कामार्गणामु सप्तसु वायुकायिकमार्गणामु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां भागप्ररूपणोपरि-
तनमार्गणावद् विधेया । 'णवर्षि' इत्यादि, परं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानां
भागो मार्गणास्वासु नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सकलैर्जीवैर्वर्धमानत्वात्तस्य ॥९३८-९॥

साम्प्रतं मनुष्यादिमार्गणाक्षतरप्रकृतिबन्धकानां भागप्ररूपणा विधीयते

मणुसर्पाणितसेसुं ध्रुवउरलाण हविरे असंखसा ।

तित्थाहारदुग्गविउलछवकाणसो असखयभो ॥९४०॥

एगिदियजोगाअसुहतमअदुरपयडीण सखसा ।

संखेज्जइमो भागो सेसाणं एगचत्ताए ॥९४१॥

(प्रे०) 'मणुस्स' इत्यादि, मनुष्यौघपञ्चेन्द्रियौघत्रयौघरूपासु तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावर-
णीयादीनां सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनामौदाग्निकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका असंख्यातबहुभा-
गेषु भवन्ति, यतो हि मार्गणास्वासु केवलज्ञानिप्रमुखा जीवा एताः प्रकृतीन् वर्धनन्ति तद्व्यतिरि-
क्ताश्च वर्धनन्ति, ते च भवस्थकेवलज्ञानिप्रमुख्येभ्योऽसंख्येयगुणा विद्यन्ते । तद्वन्धकाः पुनरसं-
ख्याततमभागप्रमाणा विज्ञेयाः । 'तित्था' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकसुरद्विकनरकद्विकवैक्रिय-
द्विकलक्षणानां नवानां प्रकृतीनां बन्धका असंख्याततमभागे वर्तन्ते, तद्यथा—जिननामकर्म कैश्चिन्-
सम्यग्दृष्टिप्रभृतिभिरेव वर्धयते, ते च प्रकृतमार्गणावर्तिमिथ्यादृष्टिजीवानामसंख्येयतमे भागे वर्त-
न्ते । आहारकद्विकबन्धका अप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेनेतरेषामसंख्येयभागे
प्राप्यन्ते । वैक्रियपट्कस्य च बन्धविधायिनो जीवा लब्धिपर्याप्ता एव भवन्ति ते च लब्धपर्याप्ता-
पेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा एव लभ्यन्त इत्यर्थः । 'एगिदिय' इत्यादि, असातवेदनीय-
शोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणा-
मेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः संख्याततमभागप्रमाणा-
श्चाऽबन्धकाः । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रिया-
दिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसहननपट्कप्रथमादिभंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रयदशक-
दुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे
भागे बोद्धव्याः, संख्यातबहुभागेषु चाऽबन्धकाः, उभयत्रापि भावना प्राग्बदवसातव्या ॥९४०-१

एतर्हि पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणाद्वये भागान् भावयति—

दुणरेसु सखमागा पारगपाउग्गएगसयरीए ।

सखेज्जइमो भागो सेसाणं पचचत्ताए ॥९४२॥

(प्रे०) 'दुणरेसु' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपयोर्मार्गणयोः सप्तचत्वारिंशद्भुवन्ध्यसात-
वेदनीयाऽरतिशोकनपुंसकवेदनरकटिकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानाऽशुभखगतिप्रसक्त-
ष्काऽस्थिरपट्कपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणामेकसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति,
मार्गणयोरनयोः सप्तचत्वारिंशद्भुवन्ध्यप्रकृत्यबन्धकानामपेक्षया तद्वन्धकानां संख्येयगुणत्वा-
दिति । नरकप्रायोग्यचतुर्विंशतिप्रकृतीनां भागविषये भावना पर्याप्तिर्यवपञ्चेन्द्रियमार्गणाव-
त्कार्या । तद्वन्धकाः पुनः संख्याततमे भागे वर्तन्ते । 'संखेज्जइमां' इत्यादि, सातवेदनीय-
हास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकद्विकाहारकटिकसंहनन-
पट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकशुभखगतिदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयस्थिरपट्कस्थावरचतुष्कातपोद्योतजिन-
नामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे सन्ति, अस्मिन् मार्ग-
णाद्वये नरकगतिलक्षणनिकृष्टप्रकृतिबन्धस्थानस्य बन्धकानां संख्येयगुणत्वेन प्रकृतशेषप्रकृतिबन्ध-
कानां संख्येयतमभागवर्तित्वात्, तद्वन्धकास्तु संख्येयबहुभागेषु ज्ञेयाः ॥९४२॥

इदानीं देवौघादिमार्गणाधूतरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयन्नाह—

सुरईसाणतविजवज्जुगलेसु बधगा मुणेयव्वा ।
भागा असंखिया खलु थीणद्धित्तिगाणभिच्छाणं ॥९४३॥
णो भागो सेसाण धुवबधीणं इगूणचत्ताए ।
परधाऊसासाण ओरालियवायरतिगाणं ॥९४४॥
एगिंदियजोगाअसुहत्तमपचदसण्ह अत्थि सखंसा ।
तित्थस्स असखसो हवेज्ज सेसाण सखंसो ॥९४५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधमेशानवैक्रियकाययोगवैक्रिय-
मिश्रकाययोगाभिधासु मार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयलक्षणस्य
प्रकृत्यष्टकस्य बन्धकानामसंख्येयबहुभागाः सन्ति, यतो मार्गणास्वासु प्रकृत्यष्टकस्यास्य बन्धका
मिथ्यादृष्टिजीवा वर्तन्ते, ते च सम्यग्दृष्टिम्योऽसंख्येयगुणा भवन्ति । असंख्याततमो भागः पुनस्त-
द्वन्धकानां विज्ञेयः । 'णो' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकादिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशन्मतिज्ञाना-
वरणीयादिभुवन्ध्यप्रकृतीनां पराघातोच्छ्वासौदारिकशरीरत्रादरत्रिकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां च
बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानैः सर्वैर्जीवैर्वध्यमानत्वादासाम् । 'एगिंदिय'
इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरनामदुःस्वर-
वर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यात-
बहुभागेषु वेदयितव्याः, तद्वन्धकाः पुनः संख्याततमे भागे, योजना प्राग्बद् । 'तित्थस्स'
इत्यादि, जिननामकर्मणो बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा अधिगन्तव्याः, यतो मार्गणास्वासु

तीर्थकृत्नामकर्मबन्धका जीवाः केचन सम्यग्दृश एव भवन्ति, ते च पुनरितरेभ्योऽसंख्यात-
तमभागेऽप्राप्यन्ते । परमत्रायं विशेषः—भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्करूपासु तीर्थकरनामकर्मबन्धा-
भावात् तद्भागाविचारणा न विधेया । 'सेसाण' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वय-
मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गमंहननपट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विक्रसस्थिर-
पट्कदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयस्त्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे वर्तन्ते, शेषाश्च
संख्येयतमेषु भागेषु तद्वन्धका अवसेयाः, भावना प्राग्बदवसेया ॥९४३-५॥

अथाऽऽनतादिनवमग्रैवेयकान्तत्रयोदशमार्गणास्त्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

तेराणयाद्गोसु ण भागो धुवबधिऊणचत्ताए ।

परउरलदुगपणिदियपरघाऊसासतसचउयकाण ॥९४६॥ (गीतिः)

छअसायाइपुमपढमसंघयणागिइसुखगइउज्जाणं ।

सुहगतिगरा य सखिबभागा सेसाण संखसो ॥९४७॥

(प्रे०) 'तेराणयाद्गोसु' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽप्युतनवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदश-
मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशद्ब्रुवन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौ-
दारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो
नास्ति, मार्गणास्वासु सर्वैर्जीवैः सर्वदा बध्यमानत्वादासाम् ।

'छअसायाइ' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराशुभायशःकीर्तिपुरुषवेदप्रथम-
संहननप्रथमसंस्थानशुभखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयबहु-
भागेषु विद्यन्ते, भावना पुनरेवम्—असातवेदनीयादिप्रकृतिपट्कबन्धकालस्य सातवेदनीयादि-
प्रकृतिपट्कबन्धकालतः संख्येयगुणत्वेन सातवेदनीयादिप्रकृतिपट्कबन्धकापेक्षयाऽसातवेदनीयादि-
प्रकृतिपट्कबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते । मार्गणास्वासु मिथ्यादृष्टिभ्यः सम्यग्दृष्टयो जीवाः संख्ये-
यगुणा वर्तन्ते, ते च पुरुषवेदादिप्रकृतीरेता निरन्तरं बध्यन्ति । तद्वन्धकाः पुनः संख्याततमे
भागे बोध्याः । 'सेसाणं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य
प्रकृत्यष्टकस्य सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीनपुंसकवेदद्वयसंहननपञ्चकसंस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभ-
यशःकीर्तिदुर्मगदुःस्वरानादेयजिननामनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्येयतमे
भागे ज्ञातव्याः, भावना पुनरेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्य दुर्मगत्रिकस्य च बन्धका
मिथ्यादृष्टयो मुख्यतया भवन्ति, ते च सम्यग्दृशा संख्येयतमभागे वर्तन्ते, प्रस्तुतमार्गणासु सम्यग्दृशो
मिथ्यादृष्टिभ्यः संख्यातगुणा भवन्तीति भावः । जिननामकर्मबन्धका जीवा मार्गणास्वासु जिननाम-
सचाधिरहितेभ्यो जीवेभ्यः संख्याततमभागप्रमिता एव विद्यन्ते, तथा शेषसातवेदनीयादिबन्धकालस्य
तत्प्रतिपक्षासातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकालमपेक्ष्य संख्येयतमभागप्रमाणत्वेन सातवेदनीयादिप्रकृति-
बन्धकाः संख्येयतमभागे प्राप्यन्ते । शेषाः संख्येयबहुभागेषु तद्वन्धका बोद्धव्याः ॥९४६-७॥

माग्रतं पञ्चस्वनुत्तरमार्गणाग्रतःप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयितुमाह—

पणऽणुत्तराहारागदुगेषु छण्हं असायपमुहाण ।

सखसा सखसो जिणसायाईण एणणेसि ॥९४८॥

(प्रे०) 'पण' इत्यादि, पञ्चस्वनुत्तरमार्गणास्वाहारकद्विके च पण्णाममातवेदनीयशोकाऽग्रन्य-
स्थिराऽणुमाऽयशःक्रीतिरूपाणां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयेषु बहु भागेषु वर्तन्ते । शेषाः पुनरग्रबन्धकाः
संख्येयतमे भागे वेदयितव्याः । 'जिण' इत्यादि जिननाममातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःक्रीति-
रूपाणां ममाना प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागेऽवसेयाः, संख्येयबहुभागेषु च तदग्रबन्धकाः ।
'णऽणणेसि' इत्यादि, पञ्चानुत्तरसुरेषु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जशर्पैकोनचत्वारिंशद्-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजन्यौदारिकद्विकवर्जभनाराचसंहननममचतुरम्भ-
मस्थानमनुष्यानुर्वीशु नखगतित्रयचतुष्कसुभगत्रिरपराधातोच्छ्वासमोर्चगोत्ररूपाणामेकोनविंशतिप्रकृ-
तीनां च बन्धकानां भागो नास्ति । आहारकद्विके पुनर्मनुष्यपञ्चकमध्यमरूपायाष्टकवर्जा उप-
युक्तप्रकृतयस्तथा देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतयश्चेति नवचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकानां भागप्ररूपणा
नास्ति, अत्र सर्वत्र हेतुः प्राग्वद् भावनीयः ॥९४८॥

अथ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायासुत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् कथयितुकाम आह—

धुववधीणं जेया पज्जत्तपणिदिये असखसा ।

तित्थाहारदुगाण असखभागो मुणेयव्वो ॥९४९॥

चउवीसाए णारगपाउग्गाण हवेज्ज सखसा ।

सखेज्जइमो भागो बायालीसाअ सेसाण ॥९५०॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका
असख्यातबहुभागेषु विद्यन्ते, मार्गणायामस्यां प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेद कृत्वोपरितनगुणस्थान-
केषु वर्तमानानां जीवानामपेक्षया तदितरजीवानामसंख्येयगुणत्वात् । असंख्येयतमे भागे च तदग्रबन्धका
वोद्व्याः । 'तित्थाहार' इत्यादि, जिननामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येय-
तमे भागेऽवमातव्याः, मार्गणायामस्यां प्रकृतित्रयस्यास्य बन्धकत्वेन सम्यग्दृष्ट्यादयो वर्तन्ते, तेषां
च मार्गणागतशेषजीवानपेक्षयाऽसंख्येयतमभागे वर्तमानत्वात् । असंख्येयेषु भागेषु पुनस्तदग्रबन्धका
भवन्ति । 'चउवीसाए' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंभकवेदनरद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रिय-
जातिदृष्टकमस्थानाशुभखगतित्रयचतुष्काऽस्थिरपट्कपराधातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपाणां नरकप्रायो-
ग्याणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, संख्येयतमे भागे च तदग्रबन्धकाः ।
'सखेज्जइमो' इत्यादि, मातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयैकैन्द्रियादिजाति-
चतुष्कादारिकद्विकसदनपट्कसंस्थानपञ्चकतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयशुभविहायोगतिस्थिरपट्कस्था-

वरचतुष्कानपोधोतोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा अवसा-
तव्याः, शेषाः पुनः संख्येयबहुभागेषु तदबन्धका बोध्याः, उभयत्र भावना पूर्ववद् विधेया
॥९४९-५०॥ इदानीं पर्याप्तत्रसादिभागणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धविधायिनां भागान् दर्शयति-

ध्रुवबंधीण असंख्यभागा पञ्चतसदुवयचक्षुसु ।

तित्थाहारदुगाण असंख्यभागो मुण्येवो ॥९५१॥

एगिदियजोग्गअमुहतमअठारसुरलाण संखसा ।

संखंसो सेसाणं सगचत्ताए परं णयणे ॥९५२॥

आसण्णद्धंसो तिरिणिरयविउवदुगदुजाइउरलाण ।

परधाऊसासाणं तसथावरचउगकुसरखगईण ॥९५३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'ध्रुवबंधीणं' इत्यादि, पर्याप्तत्रमवचनौघाऽसत्यामृषावचनचक्षुर्दर्शनरूपासु चतसृषु मार्ग-
णासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातबहुभागेषु विज्ञेयाः । तदबन्धकाः पुनर-
संख्येयतमे भागे, हेतुस्त्वत्र पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावज्ञेयः । 'तित्थाहार' इत्यादि, जिननामा-
हारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते असंख्येयबहुभागेषु चाऽ-
बन्धकाः, मार्गणास्वासु जिननामबन्धकानामहारकद्विकबन्धकाऽप्रमत्तयतीर्त्तं-चेतरेभ्यो जीवेभ्यो-
ऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । 'एगिदिय' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकैन्द्रिय-
जातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टादशानामेकैन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमप्रकृ-
तीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु विज्ञेयाः, अबन्धकाः पुनः संख्याततमे
भागे ज्ञेयाः । 'संखंसो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यनरकगतित्रय-
द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपदकसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यनरकानुपूर्वीत्रय-
खगतिद्विकत्रयदशकदुःस्वरातपोधोतपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां सप्तचत्वारिंशच्छेषप्रकृतीनां
बन्धकाः संख्येयतमभागप्रमाणा वेदयितव्याः, संख्यातबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । भावना पुन-
रुभयत्र प्राग्वदधिगम्या । अत्र समापतन्तीमतिप्रमत्तिमपाकर्तुं 'पर' मित्यादिनां विशेषं दर्शयति-
चक्षुर्दर्शनमार्गणायां तिर्यग्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकैकैन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकशरीरपराधातो-
च्छ्वासाऽशुभखगतिदुःस्वरत्रसचतुष्कस्थावरचतुष्कप्रकृतीनां बन्धकानामासन्नार्धभागो ज्ञेयः, अयमत्र-
भावः-चक्षुर्दर्शनमार्गणायां चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च द्विविधा जीवा वर्तन्ते, तेष्वपि प्रकृत-
मार्गणागतजीवानां साधिकार्धभागे पञ्चेन्द्रियजीवा वर्तन्ते, देशोनार्धभागे च चतुरिन्द्रिय-
जीवा वर्तन्ते, अत्र संख्यातबहुभागगताश्चतुरिन्द्रियजीवास्तिर्यग्विकैकैन्द्रियजातिस्थावरचतुष्करूपस्य
प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका विधन्ते, ब्रह्माऽपर्याप्तसाधारणैकैन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकालस्य शेष-
प्रकृतिबन्धकालतः संख्येयगुणत्वात्तथौदारिकशरीरनामः पुनस्ते सर्वेऽपि बन्धकाः, उक्तप्रकृत्यष्ट-
कस्य बन्धकतया पञ्चेन्द्रियजीवा अप्येकसंख्यभागताः प्राप्नुवन्ति । पञ्चेन्द्रियजीवेषु च संख्यात-

बहुभागप्रमाणा जीवा नरकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विककुसुमगतिपराघातोच्छ्वासमत्रमचतुष्क-
दुःस्वरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां बन्धका वर्तन्ते, पञ्चेन्द्रियेषु मुख्यवृत्त्या अमत्रिपञ्चेन्द्रिय-
जीवा विद्यन्ते तेषु बहुसंख्यातभागप्रमाणा जीवा नरकप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका इति कृत्वा, तथो-
क्तत्रयोदशप्रकृतिमध्याचरकद्विकवैक्रियद्विकवर्जशेषनवप्रकृतीनां पुनश्चतुरिन्द्रियजीवा अपि संख्यात-
तमभागप्रमाणा लभ्यन्ते, अतः प्रस्तुतमार्गणागतजीवानामासन्नार्धभागप्रमाणा जीवा आमां कथित-
प्रकृतीनां बन्धकतया प्राप्यन्ते, अत उक्तम् 'आसण्णहंसो' इति । अत्र देशोनाध्रप्रमाणत्व माधि-
काध्रप्रमाणत्व च स्वयं विज्ञेयम् ॥९५१-३॥

अथ मनःसामान्यादिमार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागं दर्शयति

ध्रुवबन्धोण असंखिधभागा पणमणतिवधणसण्णोसु ।

तित्थाहारदुगाणं असंखभागे मुणेयव्वो ॥९५४॥

णिरयतिरिबिजवदुगुरलपरधोऊसासिपचजाईण ।

तह कुल्लगइदुस्सरतसथावरचउगाण सयमुज्झा ॥९५५॥

सखसा सोगअरइणपुमअसायअजसाऽथिरदुगाण ।

हुडअणादेयदुहगणीआणियराण सखंसो ॥९५६॥

(प्रे०) 'ध्रुवबन्धोण' इत्यादि, ओघादिभेदेन पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु सत्यवचनोऽमत्यवचन-
मत्यामत्यवचनरूपासु तिसृषु वचनमार्गणासु सज्जिमार्गणायां चेति नवसु मार्गणासु मत्तवत्तारिंशद् ध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातबहुभागेषु ज्ञातव्याः, तद्बन्धकानां मिथ्यादृष्टिजीवानां प्रस्तुत-
मार्गणास्वसंख्यातबहुभागेषु वर्तमानत्वादिति । 'तित्था' इत्यादि, तीर्थकृत्नामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृति-
त्रयस्य बन्धका असंख्याततमे भागे ज्ञेयाः, यतो जिननामबन्धकाः केचन सम्यग्दृष्ट्य आहारकद्विक-
बन्धकाश्चाऽप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च प्रत्येकं मार्गणागतजीवानामसंख्याततमभागप्रमाणा विद्य-
न्ते । 'णिरय' इत्यादि, नरकद्विकतिर्यग्द्विकवैक्रियद्विकौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासजातिपञ्चकरूपाणां
चतुर्दशप्रकृतीनां तथाऽशुभलगतदुःस्वरत्रसचतुष्कस्थावरचतुष्करूपाणां दशप्रकृतीनां चेति सर्व
संख्यया चतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धकानां भागाः स्वयमूक्षाः, आसु मार्गणासु देवराशिः प्रधानः, उत
तिर्यगराशिः प्रधान इति सम्यक्परिज्ञानाभावात्, इदमुक्तं भवति—मार्गणास्वासु देवराशिः प्रधानमुत
तिर्यगराशेगिति सम्यग्निश्चयो नास्ति, एकतरंगशेः प्राधान्यप्रतिपादकध्वत्राऽनुपलम्भात्, तस्माद् यदि
प्रकृतमार्गणासु देवराशिः प्रधानः स्यात् तर्हि तत्र तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धकाः प्रभू-
ततया प्राप्नुयुः, यदि पुनः तिर्यगराशिः प्रधानः स्यात्, तस्मिन्नपि देवराजितः कर्मभूमिगततिर्यग्जीव-
राशिः प्रधानो भवेत्, तर्हि तदपेक्षया नरकद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिबन्धकानामाधिवयं लभ्येत । यदि
पुनस्तिर्यगराशि देवराशितोऽल्पतरः, तस्मिन्नपि यद्यकर्मभूमिजतिर्यगराशिः प्रधानः स्यात्, तर्हि
द्वीन्द्रियादिजातित्रयादिप्रकृतीनां बन्धका अल्पा अप्राप्नुयुः, अकर्मभूमिजतिर्यग्जीवानां देवप्रायोग्य-
प्रकृतिबन्धकत्वादिति यथासंभवं स्वयं प्रकृते ग्रन्थाविरोधेन भागविचारो विधेयः ।

‘संखंसा’ इत्यादि, शोकारतिनपुंसकवेदाऽसातवेदनीयायशःकीर्त्यस्थिराऽशुभहुण्डसंस्थानाऽनादेयदुर्भगनीचैर्गोत्रलक्षणानामेकादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, अप्रशस्तप्रकृति-बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ‘इथराण’ इत्यादि, उक्तातिरिक्तशेषप्रकृतिबन्धकाः संख्याततमे भागेऽवमातव्याः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयौदारिका-ङ्गोपाङ्गसहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वोद्वयसुखगतिस्थिरपट्कातपोद्योतोचैर्गोत्ररूपा एकत्रिंशदिति । कामाश्चित् सातवेदनीयादिप्रकृतीनां बन्धकालस्य प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धकालात् संख्येयगुणहीनत्वात् ॥९५४-६॥

अधुना वेदमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् भणितुकाम आदौ तावत्स्त्रीवेदपुरुष-वेदमार्गणयोराह

थोपुरिसेसु ण भागो णवावरणचउकसायविंधाण ।
णेया गुणतोसाए धुववधीण असखसा ॥९५७॥
सखंसाऽत्थि सुहमतिगवज्जेगवखारिहासुहतमाण ।
पंचदसणहोरालियपरधाऊसासबायरतिगाणं ॥९५८॥ (गीतिः)
तित्थाहारदुगाण विण्णेया वंधगा असखंसो ।
सखसो बोद्धव्वो सेसाण पचचत्ताए ॥९५९॥

(प्रे०) ‘थी’ इत्यादि, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलन-चतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणाद्वये वर्तमानैः सर्वैरेव ध्रुवनया वध्यमानत्वात्तामाम् । ‘णेया’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयाऽनन्तानुबन्धिप्रभृति-कपायद्वादशकभयजुगुप्सास्त्यानद्वित्रिकनिद्राद्विकतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माण-लक्षणानामेकोनत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयेषु भागेषु विद्यन्ते, मार्गणयोरनयोः प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदस्थानमधिगतेभ्यो जीवेभ्योऽन्येषामेतत्प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयगुण-त्वात् । शेषाः पुनरबन्धकाः प्रकृतीनामासामसंख्येयतमे भागे बोद्धव्याः ।

“संखंसा” इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरतिनपु संकवेदतियग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डक-संस्थानस्थावरदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीना-मौदारिकशरीरपराधातोच्छ्वासावादरत्रिकरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु सन्ति । अत्र सूक्ष्मत्रिकस्य वर्जनं किमर्थं कृतम् ? इति चेदुच्यते—एतन्मार्गणाद्वये ज्योतिष्कदेवराशेः प्राधान्यं वर्तते, तस्या च संख्यातबहुभागप्रमाणा देवा वादरपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्वचन्तीति कृत्वा तद्वर्जनं ज्ञेयम् ।

‘तित्था’ इत्यादि, तीर्थकृत्नामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमभागे विज्ञेयाः, अबन्धकाश्चासंख्येयतमेषु भागेषु, मार्गणागतैकाऽसंख्येयभागमात्रसम्यग्दृष्ट्यादिभिरेव तामां वध्यमानत्वात् । “संखंसो” इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यनरक-

गतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कोदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यनरकानु-
पूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसस्थिरपट्कसूक्ष्मत्रिकदुःस्वरातपोद्योतोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां
बन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति, आसां प्रतिपक्षभूतयादरपर्याप्तिकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां
संख्येयगुणत्वात् ॥९५७९॥

सम्प्रति नपुंसकवेदमार्गणायां तत्साम्येन क्रोधमार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागा-
नाह

णत्थि णपुमकोहेसुं णवावरणचउकसायविग्घाणं ।

ओधव्व जाणियव्वा सेसाण अट्ठणवतीए ॥९६०॥

(प्रे०) 'णत्थि' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधाख्ययोर्मार्गणयोर्ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्क-
संज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणयोरनयोः
स्थितैः सर्वैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वादासाम् । 'ओधव्व' इत्यादि, शेषाणामष्टनवतिप्रकृतीनां
बन्धका ओधवदभिधेयाः, तदेवम्—उपयुक्ताष्टादशप्रकृतिवर्जशेषैकोनत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिबन्धका
औदारिकशरीरनामकर्मबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागेषु वर्तन्ते, तदबन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे । वैक्रियपट्का-
ऽऽहारिकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, अबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागेषु । असात-
वेदनीयशोकारतिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थावरनवकनीचैर्गोत्ररूपा-
णामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमानामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु विद्यन्ते, संख्याततमे भागे
चाऽबन्धकाः, । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यद्विकजातिचतुष्कोदारिकाङ्गोपाङ्गसंस्थान-
पञ्चकसंहननपट्कखगतिद्विकत्रमदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्र-
कृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे सन्ति, संख्याततमेषु च भागेषु तदबन्धकाः । भावना पुनरि-
हौघवद् विधेया ॥९६०॥

अथ मानादिमार्गणास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकसत्कभागान् कथयति

एमेव माणमायालोहेसु हवेज्ज णवरि ओधव्व ।

जहकमसो एगदुचउसंजलणाणं भुजेयव्वा ॥९६१॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, मानमायालोभलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्वर्जोत्तरप्रकृति
बन्धकानां भागा नपुंसकवेदमार्गणावदेव भवन्ति । परं संज्वलनचतुष्कविषये यो विशेषस्तं 'णवरि'
इत्यादिना दर्शयति—मानमार्गणायां संज्वलनक्रोधबन्धकाः, मायामार्गणायां संज्वलनक्रोधमान-
बन्धकाः, लोभमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कबन्धका ओधवदवसेयाः, अनन्तबहुभागप्रमाणा इत्यर्थः ।
एतन्मार्गणात्रये क्रमेण संज्वलनक्रोधस्य संज्वलनक्रोधमानयोः संज्वलनचतुष्कस्य चाऽबन्धकानां
संख्येयप्रमाणानां प्राप्यमाणत्वात् ॥९६१॥

इदानीमवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयति—

येया अणतभागो अवेअकसायकेवलदुगेसु ।

सग्गतखाइएसु य सप्पाउग्गाणि सव्वेसि ॥९६२॥

(प्रे०) 'येया' इत्यादि, अवेदाऽकसायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्व-
मार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वाभामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनां बन्धका अनन्ततमे भागेऽवसेयाः । तद्यथा—
अवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्केसंज्ञलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकमातवेदनीययशःकी-
र्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणामेकविंशतिप्रकृतीनां बन्धका नवमादिगुणस्थानगता भवन्ति, ते च मार्गणायाम-
स्यांतदबन्धकेभ्यः सिद्धादिभ्योऽनन्ततमभागे वर्तन्ते । अकासायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमार्गणासु केवलं
सातवेदनीयमेव बध्यते, तद्बन्धकाश्चात्र यथासंभवमेकादशादित्रयोदशगुणस्थानस्था एव, ते च
सिद्धानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते । सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्मिथ्यात्वादिप्रकृत्यष्टकवर्ज-
ज्ञानावरणीयादीनामेकोनचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनु-
ष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकममचतुरस्रसंस्थानवर्जभनाराचसहनन-
देवमनुष्यानुपूर्वोद्वयसुखगतित्रयमदशकास्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा-
णामष्टात्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां च बन्धका अनन्ततमे भागे बोद्धव्याः, मार्गणयोरनयोः स्थितेभ्यः
सिद्धादिभ्यः प्रकृतीनामासां बन्धविधायिनामनन्ततमे भागे विद्यमानत्वादिति ।

अथ मतिज्ञानादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान्नाह

छण्हं सायाईण तिणाणऽवहिउवसमेसु सखसो ।

छण्ह असायाईणं सखियमागा मुणेयव्वा ॥९६३॥

अत्थि असंखंसो सुरविउवाहारदुगलित्थणामाणं ।

भागोऽत्थि असंखेज्जा सेसाण अट्टवेण्णाए ॥९६४॥

(प्रे०) 'छण्हं' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानाऽवधिदर्शनोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु सातवेद-
नीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा ज्ञातव्याः,
संख्येयबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । 'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभायशः
कीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणा ज्ञातव्याः, संख्याततमभागप्रमाणा-
श्चाऽबन्धकाः । 'अत्थि' इत्यादि, प्रकृतमार्गणासु सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामकर्मरूपस्य
प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका असंख्येयतमे भागेऽवसेयाः तदित्थम्—मार्गणास्वासु सुरद्विकवैक्रियद्विक-
रूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकास्तिर्यग्मनुष्या एव वर्तन्ते, न तु देवनारकाः, ते च सम्यग्दृष्टि-
देवनारकेभ्योऽसंख्येयतमभागे वर्तन्ते, त्रिगतिगतसम्यग्दृष्टिभ्यः सम्यग्दृष्टिदेवानामसंख्येय-
गुणत्वात् । आहारकद्विकबन्धकाः पुनरप्रमत्तसंयता एव भवन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेन मार्गणा-

स्वासु वर्तमानेभ्योऽन्यजीवेभ्योऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जिननामकर्मबन्धकास्तदि-
तरेभ्योऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते । 'भाग' इत्यादि, मतिज्ञानावर्णीयप्रभृत्येकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजान्यौदारिकद्विक्रममचतुरस्रसंस्थानवर्धम-
नाराचसहननमनुष्यानुपूर्वीसुखगतित्रयचतुष्कसुभगसुस्वरादेयपगघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चाध्रुव --
वन्धिप्रकृतय इति संमीलितानामष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धका अमख्यातबहुभागप्रमिताः समधि-
गम्याः मार्गणास्वासु प्रकृतीनामामबन्धकेभ्यो जीवेभ्योऽपरेषां तद्वन्धविधायिनामसंख्येय-
गुणत्वात् । शेषास्त्वबन्धका अमख्याततमे भागेऽधिगम्याः ॥९६३॥

अधुना मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोरार्युर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान्निरूपयितुमना आह--
मणणाणसजमेसु णेया सायाइगाण धण्ह तथा ।

तित्थाहारदुगाण सखसोऽण्णाण सखांसा ६६५॥

(प्रे०) 'मणणाण' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोः सातवेदनीयहास्यरतिस्थिर-
शुभयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपट्कस्य तीर्थकरनामाहारकडिकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य च बन्धकाः
सख्याततमभागे ज्ञेयाः, यतः सातवेदनीयादिप्रकृतिपट्कबन्धकालस्यैतद्विगोधिप्रकृतिबन्धकाला-
पेक्षया संख्येयगुणहीनत्वादाहारकडिकजिननामबन्धार्हजीवानां मार्गणागतजीवानां संख्येयभाग-
प्रमाणत्वाच्च । 'अणणाण' इत्यादि, स्वबन्धार्हणामेकत्रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनामसातवेदनीयशोका-
ऽरतिपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक्रममचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रयचतुष्कसुभग-
सुस्वरादेयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशत्यध्रुवन्धिप्रकृतीनां च
बन्धकाः सख्यातबहुभागप्रमाणा अवसेयाः, भावना पुनरिह स्वयमाधेया, सुगमप्रायत्वात्, शेषाः
पुनः संख्येयतमभागप्रमाणा अबन्धका बोद्धव्याः ॥९६५॥

इदानीं मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोरार्युर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् प्ररूपयिषुराह--

णत्थि दुअण्णाणेषु छायालीसधुववधिपयडीण ।

ओधव्व जाणियव्वो सेसाण सत्तसट्ठीए ॥९६६॥

(प्रे०) 'णत्थि' इत्यादि, मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाभिधयोर्मार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयवर्जशेषपट्-
चत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतिबन्धकानां भागो नास्ति । 'ओधव्व' इत्यादि शेषाणां सप्तपष्टिप्रकृतीनां
बन्धका ओघवदवभातव्याः ॥९६६॥

साम्प्रतं विभङ्गज्ञानमार्गणायामार्युर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दिदर्शयिषुराह--

धुववधिछत्ताए विभगणाणम्मि णो असखंसा ।

णेया मिच्छोरालियवरघाऊसासवायरतिगाण ॥९६७॥ (गीति०)

हचिरे असखभागो विगलसुहमतिगविउव्वछक्काणं ।

देवव्व जाणियव्वो सेसाण अट्टवत्ताए ॥९६८॥

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयवर्जपट्चत्वारिंशद्भ्रुवन्धि-
प्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणागतैः सर्वैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात्तात्ताम् । 'असंख्यंसा'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरपराधातोच्छ्रान्नादत्रिकरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धका असं-
ख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः, यतो मिथ्यात्वमोहनीयं मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति, न तु साम्बादनिनः, मिथ्या-
दृष्टयश्चात्र सास्वादिनामपेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते, तथा मार्गणायामस्यां सुग मनुष्यादिभ्यो-
ऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते ते चांदारिकशरीरनामपराधातादिप्रकृतीनां बन्धकाः सदैव सन्ति ।
“हृदिरे” इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिषूक्ष्मत्रिकसुरद्विक-
वैक्रियद्विकनररूद्विकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा भवन्ति, प्रकृतीना-
मासामेतन्मार्गणावतिभिस्तिर्यग्मनुष्यैरेव बध्यमानत्वात् तेषां चैतन्मार्गणागतानां जीवानामसंख्येय-
तमभागप्रमाणत्वाच्च । “देवञ्च” इत्यादि, शेषाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धका देवमार्गणावद-
भिधेयाः, तदेवम्—असातवेदनीयशोकाः तिनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरदुः-
स्वरवर्जास्थिरपञ्चकनीचैर्गोत्रलक्षणानामेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्या-
तेषु भागेषु वर्तन्ते, संख्याततमे भागे चाऽबन्धकाः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्मगति
पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रयस्थिरपट्कदुःस्व-
रातपोधोतोचैर्गोत्ररूपाणां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे विद्यन्ते, संख्यातबहु भागेषु च
तदबन्धकाः ॥९६७-८॥

इदानीं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् विचारयन्नाह—

समइअछेएसुं णो चिअ भागो सोलसण्ह ताण भवे ।

जाणइत्थि तइअभगो मणणाणञ्च अवसेसाण ॥९६८॥

(प्रे०) “समइअ” इत्यादि, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयाभिधयोर्मार्गणयोर्यामां षोडशप्रकृ-
तीनां ‘सर्वे बन्धकाः’ इति तृतीयभङ्गो भवति तासामत्र बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणागतमर्वजीवै-
रनवरतं बध्यमानत्वादिति । ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभोचैर्गोत्राऽन्तराय-
पञ्चकलक्षणाः षोडशप्रकृतयः, । “मणणाणञ्च” इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तायुर्वर्जानां प्रकृतीनां बन्धका
मनःपर्यवज्ञानमार्गणावदवमातव्याः, तद्यथा—सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिजिननामाहारक-
द्विकरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागेऽवसेयाः, संख्यातबहुभागेषु चाऽबन्धकाः ।
निद्राद्विकमंज्वलनक्रोधमानमायाभयजुगुप्सतैजसकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपवातनिर्माणरू-
पाणां षोडशप्रकृतीनामसातवेदनीयशोकाऽरतिपुरुषवेददेवगतिऽञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकममचतुर-
स्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमुखगतित्रयचतुष्कसुभगसुस्वरादेयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्रान्नामरू-
पाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु बोद्धव्याः, अबन्धकाः पुनः संख्येयतमे भागे ।

अथ परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां भागानाह-

परिहारे सखसा छअसायाईण अत्थि सखसो ।

तित्थयरारहारकुगछसायाईण ण सेसाण ॥९७०॥

(प्रे०) “परिहारे” इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामसातवेदनीयशोकारत्यस्थिरा-
ऽशुमाऽयशःकीर्तिरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे भागे
चाऽबन्धकाः । “अत्थि” इत्यादि, जिननामाहारकद्विकसातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्ति-
रूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अबन्धकाश्च संख्यातबहुभागेषु, उभ-
यत्र हेतुः प्राग्गीत्याऽनुमन्धेयः । ण’ इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजु-
गुप्मातैजसकर्मणगीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्यतरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिशद्भुववन्धि-
प्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रसचतुष्क-
सुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशाद्भुववन्धिप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति,
अधिकृतमार्गणार्थैः सर्वजीवैरनवरतं बध्यमानत्वात् ॥९७०॥

इदानीं देशविरतिमयमार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां भागानाह

देसम्मि असखसो जिणस्स सायाइगाण छह्हत्थि ।

सखसो सखसा छअसायाईण णत्थि सेसाणं ॥९७१॥ (गीति)

(प्रे०) “देसम्मि” इत्यादि, देशविरतिमार्गणायामां तीर्थकृत्नामकर्मणो बन्धका असंख्येय-
तमे भागे वर्तन्ते, कुतः ? इति चेद्, उच्यते-अत्रैतत्प्रकृतिवन्धार्हा मनुष्या एव, ते च मार्गणायामस्याम-
संख्येयतमे भागे वर्तन्त इति कृत्या । “सायाइगाण” इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभ-
यशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपट्कस्य बन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा वर्तन्ते । “सखसा” इत्यादि,
असातवेदनीयशोकारत्यस्थिराऽशुमायशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिपट्कस्य बन्धकानां संख्यातबहुभागा
विद्यन्ते, शेषभाग उक्तत्रयोदशानामबन्धकानां द्वेयः । “णत्थि” इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यान-
द्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा द्वादशप्रकृतीविहाय शेषाणां पञ्चत्रिशद्भुव-
वन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतित्रस-
चतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामष्टादशाद्भुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो
नास्ति, एतन्मार्गणावर्तिभिः सकलजीवैः प्रकृतीनामासां सततं बध्यमानत्वात् ॥९७१॥

अथ सूक्ष्ममम्पराययथाख्यातभयमाऽविरतमार्गणासु कृष्णादिसेध्यामार्गणासु चाधुर्वर्जोत्तर-
प्रकृतिबन्धकानां भागानाह

सुहमे ण अहक्खाये सखसाऽत्थि धुवकेणचत्ताए ।

अजयासुहलेसासु ण ओधव्वऽण्णपन्नसमरीए ॥९७२॥

(प्र०) 'सुहमे' इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां भागप्ररूपणा नास्ति । 'अहक्त्वाये' इत्यादि, यथाख्यातमार्गणायां सातवेदनीयबन्धकाः संख्यातबहुभागे वर्तन्ते, सयोगिकेवल्लिनां मार्गणायामस्यां संख्यातबहुभागेषु वर्तमानात्वात्, तेषां च सातवेदनीयस्य बन्धकत्वात् । अबन्धकाः संख्यातैकभागे वर्तन्ते, अयोगिकेवल्लिनामबन्धकत्वात् । 'अजया' इत्यादि, असयमकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणासु चतसृषु भागणासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकं वर्जयित्वा शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति । 'ओधन्व' इत्यादि, शेषाणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धका ओधवदभिधेयाः, तदित्थम्—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कौ दारिकशरीरनामलक्षणस्य प्रकृतिनयकस्य बन्धकानामनन्तबहुभागा वर्तन्ते, अनन्ततमभागश्च तदबन्धकानाम् । वैक्रियपट्कजिननामबन्धका अनन्ततमभागप्रमाणाः, तदबन्धकाश्चाऽनन्तबहुभागप्रमाणाः, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानदुःस्वरवर्जस्थारनवकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु ज्ञेयाः, संख्याततमभागे च तदबन्धकाः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुषवेदमनुष्यगतिद्विन्द्रियादिजातिचतुष्कौ दारिकाज्जोपाङ्गसहननपट्कसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, संख्यातबहुभागेषु च तदबन्धकाः, भावना पुनरत्रौधानुसारेण कार्या ॥९७२॥

अधुना तेजोलेश्यामार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह—

तेजस एगतीसाधुवपरधूससवायरतिगणं ।
गतिय असंखा भागा हवेज्ज सोलधुववधीणं ॥९७३॥
एगिदियजोगअसुहतमपचदसउरलाण सखंसा ।
तित्याहारदुगाण असंखंसोऽण्णाण सखसो ॥९७४॥

(प्र०) 'तेजस' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्यानावरणचतुष्करूपाः षोडशप्रकृतीर्विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनां पराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य च बन्धकानां भागो नास्ति । 'असंख' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतीनां बन्धका असंख्यातेषु भागेषु सन्ति, यतो मार्गणायामस्यां मिथ्यादृष्टिजीवा इतरेषामपेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते, ते च सर्वे ध्रुवबन्धिप्रकृतीरेता बध्नन्ति । 'एगिदिय' इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरदुःस्वरवर्जास्थिरपञ्चकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभतमपञ्चदशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामश्च बन्धकाः संख्येयेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे च भागे तदबन्धकाः, भावना त्वित्थम्—प्रस्तुतमार्गणायां देवराशिः प्रधानः, मार्गणागतजीवेषु देवानां संख्यातबहुभागवर्तित्वात्, ते चौदारिकदेहं निरन्तरं बध्नन्ति, तथा तेषां चाशुभतमस्थानमेकेन्द्रियप्रायोग्यम्, अतः तत्प्रायोग्य-

बन्धकालस्तदितरबन्धकालापेक्षया संख्यातगुणः, तस्मादौदारिकशरीरम्यैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीनां च बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते । 'नित्य' इत्यादि, तीर्थकृत्नामाहारकद्विकलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा ज्ञेयाः, अत्रैतत्प्रकृतित्रयबन्धयोग्यतावतां तदितेरस्योऽसंख्येयगुणहीनत्वात् । 'ऽण्णाण' इत्यादि, मातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवगतिमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकमंहननपट्कसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वी-खगतिद्विकत्रसस्थिरपट्कदुःस्वरातपोधोतोचैर्गोत्ररूपाणां सप्तत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतम-भागप्रमिता विद्यन्ते, संख्यातबहुभागप्रमाणाश्चान्वधकाः, घटना प्राग्वत्कार्या ॥९७३-४॥

सम्प्रति पञ्चलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयन्नाह--

पञ्चमाए लेसाए भागो ण हवेज्ज एगतीसाए ।

धुवबन्धीण पणिदियपरधूसासतसचउगाणं ॥९७५॥

सखेज्जइमो भागो छण्ह सायाइगाण वोढव्वो ।

छण्ह असायाईण णायव्वा सखिया भागा ॥९७६॥

सोलधुवपुमसुरविउवडुगपढमागिइसुखगइउच्चाणं ।

सुहगतिगस्स असखियभागाऽण्णोसि असखंसो ॥९७७॥

(प्रे०) 'पञ्चमाए' इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायामिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्ज-शेषैकत्रिंशद्भुवबन्धप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति, एतन्मार्गणास्थैः सर्वैर्जीवैः मततं बध्यमानत्वात्तामाम् ।

'संखेज्जइमो' इत्यादि, सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृ-तीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागेऽधिगम्याः, अबन्धकाश्च संख्यातबहुभागेषु, हेतुस्तु पूर्ववज्ज्ञा-तव्यः । 'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु ज्ञातव्याः, संख्याततमे च भागे तदबन्धकाः । 'सोल' इत्यादि, मिथ्या-त्वमोहनीयस्त्यानर्द्धिद्विकोऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करू-पाणां षोडशप्रकृतीनां पुरुषवेदसुरद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगत्युच्चैर्गोत्रसुभगसुस्वरादेय-रूपाणामेकोदशप्रकृतीनां च बन्धका असंख्येयतमबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, षोडशभुवबन्धप्रकृ-तीनां बन्धका मिथ्यादृष्टयो मार्गणागतजीवेष्वासंख्येयबहुभागेषु वर्तन्ते, तथैकादशाभुवबन्धप्रकृतीनां बन्धकतया मार्गणागतजीवानामसंख्येयबहुभागेषु वर्तमानास्तिर्यञ्चः मन्तीति कृत्वोक्तप्रमाणाः कथिताः । तदेबन्धकाश्चाऽसंख्याततमभागेऽवसेयाः । 'ऽण्णोसि' इत्यादि, नपुंसकस्त्रीवेदद्वयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयो-दारिकद्विकाऽऽहारकद्विकमंहननपट्कप्रथमसंस्थानवर्जसंस्थानपञ्चकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयाऽशुभविहा-योगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयोधोतजिननामनीचैर्गोत्ररूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, यतो हि प्रकृतमार्गणागताऽसंख्येयबहुभागप्रमाणतिर्यग्भिरेताः प्रकृतयो न बध्यन्ते ।

प्रस्तुतमार्गणागतानां तेषां देवगतिप्रायोग्यबन्धकत्वात् , तदवन्धकाः पुनरसंख्यातबहुभागप्रमाणा अवसातव्याः ॥९७५-७॥

साम्प्रत शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिमन्धकानां भागान् विभणिषुराह

ध्रुवत्रधिपुमुच्चाणं सोलसणामाण सुरकुगाईणं ।

पयडीण य सुवकाए असंखभागा मुण्येयव्वा॥९७८।

सखेज्जइमो भागो छण्हं सायाइगाण सखसा ।

छण्हं असायाईण असखभागोऽत्थि सेसाण ॥९७९॥

(प्रे०) 'ध्रुवत्रधि' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सप्तवत्पारिंशद्भ्रुववन्विप्रकृतीनां पुरुष-वेदोच्चैर्गोत्रप्रकृतिद्वयस्य सुरद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकममचतुरस्रमस्थानशुभलगतपराधातो-च्छ्वासत्रमचतुष्कसुभगत्रिकरूपाणां षोडशदेवप्रायोग्यनामप्रकृतीनां च बन्धका असंख्यातबहुभागेषु जातव्याः, भावनाविविक्तेष्वेवम्-प्रस्तुतमार्गणायां तिर्यग्ग्राशिः प्रधानो वर्तते, तस्मिन्नपि मिथ्या-दग्गोः प्राधान्यमस्ति. शुक्ललेश्यामनजीवानामसंख्यातबहुभागप्रमाणैस्तैर्जीवैरेताः प्रकृतयो निरन्तरं वध्यन्ते, अतोऽत्र निरुक्तप्रकृतिमन्धकानामसंख्यातबहुभागा उक्ता इति । 'संखेज्जइमो' सात-वेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, एत-त्प्रतिपक्षभूतप्रकृतिमन्धकालापेक्षया प्रकृतीनामासां बन्धकालस्य संख्यातभागमात्रत्वात् । 'संखंसा' इत्यादि, अमातवेदनीयशोकाऽऽरत्यास्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिलक्षणानां पण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, एतत्प्रतिपक्षप्रकृतिमन्धकालापेक्षया प्रकृतप्रकृतिमन्धकालस्य संख्येयगुण-त्वात् । 'असंखभागा' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका असंख्याततमे भागे विद्यन्ते, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं मनुष्यद्विकमौदारिकद्विकमाहारकद्विकं संहननपट्कं द्वितीयादिमंस्थानपञ्चक्रमशुभलगतिर्दुर्भगत्रिकं जिननाम नीचैर्गोत्रं चेति पञ्चविंशतिः, भावना पुनरिहेत्यं विज्ञेया-प्रस्तुतमार्गणायां जीवा असंख्यातसूचिश्रेणिगतप्रदेशप्रमाणाः सन्ति, यतस्तेष्व-संख्यबहुभागप्रमाणास्तिर्यग्जीवा वर्तन्ते, अत्र जिननामबन्धका अद्वापल्योपमस्याऽसंख्याततमभाग-गतसमयप्रमितदेवाः संख्यातप्रमाणमनुष्याश्च विद्यन्ते, अद्वापल्योपमाऽसंख्याततमभागगतसमयास्त्व-संख्यातसूचिश्रेणिगतप्रदेशापेक्षयाऽसंख्यातभागप्रमाणा एव, अतोऽसंख्याततमभागे जिननामबन्धकाः प्राप्यन्ते । आहारकद्विकस्य बन्धका अप्रमत्तसंयता वर्तन्ते, ते च मार्गणागतजीवापेक्षयाऽसंख्यतमे भागे वर्तन्ते । मनुष्यद्विकादिशेषप्रकृतीस्तु देवा एव बध्यन्ति, ते चात्र शेषमार्गणागतजीवापेक्षया-ऽसंख्याततमे भागे सन्ति, प्रस्तुतमार्गणायां तिर्यग्भिन्नजीवानामसंख्याततमभाग एव सत्त्वात् , अतो निरुक्तभागे तद्मन्धका उक्ता इति । अत्र शेषभागाः पुनरवन्धकानां ज्ञेयाः ॥९७८-९॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यामार्गणायां मतान्तरं दर्शयति

अण्णे असंखभागा गुणयालीसध्रुववधिणीण तथा ।

णरउरलकुगपणिदियपरधाकसासतसचउवकाण ॥९८०॥ (गीति.)

छअसायाइसुआगिइखगइसुहगतिगपुमुच्चवहराण ।

सखसा सुरविज्वाहारदुगाण असंखसो ॥६८१॥

सेसाण संखमागो ।

(प्रे०) 'अण्णे' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिपराधातो-च्छ्वामत्रसचतुष्करूपाणामेकादश
प्रकृतीनां च बन्धका असंख्यातबहुभागेषु परे वदन्ति, तत्र परेषामिदमाकृतम्-शुक्ललेश्यामार्ग-
णायां प्रधानतया देवराशिः, शेषजीवापेक्षया हि सर्वे देवाः प्रकृतमार्गणायामसंख्यातगुणा वर्तन्ते, ते
चाधिकृतप्रकृतीरनवरतं वर्धन्ति, तस्मादत्राऽसंख्यातबहुभागेषु निरुक्तप्रकृतिबन्धकाः प्राप्यन्ते ।
'छअसायाइ' इत्यादि, असातवेदनीयाऽऽदिप्रकृतिपट्कस्य समचतुरस्रसंस्थानशुभखगतिशुभग-
त्रिकपुरुषवेदोच्चैर्गोत्रवत्तर्पनाराचसंहननरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्य च बन्धकाः संख्येयबहुभागेषु सन्ति,
असातवेदनीयादिप्रकृतिपट्कस्य भावना परमतेऽप्यनन्तगोक्तवद् विधेया । समचतुरस्रसंस्थानादि-
प्रकृत्यष्टकस्य तु भावना पुनरेवम्-प्रकृतमार्गणायां देवराशिः प्रधानोऽस्ति, तत्राऽपि सम्यग्दृष्टिदेव-
राशेः प्राधान्यमस्ति, ते हि संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, तथा ते सम्यग्दृष्टिदेवा एतत्प्रकृत्यष्टकमनवरतं
वर्धन्ति, अतः संख्यातबहुभागेषु प्रकृतप्रकृत्यष्टकबन्धका अभिहिताः । 'सुर' इत्यादि, सुरद्विक-
वैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां बन्धका अमंख्येयतमे भागेऽवसातव्याः, तद्यथा-अत्र
सुरद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकास्तिर्यङ्मनुष्या वर्तन्ते, आहारकद्विकस्य च केचनाऽप्रमत्तसंयता बन्धका
भवन्ति, प्रत्येकं च तेऽत्र देवराशिप्रधानत्वादसंख्येयतमे भागे प्राप्यन्ते, तस्मान्प्रकृतप्रकृतिबन्धका
निरुक्तभागेऽभिहिताः । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यात-
तमे भागेऽधिगन्तव्याः, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्क-
रूपा अष्टौ ध्रुवबन्धिप्रकृतयः सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीनपुंसकवेदद्वयद्वितीयादिसंहननपञ्चकद्वितीयादि-
संस्थानपञ्चकाऽशुभखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिदुर्भागत्रिकजिननामनीचैर्गोत्ररूपाश्चतुर्विंशतिरध्रुवबन्धि-
प्रकृतयश्चेति । अत्र सातवेदनीयादिप्रकृतिपट्कस्य भावना प्राग्वत्कार्या । जिननामविषये भावना पुनरे-
वम्-मार्गणायामस्यां परमतेन देवराशिः प्रधानतया स्वीकृतो वर्तते, देवराशौ हि सम्यग्दृष्टिदेवाः संख्या-
तबहुभागेषु वर्तन्ते, तेषु च जिननामबन्धकाः संख्याततमभागप्रमाणा एव सन्ति, अतो जिननामबन्ध-
कानां संख्याततमो भागोऽभिहितः । शेषप्रकृतीनां भावनाविधिस्त्वेवम् शुक्ललेश्यामार्गणायां परे
देवराशि प्रधानतया स्वीकुर्वन्ति, तत्राऽपि सम्यग्दृष्टिदेवाः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते संख्याततमे
भागे च मिथ्यादृष्टिदेवाः, ते च मिथ्यादृष्टिदेवाः शेषप्रकृतीर्वर्धन्ति, अतो निरुक्तप्रकृतिव्यतिरि-
क्तशेषप्रकृतिबन्धकाः संख्याततमे भागे भणिता इति विज्ञेयम् । अत्रापि शेषभागाः पुनरबन्धकानां ज्ञेयाः
॥९८०-१॥ साम्प्रतमभव्यादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकसत्कभागानभिधित्सुकाम आह

..... असवे मिच्छअमणेषु भागो णो ।

ध्रुवबन्धिणियरेसि सप्पाजगाण ओधव्व ॥९८२॥

(प्रे० 'अभवे' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वाऽसंश्लक्षणासु तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणीय-
प्रभृतिसप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां बन्धकानां भागो नास्ति । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तव्यति-
रिक्तशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका ओधवद् बोद्धव्याः । ते च ओधत एव द्रष्टव्याः ॥९८२॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागानाह-

ओहि० च वेअगे खलु बारससायाइअडकसायाणं ।

वइरणरसुरलविउवआहारगदुगजिणाण णऽण्णेसि ॥९८३॥ (गीतिः)

(प्रे० 'ओहि० च' इत्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायाम् सातवेदनीयाऽसातवेदनीय-
हास्यरतिशोकारतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्यप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्कवर्षभनाराचसंहननमनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां
द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धका अवधिज्ञानमार्गणावद् वक्तव्याः । तदेवम्-सातवेदनीयादिपट्प्रकृति-
बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, अबन्धकाश्च संख्यातेषु भागेषु । असातवेदनीयादिप्रकृतिपट्प्रकृति-
संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, संख्याततमे भागे च तदबन्धकाः । देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिन-
नामप्रकृतिबन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तन्ते, असंख्यातबहुभागप्रमाणाश्चाऽबन्धकाः । अप्रत्या-
ख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्षभनाराचसंहननप्रकृतिबन्धका
असंख्येयबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, असंख्याततमे भागे च तदबन्धकाः । भावना पुनरिहाऽवधिदर्शन-
मार्गणावदाधेया । 'ण' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चदशनावरणपट्कसंज्ञवलनचतुष्कमयजुगुप्मातैजस-
कार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणामेकत्रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनां
पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानमुखगतित्रसचतुष्कसुभगसुस्वरादेशपराधातोच्छ्वासोच्चै-
र्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां वर्तमानैः सर्वैर्जीवै-
र्बध्यमानत्वात् ॥९८३॥

अथ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् निरूपयितुमाह-

भोसे सखेज्जइमो भागो सायाइगाण छण्हइत्थि ।

छण्ह असायाईण संखियभागा भुण्णयव्वा ॥९८४॥

देवविउववदुगाण असखभागो असखभागाइत्थि ।

परुरलदुगवइराणं भागो ण हवेज्ज सेसाण ॥९८५॥

(प्रे०) 'भोसे' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायाम् सातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्ति-
रूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे ज्ञातव्याः, संख्यातबहुभागेषु च तदबन्धकाः ।
'छण्ह' इत्यादि, असातवेदनीयशोकाऽरत्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनां बन्धकाः
संख्यातबहुभागप्रमाणा वर्तन्ते, संख्याततमे भागे च तदबन्धकाः, भावना पुनरिह पूर्ववद-
सातव्या । 'देव' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येय-
तमे भागे सन्ति, यतो । देवराशिः, ते चेतरेषामपेक्षया-

ऽसंख्येयगुणाः, तांश्च देवानृते येऽपरे तिर्यग्मनुष्याः मार्गणायामस्यां वर्तन्ते, त एव प्रकृतिचतुष्टय-
मेतद् बध्नन्ति, तद्वन्धकाश्चाऽसंख्येयबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः । 'असंख्यभागा' इत्यादि,
मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रपमनाराचसंहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानामसंख्येयबहुभागा
वर्तन्ते, मार्गणागताऽसंख्यबहुभागेषु वर्तमानैर्देवैरेताः प्रकृतयो निगन्तरं बध्यन्त इति कृत्वा ।
'ण' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकवर्जानामेकोनचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयादिभ्रुवन्धि-
प्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिममचतुर्गसमस्थानशुभविहायोगतित्रयचतुष्कसुभगसुस्वरदेयपरा-
घातोच्छ्रयामोर्चर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां च बन्धकानां भागो नास्ति, सर्वैश्च मतत बध्यमान-
त्वात् ॥९८४५॥

माम्प्रत मास्वादनमार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयति-

सासाणे णो भागो छायालोसध्रुववधिपयडोण ।

तह पचिदियपरघाऊसासाणतसचउगस्स ॥९८६॥

तिरिपाउग्गाअमुहतमसोलसपयडोण अत्थि सखसो ।

देवविउव्वदुगाणं हवन्ति भागो असखयमो ॥९८७॥

होअन्ति बधगा खलु असखभागा उरालियदुगस्स ।

सखसो सेसाण तेवीसाए मुणेयव्वा ॥९८८॥

(प्रे०) 'सासाणे' इत्यादि, सास्वादनमार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयति-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्रयसत्रसचतुष्करूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्ध-
कानां भागो नास्ति, मार्गणायामस्यां स्थितैः सकलैर्जीवैरनवरतं बध्यमानत्वात् । 'तिरि' इत्यादि,
तिर्यग्द्विकपञ्चमसस्थानपञ्चमसंहननाऽशुभखगत्यन्ध्रिगपट्कस्त्रीवेदाऽमातवेदनीयशोकाऽरतिनीचैर्गोत्र-
रूपाणां तिर्यक्प्रायोग्याऽशुभतमानां षोडशप्रकृतीनां बन्धकाः संख्यातेषु भागेषु सन्ति, प्रकृती-
नामाया बन्धकालस्य तद्विरोधिप्रकृतिबन्धकालात्मख्यातगुणाऽधिकत्वेन तद्विरोधिप्रकृतिबन्ध-
कानामपेक्षयत्तत्प्रकृतिबन्धकानां संख्येयगुणतया प्राप्यमाणत्वात् । 'देवविउव्व' इत्यादि, सुर-
द्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, यतो हि मार्गणायाम-
स्या प्रकृतीनामासां बन्धविधायिनस्तिर्यग्मनुष्या एव भवन्ति, ते च देवादिभ्योऽसंख्याततमभा-
गप्रमाणा एव विद्यन्ते । 'होअन्ति' इत्यादि, औदारिकद्विकस्य बन्धका असंख्यातेषु भागेषु
भवन्ति, यतो मार्गणायामस्यामौदारिकद्विकबन्धका मुख्यतया देवा एव वर्तन्ते, ते च गतित्रयवर्ति-
सास्वादनजीवापेक्षयाऽसंख्यातगुणा वर्तन्ते । 'सखसो' इत्यादि, मातवेदनीयहास्यरतिपुरुषवेदमनुष्य-
गतिममचतुरस्रादिसंस्थानचतुष्कवज्रपमनाराचादिसंहननचतुष्कमनुष्यानुपूर्वीशुभविहायोगतिस्थिर-
पट्कोद्योतोर्चर्गोत्ररूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनां बन्धकाः संख्याततमे भागे वर्तन्ते । शेषाः पुनरबन्धका
ज्ञेयाः ॥९८६७-८॥ तदेव मार्गणागतजीवापेक्षयाऽऽधुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनां भागप्ररूपणा निरूपिता ।

साम्प्रतं सकलजीवानाश्रित्य मार्गणस्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां भागानभिधातुकामो ग्रन्थ-
कारश्चित्तर्यगोधप्रमुखासु कतिपयासु मार्गणासु तान्निरूपयति

तिरिथे तह एमिदियणिगोअवणकायजोगणपुमेसुं ।
दुअणापाजयअणयणभविमिच्छेसुं असणिम्मि ॥९९९॥
अहिकिअ सव्वजीवा सप्पाउग्गाण आउवज्जाण ।
सव्वेसि पयडोण विण्णेया वधगोधव्व ॥१००॥

(प्रे०) “तिरिथे” इत्यादि, तिर्यगोवेकेन्द्रियौघमाधारणतनस्पतिकार्यौधवनस्पतिकार्यौघ-
काययोगौधनपुंमकवेदमन्त्यजानश्रुताजानाऽमंयमाचक्षुर्दर्शनमन्यमिथ्यात्वाऽमंशिरूपासु त्रयोदशसु
मार्गणासु सर्वान् जीवनधिकृत्याऽऽयुष्कचतुष्कवर्जानां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां वन्धका
ओधवद् विज्ञेयाः, तदेवम्—सप्तत्वारिंशज्जानापरणीयादिध्रुववन्धिकाप्रकृतीनामौदारिकभरीरनामकर्म-
णश्च वन्धका जीवा अनन्तभागेषु विद्यन्ते, यथायोगं नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारक-
द्विकजिननामप्रकृतिवन्धका अनन्ततमे भागे भवन्ति, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिहुण्डकमंस्थानदुःस्वर-
वर्जस्थावरनवकाऽसातवेदनीयनपुंसकवेदशोकाऽरतिनीचैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामष्टादशप्रकृ-
तीनां वन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा ज्ञेयाः, सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादि-
जातिचतुष्कौदारिकाज्जोपाङ्गसंहननपट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकवसदशक-
दुःस्वरातपोद्योतश्चासोच्छ्रामपराधातोच्चैर्गोत्ररूपाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनां वन्धकाः सर्वजीवानां
संख्याततमे भागे वर्तन्ते, भावना पुनरिहौघवद् वेदयितव्याः ।

अत्र हेत्ववगतिमुपगम्यै काश्चित् व्याप्तयो निरूप्यन्ते ।

प्रथमव्याप्तिः—यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवा यदि सकलजीवेभ्योऽनन्ततमभागप्रमाणाः
स्युस्तर्हि तत्र वन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां वन्धका अनन्ततमे भागे एव भवन्ति ।

द्वितीयव्याप्तिः—यदि समस्तजीवापेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा जीवा यस्यां मार्गणायामुपल-
भ्येरन्, तर्हि तत्रैकेन्द्रियैर्वध्यमानप्रकृतीनां वन्धका असंख्येयतमभागप्रमाणा एव भवन्ति, अत्रापि
यामां प्रकृतीनां वन्धकाः संख्यसङ्गिभेदभिन्नाः पञ्चेन्द्रिया एव ते तु तद्वन्धकत्वेन सर्वजीवापेक्षा-
तोऽनन्ततमभागप्रमाणा एव भवन्ति ।

तृतीया व्याप्तिः—यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवाः सर्वेषां जीवानां संख्येयतमे भागे विद्यन्ते,
तत्रैकेन्द्रियैर्वध्यमानप्रकृतिवन्धकाः संख्येयतमभागे प्राप्यन्ते, एकेन्द्रियैर्वध्यमानप्रकृतीनां वन्धकानां
संख्यसङ्गिपञ्चेन्द्रियाणां सर्वजीवानपेक्ष्यानन्ततमभागप्रमाणत्वमवसातव्यम् ।

चतुर्थी व्याप्तिः—यस्यां मार्गणायां सर्वजीवानां संख्येयेष्वसंख्येयेषु वा भागेषु प्राणिनो विद्ये-
रन् तर्हि तस्यां मार्गणायामेकेन्द्रियप्रायोग्याणामशुभतमानामष्टादशप्रकृतीनां वन्धकाः संख्येयेषु

भागेषु, शेषैकेन्द्रियैर्बध्यमानप्रकृतिबन्धकाः संख्येयतमे भागे, यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च पञ्चेन्द्रिया एव तासां बन्धकाः अनन्ततमे भागेऽवाप्यन्ते, तथा ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धका जीवा मार्गणागतजीवसंख्यात्रदभिधेयाः । इदमुक्तं भवति—मार्गणा यदि संख्येयतमबहुभागप्रमितप्राणिमती, तदा संख्येयबहुभागप्रमाणा असंख्येयबहुभागप्रमितप्राणिमती तदाऽसंख्येयतमबहुभागप्रमाणा इत्यादिरूपेण ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धविधायिनो बोद्धव्याः ॥९८९९०॥

अथ वादरैकेन्द्रियमार्गणासु बन्धकानां भागानाह

वायरसयलेगिदियणिगोअमेएसु खलु असखसो ।

सखसो असमत्तगसुहमेगिदियणिगोएसु ॥९९१॥

(प्रे०) “वायर” इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च वादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यमसाधिकशतप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सकलजीवानामपेक्षयाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाद्वय आयुर्वर्जस्वप्रायोग्यसप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वेषां जीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते, सर्वजीवापेक्षातः संख्येयतमभागे वर्तमानत्वान्मार्गणयोरनयोर्विद्यमानानां जीवानाम् ॥९९१॥

अथ सूक्ष्मान्गोदादिमार्गणासु बन्धकानां भागान् भणति

सुहमणिगोएगिदियआहारेसु धुवबधिउरलाणं ।

होअन्ति असखंसा सेसाणोधव्व गायव्वा ॥९९२॥

(प्रे०) “सुहम” इत्यादि, सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघाहारकलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः सर्वजीवानामसंख्यातबहुभागेषु ज्ञातव्याः, मार्गणास्वासु हि वर्तमाना जीवाः सर्वेषां जीवानामपेक्षयाऽसंख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते । ‘सेसाण’ इत्यादि, अभिहितातिरिक्तशेषप्रकृतीनामासु मार्गणासु बन्धका ओघवद् बोद्धव्याः । तदेवम्—आहारकमार्गणायां वैक्रियपट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां बन्धकाः समस्तजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भागे भवन्ति, तथेह प्रोक्तासु तिसृष्वपि मार्गणास्वेकेन्द्रियप्रायोग्याऽष्टादशशुभतमप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वजीवेभ्यः संख्येयबहुभागेषु ज्ञातव्याः । सातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीवेदपुरुषवेदमनुष्यगत्येकेन्द्रियजातिवर्जजातिवत्कुदारिकाङ्गोपाङ्गसहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विकत्रसदशकटुःस्वरतपोद्योतश्चासोच्छ्वासपराघातोच्चेर्गोत्रप्रकृतीनां च बन्धका जीवाः संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः । अत्र भावना पुनरोघतोऽनुसंधेया ॥९९२॥

अथ पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु बन्धकानां भागान् कथयति

पञ्जसुहृमर्गिदियणिगोअउरलेसु अत्थि सखंसा ।

धुवन्धिउरालाणं ओधव्व हवेज्ज सेसाणं ॥९९३॥

(प्रे०) 'पञ्ज' इत्यादि, पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौदारिककाययोग-
रूपासु तिसृषु मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्च बन्धकाः सर्वे-
भ्यो जीवेभ्यः संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, मार्गणास्वासु स्थिता जीवाः सर्वजीवापेक्षया संख्यातबहु-
भागप्रमाणा इति कृत्वा । "ओधव्व" इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृत्यतिरिक्तप्रकृतीनां बन्धका ओधव्वद्
विभावनीयाः, तद्यथा—एकेन्द्रियप्रायोग्याऽशुभनमाऽष्टादशप्रकृतिबन्धका मार्गणास्वासु सर्वजीवानां
संख्यातबहुभागेषु वर्तन्ते, मातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदा-
रिकाङ्गोपाङ्गमहंननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वोद्वयलगतिक्रमसदशकदुःस्वरातपोद्योतश्चा-
सोच्छ्वासपराघातोर्चैर्गोत्ररूपाणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धकाश्च संख्याततमे भागे वर्तन्ते । औदा-
रिककाययोगमार्गणायां पुनर्नरकद्विकसुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां नवानां प्रकृतीनां
बन्धकाः सर्वजीवानामनन्ततमे भागेऽवसेयाः, भावना पुनरत्रौघानुसारेण भाव्या ॥९९३॥

अथौदारिकमिश्रमार्गणायामाधुवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् दर्शयन्नाह

ओरालमीसजोगे देवविउवडुगजिणाणणतंसो ।

संखेज्जइमो मागो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥९९४॥

(प्रे०) "ओराल" इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकजिन-
नामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धका अनन्ततमभागप्रमाणा बोद्धव्याः, यतो हि मार्गणायामस्यां सम्य-
गदृष्ट्य एवैताः प्रकृतीर्वृक्षन्ति, ते च संख्येयप्रमाणत्वेन सर्वजीवानामनन्ततमभागप्रमाणा एव मन्ति ।
"संखेज्जइमो" इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकाः सकलजीवानां संख्येय-
तमभागप्रमाणा वेदयितव्याः, मार्गणाया अस्याः समस्तजीवानां संख्याततमभागप्रमाणत्वात् ।
ताश्चेमाः शेषम्वप्रायोग्यप्रकृतयः सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेद-
त्रयतिर्गममनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकमहंननपट्कमंस्थानपट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वोद्वयलगतिक्र-
मसदशकस्थावरदशकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातगोत्रद्वयरूपाः पश्चिद्भ्रुववन्धिप्रकृतयश्चेति ॥९९४॥

अथ कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोराधुवर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् कथयति

कम्माणाहारेसुं देवविउवडुगजिणाणणतंसो ।

जेया असंखमागो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥९९५॥

(प्रे०) "कम्मा" इत्यादि, कर्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोर्देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम-
कर्मणां बन्धकाः सकलजीवानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते, यतो देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतिचतुष्टयं सम्य-
गदृष्टितिर्यङ्मनुष्या वृक्षन्ति । जिननामकर्म च देवमवाच्युत्वा मनुष्येषूपपद्यमानाः सम्यगदृष्टयो
मनुष्यमवाच्युत्वा देवमवे नरकमवे वा जायमानाः सम्यगदृष्टयोऽन्तरालगतौ वृक्षन्ति, ते च पुनः

समस्तजीवानामनन्ततमभागप्रमाणा एव । 'णेया' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकातिरिक्तस्वप्रायोग्य-
शेषप्रकृतिबन्धकाः सर्वजीवानामसंख्येयतमभागे विज्ञेयाः, मार्गणयोरनगोर्वर्तमानानां जीवानां सर्व-
पामपेक्षयाऽसंख्येयभागे संभवात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृतयः, वेदनीय-
द्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकर्महननपट्कसंस्थानपट्कतिर्य-
ग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयसदृशस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वाभगोत्रद्विकरूपाः षष्टिप्रकृतय
श्चेति ॥९९५॥

साम्प्रतं कषायमार्गणास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां भागान् प्रतिपादयितुमाह

चउसुं पि कसायेसुं तित्थाहारदुगविउवछक्काणं ।

णेया अणतभागो सेसाण हवन्ति सखंसो ॥९९६॥

(प्रे०) "चउसु" मित्यादि, क्रोधमानमायाभोभलक्षणासु चतसृषु कषायमार्गणासु तीर्थकृत्ना-
माहारकद्विकसुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिनवकस्य बन्धकानां सकलजीवापेक्षयाऽनन्ततमो
भागो ज्ञेयः, कथमिति चेदुच्यते—जिननामाहारकद्विकरूपं प्रकृतित्रय संज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवैरेवात्र बध्यते,
वैक्रियपट्कं पुनः संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवैरेव बध्यते, ते च सर्वजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भागे वर्तन्ते ।
'सेसाण' इत्यादि, उक्तोत्तरसप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयतमे भागे वर्तन्ते, मार्गणास्त्रासु
वर्तमानानां जीवानां सकलजीवापेक्षया संख्येयतमे भागे सद्भावात्, ताश्चेमाः—सप्तचत्वारिंशद्भुव-
वन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंह-
ननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयसदृशस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वा-
भगोत्रद्वयरूपाः षष्टिप्रभुवन्धिप्रकृतयश्चेति सप्ताधिकशतशेषप्रकृतयः ॥९९६॥

इदानीमशुभलेस्यासु प्रस्तुतमाह—

तित्थविउवछक्काण अणतभागोऽत्थि असुहलेसासुं ।

सेसाण सखभागो अण्ह सव्वाणऽणतसो ॥९९७॥

(प्रे०) 'तित्थ' इत्यादि, कृष्णलेस्यानीललेस्याकापोतलेस्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु
तीर्थकृत्नामकर्मसुरद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां सप्तानां प्रकृतीनां बन्धकाः सकलजीवानामन-
न्ततमे भागे वर्तन्ते, हेतुस्तु पूर्ववज्ज्ञातव्यः । 'सेसाण' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीनां बन्धकाः सर्व-
जीवापेक्षया संख्येयतमभागे ज्ञेयाः, मार्गणास्त्रासु वर्तमानानां जीवानां सकलजीवापेक्षया संख्यात-
तमभागप्रमाणत्वात् । 'अण्ह' इत्यादि, भाषितोत्तरमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः सर्वजीवा-
पेक्षातोऽनन्ततमभागप्रमाणाः, सर्वजीवापेक्षयाऽनन्ततमभागप्रमाणत्वाच्छेषमार्गणागतजीवानाम् ।
ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्ततिर्य-
क्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीररूपा चतस्रो मार्गणाः, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपाश्चतस्रो मनु-

ष्यमार्गणाः, त्रिंशद्देवमार्गणाः, ओषपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन त्रिकलेन्द्रियाणां नवमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियाणां तिस्रो मार्गणाः, प्रत्येकवनस्पतिकार्यिकानां तिस्रो मार्गणाः, त्रमकायानां च तिस्रो मार्गणाः, ओष-
सूक्ष्मोऽसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तवादरौघवादराऽपर्याप्तवादरपर्याप्तभेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ता-
ऽष्कायमार्गणाः, सप्ततेजस्कायमार्गणाः, सप्त वायुकायमार्गणाः, ओषमत्याऽमत्यमत्यामत्याऽसत्या-
मृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्ग-
णाद्वयम्, आहारककाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, स्त्रीवेदपुरुषवेदाऽपगतवेदमार्गणात्रयम्,
अकषायमार्गणा, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानमार्गणापञ्चकम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, संयमौघसा-
मायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्ममंपराययथाख्यातदेशविरतिसंयमरूपं मार्गणामस्रकम्,
चक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनमार्गणात्रयम्, तेजःपद्मशुक्ललक्ष्यामार्गणात्रयम्, अभव्यमार्गणा, सम्य-
क्त्रौघक्षयोपशमक्षायिकोपशममिश्रमास्वादनमभ्यक्त्वरूपाः षड्मार्गणाः, संज्ञिमार्गणा चेति सप्तत्रिंश-
दभ्यधिकशतमार्गणाः ॥९९७॥

इत्येवमुक्ता सकलजीवापेक्षया मार्गणास्वायुष्कवर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां भागप्ररूपणा ।

साम्प्रतमायुष्ककर्मप्रिगहितशेषस्वप्रायोग्यप्रकृत्यवन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागान्भावयन्नाह—

तिरिगइवणएगिदियणिगोअतस्सुहमपज्जसुहमेसु ।

कायणपुमदुअणाणअजयअणयणभविमिच्छअमणेसु ॥९९८॥ (गीतिः)

जाणाउगवज्जाणं अबन्धगा हन्ति तेसिमोघव्व ।

एमेव जाणियव्वा उरलाहारेसु सव्वेसि ॥९९९॥

णवर आहारजुगलवेउव्वियछक्कतित्थणामाण ।

उरले सखा भागा असखभागाऽत्थि आहारे ॥१०००॥

(श्र०) 'तिरि' इत्यादि, तिर्यगौघवनस्पतिकार्यौघकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकार्यौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकार्यौघपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकार्यरूपासु काय-
योगौघनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभयमाऽचक्षुर्भव्यमिथ्यात्वासंज्ञिलक्षणासु च सप्तदशसु मार्ग-
णासु यासामायुष्ककर्मवर्जानां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तासां ते पुनरौघवदभिधातव्याः, तदित्थम्—
मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः समस्तजीवानामनन्ततमे भागे प्राप्यन्ते,
अमंख्येयानां मास्वादनगुणस्थानकवतां तत्र प्राप्यमाणत्वात्, तैश्च बन्धविधायित्वाभावात्तस्य, शेष-
षट्चत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका न प्राप्यन्ते, भवैरेव तत्रस्थैर्वध्यमानत्वात्तासाम् । तिर्यगौघ-
मार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणां
द्वादशप्रकृतीनामसंयममार्गणायां च मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका अनन्ततमे भागे
लभ्यन्ते, यतोऽसंख्येया जीवाः सास्वादनादिदेशविरतान्तगुणस्थानस्थास्तिर्यगौघमार्गणायामसंख्येयाश्च
मभ्यगृह्योऽसंयममार्गणायां तदबन्धकत्वेनाऽवाप्यन्ते, ते च समस्तजीवापेक्षयाऽनन्ततमे भागे एव ।

शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धका उभयत्र नैव प्राप्यन्ते, सर्वैरेव वध्यमानत्वात् । न पुं गकवेदे ज्ञाना-
वरणादिचतुर्दशसंज्ञरुनचतुष्कवर्जशेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां मव्याचक्षुःकाययोगमार्गणासु सर्वध्रुववन्धि-
प्रकृतीनामवन्धका अनन्ततमे भागे ज्ञेयाः, आसामवन्धकतया सम्यग्दृष्ट्यादिजीवानामेव प्राप्यमाण-
त्वात्तेषां च सर्वजीवानामनन्ततमे भागे एव सत्त्वादिति, वैक्रियपट्कजिननामाहारकद्विकप्रकृतीनाम-
वन्धका उक्तमार्गणाभ्यो यासु मार्गणासु सन्ति, तासु तेऽनन्तबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः, तथा मर्वास्व-
त्रोक्तासु मार्गणास्वेकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमाऽष्टादशप्रकृतीनामवन्धकाः संख्येयतमभागे, औदारिक-
शरीरनामोऽवन्धका अनन्ततमभागप्रमाणा एव विज्ञेयाः, एकचत्वारिंशच्छेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां
चावन्धकाः संख्येयबहुभागेषु बोद्धव्याः, ताश्चेमाः—मातवेदनीयहास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यग-
तिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चक्रमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्विक-
त्रसदशकदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशच्छेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतय इति ।
'एभेच' इत्यादि, औदारिककाययोगाहारकमार्गणाद्वये मर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामवन्धका ओघ-
वदभिधेयाः, तदेवम्-सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकनामनश्चावन्धका अनन्ततमे भागे
वर्तन्ते, एकेन्द्रियप्रायोग्याशुभतमाष्टादशप्रकृतीनां संख्याततमे, आहारकद्विकादिवर्जशेषैकचत्वारिंशत्प्रकृ-
तीनां च संख्याततमबहुभागेषु । अथाहारकद्विकवैक्रियपट्कजिननामप्रकृतीनामवन्धका अतिदेशानुसारे-
णाऽनन्तबहुभागप्रमाणा अप्यान्ति, तच्च निरुक्तमार्गणाद्वये न यदामश्चति, यतो मार्गणागतजीवाः सर्व-
जीवापेक्षयोदारिकमार्गणायां संख्यातबहुभागप्रमाणा आहारकमार्गणाया त्वसंख्यातबहुभागप्रमाणास्त-
स्मात् 'णचर' मित्यादिनाऽपवादमुपदर्शयति—औदारिककाययोमार्गणायां प्रकृतिनवकस्याऽवन्धकाः
संख्यातबहुभागप्रमाणाः, आहारकमार्गणायां तु तेऽसंख्यातबहुभागप्रमाणा वर्तन्त इति ॥९९८-१०००॥

साम्प्रतं वादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्ववन्धकानां भागानाह

सध्वेसु वायरेणिदिणिओएसु हविरे असखंसो ।

सच्चपयडीण सखियभागो तदपञ्जसुहमेसु ॥१००१॥

(प्रे०) 'सध्वेसु' इत्यादि, सर्ववादरनिगोदेषु सर्ववादरकेन्द्रियेषु चेति सर्वसंख्यया षड्मार्गणासु
यासां वेदनीयद्विकादिप्रकृतीनामवन्धकाः सन्ति, तासां सर्वासां प्रकृतीनामवन्धकाः सर्वजीवापेक्षया
-ऽसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, मार्गणागतसर्वजीवाः सर्वजीवानामसंख्याततमे भाग इतिकृत्वा । 'तदपञ्ज'
इत्यादि, एकेन्द्रियनिगोदयोरपर्याप्तिसूक्ष्ममार्गणयोरवन्धकाः पुनः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्त-
न्ते, मार्गणागतजीवाः सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्त इति कृत्वा । इमाश्च ता वेदनीयद्विकादि-
प्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यद्विकतिर्यग्विकजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहन-
नपट्कसंस्थानपट्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा नवपञ्चा-
शत् प्रकृतय इति ॥१००१॥

अथौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागानाह

ध्रुववन्धिउरालाण उरालभोसे अणतभागोऽत्थि ।

सखेज्जइमो भागो सप्पाउग्माण सेसाण ॥१००२॥

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागानाह शरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणायामस्यामेतासां प्रकृतीनां समुद्धात-
चर्तिकेवलज्ञानिनः संख्येयप्रमाणतयाऽबन्धकत्वेन, अपर्याप्तावस्थायां च मिथ्यात्वस्यासंख्याताः
सास्वादनादयोऽबन्धकत्वेन तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करत्यानर्द्धिन्निकरूपप्रकृतिप्रसक्तस्यौदारिकशरीर-
नामश्च सम्यग्दृष्टितिर्यग्मनुष्या एव संख्येयतयाऽबन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च सर्वे सर्वजीवानामनन्त-
तमे भाग एव । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनामत्राऽबन्धकाः संख्याततमे भागे
ज्ञातव्याः, एतन्मार्गणानामजीवानां सर्वेषामपेक्षया संख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकजातिपञ्चकसह-
ननपट्कसंस्थानपट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतपराधानोच्छ-
वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुष्पष्टिः प्रकृतयः ॥१००२॥

अथ कर्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां समस्तजीवापेक्षातो भागान्
भणितुमाह

कपाणाहारेसु ध्रुववन्धिउरालियाणज्जंतंसो ।

भागो असखिययमो सप्पाउग्माण सेसाणं ॥१००३॥

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कर्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोः समस्तजीवापेक्षया भागानाह शरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, मार्गणयोरनयोरासां
प्रकृतीनामबन्धकतया समुद्धातावस्थायां वर्तमानानां केवलज्ञानिनां सम्यग्दर्शां च क्रमेण संख्यात-
त्वेनाऽसंख्यातत्वेन सर्वजीवानामनन्ततमे भागे सत्त्वादिति । 'भागो' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यतिरिक्तानां
स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणयोरनयोर्वर्तमाना जीवाः
समस्तजीवानामसंख्याततमे भागे विद्यन्ते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेद-
त्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवमनुष्य-
तिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतपराधानोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुः-
पष्टिरिति ॥१००३॥

अथ कपायमार्गणासु प्रथमत्रयलेख्यामार्गणासु चायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां सकलजीवापेक्षया
भागान् भणितुमाह

चउसुं कोहाईसु तिमसुहलेसासु अत्थि जेसि तु ।

ध्रुववन्धिण तेसि तहा उरालस्सज्जतसो ॥१००४॥

मखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण सेसपयडीण ।

सेसासु अणतंसो आउगवज्जाण सव्वेसि ॥१०८५॥

(प्रे०) 'चउसु' मित्यादि, क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु कृष्णनीलकापोत-
लेश्यालक्षणासु च तिसृषु मार्गणासु यामां ब्रुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः सन्ति तामां ते, औदारिक-
शरीरनाम्नोऽवन्धकाश्च अनन्ततमे भागे वर्तन्ते, तत्पुनरित्थम्-मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयादि-
प्रकृत्यष्टकस्य सम्यग्दृष्टयः, अपत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देशविरतादयः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य
सयताः क्रोधादिमार्गणाचतुष्टये शेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां च यथायोगं श्रेणिगता जीवा अवन्धकत्वेन
प्राप्यन्ते, तथा मार्गणास्वास्वौदारिकशरीरनाम्नोऽवन्धकतया वैक्रियशरीरनामवन्धकाः चतसृषु च
क्रोधादिमार्गणासु यथायोगं श्रेणिगतजीवा अपि प्राप्यन्ते, ते च प्रत्येकं येषां जीवानामनन्ततमे भागे
भवन्ति । 'संखेज्जइमो' इत्यादि, अभिहितेतरस्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनामवन्धकाः संख्याततमभाग-
प्रमाणा बोद्धव्याः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-कषायमार्गणासु वेदनीयद्विकं हास्यादिद्युगलद्वयं वेदत्रयं
गतिचतुष्कं जातिपञ्चकं वैक्रियद्विकमौदारिकाङ्गोपाङ्गमाहारकद्विकं संहननपट्कं सम्भानपट्कमासुपूर्वा-
चतुष्कं स्वगतिद्विकं त्रयदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वामजिननामानि गोत्रद्वयं चेत्यष्ट-
पष्टिः । अशुभत्रयलेश्यामार्गणासु चाहारकद्विकं विना पट्पष्टिरिति । 'सेसासु' इत्यादि, अत्राऽभि-
हितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामायुष्कर्मवर्जानामवन्धकानामनन्ततमो भागो वर्तते, मार्ग-
णागतसर्वजीवानां सर्वजीवापेक्ष्यानन्ततमे भागे वर्तनादिति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-तिर्यगोघ विना
पट्चत्वारिंशद्भूतिमार्गणाः, विकलेन्द्रियाणां नव मार्गणाः, तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, ओधसूक्ष्मौघ-
सूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तवादरावतत्पर्याप्ताऽपर्याप्तलक्षणमभमेदेन सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्काय-
मार्गणाः, सप्ततेजस्कायमार्गणाः, सप्तवायुकायिकमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्र-
स्त्वमकायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाय-
योगमार्गणाद्वयम्, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम् स्त्रीवेदपुरुषवेदाऽपगववेदमा-
र्गणात्रयम्, अकषायमार्गणा मतिश्रुतावधिमतःपर्यवकेवलज्ञानमार्गणापञ्चकम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा,
सयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहागविशुद्धियथाख्यातदेगविरतिमयमरूपं मार्गणापट्कम्,
चक्षुरवधिकेवलदर्शनमार्गणात्रयम्, तेजःपञ्चशुक्ललेश्यामार्गणात्रयम्, अभव्यमार्गणा, सम्यक्त्वौघक्षयो-
पगमक्षाधिकौपशमिकमिश्रसास्वादनसम्यक्त्वरूपाः षण्मार्गणाः, मंजिमार्गणा चेति पट्त्रिंशद्विक-
शतमार्गणाः । सूक्ष्ममपरायमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतेरवन्धकाभावात्मा शेषमार्गणातया न
गृहीता । इत्येव मार्गणासु स्वायुष्कवर्जोत्तरप्रकृतीनामवन्धकानां सकलजीवापेक्षया भागप्ररूपणा
कृता ॥१००४-५॥

इदानीं मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुश्चतुष्कवन्धकानां मार्गणागतजीवानां श्रित्य भागान् प्रतिपादयितुमाह-

सप्पाउग्गाणं खलु आऊणं वधगाऽत्थि ओधच्च ।

तिरिगइसव्वेगिंदियणिगोअवणकायुरालियडुगेसुं ॥१००६॥ (गीतिः)

णपुमच्चउकसायेसुं दुअणाणेषु अजए अच्चखुम्भि ।

तिअसुहलेसाभवियरमिच्छासण्णीसु आहारे ॥१००७॥

(प्रे०) 'सप्पाउग्गाण' मित्यादि, तिर्यगोघमार्गणयामोघसूक्ष्मौघमादरौघसूक्ष्मपर्याप्तवादर-
पर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तमादराऽपर्याप्तभेदाभिन्नासु मत्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु मत्तसु च मावारणवनस्पतिकाय-
मार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां काययोगौघादाग्निकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु
मार्गणासु नपुंमकवेदे क्रोधमानामायालोभलक्षणमार्गणाचतुष्के मर्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शन-
कृष्णलेश्यानीललेस्याकापोतलेस्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंख्याहारकमार्गणासु च ममुदितासु षट्त्रिंश-
न्मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कक्रमवन्धकानां भागा ओघवदवसेयाः । तदेवम्—तिर्यगोघकाययोगौघौदारिक-
काययोगनपुंसकवेदकायचतुष्काऽज्ञानद्वयाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनाऽशुभलेस्यात्रयभव्याभव्यमिथ्यात्वा-
संख्याहारकमार्गणासु देवनरकमनुष्यायुष्कत्रयस्य वन्धका एतन्मार्गणागतजीवानामपेक्षयाऽनन्ततमभाग-
प्रमिता ज्ञातव्याः, यत आयुष्कत्रयस्याऽस्य देवमनुष्यनरकातिषु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वेन कस्मिँ-
श्चित् ममये उत्कृष्टतोऽसंख्येया एव जीवा वन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते चैतन्मार्गणागतजीवानामपेक्षया-
ऽनन्ततमे भागे वर्तन्ते, तिर्यगायुष्कस्य च संख्येयतमभागेऽत्र वन्धका बोद्धव्याः, औदारिकमिश्रमार्ग-
णायां सकलैकेन्द्रियमार्गणासु सकलनिगोदमार्गणासु वनस्पतिकायौघमार्गणायां च तिर्यगायुष्कस्य
वन्धकाः संख्येयतमभागे मनुष्यायुष्कस्य चाऽनन्ततमे भागे बोद्धव्याः । अत्र भावना पुनरोघतोऽव-
सातव्या ॥१००६७॥

इदानीं द्वितीयादिनरकप्रभृतिमार्गणासु प्रस्तुतमाह

दुइआइणिरयलव्वीसजोइसाइगतिणाणदेसेसुं ॥

ओहिपउमडुगवेअगसासाणेसु य असखंसो ॥१००८॥

(प्रे०) 'दुइआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभातमस्तमःप्रभारूपासु
पट्सु नरकमार्गणासु ज्योतिष्कसौधर्मे शानसनत्कुमारमाहेन्द्रप्रक्षालनकशुकमहस्रारानतप्राणताऽऽरणा-
ऽधुतनवग्रैवेयक्यवार्थसिद्धवर्जानुत्तरचतुष्करूपासु षट्त्रिंशतिसुरमार्गणासु भतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञा-
नदेशविरताऽवधिदर्शनपञ्चलेश्याशुक्ललेस्याश्लयोपशमसम्यक्त्वसात्त्वादेन सम्यक्त्वमार्गणासु च स्व-
प्रायोग्यायुष्काणां वन्धका असंख्येयतमभागे वर्तन्ते, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—द्वितीयादिषट्चनरकमार्ग-
णासु तथोक्तदेवमार्गणासु जीवानामायुःस्थितिर्जघन्यतोऽप्यसंख्यातवर्षप्रमाणाऽस्ति, तेषां चाऽयु-
र्वन्धकालोऽसंख्याततमे भागे विद्यते, अतः प्रकृतायुर्वन्धका असंख्याततमे भागे ज्ञेयाः । विज्ञानाव-
धिदर्शनवेदकसम्यक्त्वमार्गणास्वसंख्यातबहुभागप्रमाणा देवा विद्यन्ते, तेष्वायुर्वन्धकाः संख्याता एव,
यतो हि तैर्मनुष्यायुरेव चक्ष्यते, अतो मार्गणास्वासु मनुष्यायुर्वन्धका असंख्याततमे भागेऽवसेयाः ।

अपरञ्च देवायुर्वन्धका इहाऽसंख्याताः, तथाऽपि तदायुर्वन्धप्रायोग्यजीवा एतन्मार्गणागतजीवानां ममख्याततमे भागे वर्तन्ते, अतस्तस्य वन्धका अप्यसंख्याततमे भागे विज्ञेयाः पञ्चशुक्ललेश्यामार्गणयोर्मुख्यगणितया तिर्यञ्चः, तेषां परभवोत्पत्तिस्थानं देवरूपमस्ति, देवाश्च तेषामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, अतो देवायुर्वन्धका अत्राऽमख्याततमे भागे एवाऽवाप्यन्ते, शेषो देवराशिर्मनुष्यराशिर्वा मार्गणागतजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तते, शेषायुर्वन्धकास्तु देवा एव, अतः शेषायुर्वन्धका अप्यसंख्याततमे भागे एवाऽवसातव्याः । शुक्ललेश्यायां मार्गणागतजीवानामसंख्यातवहुभागेषु वर्तमानः देवराशिरेव प्रधान इति मतेनाऽपि स्वप्रायोग्यायुर्वन्धका असंख्याततमे भागे एव, यत देवा अपि संख्यातप्रमाणा एवायुर्वन्धकतया प्राप्यन्ते, यतस्ते केवलं मनुष्यायुरेव वर्धन्ति । देशविरतसाम्बादनयोस्तथास्वाभाव्येन मार्गणागतजीवानामसंख्याततमभागमात्रा एव जीवा आयुर्वन्धकाः सन्ति ॥१००८॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणास्वायुर्वन्धकानां भागान् तत्तन्मार्गणागतसर्वजीवापेक्षया प्ररूपयति

दुर्पणिद्वितिरियेसु पञ्जपणिद्वितसद्वयपुमथीसु ।

चक्षुस्मि असखसो गिरयणराकण बोद्ध्वा ॥१००९॥

संखेज्जहमो भागो तिरियसुराकण वंधगा जेया ।

(प्रे०) 'दुर्पणिद्वितिरिये' इत्यादि, पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीपर्याप्तपञ्चेन्द्रियपर्याप्तसवचनयोगौघाऽमत्याऽमृपावचनपुरुषवेदस्त्रीवेदचक्षुर्दर्शनरूपासु नवसु मार्गणासु नरकमनुष्यायुष्कयोर्वन्धका असंख्येयतमे भागे ज्ञातव्याः, यतः प्रकृतमार्गणागतजीवापेक्षया सकलनरकमनुष्या असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, अतस्तदायुर्वन्धकास्तु सुतरामसंख्येयभागे भवन्ति । 'संखेज्जहमो' इत्यादि, तिर्यक्सुरायुष्कद्वयस्य वन्धकानां संख्याततमो भागो ज्ञेयः, कुत इति चेद्, उच्यते, अधिकृतमार्गणागतजीवेषु संख्यातवर्षायुष्का बहुभागप्रमाणाः सन्ति, तेषां चाऽऽयुर्वन्धकालः स्वजीवितापेक्षया संख्याततमे भागेऽस्ति, अतः प्रकृतमार्गणागतसंख्यातभागप्रमाणा जीवा आयुर्वन्धका वर्तन्ते, आयुर्वन्धकेषु च संख्याततमे भागे देवायुर्वन्धका भवन्ति, संख्यातवहुभागप्रमाणाश्च तिर्यग्यायुर्वन्धकाः, तस्मात्तिर्यग्देवायुर्वन्धकाः प्रस्तुतमार्गणागतजीवानां संख्याततमे भागे एवाऽवाप्यन्त इति ॥१००९॥

अथ द्विमनुष्यादिमार्गणास्वायुर्वन्धकानां भागानुपदर्शयति

दुमणुससव्वत्थेसु सव्वेसु तेउवाकसु ॥१०१०॥

आहारदुग्गम्मि तहा मणपज्जवसजमेसु सामहए ।

छेए तह परिहारे सप्पाउग्गाए सखसो ॥१०११॥

(प्रे०) 'दुमणुस' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुपीमवार्थसिद्धमार्गणात्रये ओषस्रक्षमौघवाद्रौध-
पर्याप्तस्रक्षमपर्याप्तवाद्राऽपर्याप्तस्रक्षमाऽपर्याप्तवाद्रभेदभिन्नासु सप्तसु तेजस्कायमार्गणासु सप्तसु च
वायुकायिकमार्गणास्त्राहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवसंयमौघसामायिकसंयमछेदोपस्था-
पनीयसंयमपरिहारविशुद्धिसंयमरूपासु च सप्तसु मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकाः संख्याततमभाग-
प्रमाणा वेदयितव्याः, भावना न्वेवम्-तेजस्कायवायुकायिकमार्गणासु स्वोत्कृष्टजीवितकालापेक्षयाऽऽयु-
र्वन्धकालस्य संख्येयगुणहीनत्वेन स्वप्रायोग्यतिर्यगायुर्वन्धकाः संख्याततमे भागे प्राप्यन्ते, शेषप्रकृत-
मार्गणासु तु जीवानां संख्येयत्वेन संख्याततमभागप्रमाणा एवायुर्वन्धका विज्ञेयाः ॥१०१०-११॥

एतर्हि मनोयोगमामान्यादिमार्गणासु भागानाह

तिरियाजगस्स सखियभागो, पणमणतिवयणसण्णीसु ।

आउडुगस्स अमखियभागो देवाजगस्स सयमुज्झो ॥१०१२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तिरियाजगस्स' इत्यादि, ओधादिभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणासु सत्यवचनाऽसत्य-
वचनमत्यासत्यवचनरूपासु तिसृषु वचनयोगमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च तिर्यगायुष्कस्य बन्धकानां
संख्याततमो भागोऽस्ति । 'आउडुगस्स' इत्यादि, नरकमनुष्यायुष्कयोर्वन्धकानामसंख्याततमो
भागः, भावना पुनरेवम्-मार्गणागतजीवेषु यदि संख्यातवर्षायुष्का जीवाः संख्याततमे भागे संख्या-
तादिवहुभागेषु वा वर्तन्ते, तर्हि आयुष्कबन्धका मार्गणागतजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते तत्राऽपि
तिर्यगायुर्वन्धकास्तु चतुर्गतिप्रायोग्याः, अतः तिर्यगायुर्वन्धका मार्गणागतजीवानां संख्याततमे भाग
एव ज्ञेयाः, अस्ति चैवमत्र मार्गणासु, तस्मात्तिर्यगायुर्वन्धकाः संख्याततमे भागे ज्ञेयाः । मनुष्य-
नरकायुर्वन्धका असंख्याततमे भागे वर्तन्ते, यतो मार्गणागतजीवेभ्यो मनुष्या नारकाश्च प्रत्येकं
समुदिता वा असंख्येयगुणहीनास्तस्मात्तदायुर्वन्धका अप्यसंख्येयभागमात्राः । 'देवाजगस्स'
इत्यादि, देवायुर्वन्धकानां भागो यथागमः स्वयमेव ज्ञातव्यः, भागार्थः पुनरेवम्-यदि मार्गणागत-
जीवानां संख्यातवर्षायुष्कपर्याप्तसंज्ञितिर्यश्चः संख्याततमे भागे वर्तन्ते, तर्हि देवायुर्वन्धकाः
संख्याततमे भागेऽवसातव्याः, यदि च तेऽसंख्याततमे भागे वर्तन्ते, तर्हि निरुक्तायुर्वन्धका असंख्या-
ततमे भागे ज्ञातव्याः । एवं संख्यातवर्षायुष्कपर्याप्तसंज्ञितिरिथां भागप्रमाणं सम्यगवधार्य देवायुर्वन्ध-
कानां भागप्ररूपणा स्वयं ज्ञेया ॥१०१२॥

अथ सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाद्वये शेषमार्गणासु चायुर्वन्धकानां भागान् भणितु-
काम आह

आऊण अणतसो जेया सम्मखइएसु सेसासु ।

तिरियाजगस्स सखियभागो इयराण खलु असखंसो ॥१०१३॥ (गीतिः)

(प्रे०) "आऊण" इत्यादि, सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्देवमनुष्यायुर्वन्धकानां
भागोऽनन्ततमोऽस्ति, मार्गणागतानन्तबहुभागप्रमाणानां सिद्धानां कर्मबन्धानर्हत्वात् । 'सेसासु'

इत्यादि, अभिहितभिन्नासु शेषमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धकानां संख्याततमो भागोऽस्मिन्, शेषा-
युष्कत्रयस्य यथायोगं बन्धका अमंख्येततमे भागेऽवसेयाः । भावना न्वेवम्—शेषमार्गणागतजीवेषु
संख्येयवर्षाऽऽयुष्का जीवा बहुभागे वर्तन्ते, तेषां च मुख्यवृत्त्या परभवोत्पत्तिस्थानं तिर्यग्रूपम्, अत-
स्तिर्यगायुर्बन्धकाः संख्याततमे भाग एव । स्वप्रायोग्यशेषाऽऽयुर्बन्धका अमंख्याततमे भागेऽवसेयाः ।

ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—नरकौधरत्नप्रभामार्गणाद्वयमौघाऽपर्याप्तप्रकारेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणा-
द्वयं मनुष्यमार्गणाद्वयं देवौघभवनपतिव्यन्तरमार्गणात्रयमौघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन त्रिकलेन्द्रियाणां नव-
मार्गणाः पञ्चेन्द्रियौघाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वयमौघसूक्ष्मौघपर्याप्ताऽपर्याप्तसूक्ष्मवादगौघपर्याप्ता-
ऽपर्याप्तवादरभेदेन सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाश्च प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणात्रयं त्रय-
कायौघाऽपर्याप्तत्रयसकायमार्गणाद्वयं विभङ्गज्ञानमार्गणा तेजोलेख्यामार्गणा सास्वादनमार्गणा चेति
द्विचत्वारिंशन्मार्गणाः । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्पराययथा-
ख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रमन्यवत्वानाहारकरूपास्वेकादशसु मार्गणास्वायुष्कर्मबन्धाभावेन
तद्बन्धकानां भागचिन्ता नैव कार्या । अत्र मार्गणागतजीवेषु बन्धकानां भागाः कथिताः, शेष-
भागा अबन्धकानां ज्ञेयाः ॥१०१३॥

अथ मार्गणासु समस्तजीवापेक्षयाऽऽयुष्कचतुष्कबन्धकानां भागान्भणितुं काम आदौ तिर्यगौघा-
दिमार्गणासु भाषते

अहकिच्च सत्त्वजीवा, तिरियेगिदियणिगोअहरिएसुं ।

सत्त्वजुहमर्णगिदियणिगोअकायउरल्लुगेसु ॥१०१४॥

णपुमचउकसायेसुं दुअणानेसु अजए अचक्खुम्मि ।

अपसत्थतिलेसाभविमिच्छासण्णीसु आहारे ॥१०१५॥

तिरियाउगस्स संखियभागो अत्थि इयरणणतंसो ।

(प्रे०) “अहकिच्च” इत्यादि, तिर्यगौघैकेन्द्रियौघवनस्पतिकायौघमाधारणवनस्पतिकायौघ-
मार्गणास्त्रौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मभेदभिन्नासु तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु
सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसक-
वेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेख्यानीललेखाकापोतलेख्यामन्य-
मिथ्यात्वाऽसंज्ञाहारकमार्गणासु चेति सर्वसंख्यैकोनत्रिंशन्मार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य बन्धकाः
सर्वजीवानां संख्याततमे भागे वर्तन्ते । ‘इयरण’ इत्यादि, यथायोगं तिर्यगायुष्कवर्जंतरायुष्कत्रयस्य
बन्धका अनन्ततमभागप्रमिता वर्तन्ते, प्रथमव्याप्त्या भावनाऽत्र भावनीया ।

ताश्चेमा व्याप्तयः—मार्गणागतजीवाः सर्वेषां जीवानामपेक्षया यद्यनन्तबहुभागेष्वसंख्यबहुभा-
गेषु संख्येयबहुभागेषु संख्याततमभागे वा वर्तमाना भवेयुः, तर्हि तत्र तिर्यगायुष्कबन्धकाः समस्त-
जीवापेक्षया संख्याततमे भागे समुपलभ्येरन्, शेषायुर्बन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे । इति प्रथमव्याप्तिः ।

यस्यां मार्गणायां वर्तमाना जीवा यदि सकलजीवानामसंख्याततमे भागे स्युः, तर्हि तस्यां मार्गणायां तिर्यगायुष्कवन्धका असंख्याततमे भागे शेषायुष्कवन्धकाश्चानन्ततमे भागे प्राप्ता भवेयु-
रिति द्वितीयव्याप्तिः ॥१०१४-१५॥

समस्तजीवानामपेक्षया यदि यस्यां मार्गणायां विद्यमाना जीवा अनन्ततमे भागे स्युः, तर्हि
तत्र स्वप्रायोग्यायुष्कानां वन्धका अनन्ततमे भागेऽवाप्यन्ते । इति तृतीयव्याप्तिः ।

अथौघपर्याप्ताऽपर्याप्तिमेदभिन्नवादरैकेन्द्रियनिर्गोदमार्गणासु शेषमार्गणासु च प्रकृतमाह

संवेसु' एगिदियणिगोअवायरविगप्पेसु ॥१०१६॥

तिरियाउस्स असखियभागो मणुसाउगस्सऽणतसो ।

सप्पाउग्गाऊणं अणतभागोऽत्थि सेसासु' ॥१०१७॥

(प्रे०) “संवेसु” इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तिप्रकारेण तिसृषु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु
तिसृषु च वादरमाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य वन्धका असंख्याततमे भागे वेद्याः,
मनुष्यायुष्कस्य वन्धकाश्चाऽनन्ततमे भागे, घटना पुनरिह द्वितीयव्याप्त्या कार्या, प्रकृतमार्गणा-
गतजीवानां सर्वेषामपेक्षयाऽसंख्याततमभागप्रमाणत्वात् । “सप्पाउग्गाऊणं” इत्यादि, उदितान्यासु
मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कवन्धकाः सकलजीवानपेक्षयाऽनन्ततमे भागे ज्ञेयाः, तृतीयव्याप्त्या भावना
कथनीया, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—तिर्यगोघवर्जपटुचत्वारिंशद्भूमिमार्गणाः नव विकलेन्द्रियाणां
मार्गणास्तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताऽकायमार्गणाः सप्ततेजस्कायमा-
र्गणाः सप्तवायुकायमार्गणास्तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणास्तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः मनोयोग-
मार्गणापञ्चकं वचनयोगमार्गणापञ्चकं वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रयं
स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयं भतिश्रतावधिमनःपर्यवज्ञानचतुष्कं विभङ्गज्ञानमार्गणा संयमौघसामायिक-
च्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपाः पञ्चसंयममार्गणाः, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणाद्वयं तेजः-
पञ्चशुक्लरेयामार्गणात्रयमभव्यमार्गणा सम्यक्त्वौघक्षायिकक्षयोपशमसास्वादनसम्यक्त्वरूपाश्चतु-
र्मार्गणाः संज्ञिमार्गणा चेत्यष्टाविंशत्यधिकशतमार्गणाः । वैक्रियमिश्रकर्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽ-
कपायकेवलज्ञानसूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादश-
मार्गणास्वायुष्कर्मवन्धविरहेण तद्वन्धकानां भागचिन्ता नैव विधीयते ॥१०१६ १७॥

इदानीं मार्गणासु निखिलजीवानाश्रित्यायुष्ककर्मवन्धकानां भागान् भणितुमना आह—

तिरिये तह एगिदियणिगोअवणकायजोगणपुमेसु ।

अण्णाणदुगे अजए अचवखुभविमिच्छअमणेसु' ॥१०१८॥

सप्पाउग्गाऊण ओघव' अवघगा भुणेयव्वा ।

(प्रे०) “तिरिये” इत्यादि, तिर्यगोवैकेन्द्रियौघसाधारणवनस्पतिकायौघवनस्पतिकायौघ-
काययोगौघनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु त्रयोदशमा-

र्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणामवन्धकानां भागा ओधवदवसातव्याः, तदेवम्—देवनरकमनुष्यायुष्काऽ-
वन्धका यथासंभवमनन्तवहुभागेषु तिर्यगायुष्कस्य चाऽवन्धकाः संख्येयवहुभागेषु विज्ञेयाः ।
॥१०१८॥ साम्प्रतमपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु तथौदारिकमिश्रकाययोगकपायचतुष्काऽशुभ
क्षेत्र्यात्रयमार्गणासु प्रस्तुतमाह

अत्थि अपज्जत्तोसुं सुहमेगिदियणिगोएसुं ॥१०१९॥

तह ओरालियमीसे कसायचउगे तिअसुहलेसानुं ।

सखेज्जइमो भागो सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०२०॥

(प्रे०) “अत्थि” इत्यादि, अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिमार्गणयोरौदा-
रिकमिश्रक्रोधमानमायालोभकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणास्वप्नसु मार्गणासु चेति मार्गणा-
दशके स्वप्रायोग्यायुष्काऽवन्धकानां संख्येयतमो भागोऽवसातव्यः, मार्गणागतजीवानां सर्वजीवा-
पेक्षया संख्याततमभागप्रमाणत्वात् । ॥१०१९-२०॥

यास्यायुरवन्धका सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते तास्वाह—

भागो असंखिययमो तिरियमणुस्साउग्गाण विण्णेया ।

सव्वेसुं एगिदियणिगोअबायरविगप्पेसुं ॥१०२१॥

(प्रे०) “भागो” इत्यादि, ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च वादर-
साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुपोरवन्धका असंख्याततमभागे विज्ञेयाः, मार्गणागत-
संख्यातवहुभागादिप्रमाणा जीवास्तदवन्धकाः, ते च सर्वजीवानामसंख्याततमे भागे वर्तन्ते इति कृत्वा ।
॥१०२१॥ अथ सूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणास्यायुष्काऽवन्धकानां भागान् कथयति—

जेया सुहमेगिदियणिगोअआहारगेसु संखसा ।

तिरियाउगसा भागा असंखियाऊण सेसाणं ॥१०२२॥

(प्रे०) ‘जेया’ इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियौघसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघाहारकमार्गणात्रये तिर्य-
गायुष्कस्यावन्धकाः संख्येयवहुभागेषु वर्तन्ते, तद्यथा-यद्यपि मार्गणागतजीवाः सर्वजीवापेक्षयाऽसंख्या-
तवहुभागप्रमाणा वर्तन्ते, तथाऽपि तेष्वेकसंख्याततमभागप्रमाणजीवास्तिर्यगायुर्वध्नन्ति, अतः संख्यात-
वहुभागेषु तदवन्धका लभ्यन्ते । ‘असंखिया’ इत्यादि, तिर्यगायुर्वर्जानां शेषाणां आयुषामवन्धका
असंख्यातवहुपु भागेषु वर्तन्ते, ते चाहारकमार्गणायां देवनरकमनुष्यायुष्काणां सूक्ष्मैकेन्द्रियौघ-
साधारणवनस्पतिकायौघमार्गणयोश्च मनुष्यायुष्कस्य वर्तन्ते, यतः शेषायुष्कस्याऽवन्धकाः प्रकृतमार्गणा-
गतजीवानामनन्तवहुभागप्रमाणाः सन्ति, तथा प्रकृतमार्गणागतजीवाः सर्वजीवानामसंख्यातवहुभाग-
प्रमाणाः सन्ति ॥१०२२॥ । अथ पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमुच्यते—

संखंसा पज्जत्तगसुहमेगिदियणिगोअउरलेसुं ।

सप्पाउग्गाऊणं सेसासु हवेज्जऽणंतसो ॥१०२३॥

(प्रे०) 'संखंसा' इत्यादि, पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकार्यौदारिक-
काययोगमार्गणात्रये स्वप्रायोग्यायुष्काणामवन्धकाः संख्यातबहुभागप्रमाणा वेदयितव्याः, मार्ग-
णागतजीवानां सर्वजीवापेक्षया संख्यातबहुभागप्रमाणत्वात् । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तातिरिक्त-
मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषामवन्धका अनन्तमे भागे विज्ञेयाः, यतो मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवाः सर्व-
जीवानामनन्ततमे भागे वर्तन्ते । ताश्चेमाः शेषमार्गणा अनन्तरोक्ता अष्टाविंशत्यधिकशतमाना
एवात्र ग्राह्याः । वैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगापगतवेदाकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसूक्ष्मसपराययथा
ख्यातसंयमोपशममिश्रसम्यक्त्वानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्ककर्मवन्धाभावेन तदवन्धका-
नामपि भागप्ररूपणा नास्ति । इत्येवं समाप्ता सकलजीवापेक्षया मार्गणास्वायुष्काऽवन्धकानां भाग-
प्ररूपणा, तत्समाप्तौ च समाप्तं भागप्ररूपणाद्वारम् ॥१०२३॥

इति श्री प्रसप्रमाटीकाविभूषिते ब्रह्मविधाने उत्तरप्रकृतिब्रह्मे
प्रथमाधिकारेऽष्टमं भागद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ नवमं परिमाणद्वारम् ॥

साम्प्रतं क्रमायात नवमं परिमाणाख्यद्वारं निरूपयितुमना ग्रन्थकार आदावोघतस्तन्निरूपयन्नाह—

विज्वद्वृणमणुसाऽगतिस्थानं वधगा असखेज्जा ।

सखाहारकुगस्स अणताऽण्णाण इयरा य सखेसि ॥१०२४॥ (गीति)

(प्रे०) ‘विज्वद्वृण’ इत्यादि, परिमाणद्वारेऽस्मिन्नोद्यत आदेशतश्च विवक्षितोत्तरप्रकृतीनां बन्धका अवन्धकाश्च कतिप्रमाणा इति निरूप्यते । तत्रादावोघतो निरूपयति-देवायुर्देवगतिदेवानुपूर्वीनरकायु-
नरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गात्मकं वैक्रियाष्टकं मनुष्यायुर्जिननाम चेति दशानां
प्रकृतीनां बन्धका जीवा असंख्येयप्रमाणाः सन्ति, भावना पुनरेवम् सुरद्विक्रवैक्रियद्विकनरकद्विकसुरा-
युष्करूपाणां मत्तानां प्रकृतीनां मुख्यवृत्त्या बन्धकाः सङ्घसंज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा भवन्ति, ते
च प्रतराऽसंख्येयभागगताकाशप्रदेशप्रमाणाः, अतः प्रकृतीनामायां बन्धकानामसंख्येयप्रमाणत्वमु-
क्तम्, यद्यपि प्रकृतीनामायां बन्धविधायिनः संज्ञिमनुष्या अपि सन्ति, परं ते तु संख्याता एव
तस्मादत्र ते मुख्यवृत्त्या न विवक्षिताः । नरकायुष्कबन्धकाः पुनरसंख्येयसूचिश्रेणिगताऽऽकाशप्रदेश-
प्रमाणा जीवा भवन्ति, ते च मुख्यतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया विज्ञेयाः । मनुष्यायुषो बन्धकाः सूचि-
श्रेण्यसंख्येयतमभागगताकाशप्रदेशप्रमाणा ज्ञातव्याः, चतसृभ्यो गतिभ्य इत्यत्रमाणतयैव जीवानां
मनुष्यायुष्कबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ननु तिर्यग्गतौ मनुष्यायुष्कबन्धकार्हा असुमन्तोऽनन्ता
विद्यन्ते, तर्हि तावत्प्रमाणा मनुष्यायुष्कबन्धका अत्र कथं न प्रतिपादिता इति चेन्न, अभि-
प्रायाऽपरिज्ञानात्, नियमोऽयमत्र “यस्यां गतौ यावत्सख्याका जीवाः, तावतीं संख्यामतिक्रम्या-
ऽधिकतया तद्गतिप्रायोग्यायुष्ककर्मबन्धविधायिनो न भवन्ति” तदनुसारेण मनुष्यायुष्कबन्धकानां
विषयेऽप्येवमेव ज्ञातव्यम्, तद्यथा—मनुष्यगतौ हि सर्वेऽपि मनुष्याः सूचिश्रेण्यसंख्येयतमभाग-
गताकाशप्रदेशप्रमाणा एव संभवन्ति, नातोऽधिकतराः, तस्माद् मनुष्यायुष्कबन्धार्हाणामितरेषा-
मनन्ताना विद्यमानत्वेऽपि मनुष्याधुर्वन्धकाः सूचिश्रेण्यसंख्याततमभागगताकाशप्रदेशप्रमिता एव
प्राप्यन्ते, नाधिकाः । जिननामबन्धकाः केचन सम्यग्दृष्टयः, सर्वेऽपि सम्यग्दृष्टयोऽसख्याताः
तत्रापि तदसंख्येयभागकल्पा अद्धापल्योपमामख्यभागप्रमिता असंख्येया जिननामकर्मबन्धका
ज्ञातव्याः । ‘सखा’ इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, अप्रमत्तसंयतैरेव बध्यमान-
त्वात्तस्य, तेषां च संख्येयमात्रप्रमाणत्वात् । ‘अणता’ इत्यादि, अत्रोक्ता वैक्रियाष्टकप्रभृतीर्द्वादश-
प्रकृतीर्वर्जयित्वा मतिज्ञानावरणीयादीनामष्टाधिकशतशेषप्रकृतीनां बन्धका अनन्ता जीवा वर्तन्ते,
निगोदैरपि बध्यमानत्वात्, तेषां चाऽनन्तत्वात् । ‘इयरा’ इत्यादि, सर्वासां विंशत्यधिकशत-
प्रकृतीनामबन्धका अनन्तजीवाः सन्ति, यतः मिद्धा अनन्ताः, ते च सर्वासामेतासां प्रकृतीनां बन्ध
न कुर्वन्ति, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया निगोदा जीवा अपि सन्ति, तेऽप्यनन्ताः ॥१०२४॥

अथौघत उत्तरप्रकृतिवन्धकानामुत्तरप्रकृतीनामवन्धकानां च परिमाणमुपदर्श्य साम्प्रतमा-
देशतो मार्गणासु निरूपयितुं कामस्तिर्यगोवप्रभृतिमार्गणासु तदुपदर्शयन्नाह-

ओधव्व वघगा खलु सप्पाउग्गाण आउवज्जाणं ।

तिरिकायुरलणपुंसगकसायदुअणाणअजएसु ॥१०२५॥

अणयणतिअसुह्लेसामवियरमिच्छअमणेसु आहारे ।

णवर जिणस्स सखा अत्थि उरलकिण्हणीलासु ॥१०२६॥

(प्रे०) 'ओधव्व' इत्यादि, तिर्यगोघकाययोगौघौदारिकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमाया-
लोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिध्यात्वा
ऽसंज्ञाहारकरूपासु त्रिंशतिमार्गणास्वायुष्कर्ममर्जानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां वन्धका ओघवदवमातव्याः,
तद्यथा-आसु सर्वासु वैक्रियपट्कस्य वन्धका असंख्येयाः, भावनौघवदवसेया । तिर्यगोघमत्यज्ञानश्रुता
ज्ञानाऽभव्यमिध्यात्वाऽसंज्ञिरूपाः पणमार्गणा विहाय काययोगौदारिकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमान-
मायालोभाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याहारकरूपासु चतुर्दशमार्गणासु तीर्थ-
कृन्नामकर्मणो वन्धो भवति, एताभ्यश्चतुर्दशमार्गणाभ्योऽप्यौदारिकाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्या-
रूपाः तिस्रो मार्गणा विनैकादशसु प्रकृतकाययोगादिमार्गणासु जिननामकर्मणो वन्धका असंख्याता
विद्यन्ते, नपुंसकवेदमार्गणायां कापोतलेश्यामार्गणायां च तीर्थकृन्नामकर्मवन्धकानामप्यप्रमाणत्व
नारकजीवानांश्रित्य ज्ञातव्यम्, शेषकाययोगादिरूपासु नवसु मार्गणासु जिननामवन्धकपरिमाणं
देवनारकजीवानांश्रित्यावसातव्यम् । आहारकद्विकस्य वन्धकाः काययोगौघौदारिकाययोगनपुंसक-
वेदक्रोधमानमायालोभाऽचक्षुर्दर्शनभव्याहारकरूपासु दशमार्गणासु प्राप्यन्ते, ते च संख्येयप्रमाणा
एव, एतन्मार्गणागतैरप्रमत्तसंयतैरेव तस्य वध्यमानत्वात्, तेषां च संख्येयप्रमाणत्वात्, शेषासु
प्रकृतदशमार्गणास्वाहारकद्विकस्य वन्धका नैव सन्ति, अप्रमत्तसंयमिनामभावात्तसु । प्रस्तुत-
त्रिंशतिमार्गणासु वैक्रियपट्कजिननामाहारकद्विकायुष्कचतुष्करूपास्त्रयोदशप्रकृतीर्विना शेषाणां सप्ता-
धिकशतप्रकृतीनां वन्धका अनन्ता जीवाः सन्ति, मार्गणास्वास्वनन्तानां निगोदजीवानामामां वन्धक-
त्वेनोपलभ्यमानत्वात् । औदारिकाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु जिननाम-
वन्धकपरिमाणविषये ओघवदतिदेशानुसारेण प्राप्तातिप्रमक्तिवारणाय 'णवर' मित्यादिनाऽपवादपदमु-
पदर्शयति, तदेवम्-तीर्थकृन्नामकर्मणो वन्धका औदारिकाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्याभिधासु तिसृषु
मार्गणासु संख्येया विद्यन्ते, केवाञ्चिद्गर्भजमनुष्याणामेवात्र तद्वन्धविधायित्वात् ॥१०२५-२६॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायामयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकाना परिमाणं चिकथयिषुराह-

अत्थि णरे संखेज्जा तित्थाहारदुगविउवछक्काण ।

सेसाण पयडीणं असंखिया बंधगा णेया ॥१०२७॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां जिननामाहारकद्विकवैक्रियपट्करूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, मार्गणायामस्यां पर्याप्तमनुष्यैस्तीर्थकरनामादिप्रकृतिनवकस्य बध्यमानत्वात्, तेषां च संख्यातत्वात् । 'सेसाण' मित्यादि, प्रकृतिनवकं विहाय शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया बोद्धव्याः, मार्गणायामस्यामसंख्येयैरपर्याप्तमनुष्यैरपि शेषप्रकृतीनां बध्यमानत्वात् ॥१०२७॥

इदानीं पर्याप्तमनुष्यादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं प्रतिपादयन्नाह

सखा सव्वाण दुणरसव्वत्थाहारदुगअवेएसुं ।

अकसायकेवलजुगलमणणाणछसंजमाईसुं ॥१०२८॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाय-योगाऽवेदाऽकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमनःपर्यवज्ञानसंयमौघमांमायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशु-द्विषूक्ष्मसंपराययथाख्यातसंयमरूपासु षोडशमार्गणासु स्वबन्धप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां संख्येयप्रमाणत्वात् । अपगतवेदाऽकषायकेवल-ज्ञानकेवलदर्शनमार्गणासु सिद्धानामपेक्षयाऽनन्तानां जीवानां विद्यमानत्वेऽपि संख्याता एव जीवाः सातवेदनीयप्रकृतिबन्धकत्वेन प्राप्यन्त इति विशेषः ॥१०२८॥

अथैकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं कथयति—

विण्णेया सव्वेसि सप्पाउग्गाणि बधगाऽणता ।

सव्वेसुं एगिदियणिगोअमेएसुं वणकाये ॥१०२९॥

(प्रे०) 'विण्णेया' इत्यादि, ओघबूक्ष्मौघबूक्ष्मपर्याप्तबूक्ष्माऽपर्याप्तवादरौघवादरपर्याप्तवाद-रापर्याप्तभेदभिन्नासु सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पति-कायौघमार्गणायां चेति पञ्चदशमार्गणासु वैक्रियपट्काहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्कवर्जशेषसर्वसप्ता-भ्यधिकशतप्रकृतीनां बन्धका जीवा अनन्ता विज्ञेयाः, मार्गणास्वासु जीवानामानन्त्यात् ॥१०२९॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमाह—

दुपणिदियतसपणमणवयपुरिसतिणाणओहिचक्खसु ।

सुहलेसासम्मेषुं वेअगल्लएसुं सणिग्गिम्मि ॥१०३०॥

सलेज्जा विण्णेया आहारदुगस्स बधगा जीवा ।

होअन्ति असलेज्जा, सप्पाउग्गाणि सेसाण ॥१०३१॥

(प्रे०) "दुपणिदिय" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तत्रसमनःसामा-न्य-सत्यमनः-असत्यमनः-सत्यामत्यमनः-असत्यामृषामनः-धचनौधसत्यवचनाऽसत्यवचनसत्यासत्य-वचनाऽसत्यामृषावचनपुरुषवेदमतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधित्तानाऽवधिदर्शनचक्षुर्दर्शनतेजोलेश्यापन्नलेश्या-

शुक्लेश्यासम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वसंज्ञिरूपासु सप्तविंशतिमार्गणास्वाहारकद्वि-
कस्य बन्धका जीवाः संख्येयाः, ओधवदप्रमत्तसंयतैरेव मार्गणास्वासु तस्य पध्यमानत्वात्, तेषां च
संख्येयप्रमितत्वात् । “होअन्ति” इत्यादि, मार्गणास्वास्वाहारकद्विकवर्जशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां
बन्धका असंख्येया जीवा भवन्ति, मार्गणास्वासु जीवानामवर्ण्येयत्वात् । सम्यक्त्वौघक्षायिक-
सम्यक्त्वयोर्जीवानामानन्त्येऽपि भिद्धानामवन्धकत्वेन बन्धकजीवानामसंख्येयत्वात् ॥१०३०-३१॥

अथौदारिकमिश्रादिमार्गणासु परिमाणमुच्यते

सखाऽस्थि उरलमीसे कम्मणजोगे तथा अणाहारे ।

सुरविउवदुगजिणाण सेसाण वधगाऽणता ॥१०३२॥

(प्रे०) ‘संखाऽस्थि’ इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगकर्मणकाययोगाऽनाहारकलक्षणासु
तिसृषु मार्गणासु देवगतिदेवानुपूर्ववैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य
बन्धकाः संख्येया विद्यन्ते, पर्याप्तमनुष्येष्टपथमानाः पर्याप्तमनुष्येभ्यश्च्युत्त्वान्यत्रोत्पद्यमानाः सम्यग्द-
ष्ट्य एव तासां बन्धकत्वात्तथा पर्याप्तमनुष्याणामपि संख्यातत्वादिति । ‘सेसाणं’ इत्यादि, निरुक्त-
प्रकृतिपञ्चकमायुष्कचतुष्कं च वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृतमार्गणासु बन्धका अनन्ता
वेदयितव्याः, मार्गणास्वासु जीवानामानन्त्यात् ॥१०३२॥

अथ वैक्रियमिश्रादिमार्गणाद्वये तदुच्यते

वेउव्वमीसजोगे देसे संखाऽस्थि तित्थणामस्स ।

होअन्ति असखेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१०३३॥

(प्रे०) ‘वेउव्व’ इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां देशविरतिमार्गणायां च जिननामकर्मणो
बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, तदेवम्-निकाचितजिननामसत्कर्मणो मनुष्या एव मृत्वा देवभवे नरक-
भवे वा जायमाना वैक्रियमिश्राऽवस्थायां जिननामकर्म बध्नन्ति, ते च संख्यातप्रमाणा एव, निकाचि
तजिननामसत्कर्मणां मनुष्याणां तावत्प्रमाणत्वात् । देशविरतिमार्गणायां मनुष्या एव जिननामकर्मणो
बन्धकाः, ते च संख्येया एव । “होअन्ति” इत्यादि, मार्गणयोरनयोर्जिननामवर्जानां स्वप्रायो-
ग्याणां शेषप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया भवन्ति, मार्गणाद्वयेऽप्यस्मिन्नसंख्येयजीवानां सङ्ख्यात् ।
॥१०३३॥ अथ स्त्रीवेदोपशमसम्यक्त्वमार्गणयोः शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणमाह-

तित्थाहारदुग्गाण जेया थोउवसमेसु सखेज्जा ।

सेसाण अमखेज्जा सेसासु वृन्ति सव्वेसि ॥१०३४॥

(प्रे०) ‘नित्था’ इत्यादि, स्त्रीवेदोपशमसम्यक्त्वमार्गणयोस्तीर्थकृत्नामकर्महारकद्विकलक्षण-
स्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकाः संख्येया ज्ञेयाः । मावना पुनरेवम्-स्त्रीवेदमार्गणायां जिननामबन्धका
मनुष्या एव भवन्ति, ते च संख्येयाः । उपशमे जिननामबन्धका मनुष्या वर्तन्ते, ते च संख्येयाः,
तथा देवगतौ श्रेणौ कालं कृत्वा भवाधान्तमुद्भूते वर्तमाना देवा अपि वर्तन्ते, तेऽपि च संख्येया एव,

उपशमश्रेणौ कालं कृत्वा संख्येयानां मनुष्यणामेवोपस्थमानत्वात् । निरुक्तमार्गणादयं आहारकद्विकस्य
बन्धकत्वेन संयताः सन्ति, अतस्तद्वन्धकाः संख्याता अमिहिताः, तेषां संख्येयत्वात् । 'सेसाण'
इत्यादि, शेषप्रकृतीनां बन्धका असख्याताः, प्रकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् शेषप्रकृतीनां
बन्धप्रायोग्यत्वाच्च । एतावता पडशीतिमार्गणास्त्रायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणं
प्रोक्तम् । साम्प्रतं 'सेसासु' इत्यादिना शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां परिमाणमुपदर्शयति,
तदेवम्-अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघाऽपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-
निमतीरूपारचतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, सर्वार्थसिद्धमार्गणावर्जिताः शेषैकोनत्रिंशद्देव-
मार्गणाः, नव त्रिकलेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, पृथ्वीकायिकानां सप्तमार्गणाः, अप-
कायिकानां सप्तमार्गणाः, तैजस्कायिकानां सप्तमार्गणाः, वायुकायिकानां सप्तमार्गणाः, प्रत्येकशरीरवन-
स्पतिकायिकानां तिस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तत्रयकायमार्गणा, वैक्रियकाययोगमार्गणा, विभङ्गजानमार्गणा,
मिश्रसास्त्रादनमभ्यक्तमार्गणादयं चेत्यष्टाशीतिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कर्मवर्जानामुत्तरप्रकृ-
तीनामसंख्येया बन्धका बोद्धव्याः, मार्गणास्त्रासु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् ॥१०३४॥ इति मार्गे-
णास्त्रायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतिबन्धकानां परिमाणम् ।

साम्प्रतमायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनामबन्धकानां परिमाणं दिदृक्षुस्तिर्यगोधमार्गणायामाह-

तिरिथे अवंधगाऽस्त्य असंख्यं वारधुवबंधिउरलाणं ।

जाणाऽगवज्जाणं सेसाण हवेज्ज सिमणता ॥१०३५॥

(प्रे०) 'तिरिथे' इत्यादि, सर्वस्मिन् काले विवक्षितप्रकृतेः केचन जीवा बन्धकत्वेनोपल-
भ्यन्ते, केचन चाऽबन्धकत्वेन, ये तु बन्धकत्वेनोपलभ्यन्ते, तेषां परिमाणं प्रागेव प्रदर्शितम्, अधुना-
ऽबन्धकत्वेनोपलभ्यमानानां परिमाणं कियत् ? तद् दर्शयति-तिर्यक्सामान्यमार्गणाया मिथ्यात्वमोह-
नीयस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानान्तरणचतुष्कलक्षणानां द्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतीना-
मौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽसंख्येया जीवा अबन्धकाः सन्ति, भावना पुनरेवम्-मिथ्यात्ववर्जशेषगुण-
स्थानस्थिता उक्तध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया यथासंभव प्राप्यन्ते, तेषां चासंख्येयत्वात्, औदारि-
कशरीरस्याबन्धकतया पर्याप्तसंख्यसंज्ञिजीवा भवन्ति, तेषामप्यसंख्येयत्वादुक्तत्रयोदशप्रकृतीनामबन्धका
असख्याता उक्ता इति । 'जाण' इत्यादि, उपर्युक्तमिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतित्रयोदशप्रकृतिव्यतिरि-
क्तासु शेषप्रकृतिषु यासामसातवेदनीयाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका जीवा उपलब्धा भवन्ति, तासां
प्रकृतीनामबन्धका जीवास्तिर्यगोधमार्गणायामनन्ताः, जीवानामत्राऽनन्त्यात् । ताश्चेमा अध्रुवबन्धि-
प्रकृतयः-औदारिकशरीराहारकद्विकजिननामायुष्कचतुष्कवर्जपञ्चषष्टिप्रकृतय इति ॥१०३५॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायां प्रस्तुतमुच्यते--

धुवबंधिउरलाणं णरम्मि सखा असंखियाऽज्जोसि ।

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, मनुष्यौधमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-
स्य चावन्धकाः संख्याता एव, आसामवन्धकतया कतिपयानां पर्याप्तमनुष्याणामेव सङ्ख्यात्तेषां च
संख्यातत्वादिति । 'असखिया' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामवन्धका असंख्याता ज्ञातव्याः, मार्ग-
णावर्तिनामसंख्यातापर्याप्तमनुष्याणामप्यामामवन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति ।

अथ द्विमनुष्यादिमार्गणासु परिमाणमवन्धकानामाह

दुमणुससंवत्येसुं आहारदुग्गि मणणाजे ॥१०३६॥
सजमसामइएसुं छेओवट्टावणगिग परिहारे ।
अह्खाये सखा सि सप्पाजग्गाण जाणइत्थि ॥१०३७॥

(प्रे०) 'दुमणुस' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाय-
योगमनःपर्यवजानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धियथाख्यातसंयमरूपासु मार्गणासु
यामां प्रकृतीनामवन्धका विधन्ते तामां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां संख्येया अवन्धका ज्ञातव्याः, मार्गणा-
स्वासु संख्येयानामेव जीवानां भावात् ॥१०३६-३७॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतमुच्यते

जाणइत्थि अणता सि संवेगिदियणिगोअहरिएसु ।
गयवेए अकसाये केवलदुगसम्मखइअज्जाहारे ॥१०३८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, ओधसूक्ष्मौधपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मवाद्रौघपर्याप्तवाद्राऽपर्याप्त
वादरभेदभिन्नासु सप्तैकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकार्यौधमार्ग-
णायां गतवेदाऽकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनमभ्यक्तवौघक्षायिकसम्भक्तवानाहारकलक्षणासु च सप्तसु
मार्गणासु यासां प्रकृतीनामवन्धका विधन्ते, तासां प्रकृतीनां तेऽवन्धका अनन्ता असंख्येयाः, तद्यथा-
मर्वेकेन्द्रियनिगोदभेदेषु वनस्पतिकार्यौघे चौदारिकशरीरवर्जशेषवन्धयोग्याभ्रुवन्धिप्रकृतीनाम-
वन्धका अनन्ता जीवा वर्तन्ते । तथा गतवेदादिसप्तमार्गणासु स्ववन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृती-
नामवन्धका अनन्ताः सन्ति, अनन्तप्रमाणानां सिद्धानामत्राऽवन्धकतया सङ्ख्यात् ॥१०३८॥

इदानीं पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां परिमाणमाह--

सखा दुपणिदियतसपणमणवयचक्खुसुक्कसण्णीसुं ।
ध्रुववंधोण खलु पणतीसाअ असखियाऽण्णेसि ॥१०३९॥
णवर पचिदियपरधाऊसासतसचउगणामाणं ।
सुक्काए लेसाए संसेज्जा खलु मुणेयव्वा ॥१०४०॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौधपर्याप्तत्रसलक्षणासु चतसृषु मार्ग-
णासु पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु पञ्चसु वचनयोगमार्गणासु चक्षुर्दर्शनशुक्ललेस्यासंज्ञिरूपासु च
तिसृषु मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्ता-

तैजसकामेणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघुपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चवरूपाणां पञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां संख्येया अचन्धका बोद्धव्याः, संयतमनुष्याणामेवासामचन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्तेषां च संख्येयत्वादिति । 'असंख्यया' इत्यादि, मार्गणास्वाध्वक्तपञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामचन्धका अमंख्येया जीवा वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् तेष्वसंख्येयप्रमाणैः कैश्चिज्जीवैर्वध्यमानत्वात्कैश्चिज्जीवैश्चाऽवध्यमानत्वात् । अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामतिप्रसक्तामतिव्याप्तिमपाकर्तुंकाम आह—“णवरं” इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासत्रयचतुष्करूपसप्तनामप्रकृतीनामचन्धकाः संख्यातप्रमाणा एव सन्ति, यतः प्रस्तुतमार्गणायां प्रोक्तप्रकृतिसप्तकस्याचन्धकतया केवलश्रेणिगताः सयोगिकेवलिनो जीवा एव प्राप्यन्ते, ते च संख्याता एव सन्ति ॥१०३९-४०॥

अथ काययोगौघादिमार्गणासु तदाह—

कायउरलजोगेसु तहा अचख्खुमवियेसु आहारे ।

विण्णेया सखेज्जा धुववधीण पणतीसाए ॥१०४१॥

होअन्ति असखेज्जा बारसधुववंधिउरलगामाणं ।

सेसाणं पयडीण अडसट्ठीअ हविरेउणता ॥१०४२॥

(प्रे०) 'काय' इत्यादि, काययोगौघौदारिककाययोगमार्गणयोगचक्षुर्दर्शनभोग्याहारकमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूप द्वादशप्रकृतिवर्जविहाय शेषाणां पञ्चत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामचन्धकाः संख्येया वेदयितव्याः, केवलं संयतानामेवासामचन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति । 'होअन्ति' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां द्वादशप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽचन्धका जीवा असंख्येया अवसातव्याः, केपाञ्चित् पञ्चेन्द्रियाणां तदचन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'सेसाणि' इत्यादि, आयुष्कचतुष्कौदारिकशरीरनामकर्मवर्जशेषसर्वाष्टपृथग्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामचन्धका अनन्ता जीवा विद्यन्ते, प्रकृतीनामासामध्रुववन्धित्वेन सर्वदैव कैश्चिज्जीवैर्वध्यमानत्वेऽपि कैश्चिदनन्तैर्जीवैरवध्यमानत्वात् ॥१०४१-२॥

अधुनौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यचन्धकानां परिमाणमाह—

सखाऽत्थि उरलमीसे छायालीसधुववंधिउरलाणं ।

मिच्छस्स असखेज्जा अवसेसाणं अणताऽत्थि ॥१०४३॥

(प्रे०) 'संखा' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्ववर्जपट्त्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामचन्धकाः संख्याता एव ज्ञातव्याः, अनन्तानुवन्धिचतुष्कस्त्यानद्वित्रिकौदारिकशरीराणां शेषभ्रुववन्धिनीनां चाचन्धकतया क्रमेण अविरतसम्यग्दृक्सयोगिकेवलिनां केवलं सयोगिकेवलिनां

च प्राप्यमाणत्वात्तेषां च संख्येयत्वात् । मिथ्यात्वस्यावन्धका असंख्याताः, असंख्येयसास्वाद-
नानां तदवन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । शेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धका अनन्ताः
सन्ति, अनन्तानन्तनिगोदानां तदवन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति ॥१०४३॥

अथ कर्मणकाययोगादिमार्गणसु तदाह—

कस्मे कायव णवरि दुइअकसायउरलाण सखेज्जा ।

जाणत्थि णिणिविण्व उ पुमथीतेउदुगवेअगेसुं सि ॥१०४४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'कस्मे' इत्यादि, कर्मणकाययोगमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरनाम-
कर्मरूपं प्रकृतिपञ्चकं वर्जयित्वा शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामवन्धकाः काययोगौधमार्गणावदवसेयाः
तदेवम्—मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिद्वादशकं वर्जयित्वा शेषाणां ध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः
संख्येयाः, मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्यावन्धका असंख्येयाः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
द्वयवेदत्रयनरकगतिवर्जगतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकर्महननपट्कसंस्थानपट्कनरकानु-
पूर्ववर्जानुपूर्वीत्रयखगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासनामजिननामभोत्रद्वयरू-
पाणां चतुःपट्चद्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धका अनन्ताः, भावनाऽप्यत्र काययोगौधमार्गणावद् भावनीया ।
अथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीररूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्याऽवन्धकाः प्रस्तुतमार्गणायामतिदे-
शानुसारेणाऽसंख्याताः प्राप्नुयुः, तच्च न संभवति, अतो विशेषद्योतनार्थं 'णवरि' इत्यादिनाह—
द्वितीयकपायात्मकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽवन्धकाः संख्याताः सन्ति, भावना पुनरेवम्—
प्रकृतमार्गणायां द्वितीयकपायचतुष्कस्याऽवन्धकाः सयोगिकेवलिन एव विद्यन्ते, ते च संख्याताः
सन्ति, तथौदारिकशरीरस्याऽवन्धकाश्चतुर्थगुणस्थानवर्तितिर्यङ्मनुष्या सयोगिकेवलिनश्च वर्तन्ते,
ते च संख्याता एव, तस्मात्प्रकृतिपञ्चकस्याऽवन्धकाः संख्याता एवाऽमिहिताः, न तु काययोगौध-
मार्गणावदसंख्याताः, तत्र त्वसंख्यातैर्देशविरततिर्यग्भिर्निरुक्तप्रकृतिपञ्चकस्याऽवध्यमानत्वात् ।

'पुम' इत्यादि, पुरुषवेदस्त्रीवेदतेजोलेश्यापञ्चलेश्यावेदकसम्बन्धमार्गणसु यामां प्रकृ-
तीनामवन्धका उपलभ्यन्ते तामां ते पञ्चेन्द्रियौधमार्गणावद् वेक्तव्याः । 'जाणत्थि' इत्यनेन
विशेषं सूचयति—तद्यथा—पञ्चेन्द्रियमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, अत्र तु न
सर्वासां प्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, परं यासां प्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, तान् वयं दर्शयामः—
स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टाद-
शानां प्रकृतीनामवन्धका नैव प्राप्यन्ते तद्वर्जशेषप्रकृतीनामवन्धकाः सर्वथा पञ्चेन्द्रियौधवज्ज्ञातव्याः ।
तेजोलेश्यामार्गणायां त्वनन्तरोक्तोष्टादशप्रकृतीनां निद्राद्विकर्मयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकर्मणाऽगुरु-
लघूपघातनिर्माणरूपाणां ध्रुववन्धित्रयोदशप्रकृतीनां वादरत्रिकपराधातोच्छ्वासरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य
चेति सर्वसंख्यया षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामवन्धका नैव प्राप्यन्ते, एवमेव पञ्चलेश्यामार्गणायां नवरं पञ्चे-

न्द्रियव्रसनागोरप्यवन्धका नैव प्राप्यन्ते, मार्गणाद्वेऽस्मिन्नुक्तप्रकृतिवर्जशेषवन्धप्रायोग्यप्रकृती-
नामवन्धकाः पञ्चेन्द्रियौघवज्जातव्या इति । वेदकसम्यक्त्वमार्गणायामवन्धकानां परिमाणं त्वेवम्—
प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यावन्धकाः संख्याताः, सातवेदनीयादिद्वादशाहारकद्विकजिननाममनुष्य-
पञ्चकदेवद्विकवैक्रियद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामवन्धका असंख्याता
वर्तन्ते, शेषप्रकृतीनामवन्धका नैव प्राप्यन्ते ॥१०४४॥

अथ नपुंसकवेदादिमार्गणास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामवन्धकानां परिमाणमाह—

णपुमचउकसायेसुं दुअणाणअजयतिअसुहलेसामुं ।

अभवे मिच्छे अमणे तेसिं कायव्व जाणडत्थि ॥१०४५॥

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमकृष्ण-
लेश्यानीललेश्याकापांतलेश्याऽभयमिथ्यात्वाऽसंजिह्वासु चतुर्दशमार्गणासु यामां प्रकृतीनाम-
वन्धका वर्तन्ते, तामा प्रकृतीनां तेऽवन्धकाः काययोगौघमार्गणावद्बोद्धव्याः, तद्यथा—यासा मिथ्यात्वा-
द्यप्रकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकगरीरप्रकृतीनामवन्धका यावत्तमार्गणासु सन्ति, तासु तामां तेऽ-
संख्याताः प्राप्यन्ते, यत्र शेषपञ्चत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतिषु यासां प्रत्याख्यानावरणकषायादीनामवन्धकाः
सन्ति, तत्र तामां ते संख्यातप्रमाणा एव ज्ञेयाः, संयतमनुष्याणामेव तासामवन्धकतया प्राप्यमाणत्वादिति,
शेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धका यासु यासां प्रकृतीनां सन्ति, तासु तासां प्रकृतीनां तेऽनन्ता
जातव्याः ॥१०४५॥ इदानीं ज्ञानत्रिकादिषु प्रकृतमाह—

णाणतिगोहीसु उवसमे य धुववधिपंचतीसाए ।

पुरिसपणिदिसुहागिहपरधूसाससुहलगईण ॥१०४६॥

तह तसचउगसुहगतिगउच्चाणं संखिया असंखेज्जा ।

सेसाण सेसासु य सप्पाउग्गाण जाणडत्थि ॥१०४७॥

(प्रे०) 'णाणतिगोहीसु' इत्यादि, भतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽब्रह्मज्ञानावधिदर्शनोपशमसम्य-
क्त्वलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्याना-
वरणचतुष्कवर्जानां ज्ञानावरणीयादीनां पञ्चत्रिंशच्छेषध्रुववन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजाति-
समचतुरस्रमस्थानपराधातोच्छ्वासशुभलगतित्रसवादरपयतिप्रत्येकसुभगमुस्वराऽऽदेयोच्चैर्गोत्ररूपाणां
प्रकृतीनां चाऽवन्धकाः संख्येया वेदयितव्याः, संख्यातानामेव संयतमनुष्याणां तामामवन्धकतया
प्राप्यमाणत्वादिति । 'असंखेज्जा' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
द्वयदेवमनुष्यगतिद्वयौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रथममंडननदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्थिरशुभयशः-
कीर्त्यस्विराऽशुभायशःकीर्तिजिननामरूपाणामष्टाविंशतिशेषप्रकृतीनामवन्धका असंख्येयाः, मार्गणा-
स्त्रासु वर्तमानानां जीवानामसंख्येयप्रमाणत्वात् । कैश्चित्प्रकृतीनामासां वध्यमानत्वात् कैश्चिच्चाऽ-
वध्यमानत्वात् । 'सेसासु' इत्यादि, अत्राभिहितान्यासु मार्गणासु यामां प्रकृतीनामवन्धका जीवा

उपलभ्यन्ते, तेऽसंख्येया एव, शेषमार्गणासु जीवानामसंख्येतया मद्भावात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अष्टनरकमार्गणाचतुःपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणासर्वार्थसिद्धवर्जशेषैकोनत्रिंशद्देवमार्गणारूपद्विचत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपदशेन्द्रियमार्गणाः, ओधसूक्ष्मौधसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तवादरौघवादरपर्याप्तवादराऽपर्याप्तभेदभिन्नाः सप्त पृथ्वीकायमार्गणाः सप्ताष्कायमार्गणाः सप्ततेजस्कायमार्गणाः सप्तवायुकायिवमार्गणाः ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नास्तिष्ठः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रयकायमार्गणा वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, देशविरतिसंयममार्गणा मिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणात्रयं चेति नवतिः शेषमार्गणाः । सूक्ष्मसंपराये तु मवेऽपि प्राणिनः स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका एव तस्मादत्र तासामबन्धकानामभावः ॥१०४६७॥ इति आयुष्कर्मवर्जशेषप्रकृतीनामबन्धकानां परिमाणम् ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्कर्मबन्धकानां परिमाणमोधवदतिदिशन्नाह

तिरिये सन्वेगिदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसु ।

णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयअचक्खुसु ॥१०४८॥

तिअसुहलेसामवियरमिच्छतासणिगेसु आहारे ।

ओधव्व बधगा खलु सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०४९॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोधमार्गणायाओधसूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्तवादरौघवादरपर्याप्तवादराऽपर्याप्तभेदेन सप्तस्वेकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च निगोदमार्गणासु वनस्पतिमामान्यमार्गणायां काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञाहारक- -- मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्काणां बन्धका ओधवदवमातव्याः, तदेवम् सप्तैकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु निगोदेषु वनस्पतिकाये औदारिकमिश्रकाययोगे च तिर्यगायुष्कस्य बन्धका अनन्ता मनुष्यायुष्कस्य बन्धकास्त्वसंख्याता वर्तन्ते, तथैतदतिरिक्तास्वत्रोक्तासु शेषमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धका अनन्ता शेषायुष्कत्रयस्य बन्धका असंख्याता अवसेयाः ॥१०४८-९॥ अथ गत्यादिक्रमेण प्रकृतमाह

णिरयपढमाइध्णिरयदेवसहस्सारअतविउवेसु ।

तेउपउमसासायणतिणाणऽवहिंसमवेअगेसु च ॥१०५०॥ (गीति)

मणुआउगस्स सखा इयरण असखिया णरे संखा ।

णारगदेवाऊण असखिया तिरिणराऊणं ॥१०५१॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौधरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभानरकमार्गणासु देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमौधमेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रप्रल्लोकलान्तकशुकसहस्राररूपासु द्वादशसु देवमार्गणासु वैक्रियकाययोगमार्गणायां तेजोलेश्यापद्मलेश्यासास्वादनसम्यक्त्वमतिज्ञानश्रुतज्ञानाविधिज्ञानाऽविधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु नवसु च मार्गणासु मनुष्या-

युष्कस्य बन्धकाः संख्येयाः सन्ति, यतो ह्यासु मार्गणासु वर्तमाना जीवा स्वभवाच्छ्रुत्वा यदि मनुष्य-
भवे जायन्ते, तर्हि पर्याप्तगर्भजमनुष्यत्वेनैव, मनुष्यगतौ च पर्याप्तगर्भजमनुष्यास्संख्येया एव वर्तन्ते ।
'इयराण' इत्यादि, तेजोलेश्यापद्मलेख्यामार्गणयोः सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां च ये देवतिर्यगा-
युष्कबन्धकाः, अत्रोक्तासु देवमार्गणासु नरकमार्गणासु च ये तिर्यगायुष्कबन्धकाः, तथा तिसृषु
मतिज्ञानादिमार्गणामु सम्यक्त्वौधक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणाद्वयेऽवधिदर्शनमार्गणायां च ये देवा-
युष्कबन्धकाः, ते प्रत्येकमसंख्येया ज्ञातव्याः, तद्यथा—मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा असंख्येया
वर्तन्ते, स्वभवाच्छ्रुत्वा यत्र ते जायन्ते तत्राप्यसंख्या जीवा वर्तन्ते, तस्मान्मार्गणास्वास्तथायुष्क-
बन्धका असंख्येयप्रमाणत्वेनोपलभ्यन्ते । 'संख्या' इत्यादि; मनुष्यौघे नरकदेवायुष्कयोर्वन्धकाः
संख्येयाः, अत्रैतदायुष्कद्वयस्य पर्याप्तगर्भजमनुष्यैरेव बध्यमानत्वात् । 'असंख्येया' इत्यादि,
तिर्यगमनुष्यायुष्कयोर्वन्धका असंख्येयाः, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिबन्धस्य पर्याप्ताऽपर्याप्तमनुष्यसाधा-
रणत्वात् ॥१०५०-५१॥ अथ पर्याप्तमनुष्यादिरूपासु कतिपयमार्गणासु शेषमार्गणासु च तदाह

दुणराणयाद्गोसुं, आहारदुग्गमणपज्जवेसु तहा ।

सजमसामइएसुं छेए परिहारसुक्कलइएसुं ॥१०५२॥ (गीति)

सखेज्जा आऊण सप्पाउग्गाण बंधगा णेया ।

सेसासु मग्गणासु अडसट्ठीए असखेज्जा ॥१०५३॥

(प्रे०) 'दुणरा' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोरानतप्राणताऽऽरणाऽश्रुतनवग्रैवेयक-
पञ्चानुत्तररूपास्वष्टादशदेवमार्गणासु, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघ-
सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिशुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वरूपासु नवसु च मार्गणासु स्व-
प्रायोग्यायुष्कस्य बन्धकाः संख्येया ज्ञेयाः, तदित्थम्—पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोर्वर्तमाना जीवा-
श्चतुर्णामप्यायुष्काणां बन्धकाः, ते च संख्येयाः, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानामसुमतामेतावत्प्रमाणत्वात् ।
आनताद्यष्टादशदेवमार्गणासु वर्तमाना जीवाः केवलं मनुष्यायुष्कस्यैव बन्धकाः, ततश्च च्युत्वा तेषां
मनुष्यभवे पर्याप्तगर्भजमनुष्यत्वेनैवोत्पद्यमानत्वात्, गर्भजमनुष्यास्तु संख्येया एव तस्मादासु देव-
मार्गणासु संख्येयप्रमाणत्वमायुष्कबन्धकानामुपदर्शितम् । आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनः-
पर्यवज्ञानसंयमौघमामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु मार्गणासु वर्तमाना जीवा देवायु-
ष्कस्यैव बन्धका भवन्ति, ते च संख्येयाः, यतो मार्गणास्वासु संख्येया एव जीवाः सन्ति । शुक्ल-
लेश्याया मनुष्यायुष्कस्य बन्धका देवाः, देवायुष्कस्य च मनुष्या भवन्ति, ते च संख्येयाः, गर्भज-
मनुष्याणां संख्येयप्रमाणत्वात् । क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामायुष्कस्य मूलप्रकृतीना बन्धकाः संख्या-
ता वर्तन्ते, अतस्तदुत्तरप्रकृतीना बन्धकाः प्रत्येकमपि संख्याता एव प्राप्यन्ते । अत्रायुर्वन्धकाः कुतः
संख्याता इति जिज्ञासायमस्यैव बन्धविधानग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धस्य प्रेमप्रभाटीका-ऽवलोक-
नीया । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषास्वष्टपष्टिमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां बन्धका असंख्येया-

ज्ञातव्याः, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-सप्तमनरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-
ऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रिययोनिमतीरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, नव
विकलेन्द्रियमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणात्रयम्, सप्त पृथ्वीकायमा-
र्गणाः, सप्ताऽष्कायमार्गणाः, सप्त तैजस्कायिकमार्गणाः, सप्तवायुकायिकमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन
तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणास्तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्च वचनयोगमा-
र्गणाः, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, देशविरतिसंयममार्गणा, चक्षुर्दर्शनमार्गणा,
संज्ञिमार्गणा चेति ॥ १०५२-३ ॥ साम्प्रतं मार्गणानु स्वप्रायोग्यायुष्काऽवन्धकानां परिमाणमुपदर्शयन्नाह-

तिरिचे सन्वेगिदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसुं ।

णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयअचक्खसुं ॥ १०५४ ॥

तिअसुहलेसाभविअरसम्मेसुं खड्ममिच्छअमणेसुं ।

आहारे आऊणं होअन्ति अवधगाऽणता ॥ १०५५ ॥

(प्रे०) 'तिरिचे' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायामोघसूक्ष्मौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मवादरौघ-
पर्याप्तवादराऽपर्याप्तवादरभेदभिन्नासु सप्तम्बेकेन्द्रियमार्गणानु, सप्तसु निगोदमार्गणानु वनस्पतिकायौघ-
मार्गणायां काययोगौघौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञान-
श्रृताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेख्याकापोतलेख्यामव्याऽमव्यसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्य-
क्त्वमिथ्यात्वाऽसंख्याहारकमार्गणास्विति सर्वसंख्ययाऽष्टात्रिंशन्मार्गणानु स्ववन्धार्हायुष्काणामवन्धका
अनन्ता विद्यन्ते, मार्गणास्वासु जीवानामनन्तानां विद्यमानत्वात् ॥ १०५४-५५ ॥

दुमणुससव्वत्थेसु आहारदुगमणपज्जवेसु तथा ।

चउसजमाइगेसुं सखाऽत्थि असखियाऽण्णासु ॥ १०५६ ॥

(प्रे०) 'दुमणुस' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमर्थसिद्धाहारककाययोगाहारकमिश्रकाय-
योगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु दशमार्गणानु स्वप्रायोग्या-
युष्कस्याऽवन्धकाः संख्येया बोद्धव्याः, मार्गणास्वासु जीवानां संख्येयप्रमाणत्वात् । 'असंखिया'
इत्यादि, अत्राभिहितशेषमार्गणानु यथायोगं स्वप्रायोग्यायुष्काऽवन्धका असंख्येयाः, शेषमार्ग-
णानु जीवानामसंख्येयप्रमाणतया वर्तमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-तिर्यगोघपर्याप्तमनुष्य-
मानुषीमर्थसिद्धवर्जत्रिचत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, नवविकलाक्षमार्गणास्त्रिपञ्चेन्द्रियमार्गणाश्चेति द्वाद-
शेन्द्रियमार्गणाः, सर्वपृथग्यज्ञेजोवायुकायप्रत्येकवनस्पतिकायत्रसकायमार्गणा इति चतुस्त्रिंशत् काय-
मार्गणाः, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगवैक्रियकाययोगरूपा एकादशयोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणे,
त्रिज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणाचतुष्कम्, देशविरतमार्गणा, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणे, त्रिप्रशस्तलेख्यामार्गणाः,
वेदकसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणे, संज्ञिमार्गणा चेति सर्वसंख्यया पञ्चदशाधिकशतमार्गणा इति ॥ १०५६ ॥
इति श्री प्रेमप्रभाटिकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे नवम परिमाणद्वार समाप्तम् ॥

अथ दशमं क्षेत्रद्वारम्

अधुना क्रमलब्धं दशममुत्तरप्रकृतिबन्धकाऽवन्धकानां क्षेत्रद्वारं विविवरिषुमादौवतो बन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

णिरयणरसुराडचिउवछक्काहारदुगतित्थणामाण ।

लोकासखियभागे सेसाणं वधगाऽत्थि सव्वजगे ॥१०५७॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकनरदेवायुष्कत्रयस्य देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य-
वैक्रियपट्कस्याऽऽहारकद्विकस्य जिननामकर्मणश्च बन्धका वैशाखसस्थानवत्स्थितपदकटिमंस्थकरयुग्म-
नराकृतिलोकक्षेत्रस्याऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—अत्र पुनरयं नियमः, मार्ग-
णासु वर्तमाना विवक्षितप्रकृतिबन्धका वा प्राणिनोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यापेक्षया न्यूना भवेयुः,
तर्हि बाधुकायिकवर्जानां तेषां क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव प्राप्नुयात्, यदि चाऽसंख्ये-
यलोकाकाशप्रदेशसंख्याका भवेयुस्तर्हि तेषां क्षेत्रे लोकप्रमितं स्यात् । नरकदेवायुषो वैक्रियपट्कस्य
च बन्धकाः पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चो मनुष्याश्च भवन्ति, तेषां चाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशानां संख्या-
पेक्षया न्यूनत्वेन स्वस्थानस्य च तिर्यग्लोक एव सत्त्वेन क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव
प्राप्यते । मनुष्यायुष्कस्याऽऽहारकद्विकजिननामस्य बन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा न
विद्यन्ते, तस्मात् तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव प्राप्यते । 'सेसाण'मित्यादि, अत्राऽभि-
हितप्रकृतिव्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां बन्धका जीवाः सर्वस्मिन् जगति वर्तन्ते, यतः सूक्ष्मैकेन्द्रिय-
जीवा अपि शेषाः प्रकृतीर्ब्रूयन्ति, ते च विश्वविश्वं व्याप्य वर्तन्ते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं जातिपञ्चक-
मौदारिकद्विकं संहननपट्कं सस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशक-
मातपोद्योतपराघातोऽल्वामनामानि गोत्रद्वयं तिर्यगायुश्चैत्येकपट्टिश्चाध्रुवबन्धिप्रकृतय इति ॥१०५७॥
इत्येवमोद्यत उत्तरप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रप्ररूपणा कृता ।

इदानीमुत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रमोद्यतो दिदर्शयिषुराह

धुववधिउरालाणं केवल्लिखेत्ते अबंधगा जेया ।

सेसाणं पयढीण विण्णेया सव्वलोगम्मि ॥१०५८॥

(प्रे०) 'धुववधि' इत्यादि, सप्तचत्वारिंशज्ज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिक-
शरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धकानां क्षेत्रं केवलज्ञानिनां यावत् क्षेत्रं लभ्यते तावत्प्रमाणमवसेयम् । 'सेसाण'
मित्यादि, उक्तप्रकृतिविभिन्नानां द्विसप्ततिसंख्याकानां शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्मिन्
लोके विज्ञेयाः, यतः सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवाः शेषाभ्यः प्रकृतिभ्यः कासांचिज्जिननामप्रभृतिप्रकृतीनां बन्धं
सदैव भवस्वभावेनैव न विदधते कासांचित्प्रकृतीनां परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन बन्धका अबन्ध-

काश्च तामां सदैवोपलभ्यन्ते इत्येवं रीत्या शेषप्रकृतीनामवन्धकत्वेनोपलभ्यमानाः सूक्ष्मकेन्द्रिय-
जीवाः समग्रलोके वर्तन्ते ॥१०५८॥

ननु ध्रुववन्धिप्रभृतिप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रं केवलक्षेत्रप्रमाणमुपदर्शितम्, तत्र केवलक्षेत्रमिति
शब्दस्य कोऽर्थः कियन्प्रमाणं वा तदित्यारोकामपाकतु माह—

केवलिक्षेत्त भागो असखिययमो हवेज्ज लोगस्स ।

लोगस्स अमखेज्जा बहुभागा सव्वलोगो वा ॥१०५९॥

(प्रे०) 'केवलिक्षेत्त' इत्यादि, यस्मिन् क्षेत्रे केवलज्ञानिनामुपलब्धिर्भवति तत्क्षेत्रं
केवलक्षेत्रमित्युच्यते । तच्च लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणमसंख्यातबहुभागप्रमाणं सर्वलोक-
प्रमाणं वा भवति, इदमुक्तं भवति—भवस्थकेवलज्ञानिनः स्वस्थाने समुद्धातावस्थायां चेति द्विधा-
प्राप्यन्ते, तत्र स्वस्थानस्य क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्याततमभागप्रमाणमेव, समुद्धातक्षेत्रे च त्रिविधम्,
समुद्धातस्वरूपं च पदशीतिनामचतुर्थकर्मग्रन्थवृक्षैरेव दर्शयते तद्यथा— समुद्धातं च कुर्वन्
केवली प्रथमसमये बाहुल्यतः स्वगरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तमात्मप्रदेशानां संधातदण्ड दण्डस्थानीयं
ज्ञानाभोगत करोति, द्वितीयसमये तु तमेव दण्डं पूर्वापरदिग्द्वयप्रसारणात् पार्श्वतो लोकान्तगाभिकपाट-
मिव कपाट करोति, तृतीयसमये तमेव कपाट दक्षिणोत्तरदिग्द्वयप्रसारणाद् मन्थसदृशं मन्थानं करोति, लोका-
न्तप्रापिणमेव । एव च लोकस्य प्रायो बहुपूरित, मन्थान्तराण्यपूरितानि भवन्ति, अनुश्रेणिगमनात् । चतुर्थे
तु समये तान्यपि मन्थान्तराणि सह लोकनिष्कुटै पूरयति, ततश्च सकलो लोकः पूरितो भवतीति । तदन-
न्तरमेव पञ्चमे समये यथोक्तक्रमात् प्रतिलोम मन्थान्तराणि संहरति, जीवप्रदेशान् सकर्मकान् सङ्कोचयति,
षष्ठे समये मन्थानमुपमहरति धनतरसङ्कोचनात्, सप्तमे समये कपाटमुपसहरति दण्डात्मनि सङ्कोचनात्,
अष्टमे समये दण्ड समुपहृत्य शरीरस्थ एव भवति । तस्यां च समुद्धातावस्थायां यदा केवलज्ञानिनः
प्रथमद्वितीयपष्ठमसप्तमाऽष्टमसमयेषु वर्तन्ते, तदा तेषां लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रमुपलभ्यते ।
यदा च ते समुद्धाते तृतीयपञ्चमसमययोर्वर्तन्ते, तदा लोकाऽसंख्येयबहुभागप्रमाण क्षेत्रं समुप-
लभ्यते, चतुर्थसमये च सम्पूर्णलोकप्रमाण क्षेत्रं तेषां प्राप्तं भवति, आत्मप्रदेशैरखिललोकस्य तदा
तैव्यमित्वात् ॥१०५९॥

साम्प्रतमादेशतो मार्गणास्वायुर्वर्जप्रकृतीनामायुष्कर्मवर्जानां वन्धकानां क्षेत्रमाह—

तिरिये एगिदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसुं ।

कायोरालदुगेसुं कम्मणपुं चउकसायेसु ॥१०६०॥

अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदसणतिअसुहलेसासुं ।

अवियेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगियरेसुं ॥१०६१॥

ओधव्व वंधगा खलु सप्पाउग्गाण आउवज्जाण ।

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, प्रथम मार्गणास्वायुर्वर्जतत्तत्प्रकृतिवन्धकानां क्षेत्रावगमायेमे
नियमा ज्ञेया भवन्ति ।

तद्यथा—(१) यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकजीवाः सूक्ष्मा अपि सन्ति, तासां बन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यमिति ।

(२) अत्रैव यामा प्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मा न सन्ति, तासां बन्धकानां क्षेत्रं लोकसंख्येय-भागमात्रमवसेयम् ।

(३) (१) यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशो नास्ति किन्तु मार्गणागतजीवा अमंख्येयलोकाकाशप्रमाणास्ततोऽधिका अनन्ता वा स्युस्तत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं वादरनाम्नो बन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं च ज्ञेयम्, यतो हि तैर्जीवैर्मर्गणमभुद्वातावस्थायां स्वात्मप्रदर्शः प्रतिममयं सर्वलोको देशोनलोकोश्च क्रमेण व्याप्तो भवति ।

(११) शेषप्रकृतिबन्धकतया यदि तृतीयनियमोक्तमार्गणासु वादरवायुकायिका अपि सन्ति, तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं ज्ञातव्यम्, यतो वादरवायुकायिकानां स्वस्थानक्षेत्रमपि देशोनलोकप्रमाणमस्ति ।

(१११) यदि तासु शेषप्रकृतिबन्धकतया वादरवायुकायिका अपि न सन्ति, तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं लोकसंख्येयभागमात्रं ज्ञेयम् ।

(४) यत्र मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां वादरवायुकायिकानां वा प्रवेशो नास्ति, तथा मार्गणागतजीवा असंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतोऽतीव न्यूनाः स्युः, तत्र सर्वप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं लोकसंख्येयभागमात्रमवसेयमिति, नवरं सातवेदनीयबन्धकत्वेन यदि भयोगिकेवलिनोऽपि वर्तन्ते, तर्हि सातवेदनीयबन्धकक्षेत्रं केवलिक्षेत्रं वक्तव्यम् । अत्रोक्तनियमानुसारेण मार्गणासु बन्धकानां क्षेत्रं उपपादनीयम् । अथ प्रस्तुतं प्रस्तूयते

तिर्यगौघैकेन्द्रियौघपृथ्वीकाघौघाऽऽकायौघतेजस्कायौघवायुकायिकौघवनस्पतिकायौघनिगोदौघ-रूपा अष्टौ मार्गणाः सूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तिसूक्ष्माऽपर्याप्तमेदमिन्नास्ति स एकेन्द्रियमार्गणाः तिस्रः पृथ्वी-कायमार्गणाः तिस्रोऽऽकायमार्गणाः तिस्रस्तेजस्कायमार्गणाः तिस्रो वायुकायिकमार्गणास्ति सः साधा-रणवनस्पतिकायमार्गणाः काययोगौघौदारिकतन्मिश्रकाययोगमार्गणात्रयं कर्मणकाययोगमार्गणा-नपुंसकवेदमार्गणा क्रोधमानमायालोभलक्षणाश्चतस्रः कषायमार्गणा मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वयम-सयमाऽचक्षुर्दर्शनमार्गणे कृष्णनीलकापोतलेश्यालक्षणमार्गणात्रयं मव्यामव्यमिथ्यात्वाऽसंख्याहारका-नाहारकमार्गणापट्कं चेत्यष्टचत्वारिंशन्मार्गणास्वायुष्कर्मवर्जानां स्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रमोघवद् विज्ञातव्यम् । तदेवम्—काययोगौघौदारिककाययोगाऽचक्षुर्दर्शननपुंसकवेदकषायचतुष्कम-व्याहारकमार्गणासु वैक्रियपट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतिबन्धकानाम्, असंयमकृष्णनीलकापोतलेश्या-मार्गणासु वैक्रियपट्कजिननामप्रकृतिबन्धकानाम्, तिर्यगौघमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञि-मार्गणासु वैक्रियपट्कबन्धकानाम्, औदारिकमिश्रानाहारककर्मणकाययोगमार्गणासु सुरद्विकवैक्रिय-

द्विकजिननामप्रकृतिबन्धकानां च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रमस्ति, अत्रोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां च क्षेत्रं सकललोकप्रमाणमस्ति । एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतिभिहितैकेन्द्रियादिमार्गणासु वैक्रियपट्काद्विकजिननामवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं निखिललोकप्रमाणमस्ति । भावनाप्रकारस्त्वत्रोद्यतोऽवसेयः ॥१०६०॥

अथ पर्याप्तवादवायुकायमार्गणायां तदाह -

देसेणूणे लोके वायरपञ्जत्तवाडम्मि ॥१०६२॥

(प्रे०) 'देसेणूणे' इत्यादि, वादरपर्याप्तवायुकायिकमार्गणायामायुष्कर्मवर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धका देशानलोके वर्तन्ते, तेषां देशानलोकप्रमाणं क्षेत्रमस्तीति यद्वत्, यतो वादरवायुकायिका जीवाः पर्वतादीनां घनप्रदेशं विहाय स्वस्थानापेक्षया शेषसर्वलोके वर्तन्ते । उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—
कहिं ण भत्ते वादरवायुकाइयाण ठाणा पणत्ता ? गोयमा सट्ठाणेण सत्तसु धणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु सत्तसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवायवलयेसु अधोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिदेसु भवणनिक्खुडेसु निरएसु निरयावलिथासु निरयपत्थडेसु निरयछिदेसु निरयनिक्खुडेसु उड्डल्लोए ऋपेसु विमाणेसु विमाणावलिथासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिदेसु विमाणनिक्खुडेसु तिरियलोए पाईण पईण दाहिणा उदीण सन्वेसु चैव लोगागासछिदेसु लोगनिक्खुडेसु य एत्थ वादरवाडकाइयाण पञ्जत्तगाण ठाणा पणत्ता सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु ॥१०६२॥

अथ सर्ववादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं निरूपयितुमाह

सन्वेसु एगिदियवायरमेएसु णरकुञ्चाण ।

लोगासख से इह तह वायरवाउतदसमत्तेसु ॥१०६३॥ (गोतिः)

णेया सुहमेगिदियजोगाण पचसयरिपयडीण ।

सव्वजगे सेसाण हवन्ति देसूणलोगम्मि ॥१०६४॥

(प्रे०) 'सन्वेसु' इत्यादि वादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तवादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तवादरैकेन्द्रियरूपासु तिसृषु मार्गणासु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणप्रकृतित्रयबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमवसातव्यम्, यतो हि मार्गणात्रयेऽस्मिन् भवस्वभावेनैव तेजस्कायवायुकायिकजीवाः प्रकृतित्रयमेतन्मैव वृणन्ति, तदितरे पुनर्वृणन्ति, तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेव विधत्ते, तेषां स्वस्थानस्य तावन्मितत्वात् । विशेषभावना तृतीयनियमतृतीयांशेन कार्या । 'इह' इत्यादि, आसु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु तथा वादरवायुकायिकौघाऽपर्याप्तवादरवायुकायिकलक्षणयोर्मार्गणयोः सूक्ष्मेकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः सकललोके वर्तन्ते, भावना तृतीयनियमप्रथमांशेन कार्या, ताश्चेमाः सूक्ष्मेकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं मोहनीयचतुर्विंशतिकमन्तरायपञ्चकं वेदनीयद्विकं तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिर्हुण्डकसंस्थानमौदारिकतैजसकर्मणशरीरत्रयवर्णचतुष्कमगुरुलघूपघातनिर्माणपराघातोच्छ्वासनामानि दुःस्वरवर्जस्थावरनवकं स्थिरशुभपर्याप्तप्रत्येकनामानि नीचैर्गोत्र चेति पञ्चसप्ततिः । 'सेसाण'मित्यादि, स्त्रीपुरुषवेदद्वय द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं सहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं खगतिद्विकं त्रयवादरसुभगत्रिकयशःकीर्तिदुः-

स्वरनामान्यातपोद्योतनाम्नी चेत्येकोनत्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धका देशोनलोके भवन्ति, मार्गणा-
स्वासु वायुकायिकानामपि तासां बन्धकत्वात्, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य देशोनलोकप्रमाणत्वाच्च ।
॥१०६३-६४॥ अथ वादरपृथ्वीकायिकादिमार्गणासु प्रकृतमाह

वायरपुहविदगागणिणिगोअपतोअतदसमत्तोसुं ।

वायरपज्जणिगोए ऊणजगे वायरसेराड्तिथि ॥१०६५॥

णेया सुहमेगिदियपाउग्गपणसयरीअ सव्वजगे ।

लोगासखियभागे सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१०६६॥

(प्रे०) 'वायर' इत्यादि, वादरपृथिवीकायौघवादराऽऽकायौघवादरतेजस्कायौघवादरसाधारण
वनस्पतिकायौघवादरप्रत्येकवनस्पतिकायौघरूपासु पञ्चसु मार्गणासु, अपर्याप्तिवादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्ति-
वादराऽऽकायाऽपर्याप्तिवादरतेजस्कायाऽपर्याप्तिवादरसाधारणवनस्पतिकायाऽपर्याप्तिप्रत्येकवनस्पतिकायरू-
पासु पञ्चमार्गणासु, वादरपर्याप्तिमाधारणवनस्पतिकायमार्गणाया च वादरनामकर्मवन्धकैर्देशोनजगद्
व्याप्तम्, अपर्याप्तिवादरवायुकायिकतयोत्पित्सुभिस्तत्तन्मार्गणावर्तिजीवैः प्रतिसमय देशोनलोकक्षेत्रस्य
पूर्यमाणत्वात् । तास्वेव मार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां प्रागुक्तानां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकाः
मर्बस्मिन् जगति वर्तन्ते, सूक्ष्मैकेन्द्रियतया जायमानानां मार्गणास्वासु विद्यमानानां सूक्ष्मैकेन्द्रिय-
प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां जीवानां स्वात्मप्रदेशैः समुद्घातकाले सर्वलोकस्य व्याप्तत्वात् । 'लोगासं-
खियभागे' इत्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धका लोकाऽसंख्येयभाग-
प्रमाणक्षेत्रे वर्तन्ते, प्रकृतमार्गणासु वर्तमानानां शेषप्रकृतिबन्धकानां जीवानां स्वस्थानापेक्षया समु-
द्घातापेक्षया वा लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रे सद्भावात् । तार्थमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीपुरुषवेदद्वयं
मनुष्यगतिरेकेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननपट्कं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं
मनुष्यानुपूर्वी खगातिद्वयं त्रससुभगत्रिकयशःकीर्तिनामदुःस्वरातपोद्योतनामान्युच्चैर्गोत्रं चेत्येकत्रिंश-
च्छेषप्रकृतयः ॥१०६५-६॥

इदानीं मनुष्यादिमार्गणासु प्रवृत्तमाह—

तिणरदुपणिदितसगयवेअविरड्सुक्कसम्मखडएसुं ।

केवल्लिखेत्ते सायस्सियरेस्सि जगअसखसे ॥१०६७॥

(प्रे०) 'तिणर' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तिमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तिपञ्चेन्द्रियत्रसौध-
पर्याप्तिमगतवेदसयमौवशुक्ललेरयासम्यक्त्वौघक्षायिकमम्यक्त्वलक्षणासु द्वादशसु मार्गणासु सातवेद-
नीयबन्धकानां क्षेत्रं केवल्लिखेत्रप्रमितमवसेयम्, मार्गणास्वासु केवल्लिखानिना समावेशात् । "इय-
रेस्सि" इत्यादि, मार्गणास्वासु सातवेदनीयवर्जस्वप्रायोग्यशेषप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रं जगतोऽसंख्ये-
यतमभागप्रमाणमस्ति, यतोऽधिकृतमार्गणागतजीवानामसंख्येयलोकतोऽतीवस्तोकत्वात् ॥१०६७॥

साम्प्रतमकपायादिमार्गणासु तथा शेषमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां क्षेत्रमाह

सायस्स बन्धकाऽस्ति अकसायकेवलदुगाहलायेसु
केवलिलेत्ते अण्णह सव्वेसि जगअसल्लस ॥१०६८॥

(प्रे०) “सायस्स” इत्यादि, अकसायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातमंयमलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकाः केवलिक्षेत्रे वर्तन्ते, केवललिना मार्गगास्वासु प्रवेशात् ।

“अण्णह” इत्यादि, कथितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वाणां प्रकृतीनां बन्धका लोक-
स्याऽसंख्येयतमभागे वर्तन्ते. शेषमार्गेणागतजीवानां क्षेत्रस्य स्वस्थानापेक्षया समुद्धातापेक्षया वा
अगतोऽसंख्याततमभागप्रमाणत्वात्, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रस्तिर्यक्पञ्चे-
न्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणास्त्रिशूदेवमार्गणाः, सर्वेन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियमार्गणाः,
अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, वादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजस्कायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तव-
सकायमार्गणा पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगा-
ऽऽहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाः स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधि
ज्ञानमनःपर्यवज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाः पञ्चमार्गणाः, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिषूक्ष्मसंप-
रायदेशविरतिरूपाः पञ्च मंयममार्गणाः. चक्षुर्दर्शनाग्निदर्शनमार्गगाद्वयम्, तेजःपञ्चलेश्याद्वयम्, श्रयो
पशमोपशमसास्वादनमिश्रसम्पत्त्वमार्गणाचतुष्कम्, सज्जिमार्गगा चेति त्रिनवनिमार्गणाः ॥१०६८॥

साम्प्रतमादेशतो मार्गगास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकाना क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

ओघव्व जाणियव्व काये मविये तहा अणोहारे ।

सव्वेसि पयडोण अवधया ओउवज्जाण ॥१०६९॥

(प्रे०) “ओघव्व” इत्यादि, काययोगौघमव्याऽनाहारकाख्यासु तिसृषु मार्गणासु स्वप्रा-
योग्याणामायुष्कर्मवर्जानां सर्वाणां प्रकृतीनामवन्धकानां क्षेत्रमोघवदवमातव्यम्, तदेवम् ध्रुववन्धिप्रकृ-
तीनामौदारिकशरीरान्मन्वाऽवन्धकाः केवलिक्षेत्रे ज्ञातव्याः, तत्र लोकासंख्यभागक्षेत्रमनाहारके
अयोगिकेवलिसिद्धजीवानाश्रित्य प्राप्यते इति । वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं वेदत्रयं गतिचतुष्कं
जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं संहननपट्कं संस्थानपट्कमानुपूर्वीचतुष्कं खग-
तिद्वयं त्रसदशकं स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्रामजिननामानि गोत्रद्वयं चेति प्रकृतीनामष्टपष्टे-
रवन्धकाना क्षेत्रं काययोगौघमव्यमार्गणयोः सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यम्, अनाहारकमार्गणायां च नरक-
द्विकाहारकद्विकप्रकृतिचतुष्कवर्जानामासामेव प्रकृतीना सर्वलोकव्यापिनां सूक्ष्मजीवानामपि आसां प्रकृ-
तीनामवन्धकत्वात् ॥१०६९॥ अथ तिर्यगोघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयति—

तिरिये असंखभागे जगस्स वारधुववधिउरलाण ।

जेया सव्वजगे सि सप्पाउग्गाण जाणऽस्ति ॥१०७०॥

((प्रे०) ‘तिरिये’ इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणाया मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानु-
बन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमौदारिकशरीरानामकर्मरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामवन्धकानां

क्षेत्रं लोकामंख्येतमभागमात्रमवसेयम्, लोकामंख्येतमभागमात्रव्यापिनां केपाश्चित्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया-
णामासामबन्धकतया भावात् । “सञ्चजगे” इत्यादि, मार्गणायामस्यां शेषासु प्रकृतिषु यामां
प्रकृतीनामबन्धका मन्ति, तामां ते सर्वलोके भवन्ति, मार्गणायामस्यां सूक्ष्मजीवानामपि तदबन्ध-
कत्वात् । ताश्चेमाः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रिय-
द्विकसहननपट्कसस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कलगातिद्वयत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वास-
गोत्रद्वयरूपाः पञ्चपाष्टिः प्रकृतय इति ॥१०७०॥

साम्प्रतं मनुष्यौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां क्षेत्रं प्रदर्शयन्नाह

तिणरदुपणिदितसगयवेअविरहसुक्कसम्मल्लएसुं ।

सायस्स असखसे जगस्स सेसाण केवलियखेत्ते ॥१०७१॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘तिणर’ इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तयञ्चेन्द्रियत्रयौ-
घपर्याप्तसगतवेदसंयमौघशुक्ललेस्यासम्पक्त्वौघक्षायिकयम्पक्त्वलक्षणासु द्वादशसु मार्गणासु सातवेद-
नीयास्याऽबन्धका जगतोऽसंख्येतमभागप्रमाणक्षेत्रे भवन्ति, भावनाविधिस्त्वेवम्—मार्गणास्वासु त्रयोदश-
गुणस्थानगता जीवाः सातवेदनीयस्याऽबन्धकतया न प्राप्यन्ते, अतः केवलिसमुद्घातगतक्षेत्रस्याऽप्राप्ति-
स्तेन तेषां सर्वेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्याततमभागप्रमाणमेवाऽस्ति । ‘सेसाण’ इत्यादि, सातवेदनीय-
वर्जशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकाः केवलिक्षेत्रे वेदयितव्याः, मार्गणास्वासु समुद्घातगतकेवलिना-
मबन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् ॥१०७१॥ अथैकेन्द्रियौघादिमार्गणास्वाह

तेसि एगिदियपणकायणिगोएसु सञ्चसुहमेसुं ।

होअन्ति सञ्चलोगे सप्पाउग्गाण जाणडत्थि ॥१०७२॥

(प्रे०) ‘तेसि’ इत्यादि, एकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाष्कायौधतेजस्कायौधवायुकायौघवनपस्पति-
कायौघनिगोदौघरूपासु सप्तसु मार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु
तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माष्कायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजस्कायमार्गणासु
तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मनिगोदमार्गणासु चेत्यष्टादशसूक्ष्ममार्गणासु यासां
प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तामां ते सकललोके वर्तमाना अवसातव्याः, आसु मार्गणासु सूक्ष्म-
जीवानां प्रवेशात्, ताश्चेमा अबन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनु-
ष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाऽङ्गोपाङ्गसहननपट्कसस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वय-
त्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा एकोनपाष्टिः प्रकृतयः । तेजस्कायवायु-
कायसत्क्रमार्गणासु तिर्यग्विहमनुष्यद्विकगोत्रद्विकविरहितास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयो विज्ञेयाः ॥१०७२॥

एतर्हि वादरैकेन्द्रियादिमार्गणास्वाह

हृण्णुभिर्गिदियथावरदुगाऽनादेयदुहगभजसाण ।

सव्वेसु एगिदियवायरभेएसु ऊणजगे ।।१०७३।।

लोगस्स असंखयमे भागे तिरियदुगणीअगोआण ।

होअन्ति सव्वलोगे अडयालीसाअ सेसाण ।।१०७४।।

(प्रे०) 'हुं' इत्यादि, वादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तवादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तवादरैकेन्द्रियलक्षणासु तिसृषु मार्गणासु ह्रण्डकसंस्थाननपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्माऽनादेयदुर्भगाऽयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽवन्धकानां क्षेत्र देशोनलोकमानमस्ति. भावनाप्रकारस्त्वेवम् मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा यदा प्रकृतप्रकृत्यष्टकेप्रकृतिप्रतिपक्षभूतप्रकृतिवन्धका भवन्ति, तदा ते प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्याऽवन्धका भवन्ति । सूक्ष्मेष्टपद्यमानानां मरणसमुद्धातावस्थायां प्रकृतीनामासामवन्धकतयाऽप्राप्यमाणत्वेन स्वस्थानक्षेत्रस्थ प्राधान्यम् । तच्च वादरवायुकायिकानाश्रित्य देशोनलोकप्रमाणमस्ति । "लोगस्स" इत्यादि, तिर्यग्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामवन्धका लोकस्याऽसंख्याततमभागप्रमाणे क्षेत्रे विद्यन्ते, भावना पुनरेवम् मार्गणास्वासु ये मनुष्यद्विकोचैर्गोत्रप्रकृतिवन्धकाः सन्ति ते तिर्यग्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतित्रयस्याऽवन्धका ज्ञातव्याः, मनुष्यद्विकोचैर्गोत्रप्रकृतिवन्धकतया मार्गणास्वासु वर्तमानेषु वादरपृथ्वीकायाऽष्कायवनस्पतिकायिकेष्वेव प्राप्यन्ते, तेष्वपि न सर्वे, परं केचन एव । वादरपृथ्वीकायाऽष्कायवनस्पतिकायिकानां स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमेवाऽस्ति, अतएतावत्प्रमाणमेवाऽत्र तिर्यग्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रं प्राप्यते । ननु तिर्यग्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यवन्धकानामत्र समुद्धातापेक्षया क्षेत्रं कथं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव, 'समुद्धायेण सव्वलोए' इत्यादि, प्रजापनावचनात् मार्गणास्वासु वर्तमानानां पृथ्वीकायिकादीनां समुद्धातसमये सर्वलोकव्यापितयोपलभ्यमानत्वाद् इति चेन्न, अत्र तिर्यग्विकनीचैर्गोत्रप्रकृत्यवन्धका मनुष्यद्विकोचैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीर्वधन्ति, समुद्धातावसरे प्रकृतित्रयमेतद् बध्नन्तस्ते मनुष्येष्वेव समुत्पद्यन्ते, तेषां चात्यल्पत्वेन मनुष्यक्षेत्रं यावत् कृतात्मप्रदेशदण्डानामपि लोकस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव क्षेत्रं प्राप्यते । 'होअन्ति' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वाखगतिद्वयत्रयसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासोचैर्गोत्ररूपानामष्टचत्वारिंशत्शेषाऽध्रवन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः सकललोके वर्तन्ते, मार्गणास्वासु सूक्ष्मैकेन्द्रियत्वेनोत्पद्यमानानां प्रकृतशेषप्रकृत्यवन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन समुद्धातावसरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् । प्रकृतशेषप्रकृत्यवन्धकानामित्यत्र प्रमाणं क्षेत्रं समुद्धातापेक्षयैव प्राप्यते, न स्वस्थानापेक्षया, स्वस्थानापेक्षया हि वादरैकेन्द्रियजीवा देशोनलोके एव वर्तन्ते ।।१०७३-४।।

साम्प्रतं वादरवायुकायिकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रमाह-

हृडणपुमिगिन्द्रियथावरदुग्गणादेयदुहगअजसाण ।
 वायरवाउगिग तहा तदपज्जत्तगिग ऊणजगे ॥१०७५॥
 सेसाण सव्वलोगे जेया वायरसमत्तवाउम्मि ।
 देसूणे लोए सि सप्पाउग्गमाण जाणऽत्थि ॥१०७६॥

(प्रे०) 'हृड' इत्यादि, वादरवायुकायौघाऽपर्याप्तवादरवायुकायमार्गणयोर्हृण्डकमंभ्याननपुं-
 सकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्माऽनादेयदुर्भगाऽयशःकीर्तिलक्षणानामष्टप्रकृतीनामवन्धका देशोनलोके
 प्राप्यन्ते । भावना पुनरिह वादरैकेन्द्रियौघादिमार्गणावत्कर्तव्या । 'सेसाण' इत्यादि, एतत्प्र-
 कृत्यष्टकवर्जसु शेषप्रकृतिषु यासां प्रकृतीनां येऽवन्धका उपलभ्यन्ते, तेषां क्षेत्र सर्वलोकप्रभितं
 ज्ञेयम्, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानैः समुद्घातगतजीवैः स्वात्मप्रदेशदण्डैः सम्पूर्णलोकं व्याप्तं भवतीति-
 कृत्वा । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयद्वीन्द्रियादिजाति-
 चतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकषगतिद्वयत्रयदशकाऽपर्याप्ताधारणाऽस्थि-
 राऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराधातोच्छ्वासरूपाः पञ्चचत्वारिंशत् प्रकृतय इति ।

'वायरसमत्तवाउम्मि' इत्यादि, पर्याप्तवादरवायुकायिकमार्गणायां यासां प्रकृतीनाम-
 वन्धका विद्यन्ते तेषां क्षेत्र देशोनलोकप्रमाणं वेदयितव्यम्, उपपातममुद्घातस्वस्थानापेक्षया वादर-
 पर्याप्तवायुकायिकानां क्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—एत्थ ण वादरवायुकाइभाण
 पज्जत्तगाण ठाणा प० उववाएण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु, समुद्घाएण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु
 सङ्काणेण लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु । ताश्चेमा अवन्धप्रायोग्यप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
 द्वयवेदत्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कषगतिद्वयत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्यो-
 तपराधातोच्छ्वासरूपास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयः ॥१०७५ ६॥

साम्प्रतं वादरनिगोदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रं प्रतिपाद्यते

वायरणिगोअमूदगपत्तेअवणेसु सि अपज्जेसुं ।
 वायरपज्जणिगोए तिरियदुग्गेगक्खणपुमणीआण ॥१०७७॥ (गीति)
 दुहगाणादेयअजसथावरहुंङाण जगअसखंसे ।
 सुहुमस्स ऊणलोए हवेज्ज सेसाण सव्वजगे ॥१०७८॥

(प्रे०) 'वायर' इत्यादि, वादरसाधारणवनस्पतिकायौघवादरपृथ्वीकायौघवादराऽपकायौघ-
 प्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तवादरसाधारणवनस्पतिकायाऽपर्याप्तवादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्तवादराऽपका-
 याऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्वष्टसु मार्गणासु पर्याप्तवादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणायां च
 लोकस्याऽसंख्येयतमे भागे तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्येकेन्द्रियजातिनपु सकवेदनीचैर्गोत्रदुर्भगाऽना-
 देयाऽयशःकीर्तिस्थावरहृण्डकसंस्थानरूपाणां दशप्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, मार्गणास्वासु जीवानां
 स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमे भागे वर्तमानत्वात् तथा प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानां यथायोगं

सूक्ष्मतया वायुकायतया वाऽनुत्पद्यमानत्वेन समुद्धातापेक्षयाऽपि तावत्प्रमाणे क्षेत्र एव वर्तमानत्वाच्च ।
 'सुक्ष्मस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्माबन्धकानां देशेन जगत्प्रमाणं क्षेत्रमस्ति, भावना वादरनामकर्म-
 बन्धकवत् कार्या । 'सेसाण' इत्यादि, यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सन्ति तासां प्रकृताभिहितप्रकृत्य-
 तिरिक्तप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वान् लोके वर्तन्ते, अत्र कस्याश्चिन्मार्गणायामबन्धकानामसंख्ये-
 यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेन कस्याश्चिन्मार्गणायामनन्तप्रमाणत्वेन तथा सूक्ष्मतयोत्पद्यमानत्वेन
 समुद्धातापेक्षया सर्वलोके व्याप्तत्वात् । तार्थमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुष
 वेदस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्या-
 नुपूर्वाखगतिद्वयत्रयमदशकाऽपर्याप्तमाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽऽतपोद्योतपराधातोच्छ्रामोच्चैर्गौरूपा
 अष्टचत्वारिंशदिति ॥१०७७-८॥

अधुना वादरतेजस्कायतदपर्याप्तमार्गणयोः प्रकृतमाह

सप्पाजग्गाण खलु वायरतेउग्गि से अपज्जत्ते ।

जेसि हवेज्ज तेसि वायरपुहविच्च णायव्वा ॥१०७९॥

(प्रे०) 'सप्पाजग्गाण' मित्यादि, वादरतेजस्कायौघाऽपर्याप्तवादरतेजस्कायलक्षणमार्गणा-
 द्वये स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां यासामबन्धकास्सन्ति, तेषां क्षेत्र वादरपृथ्वीकायक्षेत्रवज्ज्ञातव्यम्, तदेवम्-
 नपुंसकवेदेर्कोन्द्रयजातिस्थावरहुण्डकसंस्थानदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याबन्धकानां
 क्षेत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं सूक्ष्मानामबन्धकानां क्षेत्रं देशेनलोकप्रमाण शेषप्रकृत्यबन्धकानां
 च मकललोकप्रमाणमस्ति, भावना प्राग्बद् विधेया ॥१०७९॥

अथौदारिकाययोगादिमार्गणासु प्रस्तुतमाह

धुववधिरालाण उरालदुगज्जणयणेसु आहारे ।

लोगासखियभागे सेसाणं सव्वलोगम्मि ॥१०८०॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, औदारिकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगाऽचक्षुर्दर्शनाहारकलक्षणासु चतसृषु
 मार्गणासु सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽबन्धका लोकाऽसंख्येयतमभागे
 वर्तन्ते, तदेवम् मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकाः सास्वादनप्रमुखाः स्त्यानद्वित्रिकाऽनन्ता-
 नुबन्धिचतुष्करूपस्य प्रकृतिमत्तकस्य मम्यगृष्टिप्रमुखा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देशविरतिप्रमुखाः,
 प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य संयतप्रमुखाः शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतीनां च यथायोगं श्रेणिगतजीवा भवस्थ-
 केवलिनश्च वर्तन्ते, तेषां सर्वेषां संख्येयप्रमाणत्वेनाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशन्यूनाऽसंख्येयसंख्याक-
 त्वेन वा क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणमेवाऽस्ति । नचौदारिकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगाहारक-
 मार्गणासु प्रकृतीनामासामबन्धकाः सर्वलोके वक्तव्याः, केवलानां क्षेत्रस्य समुद्धातापेक्षया सर्वलोक-
 व्याप्तत्वादिति वाच्यम्, मार्गणात्रयेऽस्मिन् समुद्धातकालेऽपि तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयानामलाभेन प्रस्तु-

तमार्गणागतकेवलानां लोकाऽसंख्येयभागवतित्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुग-
लद्वयवेदत्रयगतचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहागद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्-
वीचतुष्कलगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्विकरूपाणामष्ट-
पृथ्व्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकमिश्रमार्गणायां च नरकद्विकाहारकद्विकवर्जानामायामेव प्रकृतीनामवन्धकाः
सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते, मार्गणास्वासु सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवानामपि तासामवन्धकतया प्राप्यमागत्वात् ।

॥१०८०॥ अथ कर्मणकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रमुच्यते

कम्मे णेया लोकासखयभागेसु सव्वलोगे वा ।

धुवबधिउरालाण सेसाण सव्वलोगिणि ॥१०८१॥

(प्रे०) 'कम्मे' इत्यादि, कर्मणकाययोगमार्गणाया सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारि-
कशरीरनाम्नश्चाऽवन्धका लोकाऽसंख्येयभागेषु सर्वस्मिन् लोके वा ज्ञेयाः, कथमिति चेद्, उच्यते,
कर्मणकाययोगमार्गणायां केवलज्ञानिनः प्रकृतीनामायामवन्धकाः सन्ति, कर्मणकाययोगमार्गणा-
युनस्तेषां समुद्घातावसरे तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेषु संपद्यते तृतीयपञ्चमममयोः केवलिनो लोकाऽसं-
ख्येयेषु भागेषु व्याप्ता भवन्ति, तुर्यसमये च सर्वलोके, अतस्तृतीयपञ्चमसमयापेक्षया प्रकृतीनामासा-
मवन्धकानां लोकाऽसंख्येयबहुभागप्रमाण क्षेत्रं वर्तते, चतुर्थममयापेक्षया च सर्वलोकप्रमाणम् ।
व्याख्यानतोः विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायेन मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकौदारिकशरीरप्रकृतीनाम-
वन्धका लोकाऽसंख्येयभागेऽपि प्राप्यन्ते, मार्गणायामस्यां केवलज्ञानिनो विरहकाले यदा सम्यग्दृष्टि-
तिर्यङ्मनुष्याणां लाभस्तदा तेषां प्रकृतीनामासामवन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्, तैर्व्याप्तक्षेत्रस्य
तावत्प्रमाणत्वाच्च । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृतीनामवन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते,
मार्गणायामस्यां सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवानां प्रवेशात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं
वेदत्रयं नरकगतिवर्जगतित्रयं जातिपञ्चकमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वैक्रियद्विकं सहननपट्कं संस्थानपट्कं
नरकानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीवयं विहायोगतिद्विक त्रयदशक स्थावरदशकमातपोद्योतपराघातोच्छ्वास-
जिननामरूपं प्रत्येकप्रकृतिपञ्चकं गोत्रद्वयं चेति चतुःषष्टिरिति ॥१०८१॥

इदानीं नपुंसकवेदादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां क्षेत्रं प्ररूपयति

णपुमचउकसायेसु दुअणाणाजयतिअसुइलेसासु ।

अभवे भिच्छे अमणे तेसि उरलच्च जाणत्थि ॥१०८२॥

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमकृष्णालेश्या-
नीललेख्याक्रोपोतलेख्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु चतुर्दशमार्गणासु यामां प्रकृतीनामवन्धका
उपलभ्यन्ते, तेषां क्षेत्रमौदारिककाययोगमार्गणावदवसेयम्, तद्यथा-नपुंसकवेदमार्गणायां ज्ञानावर-
णपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनचतुष्कवर्जानां शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-

नाम्नश्चाऽवन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणम् , शेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकानां च क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणमस्ति । लोभमार्गणायां ज्ञानावगणीयादिचतुर्दशप्रकृतिवर्जशेषध्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽवन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं शेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमितमवयमाव्यम् । मायामार्गणायां संज्वलनमायालोभौ वर्जयित्वा मानमार्गणायां संज्वलनमानमायालोभान् वर्जयित्वा क्रोधमार्गणायां च संज्वलनचतुष्कं त्यक्त्वा लोभमार्गणावदेवाऽवन्धकक्षेत्रं स्वाऽवन्धप्रयोगप्रकृतीनामभिधेयम् । मतिश्रुताज्ञानमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरनामप्रकृत्योरवन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमवसेयम् , आहारकद्विकजिननामायुष्कर्मवर्जशेषाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमितम् । असयमकृष्णलेखनीललेख्याकापोतलेश्यामार्गणाचतुष्के मिथ्यात्वमोहनीयस्यानद्विविकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम् । अत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमवन्धकानां क्षेत्रमस्ति, आहारकद्विकायुष्कचतुष्कवर्जशेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनां च सकललोकप्रमितम् । अभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमौदारिकशरीरनामाऽवन्धकानां क्षेत्रं वर्तते, सर्वलोकप्रमाणं चाहारकद्विकजिननामायुर्वर्जशेषाध्रुववन्धिप्रकृत्यवन्धकानाम् ॥१०८२॥ साम्प्रतं शेषमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामवन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयन्नाह-

सेसासु मगणासु सत्पाउग्गाण आउवज्जाण ।

जेमि अवधगा सि लोगस्स असख्माणम्मि ॥१०८३॥

(प्रे०) 'सेसासु' इत्यादि, इहाभिहितातिरिक्तासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कर्मवर्जानां यामां प्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, तासां तेऽवन्धका लोकभ्याऽसंख्याततमे भागेऽवाप्यन्ते । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रःतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणाः, त्रिंशद्देवमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियमार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाः, वादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजस्कायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रयकायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगाऽऽहारकतन्मिश्रकाययोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, अकपायमार्गणा, मतिश्रुतावधिमतःपर्यवकेवलज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाः षण्मार्गणाः, सामायिकच्छेदोपस्थानपनीयपरिहारविशुद्धियथाख्यातदेशविरतरूपाः पञ्चसंयममार्गणाः, चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनकेवलदर्शनमार्गणात्रयम्, तेजःपद्मलेख्याद्वयम्, उपशमक्षयोपशममिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम्, संज्ञिमार्गणा चेति पणवतिरिति । भावना पुनरिहैवम्-अकपाययथाख्यातकेवलज्ञानकेवलदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयस्याऽवन्धका यथायोगमयोगिनः सिद्धाश्च वर्तन्ते, तेषां क्षेत्रं लोकभ्याऽसंख्येयतमभागरूपमेवास्ति, तथैतद्व्यतिरिक्तशेषमार्गणानां त्रिविधमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितमस्ति, तस्मात्तत्र स्वप्रायोग्यप्रकृत्यवन्धकानामपि क्षेत्रं तावत्प्रमाणमेव प्राप्यत इति । इदं त्ववधेयम्-सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां सर्वासं प्रकृतीनां सर्वे वन्धका इति कृत्वा सा शेषमार्गणासु नोक्ता ॥१०८३॥

ऽपर्याप्तिवादरपृथ्वीकायाऽपर्याप्तिवादराऽष्कायाऽपर्याप्तिवादरतेजस्कायाऽपर्याप्तिवादरावायुकायरूपासु द्वादश-
मार्गणासु प्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तिप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाद्वये काययोगौघौदारिककाययोगौ-
दारिकमिश्रकाययोगलक्षणे मार्गणात्रये नपुंसकवेदमार्गणायां क्रोधमानमायालोभलक्षणमार्गणा-
चतुष्के मत्तज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणयोरसंयममार्गणायामचक्षुर्दर्शनकृष्णलेख्यानीललेख्याकायोतलेख्या-
भव्याभव्यमिथ्यात्वाऽमंश्याहारकरूपासु च नवसु मार्गणासु सर्वसंख्यया द्वापष्टिमार्गणासु स्वप्रायोग्या-
युष्काणामवन्धकाः सर्वस्मिन् लोके वर्तन्ते । तदेवम्—इह यासु मार्गणासु सूक्ष्मेकेन्द्रियजीवा वर्तन्ते,
तासु स्वस्थानममुद्धातोभयापेक्षयाऽभिहितप्रमाणक्षेत्रं प्राप्यते, इतरमार्गणासु च समुद्धातापेक्षया
प्राप्यते न तु स्वस्थानापेक्षया । ‘देसेणृणं’ इत्यादि वादरपर्याप्तिवायुकायमार्गणायां तिर्यगायुष्कस्या
ऽवन्धका देशोनलोके वर्तन्ते । तद्यथा—मार्गणायामस्यां तिर्यगायुष्कस्य वन्धका यथा देशोनलोके
वर्तन्ते, तथा तदवन्धका अपि, वादरवायुकायिकजीवानां क्षेत्रस्यैव तात्प्रमाणत्वात् ॥१०८८-९१॥

अथ मनुष्यादिमार्गणासु शेषमार्गणासु चायुरवन्धकानां क्षेत्रमाह

अन्थि तिणरदुपणिदियतससजममुक्कसम्मलइएमुं ।

वेवल्लिखेत्ते अण्णह लोगस्स असंखभागस्मि ॥१०९२॥

(प्रे०) ‘अन्थि’ इत्यादि, मनुष्यौघमानुपीपर्याप्तिमनुष्यपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तिपञ्चेन्द्रियत्रसौघ-
पर्याप्तित्रससयमौघशुक्ललेख्यामम्यक्त्वौघक्षायिकमम्यक्त्वमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषोऽवन्धकानां क्षेत्रं
केवलक्षेत्रप्रमितमवसेयम् । तच्च भावितमेव प्राग् । ‘अण्णह’ इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तासु शेष-
मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषोऽवन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं विज्ञातव्यम् । इमाश्च ताः
शेषमार्गणाः—अष्टौ नरकमार्गणाः, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तिपर्याप्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनि-
मतीरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, अपर्याप्तिमनुष्यमार्गणाः, त्रिंशद्देवमार्गणाः, नवविकलेन्द्रियमार्गणाः,
अपर्याप्तिपञ्चेन्द्रियमार्गणा, पर्याप्तिवादरपृथ्वीकायाऽष्कायतेजस्कायरूपास्तिस्रो मार्गणाः, पर्याप्तिप्रत्येक-
वनस्पतिकायमार्गणा, अपर्याप्तित्रयकायमार्गणा पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियका-
ययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगलक्षणं मार्गणात्रयम्, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, भतिश्रुता-
वधिमनःपर्यवज्ञानरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, विभङ्गज्ञानमार्गणा, सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि-
देशविरतिमयमरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मलेख्यामार्गणाद्वयम्,
क्षयोपशमसास्वादनमम्यक्त्वमार्गणाद्वयम्, मज्झिमार्गणा चेति नवाशीतिः, भावना पुनरेवम्—मार्गणा-
नामासां स्वस्थानापेक्षया समुद्धातापेक्षया च क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेवाऽस्ति, अत
इयत्प्रमाणं क्षेत्रं स्वप्रायोग्यायुष्कावन्धकानामुक्तम् ॥१०९२॥

इत्येवमभिहितं मार्गणास्वायुष्काऽवन्धकानां क्षेत्रम्, अभिहिते च तस्मिन् समाप्तं क्षेत्रद्वारम् ।

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषितं वन्धविधाने उत्तरप्रकृतिवन्धे

प्रथमाधिकारे दशम क्षेत्रद्वारं समाप्तम् ॥

अथैकादशं स्पर्शनाद्वारम्

साम्प्रतं क्रमप्राप्तमुत्तरप्रकृतिबन्धकाऽवन्धका जीवास्त्रिकालं प्रतीत्याऽतीतकालं वा प्रतीत्योत्कृ-
ष्टतो लोकस्य कियतो भागान् स्पृष्टवन्त इति निरूपकमेकादशं स्पर्शनाख्यद्वारं चिन्तयन्नादौ लाघ-
वार्थं प्रकृतिसंग्राहिका गाथा उपदर्शयितुकाम आह

सुरदुग्गञ्जपुमसुहगतिगसुखगद्वआगिई छ संधयणा ।
मज्झिमसंठाणित्थी उरलोचनं तसपणिदी ॥१०९३॥
दुस्सरकुलगद्वणारगविउवदुगणपुमअसायअरइदुगं ।
पणअयिराई हुंड णोअं परघायऊसासा ॥१०९४॥
धुववंधी पज्जत्त पत्तोअं बायरं जसुज्जोआ ।
तिरियदुगउरलयावरएणिदी यिरसुहा सायं ॥१०९५॥
हस्सरई सुहमतिगं इह ज आइम्मि किरिअ एआओ ।
जावइआ जाओच्छ तावइआ ता कमा गेज्जा ॥१०९६॥

(प्रे०) 'सुरदुग्ग' इत्यादि, कः प्रतिविशेषः क्षेत्रस्पर्शनयोरिति चेत्, कालकृत इति गृहाण,
वर्तमानकालविषयं क्षेत्रम्, भूतभवद्भविष्यलक्षणत्रिकालविषया अतीतकालविषया वा स्पर्शनेति ।

उक्तं चाऽत्रैव बन्धविधानग्रन्थे मूलप्रकृतिबन्धे क्षेत्रद्वारे

'कालं तु वट्टमाणं पडुच्च खेत्ते प्ररुवणा णेया । आसिज्ज अईअद्व पखवणा उण करिसणाए ॥११८॥' इति
अथ प्रस्तुतम्, सुरद्विकोच्चैर्गोत्रपुरुषवेदसुभगत्रिकशुभविहायोगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननपट्कप्रथम-
चरमसंस्थानवर्जमध्यममस्यानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसपञ्चेन्द्रियजातयः । 'दुस्सर' इत्यादि,
दुःस्वराशुभखगतिनरकद्विकैर्क्रियद्विकनपुंसकवेदाऽसातवेदनीयारतिशोकाऽस्थिराऽशुमदुभगाऽनादे-
याऽयशःकीर्तिदुष्ण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराधातोच्छ्वासनामानि । 'धुव' इत्यादि ज्ञानावरणीयप्रभृतिसप्त-
चत्वारिंशद्भुवबन्धप्रकृतयः, पर्याप्तप्रत्येकवादरयशःकीर्त्युद्योततिर्यद्विकौदारिकशरीरस्थावरैकेन्द्रिय-
जातिस्थिरशुभसातवेदनीयानि । 'हरस' इत्यादि, हास्यरतिस्रहमाऽप्यपत्तिसाधारणनामकर्माणीति
समुदितारचैताः सप्तोत्तरशतप्रकृतयः । 'इहे' इत्यादि, अत्रैता याः प्रकृतयोऽभिहिताः, ताम्यो यां
प्रकृतिमादौ कृत्वा यावत्त्यः प्रकृतयो वक्ष्यन्ते तावत्त्यस्ताः क्रमतो ग्राह्याः ॥१०९३-६॥

अथ त्रसनाड्या भागानां स्वरूपमुपदर्शयति

कुसणाअ वुज्जिरे इह जे भागा भाजिआअ चउदसहि ।
तसणाडोअ लहे जं णेया ते तावइअभाणा ॥१०९७॥

(प्रे०) 'कुसणाअ' इत्यादि, इह स्पर्शनाद्वार उत्तरप्रकृतीनां बन्धकावन्धकानां स्पर्शनाया निरू-
पणावसरे ये पडादिभागा वक्ष्यन्ते, ते सर्वेऽपि चतुर्दशसंख्यया विभाजितायां त्रसनाड्यां यावत्प्रमाणं
भागफलं प्राप्येत, तावत्प्रमाणा ज्ञेयाः, आयामविक्षम्भवाहण्यत एकरजुप्रमाण एकभागो भवतीति

इदानीमायुष्कर्मवन्धकानां क्षेत्रमुपदिदर्शयिपुरादौ तिर्यगौघादिमार्गणासु तदाह

तिरिये एगिदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसुं ।

कायोराळुगेसु णपु मगे चउकसायेसुं ॥१०८४॥

अण्णाणदुगे अजए अचवखुदसणतिअसुहलेसासुं ।

भविघेयरमिच्छेसु असण्णिआहारगेसुं च ॥१०८५॥

होअन्ति वघगा खलु सप्पाउग्गाण ओधव्व ।

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगौघैकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाऽऽकायौघतेजस्कायौघवायुकाय-
कौघवनस्पतिकायौघमाधारणवनस्पतिकायौघरूपाऽऽप्तसु मार्गणासु सूक्ष्मौघसूक्ष्मपर्याप्तसूक्ष्माऽऽपर्याप्त-
प्रकारेण तिसृष्वेकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु पृथ्वीकायमार्गणासु तिसृष्वक्कायमार्गणासु तिसृषु तेज-
स्कायमार्गणासु तिसृषु वायुकायिकमार्गणासु तिसृषु माधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौघौ-
दारिकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगरूपासु तिसृषु मार्गणासु नपुंसकवेदमार्गणाया क्रोधमानमाया-
लोभमार्गणासु मत्त्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेखाकापोतलेश्याभव्याभव्य-
मिथ्यात्वाऽमश्याहारकरूपासु च द्वादशमार्गणासु चेति सर्वसंख्यया पट्चत्वारिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्या-
युष्काणां वन्धकानां क्षेत्रमोघवद् घोद्धव्यम् । तद्यथा—इह एकेन्द्रिय-कायपञ्चकसत्कमार्गणाभेदेषु पञ्च-
विंशतौ औदारिकमिश्रे च यथायोगं मनुष्यायुष्कस्य वन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं तिर्य-
गायुष्कस्य च वन्धकानां सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यम् । प्रकृतशेषमार्गणासु देवनरकमनुष्यायुष्कवन्ध-
कानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागं विज्ञेयम्, सर्वलोकप्रमाणं च तिर्यगायुष्कवन्धकानाम्, भावना पुन-
रिहौघतोऽवसेया ॥१०८४-५॥

अथ वादरैकेन्द्रियप्रभृतिमार्गणासु शेषमार्गणासु च तदाह—

सव्वेसु खलु वायरएगिदियवाउमेएसुं । १०८६॥ (उद्गीतिः)

तिरियाउस्सूणजगे असंखभागे जगस्स णायव्वा ।

मणुसाउगस्स अण्णहि सप्पाउग्गाण आऊण ॥१०८७॥

(प्रे०) 'सव्वेसु'मित्यादि, ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु
च वादरवायुकायमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्य वन्धका देशोनलोकक्षेत्रे वर्तन्ते, मार्गणास्वासु वर्तमानानां
वादरवायुकायिकजीवानां देशोनलोके विद्यमानत्वात् । 'असंखभागे' इत्यादि, वायुकायिकभेद-
त्रये मनुष्यायुषो वन्धाभावाद् वादरैकेन्द्रियभेदत्रय एव मनुष्यायुषो वन्धका जगतोऽसंख्याततमे भागे
वर्तन्ते, तद्यथा—अत्र मनुष्यायुर्वन्धका मनुष्यत्वेनोत्पित्सव एव वर्तन्ते, ते च नाऽसंख्येयलोकाकाश-
प्रदेशप्रमाणाः, अतः स्वस्थानापेक्षया तेषां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, समुद्धातापेक्षया
त्वायुर्वन्धकक्षेत्रमेव नास्ति, आयुर्वन्धानन्तरमेव मरणमुद्धातस्य सङ्घावेन समुद्धातवेलायांमायुर्वन्धा-
ऽभावात् । 'अण्णहि' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्काणां वन्धका लोकाऽसंख्याततम-
भागे वर्तन्ते । ताश्चेभाः—तिर्यगौघवर्जशेषपट्चत्वारिंशद्भृतिमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेद-

भिन्नाः तिस्रो द्वीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रस्त्रीन्द्रियमार्गणाः, तिस्रश्चतुर्गिन्द्रियमार्गणाः, तिस्रः पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, तिस्रो वादरपृथ्वीकायमार्गणाः, तिस्रो वादरजलकायमार्गणाः, तिस्रो वादरतेजस्कायमार्गणाः, तिस्रो वादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रस्त्रसकायमार्गणाः, ओधमत्याऽमत्यमत्यामत्याऽसत्यामृपामेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रयम्, स्त्रीवेदपुरुषवेदमार्गणे, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानरूपं ज्ञानमार्गणाचतुष्कम्, विभङ्गज्ञानमार्गणा, संयमौघमामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपं नयममार्गणापञ्चकम्, चक्षुःदर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मशुक्ललेख्यालक्षणं मार्गणात्रयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकमाभ्युदयरूपाः चतुःसम्यक्त्वमार्गणाः, सज्जिमार्गणा चेति एकादशाभ्यधिकशतमार्गणाः । भावना पुनरेवम्-मार्गणास्वास्तु वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानेन क्षेत्रं लोकाऽमलयेयतमभागप्रमाणमेव विधत्ते, अतः स्वप्रायोग्यायुष्कवन्धकानामपि क्षेत्रं तावत्प्रमाणमेवाऽऽयाति । वैक्रियमिश्रकानेणकाययोगावेदाऽकपायकेवलज्ञानसूक्ष्ममभ्यगयसंयमयथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममिश्रसम्यक्त्वोऽनाहारकरूपास्वेकादशसु मार्गणास्तु नास्त्यायुर्वन्धः, अतस्तद्वन्धकानां क्षेत्रविचारणाऽप्यग्रस्तुतेति विज्ञेयम् ॥१०८६-७॥

अथ मार्गणास्तु स्वप्रायोग्यायुष्काऽवन्धकानां क्षेत्रमुपदर्शयितुमना आदौ तिर्यगोधादिमार्गणास्तु तदाह

तिरिये सवेगिदियणिगोअवणसेससुहममेएसुं ।
 पुह्वाइचउसु तेसि वायरवायरअपज्जेसुं ॥१०८८॥
 पत्तेअवणम्मि तहा तदपज्जत्तगिा कायजोगम्मि ।
 ओरालकुगेसु तह णपुंसगे चउकसायेसुं ॥१०८९॥
 अण्णाणकुगे अजए अचवसुदसणतिअसुहलेसासुं ।
 भविथेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगेसुं च ॥१०९०॥
 सप्पाउग्गाऊण अवंधगा अत्थि सव्वलोगम्मि ।
 देसेणूजे लोगे वायरपज्जत्तवाउम्मि ॥१०९१॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायाभेकेन्द्रियौघमार्गणायामोघपर्याप्ताऽपर्याप्तिभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणास्तु तिसृषु च वादरैकेन्द्रियमार्गणास्तु साधारणवनस्पतिकायौघमार्गणायां तिसृषु सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिमार्गणास्तु तिसृषु वादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणास्तु वनस्पतिकायौघमार्गणायामोघपर्याप्ताऽपर्याप्तिभेदेन तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणास्तु तिसृषु सूक्ष्मजलकायमार्गणास्तु तिसृषु सूक्ष्मतेजस्कायमार्गणास्तु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायमार्गणास्तु पृथ्वीकायौघाऽकायौधतेजस्कायौघत्रायुकायौधवादरपृथ्वीकायौधवादराऽकायौघवादरतेजस्कायौघवादरवायुकायौधा-

निष्कर्षः, तस्माद् यावद्भागा स्पर्शना निरूप्यते तावद्बन्धजवः स्पर्शनायां भवन्तीति समापतितम् । इह कश्चिदाह नन्वेकैकभाग एकरज्जुप्रमाणो भवति; अतोऽत्र निरूपयिष्यमाणानां भागानां ज्ञानार्थं चतुर्दशरज्जुप्रमाणत्रसनाडिकाया कस्मिन् स्थाने कति रज्जवो भवन्तीति ज्ञातव्यं भवति, तच्च कथं ज्ञायते ? अत्रोच्यते, शास्त्रवचनात्, तच्चैवम्

‘ईमाणम्मि दिवद्धा अद्धाइज्जा य रज्जु माहिदे । पचेव सहस्सारे छ अञ्चुए मत्तलोगंते ॥

इति जीवसमासवचनेन ऊर्ध्वलोकसत्कसप्तभागाः प्रदर्शिताः । अधुनाऽधोलोकसत्कभागा लोक-
प्रकाशग्रन्थेन प्रदर्श्यन्ते । तच्चैवम्

‘अस्य सर्वस्य लोकस्य कल्पा भागाश्चतुर्दश । एकैकश्च विभागोऽयमेकैकरज्जुमन्मित ॥१॥

सर्वाधस्तना लोकान्तादारभ्योपरिग नलं । यावत्सप्तममेदिन्या एका रज्जुरिय भवेत् ॥२॥

प्रत्येकमेव सप्ताना भुवामुपरिवर्तिषु । तलेषु रज्जुरेकैका स्युरेव सप्तरज्जवः ॥३॥’ इति

विस्तरतस्त्वस्यैव बन्धाविधानग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धग्रन्थे प्रदर्शितमिति ततोऽवधार्यम् ॥१०९७॥

इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धकानामोद्यतः स्पर्शनां प्ररूपयितुमाह-

लोकासख्यभागो आहारदुगणिरयामराऊणं ।

छुहिओऽत्थि वधगेहि भागाऽत्थि छ गिरयजुगलस्स ॥१०९८॥

देवदुगस्स फरिसिआ पणभागो गर विजवजुगलस्स ।

अट्ट जिणस्सियरेसि सव्वजगमवधगेहि सव्वेसि ॥१०९९॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘लोका’ इत्यादि, आहारकद्विकस्य तथा नरकामरायुषोर्वन्धकैर्लोकासख्यातभागः स्पृष्टः, नरकद्विकस्य बन्धकैः षड्भागाः, देवद्विकस्य बन्धकैः पञ्चभागाः, वैक्रियद्विकस्य बन्धकैः रेकादशभागाः, तथा जिननागो बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः । ‘इयरेसि’ इत्यादि, शेषसर्वप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वे जगत्स्पृष्टम् । ‘मवधगेहि’ इत्यादि, सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वे जगत्स्पृष्टम् ‘सव्वजगं’ इतिपदस्यात्रापि डमरुक्रमणिन्यायेन सम्बन्धनात् ।

भावना पुनरेवम्-आहारकद्विकस्य बन्धकाः संयताः, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं मनुष्यलोकमात्रम्, तेषां पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य क्षेत्रफलं तिर्यक्प्रतरस्यासंख्यभागमात्रम्, अतः स्पर्शनाऽपि लोकासंख्यातभागमात्रा । अस्ति च नियमः-यत्प्रकृतेर्वन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रं पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रं च तिर्यक्प्रतरस्यासंख्यभागमात्रम्, तेषां स्पर्शना लोकासंख्यभागमात्रैव, भवतु नाम तेषां स्वस्थानक्षेत्र-पारमविकक्षेत्रयोरन्तरालमेकद्वयादिरज्जुप्रमाणम् ।

नरकदेवायुषोर्वन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्यभागमात्रा, अत आयुर्वन्धकाले मरणाभावेन मरणसमुद्घाताभावात्तत्प्रयुक्तस्पर्शनाया अभावस्तेन स्वस्थानक्षेत्रं गमनागमनक्षेत्रं वाश्रित्य स्पर्शनाऽऽयाति । गमनागमनक्षेत्रं विशिष्टं तु देवानामेव भवति । प्रस्तुते प्रकृतायुर्वन्धकाः पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्मनुष्याः । तेषां स्वस्थानक्षेत्रं लोकासंख्यातभागमात्रं तेन स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणा समायाता ।

पङ्मागादिस्पर्शनाविषयकभावना—यथा यासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रपारमविकोत्पत्तिक्षेत्रयोरेकमपि क्षेत्र तिर्यक्प्रतररज्जुप्रमाणं स्यात्, तथा तयोरन्तर्गलमेकादिरज्जुप्रमाणं स्यात्, तदा तासां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना एकादिभागप्रमाणा प्राप्यते ।

प्रस्तुते नरकद्विकस्य देवद्विकस्य वैक्रियद्विकस्य च बन्धकाः प्राधान्येन तिर्यञ्चः सन्ति, तेषां च स्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकव्याप्तमस्ति, स्वस्थानपारमविकक्षेत्रयोरन्तरालं नरकद्विकस्य बन्धकानां मत्तमनरकतयोत्पित्स्नानं पङ्जरज्जुप्रमाणं सहस्रारं यावदुत्पित्स्नानं देवद्विकबन्धकानां पञ्चरज्जुप्रमाणं वैक्रियद्विकस्य बन्धकानामधोलोकसत्त्वपङ्जरज्जुप्रमाणं ऊर्ध्वलोकसत्त्वपञ्चरज्जुप्रमाणमित्थमेकादशरज्जुप्रमाणं तेन स्पर्शना पङ्मागप्रमाणा, पञ्चभागप्रमाणा तथैकादशभागप्रमाणा क्रमेण तत्तद्बन्धकानामुक्ता ।

जिननामबन्धकानां स्पर्शना मुख्यवृत्त्या देवानाश्रित्य विज्ञेया, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा उक्ता । मय्यगृष्टिदेवानां स्पर्शना जीवसमासे अष्टभागप्रमाणा दर्जिता । तथा च तद्ग्रन्थः 'मिस्स अविरया अट्ठ' । 'इथरेस्सि' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम्, यतः शेषप्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मैकेन्द्रिया अपि वर्तन्ते, ते च सर्वं जगद् व्य वर्तन्ते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ममचत्वारिंशन्मतिज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुवबन्धिप्रकृतयः वेदनीयद्विकहस्वादिद्युगलद्वयवेद्ययतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदागिकद्विकसंहननपट्कसस्थानपट्क—तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयतिर्यग्मनुष्यायुष्कद्वयरूपा द्वापटिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति नवोत्तरशतम् । अथ अबन्धकानां स्पर्शनामाह—

'मबन्धगेहि' इत्यादिना, 'सव्वजगं' इति पदमत्रापि सम्बन्धनीयम्, ततश्चायमर्थः—सर्वासां प्रकृतीनामबन्धकैः सर्वजगत्स्पृष्टमिति । भावना पुनरेवम्—औदारिकशरीरवर्जशेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धकतया सूक्ष्मजीवा अपि प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाबन्धकतया समुद्घातगतकेवलिनः प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शनोक्ता । एवं सर्वासामपि प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणाऽप्राप्यते ।

॥१०९८-९॥ साम्प्रतं मार्गणास्त्रायुष्कर्मवर्जशेषोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामभिधातुमाह

आउगवज्जाणोधव्व अत्थि तिरिकायचउकसायेसु ।

हुअणाणाजयअणयणभविअरभिच्छेसु आहारे ॥११००॥

(प्रे०) 'आउग' इत्यादि, तिर्यगोघकाययोगौघक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽमयमाऽचक्षुर्भेद्याभव्यमिध्यात्वाहारकमार्गणास्त्रायुवेर्जानां शेषोत्तरप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौधवद् विज्ञेया । तदेवम्—काययोगौघक्रोधमानमायालोभाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनभेद्याहारकमार्गणासु जिननामबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागमानाविद्यते, काययोगौघक्रोधमानमायालोभाचक्षुर्दर्शनभेद्याहारकमार्गणा-

स्वाहारकद्विकबन्धकानां लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शना वर्तते । तथा प्रकृतसकलमार्गणासु नरकद्विकेयबन्धकानां षड्भागप्रमाणा, देवद्विकस्य बन्धकानां पञ्चरज्जुप्रमाणा, वैक्रियद्विकबन्धकानां मेकादशभागप्रमाणा शेषस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां च सकललोकप्रमाणा स्पर्शनाऽस्ति । भावना पुनरिह सर्वत्रौघत एव बोद्धव्या ।

इह मार्गणासु हेत्ववगत्यै स्पर्शनाविषयिकाः कतिपया व्याप्तयः प्रतिपाद्यन्ते । तद्यथा—

(१) सर्वलोकविषया व्याप्तिः—ओघे मार्गणायां वा विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मजीवा भवेयुरयथा सूक्ष्मतयोत्पत्तस्यो मरणसमुद्धातकाले विवक्षितप्रकृतिबन्धका भवेयुस्तर्हि तेषां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा प्राप्यते ।

(२) देशोलोकविषयकव्याप्तिः—यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानामप्रवेशस्तथा वादरवायुकायिकजीवानां प्रवेशः, ते च यदि सूक्ष्मानर्हाः प्रकृतीर्बन्धन्ति, तदा तासु मार्गणासु तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना देशोलोकप्रमाणा समागच्छति ।

वादरवायुकायिकरहितास्वपि मार्गणासु यदा वादरनाम बन्धन्तो जीवा वादरवायुकायिकतयोत्पद्यन्ते, तदा वादरनामबन्धकानां स्पर्शना देशोलोकप्रमाणाऽवाप्यते ।

(३) एकद्वयादिभागविषया व्याप्तिः—इयं व्याप्तिः स्वस्थानादिक्षेत्राऽपेक्षया निष्पद्यते, तत्र क्षेत्रं त्रिविधं विद्यते, स्वस्थानक्षेत्रम् पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रम् अन्तरालक्षेत्रं च । स्वस्थानक्षेत्रं नाम यत्स्वकीयाऽवस्थानक्षेत्रं तदिति । पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रं नाम यद्यत्प्रकृतिबन्धकैः कालं कृत्वा यस्मिन् क्षेत्रे उत्पद्यन्ते तत्क्षेत्रम् । एतत्क्षेत्रं यावद्दूरं यावद्विस्तृतं प्राप्तुमर्हति तावद्दूरं तावद्विस्तृतं ग्राह्यमिति । अन्तरालक्षेत्रम्—उत्पत्तिक्षेत्रस्वस्थानक्षेत्रयोर्मध्यगतं दूरत्वरूपं क्षेत्रमत्राऽन्तरालक्षेत्रमुच्यते । विवक्षितप्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रं पारमविकक्षेत्रमित्युभयमुभयोरेकतरं वा प्रतररज्जुप्रमाणं स्यात् तथा द्वयोरन्तरमेकद्वयादिरज्जुप्रमाणं स्यात्तदर्थेकद्वयादिभागरूपा स्पर्शना प्राप्यते । तद्यथा—वैक्रियद्विकबन्धकानां स्पर्शनैकादशभागमाना, तच्चैवमुपपत्तिमालभते—वैक्रियद्विकबन्धकानां तिर्यग्लोक एव सत्त्वेन स्वस्थानक्षेत्रं प्रतररज्जुप्रमितमस्ति तथा वैक्रियद्विकस्य बन्धकालेऽधोलोके सप्तमनरक उत्पत्तिस्थानं मरणसमुद्धाते स्वस्थानक्षेत्रादुत्पत्तिक्षेत्रस्याऽन्तरं षड्रज्जुमितमस्ति, ऊर्ध्वं च सहस्रारदेवकल्पे समुत्पत्तिस्थानं मरणसमुद्धातेऽन्तरं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति, अतो वैक्रियद्विकबन्धकानामेकादशभागमाना स्पर्शना समुपपत्तिमालभते । एवमेव देवद्विकबन्धकानां पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शनोर्ध्वक्षेत्रमाश्रित्य वेदितव्या । यदा विवक्षितप्रकृतिबन्धकानामधिकतया स्पर्शना देवगमनागमनापेक्षया प्राप्यते, तदा सहस्रारान्तदेवानाश्रित्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, आनतादिदेवानाश्रित्य सा षड्रज्जुप्रमाणाऽवाप्यते, यथा मनुष्यद्विकादीनामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु ।

(४) लोकाऽसंख्याततमभागप्रमाणस्पर्शनाविषयिका व्याप्तिः--यस्याः प्रकृतेर्वन्धकाः सूक्ष्मजीवा वायुकायिकजीवा वा न भवेयुः, ते च सूक्ष्मेषु वायुकायिकेषु च समुत्पत्तिमप्यप्राप्यमाणा भवेयुः, तादृशानां जीवानां यदि स्वस्थानक्षेत्रमुत्पत्तिक्षेत्रं च प्रतरञ्जुप्रमितं न भवेत्, अथवा स्वस्थानक्षेत्र-पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रयोः प्रतरञ्जुप्रमितत्वेऽपि द्वयोरन्तरालक्षेत्रं रञ्जोरसंख्याततमभागमेव स्यात् तर्हि तत्प्रकृतिवन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा प्राप्ता भवति ।

तद्यथा--ओधे मार्गणायां चाहारकद्विकवन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा प्रतिपाद-यिष्यते, तस्या उपपत्तिरेव विधेया, आहारकद्विकवन्धकानां वैमानिकेषूत्पत्तिसम्भवेनाऽन्तरालक्षेत्रस्य सप्तञ्जुप्रमितत्वेऽपि स्वस्थानक्षेत्रमुत्पत्तिक्षेत्रं च प्रतरञ्जोरसंख्याततमभागमेवाऽस्ति, तस्मात्तेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा एव प्राप्यते, तथा प्रथमनरकमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां वन्धकानां द्वित्रिचतुरिन्द्रियमार्गणासु पञ्चेन्द्रियजातिव्रसनामप्रभृतिप्रकृतीनां वन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येय-भागमात्रा निरूपयिष्यते, तदपि तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य वा प्रतरञ्जु-प्रमाणत्वेऽपि तदन्तरालक्षेत्रस्य च रञ्जोरसंख्यातभागमात्रत्वेन रूपपद्यते ॥११००॥

अथ नरकौघसप्तमनरकलक्षणमार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनामाह

गिरयचरमगिरयेसुं फुसिओऽत्थि गरदुगतित्यञ्ज्याण ।

लोकासंख्यभागो छुहिजा भागा छ सेसाण ॥११०१॥

(प्रे०) 'गिरय' इत्यादि, नरकौघसप्तमनरकमार्गणयोर्मनुष्यद्विकजिननाभोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य वन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः । भावना त्वेवं कर्तव्या--सप्तमनरकमार्ग-णायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य वन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य नरकौघमार्गणायां च मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रजिननामलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य वन्धकानां पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य स्वस्था-नक्षेत्रस्य च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्प्रमाणैवाऽप्राप्यते । 'छुहिओ' इत्यादि, एतन्मनुष्यद्विकादिप्रकृतिचतुष्कं विहाय शेषप्रकृतीनां वन्धकैः पङ्मागाः स्पृष्टाः, तद्यथा--मार्गणयोरनयोर्वर्तमानाः शेषप्रकृतिवन्धका जीवास्तिर्यग्मनुष्येषु समुत्पद्यन्ते, समु-त्पद्यमानाश्च ते मरणसमुद्घातावस्थायां कृतात्मप्रदेशदण्डैः व्रसनाडिकायाः अधस्तनीयान् पङ्ज्ज्वा-त्मकान् भागान् स्पृशन्ति स्म । सप्तमनरकादारभ्य तिर्यग्लोकं यावत् पङ्ज्जुमानं क्षेत्र वर्तते, एषा पङ्ज्जुप्रमाणा स्पर्शना तिर्यक्षूत्पद्यमानापेक्षया एव विज्ञेया । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः--मतिज्ञानावर-णीयादिसप्तचत्वारिंशद्भुवचन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्गतिपञ्चेन्द्रिय-जात्यौदारिकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यगानुपूर्वीखगतिद्वयव्रसदशकाऽस्थिरपट्कोद्योतपरिधा - तोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशद्भुवचन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चनवतिरिति ॥११०१॥

अधुना प्रथमनरकमार्गणायां ग्रैवेयकादिमार्गणासु तथाऽपरासु कतिपयासु मार्गणासु चायु-
र्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

लोकासखियभागो सप्पाऊग्गाण सव्वपयडीण ।

परिपुट्ठो पढमणिरयगेविज्जाइसुरमेएसुं ॥११०२॥

वेउव्वमीसजोगे आहारदुग्गमणपज्जवेसु तहा ।

सामाइअछेएसु परिहारविसुद्धिसुहमेसुं ॥११०३॥

(प्रे०) 'लोका' इत्यादि, रत्नप्रमानरकनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरवैक्रियमिश्रकाययोगाहारककाययो-
गाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानमामयिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायमंयमरूपासु
त्रयोविंशतिमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः परिस्पृष्टः, एताभ्यो मार्गणा-
भ्यः कासुचिन्मार्गणासु वर्तमानानां जीवानां पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य स्वस्थानक्षेत्रस्य च, कासुचि-
न्मार्गणासु च वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् कासुचित्पुन-
रन्तरालक्षेत्रस्य रज्ज्वसंख्यभागमात्रत्वात् । एतदुक्तं भवति-अत्र पूर्वोक्तश्चतुर्थो नियमोऽनुसरणीयः
अथ प्रस्तुते घटना क्रियते-प्रथमनरकेऽन्तरालक्षेत्रस्य रज्ज्वसंख्यातभागमात्रत्वात्, वैक्रियमिश्रे
केवलं स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभेन तस्य च लोकासंख्यभागमात्रत्वात्, तथा शेषमार्गणासु स्वस्थान-
क्षेत्रपारमविकोत्पत्तिक्षेत्रयोः प्रतररज्ज्वमंख्येयभागमात्रत्वादत्रोक्तासु सर्वासु मार्गणासु सर्वासां
स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां वन्धकैर्लोकाऽसंख्यातभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टमुपलभ्यत इति ॥११०२-३॥

साम्प्रतं द्वितीयादिनरकपञ्चकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं दर्शयन्नाह

वीआइणिरयपणगे णिरयव्वडत्थि जिणणरदुगुच्चाण ।

कमसो इगदुत्तिचउपणभागा छुहिआडत्थि सेसाण ॥११०४॥

(प्रे०) 'वीआ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु पञ्चसु मार्ग-
णासु जिननाममनुष्यद्विकोर्जैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य वन्धकानां स्पर्शना नरकौघमार्गणावदभिधा-
तव्या, सा च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तते, भावना नरकौघवद् विधेया । "कमसो"
इत्यादि, मार्गणास्त्रासु शेषप्रकृतिवन्धकैः क्रमशः एकद्वित्रिचतुःपञ्चभागाः स्पृष्टाः सन्ति । इदमुक्तं
भवति-शर्कराप्रमानरकमार्गणायां शेषप्रकृतिवन्धका एकरज्ज्वात्मकैकभागम्, वालुकाप्रमानरकमार्गणाया
द्वौ भागा, पङ्कप्रमानरकमार्गणाया त्रीन् भागान्, धूमप्रमानरकमार्गणायां भागचतुष्कं, तमःप्रमानरक-
मार्गणाया पञ्चभागान् स्पृशन्ति स्म । इयं स्पर्शनाऽप्येषां तिर्यक्षु जायमानानां समुद्धातावसरे विहि-
तात्मप्रदेशदण्डैः प्राप्यते, एतादिभागस्पर्शनाविषयकः पूर्वोक्तनियमोऽत्रानुसरणीयः-यासु मार्गणासु
यासां प्रकृतीनां वन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रपारमविकोत्पत्तिक्षेत्रयोरन्यतर्क्षेत्रमायामविष्कम्भाभ्यां प्रतर-
रज्जुप्रमाण तयोरन्तरालमेकादिरज्जुप्रमाणं च तदा तासु तासां प्रकृतीनां वन्धकानां स्पर्शनैकादि-

भागप्रमाणा अवगन्तव्या, अयं भावः यद्यन्तरालमेकञ्जु प्रमाणं तदा स्पर्शनैकभागप्रमाणा. द्विरञ्जु प्र-
माणामन्तरालं तदा स्पर्शना त्रयनाड्या उक्तद्विभागप्रमाणा, एवं त्रिरञ्जुवाद्यन्तरालेष्वपि ज्ञेयम् । अथ
भावना क्रियते—उक्तपञ्चनरकाणां स्वस्थानक्षेत्रस्य प्रतररञ्जुसंख्यातभागमात्रत्वेऽपि पारमविकोत्प-
त्तिस्थानरूपतिर्यग्लोकस्य प्रतररञ्जु प्रमाणत्वात्, द्वितीयादिनरकतस्तिर्यग्लोकरूपोत्पत्तिक्षेत्रं यावद-
न्तरस्यैकादिरञ्जुमित्त्वाच्च स्पर्शनैकादिभागप्रमाणा प्राप्ता । नरकौघमार्गणोक्ता एव पञ्चनवतिप्रकृत-
योऽत्रापि शेषप्रकृतितया ग्राह्याः ॥११०४॥

इदानीं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्ररूपयितुमाह

दुपणिदियतिरियेसु विण्णेयो फरिसिओ सयललोओ ।

णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण च ॥११०५॥

अत्थि णवसुराईण पण भागा छ चउदुस्सराईण ।

योअ दिवड्ढेगारह पणिदिविक्कियदुगतसाण ॥११०६॥

अत्थि जसुज्जोआण सग भागा वायरस्स ऊणजगं ।

लोगासखियभागो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११०७॥

एमेव जोणिणीअ वि फुसणा णवरि चउदुस्सराईणं ।

पण भागा छुहिआ दस पणिदिविउवजुगलतसाण ॥११०८॥

(प्रे०) “दुपणिदिय” इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये ‘णपुम
असाय अरइदुगं । पणअथिराई हु ड णीअ परचाउसासा ॥ धुववघी पज्जत्त पत्तेय’ मितिसंग्रहभाषायावयवे-
वृद्धितानां नपुंमकवेदाऽमातवेदनीयाऽरतिद्विकाऽस्थिराऽशुभदुर्भगाऽनादेयायशःकीर्तिहुण्डकमस्थान-
नीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वासमस्रचन्वारिशन्मतिज्ञानावरणीयप्रभृतिध्रुववन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकनामरूपाणां
द्वाषष्टिप्रकृतीनां, ‘तेरस’ इत्यादि, ‘तिरियदुगउरलथावरणिदी थिरसुहा साय ॥ इस्सरई सुद्धमतिग’
मिति संग्रहभाषासूक्तानां तिर्यग्द्विकौदारिकशरीरनामस्थावरनामैकेन्द्रियजातिस्थिरशुभनामसातवेदनी-
यहास्परतिसूक्ष्मत्रिकरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां चेति सर्वसंख्यया पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकैः सकल-
लोकः स्पृष्टः, तद्यथा—मार्गणयोग्नयोर्वर्तमाना एतत्प्रकृतिबन्धका जन्तवः सूक्ष्मैकेन्द्रियेपृत्पद्यन्ते,
सूक्ष्मैकेन्द्रियाश्च सकललोकं व्याप्य वर्तन्ते, अतस्ते तत्र समुत्पद्यमानाः समुद्धातावस्थायां विहिता-
त्मप्रदेशदण्डैः सकलं लोकमनीतकाले स्पृष्टवन्तः । “अत्थि णवसुराई” इत्यादि, सुरद्रिकोच्चैर्गोत्र-
पुरुषवेदसुमगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानरूपाणां नवानां प्रकृतीनां बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः ।
यटना पुनरेवम् एतासां प्रकृतीनां बन्धका मार्गणाद्वयेऽस्मिन् सहस्रारदेवलोक यावदुत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं
जीवसमासग्रन्थाभिप्रायेण स्वक्षेत्रान्पञ्चरञ्जुमितं दूरे वर्तते, ते च तत्रोत्पद्यमाना मरणसमुद्धातवेलायां
कृतात्मप्रदेशदण्डैः पूर्वोक्तनियमानुसारेण त्रयनाड्याः पञ्चभागान् स्पृशन्ति ॥ “छ चउदुस्सरा-
ईणं” इत्यादि, दुःस्वराऽशुभखगतिनरकद्विकलक्षणानां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः,

यतः प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धका एतद्मार्गणागता जीवा आसप्तमनरकं समुत्पद्यन्ते, स्वस्थानक्षेत्र-
 पारमविकोत्पत्तिस्थानयोरन्तराक्तस्य पङ्कजुमितत्वात् पूर्वोक्तनियमानुसारेण स्पर्शना पङ्कजुप्रमा-
 णाऽस्ति । 'धोअ' इत्यादि, स्त्रीवेदस्य बन्धकैरर्धाधिकैकभागः परिस्पृष्टः, यत इह स्त्रीवेद-
 बन्धका द्वितीयदेवलोकपर्यन्तमेव जायन्ते, देवीनामुत्पत्तेस्तावति क्षेत्र एव भावात्, स्वक्षेत्राद्विती-
 यदेवलोकपर्यन्तक्षेत्रमर्धाधिकैरङ्गुप्रमाणमस्ति, प्रतिपादितं च जीवससासवृत्तौ-“पूर्वोक्ताल्लोकमध्यात
 सौधर्मेक्षानदेवलोकौ यावत् सार्धरङ्गु-सार्धरङ्गुप्रमाणं स्पर्शनीय क्षेत्रमित्यर्थः” । ते च तत्रोत्पद्यमाना
 मरणसमुद्घातवेलायां विहितात्मप्रदेशदण्डैरुक्तप्रमाणक्षेत्रं स्पृशन्ति । अत्रेदं ध्येयम्-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मा-
 र्गणाद्वयमाश्रित्य स्त्रीवेदप्रकृती सास्वादनगुणस्थानवर्तिनः पञ्चेन्द्रियतिरश्चः सिद्धशिलायामुत्पद्यन्ते,
 तत्रोत्पद्यमानानां तेषां मरणसमुद्घातमाश्रित्य सप्तरङ्गुप्रमाणस्पर्शना भवति । अत एवाग्रे मिथ्या-
 त्वाबन्धकजीवानां स्पर्शना मरणसमुद्घातेनैकेन्द्रियमत्र उत्पद्यमानान् सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानां
 श्रित्य सप्तरङ्गुप्रमाणा स्पर्शना प्रतिपादयिष्यते । प्रस्तुते सास्वादनगुणस्थानवर्तिनां जीवानां मर-
 णसमुद्घातेन सिद्धशिलायामुत्पद्यमानानां नपुंसकवेदाबन्धकत्वेन स्त्रीवेदबन्धकत्वात् सप्तरङ्गुप्र-
 माणा स्पर्शनोपपद्यते । तथाप्यत्र सौधर्मेक्षानदेवलोकस्थाने स्त्रीत्वेन उत्पद्यमानान् पञ्चेन्द्रियतिरश्च
 आश्रित्य सार्धरङ्गुप्रमाणैव स्पर्शना निरूपिता । कथम् ? इति चेद् उच्यते, विवक्षावशाद् । इयमत्र
 विवक्षा-बाहुल्येन ये जीवा यस्मिन् भवे उत्पद्यन्ते तेषां जीवानां मरणसमुद्घाते तद्भवप्रायोग्यप्रकृतीनां
 बन्धो भवति मरणसमुद्घातस्य भवचरमान्तर्मुहूर्त एव सत्त्वात्तदानीं परमवप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्य
 कथितत्वाच्च । तदुक्तं कर्मप्रकृतिग्रन्थगतोदीरणाकरणप्रकरणे त्रयस्त्रिंशत्तमगाथायाश्चूर्णो-‘जो जत्य उवव-
 ज्जइ सो तप्पाउग्गपगति अंतोमुहुत्त वंधिऊण उववज्जइ’ति । प्रकृते पञ्चेन्द्रियतिरश्चः सौधर्मेक्षानदेवलो-
 कस्थाने देवतया उत्पद्यमाना मरणसमुद्घाते स्त्रीवेदबन्धं कुर्वन्तीति तानाश्रित्य सार्धरङ्गुप्रमाणा स्पर्-
 शना निरूपिता । एवमेव प्रकृतमार्गणादिके त्रयपञ्चेन्द्रियजातिपञ्चमसंहननाशुभलगातिदुःस्वरना-
 मादिप्रकृतीराश्रित्य, देवौघादीशानान्तदेवमार्गणासु त्रयपञ्चेन्द्रियजातिपञ्चमसंहननसंस्थानकुलगाति-
 दुःस्वरस्त्रीवेदादिप्रकृतीराश्रित्य, पञ्चेन्द्रियद्विकत्रसद्विकपञ्चमनःपञ्चवचनयोगादिमार्गणासु च त्रसा-
 दिनामप्रकृतीराश्रित्य तत्तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनायां तथाऽग्रे तत्तत्प्रकृत्यबन्धकस्पर्शनायामपि
 यथासंभवमियमेव विवक्षाऽवगन्तव्या ।

“एगारह” इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकत्रसनामरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका
 एकादशमागान् स्पृष्टवन्तः, भावना पुनरित्थं भावनीया-प्रकृतमार्गणाद्वये प्रकृतिचतुष्कस्याऽस्य बन्धका
 अधः सप्तमनरक यावदूर्ध्वं पुनरामहस्तरलोक समुत्पद्यन्ते, एतदुभयमपि क्षेत्रमेकादशरङ्गुप्रमाणमस्ति,
 तत्सर्वमपि क्षेत्रं मरणसमुद्घातावसरे कृतात्मप्रदेशदण्डैस्ते तत्र समुत्पद्यमानाः स्पृष्टवन्तः । “अत्थि
 जसु” इत्यादि, यशःकीर्तिनामोद्योतनामलक्षणप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानां स्पर्शना सप्तमागमाना वर्तते,

तदेवम्—एतत्प्रकृतिद्वयबन्धका अधिकृतमार्गणाद्वयगता जीवा ईषत्प्राग्भारपृथ्वीं यावत्पृथ्वीकायतयो-
त्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं मत्सरज्जुप्रमाणं विद्यते, उत्पद्यमानाश्च ते तत्र मरणसमुद्घातसमये कृतैः स्वात्मप्रदेश-
दण्डैस्तत्क्षेत्रं स्पृशन्ति, अथो लोके मत्सरकपृथ्वीपूत्पद्यमाना उत्तप्रकृतिद्वय नैव वृन्तन्ति, अत
ऊर्ध्वलोकगतस्पर्शना एव गृहीताः । 'वायरस्स' इत्यादि, वादरनामकमणो बन्धका देशोनलोकं परि-
स्पृष्टवन्तः, वादरवायुकायिकतयोत्पत्सुभिस्तैर्मरणसमुद्घातावसरे तावत्क्षेत्रस्य स्पृष्टत्वात्, वादरवायु-
कायिकानां क्षेत्रस्य देशोनलोकप्रमाणत्वाच्च, उक्तं च पञ्चमग्रहवृत्तौ श्रीमदाचार्यमलयगिरिसूरिपादैः
'वायरपवणा असंख्येसु त्ति-वादरपवना वादरवायुकायिका' पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च प्रत्येक लोकस्याऽसंख्येयेषु
भागेषु वर्तन्ते । लोकस्य हि यत्किमपि सुपिरं तत्र सर्वत्रापि वायवो प्रसर्पन्ति, यत्तु नरतिनिष्ठानि चित्त-
वयवतया सुपिरहीनकनकगिरिमध्यभागादि तत्र न । तच्च सकलमपि लोकस्यासंख्येयभागमात्रम् । तत
एकमसंख्येयभागं भुक्त्वा शेषेषु सर्वेष्वप्यसंख्येयेषु भागेषु वायवो वर्तन्ते' इति । वादरवायुकायिकेषु
जायमानाः प्रकृतमार्गणाद्वयवर्तिवादरनामकर्मबन्धका मारणिकसमुद्घातकृतात्मप्रदेशदण्डैरेतादृशमुक्त-
प्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति । ननु सुपिरहीनकनकगिरिमध्यभागादिषु वादरवायुकायिकानामभावाद् देशो-
नलोकप्रमाणं स्वस्थानक्षेत्रं युक्तियुक्तं भवति, परन्त्वत्रातीतकाले समुद्घातगतैरनन्तैर्जीवैः सुपिरहीन-
कनकगिरिमध्यभागादीनां स्पृष्टत्वाद् वादरनामकर्मबन्धकैः सर्वलोकं स्पृष्टव्यं स्यात्, इति चेन्न
सुपिरहीनकनकगिरिमध्यभागादीनां स्पृष्टत्वेऽपि लोकरय निष्कुटानामस्पृष्टत्वाद् देशोनलोकप्रमाणैव-
स्पर्शना प्राप्यन् इति । 'लोक' इत्यादि, उक्तेतरस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतम-
भागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् । ताश्चेभाः शेषप्रकृतयः—मनुष्यद्विकविकलेन्द्रियत्रिकसंहननपट्टकमध्यम-
मंस्थानचतुष्कोटारिकाङ्गोपाङ्गातपनामरूपाः मत्सदृशप्रकृतयः । एतत्प्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य
पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च साधिकतिर्यग्लोकरूपत्वेन लोकस्यैकासंख्येयभागमात्रत्वात् ।

'एमेव' इत्यादि, तिर्यग्योनिमतीमार्गणायामेवमेवोक्तप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना वक्तव्या ।
'णवर' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति, "चउदुस्सराइ" इत्यादि, दुःस्वराऽशुमखगतिनरक-
द्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैस्तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां पञ्च भागाः स्पृष्टाः । तदेवम्—
मार्गणायामस्यां वर्तमाना जीवाः पृष्ठनरकं यावदेवोत्पद्यन्ते, स्त्रीणां सप्तमनरके उत्पादस्य निषेधात्,
स्वक्षेत्रात् पृष्ठनरकपर्यन्तक्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति, तच्चैतत्प्रकृतिबन्धका मरणसमुद्घातवेलायामाहित-
दण्डैः स्पृष्टवन्तः । अथ द्वितीयविशेषं दर्शयति—'दश' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकत्रसनाम-
कर्मरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका दश भागान् स्पृष्टवन्तः, तद्यथा एतन्मार्गणस्थाः एतत्प्रकृतिबन्धकाः
प्राणिन उर्ध्वमासहस्रारमधश्चाऽऽपृष्ठनरकं समुत्पद्यन्ते, उभयमपि क्षेत्रं दशरज्जुप्रमाणं भवति, पञ्चर-
ज्जुप्रमाणमुपरि पञ्चरज्जुप्रमाणं चाऽधः ॥११०५८॥

साम्प्रतमपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

असमत्तर्पणितिरिथर्पणितिरित्येतत्सु सत्त्वविगलेषु ।

सत्त्वजगं णपुमाद्गदुसद्वितेरतिरियाईणं ॥११०६॥

अत्थि जसुज्जोआणं सगभागा वायरस्स ऊणजगं ।

लोगासखियभागे सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥११०७॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियापर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तसकायरूपासु तिसृषु मार्गणासु, ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तिभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुर्गिन्द्रियमार्गणासु चेति द्वादशमार्गणासु 'णपुमअमायअरइदुग । पणअथिराई हुंढं णीअ परधाय-ऊमामा ॥ धुअववी पज्जत्तं पत्तेअ' इति मङ्ग्रहगाथावयवेषु भाषितानां नपुंसकवेदप्रभृतीनां द्वापष्टिप्रकृतीनां 'तिरियदुगअरल्लथावरएगिदी थिरसुहा माय ॥ हस्मरई सुहमतिग' इति संग्रहगाथावयवेषु भाषितानां च तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वो लोकः परिस्पृष्टः, एतत्प्रकृतिबन्धकैस्सूक्ष्मतयोत्पद्यमानत्वात् । 'अत्थि' इत्यादि, यशःकीर्त्युद्योतनाम्नोर्वन्धकाः सप्तभागान् स्पृष्टवन्तः । 'वायर' इत्यादि, वादरनागो बन्धकादेशेनलोकं स्पृष्टवन्तः, भावना पुनरुभयत्र तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौधमार्गणावदाधेया । 'लोगा' इत्यादि, इहोक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तार्थैताः शेषप्रकृतयः-पुरुषवेदस्त्रीवेदमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चक-मनुष्यानुपूर्वीलगतिद्विक्रमसुभगसुस्वरादेयदुःस्वराऽऽतपोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनत्रिंशत्प्रकृतय इति । भावनिका पुनरिहाऽनया रीत्या कार्या-आतपनामकर्मोदयो भानुमण्डलस्थितानां पृथ्वीकायिकजीवानां वर्तते, अन्यासां कामांचित्प्रकृतीनामुदयो यथायोगं मनुष्येषु वर्तते, कासाञ्चित्प्रकृतीनां विकलेन्द्रियेषु, कामाञ्चिच्च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु, अतो मार्गणास्वासु वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका मनुष्यत्वेन पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्वेन विकलेन्द्रियत्वेनाऽऽतपनामकर्मोदयवदेकेन्द्रियत्वेन वीर्योत्पत्सर्वो मरणसमुद्धातकाले निश्चिन्तात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति, तिर्यग्लोके तदासन्ने वा तेषां स्थानमावात् ॥११०९-१०॥

इदानीमपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सकलवादराग्निकायमार्गणासु चाऽऽयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निरूप्यते ।

असउज्जोआण सय अपज्जणरसत्त्ववायरउग्गीसुं ।

उज्जादुसद्विणपुमाद्दुतेरतिरियाइगाण सत्त्वजगं ॥११११॥ (गीतिः)

देसूणजगं वायरणामस्सियराण जगअसखंसो ।

(प्रे०) "असउज्जोआण" इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामोव-पर्याप्ताऽपर्याप्तिभेद-भिन्नासु तिसृषु वादराग्निकायमार्गणासु च प्रत्येकं 'अस उज्जोआण सयमुज्जा' ति यशःकीर्ति-नाम्न उद्योतनाम्नश्च बन्धकानां प्रस्तुता नानाजीवकृता स्पर्शना स्वयमभ्युक्षा, कथम् ? सर्वलोक-वर्तिस्सूक्ष्मपृथिव्यादिराशिषु तेषां गतेः सम्भवेऽपि सूक्ष्मपृथिव्यादितयोत्पत्सूनां मारणान्तिकसमृद्ध-

धातगतानां तेषां यशःकीर्त्युद्योतनामप्रकृतिद्वयबन्धस्यैवाप्रवर्तनात् , स्वस्थानतस्तु तेषां मनुष्यलोक-
वर्तित्वेन चोत्पादकृतस्पर्शनापर्यन्तधावनस्थानावश्यकत्वात् , तेषामुत्पादकृतस्पर्शनायास्तु 'दोसु
उड्ढकवाडेसु' इत्यादिना नयविशेषेण नानात्वात् । एतदुक्तं भवति-सामान्यतस्तत्तत्प्रकृतिबन्धकाना-
मृत्कृष्टस्पर्शना समुद्धातकृतस्पर्शनाप्राधान्येन लभ्यते, समुद्धातकृता महती स्पर्शना तु तेजःकायमार्ग-
णामु सूक्ष्मपृथिव्यादितयोत्पित्त्वनां सर्वलोके निक्षिप्तस्वात्मप्रदेशानां तेजःकायिकजीवानां स्पर्शना
प्रधाना, न च ते तदानीं प्रभुतं प्रकृतिद्वयं वचन्ति, तथा च तेजःकायमार्गणामु समुद्धातकृतस्पर्-
शनायाः सामान्यतः सर्वलोकप्रमाणत्वेन मा प्रकृतप्रकृतिद्वयस्वामिनां समुद्धातकृतस्पर्शनात्वेन
नैव युज्यते, स्वस्थानगतानां तेजःकायिकानां यद्यपि प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्य बन्धः सम्भवति, तथा च
प्रभुतस्पर्शनात्वेन स्वस्थानस्पर्शना लभ्यते, परं तस्या मनुष्यक्षेत्रमात्रत्वेन न सा सर्वमहती,
उत्पादावस्थागतानामपि प्रस्तुतप्रकृतिबन्धसम्भवेन स्वस्थानस्पर्शनापेक्षयोत्पादकृतस्पर्शनाया
विपुलत्वेन तस्या एव प्रस्तुतोत्कृष्टस्पर्शनातया युज्यमानत्वात् । न चैव तर्हि यावती तेषां वादर-
तेजःकायिकानामुत्पादकृता स्पर्शना स्यात् , तावती सा उच्यतामिति वाच्यम् , तस्या अभिप्रायवि-
शेषेणानेकविवृत्यस्य दर्शनात् । तद्यथा-उदिततेजःकायायुष्काणां सर्वलोके सगवेऽपि तेजःकायिकाः
स्वस्थानतो मनुष्यलोके एव तिष्ठन्ति, तत्राऽपि ये सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिजीवास्ततश्च्युत्वैकद्वयादिब-
न्धेषु वर्तमानाः स्वस्थानप्राप्त्यभिमुखीभूतास्ते ब्रह्मस्त्रमनाडेः स्थिताश्च प्रथमतो ये परिपूर्णमनुष्यलोका-
वगाडेऽत एवार्धतृतीयद्वीपसमुद्रप्रमाणवाहल्ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरस्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्ते केवलिसमुद्धा-
तकृपाटवदूर्ध्वमधश्च लोकान्त स्पृष्टे तयोः, परिपूर्णतिर्यग्लोकक्षेत्रं चेत्येतावति क्षेत्रे प्रविश्य पश्चा-
त्तदन्तो यथासम्भवमेकादिवर्कं कृत्वा ऋज्व्या वा मनुष्यलोके स्वोत्पत्तिस्थानेषूपत्यन्ते, तत्र ये यथो-
क्तकृपाटद्वयं तिर्यग्लोकं वाऽद्याप्यप्राप्ता उदिततेजस्कायाऽऽयुष्कास्ते यद्यपि ऋजुध्वनयेन तेजःकायि-
कव्यपदेशमात्रस्तथाऽपि व्यवहारनयेन तु ये यथोक्तकृपाटद्वयं तिर्यग्लोकं वा प्राप्तास्त एव यदा तेजः-
कायिकतयाऽधिक्रियन्ते, तदा तयोः कृपाटयोस्तिर्यग्लोकस्य च लोकाऽसंख्येयभागमात्रगतत्वेन
प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा भवति, अधिकृतश्चैवमेव व्यवहारो-
ऽन्यत्र, यदुक्तम् श्रीमत्यां प्रज्ञापनायाम्-

कहि णं भते ! वायरते उकाइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा प० गोयमा ! जत्थेव वायरते उकाइयाण पज्जत्त-
गाण ठाणा तत्थेव वायरते उकाइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा प उववाएणं लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु तिरिय-
लोयतट्टे य समुद्धाएण सच्चलोए, मट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे । तद्वृत्तौ-अपर्याप्तवादरतेजःकायिकस्था-
नानि पृच्छति-काइणं भते । इत्यादि, प्रश्नसूत्र गतार्थं, भगवानाह-गोयमा इत्यादि गौतम ! यत्रैव वादरतेजः-
कायिकानां पर्याप्तानां स्थानानि तत्रैव वादरतेज कायिकानामपर्याप्तानामपि स्थानानि प्रज्ञप्तानि, पर्याप्तनिश्च-
यैवापर्याप्तानामवस्थानात् , 'उत्रवाएण लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य' इति इहार्धतृतीयद्वीप-
समुद्रनिःसृते अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रप्रमाणवाहल्ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरस्वयम्भूरमणपयन्ते ये कृपाटे केवलि-

समुद्घातकपाटवद् ऊर्ध्वमपि लोकान्त स्पृष्टे ते अधोऽपि च लोकान्त स्पृष्टे ते ऊर्ध्वकपाटे, तयो ऊर्ध्वकपाटयो , तथा 'तिरियलोयतट्टे' य इति तट्टे स्थानं तिर्यग्लोके तट्टमिव तिर्यग्लोके तट्टे तस्मिंश्च स्वयम्भूगमणसमुद्रवेदिका-पर्यन्ते अष्टादशयोजनशतबाह्व्ये, समस्ततिर्यग्लोके चेत्यर्थः, उपपातेन वादरतेजःकायिकानामपर्याप्ताना स्थानानि प्रज्ञप्तानि । केचित् तिरियलोयतट्टे य इत्येव व्याचक्षते-तयोः कपाटयो स्थितः तत्स्थ तिर्यग्लोकश्चासौ तत्स्थः, तयोरुर्ध्वकपाटयोरन्तर्वर्तिरतिर्यग्लोक इत्यर्थः तस्मिंश्च, किमुक्तं भवति-द्वयोरुर्ध्वकपाटयोर्यथोक्तस्वरूपयोस्तिर्यग्लोकेऽपि च तयोरेव कपाटयोरन्तर्गते नान्यत्र, शेषतिर्यग्लोकव्यवच्छेदपरमेतद् वाक्यम्, न विधानपरम्, विधानस्य-कपाटग्रहणेनैव सिद्धत्वात्, तत्त्वपुन केवललिना विशिष्टश्रुतविदा वा गम्यम्, इयमत्र भावना-इह त्रिविधा वादरा-पर्याप्ततेज कायिका, तद्यथा एकभविक्का बद्धायुपोऽभिमुखनामगोत्राश्च, तत्र ये एकस्माद् विवक्षिताद् भवाद-नन्तर वादरापर्याप्ततेजःकायिकत्वेनोत्पत्यन्ते, ते एकभविक्काः, ये तु पूर्वभवत्रिभागादिसमयैर्वद्वन्वादरापर्याप्ततेजः-कायिकायुपस्ते बद्धायुप, ये पुन वादरापर्याप्ततेज कायिकायुर्नामगोत्राणि पूर्वभवमोचनानन्तर साक्षाद् वेद-यन्ते, तेऽभिमुखनामगोत्राः, तत्रैकभविक्का बद्धायुपश्च द्वयतो वादरापर्याप्ततेजःकायिका न भावत, तदाऽऽयुर्नाम-गोत्रवेदनाभावात् ततो न तैरिहाधिकारः किन्तु अभिमुखनामगोत्रै, तेषामेवोपपातस्य स्वस्थानप्राप्त्याभिमुख्य-लक्षणस्य लभ्यमानत्वात् । तत्र यद्यपि ऋजुसूत्रनयदर्शनेन वादराऽपर्याप्ततेज कायिकायुर्नामगोत्रवेदनाद् यथोक्तकपाटद्वयतिर्यग्लोकव्यावस्थिता अपि वादरापर्याप्ततेज कायिकव्यपदेश लभन्ते, तथाप्यत्र व्यव-वहारनयदर्शनाभ्युपगमाद् ये स्वस्थानसमश्रेणिकपाटद्वयव्यवस्थिता ये च स्वस्थानानुगते तिर्यग्लोके प्रविष्टास्ते एव वादरापर्याप्ततेजःकायिका व्यपदिश्यन्ते, न शेषाः कपाटापान्तरालव्यवस्थिता विषमस्थानवर्ति-त्वत् ; तेन येऽद्यापि कपाटद्वय न प्रविशन्ति, नापि तिर्यग्लोकरम्, ते किल पूर्वभवभावस्था एवेति न गण्यन्ते, उक्तं च-पणयाललक्खपिण्डुला दुन्नि कवाडा य छद्दिसि पुट्टा । लोगन्ते तेसिऽतो जे तेऊते उ घिप्पन्ति । ११ तत् उक्त-उत्तववाएणं दासु उड्डकवाडेसु तिरियलोयतट्टे य इति तदेवमिदं सूत्रव्यवहारनयप्रेदर्शनेन व्याख्यातं तथासप्रदायात्, युक्तं चैतत् "विचित्रा सूत्राणा गति" इति ।

अथाऽयमेवामिप्रायो नाधिक्रियतेऽपि तु ऋजुसूत्रनय एवाधिक्रियते, तदा प्रस्तुतस्पर्शना सर्वलोक-मात्रा एव स्याद्, तन्नये यथोक्तकपाटद्वयतिर्यग्लोकवर्तिनामप्युदिततेजःकायाऽऽयुष्काणां तेजःका-यिकतया व्यवहरणस्याविरुद्धत्वादित्येवं नानामिप्रायभेदभिन्नस्पर्शनासंग्रहार्थकतया 'सयमुज्झा' इत्यस्य सार्थक्यम्, एवमेवाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणास्थानेऽपि सूक्ष्मपृथिव्यादितपोत्पिष्टानां समुद्घातग-तानां प्रस्तुतप्रकृतिद्वयस्याऽग्रन्थादन्यथा प्रस्तुतस्पर्शनाऽभ्युह्नार्थमेव तस्याऽर्थवत्त्वं व्याख्येयमिति । 'दुसट्ठि' इत्यादि, पूर्वोक्तनपुंसकवेदादिद्वापष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्विक्रमभृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वजगत्स्पृष्टम् । 'देसूण' इत्यादि, वादरनाम्नो बन्धकैर्देशोनं जगत्स्पृष्टम् । 'इयराण' इत्यादि, अत्रोक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-स्त्रीपुरुषवेदद्वयं मनुष्यगतिर्द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारिकाङ्गोपाङ्गं मंहननपट्कं प्रथमादिसंस्थान-पञ्चकं मनुष्यानुपूर्वी खगतिद्विकं त्रयनाम सुभगसुस्वरादेयनामानि दुःस्वगनामातपनामोच्चैर्गोत्र-मिति नवविंशतिरपर्याप्तमनुष्यमार्गणायाम्, मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च विनैता एव षड्विंशतिर्वादरतेजः-कायभेदेषु चेति । भावना पुनरत्रापर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वदाधेया ॥११११॥

अथ वादरपृथ्वीकायादिमार्गणासु स्पर्शनामाह—

वायरसयलपुहविदगणिगोअपत्तेअहरिणसुं ॥१११२॥

णपुमाइडुसट्टीए तेरसतिरियाइगाण सव्वजगं ।

देसूणजगं वायरणामस्सियण सयमुज्झा ॥१११३॥

(प्रे०) 'वायरसयल' इत्यादि, वादरौघवादरपयोत्तमादगपयोत्तरूपासु त्रिपृथ्वीकायमार्ग-
णामु, त्रिजलकायमार्गणामु त्रिमाध्वारगवनस्पतिकायमार्गणामु त्रिप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणामु
चेति सर्वसंख्यया द्वादशमार्गणामु 'णपुमाइ' इत्यादि, नपुंसकवेदादिद्रापाष्टप्रकृतीनां तथा 'तेरस'
इत्यादि, त्रयोदशतिर्यग्गत्यादिप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम्, अस्मां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां
बन्धकानां सूक्ष्मेष्टत्वादात् । 'देसूणजगं' इत्यादि, वादरनामबन्धकैर्निरुक्तमार्गणावर्तिजीवैर्देशोन-
लोकः स्पृष्टः । कुतः इति चेदुच्यते, वादरवायुकायिकेष्टत्वादाद् वादरवायुकायिकानां च देशोनलोक-
वर्तित्वाच्च । 'इयराण सयमुज्झा' उक्तव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना स्वयमूह्या
दृष्टातृसकाशदिति ॥१११२१३॥

अथ मनुष्यत्रयमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां कथयितुमाह

तिणरेसु जाणियव्व परिपुट्टं वधगेहि सव्वजगं ।

णपुमाइडुसट्टीए तेरसतिरियाइगाणं च ॥१११४॥

अत्थि जमुज्जोआण सयमुज्जा वायरसा ऊणजगं ।

लोगाऽसखियभागो सेसाण अट्टीसाए ॥१११५॥

(प्रे०) 'तिणरेसु' इत्यादि, मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीरूपासु तिसृषु मार्गणामु नपुंसक-
वेदादिद्रापाष्टप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकप्रभृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः । 'अत्थि'
इत्यादि, यशःकीर्त्युद्योतनाम्नोर्वन्धकस्पर्शना अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावत् स्वयमभ्यूह्या । वाय-
रस' इत्यादि, वादरनाम्नां बन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, भावना पुनरिह अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्-
भाव्या । 'लोगा' इत्यादि, अत्राऽभिहितशेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतम-
भागप्रमाणा बोद्धव्या । शेषप्रकृतिबन्धकेषु कासाश्चित्प्रकृतिबन्धकानां पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य कासा-
श्चित्प्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानपारमविकोत्पत्तिक्षेत्रान्तरालस्य रज्ज्वसंख्यातभागमात्रत्वात् स्वस्थान-
क्षेत्रस्यापि मनुष्यक्षेत्रमात्रत्वाच्च स्पर्शना लोकाऽसंख्यातभागमात्राऽवसेया । शेषप्रकृतयश्चेमाः—
अपर्याप्तमनुष्यमार्गणोक्तैर्कोनत्रिंशत्प्रकृतयस्तथा वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननामप्रकृतयश्चेति सर्व-
संख्ययाऽष्टात्रिंशत्प्रकृतयः ॥१११४-५॥

इदानीं देवमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयति—

देवीसाणतेसु णेया णपुमाहपंचसयरीए ।

णव भागा परिपुट्टा अड भागा अत्थि सेसाणं ॥१११६॥

(प्रे०) 'देवी' इत्यादि, देवौघमवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कभौधर्मेऽज्ञानलक्षणासु पट्सु देवमार्ग-
णामु 'णपुमअसायअरइदुग । णवअथिराई हु ङ णीअ परघायऊसासा ॥ ध्रुववधीपज्जत्त पत्तेअं वायरजसु-

ज्जोआ । तिरियदुगउर० थावरएगिदी थिरसुहा साय ॥ हस्सरई' इति संग्रहगाथासूदितानां नपुंसकवेदा-
दिपञ्चमप्रतिप्रकृतीनां बन्धका नव भागान् स्पृशन्ति । कथमिति चेद् उच्यते-मार्गणा-
स्वासु वर्तमाना देशा अवस्तात्तृतीयनरकं यावद्गमन करणोपस्थितौ कुर्वन्ति, तथोपरि तु
सिद्धशिलायां पृथ्वीकायिकेभूत्पत्तिमालम्बन्ते अतस्तेषां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणा प्राप्यते । आह जीव-
समासवृत्तौ श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रसूरिपादाः भवनपत्यादय ईशानन्ता देवा... नवरज्जु
स्पृशन्ति, तथाहि भवनपतिव्यन्तरा ज्योतिष्कास्तावत् पूर्वोक्तकारणादधस्तृतीयनरकपृथ्वीं यावद्गच्छन्तो
रज्जुद्वयं स्पृशन्ति, उपरि चेत्पद्मारादिपृथिवीकायिकेभूत्पद्यमानाः समरज्जुं स्पृशन्तीति सर्वा अपि नव,
सौधर्मेशानदेवा अपि मिथ्यादृष्टिसास्वादनास्तृतीयपृथ्वीं यावद् गच्छन्त सार्धं रज्जुत्रयं स्पृशन्ति, उपरि-
चेत्पद्मारादिपृथ्वीकायिकेषु उत्पद्यमानाः सार्धं पञ्चरज्जुं स्पृशन्तीति सर्वा अपि नवरज्जव इति ।
तस्मात् प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणाऽप्राप्यते स्पर्शनाया अतीतकालविषयत्वा-
दुक्तनवरज्जुप्रमाणस्पर्शना व्रमनाड्या नवभागकल्पा ज्ञेयाः । 'अब्ज' इत्यादि, उक्तशेष-
प्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-देवौघसौधर्मेशानमार्ग-
णामु स्त्रीपुरुषवेदद्वय मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकाङ्गोपाङ्गं संहननपट्क प्रथमादि-
संस्थानपञ्चकं मनुष्यानुष्वी खगतिद्वय व्रससुभगमुस्वरादेयनामानि दुःस्वरनामानपनाम-
जिननामोच्चैर्गोत्रमात सप्तविंशतिः । भवनपत्यादिदेवमार्गणात्रये जिननाम विनैता एव ।
अत्र मार्गणासु शेषप्रकृतिबन्धकानामष्टभागप्रमाणा स्पर्शना गमनागमनेनैव प्राप्यते, एतत्प्रकृति-
बन्धकानामेकेन्द्रियेष्वनुत्पादेनोर्ध्वलोकपत्कसप्तमरज्जोः स्पर्शनाया अविषयत्वात् । अस्ति च तेषां
गमनागमनमधस्तृतीयनरकं यावद्दूर्ध्वं चाऽच्युतदेवलोकं यावत् , उक्तं च जीवसमासीयहैमवृत्तौ-
एत एव भवनपत्यादय ईशानान्ता देवा . चाष्टरज्जुं स्पृशन्ति, इयं चाष्टरज्जुस्पर्शनाऽभीषामधस्तात् तृतीय-
नरकपृथ्वीं यावद्गच्छतामुपरि च पूर्वसागतिकदेवेनाऽच्युतदेवलोकं यावन्नोयमानानां भावनीया, तृतीयपृथिव्य-
च्युतदेवलोकयोरन्तरेऽष्टरज्जुसंज्ञावादिति ॥१११६॥

अथ तृतीयादिद्वादशान्तदेवमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमाह--

सञ्चाण अट्ट भागा' तद्दआङ्गअट्टमंतदेवेसु ।

पुट्टा अत्थि छ भागा सुरेसु चउआणयाईसुं ॥१११७॥

(प्र०) "सञ्चाण" इत्यादि, सनत्कुमारमाहेन्द्रप्रद्वलोल्लान्तकशुक्रसहस्राररूपासु पट्सु
मार्गणासु स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणास्वासु गमनागमनक्षेत्र-
स्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् , उक्तं च जीवसमासीयहैमवृत्तौ-अट्टसहस्रारतिय त्ति सामान्येन मिथ्यादृ-
ष्ट्यादिस्वरूपा सनत्कुमारादिसहस्रारान्तिका अपि देवा अष्टरज्जुं स्पृशन्ति, इयमष्टरज्जुस्पर्शना एतेषामध-
स्तात् तृतीयपृथ्वीं यावद्गच्छतामुपरि चाच्युतदेवलोकं पूर्वसागतिकदेवेन नोयमानानां तथैव परिभावनीया ।

पुट्टा' इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां
स्पर्शना षड्भागप्रमाणा बोद्धव्या, मार्गणामु वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य पट्-
रज्जुप्रमाण-

त्वात् । आह—अच्युत्ति अच्युतदेवलोकान् त्रिदशाः श्रीमच्चिन्मन्दनाद्यर्थमिहागच्छन्त पङ्कजः स्पृ-
गन्ति ॥१११७॥

साम्प्रतमेकेन्द्रियादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निरूपयन्नाह

हवए एगिदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।

सव्वजग परिपुट्टं सप्पाज्जाण सव्वेसि ॥१११८॥

(प्रे०) 'हवए' इत्यादि, एकेन्द्रियौधपृथ्वीकायौधवारिकायौधतेजःकायौधवायुकायौधवनस्प-
तिकायौधमाधारणवनस्पतिकायौधरूपासु सप्तसु मार्गणासु ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तिभेदभिन्नासु तिसृषु सूक्ष्मै-
केन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःका-
यिकमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायिकमार्गणासु स्व-
प्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वजगत् समधिगम्यम्, मार्गणास्वासु वर्तमानानां सूक्ष्मजीवानां
विश्वविश्वे व्याप्तत्वात् ॥१११८॥

अथ वादरौधैकेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतस्पर्शनामाह

वायरएगिदियतिगवायरवाउतत्तपज्जमेएसुं

खेत्तव्व अत्थि फुसणा सप्पाज्जाण पयड्ढीणं ॥१११९॥

(प्रे०) 'वायर' इत्यादि, ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तिभेदेन वादरौधैकेन्द्रियमार्गणात्रये वादरवायुकायौ-
धाऽपर्याप्तवादरवायुकायमार्गणयोश्च स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रवदस्ति । तदेवम्—उक्त-
मार्गणापञ्चके नपुंसकवेदादिद्विषष्टिप्रकृतीनां तिर्यग्गत्यादित्रयोदशप्रकृतीनां च स्पर्शना सर्वलोक-
प्रमाणा, मनुष्यद्विकोच्चैर्भोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना तु लोकासंख्येयभागमात्रा त्रिवादरौधैकेन्द्रिय-
मार्गणास्वेव, तथा शेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा मार्गणापञ्चके ज्ञातव्या
॥१११९॥ साम्प्रतं पञ्चेन्द्रियौधादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

सव्वजग दुपणिदियतसपणमणवयणचक्खुसण्णीसुं ।

णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइमाणं च ॥११२०॥

बावीसपुमाईण बारह गिरयसुरविउवजुगलोण ।

भागा छपणेगारस कमाड्ढु णरदुगजिणायवुच्चाणं ॥११२१॥ (गोति)

लोगासखियभागो विगलाहारगदुगाण भागाडित्थि ।

तेर जसुज्जोआणं ऊणजग वायरस्स मवे ॥११२२॥

(प्रे०) 'सव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौधपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रयौधपर्याप्तत्रसपञ्चमनोयोगमार्गणा-
पञ्चवचनयोगमार्गणाचक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु षोडशमार्गणासु नपुंसकवेदादिद्विषष्टिप्रकृतीनां तिर्य-
ग्द्विकप्रसृतित्रयोदशप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, हेतुस्तु पूर्ववत् । 'बावीसा' इत्यादि,
"पुमसुहगतिगसुसगइमागिई छसघयणा । मच्चिमसठाणिथी उरलोवगं तसपणिदी ॥ दुस्सरकुत्तगइ" इति

संग्रहभाषायां कथितानां द्वाविंशतिपुरुषवेदादिप्रकृतीनां बन्धका द्वादश भागान् स्पृष्टवन्तः, घटना पुनरेवम्-मार्गणास्त्रासु वर्तमानेषु जीवेषु मममनरकस्थजीवानाश्रित्याधोलोकसत्काः षड्भागाः, देवानाश्रित्योर्ध्वलोकसत्काः षड्भागाश्चेति सर्वमख्यया द्वादशभागप्रमाणा स्पर्शना प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां सूपपद्यते । 'णिरय' इत्यादि, नग्नद्विकस्य षट् भुद्विकस्य पञ्च वैक्रियद्विकस्य एकादश भागा स्पृष्टाः । भावनौघवत्कार्या, उभयत्र स्पर्शना मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानाश्रित्यावाप्यत इति कृत्वा ।

'ऽह' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिननामातपनामोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनां बन्धकै-
रष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणास्त्रासु वर्तमानानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्ट-
रज्जुप्रमाणत्वात् देवान् विहाय मार्गणागतान्यनिरुक्तप्रकृतिबन्धकानां ततो हीनस्पर्शनाया लाभाच्च ।
'लोकासंख्यभागो' इत्यादि, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजात्याहारकद्विकरूपस्य प्रकृतिपञ्चक-
स्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तदेवम्-मार्गणास्त्रासु आहारकद्विकबन्धका ओघवदप्रमत्त-
संयता एव वर्तन्ते, अतः स्पर्शनाऽप्योघवद् लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणैव तथा प्रकृतमार्गणासु
वर्तमानास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा मुख्यवृत्त्या द्वीन्द्रियादिजातीना बन्धकाः, अतस्तानाश्रित्य तिर्यक्-
पञ्चेन्द्रियमार्गणावत् प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्यभागप्रमाणाऽस्ति । 'तेरजसु'
इत्यादि, यशःकीर्तिनामोद्योतनानोर्बन्धकैस्त्रयोदशभागाः स्पृष्टा भवन्ति, तिर्यग्लोक उत्पित्सुभिः
सप्तमनरकपृथ्वीनारकैरधोलोकसत्काः षड्भागास्तथोर्ध्वलोकसत्काः सप्तभागाः सिद्धशिलायामुत्पि-
त्सुभिर्देवैस्तिर्यग्भिर्वेति संमीलिता त्रयोदशभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । 'ऊणजगं' इत्यादि,
वाटरनामबन्धकैर्देशोनजगत् स्पृष्टं भवति, तद्बन्धकानां देशोनलोके स्थितेषु वाटरवायुकायिकेषू-
त्पत्तिसंभवेन मारणान्तिकममुद्घातेन यथोक्तक्षेत्रस्य स्पर्शनादिति ॥११२०-२२॥

अथ वाटरपर्याप्तिवायुकायमार्गणायां स्पर्शनामाह

णपुमाइसुसट्टीए तेरसतिरियाइणाण सव्वजग
वायरवाउसमत्ते पुट्टं सेसाण ऊणजगं ॥११२२॥

(प्र०) "णपुमाइ" इत्यादि, पर्याप्तिवाटरवायुकायिकमार्गणायां नपुसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां
त्रयोदशतिर्यग्द्विकपभृतिप्रकृतीनां च बन्धकैः सर्वं जगत् स्पृष्टम्, आसां बन्धकैः सर्वलोकव्यापि-
सूक्ष्मेष्टव्यमानत्वादत्र । 'सेसाण' इत्यादि, शेषप्रकृतिबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, तेषां स्वस्थान-
क्षेत्रस्यापि तावन्मिमतत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-स्त्रीपुरुषवेदद्वयं द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कमौदारि-
काङ्गोयाङ्गं गहननपट्कं प्रथमादिमस्थानपञ्चकं विहायोगतिद्विकं त्रसवाटरसुभगसुस्वरादेशः कीर्ति-
नामानि दुःस्वर्गनामाऽऽतपोद्योतनाग्नी इत्येकोनत्रिंशत्प्रकृतयः ॥११२३॥

इदानीमौदारिककाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयितुमाह-

तित्थाहारदुग्गाणं पेयो ओरालियम्मि परिपुट्टो ।

लोकासंख्यभागो फुत्तणा ओघव्व सेसाणं ॥११२४॥

(प्रे०) 'तित्था' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां तीर्थकुन्नामाहारकद्विकप्रकृतीनां बन्धका लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमितं क्षेत्रं स्पृष्टवन्तः, भावना मनुष्यमार्गणावत्कार्या । 'फुसणा' इत्यादि, एतत्प्रकृतित्रयवर्जानां शेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौघवज्ज्ञेया । तद्यथा—नारकद्विक-बन्धकाः षड्भागान्, देवद्विकबन्धकाः पञ्च भागान् वैक्रियद्विकबन्धका एकादशभागान्, सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिक-द्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयस्वगतिद्वयत्रयसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधा-तोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाणां च षष्टिर्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्म ॥११२४॥

माम्प्रतमौदारिकमिश्रप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वैजोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना कथयितुकाम आह—

सुरचिउवदुगजिणाण उरलमीसे कम्मणे अणाहारे ।

लोकासखियभागो छुहिओऽण्णेसि अखिल्लोगो ॥११२५॥

(प्रे०) 'सुर' इत्यादि, औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगानाद्वारकमार्गणासु सुरद्विकवैक्रियद्विक-जिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरेवम्—मार्गणा-स्वासु मनुष्येभ्य उद्धृता मनुष्यत्वेन बोत्पद्यमानाः केचन सम्यग्दृष्टयः प्रकृतिपञ्चकमेतद् वध्नन्ति, तेषां च क्षेत्र लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, अत एतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकानां स्पर्शनाऽप्येतावत्प्रमा-णैव प्राप्यते । 'ऽण्णेसि' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकातिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना निखिल-लोकप्रमाणा वेदयितव्या, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां सकललोके व्याप्तत्वात्, तैश्च शेष-प्रकृतीनां बध्यमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विक-हाम्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यतिर्यग्गतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकमहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनु-ष्यानुपूर्वीद्वयस्वगतिद्वयत्रयसदशकस्थावरदशकातपोद्योतोच्छ्वासपराधातगोत्रद्वयरूपाः षष्टिर्भ्रुववन्धि-प्रकृतयश्चेति ॥११२५॥

अथ वैक्रियकाययोगमार्गणायां स्पर्शनामाह

विउवे णपुमाईण अडसट्ठीअ तह पणथिराईण ।

तेरस भागा बारस वावीसाए पुमाईण ॥११२६॥

अड भागा परिपुट्ठा हवन्ति णरदुगजिणायवुज्जाण ।

विण्णेया णअ भागा एगिदियथावरण तु ॥११२७॥

(प्रे०) 'विउवे' इत्यादि, वैक्रियकाययोगे नपुंसकवेदाद्यष्टपष्टिप्रकृतीनां तथा स्थिरशुभ-हास्यरतिमातवेदनीयरूपपञ्चस्थिरादिप्रकृतीनां च स्पर्शना त्रयोदशभागप्रमाणा अवसातव्या । अष्टपष्टिप्रकृतयः संग्रहगाथातो 'णपुम' प्रभृति 'उरल'पर्यन्तगाथावयवैर्ग्राह्याः । अधोलोकसत्कषड्भागा नारकानाश्रित्य ऊर्ध्वलोकसत्काश्च सप्तमागा ईशानान्तदेवानाश्रित्य बोध्याः । 'बारस' इत्यादि, ५३ क

पुमसुहृगतिगसुखगइआगिई छसधयणा । मञ्जिमसठाणित्थी उरलोवंगं तसपणिदी ॥ दुस्मरकुल्लगइ
इत्येनन कथितानां द्वाविंशतिपुरुषवेदादिप्रकृतीना स्पर्शना द्वादशभागप्रमाणा ज्ञेया, ऊर्ध्वलोकसत्क-
पड्भागा देवगमनागमनक्षेत्रमाश्रित्याधोलोकमन्काः पड्भागा नारकानाश्रित्यानेतव्याः ।
'अड' इत्यादि, मनुष्यद्विकजिनातपोच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चप्रकृतीनां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा मुख्य-
वृत्त्या देवगमनागमनक्षेत्रमाश्रित्य ज्ञेया । एकेन्द्रियस्थावरनाम्नोर्वन्धकानां स्पर्शना नवभाग-
प्रमाणा ईशानान्तदेवानेवाश्रित्यावगन्तव्या । विशेषभावना स्वय कर्तव्या । ११२६-७॥

अधुना स्त्रीवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं संचिन्तयन्नाह

इत्थीए विण्णेय परिपुट्ट बधगेहि सव्वजग ।
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण च ॥११२८॥
अट्टारपुमाईण णरदुगउच्चायवाण अड भागा ।
पण णिरयसुरदुगाण एगारस चउतसाईण ॥११२९॥
लोगासखियभागो विगलाहारदुगतित्थणामाणं ।
दस भागा परिपुट्टा वेउव्वदुगस्स णायव्वा ॥११३०॥
देसेणूणो लोगो वायरणामस्स फोसिओ हवए ।
णव भागा परिपुट्टा उज्जोअजसाण विण्णेया ॥११३१॥

(प्रे०) 'इत्थीए' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां नपुंसकवेदादिद्वाषष्टिप्रकृतीनां त्रयो-
दशानां तिर्यग्द्विकप्रभृतिप्रकृतीनां च बन्धकाः सकललोकं स्पृशन्ति स्म, मार्गणावर्तिरिश्चीमा-
नुषीनां सकललोकव्यापिद्वक्ष्मेष्टृत्वादात् । 'अट्टारस' इत्यादि, 'पुमसुहृगतिगसुखगइआगिई
छसधयणा । मञ्जिमसठाणित्थी उरलोवग' इत्येनेनोक्तानां पुरुषवेदादीनामष्टादशप्रकृतीनां, 'णर'
इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रातपनामकर्मणां च बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां
वर्तमानानामेतत्प्रकृतिवन्धकानां देवीजीवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् ता एवाश्रि-
त्यास्यां मार्गणायामधिकतमस्पर्शनाया लाभाच्च । देवीनामप्यूर्ध्वं गमनागमनमच्युतकल्पदेव-
सहायेनाच्युतकल्पं यावद् विद्यते । उक्तं च योगशास्त्रस्य स्वोपज्ञवृत्तौ "उत्पात्तदेवीनामाई-
शानात् गमन च आभच्युतात्" इति । 'पण' इत्यादि, नरकद्विकसुरद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य
बन्धकाः पञ्चभागान् स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां नरकद्विकबन्धकतया मुख्यतया तिरश्च्यः
सन्ति, ताश्चाधस्तात् पृष्ठनरकं यावदुत्पद्यन्ते, सुरद्विकबन्धिकाश्च तिरश्च्य ऊर्ध्वमासहस्रार-
देवलोकं समुत्पद्यन्ते, अधस्तनीयं पृष्ठनरकपर्यन्तं क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणं वर्तते, ऊर्ध्वमपि सहस्रारपर्य-
न्तं क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणं वर्तते, उत्पद्यमानाश्च तत्र ताः स्वप्रायोग्यं क्षेत्रं मरणमुद्धातकाले आत्म-
प्रदेशानां दण्डकरणेन स्पृशन्ति स्म । 'एगारस' इत्यादि, 'तसपणिदी दुस्मरकुल्लगइ' इति संग्रहगाथा-
यामुक्तानां चतसृणां त्रसनामादिप्रकृतीनां बन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—

मार्गणायामस्यां वर्तमाना एतत्प्रकृतिबन्धका जीवाः पृथनरकं यावदधस्तादुत्पद्यन्ते, अतस्तेषां मरण-समुद्घातकाले आत्मप्रदेशानां दण्डविधानेन पञ्चरज्जुप्रमाणक्षेत्रस्य स्पर्शना सम्पद्यते, तथोर्ध्वं पुनरेतन्मार्गणास्था देव्योऽच्युतपर्यन्तं गमनागमनं कुर्वन्ति, तस्मात्ताभिः पट्टरज्जवः स्पृश्यन्ते । एवं रीत्या त्रयादिप्रकृतिचतुष्कबन्धकानामेकादशभागमाना स्पर्शना भवति । 'लोका' इत्यादि, विकलत्रिकाहारकद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपट्टकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तदेवम्—विकलेन्द्रियजीवानां तिर्यग्लोक एव मत्त्वेन लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाण-मेव क्षेत्रमस्ति, लोकाऽपेक्षया तिर्यग्लोकस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् तथा प्रकृतप्रकृति-बन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रमपि साधिकतिर्यग्लोकरूपम्, तस्मान्मार्गणायामस्यां विकलत्रिकबन्धका जीवा विकलेन्द्रियेषु समुत्पित्तमवो मरणसमुद्घातवसरे कृतैरात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति । जिननाम्ना आहारकद्विकस्य च बन्धका मार्गणायामस्यां केचन सम्यग्दृष्टिमानुष्या एव वर्तन्ते, अतो मनुष्यमार्गणावत्तद्वन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्याततमभागप्रमितैव विद्यते । 'दश' इत्यादि, वैक्रियद्विकस्य बन्धकैर्दश भागाः स्पृष्टाः, तदेवम्—मार्गणायामस्यां वैक्रियद्विकबन्धकतया मुख्यवृत्त्या तिरश्च्योऽधः पृथनरकमूर्ध्वं च महत्सारदेवलोकं यावदुत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं समुदितं दशरज्जुप्रमितं वर्तते, ताश्च मरणसमुद्घातवेलायामाहितात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशं क्षेत्रं परिस्पृशन्ति । 'देसेणूणो' इत्यादि, बादरनाम्नो बन्धका देशेनलोकं स्पृशन्ति स्म, भावना पञ्चेन्द्रियमार्गणावत्कार्या । 'णव' इत्यादि, उद्योतयशःकीर्तिनाम्नोर्बन्धका नवभागान् स्पृष्टवन्तः, इमा स्पर्शना देवीराश्रित्य ज्ञेया, भावना देवौघमार्गणावत्कार्या ॥११२८३॥

साम्प्रतं पुरुषवेदमार्गणायामाधुर्बर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमावेदयितुमाह

अट्टारपुमाईण पुरिसे भागाऽट्टु फोसिआ णेया ।

णव जसउज्जोआण छण्णवईए पणिदिब्ब ॥११३॥

(प्रे०) 'अट्टार' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां 'पुमसुहगतिसुखगड्ढागिई छसधयणा ॥ मज्झिमसंठाणित्थी उरलोवगं' इति संग्रहगाथासूदितानां पुरुषवेदादीनामष्टादशप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । "णव जसउज्जोआण" इति, यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोर्बन्धकानां स्पर्शना नवभागप्रमाणाऽस्ति, सा चेशानान्तदेवानाश्रित्य ज्ञेया, भावना देवौघवत्कार्या । "छण्णवईए पणिदिब्ब" इत्यनेन एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां षण्णवतिप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् विज्ञेया । सा पुनरेवम्-नपुंसकवेदाऽमातवेदनीयाऽऽतिद्विकाऽस्थिरादिपञ्चकहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातो-च्छ्वामभक्षचत्वारिंशद्ब्रुवन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकतिर्यग्द्विकौदारिकशरीरस्थावरैकेन्द्रियस्थिरशुभसात वेदनीयहास्यरतिस्वक्षमत्रिकरूपाणां पञ्चमसतिप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्म, बादरनाम्नो

देशोनलोकप्रमाणा स्पर्शना ज्ञेया, नरकद्विकस्य षड् भागाः, त्रसपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वरकुखगतिरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां द्वादशभागाः, सुरद्विकस्य पञ्च भागाः, मनुष्यद्विकजिननामातपोचैर्गोत्ररूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामष्टौ भागाः, विकलेन्द्रियत्रिकाहारकद्विकरूपप्रकृतिपञ्चकस्य लोकाऽमख्येयतमो भागः, वैक्रियद्विकस्यैकादशभागाः स्पृष्टाः । इह भावनाऽपि पञ्चेन्द्रियोघमागणेव ज्ञेया ॥११३२॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयितुमाह

णपुमे ओधव्व भवे फुसणा सव्वणा णवरि वोद्धव्वो ।

लोकासखियभागो परिपुट्ठो तित्थणामस्स ॥११३३॥

(प्रे०) 'णपुमे' इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायामायां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौघवद् विज्ञातव्या, सा पुनरेवम्—आहारकद्विकस्य लोकाऽमख्येयतमभागः, नरकद्विकस्य षड् भागाः, देवद्विकस्य पञ्चभागाः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागाः, एतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीनां च सर्वलोकाः स्पृष्टाः, भावनौघानुसारेण विधेया । 'णचरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयितुमाह—तीर्थकृत्नामकर्मणो बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽमख्येयतमभागप्रमाणा वेदयितव्या, कुत ? इति चेदुच्यते—ओघे तु जिननाम्नो बन्धकत्वेन देवा अपि प्राप्यन्ते, इह तु तेषामसत्त्वात् तानाश्रित्य स्पर्शनाया अप्यलाभः, अतः प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्येयतमभागमात्रा वेदयितव्या ॥११३३॥

सम्प्रति गतवेदादिमार्गणाम्नायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्रतिपादयितुमाह

गयवेए अकसाये केवल्लुगसजमाहखायेसु ।

सायस्स सव्वलोगो दोसु य सेसाण जगअसखसो ॥११३४॥ (गीति०)

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनसंयमौघयथाख्यातसंयमलक्षणासु षट्सु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकैः समस्तलोकस्य स्पर्शना कृता, मार्गणास्वासु वर्तमानैः केवलज्ञानिभिः केवलिसमुद्धातवेलाया सकललोकस्य स्पृष्टत्वात् । 'दोसु' इत्यादि, गतवेदसंयमौघमार्गणाद्वये सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृश्यते, मार्गणयोरनयोर्वर्तमानानां जीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभद्विकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च लोकाऽमख्येयतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाऽपि तावन्मात्रैव । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—अपगतवेदमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कर्मज्वलनचतुष्कथशःकीर्त्युचैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपा विशतिप्रकृतयः । संयमौघमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कर्मज्वलनचतुष्कर्मयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिदेवानु—पूर्वात्रिमदशकाऽस्थिराऽऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोचैर्गोत्ररूपास्त्रयस्त्रिंशद्भुवबन्धिन्यः प्रकृतयश्चेति । अन्यासु मार्गणास्वत्र केवलं सातवेदनीयबन्धकानामेवोपलभ्यमानत्वेन 'दोसु' इति पदेन गतवेदसंयमौघमार्गणाद्वयमेवोपात्तमिति ॥११३४॥

अथ ज्ञानादिमार्गणाम्नायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामभिव्यक्तिपुराह

णाणत्तिगे ओहिम्मि य पउमाए वेअगम्मि परिपुट्ठो ।

लोमाऽसत्तिदभागो आहारदुग्गस्स णायव्वो ॥११३५॥

देवविउव्वदुग्गण पण भागा फोसिआऽट्ठ सेसाणं ।

(प्रे०) 'णाण' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनपञ्चलेश्याक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणास्वाहारकद्विकबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः परिस्पृष्टः, भावना पुनरिहौघवत् कार्या । 'देव' इत्यादि, देवद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः, तिर्यग्लोक-ज्यापयञ्चेन्द्रियातिरश्चामासहस्रारमुत्पादात् । भावनौघवत्कार्या । 'ऽट्ठ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृ-तीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः । मार्गणास्वासु वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जु-प्रमाणत्वात् । ताश्चेमा शेषप्रकृतयः पञ्चलेश्यामार्गणाया सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विक-हास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्क-तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयदशकाऽस्थिरषट्कपराघातोच्छ्वासोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा द्वि-पञ्चाशद्भुवबन्धिप्रकृतयश्चेति मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु च मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धिद्विकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षण प्रकृत्यष्टकं वर्जयित्वा शेषा एकोन-चत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदा-रिकद्विकसप्तचतुरस्रसंस्थानप्रथममहननमनुष्यानुपूर्वीमुखगतित्रयदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपरा-घातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा द्वाविंशद्भुवबन्धिप्रकृतयश्च त्येकमसतिः प्रकृतयः ॥११३५॥

इदानीं विभङ्गज्ञानमार्गणायाम्नायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामुपदर्शयितुमाह

पंचिदियव्व फुसणा सप्पाउग्गण विग्गमे ॥११३६॥

(प्रे०) "पंचिदियव्व" इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायाम्नायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना पञ्चेन्द्रियायमागणावदवसेयाः, तदेवम्-नपुंमकवेदाऽसातवेदनीयाऽरतिद्विकपञ्चास्थिरादि-द्वुष्टकसंस्थाननीचैर्गोत्रपराघातोच्छ्वाससप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतिपर्याप्तप्रत्येकतिर्यग्लोकौदारिक-शरीरस्थावरनामैकेन्द्रियजातिस्थिरशुभमातवेदनीयहास्यरतिसूक्ष्मत्रिकरूपाणां पञ्चमसतिप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकः, पुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्क-स्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रयपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वराऽशुभखगतिरूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धकै-र्द्वादशभागाः, नरकद्विकस्य बन्धकैः षट्भागाः, सुगद्विकस्य बन्धकैः पञ्चभागाः, मनुष्यद्विकातपना-मोच्चैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैरष्टौ भागाः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुर्गिन्द्रियजातिरूपस्य प्रकृ-तित्रयस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागाः स्पृष्टास्तथा यशःकीर्त्यु-

द्योतयोर्वाङ्मयस्य च बन्धकानां स्पर्शना क्रमेण त्रयोदशभागा देशोलोकप्रमाणा च ज्ञेया । भावना-
ऽप्यत्र पञ्चेन्द्रियमार्गणावतत्कार्या ॥११३६॥

साम्प्रतं देशविरतिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमभिधातुकाम आह

लोगासखियभागो छुहिओ देसभि तित्थणाभररा ।

पुट्ठाऽत्थि पच भागा सेसाण पचसट्ठीए ॥११३७॥

(प्र०) 'लोगा' इत्यादि, देशविरतिसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्ये-
यतमो भागः स्पष्टः, कथम् ? मार्गणायामस्यां मनुष्या एवैतत्प्रकृतिं बध्नन्ति, अतो मनुष्यमार्गणावदे-
तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाऽपि समागच्छति । 'पुट्ठा' इत्यादि, जिननामव्यतिरिक्तानां पञ्चपट्टिप्रकृ-
तीनां बन्धकाः पञ्चभागान् स्पष्टवन्तः, भावना त्वेम्—मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका
मुख्यतया तिर्यश्च आमहस्रारकल्पं समुत्पद्यन्ते, ते च मरणममुद्धातावमरे आत्मप्रदेशानां दण्डविधा-
नेनाऽऽसहस्रारकल्पं क्षेत्रं स्पृशन्ति, तच्च पञ्चरज्ज्वात्मकपञ्चभागप्रमाणमस्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंख्यलनचतुष्कभयजुगुप्मावर्णादिचतुष्कायुरु-
ल्लधूपघातनिर्माणतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपाः पञ्चविंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहा-
स्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक्रयमचतुरस्रमंस्थानदेवानुपूर्वीमुखगतिप्रसद-
शकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्रामांर्चर्गोत्ररूपाः त्रिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥११३७॥

अथ कृष्णलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना दर्शयितुमना आह

किण्हाअ असखसो जगस्स छुहिओऽत्थि सुरदुगजिण्णाणं ।

णिरयविज्ज्वदुगाण छ भागा सेसाण सव्वज्जा ॥११३८॥

(प्र०) "किण्हाअ" इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागं स्पष्टवन्तः, तद्यथा—मार्गणायामस्यां सुगद्विकस्य बन्धका जीवा भवनपतिव्यन्त-
रदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते, भवनपतिव्यन्तरदेवलोकरूपपरभवोत्पत्तिक्षेत्रतिर्यग्लोकरूपस्वस्थानक्षेत्रयोरन्तराल-
स्य रज्ज्वमंख्येयतमभागप्रमितत्वात् स्पर्शनाऽपि लोकाऽसंख्यातभागरूपा प्राप्यते । जिननाम्नो
बन्धका मार्गणायामस्यां मनुष्या एव विद्यन्ते, तेषां च स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमे-
वाऽस्ति, अतः स्पर्शनाप्यत्र तावत्प्रमाणैव प्राप्यते । अत्रेदमवधेयम्—यद्यपि मनुष्यमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकैर्लोकाऽसंख्येय-
तमभागं स्पष्टवन्तः, अतस्तत्रत्यस्पर्शनातोऽत्रत्यस्पर्शनाऽसंख्येयगुणहीना ज्ञानव्याः । 'णिरय' इत्यादि,
नरकद्विकर्षकयद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः षड्भागाः स्पष्टाः, सा पुनरेवम् मार्गणायामस्यां
प्रकृतिचतुष्कमेतत् प्रधानतया तिर्यश्चो बध्नन्ति, ते चाऽऽप्तमनरकं समुत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं षड्भु-
प्रमितं वर्तते, समुत्पद्यमानाश्च तत्र ते मरणममुद्धातवेलायां कृतात्मप्रदेशदण्डैस्तादृश क्षेत्रं स्पृशन्ति ।

ननु वैक्रियद्विकस्य पङ्क्तिभागेभ्योऽधिकं स्पर्शनाक्षेत्रं कथं नाभिहितम् . मार्गणायामस्यां वर्तमानानां प्राणिनां देवलोकेष्वपि जायमानत्वात् , इति चेन्न कृष्णलेश्यावतां केवल देवलोकेषु भवनपति-
व्यन्तरदेवत्वेनैव समुत्पद्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, इहोक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां
बन्धकाः सर्वे लोकं स्पृशन्ति स्म, शेषप्रकृतिबन्धकत्वेन सूक्ष्मजीवानामपि लाभात् , तेषां स्वस्थानक्षेत्र-
स्य सर्वलोकप्रमाणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतयो वेदनीयद्विकहाम्या-
दिभुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिष्वच कौदारिकद्विकमंहननपट्कमस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानु-
पूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्योतपगघातोच्छ्रामगोत्रद्वयरूपाः पट्टिभ्रुवन्धिप्रकृतय-
श्चेति सप्ताधिकं शतम् ॥११३८॥

साम्प्रतं नीलकापोतलेश्यामार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां विचारयन्नाह

णीलाए काऊअ य फुसणा किण्हव्व सव्वपयड्डीण ।

णवरि कमा अत्थि चउडुभागा णिरयविउवडुगाण ॥११३९॥

(प्रे०) 'णीलाए' इत्यादि, नीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणयोर्मार्गणयोः सर्वासां स्वप्रायो-
ग्याणां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना कृष्णलेश्यामार्गणावदविगम्या । 'णवरि' इत्यादिना विशेष-
मुपदर्शयति—नरकद्विकवैक्रियद्विकबन्धकानां मार्गणाद्वयेऽस्मिन् यथाक्रमं स्पर्शना चतुर्दिभागप्रमाणा
भवति, इदमुक्तं भवति—नीललेश्यामार्गणायां नरकद्विकवैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकै-
श्चत्वारो भागाः स्पृष्टाः, कापोतलेश्यामार्गणायां च द्वौ भागौ स्पृष्टौ, तद्यथा—नीललेश्यावन्तः पञ्चम-
नरकं यावदेव समुत्पद्यन्ते, आपञ्चमनरकक्षेत्रं चतुरज्जुप्रमाणमस्ति, कापोतलेश्यावन्तस्तृतीयनरकं याव-
देवोत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं पुनर्द्विज्जुप्रमाणमस्ति, ते च तत्रोत्पित्सवो मरणसमुद्घाते विहितात्मप्रदेश-
दण्डैस्तत्क्षेत्रं स्पृशन्ति ॥११३९॥

साम्प्रतं तेजोलेश्यामार्गणायां प्रकृतस्पर्शनामाह—

तेऊअ णरडुगायववावीसपुमाइतित्थउज्जाण ।

अडभागाऽत्थि दिवड्ढा छिविआ सुरविउवजुगलाण ॥११४०॥

लोगासखियभागो आहारडुगस्स फोसिओ णेयो ।

णव भागा परिपुडु। सप्पाउज्जाण सेसाण ॥११४१॥

(प्रे०) 'तेऊअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां मनुष्यद्विकातपनामरूपस्य प्रकृतित्रयस्य 'पुम-
सुहगतिगसुखगइआगिई छसंघयणा । मज्झिमसंठाणित्थी उरलोयगं नमपणिडी ॥ दुस्सरकुल्लगइ' इति
सग्रहगाथासु भणितानां पुरुषवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां जिननामोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य च प्रकृतिद्वयस्य-
बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्र-
स्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात्तैरूर्ध्वलोकसत्कमत्सरज्जोरस्पृष्टत्वाच्च । 'दिवड्ढ' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्वि-

करूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकैर्द्वितीयार्धभागः स्पृष्टः, । भावनिका पुनरेतं विधेया-एतत्प्रकृति-
चतुष्कबन्धकास्तेजोलेख्यावन्तः सौधमेशानदेवलोको यावदेवोत्पद्यन्ते, तत्क्षेत्रं पुनरर्धाधिकैकरज्जु-
प्रमाणमस्ति, उत्पित्सवश्च ते तत्र मरणसमुद्घातकृतैरात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशक्षेत्रं स्पृशन्ति । 'लोका'
इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरिह प्राग्बुद्धसातव्या ।
'णव' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना नवभागप्रमाणा समधिगम्या, भावना
पुनरिहैवम्-मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका ईशानान्तदेवा गमनागमनेनाऽष्टरज्जुप्रमाणं
क्षेत्रं स्पृशन्ति, तथा त एवैकेन्द्रियत्वेनोत्पित्सव ऊर्ध्वलोकसत्कमत्तमरज्जुर्मापि स्पृशन्ति । ताश्चेमाः-
शेषाः प्रकृतयः-सप्तचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयनपुन्यकवेदतिर्यग्गत्ये-
केन्द्रियजान्यौदारिकशरीरहुण्डकसंस्थानतिर्यगानुपूर्वीशदरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावराऽ-
स्थिराऽशुभदुर्भागानादेयाऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासोद्योतनीचैर्गोत्ररूपा अष्टाविंशतिरभुवबन्धिप्रकृतय-
श्चेति पञ्चमसतिः ॥११४० ४१॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं दिदृक्षुराह

सायाहारदुगाणं ओघव्वऽत्थि सुइलाअ सयमुज्झा ।

सुरविउवदुगाण भवे फुसिआ भागा छ सेसाण ॥११४२॥

(प्र०) 'साया' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सातवेदनीयाहारकद्विकप्रकृतित्रयस्य बन्ध-
कानामोघवत्स्पर्शनाऽस्ति, तदेवम्-सातवेदनीयबन्धकानां केवलिसमुद्घातकाले सकललोकस्य
स्पर्शना भवति, आहारकद्विकबन्धकानां लोकासंख्येतमभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । 'सयमु-
ज्झा' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतसृणां प्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना स्वयमेवोह्या ।
तदेवम्-यदि शुक्ललेश्याकदेवेषु तिरश्चामुत्पत्तिर्न भवति, मनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तिर्जायते, तर्हि मनु-
ष्याणामपेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येतमभागप्रमाणैव प्राप्यते, यदि पुनः
शुक्ललेश्याकदेवेषु तिरश्चामुत्पत्तिर्मभवस्तर्हि तेषामपेक्षया प्रकृतप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना पञ्चरज्जु-
प्रमाणा यथागमं स्वय परिभावनीया । 'भवे' इत्यादि, अभिहितेतरशेषप्रकृतीनां बन्धकैः षड्भागाः
परिस्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यां वर्तमानाः शेषप्रकृतिबन्धका अच्युतदेवलोकस्था देवा गमनागमनं
षड्रज्जुपर्यन्तं कुर्वन्ति । उक्तं च जीवसमासे 'छल्लच्चए' इत्यादि, ननु शेषप्रकृतीनां स्पर्शनाक्षेत्रं
षड्रज्जुप्रमाणं कुतोऽभिहितम्, सहस्रारादीन् देवानां श्रित्याधिरूपस्पर्शनायां लाभादिति चेन्न अस्यैव-
ग्रन्थस्य मूलप्रकृतिबन्धमूलप्रकृतिस्थितिवन्धप्रमप्रभावतो समाहितत्वात् । शेषप्रकृतयस्त्वेताः-सप्तचत्वा-
रिंशद्भुवबन्धिन्यः, अमातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजान्यौदारिकद्विक-
संहननपट्कमस्थानपट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरपट्कपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्र-
द्वयरूपा अष्टचत्वारिंशद्भुवबन्धिन्यश्चेति पञ्चनवतिप्रकृतयः ॥११४२॥

अधुना सम्यक्त्वौघमार्गणायामधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनामाह

सम्यक्तेः परिपुष्टः सव्वर्गो सायवेअणीयस्स ।

देवविज्वदुगाणं पूण भागां फरिसिआ जेया ॥११४२॥

लोगासंखियभागा आहारदुगस्स फोसिओ हवए ।

छुहिआंउत्थि अट्ट भागा सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११४३॥

(प्रे०) "सम्भत्ते" इत्यादि, सम्यक्त्वौघमार्गणायं सातवेदनीयस्य बन्धकैः सर्वे जगत्

स्पृष्टं, केवलिसमुद्घातापेक्षया भावना प्राग्वद् भावनीया । 'देवविज्व' इत्यादि, देवद्विक्रियद्विक-

लक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैः पञ्चभागो स्पृष्टः, भावनादिकमोधनकार्यम् । 'लोगा' इत्यादि,

आहारद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, भावना पुनरिह भाणतप्राया । 'छुहिआ'

इत्यादि, इहोक्तेतगासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टन्ति स्म, मार्गणायामस्यां

वर्तमानानां प्रकृतशेषप्रकृतिवन्धकानां देशानां गमनानामनर्होत्तरस्योत्तरज्ज्यमीणत्वात्, शेषप्रकृतयो-

ऽनन्तरवक्ष्यमाणक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणवर्तमानतित्तिव्याः ॥११४३-४४॥

अथ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायामधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनाक्षत्र दिदशयिपुराह

खंडए सायस्स सयलज्जे सुरविज्वदुगाणं परिपुष्टो ।

लोगासंखियभागा अहवा यं जगस्स संखसो ॥११४५॥

लोगासंखियभागा आहारदुगस्स फोसिओ जेयो ।

भागा अट्ट फरिसिआ सप्पाउग्गाण सेसाण ॥११४६॥

(प्रे०) 'खंडए' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायं सातवेदनीयस्य बन्धकैः सकलं जगत्

स्पृष्टम्, मार्गणायामस्यां वर्तमानानां केवलिनं केवलिसमुद्घाते निखिललोकस्य स्पृष्टत्वात् ।

'सुर' इत्यादि, सुरद्विक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः ।

त्रय ॥६५॥ पूर्वोक्तैरुभागाभ्यापि संख्याततमभागप्रमाणां सार्धभागप्रमाणां चा स्पर्शना 'संग्रहीतु'

'अहवा यं जगस्स' इत्यादिनाह-अथवा लोकस्य संख्याततमो भागः स्पृष्टः । इदमुक्तं भवति-

अत्र सुरद्विक्रियद्विकयोर्वन्धकानां स्पर्शनाविषये विकल्पत्रयं ग्रन्थकारः कथयति-एकेन विकल्पेन

लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना, द्वितीयेन तु एकभागस्य संख्यातभागप्रमाणा स्पर्शना, तृतीयेन

पुनः सार्धभागप्रमाणा स्पर्शना । भावनाविधिरुक्तेष्वधुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यस्त्यर्थः कषायप्रामृतादि-

ग्रन्थानुसारेणाऽसंख्याताः स्वीक्रियेत्, तदपि भौधर्मादिविमानव्यवस्थाविधायकद्वाराणां तथा 'युगलि-

कतिरस्याः प्रथमादिप्रस्तुतः एतत्पादः' इति विधायकद्वाराणामनेकविधत्वान्स्पर्शनाविषये विकल्पत्रयं

ग्रन्थकारेणोक्तम् । 'मन्वत्यजहन्नओ पलिय' इति बृहत्संग्रहणीवचनात् त्रयोदशेऽपि प्रस्तुते देवानां

जघन्यस्थितेः संभवेन युगलितामपि त्रयोत्पादात् स्पर्शना सार्धरज्जुप्रमाणा समागता, त्रयोदश-

प्रस्तुतस्येतः सार्धरज्जुप्रस्तुतः स्थितत्वात् । जघन्यास्त्वघस्तान्तरप्रस्तुतप्रतोक्त्या स्थिति इति देवेन्द्र-

५४ क

प्रकरणवृत्तिवचनेनार्थापत्त्या युगलिनां प्रथमप्रस्तटे एवोत्पादात् स्पर्शना रज्जुसंख्यातभागप्रमाणाऽवसेया, कुतः ? ऊर्ध्वलोकसत्त्वानां सप्तरज्जुनामेकोनविंशत्या भागे हृते यल्लब्ध तावत्प्रमाणं तिर्य-
ग्लोकसौधर्मप्रथमप्रस्तटयोरन्तरालमिति कृत्वा, यदुक्तं देवेन्द्रप्रकरणवृत्तौ 'ऊर्ध्वलोक एकोनविंशति-
खण्डीकृतस्ततस्तस्य सम्बन्धिन्येकोनविंशभागे समधिके उडुविमानं वर्तते तिर्यग्लोकादिति' उडुविमानं च
प्रथमप्रस्तटगतमिन्द्रकविमानमिति । केचित्तु मेरुचूलायाः प्रत्यामन्त्रमेव सौधर्मप्रथमप्रस्तटं भन्वते
तदभिप्रायेण लोकाऽसंख्येयभाग एव स्पर्शना, तन्मते स्वस्थानपारमविकोत्पत्तिस्थानाऽन्तरालस्य
संख्येययोजनमात्रत्वात्, यदि युगलिकतिरश्चां मनुष्यलोक एव सङ्गावेन संख्यातमात्रत्वम्, तर्हि
केनाऽप्यभिप्रायेण स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव, स्वस्थानपारमविकोत्पत्तिस्थानयोः प्रत्येकं
लोकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

'लोका' इत्यादि, आहारकद्विकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भाग ओघवत्स्पृष्टः । 'भागा'
इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म ।
मार्गणायामस्यां वर्तमानानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतयश्चैताः-
मिथ्यात्वमोहनीयाद्यष्टप्रकृतिवर्जा एकोनचत्वारिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतयः, अमातवेदनीयहास्यादियुगल-
द्वयपुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकसमचतुरस्रसंस्थानप्रथमसंहननमनुष्यानुपूर्वीशुभख-
गतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोर्ध्वगोरूपा एकत्रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृत-
यश्चेति सप्ततिः ॥११४४ ४६॥

साम्प्रतमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनां प्रदर्शयितुमना आह

छुहिओ अत्थि उवसमे सुरविउवाहारजुगलतित्याणं ।

लोकासखियभागो छिविओ भागाऽट्ट सेसाणं ॥११४७॥

(प्रे०) 'छुहिओ' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिन-
नामरूपस्य प्रकृतिसप्तकस्य बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, भावना पुनरेवम्-सुरद्विकवैक्रिय-
द्विकयोर्बन्धकानां लोकासंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना मनुष्यगतिमार्गणावद् भाव्या, प्रकृतमार्गणायां
भ्रूद्धातगततिरश्चामलाभेन तत्प्रयुक्तविशेषस्पर्शनाया अप्यलामात् । एतदपि कुतः ? तिरश्चां प्रथमोप-
शमसम्यक्त्वस्य सद्भावेन तत्र च मरणाभावेन मरणसमुद्घातस्याऽप्यभावात् । आहारकद्विकस्य भावनौ-
धवत्कार्या । जिननामसत्कर्माणः प्रकृतमार्गणायां देवा भवाद्यान्तर्मुहूर्ते एव प्राप्यन्ते, अतस्तेषां गमना-
गमनक्षेत्रस्याऽलामः, तेन मनुष्यगतिमार्गणायां जिननामबन्धकानां यावती स्पर्शना प्राप्यते, ततोऽ-
धिकतरा प्रकृतमार्गणायां स्पर्शना नैव प्राप्यते ।

'छिविओ' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति, मार्गणायामस्यां
विद्यमानानां शेषप्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात्, ताश्च शेष-

प्रकृतयः सप्ततिः क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणावज्जिननामरहिताः सातावेदनीयसहिताश्च विज्ञेयाः ॥११४७॥

इदानीं मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं विवेचयन्नाह

मीसस्मि असखयमो भागो लोगस्स फोसिओ जेयो ।

देवविउव्वदुगाण फुसिआ भागाऽट्ट सेसाणं ॥११४८॥

(प्रे०) 'मीसस्मि' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य प्रकृतिचतुष्कस्य बन्धका लोकाऽसंख्येयतमं भाग स्पृशस्ति रग । मार्गणायामस्यां स्थिता मनुष्याः तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाश्चैताः प्रकृतीर्वृणन्ति, मिश्रावस्थायां च न कोऽपि मृत्युमवैति, उक्तं च "न सम्ममीसो कृणइ कालं" अतः समुद्घातमपि न कुर्वन्तीत्यतस्तेषां स्पर्शना स्वस्थानक्षेत्रसम्यन्धिन्यैव ग्राह्या, सा च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणाऽस्ति, तिर्यल्लोक एव सत्त्वात्तेषाम् । 'फुसिआ' इत्यादि, एतत्प्रकृतिचतुष्कवर्जशेषप्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतिबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतयः—अनन्तरोक्तमार्गणावज्ज्ञेयाः ॥११४८॥

अधुना सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनामाह

सासायणगिग छिहिआ पण भागा सुरविउव्वियदुगाणं ।

अट्ट णरदुगुञ्जाणं बारह सेसाण विण्णेया ॥११४९॥

(प्रे०) 'सासायणगिग' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वे सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां बन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, भावनौघदेवद्विकबन्धकोक्तस्पर्शनावत्कार्या । 'अट्ट' इत्यादि, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः, एतन्मार्गणास्थानामेतत्प्रकृतिबन्धकानां सुराणां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमितत्वात् । 'बारह' इत्यादि, उदितशेषप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना द्वादशरज्जुप्रमाणा भवति, यटना पुनरेवं कार्या—मार्गणायामस्यां वर्तमाना जीवाः पृथनरकात् सास्वादनसम्यक्त्वमादाय तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु समुत्पद्यमाना मरणसमुद्घातेन कृतात्मप्रदेशदण्डैः पञ्चरज्जुः स्पृशन्ति, तथा सास्वादनास्तिर्यग्मनुष्यदेवा ईषत्प्राग्भारपृथिव्यामेकेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सवः कृतमारणान्तिकसमुद्घाताः सप्तरज्जुः स्पृशन्ति, अतः शेषप्रकृतिबन्धकानामत्र द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना समुपलब्धा भवति । उक्तं च जीवसमासीयहैमधृत्तौ—'अतः सामान्येन सास्वादनसम्यग्दृष्टिर्द्वादशरज्जु स्पृशतीत्यर्थः, लोकस्य द्वादशरज्जुप्रमाण क्षेत्रं स्पृशतीति यावदिति ॥११४९॥

साम्प्रतमसंज्ञिमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमाह

लोगासखियभागो छुहिओ अमणे विउव्वछक्कस्स ।

फुसिओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाजग्गाण सेसाण ॥११५०॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकलक्षणस्य वैक्रियद्विकस्य बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा भवति, तद्यथा—असंज्ञिनो जीवा देवेषु-

पृथन्ते तर्हि भवनपतिव्यन्तरयोरेव, यदि नरकपृथपृथन्ते, तर्हि प्रथमनरक एव, एतदुभयमपि क्षेत्रा लोका-
 संख्येयतममात्रमात्रमेव वर्तते, अतो मरणसमुद्घातपृथयाऽपि वैकियपट्कवन्यकानां स्पर्शनाऽ-
 मिहितप्रमाणैव प्राप्यते । 'कुसिओ' इत्यादि, वैकियपट्केतरप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वो
 लोकोऽवसेयः, यतो मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतिवन्धकतया सूक्ष्मैकेन्द्रिया जीवा अपि वर्तन्ते, ते च
 सुकलं लोकोप्याप्य वर्तन्ते, ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतयः वेदनीयद्विक-
 हास्यादिभुगुलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यजातिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननपट्कसस्थानपट्कलगतित-
 द्वयतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयत्रसदृशस्थानरदशकानपोधोतपसधातोच्छ्वाभगोत्रद्वयरूपाः पट्टिभुवन्धि-
 प्रकृतयश्चेति सप्तद्विकशतप्रकृतयः ॥ तदेवमायुर्वर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकानां स्पर्शना मार्गणासूक्ता ।
 ॥११५०॥ अथ मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कर्मवर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुपदर्शयन्नादौ
 साप्तान्यप्रकृत्युपायां निरूपयितुं ब्राह्मणः ।

संवासा, मार्गणासु अवधगा अत्युजाया पयडीण- ॥११५१॥
 ताण पयडीण, कुसणा अवधगाणं, भुगेयुवा ॥११५१॥

(प्रे०) 'संवासा' इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामवन्धका भवन्ति, तासां
 प्रकृतीनामवन्धकानां स्पर्शना ज्ञातव्या, अर्थाद् यत्र मार्गणासु शेषप्रकृतयः कथ्यन्ते, तत्र शेषप्रकृतय-
 स्तां ग्राह्याः, यासामवन्धकाः प्राप्यन्ते, न तु मार्गणागता उक्तव्यतिरिक्तशेषसकलप्रकृतयो ग्राह्याः ।
 ॥११५१॥ 'साम्प्रत' मनुष्यौवादिषु 'कतिपर्यासु' मार्गणास्त्रियुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शना
 प्ररूपयति ।

तिगारमणिदितसदुगे काये कभ्मे भवेत्तमणाहारे । ॥११५२॥ (गीतिः) ।
 सप्पाउगणाउगवृणाण अवन्धगेहि सुवजग- ॥११५३॥ (गीतिः) ।
 (प्रे०) 'तिगार' इत्यादि, मनुष्यौधपयसिमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौधपयसिपञ्चेन्द्रियसौ-
 धपयसिप्रसकायकाययोगौवृत्कार्मकाययोगमव्यानुहात्कुरुपास्वेकादशमार्गणास्त्रायुष्कर्मवर्जानां स्वप्रायो-
 ग्यप्रकृतीनामवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वजगत् वर्तते, यतो हि मार्गणास्त्रासु सातवेदनीयवर्जस्वप्रायो-
 ग्यप्रकृतीनामवन्धकाः केवलज्ञानिन् केवलिसमुद्घातसमये, सातवेदनीयस्यावन्धका, यथायोमं सूक्ष्माः
 सूक्ष्मेष्टपृथपृथानां वा क्रमेण अस्थानेन मरणसमुद्घातेन वा सुकलं लोकं स्वात्मप्रदेशेऽप्याप्नुवन्ति,
 भावनिका—अत्रायुर्वर्जानां सर्वासां वध्यमानप्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, सातवेदनीयस्याऽवन्धकास्त-
 थैव औदारिकशरीरवर्जशेषाधुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः सूक्ष्मेष्टपृथपृथवः सूक्ष्मा वा सातवेदनीयवर्जा
 धुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः समुद्घातगताः केवलज्ञानिनोऽपि प्राप्यन्ते, अतः स्पर्शना सर्वलोक-
 प्रमाणा, धुवन्धिप्रकृतीनामवन्धकतया तु केवलं केवलिसमुद्घातगताः प्राप्यन्ते, अतस्तानाश्रित्य
 सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना ज्ञेया ॥११५२॥

अथ नरकौवमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां निरूपयति—

निरये छुहो तिरिङ्गयोणद्वितिगाणचज्जणीआणं ।
लोकाऽसंख्यसो पण भागा मिच्छस्स छण्णस्सि ॥११५३॥

(प्रे०) 'निरये' इत्यादि, नरकौघमार्गणायां तिर्यग्द्विकस्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-
नीचैर्गोत्ररूपाणां दशानां प्रकृतीनामवन्धकं लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पष्टः । तदेवम्—मार्गणायाम-
स्यां प्रकृतीनामासामवन्धकास्तियक्ष्वनुत्पिन्सवो नारका विद्यन्ते, अतः प्रकृतेमार्गणागतमनुष्यद्विक-
वन्धकानां स्पृशनावद् लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्पर्शनाऽस्ति । 'पण' इत्यादि, मिथ्यात्व-
मोहनीयस्याऽवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, तद्यथा—मार्गणायामस्यां मांस्वादना जीवा मिथ्यात्वमोह-
नीयस्याऽवन्धका वर्तन्ते, ते च पट्टनरकादुद्वत्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषुत्पिन्सवो भरणममुद्धवातेन कृतात्म-
प्रदेशदण्डैः पञ्चरजक्षेत्रं स्पृशन्ति, सप्तमनरकतः सास्वादनसंभ्यक्त्वेन सहोद्वर्तनाभावात् त पट्ट-
भागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । 'छ' इत्यादि, एतदतिरिक्तेप्रकृतीनामवन्धकाः पट्टभागान्
स्पृशन्ति स्म । तद्यथा—मार्गणायामस्यां वर्तमानाः सप्तमनारकगता यथाममव शेषप्रकृत्यवन्धकाः
तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु समुत्पिन्सवो भरणममुद्धवातेनाऽऽहितात्मप्रदेशदण्डैः पट्टरज्जुः स्पृशन्ति ।
ताथेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिसंहननपट्टकसंस्थानपट्टक-
मनुष्यानुपूर्वीविहायोगतिद्विकस्थिरपट्टकाऽस्थिरपट्टकोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धि-
प्रकृतयः ॥११५३॥

अथ प्रथमनरकनवग्रैवेयकादिमार्गणाम्नामुपजातरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं संसते

लोकासंख्यभागो सप्पाज्जगाण पढमनिरयम्मि ।
गेविज्जाइविज्जिवियमोसाहारकुगजोगेसु ॥११५४॥
अकसाये मण्णिणे केवलजुगलेम्मि समइए छेए ।
मरिहारे अहखाये जाणडत्थि हवेज्ज छुहोसि ॥११५५॥

(प्रे०) 'लोका' इत्यादि, रत्नप्रभानरकनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरसुरवैक्रियमिश्रकाययोगाहारककाय-
योगाहारकमिश्रकाययोगाऽकपायमनःपर्यवकेवलज्ञानकेवलदर्शनसामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयम-
परिहारविशुद्धिसंयमयथाल्यातमंयमरूपासु पट्टविंशतिमार्गणासु यासां प्रकृतीनामवन्धकाः समुप-
लभ्यन्ते, ते लोकाऽसंख्येयतमभागं स्पृष्टवन्तः, तदेवम्—प्रथमनरके मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रि-
काऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयसंस्थानपट्टकसंहनन-
पट्टकतिर्यङ्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयस्थिरपट्टकाऽस्थिरपट्टकोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा एकपञ्चा-
शत् प्रकृतयः । नवग्रैवेयकेषु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्या-
दियुगलद्वयवेदत्रयसंहननपट्टकसंस्थानपट्टकलगतद्वयस्थिरपट्टकाऽस्थिरपट्टरुजिन्नामगोत्रद्वयलक्षणाः
पट्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः । वैक्रियमिश्रमार्गणायां—मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकं, वेदनीयद्वयं हास्या-
दियुगलद्वयं वेदत्रयं तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयमेकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयमौदारिकाङ्गोपाङ्गं संस्थानपट्टकं

संहननपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं त्रसस्थिरपट्कलक्षणं प्रकृतिसप्तकं स्थावराऽस्थिर-
पट्करूपं प्रकृतिसप्तकमातपोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूप प्रकृतिपञ्चकं चेति सप्तपञ्चाशत् प्रकृतयः । पञ्चा-
नुत्तराहाकद्विकमार्गणासु वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्थिरशुभयशःकीर्त्यस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिजि-
ननामरूपास्त्रयोदशप्रकृतयः । परिहारविशुद्धिमार्गणायामुक्तत्रयोदशाहारकद्विकरूपाः पञ्चदशप्रकृतयः ।
मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां स्वप्रायोग्याः सर्वाः प्रकृतयः । सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोर्मतिज्ञानावरणा-
दिचतुर्दशप्रकृतिमंज्वलनलोमोच्चैर्गोत्रवर्जशेषाष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः । अकपायकेवलद्विकयथाख्यातसंयम-
मार्गणासु सातवेदनीयम् । अकपायादिमार्गणाचतुष्के मातवेदनीयस्याऽबन्धकानां केवलिसमुद्घातगत-
स्पर्शनाक्षेत्रस्थाऽलाभान्स्पर्शना लोकासंख्यभागप्रमाणा तथाऽत्रोक्तशेषमार्गणासु स्वस्थानक्षेत्रस्य मरण-
समुद्घातस्पर्शनायाश्च लोकाऽसंख्यभागमात्रत्वात् स्वाऽबन्धकप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना-
ऽपि तावन्मिता ॥११५४-५५॥

इदानीं द्वितीयादिनरकमार्गणास्वायुर्वज्रोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां चिकथयिपुराह

बीआइगिरयपणगे जेसि गिरयेऽस्थि जगअसखंसो ।

सिमिह वि सेसाण कमा छुहिआ इगदुतिचउपणसा ॥११५६॥

(प्रे०) 'बीआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभात्रालुकाप्रभापङ्कप्रमाधूमप्रभातमःप्रभालक्षणासु पञ्चसु
नरकमार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धकानां नरकौघमार्गणायां जगतोऽसंख्येतमभागप्रमाणा स्पर्शना
प्रोक्ता, तासां प्रकृतीनामबन्धकानां तावत्त्येव स्पर्शना ज्ञातव्या, ताश्चे माः—तिर्यग्द्विकरत्यानर्द्धित्रिका-
ऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपा दशप्रकृतयः । 'सेसाण' इत्यादि, एतद्दशसंख्याकप्रकृतिव्य-
तिरिक्तप्रकृतीनामबन्धका एकद्वित्रिचतुःपञ्चभागान् यथाक्रमं स्पृशन्ति स्म । तदेवम्—द्वितीय-
नरकस्था एकं भागं तृतीयनरकस्था द्वौ भागौ तुर्यनरकस्थास्त्रीन् भागान् पञ्चमनरकस्था भागचतुष्टयं,
षष्ठनरकस्थाः पञ्च भागान् इति । ताश्चे माः शेषप्रकृतयः—द्वितीयतृतीयनरकमार्गणयोर्मिथ्यात्वमोहनीय-
वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयमनुष्यगतिसंस्थानपट्कसहननपट्कमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिर-
पट्काऽस्थिरपट्कोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः, चतुर्थादिनरकमार्गणात्रये जिन-
नाम विनैता एव शेषाः प्रकृतयो बोद्धव्याः ॥११५६॥

साम्प्रतं सप्तमनरकमार्गणायामायुर्वज्रोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां चिकथयिपुराह

गिरयक्व चरमगिरये सप्पाउग्गाण होइ सव्वेसि ।

णवर मिच्छस्स भवे लोगरा असखमागो उ ॥११५७॥

(प्रे०) "गिरयक्व" इत्यादि, तमस्तमःप्रभानरकमार्गणायां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामब-
न्धकानां स्पर्शना नरकौघवद् भवति । तद्यथा—तिर्यग्द्विकरत्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचै-
र्गोत्ररूपाणां दशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमिता, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वय-

वेदत्रयमनुष्यगतिसंहननपट्कमंस्थानपट्कमनुष्यानुपूर्वविहायोगतिद्विकस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कोद्योतो-
 चैर्गोत्ररूपाणामेकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धप्रकृतीनामवन्धकानां च पञ्चभागप्रमिता स्पर्शनाऽस्ति,
 भावना पुनरिह नरकौघमार्गणावद् विधेया । ननु मार्गणायामस्यां स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनाम-
 वन्धकानां स्पर्शना नरकौघमार्गणावदितिदिष्टा, तदनुसारेण स्वप्रायोग्यमर्षप्रकृत्यन्तर्गतमिथ्यात्व-
 मोहनीयस्याऽवन्धकानां स्पर्शना पञ्चभागप्रमाणा प्राप्यते, सा त्वत्रोपपत्तिं न लभते, सप्तमनरकग-
 तानां सास्वादनाप्रभृतिगुणस्थानस्थनारकजीवानां सास्वादानावस्थायां मरणाभावेन मरणसमुद्घाता-
 पेक्षया स्पर्शनाया अप्राप्यमाणत्वेन स्वस्थानापेक्षया लोकासंख्येयभागप्रमाणास्पर्शनाया एव लाभादिति
 अङ्गमपाकर्तुम् 'णवर' मित्यादना विशेषमुपदर्शयति—मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकानां स्पर्शना
 लोकामंख्येयभागरूपा विज्ञेया ॥११५६॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामाह

तिरिये छुहिवा भागा पण योणद्धितिगअडकसायाण ।

मिच्छस्स सत्तिगारस उरलस्सियराण सव्वजग ॥११५७॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायामस्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्या-
 ख्यानानवरणचतुष्कलक्षणानामेकादशप्रकृतीनामवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, तदेवम्—मार्गणायामस्यां
 वर्तमानाः सम्यग्दृष्टिदेशविरतयः सहस्रारदेवलोकं यावदुपगच्छन्ते, ते च प्रकृतप्रकृतीनामवन्धका
 वर्तन्ते, आसहस्रारक्षेत्रं पुनः पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति, उत्पित्सवश्च ते तत्र मरणसमुद्घातेनैतादृशं क्षेत्रं
 स्पृशन्ति । 'मिच्छस्स' इत्यादि मिथ्यात्वमोहनीयस्यावन्धकैः सप्तभागाः स्पृष्टाः, तत्पुनरित्थम्—
 मिथ्यात्वाऽवन्धकाः सास्वादानास्तिर्यश्च ईप्सत्प्रागमाराभिधपृथिव्यां पृथ्वीकायत्वेनोत्पित्सव ऊर्ध्वलोक-
 यत्कसप्तभागान् स्पृशन्ति । अधोलोकयत्काधिकभागानामत्राऽसंभवः, यतस्ते शर्कराप्रभादिपृथ्व्यां
 तथास्वभावेन नोत्पद्यन्ते । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽवन्धका एकादशभागान्
 स्पृशन्ति; भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मार्गणायामस्यां वैक्रियशरीरनामवन्धका एतत्प्रकृतेरवन्धका वर्तन्ते, ते
 यदाऽधः सप्तमनरकमूर्ध्वं च सहस्रारकल्पं यावदुत्पत्तिमवाप्नुवन्ति, तदा मरणसमुद्घातेनोभयमपि क्षेत्रं
 स्पृशन्ति, तच्चैकादशरज्जुप्रमाणम् । 'इयराण' इत्यादि, उक्तेतरासां प्रकृतीनामवन्धकैः सर्वलोकः
 परिस्पृष्टः, तारचेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारि-
 काङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रयदशकस्थावरदशकातपोद्यो-
 तपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चषष्टिः प्रकृतयः । तद्यथा—मार्गणायामस्यां वर्तमानानां सूक्ष्मजीवा-
 नामेतेत्प्रकृत्यवन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्यापि सर्वलोकप्रमाणत्वाच्च स्पर्शना
 सर्वलोकप्रमाणा प्राप्यते ॥११५८॥

इदानीं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामभिधातुमाह—

तिपणिदियतिरियेसुं योणद्धितिंगडकेसायणपुसाणो

हुंडाणां देयदुहगणीआण अत्थि. पण भागा ॥११५१॥

मागेगारसः तिरिदुगएगिदियउरलयावराणडत्थि ।

णवरि तिरिजोणिणीए दस भागा फोसिआणेया ॥११६०॥

सत्त फरिसिआ भागा हवेज्ज मिच्छअजसाण ऊणजंग

सुहमस्स सव्वलोगो सप्पाजमाण सेसाण ॥११६१॥

(प्रे०) 'तिपणिदिय' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघतिर्यग्योनिमतीपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-
रूपासु तिसृषु मार्गणामु स्त्यानद्वित्रिकांऽनन्तानुबन्धितेषुकांऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कनपुंसकवेद-
हुण्डकसंस्थानानादेयदुभेगनामनीचैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, भावना-
विधिस्त्वेवम्—मार्गणास्वासु प्रकृतीनामामवन्धकानां स्पर्शना देवद्विकस्य वन्धकानाश्रित्य प्राप्यते,
ते च महत्सागख्याऽष्टमदेवलोकं यावत् समुत्पद्यन्ते समुत्पत्सवश्च तत्र ते मरणसमुद्घातवेलायामाहि-
तान्मप्रदेशदण्डैरितिस्तापत्यर्पन्तेक्षेत्रं स्पृशन्ति, तच्च पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'मागेगारस' इत्यादि,
तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरनामरूपाणां पञ्चानां प्रकृतीनामवन्धका एकादश
भागान् स्पृशन्ति, तद्यथा—मार्गणास्वासु प्रकृतप्रकृतीनामवन्धका अधः सप्तमेनरेकं यावदुत्पद्यन्ते
ऊर्ध्वं पुनरामहत्साग्देवलोकम्, उभयमपि क्षेत्रभेकादशरज्जुप्रमाणं भवति, उत्पत्तिसवश्च तत्र ते
तावत्क्षेत्रं मरणसमुद्घातने स्पृशन्ति । ननु तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानां कथं
भेकादशभागप्रमाणा स्पर्शना सम्भाव्यते, यतस्तिरश्चीनां सप्तमेनरेकं उत्पादमावोऽस्तीत्याकांक्षा-
निवृत्त्यर्थम् 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां तिर्यग्द्विकादिपञ्चे-
प्रकृतीनामवन्धकदेशभागाः स्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यां वर्तमानाः प्रकृतप्रकृत्यवन्धका अधः
षष्ठनरेकं यावदूर्ध्वं पुनरष्टमदेवलोकं यावदुत्पत्तिमालभन्ते । 'सत्त' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयापशः
कीर्तिलक्षणम्य प्रकृतिद्वयस्याऽवन्धकाः सप्तभागान् स्पृष्टवन्तः, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मार्गणास्वासु
प्रकृतिद्वयस्याऽस्यावन्धकाः सास्वादना जीवा ऊर्ध्वं मिद्धशिलायां वादरेकेन्द्रियत्वेन जायन्ते, तच्च
क्षेत्रमितः सप्तज्जुप्रमितम्, तथोन्पिन्मवस्तत्र ते मरणसमुद्घातने तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति ।
ननु प्रकृतमागेणासु यथा मिथ्यात्वापशः प्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शना प्रोक्तभावनातः सप्तज्जु-
प्रमाणा भवति, तथैव हुण्डकावन्धकानां स्पर्शनेयाऽपि तावत्प्रमाणया भवितव्यम्, यतः सास्वादन-
गुणस्थाने यथा मिथ्यात्वावन्धो भवति, तथैव हुण्डकस्याप्यवन्धो भवतीति सास्वादेन गुणस्थानवर्ति-
जीवानाश्रित्य प्रोक्तभावनातः सप्तज्जुप्रमाणा स्पर्शनोपपद्यते इति चेत्, सत्यम्, परं त्वया प्राक्
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्द्विके स्त्रीवेदवन्धकानां स्पर्शनानिरूपणप्रसङ्गे प्रतिपादिता विवेक्षा विस्मृता, अन्य-
थायं प्रश्नो नैवोत्पद्येत । अत्र प्रागुक्तविवक्षावशाद् मिथ्यात्वप्रकृत्यवन्धकातिरिक्तजीवानां स्पर्शना
सास्वादनगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य न कृता यदि प्रागुक्तविवक्षा नाश्रीयेत तदा तु हुण्डका-

बन्धकानामपि स्पर्शना मत्तरञ्जुप्रमाणा भवेत् । एवमेव प्रकृतमार्गणासु एकेन्द्रियस्थावरप्रकृत्य-
बन्धकानां स्पर्शनाऽपि पूर्वोक्तविवक्षावगादेकादशरञ्जुप्रमाणा निरूपिता, परं यदि पूर्वोक्तविवक्षा नाङ्गी-
क्रियते, तदा तु त्रयोदशरञ्जुप्रमाणा स्पर्शना यदा यायात् । एवमेवाग्रेऽपि यामु मार्गणासु यत्प्रकृत्य-
बन्धकानां स्पर्शना सास्वादनुगुणस्थानवर्तिजीवानाश्रित्य यावत्प्रमाणोपपद्येत तावत्प्रमाणमनिरूप्य-
न्यूना निरूपिता तत्र पूर्वोक्तविवक्षा प्रतिपत्तव्या वीजतया । ‘ऊणजगं’ इत्यादि, सूक्ष्मकर्मणो-
ऽबन्धका देशोनलोकं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा-मार्गणास्वासु सूक्ष्मनामकर्मणोऽबन्धका वादरनामकर्मणो
बन्धका मरन्ति, ते च वादरवायुकायिकेषु समुत्पद्यन्ते, वादरवायुकायिकानां क्षेत्रं देशोनलोकं
वर्तते, तत्र समुत्पित्सवस्ते तादृशं क्षेत्रं मरणसमुद्घातेन कृतात्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति ।
‘सव्व’ इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धकैः सर्वो लोकाः स्पृष्टः, यतः प्रस्तुतमार्गणासु शेष-
प्रकृत्यबन्धकाः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूपपद्यन्ते, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां च क्षेत्रं सकललोकप्रमाणमस्ति ।
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदद्वयदेवनरकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजाति-
चतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसहननपट्कसंस्थानपञ्चकदेवनारकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयव्रसद-
गकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराशुमदुःस्वरातपोद्योतपराघातोन्मत्त्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतयः
॥११५९-६१॥

अथाऽपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामभिदधाति-

असमत्तपणिदितिरियमणुसपणिदितससव्वविगलेसुं ।
वायरसव्वपुहविदगणिगोअपत्तेअहरिएसुं ॥११६२॥
णपुमेगिदिययावरदुहगाणादेयहुं ङणीआण ।
तह तिरिदुगस्स छुहिओ असखमागो जगस्स भवे ॥११६३॥
पुहमस्स ऊणलोगो भागा सत्त अजसस्स परिपुट्ठा ।
सव्वजगं सेसाण सप्पाउग्गाण जाणडत्थि ॥११६४॥

(प्रे०) ‘असमत्त’ इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्या-
प्तमकायरूपासु चतसृषु मार्गणास्वोद्यपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु
त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु चतुरिन्द्रियमार्गणासु तिसृषु वादरपृथिवीकायमार्गणासु तिसृषु वादराष्का-
यमार्गणासु तिसृषु वादरसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु तिसृषु च प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु
नपुंसकवेदैकेन्द्रियस्थावरदुर्भगानादेयहुण्डकसंस्थाननीचैर्गोत्रतिर्यग्विद्वकरूपाणां नवानां प्रकृतीनाम-
बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमभागः स्पृष्टः, तद्यथा-मार्गणास्वासु यथासंभवं प्रकृतप्रकृतीनामबन्धकाः
स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति, समुद्घातापेक्षयाऽपि ते तावत्प्रमाण-
मेव क्षेत्रं स्पृशन्ति, व्रसत्वेनैवोत्पद्यमानत्वाच्चेष्टम् ।

‘सुहमस्स’ इत्यादि, सूक्ष्मनाम्नोऽवन्धका देशोलोकं स्पृशन्ति स्म, वादरवायुकार्यिकेषु तेषामुत्पत्तेः सद्भावान् । ‘सत्त’ इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम्नोऽवन्धकाः सप्तभागान् स्पृशन्ति स्म, तद्यथा-प्रकृतमार्गणासु यशःकीर्तिनाम्नो वन्धका अयशःकीर्तिनाम्नोऽवन्धका भवन्ति, ते चोर्ध्वमेव सिद्धशिलां यावद् वादरैकैन्द्रियत्वेन ममुत्पद्यन्ते, ममुत्पित्मवश्च तत्र ते मग्नसमुद्वातावस्थायां सिद्धशिलाक्षेत्रं यावत्स्पृशन्ति, तच्च सप्तजुपरिमाणकं वर्तते । ‘सव्वजग’ मित्यादि, उदितशेष-प्रकृतिषु यासां प्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, तेषां स्पर्शनाक्षेत्रं सर्वो लोकः, सूक्ष्मैकैन्द्रियत्वेन जायमानत्वात्तेषाम् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगति द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कमं स्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तमाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतय इति ॥११६२४॥ अथ देवौघादिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामाह

सुरईसाणतेसु थोणद्धितिगऽणणपु तिरिदुगाण ।

हंढेगिदियथावरदुहगाणादेयणीआणं ॥११६५॥

अड भागा छुहिआ णव सेसाण छसु तइआइकप्पेसुं ।

जाणऽत्थि सिमडभागा अत्थि छ चउआणयाईसुं ॥११६६॥

(प्रे०) ‘सुर’ इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमौधमेशानरूपासु षट्सु मार्गणासु स्त्यानद्धि त्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डकसस्थानैकैन्द्रियजातिस्थावरदुर्मगा-नादेयनीचैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामवन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणास्वासु वर्तमानानां प्रकृत-प्रकृत्यवन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवानां त्रमप्रायोग्यवन्धकानां वा गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरजुप्रमा-णत्वात् । ‘णव’ इत्यादि, अत्राऽभिहितानिस्त्तानां यासां प्रकृतीनामवन्धकाः समुपलभ्यन्ते, तेषां स्पर्शना नवभागप्रमाणा वेदयितव्या । तदेवम्-प्रकृतमार्गणासु वर्तमानाः शेषप्रकृत्यवन्धका देवा-स्तृतीयनरके यावद् गच्छन्तो द्वौ रज्जू स्पृशन्ति, उर्ध्वं पुनरीषत्प्राग्भारादिपृथ्वीकायेषु जायमानाः सप्त रज्जूः स्पृशन्तीति सर्वोऽपि नव । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-सुरौघमौधमेशानमार्गणात्रये मिथ्यात्व-मोहनीयवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंह-ननपट्कसस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्यस्थिराऽशुभदुः-स्वगयशःकीर्त्यतिपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः, जिननाम विनैता एव प्रकृतयः भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये बोद्धव्याः ।

‘छसु’ इत्यादि, सनत्कुमारमाहेन्द्रबललान्तकशुकसहस्रारदेवलोकरूपासु षट्सु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, तेऽष्टौ भागान् स्पृशन्ति, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्य तावत्प्रमाण-त्वात् । ताश्चेमाः प्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धि त्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्या

दियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयस्थिर-
पट्काऽस्थिरपट्कोद्योतजिननामगोत्रद्वयरूपा एकपञ्चाशत्प्रकृतयः ।

‘छ’ इत्यादि, आनतप्राणतारणाऽव्युत्तरूपासु चतसृषु मार्गणास्वन्धप्रायोग्यप्रकृत्यवन्ध-
कानां स्पर्शना षड्भागप्रमिता ज्ञातव्या, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वात्, ताश्चेमाः-
प्रकृतयः—मिथ्यात्रमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रय-
संहननपट्कसंस्थानपट्कखगतिद्वयस्थिरपट्काऽस्थिरपट्कजिननामगोत्रद्वयरूपाः पट्चत्वारिंशत्प्रकृतयः
॥११६५-६॥ अथ सूक्ष्मप्रायोग्यमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाऽभिधीयते

तेसि एगिदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।

छुहिओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाउग्गाण जाणऽत्थि ॥११६७॥

(प्रे०) ‘तेसि’ इत्यादि, एकेन्द्रियचपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पत्योवनिगोदौधमार्गणासु तथो-
घपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु सूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथिवीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मा-
ऽकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मवायुकायिकमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्म-
साधारणवनस्पतिकायमार्गणास्वित्यष्टादशसूक्ष्ममार्गणासु चेति सर्वग्रन्थया पञ्चविंशतिमार्गणासु यामां
प्रकृतीमवन्धका विद्यन्ते, तेषां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना ममधिगम्या, मार्गणास्वासु वर्तमानानां
जीवानां सर्वलोके व्याप्तत्वात् । इमाश्च ताः प्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्य-
गतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशक-
स्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा एकोनपष्टिप्रकृतयः, नवरं तेजोवायुकाययोस्तत्सूक्ष्म-
भेदेषु च गतिद्वयानुपूर्वीद्वयगोत्रद्वयवर्जाश्वित्रपञ्चाशत्प्रकृतयो वेदितव्याः ॥११६७॥

अधुना वादरैकेन्द्रियवायुकायिकमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमुप-
दर्शयन्नाह

तिरियजुगलणीआण वायरएगिदिसव्वमेसु ।

लोगासखसो इह तह वायरसव्ववाऊसु ॥११६८॥

णपुमेगिदियथावरदुहगाणादेयसुहमअजसाण ।

तह ह्रस्सूणजगं छुहिअ सेसाण सव्वजगं ॥११६९॥

(प्रे०) ‘तिरिय’ इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तप्रकारेण तिसृषु वादरैकेन्द्रियमार्गणासु तिर्य-
ग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृतित्रयस्याऽवन्धकैर्लोकाऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः । तद्यथा—मार्गणास्वासु
प्रकृतित्रयस्याऽस्याऽवन्धका मनुष्यद्विकोचैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य वन्धका भवन्ति, अतस्मात्
वन्धकानां स्पर्शनावद् भावना कार्या । ‘इह तह’ इत्यादि, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन वादरैकेन्द्रियाणां
तिसृषु मार्गणासु तिसृषु वादरवायुकायिकमार्गणासु च नपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थावरदुर्भागानादेय-
सूक्ष्माऽयशःकीर्तिदृष्टकसंस्थानरूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽवन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति, यतो वायुकायिका

यदा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्वध्नन्ति, तदा ते नपुंमकवेदादिप्रकृतीनामवन्धका भवन्ति, ते च स्वस्थानमाश्रित्य देशोनलोके वर्तन्ते, अतः स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणैव प्राप्यते. तथा मरणसमुद्घातमाश्रित्याऽपि तावत्प्रमाणैव प्राप्यते । 'सेसाण' इत्यादि, प्रकृतमार्गणासु प्रकृतीरेता विहाय शेषप्रकृतीनामवन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति, तत्पुनरेवम्-मार्गणास्वासु वर्तमानाः शेषप्रकृत्यवन्धका जीवाः सूक्ष्मैकेन्द्रियेष्वप्युत्पत्तिं लभन्ते, अतो मरणसमुद्घातेन कृतान्मप्रदेशदण्डैः सकललोकं स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्यगतिद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कमसचतुर्गस्तादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गौरूपा अष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः प्रोक्तपट्स्वपि मार्गणासु वेदितव्याः ॥११६८-६९॥

अथ वादरात्रिकायमकलभेदेष्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामाह

लोगासंख्यभागो सन्वेसुं वायरगिमेसुं ।

णपुमेगिदियथावरदुह्वाणादेयहुंडाण ॥११७०॥

सुहमस्स अणलोगो छुहिओ अत्थि अजसस्स सयमुज्जा ।

छुहिओऽत्थि सन्वलोगो सेसाणं पंचचत्ताए ॥११७१॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, ओषपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु वादराऽत्रिकायमार्गणासु नपुंमकवेदैकेन्द्रियस्थावरदुर्भगानादेयहुण्डकसंस्थानरूपाणां पण्णां प्रकृतीनामवन्धकैर्लोकान् संख्येयतमभागः स्पृष्टः, पर्याप्ततिर्यक्त्रसप्रायोग्यवन्धका आसामवन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, अतः कथितवन्धकस्पर्शनावज्ञावना तत्रतोऽवसेया । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनागोऽवन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति, यतो मार्गणास्वासु वर्तमानास्तेजःकायिका जीवाः सूक्ष्मनागोऽवन्धका वादरवायुकायिकेषूत्पद्यन्ते, वादरवायुकायिकानां क्षेत्रं देशोनलोकं वर्तते, उत्पिन्सवस्ते तत्र मरणसमुद्घातेन तादृशं क्षेत्रं स्पृशन्ति । "अजसस्स" इत्यादि, अयशःकीर्तिनाम्नोऽवन्धकानां स्पर्शना स्वयमूह्या, यशःकीर्तिनाम्नः वन्धकस्पर्शनाया अनिर्णयात् । 'छुहिओ' इत्यादि, अत्रोक्तप्रकृतिभिन्नानां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवन्धकाः सकलं लोकं स्पृष्टवन्तः, अत्रस्थमार्गणासु वर्तमानानां शेषप्रकृत्यवन्धकानां सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्यमानत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽतपोद्योतपराधातोच्छ्वासरूपाः पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतय इति ॥११७०-१॥

अथ मनोवचनप्रभृतिमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामाह

लोगासंख्यभागो पणमणवयजोगचवखुसणीसुं ।

परिपुट्ठो विण्णयो धुववधोण पणतीसाए ॥११७२॥

मिच्छणपुमएगिदिययावरऽणादेयदुहगहु डाण ।

तह तिरिदुगस्स वाग्गस भागेगारस य उरलस्स ॥११३३॥

दुहअकसायाण पण थोणद्धितिगाणचउगणीआण ।

अड सुहमस्सुणजगं ह्रुहिअ सेसाण सज्वजगं ॥११३३॥

(प्रे०) 'लोगा' इत्यादि, पञ्चमनोयोगपञ्चचनयोगचक्षुर्दशेन मजिरूपासु द्वादशमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्टकप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कमयजुषुभार्तजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाणां पञ्चविंशद्भ्रवन्धिप्रकृतीनामवन्धकैर्लोकाऽमन्त्रयेयतमभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्टम्, कैवलिसमुद्घातगतभिन्नमयमिनामवन्धकतया प्राप्यमाणत्वात्तेषां च स्वस्थानममुद्घातस्पर्शनायास्तावन्मितत्वात् । 'मिच्छ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदैकेन्द्रियजातिस्थानाऽनादेयदुर्भगहुण्डकमस्थानत्रियग्द्विकलक्षणानां नवानां प्रकृतीनामवन्धका द्वादशभागान् स्पृष्टवन्तः । भावनाविधिस्त्वेवम्-मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकास्मास्वादना जीवा ऊर्ध्वं सिद्धशिलापृथिव्यां वादरैकेन्द्रियत्वेन जायमानास्ममरञ्जूर्मरणममुद्घातेन स्पृशन्ति, अधश्च पृथनरकतस्तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानाः पञ्चभागान् स्पृशन्ति, तथा नपु मकवेदादिप्रकृत्यष्टकस्याऽवन्धका जीवाः सप्तमनरकात् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्टपद्यमानाः षड्भागान् स्पृशन्ति, तथैवोर्ध्वलोकमत्कषड्भागान् यावत्प्रकृतीनामामवन्धकानां प्रकृतमार्गणागतदेवानां गमनागमनमस्ति । 'एगारस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽवन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति स्म, तद्यथा-मार्गणास्वासु प्रकृतेरस्या अवन्धका वैक्रियशरीरनाम्नो वन्धका अतो वैक्रियशरीरवन्धकस्पर्शनाद् भावना कार्या । 'दुहअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽवन्धकाः पञ्चभागान् स्पृष्टवन्तः, तद्यथा-मार्गणास्वासु प्रकृतिचतुष्कस्याऽवन्धका मुख्यतया देशविरतयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया वर्तन्ते, ते सहस्रारदेवलोकं यावदुत्पत्तिमालभन्ते, तत्रोत्पत्तयश्च ते समुद्घातेनाऽऽसहस्रारक्षेत्रे स्पृशन्ति, तत्पुनः पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'थोणद्धि' इत्यादि, स्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कनीचैर्गोत्ररूपस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽवन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानामेतत्प्रकृत्यष्टकावन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्मणोऽवन्धका देशोर्णं जगत् स्पृष्टवन्तः, वादरवायुकायिकेष्टपद्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शना सकललोकप्रमाणा वर्तते, सूक्ष्मैकेन्द्रियेष्टपद्यमानत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहाम्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवनारकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कमचतुरस्रादिमंस्थानपञ्चकदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रसदशकाऽपर्याप्तसाधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वराऽयशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासाऽऽतपोधोतज्जननामोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टपञ्चाशत्प्रकृतयः । ११७२-४॥

इदानीमौदारिककाययोगमार्गणायामाधुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां दिदर्शयिष्याह

ओरालियम्मि गेयो छिविओ धुवचधिपचतीसाए ।

लोगासखियमाणो फुसणा तिरियेच्च सेसाण ॥११७५॥

(प्रे०) 'ओरालियम्मि' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यान-
द्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां पञ्चविंशच्छेषत्रुवन्धिप्रकृतीनाम-
बन्धकैर्लोकस्याऽसंख्येयतमो भागः परिस्पृष्टः, तद्यथा—एतस्यां मार्गणायां प्रकृतप्रकृतीनामबन्धक-
त्वेन केवलज्ञानिनां प्राप्यमाणत्वेऽपि समुद्धातगततृतीयचतुर्थपञ्चमसमयगतस्पर्शनाक्षेत्रस्यालभेन
शेषसमुद्धातगतक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वेन प्रस्तुतस्पर्शनाऽपि तावत्येव प्राप्यते ।
किमुक्तं भवति—केवलिसमुद्धातगतस्पर्शना सविशेषा तदा भवति, यदा समुद्धातगततृतीयचतुर्थ-
पञ्चमसमयानां स्पर्शनाया लाभः भ्यात्, तदानीं क्रमेण लोकासंख्यबहुभागप्रमाणा सर्वलोकप्रमाणा,
लोकासंख्यबहुभागप्रमाणा स्पर्शना भवतीतिकृत्वा, प्रस्तुते तु न तथा, प्रस्तुतमार्गणायाः प्रथमाष्टमसम-
ययोरेव लाभेन तृतीयादिसमयत्रये च मार्गणाया एवाभावात्, शेषसमयस्थानां तु केवलिसमुद्धातगतानां
स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणत्वात् प्रस्तुते लोकासंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना कथिता । 'फुसणा'
इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना निर्यगोधमार्गेणैव ज्ञातव्या । तदेवम्—स्त्यान-
द्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना
पञ्चभागप्रमाणा, मिथ्यात्वमोहनीयस्य सप्तभागप्रमाणा, औदारिकशरीरनाम्न एकादशभागप्रमाणा,
शेषप्रकृतीनां च सर्वलोकप्रमाणा वेदयितव्या, अत्र जिननामाहारकद्विकप्रकृतीनां बन्धसत्त्वात् शेष-
प्रकृतिन्वेन ता अपि ग्राह्याः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगति-
चतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कखगति-
द्वयत्रसदृशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा अष्टपष्टिः प्रकृतय इति ।
भावना पुनरत्र तिर्यगोधमार्गणावद् विधेया ॥११७५॥

अर्थादारिकमिश्रकाययोगमार्गणायासायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽभिधीयते—

ओरालमीसजोगे छुहिओ अत्थि धुवचंधिउरलाण ।

लोगासखियमाणो पुडु सच्चजगमण्णेसि ॥११७६॥

(प्रे०) 'ओरालमीसजोगे' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्-
ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनामकर्मणश्चाऽबन्धका लोकाऽसंख्येयभागं स्पृष्टवन्तः, मार्गणाया-
मस्यामासां प्रकृतीनामबन्धकानां केवलज्ञानिना समुद्धातगतक्षेत्रस्याऽपि लोकाऽसंख्येयतमभाग-
प्रमाणत्वात् । 'पुडु' इत्यादि, एतत्प्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना समस्ते-
लोकप्रमाणा बोद्धव्या, मार्गणायामस्यां सूक्ष्मेन्द्रियाः शेषप्रकृतीनामबन्धकतया वर्तन्ते, तान्प्रतीत्य
स्वस्थानापेक्षया भावना भाव्या । ताश्चानन्तरोक्ता नरकाद्विकाहारकद्विकवर्जचतुःषष्टिर्विज्ञेया इति ।

॥११७६॥ अधुना वैक्रियकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामुपदर्शयन्नाह

विउवे छुहिया तिरिदुगथीणद्धितिगाणचउगणीआण ।

णेया अड भागा णव छिविया पच्चिदियतसाण ॥११७७॥

मिच्छणपुमएगिदियथावरणादेयहुहगहुंडाण ।

वारस भागा छुहिया तेरस भागाऽत्थि सेसाण ॥११७८॥

(प्रे०) 'विउवे' इत्यादि, वैक्रियकाययोगमार्गणायां तिर्यग्विक्रमस्त्यानद्धिविकाऽनन्तानुबन्धि चतुष्कनीचैर्गोत्रलक्षणानां दशानां प्रकृतीनामवन्धकैरष्टौ भागाः परिस्पृष्टाः, यतोऽत्र मध्यगृष्टिदेवाः प्रकृतीनामासामवन्धकास्मन्ति, तेषां च गमनागमनक्षेत्रमष्टज्जुप्रमाणमस्ति । 'णव' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिव्रसनाम्नोवन्धका नव भागान् स्पृशन्ति । इयमत्र भावना-मार्गणायामेतस्यां प्रकृतिद्वयस्याऽस्यावन्धका देवा वादरैकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतीर्वधन्ति, ते चोर्ध्वं वादरैकेन्द्रियत्वेन मिद्धशिलापृथिव्यामुत्पद्यमाना मरणसमुद्धातेन विहितैर्गन्मप्रदेशदण्डैः मष्टज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथाऽधस्तात्तृतीयनरकं यावद् गमनागमनविधानेन रज्जुद्वयं स्पृशन्ति । 'मिच्छ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयनपुमकवेदैर्केन्द्रियजातिस्थानानादेयदुर्भगदण्डकमस्थाननामरूपस्य प्रकृतिमत्तकस्याऽवन्धकैर्द्वादश भागाः परिस्पृष्टाः, भावना त्वेवम्-मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकाः षष्ठनगरस्थाः सास्वादना नारकास्तिर्यग्लोके जायमाना मरणसमुद्धातविधानेन पञ्चरज्जुः स्पृशन्ति, तथा मिथ्यात्वमोहनीयाऽवन्धकास्मास्वादनिनो देवा ऊर्ध्वं वादरैकेन्द्रियत्वेनेषां प्राग्मारपृथिव्या जायमानाः मष्टरज्जुः स्पृशन्ति । प्रकृतमार्गणायां नपुंसकवेदादिप्रकृतीनामवन्धकाः सप्तमनगरस्था नारकास्तिर्यग्लोके समुत्पित्सवो मरणसमुद्धाते षड्रज्जुः स्पृशन्ति, तथा नपुंसकवेदादिप्रकृतीनामवन्धका देवा गमनागमनेनोर्ध्वलोकसत्कषड्रज्जुः स्पृशन्ति । 'तेरस' इत्यादि, अत्राऽविहित-शेषप्रकृतीनामवन्धकास्त्रयोदशभागान् स्पृशन्ति स्म, धटना पुनरिहेत्यमाधेया गार्गणायामस्या शेषप्रकृत्यवन्धकाः सप्तमनगरस्थाः प्राणिनस्तिर्यग्लोके समुत्पित्सवो मरणसमुद्धातकाले षड्रज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथा शेषप्रकृत्यवन्धका भवनपतिप्रभृतिदेवा ऊर्ध्वं वादरैकेन्द्रियत्वेनोत्पित्सवः मष्टरज्जुः स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयमनुष्य-गत्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीखगतिद्वयस्थिरपट्कास्थिराऽशुभ-दुःस्वराऽयशःकीर्त्याऽऽतपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टात्रिंशत्प्रकृतयः ॥११७७-८॥

साम्प्रतं स्त्रीवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामाह

थीणद्धितिगाणणपुमहुहगाणादेयहु ङणीआण ।

इत्थीअ अड भागा फुसिया मिच्छस्स णव भागा ॥११७९॥

दुइअकसायाण पण भागा धुववधिणीण जाणऽत्थि ।

सत्तरसेसाणं सि परिपुट्ठो जगअसखसो ॥११८०॥

एगार तिरिदुगेगिदिथावरण उरलस्स दस भागा ।

णव अजसस्सणजगं सुहमस्सियराण सव्वजगं ॥११८१॥

(प्रे०) 'थीणहि' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां स्थानद्वित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेद-
दुर्भगानादेयहुण्डकमंस्थाननीचैर्गोत्रलक्षणां द्वादशप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमष्टभाग-
प्रमाणमस्ति, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां सम्यग्दृष्टिदेवीनां गमनागमनक्षेत्रस्याऽऽष्टरज्जु-
प्रमाणत्वात् । 'भिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका नव भागान् स्पृशन्ति ॥ ।
भावना पुनरियमत्र-मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयाऽबन्धिकाः सास्वादनादेव्यो गमनागमनेना-
ऽऽष्टरज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति, तथोर्ध्वं वादरैकेन्द्रियत्वेनेपत्प्राग्भारपृथिव्यामुत्पद्यमाना मरणसमुद्घातेनोर्ध्व-
लोकसत्कं सप्तमरज्जुमपि स्पृशन्ति । दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकैः पञ्चभागाः
परिस्पृष्टाः, तद्यथा-एतत्प्रकृतिचतुष्काऽबन्धका देशभिरततिरश्च्य आसहस्रारकल्प समुत्पद्यन्ते, ताश्च
भरणसमुद्घातममये पञ्चरज्जुप्रमाणमामहस्रारकल्पक्षेत्रं परिस्पृशन्ति । 'धुववधिणोण' इत्यादि,
यासां शेषाणां मत्तदशत्रयबन्धिप्रकृतोनामबन्धका विद्यन्ते, ते जगतोऽसंख्येयतमभागं स्पृशन्ति,
ताश्चेमाः-निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमप्यज्जुगुप्सतैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघात-
निर्माणरूपाः मत्तदशप्रकृतयः, भावनाऽनया रीत्या कार्या-मार्गणायामस्यां प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
स्याऽबन्धकतया मयमिन्यो वर्तन्ते, शेषत्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकजीवाश्च श्रेणौ प्राप्यन्ते, तेषां सर्वेषां
स्वस्थानक्षेत्रस्य पारमविक्रोत्पत्तिक्षेत्रस्य च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाक्षेत्रमपि
तावत्प्रमाणमेवाऽवाप्यते । 'एगार' इत्यादि, तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिस्थावरनामरूपाणां चतसृणां प्रकृ-
तीनामबन्धकैरेकादशभागाः स्पृष्टाः, तदेवम् मार्गणायामेतस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां देवीजीवानामूर्ध्वं
गमनागमनक्षेत्रस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वेन षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना समुपलभ्यते तथा प्रकृतमार्गणा-
स्था एतत्प्रकृत्यबन्धकतयामुख्यतस्तिरश्च्योऽधः षष्ठनरकं यावदुत्पद्यन्ते, अतस्तासां मरणसमुद्घात-
गतस्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा प्राप्यते, षष्ठनरकपर्यन्तक्षेत्रस्य पञ्चरज्जुप्रमाणत्वात् । 'उरलस्स'
इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धका दशभागान् स्पृष्टवन्तः, इयमत्र भावना-मार्गणायामस्यामौदा-
रिकशरीरनाम्नोऽबन्धका मुख्यवृत्त्या तिरश्च्य ऊर्ध्वमासहस्रारदेवलोकमधस्ताच्च षष्ठनरकं याव-
दुत्पद्यन्ते, उभयमपि ममुदितं क्षेत्रं दशरज्जुप्रमाणमस्ति, उत्पित्सवस्तत्र ता मरणसमुद्घात-
समये विहितान्मप्रदेशदण्डैस्तावत्प्रमाण क्षेत्रं स्पृशन्ति । 'णव' इत्यादि, अयशःकीर्तिनामप्रकृतेर-
बन्धका नव भागान् स्पृशन्ति, तद्यथा-मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यबन्धका देव्योऽष्टरज्जुक्षेत्रं गमना-
गमनेन स्पृशन्ति, तथोपरि सप्तमरज्जुं मिद्धशिलापृथिव्यां वादरैकेन्द्रियेषु जायमाना मरणसमुद्-
घातेन स्पृशन्तीति नवरज्जुमितस्पर्शना भवति । 'अणजगं' इत्यादि, सूक्ष्मनामकर्मणोऽबन्धका
देशोनलोकं स्पृशन्ति स्म, यतः प्रकृतमार्गणस्था एतत्प्रकृत्यबन्धका जीवा वादरवायुकायि-

केष्वपि समुत्पद्यन्ते, वादरवायुकायिकाश्च देशोनलोके वर्तन्ते । 'इथराण' इत्यादि, उक्त-
शेषप्रकृत्यन्वकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा वेदयितव्या, तेषामुत्पत्तेः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु भावात् ,
ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयनरकमनुष्यदेवगतित्रयद्वीन्द्रि-
यादिजातिचतुष्कौदारिकाज्ञोपाङ्गवैक्रियद्विकहाहारकद्विकसंहननपट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चनरक-
देवमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रयसदृशकाऽपर्याप्तसाधारणास्थिराऽशुभदुःस्वरातपोधोतपराघातोच्छ्वास-
जिननाभोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतय इति ॥११८१॥

अथ पुरुषवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यन्वकानां स्पर्शनां चिन्तयन्नाह

इत्थिच्च पुमे फुसणा सन्वाण परमुरलस्स एगार ।

भागा वारह तिरिदुगएगिदियथावराणऽत्थि ॥११८२॥

(प्रे०) 'इत्थिच्च' इत्यादि पुरुषवेदमार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनां स्पर्शना स्त्रीवेदमार्गणा-
वदस्ति । 'परं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाभोऽन्वकैरे-
कादशभागान् स्पृशन्ति स्म, तत्पुनरेवम् मार्गणायामस्यां वैक्रियशरीरनाभोऽन्वका एतत्प्रकृत्य-
न्वका वर्तन्ते, तेऽप्यत्र बहुलतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया वर्तन्ते, एते तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया अधस्तात्सप्तम-
नरकमूर्ध्वं पुनः सहस्रारकल्पं यावदुत्पित्सव एतद्द्वयमपि क्षेत्रं मरणसमुद्धातसमये कृतात्मप्रदेशदण्डैः
स्पृशन्ति, तच्च क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणमस्ति । 'भागा वारह' इत्यादि, तिर्यग्विकस्थावरैकेन्द्रिय-
प्रकृतीनामन्वकानां स्पर्शना द्वादशभागप्रमाणा अवसेया । मा पुनरित्थमवसेया मार्गणायामस्यां वर्त-
माना एतत्प्रकृतिचतुष्कस्याऽन्वका देवा गमनागमनेनोर्ध्वलोकगत्यपडर्ज्जूः स्पृशन्ति, तथा मार्ग-
णायामस्यां वर्तमाना एतत्प्रकृतिचतुष्कस्याऽन्वका मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियास्तप्तमनरकं याव-
दुत्पित्सवः पडर्ज्जूः स्पृशन्तीत्येवं द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना संजाता ॥११८२॥

साम्प्रत नपुंसकवेदकपायचतुष्कमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यन्वकानां स्पर्शनाऽभिधीयते

णपुमचउकसायेसुं भागा वार छुहिआऽत्थि मिच्छस्स ।

छिविआ थोणद्धिघयतिगअडुकसायाण पण भागा ॥११८३॥

णवरि कसायेसुं अड भागा थोणद्धितिगऽणचउगाणं ।

सेसधुवाण जेसि हवेज्ज सि जगअसखसो ॥११८४॥

ओरालियस्स भागा एगारस फोसिआ भुजेयच्चा ।

सव्वजगं परिपुट्ठं सेसण अडुसट्ठीए ॥११८५॥

(प्रे०) 'णपुम' इत्यादि, नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु मिथ्या-
त्वमोहनीयस्याऽन्वकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, तदेवम् मार्गणास्वासु वर्तमाना मिथ्यात्वमोहनीयस्या-
ऽन्वकाः सास्वादना जीवा उपरि- सिद्धशिलापृथिव्यां वादरैकेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सवः सप्तरज्जु-
क्षेत्रमधश्च षष्ठनरकातिर्यग्लोके समुत्पित्सवः पञ्चरज्जुक्षेत्रं मरणसमुद्धातसमये स्पृशन्ति । 'थोण-

द्विच' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकादशप्रकृती-
नामबन्धकाः पञ्चभागान् परिस्पृष्टवन्तः, तद्यथा-मार्गणास्वासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्क-
रूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धका मुख्यवृत्त्या सम्यग्दृष्ट्यस्तिर्यञ्चः अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य च
देशविरतयस्तिर्यञ्चो वर्तन्ते, ते चाऽष्टमदेवलोकमुत्पद्यमानाः पञ्चरजुप्रमाणक्षेत्रं मरणभ्रमुद्घाता-
वसरे स्पृशन्ति । ननु क्रोधादिकषायमार्गणासु स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कप्रकृतीनामबन्धक-
तया देवा उपलभ्यन्ते, तेषां च गमनागमनक्षेत्रमष्टरजुप्रमाणमस्ति, अतः स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानु-
बन्धिचतुष्काऽबन्धकानामिह स्पर्शनाऽष्टरजुप्रमाणा वक्तव्याऽऽसीत् कथं भवद्भिः पञ्चरजुप्रमाणं
प्रोक्तेत्यारोकामपाकर्तुमपवादमाह 'णचरि' इत्यादिना, क्रोधमानमायालोभलक्षणासु चतसृषु मार्गणासु
स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः परिस्पृष्टाः । 'सेस'
इत्यादि, उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतिषु यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धका विद्यन्ते, तेषां स्पर्शनाक्षेत्रं
जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणं समधिगम्यम्, नपुंसकवेदक्रोधरूपायमार्गणयोस्ताश्चेमाः शेषध्रुवबन्धि-
प्रकृतयः-निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्कभयजुगुप्सातैजमकार्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपवात-
निर्माणरूपाः सप्तदशेति । मानमार्गणायामुक्तसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनक्रोधश्च, मायामार्गणायामुक्तसप्त-
दशप्रकृतयः संज्वलनक्रोधमानौ, लोभमार्गणायां चोक्तसप्तदशप्रकृतयः संज्वलनचतुष्कं चेति । भावना-
प्रकारस्त्वेवम्-प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकाः प्रमत्तादिसयतां वर्तन्ते, शेषप्रकृत्यबन्धकाश्च
श्रेणौ प्राप्यन्ते, तेषां सर्वेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा स्त्रीवेदमार्गणावदुपपादनीया ।
'ओरालियरस' इत्यादि, औदारिकशरीरनागोऽबन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावना
पुनरिह पुरुषवेदमार्गणायां दर्शितप्रकारेण विधेया । 'सञ्च' इत्यादि, अत्रोक्तातिरिक्तानामष्टपष्टि-
शेषप्रकृतीनामबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा चोद्धव्या, हृद्गैकैन्द्रियाणां तदबन्धकतया प्राप्य-
माणत्वात्तेषां च स्वस्थानक्षेत्रस्याऽपि सर्वलोकप्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकेहास्या-
दियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकवैक्रियाऽऽहारकशरीराङ्गोपाङ्गत्रयसंहननवट्टकसंस्थानपट्टका-
ऽऽनुपूर्वीचतुष्कलगतद्वयत्रयसदृशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोञ्च्वासजिननाभगोत्रद्वयरूपा अष्ट-
पष्टिरिति ॥११८३-८५॥

सम्प्रति गतवेदसंयमौघमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमभिधीयते

गयवेअसंजमेनु असंख्यभागो जगस्स परिपुष्टो ।

सायस्स सञ्चलोगो सप्पाजग्गाण सेसाण ॥११८६॥

(प्रे०) 'गयवेअ' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां संयमौघमार्गणायां च सातवेदनीयस्याबन्धकै-
र्जगतोऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः, तथा मार्गणयोरनयोश्चतुर्दशगुणस्थानस्था जीवा अपगतवेदे सिद्धा
अपि सातवेदनीयस्याऽबन्धका भवन्ति, तेषां क्षेत्रं स्वस्थानापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमभागमेवाऽस्ति,

यद्यपि संयमौधे प्रमत्तजीवानां सातवेदनीयस्यामन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वेऽपि तेषां स्पर्शनाया लोकासं-
ख्यभागमात्रत्वाद् न विशेषः, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्येव वेदितव्याः । 'सञ्च' इत्यादि,
सातवेदनीयप्रकृत्यतिरिक्तानां शेषाणां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनाममन्धकैः सकलो लोकः स्पृष्टः । इयमत्र
भावनाविधिः-मार्गणयोरनयोः शेषप्रकृत्यमन्धकास्त्रयोदशगुणस्थानस्थाः केवलज्ञानिनोऽपि वर्तन्ते, ते
च केवलसमुद्धातवेलायां सकलं लोकं स्पृशन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-अपगतवेदमार्गणायां ज्ञाना
वरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपा त्रिंशतिः प्रकृतयः ।
संयमौघमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धिर्त्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
प्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जा एकत्रिंशच्छेषद्रुवबन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेद-
देवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकममचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽ
शुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वामजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा द्वित्रिंशद्द्रुवबन्धिप्रकृतय इति ॥११८६॥

इदानीं मत्यादिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यमन्धकानां स्पर्शनोच्यते

णाणतिगे ओहिग्गि य पण भागा फोसिभा मुजेयन्वा ।

दुइअकसायाण तह णरलदुगवहरिसहाणं ॥११८७॥

बारससायाईण सुरविज्जवाहारजुगलतित्थाणं ।

छुहिआऽत्थि अहु भागा सेसाण जगअसखंसो ॥११८८॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपामु चतसृषु मार्ग-
णास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवचर्षभनाराचसंहननरूपाणां पञ्चानां
प्रकृतीनाममन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, यत एतत्प्रकृत्यमन्धका मुख्यतया देशविरतास्तिर्यञ्च आसह-
स्त्रारकल्पमुत्पद्यन्ते, तच्च क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'बारस' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीय-
हास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सुरद्विकवैक्रिय-
द्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां च सप्तानां प्रकृतीनाममन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, एतत्प्रकृत्यमन्धकानां
मत्र देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, इहाऽभिहित-
शेषप्रकृतीनाममन्धकैर्लोकस्याऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्च-
कदर्शनावरणपट्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्का-
ऽयुगलधूपवातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपाः पञ्चत्रिंशद्द्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजाति-
समचतुरस्रसंस्थानमुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रससप्तकपराधातोच्छ्वामोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशाऽद्रुव-
बन्धिप्रकृतयश्च । भावना पुनरेवं कार्या-मार्गणास्वासु शेषप्रकृत्यमन्धकारलक्ष्यस्थसंयताः प्राप्यन्ते,
तेषां पारमविकक्षेत्रं स्वस्थानक्षेत्रं च लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपीयत्प्रमा-
णव भवति ॥११८७-८८॥

साम्प्रतं मतिश्रुताज्ञानमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यमन्धकैः स्पृष्टक्षेत्रमुपदर्शयन्नाह

मिच्छस्स अणान्दुगे भागा बार छिविआऽत्थि उरलस्स ।

एगारस सव्वजगं सेसाणं पच्चसद्दीए ॥११८६॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, मृत्युज्ञानश्रुताज्ञानाख्यमार्गणादये मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽ-
बन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, भावना नपुंसकवेदमार्गणावत्कार्या । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिक-
शरीरनागोऽबन्धका एकदशभागान् स्पृष्टवन्तः । भावना वैक्रियशरीरबन्धकादनुमंथेया । 'सव्व'
इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तपञ्चपट्टिप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शना सकललोकप्रमाणा वर्तते, सूक्ष्मैकेन्द्रिया-
णामपीह प्रवेशात् तेषाञ्च सर्वलोकव्यापित्वे सति प्रोक्तप्रकृतीनामबन्धस्यापि सम्भवात्, ताश्चेमाः शेष-
प्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाऽङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसह-
ननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रयसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वय-
रूपा पञ्चपट्टिप्रधुवबन्धिप्रकृतय इति ॥११८९॥

अथ विभङ्गज्ञानमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह

मिच्छत्तणपुमतिरिडुगएगिदियहुं डयावराण तहा ।

डुहगाणादेयाण विवभगे बार भागाऽत्थि ॥११९०॥

भागोगारलस्स अजसस्स तेर सुहमस्स ऊणजगं ।

णीअस्स अडियरेत्ति चउपण्णासाअ सव्वजगं ॥११९१॥

(प्रे०) 'मिच्छत्त' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायामा मिथ्यात्वमोहनीयनपुंसकवेदतिर्यग्द्वि-
कैकेन्द्रियजातिहुण्डकसंस्थानस्थावरनामदुर्भगानादेयरूपाणां नवानां प्रकृतीनामबन्धका द्वादश भागान्
स्पृष्टवन्तः, मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वस्याबन्धकानां भावना नपुंसकवेदमार्गणावत्कार्या शेषैतत्प्रकृत्य-
बन्धकानामूर्ध्वं द्वादशदेवलोकं यावद् गमनागमनेनाधस्तु सप्तमनरकातिर्यग्लोकं यावत्तिर्यक्पञ्चेन्द्रि-
येषु जायमानेन स्पृष्टत्वात् । औदारिकशरीराबन्धकैरेकादशभागाः स्पृष्टाः । अयशःकीर्तिनाम्नोऽबन्ध-
कास्त्रयोदशभागान् स्पृशन्ति स्म । एतन्मार्गणास्थानामेतत्प्रकृत्यबन्धकानामीपत्प्राग्भारपृथिव्यां
वातरैकेन्द्रियत्वेन सप्तमनरकातिर्यग्लोके तिर्यक्पञ्चेन्द्रियत्वेन समुत्पित्सुनां मरणसमुद्धातेन
स्पर्शनात्, भवति हि द्वयमपि क्षेत्रं समुदितं त्रयोदशरज्जुप्रमाणम् । 'सुहमस्स' इत्यादि, सूक्ष्म-
नागोऽबन्धका देशोलोकं स्पृष्टवन्तः, तेषां वादरवायुकायेषूत्पादात् । 'णीअस्स' इत्यादि,
नीचैर्गोत्रस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टा भवन्ति, मार्गणायामस्यां नीचैर्गोत्रप्रकृत्यबन्धकानां देवानां
गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सव्वजग' मित्यादि, शेषचतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामबन्ध-
कैस्सर्वो लोकः स्पृष्टः, सूक्ष्मतयोत्पित्सुभिर्मरणसमुद्धातेन स्पृष्टत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवनरकमनुष्यगतित्रयद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गो-
पाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चकदेवनरकमनुष्यानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयत्रयसदशकाऽपर्याप्त-
साधारणाऽस्थिराऽशुभदुःस्वरातपोद्योतपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुःपञ्चाशत् ॥११९०-११॥

अथ देशविरतमार्गगायामसंयममार्गगायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामवन्धकानां स्पर्शनामाह

देसम्भि पच भागा सायाइछजुगलतित्यणामाण ।

अजयम्भि अट्ट भागा थोणद्धितिगाणचउगाण ॥११९२॥

मिच्छस्स अत्थि छुहिओ भागा वारस उरालियतणुस्स ।

एगारस परिपुट्टं सेसछसट्ठीअ सव्वजगं ॥११९३॥

(प्रे०) 'देसम्भि' इत्यादि, देशविगतिभंयममार्गगायां सातवेदनीयाऽमातवेदनीयहास्यरति-
शोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तितीर्थकृत्नामरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामवन्धकाः
पञ्चभागान् परिस्पृष्टवन्तः, मार्गगायामस्यां मुख्यवृत्त्या प्रकृतीनामासामवन्धकानां तिरश्चामाह-
स्सारकल्पमुत्पद्यमानत्वात् । अत्रैतद्व्यतिरिक्तप्रकृतीनामवन्धका एव न विद्यन्ते, अतस्तत्स्पर्शनाया
अप्यसम्भवो विज्ञेयः ।

'अजयग्भि' इत्यादि, असंयममार्गगायां स्त्यानद्धित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्कलक्षणस्य प्रकृति-
सप्तकेस्याऽवन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, एतत्प्रकृत्यवन्धकानां सम्यग्दृशां देवानां गमनागमनक्षेत्र-
स्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकैर्द्वादशभागाः स्पृश्य-
न्ते स्म । 'उरालियतणुस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोऽवन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति
स्म । उभयत्र भावना प्रागनुसारेण विधेया । 'परिपुट्टं' इत्यादि, अभिहितशेषवत्पट्टिप्रकृत्य-
वन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणाऽस्ति । शेषप्रकृतयः पुनरज्ञानमार्गणोक्ता एव जिननाममहिता
ज्ञेयाः ॥११९२ ९३॥

अथाऽवक्षुर्दर्शनाहारकमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां दर्शयन्नाह

अणयणआहारेसुं छुहिओ धुववंधिपंचतीसाए ।

लोगासखियभागो वारह भागाऽत्थि मिच्छस्स ॥११९४॥

थोणद्धितिगाणाणं अट्ट भागा पच विअकसायाणं ।

उरलस्सेगार भवे सेसाणं पुट्टमखिलजगं ॥११९५॥

(प्रे०) 'अणयण' इत्यादि, अवक्षुर्दर्शनानाहारकमार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धित्रिका-
ऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कवर्जानां पञ्चत्रिंशच्छेषध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकैर्लोक-
स्याऽसंख्याततमो भागः स्पृष्टः, यटना पुनरौदारिकमार्गगायां दर्शितप्रकारेण विधेया । 'वारह'
इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, प्राग्बद्ध भावनेह विज्ञातव्या ।
'थोणद्धि' इत्यादि, स्त्यानद्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकेस्याऽवन्धका अष्टौ
भागान् स्पृशन्ति स्म, एतत्प्रकृत्यवन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'पञ्च'
इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽवन्धकाः पञ्च भागान् स्पृशन्ति स्म, यत एतत्प्रकृतिचतुष्क-
स्याऽवन्धका मुख्यवृत्त्या देशविरतितिर्यञ्च आमहस्सारकल्पमुत्पद्यन्ते । 'उरलस्स' इत्यादि, औदा-

रिकशरीरना। गोऽबन्धकैरेकादश भागाः स्पृष्टाः, पूर्ववद् भावनाभाव्या । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्त-
शेषाष्टपट्टिप्रकृतीनामबन्धकैरखिलं जगत्स्पृष्टम्, शेषप्रकृत्यबन्धकानां सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां स्वस्थान-
क्षेत्रस्यापि सर्वलोकप्रमाणत्वात् ॥११९४-५॥ अथ त्रिकुलेरयामार्गणासु स्पर्शनामाह

मिच्छस्स कुलेसासु वारस एगार णव नभा भागा ।

उरलस्स छ चउरो वो छुहिआ सेसाण अजयव्व ॥११९६॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, कृष्णनीलकापोतरूपासु त्रिकुलेरयामार्गणासु मिथ्यात्वस्या-
बन्धकैः क्रमेण द्वादश भागा एकादश भागा नव भागाः स्पृष्टाः । तिसृष्वपि मार्गणाधूर्ध्वलोकसत्क-
सप्तभागस्पर्शना सास्वादनां तिरश्चो देवान् वाऽऽश्रित्य ज्ञेया, अधोलोकमत्कपञ्चचतुर्दिभागप्रमाणा-
स्पर्शना च क्रमेण षष्ठपञ्चमतृतीयपृथ्वीनारकानाश्रित्य ज्ञेया । एवं कृष्णलेश्यायां द्वादशभागप्रमाणा,
नीलायां एकादशभागप्रमाणा, कापोतलेश्यायां तु नवभागप्रमाणा स्पर्शना मिथ्यात्वस्याबन्धकानां
समागता ।

'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरना। गोऽबन्धकाः कृष्णलेश्यामार्गणायां षड्भागान् नील-
लेश्यामार्गणायां चतुर्भागान् कापोतलेश्यामार्गणायां च भागद्वयं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा-अस्याबन्धकाः
कृष्णलेश्यावन्तः सप्तमनरके नीललेश्यावन्तः पञ्चमनरके कापोतलेश्यावन्तश्च तृतीयनरके प्रकृष्टत-
उत्पद्यन्ते; उत्पित्सवश्च ते सप्तमनरकं यावत् षड्ज्जुप्रमाणं पञ्चमनरकं यावच्चतूरज्जुप्रमाणं तृतीय-
नरकं यावच्च द्विरज्जुप्रमाण क्षेत्रं मरणसमुद्घातावसरे निक्षिप्तात्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति ।
'सेसाणं' इत्यादि, आसु मार्गणासु यथायोगं शेषस्वप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽसंयतमार्गणावद्
विज्ञेया । सा पुनरेवम्-स्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैरष्टौ भागाः
शेषप्रकृत्यबन्धकैश्च सर्वजगत् स्पृष्टम् ॥११९६॥

साम्प्रतमास्वेवाशुभलेश्यामार्गणासु कतिपयप्रकृतप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाविषयं परमतं प्रद-
र्शयितुमाह

केइ उण विति छुहिओ थोणद्वितिगाणचउगपयडोणं ।

लोगासखियभागो मिच्छस्स कमाऽत्थि पणचउडुभागा ॥११९७॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'केइ' इत्यादि, कृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु स्त्यान-
द्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धचतुष्करूपस्य प्रकृतिसप्तकस्याऽबन्धकैर्लोकस्याऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः,
भावना पुनरिह नरकमार्गणावत् कार्या, परमते त्र्यशुभलेश्यामार्गणायां पर्याप्तदेवानामभावात्, तानां
श्रित्याष्टज्जुप्रमाणा स्पर्शना न प्राप्यत इति कृत्वा लोकासंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना प्रोक्ता ।

'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धकैः कृष्णलेश्यामार्गणायां पञ्चभागाः, नील-
लेश्यामार्गणायां चत्वारो भागाः, कापोतलेश्यामार्गणायां च द्वौ भागौ स्पृष्टौ, भावना त्वेवम्-कृष्ण-

लेश्यादिमार्गणासु क्रमेण नरकौधपञ्चमनरकमृतीयनरकमार्गणावत्कार्या । अत्रापि पर्याप्तदेवानाम्
भावात् तानाश्रित्याधिकस्पर्शनाया अलामोऽस्मिन् मने विज्ञेयः । ननु अस्मिन्मतेऽपि मास्मादन-
तिरश्व आश्रित्योर्ध्वलोकमत्कसप्तभागानामपि लामात् कृष्णादिलेरयामार्गणासु द्वादशादिभागप्रमाणा-
स्पर्शना कथं नोक्ता इति चेत्, सत्यम्, परमुपदेशान्तरसंग्रहयैव तैरेवमुक्तम्, यत्मास्वादनानां
तिर्यग्मनुष्याणामशुभलेख्याया असङ्गावः, अतस्तानाश्रित्योर्ध्वलोकमत्कसप्तभागप्रमाणा स्पर्शना
नोक्ताः ॥११९७॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायामधुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां दिदर्शयिषुगह

तद्व्यकसायाण भवे छुहो तेऊअ जगअसखंसो ।

दुइअकसायुरलाणं दिवडुभागाऽट्ठिय परिपुट्ठा ॥११९८॥

जाणऽट्ठिय सोलसण्हं सुरभिा भागाऽट्ठ सिमडभागाऽट्ठिय ।

परिपुट्ठा णव भागा सेसाण सत्तचत्ताए ॥११९९॥

(प्रे०) 'तइअ' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायामधुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां दिदर्शयिषुगह
कपायस्याऽवन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, तद्यथा मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिचतुष्कस्या-
ऽवन्धकाः संयता वर्तन्ते, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रं च लोकाऽसंख्याततमभाग-
प्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्पेव प्राप्यते । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्कौदारिकशरीरनामप्रकृतीनामवन्धकैः सार्धैकभागः स्पृष्टः, भावना पुनरिहैवम्—अप्रत्याख्या-
नावरणचतुष्कस्याऽवन्धका देशविरतप्रमुखा वर्तन्ते, औदारिकशरीरनामगन्धाऽवन्धका वैक्रिय-
शरीरवन्धका वर्तन्ते, ते चेतो मृत्वा उत्कृष्टतोऽपि सौघर्मेक्षानकल्पयोरेव समुत्पद्यन्ते, तदुभयस्य
क्षेत्रमर्धाधिकैरज्जुप्रमाणमस्ति, ते च तत्र समुत्पत्तिस्तवस्तादृशं क्षेत्रं मरणसमुद्धातममये कृता
त्मप्रदेशदण्डैः स्पृशन्ति । 'जाण' इत्यादि, यासां षोडशप्रकृतीनामवन्धकानां स्पर्शना सुगौध-
मार्गणायामष्टभागप्रमाणा दर्शिता, सैव स्पर्शनाऽत्रापि तासां षोडशप्रकृतीनामवन्धकानामधिगन्त-
व्या । ताश्चेमाः षोडशप्रकृतयः—स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कनपुंसकवेदतिर्यग्द्विकहुण्डक-
संस्थानैकेन्द्रियजातिस्थावरदुर्मगानादेयनीचैर्गोत्राणीति । 'णव' इत्यादि, अमिहितेतरसप्तचत्वा-
रिंशत्प्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शना नवभागप्रमाणा ज्ञातव्या, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनी-
यवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्त्रीपुरुषवेदद्वयदेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रि-
यद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कसमचतुरस्रादिसंस्थानपञ्चकदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयस्वगतिद्वयत्रयस्यिरषट्का-
ऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिदुःस्वरातपोद्योतजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तचत्वारिंशदिति । भावना पुनरि-
हैव कार्या मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यवन्धकानामष्टभागप्रमाणा स्पर्शना देवानां गमनागमनेन
प्राप्यते, नवमभागा पुनस्तैरेव सिद्धशिलायां चादरपृष्ठनीत्वेन समुत्पत्तिस्तुभिः समुद्धातावसरे
स्पृश्यते ॥११९८९॥

अथ पञ्चलेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकैः स्पृष्टक्षेत्रं प्रतिपाद्यते

तद्विकसायाण मवे छुहिओ पउमाअ जगअसंखसो ।

पण दुइअकसायउरलदुगाण भागाऽदु सेसाण ॥१२००॥

(प्रे०) 'तद्विअ' इत्यादि, पञ्चलेश्यामार्गणायां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकैर्जगतोऽसंख्येयतमो भागः स्पृष्टः, एतत्प्रकृतिचतुष्काऽबन्धकानां संयतानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारमविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च जगतोऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । 'पण' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गनामरूपस्य प्रकृतिषट्कस्याऽबन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यां वर्तमानानामेतत्प्रकृत्यबन्धकानां मुख्यवृत्त्या तिरश्चामासहस्रारकल्पमुत्पद्यमानत्वात् । 'अद्व' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागप्रमाणाऽवसातव्या, मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात्, इमाश्च ताः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयवैक्रियद्विकाहारकद्विके-महननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयखगतिद्वयस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कोद्योतजिननाम-गोत्रद्वयरूपाः मसपञ्चाशदिति ॥१२००॥

साम्प्रतं शुक्ललेश्यामार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनां कथयितुकाम आह-

सुक्काए परिपुट्ठा भागाऽत्थि छ सायवेअणीयस्ता ।

छिविओऽत्थि सव्वलोगो सप्पाउग्गाण सेसाण ॥१२०१॥

(प्रे०) 'सुक्काए' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सातवेदनीयस्याऽबन्धकैः षड्भागाः स्पृष्टाः तदेवम्-मार्गणायामस्यां वर्तमाना आनतादिकल्पशानिनो देवास्तिर्यग्लोकपर्यन्तमेव गमनागमनं कुर्वन्ति, न ततः परम्, तस्मात्तेषां गमनागमनक्षेत्रं षड्रज्जुप्रमाणमेव प्राप्यते, ते च यदाऽसातवेदनीयं बध्नन्ति, तदा ते सातवेदनीयस्याऽबन्धका भवन्ति, अतस्तेऽसातवेदनीयबन्धकाले गमनागमनविधानेन षड्रज्जुक्षेत्रं स्पृशन्ति । 'सव्व' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृत्यबन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, यतो हि मार्गणायामस्यां शेषप्रकृत्यबन्धकाः केवलज्ञानिनः समुद्घाताऽवमरे विश्वविश्वमात्मप्रदेशैर्व्याप्नुवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः, अमातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकेवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकाऽस्थिरषट्कपराधातो-च्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःपञ्चाशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्येकोत्तरशतप्रकृतयश्चेति ॥१२०१॥

इदानीमव्यमिथ्यात्वमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां स्पर्शनामाह-

अभवियमिच्छत्तेसुं भागेगार छुहिओऽत्थि उरलस्स ।

छिविओऽत्थि सव्वलोगो पणसद्धीअ अवसेसाणं ॥१२०२॥

(प्रे०) 'अभविच' इत्यादि, अभव्यमिथ्यात्वलक्षणमार्गणाद्वय औदारिकशरीरानाम्नोऽवन्धका एकादशभागान् स्पृष्टवन्तः, भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मार्गणयोरनयोगौदारिकशरीरानाम्नोऽवन्धका वैक्रिय-शरीरानाम्नो वन्धका भवन्ति मुख्यवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया जीवास्तादृशा वर्तन्ते, ते चाऽधः सप्तमं नरक-यावद्धूर्ध्वं चाऽष्टमकल्पं यावत्प्रमुत्पद्यन्ते, एतदुभयमपि क्षेत्रमेकादशरज्जुप्रमाणमस्ति, समुत्पित्सवश्च ते तत्र भरणमुद्धातावमरे कृतात्मप्रदेशदण्डैस्तादृशमेकादशरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं स्पृशन्ति । 'छिविओ' इत्यादि, एतदतिरिक्तानां प्रकृतीनामवन्धकैः सर्वलोकः परिस्पृष्टः, सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामवन्धकतया प्राप्य-माणत्वात् तेषां स्वस्थानक्षेत्रमपि तात्प्रमाणत्वाच्च, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादि युगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतु-ष्कखगतिद्वयत्रयदशकस्थारदशकानपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चपट्टिरिति ॥१२०२॥

साम्प्रतं मभ्यक्तवौघक्षायिकक्षयोपशममभ्यक्तत्वमार्गणास्वायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शना प्रतिपाद्यते

सम्मल्लइएसु भागा अड सायस्स छुहिआऽत्थि सच्चजगं ।

सेसाण वेअणे सि हवेज्ज ओहिद्व जाणऽत्थि ॥१२०३॥

(प्रे०) 'सम्म' इत्यादि, मभ्यक्तवौघक्षायिकमभ्यक्तत्वमार्गणयोः सातवेदनीयस्याऽवन्धकै-रष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायैऽस्मिन्नेतत्प्रकृत्यवन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जु-प्रमाणत्वात् । 'सच्च' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनामवन्धकानां स्पर्शना सकललोकप्रमाणा विज्ञेया, यतः शेषप्रकृत्यवन्धकाः केवलज्ञानिनो निखिल जगत् केवलिसमुद्धाता-वस्थायां व्याप्नुवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्काऽप्रत्याख्यानावरणा-दिद्वादशकपायभयजगुप्मातैजसकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकोनचत्वारिंशद्ब्रुववन्धिप्रकृतयः, असातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चे-न्द्रियजातयोदारिकद्विक्रैक्रियद्विकाहारकद्विक्रमचतुरस्रसंस्थानवज्जर्पमनराचसंहननदेवमनुष्यानुपूर्वी-द्वयसुखगतित्रयदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तत्रिंशदिति पट्मसप्ततिरिति । 'वेअणे' इत्यादि, क्षयोपशममभ्यक्तत्वमार्गणायां यासां प्रकृतीनामवन्धका भवन्ति, तेषां स्पर्शनाऽवधिदर्शनमार्गणावद् विज्ञातव्या । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कमनुष्यद्विकौदा-रिकद्विकप्रथमसहननलक्षणस्य प्रकृतिनयकस्थानवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, सातवेदनीयाऽसातवेद-नीयहास्यादियुगलद्वयस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभायशःकीर्त्यशःकीर्तिसुरद्विक्रैक्रियद्विकाहारकद्विकजिन-नामरूपाणामेकोनत्रिंशतिप्रकृतीनामवन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽवन्धका लोकाऽसंख्येयतमभागं स्पृशन्ति स्म, भावना पुनरिह सर्वत्राऽवधिदर्शनमार्गणावत्कार्या ॥१२०३॥

सम्प्रति मिश्रसम्यक्तत्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनामुपदिदर्शयिषुराह—

णरुरलदुगवहराणं मीसे फुसिओऽत्थि जगअसंखंसो ।

सायाइछजुगलाण सुरविउवदुगाण अड भागा ॥१२०४॥

(प्रे०) 'णरुरल' इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसहनन-
लक्षणस्य प्रकृतिपञ्चकस्याऽवन्धकैर्लोकाऽसंख्येतमभागः स्पष्टः, तद्यथा मार्गणायामस्यां तिर्यग्मनुष्या
एवमनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चकस्याऽवन्धका वर्तन्ते, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येतमभाग-
प्रमाणमस्ति, अतः स्पर्शनाऽपि तेषां तावत्प्रमाणैव ज्ञातव्या । मार्गणायामस्यां मरणाभावेन मरण-
ममुद्धातविधानाभावात्समुद्धातापेक्षया स्पर्शना नैव प्राप्यते । 'सायाइ' इत्यादि, सातवेदनीया-
ऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिरुपाणां द्वादशप्रकृतीनां सुभ-
द्विकवैक्रियद्विकाऽऽहार-
कद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य चाऽवन्धकैरष्टौ भागाः स्पष्टाः, प्रकृतीनामासामवन्धकानां
देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, एतत्प्रकृतिविभिन्नानां शेषप्रकृ-
तीनामवन्धकानां स्पर्शना जगतोऽसंख्येतमभागप्रमाणाऽस्ति, भावना पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसहननरूपाणां नवप्रकृतीनामवन्धकाः तिर्यञ्चोऽपि वर्तन्ते, तथापि
मार्गणायामस्यां वर्तमानानां तिरश्चां मरणाभावेन स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभात् तासामवन्धकानां स्पर्शना
लोकाऽसंख्येतमभागप्रमाणाऽवसेया, तथा शेषप्रकृतीनामवन्धकत्वेन छद्मस्थसंयता एव वर्तन्ते, तेषां चोभ-
यक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणाऽवसातव्या । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धि त्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जा एकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः, पुरु-
षवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकप्रथमसहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वोत्पन्नगतिव्रस-
चतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनविंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२०५॥

इदानीमुपशममम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां कथयितुकाम आह-

सायाइछजुगलाण सुरविउवाहारजुगलतित्थाणं ।

छुहिउवसमेऽहु भागा सेसाण जगअसंखंसो ॥१२०५॥

(प्रे०) 'सायाइ' इत्यादि, उपशममम्यक्त्वाख्यमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशो-
काऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां सुभ-
द्विकवैक्रियद्विकाऽऽहार-
कद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्य चाऽवन्धकैरष्टौ भागाः स्पष्टाः, प्रकृतीनामासामवन्धकानां
देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, एतत्प्रकृतिविभिन्नानां शेषप्रकृ-
तीनामवन्धकानां स्पर्शना जगतोऽसंख्येतमभागप्रमाणाऽस्ति, भावना पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरण-
चतुष्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसहननरूपाणां नवप्रकृतीनामवन्धकाः तिर्यञ्चोऽपि वर्तन्ते, तथापि
मार्गणायामस्यां वर्तमानानां तिरश्चां मरणाभावेन स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभात् तासामवन्धकानां स्पर्शना
लोकाऽसंख्येतमभागप्रमाणाऽवसेया, तथा शेषप्रकृतीनामवन्धकत्वेन छद्मस्थसंयता एव वर्तन्ते, तेषां चोभ-
यक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येतमभागप्रमाणत्वेन स्पर्शनाऽपि तावत्प्रमाणाऽवसातव्या । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-
मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धि त्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जा एकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः, पुरु-
षवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकप्रथमसहननसमचतुरस्रसंस्थानमनुष्यानुपूर्वोत्पन्नगतिव्रस-
चतुष्कसुभगसुस्वरादेयपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा एकोनविंशतिरध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२०५॥

अधुना सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां प्रतिपादयितुमाह-

सासाणे अडभागा तिरिडुगणीआणुरालियदुगस्स ।

पणभागा परिपुट्टा वारस चालीससेसाण ॥१२०६॥

(प्रे०) 'आसाणे' इत्यादि, मास्वादनमार्गणायां तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्याऽवन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः, मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यवन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'उरालिय' इत्यादि, औदारिकद्विकस्याऽवन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, यतो मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिद्वयावन्धकानां देवप्रायोग्यप्रकृतिवन्धकानां मुख्यतया तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां महत्सारकल्पं यावदुत्पत्तिसंभवात्, तच्च क्षेत्रं पञ्चरज्जुप्रमाणमस्ति । 'चारस' इत्यादि, उक्तशेषचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवन्धकैर्द्वादश भागाः परिस्पृष्टाः, तदेवम्—एतस्यां मार्गणायां शेषप्रकृतीनामवन्धका जीवाः पष्ठनरकातिर्यग्लोकं यावदुत्पद्यन्ते, तिर्यग्लोकत ऊर्ध्वं पुनर्वादर्केन्द्रियत्वेनेपत्प्राग्मारपृथिव्यामुत्पद्यन्ते, उभयमपि ममुदित क्षेत्रं द्वादशरज्जुप्रमाणमस्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विक हास्यादियुगलद्वयं ह्रीपुरुषवेदद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयं वैक्रियद्विकं प्रथमादिसंहननपञ्चकं प्रथमादिसंस्थानपञ्चकं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्वयं स्थिरपट्कमस्थिरपट्कमुद्योतमुच्चैर्गोत्रं चेति चत्वारिंशच्छेषप्रकृतयः ॥१२०६॥

साम्प्रतमसंज्ञिमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनां संचिन्तयन्नाह

अमणे असखभागो जगत्स पुटो उरालियस्त मवे ।

फुसिओऽस्थि सव्वलोगो सेसाण पचसट्ठीए ॥१२०७॥

(प्रे०) 'अमणे' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायामौदारिकशरीरनामोऽवन्धका जगतोऽसंख्येयतमभागं स्पृष्टवन्तः, तद्यथा—मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृत्यवन्धका वैक्रियशरीरनाम्नो वन्धका वर्तन्ते, ते पुनरिह तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया विज्ञातव्याः, ते यदि नरके जायन्ते तर्हि प्रथमनरक एव, यदि च देवल्लोके जायन्ते, तर्हि भवनपतिव्यन्तरयोरेव, उभयमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमेव विधत्ते तादृशं क्षेत्रं ते तत्रोत्पित्सवो मरणममुद्धातावसरे कृतात्मप्रदेशदण्डैः परिस्पृशन्ति । 'फुसिओ' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यतिरिक्तानां पञ्चपट्टिप्रकृतीनामवन्धकैः सर्वो लोकः स्पृष्टः, सूक्ष्माणामपि तदवन्धकत्वात् । इमाश्च ताः शेषप्रकृतयः—वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कखगतिद्वयत्रसदशकस्थानरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः पञ्चपट्टिरिति । इदन्त्ववधेयम्—अत्र सूक्ष्मसम्प्रापसंयममार्गणायामवन्धकानां स्पर्शना नोक्ता, कासाञ्चिदपि प्रकृतीनामवन्धकानामभावादिति ॥१२०७॥ तदेवमायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां स्पर्शनाऽभिहितम् ।

साम्प्रतमायुष्कर्मवन्धकानां स्पर्शनां मार्गणासु प्रदर्शयन्नाह

तिरिये एगिदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।

कायोराळकुगेसुं णपु सगे चउकसायेसुं ॥१२०८॥

अण्णाणकुवे अजए अचवखुदसणतिअसुहलेसासुं ।

अवियेयरभिच्छेसुं असण्णिआहारगेसुं च ॥१२०९॥

सप्पाज्जाऊणं फुसणा ओधव्व बधगाण भवे ।

अड भागा परिपुट्टा देवसहस्सारअतविज्जेसु ॥१२१०॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघैकेन्द्रियांघपृथ्वीकायौघाऽप्यायौघतेजःकायौघत्रायुकायौघ-
वनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपास्वप्नसु मार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तमेदेन तिसृषु सूक्ष्मै-
केन्द्रियमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्माप्यायमार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मतेजःकाय-
मार्गणासु तिसृषु सूक्ष्मत्रायुकायमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायमार्गणासु काययोगौ-
घोदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगनपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभ्यमाऽ-
चक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याऽभव्यामिथ्यात्वाऽसंज्ञाहारकरूपासु त्रिंशतिमार्गणासु च स्वप्ना-
योग्यायुष्कवन्धकानां स्पर्शनौघवद् वेदयितव्या । तद्यथा—तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोग-
नपुंसकवेदक्रोधमानमायालोभमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याभव्य-
मिथ्यात्वाभ्यमाहारकरूपासु त्रिंशतिमार्गणासु चतुर्णामप्यायुषां बन्धका वर्तन्ते, तेषु ये नरकदेवा-
युषोर्वन्धका वर्तन्ते तेषां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा वर्तते, तिर्यग्मनुष्यायुषोर्वन्धका ये
वर्तन्ते, तेषां पुनः स्पर्शना मकल्लोकप्रमाणा वर्तते, तेजःकायौघत्रायुकायिकौघमार्गणयोः तिसृषु
सूक्ष्मतेजःकायमार्गणासु तिसृषु च सूक्ष्मत्रायुकायिकमार्गणासु तिर्यगायुषोर्ये बन्धकाः शेषप्रकृतमार्ग-
णासु च तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्वन्धका वर्तन्ते, तेषां स्पर्शना सकल्लोकप्रमाणाऽस्ति । भावना पुन-
रिहौघतोऽवसेया । 'अड' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कर्मौधर्मेशानमनत्कुमारमाहेन्द्र-
ब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारवैक्रियकाययोगरूपासु त्रयोदशमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोर्वन्धकै-
र्यथौ भागाः स्पृष्टाः, तेषां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । इदमत्र हृदयम्—आयुर्वन्धकानां
स्पर्शनाविचारे देववर्जगतित्रयस्य स्वस्थानक्षेत्रमेव मृग्यम्, आयुर्वन्धकाले मरणाभावेन मरणममुद्घा-
तक्षेत्रस्याप्राप्यमाणत्वात् देवमार्गणासु तथा यासु मार्गणासु देवैरधिकस्पर्शना प्राप्यते, तत्र देवानां
गमनागमनक्षेत्रस्य प्राधान्यमवगन्तव्यमिति ॥१२०८-१०॥

साम्प्रतमानतादिमार्गणाचतुष्के शुक्ललेश्यायां चायुर्वन्धकानां स्पर्शनामाह

फुसिआ णराजगस्स छ भागा चउआणयाइसुक्कासु ।

सुक्काअ असंखंसो जगस्स छुहिओ सुराजस्स ॥१२११॥

(प्रे०) 'फुसिआ' इत्यादि, आनतप्राणतारणाच्युतशुक्ललेश्यालक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु
मनुष्यायुष्कस्य बन्धकैः पड् भागाः स्पृष्टाः, यस्मान्मार्गणास्वासु वर्तमानानां देवानां गमनागमन-
क्षेत्रस्य पड्-रज्जुप्रमाणत्वात् । 'सुक्काअ' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां देवायुषो बन्धकैर्जगतोऽ-
संख्येयतमभागः स्पृष्टः, यस्मादत्र देवायुष्कस्य बन्धका मनुष्या एव वर्तन्ते, तेषां च स्वस्थानक्षेत्रं
लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति ॥१२११॥

अथ द्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रकृतनाह--

दुर्पणिदियतसपणमणवयइत्थिपुरिसविभगचक्खुसु ।

सासायणसण्णीसु दोण्होधव्व अमरव्व दोण्ह भवे ॥१०१२॥ (गीति)

(प्रे०) 'दुपणिदि' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रयौघपर्याप्तमनःसामान्य-
सत्यमनो-ऽसत्यमनः सत्यात्यमनो-ऽसत्याऽमृतामनो-वचनसामान्यमत्यवचनाऽसत्यवचनमत्या-
सत्यवचनाऽमत्यामृतावचनस्त्रीवेदपुरुषवेदविभज्ज्ञानचक्षुर्दर्शनमास्वादनमभ्यक्त्वसंज्ञिरूपासु त्रिंशति
मार्गणासु नरकदेवायुषोर्वन्धकानां स्पर्शनौघवत्, तिर्यग्मनुष्यायुष्कयोश्च बन्धकानां स्पर्शना
देवौघमार्गणावज्ज्ञातव्या, तदेवम्-नरकदेवायुष्कबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयतमभागप्रमाणा
वर्तते, यतो नरकदेवायुषी तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्याश्च बध्नन्ति, तेषां च क्षेत्र स्वस्थानापेक्षया लोका-
ऽसंख्येयतमभागप्रमाणमस्ति, न तु मरणममुद्धातापेक्षया, आयुर्वन्धानन्तरमेव मरणममुद्धातस्य
भावात् । तिर्यग्मनुष्यायुष्कबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागप्रमाणा विद्यते, तद्यथा-एतदायुष्कद्वयस्य
बन्धका देवनारका विद्यन्ते, इहोक्तप्रमाणा स्पर्शना देवानपेक्ष्यैव समुपलभ्यते, तेषां गमनागमन-
क्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् नारकानपेक्ष्य तु नैवंविधा स्पर्शना प्राप्यते, देववत्तेषां गमनागमनस्या-
ऽसंभवात् ॥१२१२॥

अथ त्रिज्ञानादिमार्गणास्वायुर्वन्धकानां स्पर्शनामाह

भागाऽद्वु तिणाणावहिसम्मल्लइअवेअगेसु परिफुसिओ ।

मणुसाउस्सियरस्स य असल्लभागो जगस्स भवे ॥१२१३॥

(प्रे०) 'भागा' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकमभ्यक्त्व-
अयोपशमसम्यक्त्वरूपासु मत्सु मार्गणासु मनुष्यायुष्कस्य बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म, मार्ग-
णाम्नासु मनुष्यायुष्कबन्धकानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वात् । 'इयरस्स' इत्यादि,
मार्गणास्वासु देवायुष्कस्य बन्धकैः संख्येयतमभागो जगतः सस्पृष्टः, भावनौघवत्कार्या ॥१२१३॥

अथ तेजोलेश्यापञ्चलेर्यामार्गणयोः प्रकृत कथयति

तेउपउमासु भागा अद्वु तिरिणराउगाण ओधव्व ।

देवाउगस्स अण्णहि सप्पाउग्गाउगाण सेत्तव्व ॥१२१४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तेउ' इत्यादि, तेजोलेश्यापञ्चलेर्यामार्गणयोस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्वन्धकैरष्टौ भागाः
स्पृष्टाः, एतदायुष्कद्वयबन्धकानामेतन्मार्गणाम्थानां देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमितत्वात् ।
'ओधव्व' इत्यादि, देवायुष्कस्य बन्धकानां स्पर्शनौघवद्देवा । सा च लोकासंख्यभागप्रमाणा वर्तते,
भावना पुनरिहौघवत्कार्या । 'अण्णहि' इत्यादि, इहामिहितशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां
बन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रवदस्ति । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अष्टौ नरकमार्गणाः, चतस्रस्तिर्यक्पञ्चे-
न्द्रियमार्गणाः, चतस्रो मनुष्यमार्गणाः, नवग्रैवेयकपञ्चानुत्तररूपाश्चतुर्दशदेवमार्गणाः, औघपर्याप्ताऽपर्या-

सभेदेन तिस्रो वादरैकेन्द्रियमार्गणाः, त्रिकलमार्गणानवकम्, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा चेति त्रयोदशेन्द्रियमार्गणाः । ओधपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रो वादरपृथ्वीकायमार्गणाः, तिस्रो वादराष्कायमार्गणाः, तिस्रो वादरतेजःकायमार्गणाः, तिस्रो वादरवायुकायमार्गणाः, तिस्रः प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, तिस्रो वादरमाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा चेत्येकोनविंशतिः कायमार्गणाः, आहारकाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वयम्, मनःपर्यवज्ञानमार्गणा, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिदेशविरतिरूपाः पञ्च संयममार्गणा चेति सप्ततिरिति । तद्यथा-वादरैकेन्द्रियाणां त्रिषु भेदेषु तिर्यगायुर्वन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकमात्रा विज्ञेया, मनुष्यायुर्वन्धकानां च लोकाऽसंख्येयभागमात्रा । वादरवायुकायिकानां त्रिषु भेदेषु तिर्यगायुष्कवनन्धकानां देशोनलोकप्रमाणा तथा शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुर्वन्धकानां लोकासंख्येयभागप्रमाणाऽवसातव्या । वैक्रियांमिश्रकाययोगकर्मणकाययोगाऽपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानसूक्ष्मसम्प्रापयथाख्यातसंयमकेवलदर्शनोपशममस्यक्त्वमिश्रमस्यक्त्वानाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्ककर्मणां बन्धाऽसंभवेन तद्वन्धकानां स्पर्शनाया विचारो न कृत इति ॥१२१४॥

साम्प्रतं मार्गणास्वायुषामबन्धकानां स्पर्शनामाह

सञ्चासु बधगेहि पुट्ट सायरा जत्तिअ खेत ।

छुहिअ अबन्धगेहि आळणं तत्तिअं खेतं ॥१२१५॥

(प्रे०) 'सञ्चासु' इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु सातवेदनीयस्य बन्धकैर्यावत्प्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टं तावत्प्रमाणं क्षेत्रं स्वप्रायोग्यायुष्काबन्धकैः स्पृष्टम् । तच्च स्वधियैव प्रागुक्तवदनुसन्धेयम् । ननु सातवेदनीयस्य बन्धकानां यावत्क्षेत्रं तदेवायुरबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमिति कथने को हेतुरिति चेदुच्यते-आयुरबन्धका मरणसमुद्धातगताः स्वस्थानगताः केवलिसमुद्धातगता गमनागमनेन व्याप्तक्षेत्रगताश्च प्राप्यन्ते, तथैव सातवेदनीयस्याऽपि बन्धकाः प्राप्यन्ते इति कृत्वा ॥१२१५॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे
एकादशं स्पर्शनाद्वार समाप्तम् ॥



॥ अथ द्वादशमनेकजीवाश्रितं कालद्वारम् ॥

गतं स्पर्शनाद्वारं माम्प्रतमनेकजीवानाश्रित्य द्वादशस्य कालद्वारस्याऽवमरः, तत्रौघत आदेशतश्च मार्गणास्तत्प्रकृतिबन्धकाऽवन्धकानां कालं निरूपयन्नादावोघतो जघन्योत्कृष्टभेदाभ्यां तमुपदर्शयति

कालोऽस्थि बंधगाणं जहण्णगो गिरयणरसुराऊण ।

भिन्नमुहुत्त जेढो पल्लस्स भवे असखसो ॥१२१६॥

(प्रे०) 'कालो' इत्यादि, नरकमनुष्यदेवायुष्कत्रयस्य बन्धकानां कालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतश्च पल्योपमस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, भावना पुनरेवम्—अत्राऽयं नियमः—यद् विवक्षितायुष्कत्रयका अपङ्ख्येया अप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमंख्यातो न्यूना भवेयुः नहि तेषां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालपर्यन्तमनवरत प्राप्तिर्भवति, तदनन्तरमेव तेषामन्तरं भवतीति तस्मादत्राऽपि प्रकृतायुष्कत्रयस्य बन्धकानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्यातो न्यूनत्वेन कालोऽभिहितप्रमाण एव । ननु प्रकृतायुष्कत्रयस्य बन्धकानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतो न्यूनत्वं कथमिति चेदाह—यासु गतिषु यावत्संख्याका जीवा वर्तन्ते, तावत्प्रमाणादधिका उत्कृष्टपदेऽपि तद्गतिप्रायोग्यायुष्कत्रयका अपरगतिषु नोपलभ्यन्ते, परमल्पा एव, देवनरकमनुष्यगतिषु जीवानां संख्या नाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा, किन्तु ततोऽल्पैव, प्रतिपादिता च देवनरकमनुष्यजीवानां संख्या प्रज्ञापनावृत्तौ—मनुष्या हि उत्कृष्टपदेऽपि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा लभन्ते । तेभ्यो नैरयिका असङ्ख्येयगुणा, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः सम्बन्धिनि प्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति, तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोक्तस्यैकप्रादेशकिपु श्रेणिषु यावन्तो नभः प्रदेशस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवा असंख्येयगुणा व्यंतराणा ज्योतिष्काणां च प्रत्येक प्रतराऽसङ्ख्येयभागवर्तिश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । तस्मादुक्तायुष्कत्रयबन्धकानां कालो द्वैविध्येनेयत्प्रमाणोऽभिहित इति । ननु प्रागपि भवद्भिः कालद्वारं निरूपितमत्राऽपि तदेव निरूप्यते, तर्हि कः प्रतिविशेषोऽनयोर्मध्य इति चेद्, उच्यते, पूर्वं कालद्वारनिरूपणावसरे विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकस्याऽवन्धकस्य चैकं जीवमाश्रित्य कालोऽभिहितः, इह पुनः सकलजीवान् प्रतीत्य सोऽभिधीयत इति ॥१२१६॥

अथ शेषप्रकृतीनां बन्धकानां सर्वप्रकृतीनामवन्धकानां च तमाह

सेसाणं पयडीणं विण्णो बंधगाण सव्वद्धा ।

हवए अवंधगाण सव्वद्धा सव्वपयडीणं ॥१२१७॥

(प्रे०) 'सेसाणं' इत्यादि, उपर्युक्तायुष्कत्रयवर्जानां शेषाणां सप्तदशाधिकशतमतिज्ञानावरणीयप्रमुखप्रकृतीनां बन्धकानां सर्वाद्धा कालो विज्ञेयः, अनेकेषां जीवानां तद्वन्धविधायित्वेन सर्वदा सद्भावात् । 'हवए' इत्यादि, विंशत्युत्तरशतप्रकृत्यबन्धकानां सर्वाद्धा कालोऽस्ति, सिद्धादिजीवानां सदैव तदवन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् ॥१२१७॥

अधुनायुष्कर्मवर्जशेषोत्तरप्रकृतिवन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालमादेशतो मार्गणासु कथ-
यितुकाम आह

ध्रुववधिउरालाण अपञ्जमणुसम्मि बन्धगाण लहू ।

खुडुगभवोऽत्थि समयो सेसाणं आउवज्जाण ॥१२१८॥

पह्लासखियभागो सव्वाणं गुरु ।

।

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, अर्थात्तमनुष्यमार्गगायां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिक-
शरीरनाम्नश्च वन्धकानां जघन्यकालः क्षुल्लकभवप्रमितोऽस्ति, तदेवम्—एक एवाऽप्यर्थात्तमनुष्योऽथवा-
ऽनेकेऽप्यप्यर्थात्तमनुष्या जघन्यतयाः क्षुल्लकभवप्रमितायुष्का युगपदुत्पद्य स्वजघन्यायुष्कं परिपाल्य मृता
भवन्ति, तदनन्तरं चैतन्मागेणायां न कोऽपि जीरोऽवतिष्ठते, तदेतत्प्रकृतिवन्धकानामेतावान् जघन्य-
कालो लभ्यते ।

'समयो' इत्यादि, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारि-
काङ्गोपाङ्गसहननपट्कमंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकातपोधोतपरा-
घातोच्छ्वागमोवद्विकरूपाणामेकोनषष्टिशेषप्रकृतीनां वन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, घटना
पुनरेवं कर्तव्या—प्रभुतमार्गणायामेकादिसंख्याका परिमितजीवाः स्युः, ते चासां समयमेकं वन्धं कृत्वा
प्रतिपक्षप्रकृतीनां वन्धं करोति, तदा समयप्रमाणकालः सूपपद्यते ।

'पह्ला' इत्यादि, अप्यर्थात्तमनुष्यमागेणायामायुष्ककर्मविरहितानां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां
वन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येतमभागप्रमाणो बोद्धव्यः, यतो मार्गणाया अस्या नाना-
जीवाश्रितोत्कृष्टकायस्थितिरपि पल्योपमाऽसंख्येतमभागप्रमितकालप्रमाणा वर्तते, तदनन्तरमवरय-
मेव मार्गणाविरहो भवति ।

मार्गणासु नानाजीवाश्रितवन्धकालविषये भावनासौकर्यार्थं लाघवार्थं च काश्चिद् व्याप्तयो दर्शयन्ते
तद्यथा

[१] (१) या मार्गणा कादाचित्की तथा यस्यामेकादिजीवानामपि प्राप्तिर्भवति, तदा तस्यां
मार्गणाया ध्रुववन्धिप्रकृतीना मार्गणाप्रायोग्यध्रुवकल्पानां च जघन्यकालो मार्गणाजघन्यकायस्थि-
तिप्रमाणस्तथा तासामेव प्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालो मार्गणोत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवाप्यते । किन्तू-
पशममम्यक्त्वमार्गणायामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्राप्यत इति विशेषः ।

(११) तत्रैवाध्रुववन्धिप्रकृतीनां जघन्यकालः समयस्तथोत्कृष्टवन्धकालो मार्गणोत्कृष्टकाय
स्थितिप्रमाणः प्राप्यते, तत्रापि जिननाम्नो वन्धप्रायोग्यगुणस्थानकजघन्योत्कृष्टकालप्रमाणो वन्ध-
कालः प्राप्यते ।

[२] (१) यासां मार्गणानामध्रुवत्वेऽपि यदा तत्र जीवपरिमाणं जघन्यतोऽपि शतशः प्रमाणं मह

स्वादिप्रमाणं वा विद्यते, तदा तत्र बध्यमानानां ध्रुवाध्रुवप्रकृतीनां बन्धकालो जघन्यतो जघन्यकाय-
स्थितिप्रमाणः, उत्कृष्टतस्तूत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोऽवाप्यते ।

(11) परं तत्र यदि जघन्यपदे जीवसंख्याया निर्णयो न भवेत्, तदा तत्र बध्यमानाध्रुवप्रकृ-
तीनां कालमानं जघन्यतो निर्णयपूर्वकं वक्तुं न पार्यते, तस्माद् ग्रन्थकारस्तत्र स्वयमूहयमित्यादिना
कथयिष्यते ।

[३] यत्र ध्रुवमार्गणायां यदि कासाश्चित्प्रकृतीनां गुणप्रत्ययेन कादाचित्कबन्धस्तत्र तासां
प्रकृतीनां जघन्यबन्धकालो मार्गणागततद्गुणस्थानकजघन्यकालप्रमाणः प्राप्यते, उत्कृष्टतस्तु तद्गु-
णस्थानकस्यानेकजीवाश्रितनिरन्तरज्येष्ठकालप्रमाणः प्राप्यते, शेषप्रकृतीनामनेकजीवाश्रितकालः
सर्वाद्वा प्राप्यते ॥१२१८॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधमपि कालमुपदर्शयन्नाह

. दुहा उरलमीसे ।

सुरविउवदुगजिणाण भिन्नमुहुत्तमियराण सव्वद्धा ॥१२१९॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'दुहा' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य प्रकृति-
पञ्चकस्य बन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालो बोद्धव्यः, तद्यथा—मार्गणायामस्यां
देवनारकभवाभ्यां ज्युत्वा ये सम्यग्दृष्टयो देवनारका मनुष्यगतावुत्पद्यमानाः सन्तः प्रकृतिपञ्चकमेतद्
बध्नन्ति, तथा मनुष्यभवात्कालं कृत्वा क्षायिकसम्यग्दृशः कृतकरणा वा जीवा युगलिकतिर्यग्भवे मनुष्य-
भवे वोत्पद्यमानाः सन्तो बध्नन्ति, ते तु जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तं यावदेवास्यां मार्गणायां विद्यन्ते,
अतः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य द्विधा बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवोक्तः । 'इयराण' इत्यादि; उक्तप्रकृ-
तिपञ्चकमृते शेषप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वाद्वायां प्राप्यन्ते, मार्गणायामध्रुवत्वे सति शेषसर्वप्रकृतीनामने-
कजीवानां सर्वदा बन्धकत्वादिति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिन्यस्तथा वेदनीय-
द्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसंहननपट्कसंस्थानषट्कतिर्य-
ग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयविहायोगतिद्वयप्रसदशकस्थानरदशकातपोधोतपराधातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपा अध्रुवव-
न्धिन्यः षष्टिरिति सर्वसङ्ख्यया सप्तोत्तरशतप्रकृतयः ॥१२१९॥

इदानीं वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधतया कालं कथयि-
तुकाम आह

धुवबन्धिउरालियजिणपरधाऊसासबायरतिगाण ।

वेउव्वमीसजोगे भिन्नमुहुत्तं लह जेयो ॥१२२०॥

सेसाण होइ समयो जिणस्स जेहो भवे मुहुत्ततो ।

पल्लासंखियभागो विण्णेयो सेसपयडीण ॥१२२१॥

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां मतिज्ञानावरणीयादिसप्तचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृ-

तीनामौदारिकशरीरतीर्थकृत्नामपराधातोच्छ्वासवादरत्रिकरूपस्य च प्रकृतिसप्तकस्य बन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञेयः, मार्गणाया अस्या जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमन्वात् । आसां बन्धस्यापराधतमानत्वाच्च । 'सेसाण' इत्यादि, अभिहितशेषप्रकृतिबन्धकानां जघन्यतया समयप्रमाणः कालः, तदित्यम्-शेषप्रकृतिषु काश्चित् प्रकृतयः परावर्तमानाः सन्ति, काश्चित् प्रावृत्तिबन्धन्यः, अतः प्रकृतमार्गणागतजीवाः समयमेकं जघन्यतया शेषप्रकृतीर्बद्ध्वा युगपद् मार्गणाविच्छेदं विदधति, तदा भणितकालः प्राप्तो भवति । अथवा मार्गणाया आद्यममय एकोऽनेके वा युगपदुत्पन्नाः सन्तः शेषप्रकृतिभ्यो विवक्षितप्रकृतीर्बद्ध्वा द्वितीयसमये तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदा तथा मध्येऽपि विवक्षितप्रकृतीनां समयमेकं बन्धं कृत्वा तद्विरोधिप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदाऽपि तासां बन्धकानां प्रोक्तप्रमाणकालः प्राप्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादिद्युगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गसहननपट्कमंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्कातपोधोतगोत्रद्वयरूपा अष्टचत्वारिंशदिति । 'जिणस्स' इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां जिननाम्नो बन्धकानां कालः प्रकृततयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो वेदितव्यः, तद्यथा जिननाम्नो बन्धकतया सम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्य आगताः केचिदेव सम्यग्दृष्टिदेवनारकाः, तेषां च संख्यातत्वेन प्रस्तुतमार्गणायां तेषां निरन्तरप्राप्तिरन्तर्मुहूर्तादधिका नैव विद्यतेऽतो जिननामबन्धकालस्य उत्कृष्टतोष्यन्तर्मुहूर्तमात्रत्वमिति । 'पक्षा' इत्यादि, जिननामकर्मवर्जानामेकोत्तरशतप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टकालः पण्योपमस्यासङ्ख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२०-२१॥

साम्प्रतमाहारककाययोगसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालं निर्देष्टुमाह

आहारगमुहमेसुं सप्पाजग्गाण सव्वपयडीणं ।

समयो अत्थि जहण्णो भिन्नमुहुत्तं भवे जेद्धो ॥१२२२॥

(प्रे०) 'आहारग' इत्यादि, आहारककाययोगसूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, यतो मार्गणो हमे जघन्यतः समयप्रमाणकायस्थितिके, उत्कृष्टतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिके । आहारकमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतयश्चेमाः-मिथ्यात्वमोहनीयस्यानर्द्धविकाऽनन्तानुबन्धचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कलक्षणं प्रकृतिषोडशकं विहाय मतिज्ञानावरणीयाधेकत्रिशद्ब्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादिद्युगलद्वयपुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीशुभखगतित्रयदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा एकत्रिशद्ब्रुवबन्धिप्रकृतयः । सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां चेमाः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्त-

रायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाः सप्तदशप्रकृतय इति । १२२२॥

इदानीमाहारकमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां कालमुभयथा संचिन्तयन्नाह

आहारमीसजोगे समयो सायाद्वेतरसण्ह लह ।

जेदो मित्रमुहुत्तं दुविहो वि हवेज्ज सेसाण ॥१२२३॥

(प्रे०) 'आहारमीस' इत्यादि, आहारकमिश्रमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरति-
शोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशानां प्रकृतीनां जिननामनश्च बन्ध-
कानां जघन्यकालः समयप्रमितः, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानत्वात्, जिननामनश्च
प्रकृतमार्गणाचरमसमयेऽपि नूतनबन्धसम्भवात् । उत्कृष्टतथ्यप्रकृतत्रयोदशप्रकृतिबन्धकानां कालोऽन्त-
र्मुहूर्तप्रमाणः, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमन्वात् । 'दुविहोवि' इत्यादि,
उक्तशेषप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । प्रकृतमार्गणाजघन्योत्कृष्टका-
यस्थित्योस्तावत्प्रमाणत्वात् शेषप्रकृतीनां बन्धस्य ध्रुवतया प्राप्यमाणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषाः प्रकृतयः—
मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृतिषोडशकं विहाय शेषा एकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवगति-
पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसप्तकपराधा-
तोच्छ्रामोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेति ॥१२२३॥

साम्प्रतं कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां द्विविधकालं चि-
थयिषुराह

कम्माणाहारेसुं देवविजवदुगजिणाण होइ लह ।

समयो सखियसमया जेदो सेसाण सव्वदा ॥१२२४॥

(प्रे०) 'कम्मा' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोर्देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामलक्षणस्य
प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमितोऽस्ति । मार्गणयोरनयोः प्रकृतिपञ्चकस्याऽस्य
बन्धकाः सम्यग्दृष्टय एव वर्तन्ते । अत्र चैकः सम्यग्दृष्टिरनेके वा सम्यग्दृष्टयो जीवा स्युः, ते च समक-
मेव समयमेकं प्रकृतिपञ्चकमेतद् बद्ध्वा मार्गणां परावर्तयन्ति, तदा समयप्रमाणकालस्तेषां समुपलब्धो
भवति । 'संखिया' इत्यादि, मार्गणयोरनयोरेतत्प्रकृतिपञ्चकबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्र-
माणः, देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामबन्धकतया प्रस्तुतमार्गणयोः सम्यग्दृष्टिमनुष्येष्वागताः सम्यग्दृ-
ष्टिमनुष्येभ्योऽन्यत्रोत्पद्यमाना वा केचित्सम्यग्दृष्टयः, तेषां च संख्यातत्वेनात्र निरन्तरप्राप्तावस्थानं
संख्यातसमयान् यावद्विधत्ते, अतः प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकालः प्रकृष्टतोऽपि संख्यातसमयप्रमाण एवोक्तः ।
'सेसाण' इत्यादि, एतत्प्रकृतिपञ्चकमिश्रशेषप्रकृतिबन्धकानां कालः सर्वदा वर्तते, मार्गणयोरनयो-
र्ध्रुवत्वेन जीवानां सर्वदेव तद्बन्धकर्त्तृत्वेनोपलभ्यमानत्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुव-
बन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसं-

स्थानपट्कसंहननपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावरदशकपरिधानोच्छ्रामातपोद्यो-
तगोत्रद्वयरूपाः पष्टिप्रकृतयश्चेति ॥१२२४॥

सम्प्रत्यपगतवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुभयथा कालं विचारयन्नाह

गयवेए सव्वद्धा हवेज्ज सायस्स सेसपयडीण ।

समथो अत्थि जहण्णो जेट्ठो हवए मुहुत्तंतो ॥१२२५॥

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्य बन्धकाः सदैव भवन्ति, मार्गणायामस्यां सातवेदनीयबन्धविधायिनां भवस्थकेवलनामनवरतं प्राप्यमाणत्वात् । 'सेस' इत्यादि, सातवेदनीयव्यतिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा-मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा जीवाः समकमेव समयमेकं शेषप्रकृतीर्बद्ध्वा तदूर्ध्वं कालं कुर्वन्ति, तदा शेषप्रकृतिबन्धकानां समयप्रमाणः कालोऽवाप्यते । उत्कृष्टतथाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालोऽवसेयः । तद्यथा-मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा जीवा आगत्याऽन्तर्मुहूर्तादनु युगपदेव कालं कुर्वन्ति, मार्गणान्तरं वा व्रजन्ति, बन्धविच्छेदं वाऽवाप्नुवन्ति, तदेयत्कालोऽवाप्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपा विंशतिरिति ॥१२२५॥

अथ छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टलक्षणं कालं संदर्शयन्नाह

छेए सयं लहू पणरससायाईण सद्धुसयद्द ।

सेसाण गुरु अयरं-ऽद्धकोडिकोडी उ सव्वेसि ॥१२२६॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकारतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूह्यः । छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां जघन्यपदे यदि जीवा बहवः स्युस्तदा नानाजीवापेक्षया यावती तेषां कायस्थितिस्तावत्प्रमाणो जघन्यकालः सातवेदनीयादिप्रकृतिबन्धकानां भवति, यदि पुनरेकादिविंशतिप्रमाणाः स्युस्तदा तु सर्वे युगपत् सातवेदनीयमसातवेदनीयं वा बद्ध्वेतरद् बध्नन्ति, तदा तामां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः समयादिप्रमाणो भवितुमर्हति, किन्तु तद्विषयकविशेषपरिमाणनिर्णयाभावादुक्तं 'सय' ति स तु स्वयमेवागमानुभारेण भावनीय इति । 'सद्धु' इत्यादि, उक्तशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां जघन्यकालः 'सोर्धद्विशताब्दः' पञ्चाशदधिकद्विशतवर्षप्रमाणोऽवसातव्यः, मार्गणायामास्या जघन्यत इत्यत्रप्रमाणकायस्थितिमत्त्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कसंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सातैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्भुवबन्धिन्यः, पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जससप्तकपराधातो-
च्छ्रामोच्चैर्गोत्ररूपाश्चाष्टादशप्रवबन्धिन्य इति । 'गुरु' इत्यादि, स्वप्रायोग्याणां सर्वासां

प्रकृतीनां बन्धकानामुत्कृष्टकालोऽर्धकोटिकोटिसागरोपमाणि, उत्कृष्टत इत्यप्रमाणकायस्थितिमत्त्वा-
दस्या मार्गणायाः ॥१२२६॥

साम्प्रतं परिहारविशुद्धिमयमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानां कालमुभयविधया कथ-
यन्नाह

सयमुज्ज्वो परिहारे पणरससायाङ्गाण सेसाणं ।

वोसद्गुहृतमणू सच्चाण गुरू दुपुच्चकोडतो ॥१२२७॥ (गीति.)

(प्रे०) 'सयमुज्ज्वो' इत्यादि, परिहागविशुद्धिसंयममार्गणायां सातवेदनीयाऽमातवेदनीय-
हास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्च-
दशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूह्यः, अत्र भावना छेदोपस्थापनीयमार्गणानुसारेण स्वयं
समधिगम्या । शेषप्रकृतीनां जघन्यकालो विंशतिवर्षपृथक्त्वप्रमाणः, प्रकृतमार्गणाजघन्यकाय-
स्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात्, शेषप्रकृतीनां बन्धस्य ध्रुवत्वाच्च । सर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टवन्धकालो देशोन-
पूर्वकोटिद्वयप्रमाणः, मार्गणाया अस्या उत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२७॥

इदानीमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकानामुभयथा कालं विचारयन्नाह—

वारससायाङ्गं सुरविज्वाहारजुगलपयडीण ।

समयो लह उवसमे सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥१२२८॥

तित्थाहारदुगाणं भिन्नमुहुत्तं गुरू मुणेयव्वो ।

पल्लासंखियमागो बोद्धव्वो सेसपयडीण ॥१२२९॥

(प्रे०) 'वारस' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सातवेदनीयाऽमातवेदनीयहास्यरति-
शोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां देवद्विकवैक्रियद्विका-
हारकद्विकरूपाणां पण्णां प्रकृतीनां च बन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, तद्यथा—मार्गणाया-
मस्यामेक एव जीवः स्यात्, स चासु प्रकृतिषु सातवेदनीयप्रभृतिप्रकृतिपट्टकमथवाऽसातवेदनी-
यादिप्रकृतिपट्टं यद्ध्वा परावर्तमानतया बध्यमानत्वेन समयानन्तरं तद्विनोधिप्रकृतीवर्धनाति, तदा
समयप्रमाणः कालः प्राप्यते । देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकप्रकृतीनां तु समयप्रमाणो जघन्यवन्ध-
काल उपशमश्रेणेरवरोहकस्य बन्धद्वितीये समये कालं कृत्वा देवतयोत्पन्नस्यापेक्षया बोध्यः ।
'सेसाणं' इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमा-
णोऽस्ति, प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात्प्रकृतीनामासां बन्धस्य ध्रुवत्वाच्च । ताश्चेमाः
शेषप्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भुववन्धि-
प्रकृतयः, पुरुषवेदमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवर्षभनाराचसहननमचतुरस्रसंस्थान-
मनुष्यानुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जसप्तकपराघातोच्छ्वासजिननामोच्चैर्गोत्ररूपा विशति-
रभुववन्धिप्रकृतयश्चेति ।

अथ ज्येष्ठकालमानमाह—‘नित्थाहार’ इत्यादि, जिननामाहारकद्विकात्मकस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानां काल उत्कृष्टतयाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, आसां प्रकृतीनां बन्धका मनुष्या वर्तन्ते, जिननामाः पुनरुपशमश्रेणिगताः कालं कृत्वोत्पद्यमाना देवा अपि, तेषामुपशममभ्यवृत्तस्य समुदितनिरन्तर-कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, अतः प्रकृतप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टबन्धकालो यथोक्तप्रमाण एव । ‘पक्षा’ इत्यादि, एतदुक्तप्रकृतित्रयं त्यक्त्वा शेषप्रकृतिबन्धकानां प्रकृष्टकालः पल्योपमाऽसंख्येयतम-भागप्रमाणो वेदयितव्यः, एतन्मार्गणाकायस्थितेरुत्कृष्टतस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥१२२८-२९॥

अधुना मिश्रमभ्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जधन्योत्कृष्टकालं दिदर्शयिषु-
राह—

बारससायाईण मीसे समयो ल्हू भुहुत्तंतो ।

सेसाण सव्वेसि जेट्ठो य पलियअसखसो ॥१२३०॥

(प्रे०) ‘बारस’ इत्यादि, मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामा मातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतिबन्धकानां जधन्यकालः समयप्रमाणोऽधिगम्यः, मार्गणायामस्यामेकोऽनेके वा प्राणिनो युगपदेव समायाताः सन्तः मातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कमसातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कं वा बद्ध्वा समयानन्तरं तद्विरोधि-प्रकृतीर्वेधन्ति, तदा समयप्रमाणकालोऽवाप्यते । ‘भुहुत्तंतो’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्य-ष्टकं परिहृत्य शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्भुवबन्धिप्रकृतीनां पुरुषवेदेदेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रिय-जात्यौदारिकद्विक्रयैक्रियद्विक्रयर्षमनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थानदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतिस्थिर-शुभयशःकीर्तिवर्जत्रसप्तकपराघातोच्छ्वासोन्मैर्गोत्ररूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनां च बन्धका अन-वरतं जधन्यतयाऽन्तर्मुहूर्तकालं प्राप्यन्ते, यतो हि मार्गणाय जधन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थिति-मती वर्तते, तथा प्रकृतमार्गणायामेताः प्रकृतयो न परावर्तन्ते । ‘सव्वेसि’ इत्यादि, स्वप्रायोग्य-सकलप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टकालोऽत्र पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, यतो मार्गणायामा उक्तप्रकृतिस्थितिः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमिता विद्यते, तदनन्तरमवश्यमेव मार्गणायामा विच्छेदो भवति ॥१२३०॥

इदानीं सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जधन्यत उत्कृष्टतश्च कालं तथा शेषमार्गणासु सर्वाद्धारुणकालमुपदर्शयति

सासाणम्मि जहण्णो समयो सव्वान्होइ उक्कोसो ।

पल्लासंखियमाणो सेसासु अत्थि सव्वद्धा ॥१२३१॥

(प्रे०) ‘सासाणम्मि’ इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामायुष्कर्मवर्जशेषस्वप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धकानां जधन्यकालः समयप्रमित उत्कृष्टकालश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणो वर्तते यतो मार्गणाय जधन्यतः समयप्रमाणकायस्थितिका वर्तते, उत्कृष्टतश्च पल्योपमाऽसंख्येयतमभाग-

प्रमाणकायस्थितिका वर्तते । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषमार्गणानु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकाः सर्वाद्यायां भवन्ति, शेषमार्गणानां ध्रुवत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्भित्तमार्गणाः, एकोनविंशतिसंख्याकेन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौ-घौदारिकाययोगवैक्रियकाययोगरूपास्त्रयोदशयोगमार्गणाः, स्त्रीपुरुषनृपुंसकवेदरूपास्तिस्रो मार्गणाः, क्रोधमानमायालोभाऽकपायलक्षणाः पञ्चमार्गणाः, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानमनःपर्यवज्ञानकेवलज्ञान-मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणा अष्टौ मार्गणाः, संयमौघसामायिकदेशविरतिपथाख्याताऽसंयमा-भिधाः पञ्चमार्गणाः, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपाश्चतस्रो मार्गणाः, कृष्णादिषड्लेरयामार्गणाः, मन्वाभन्वमार्गणाद्वयम्, मन्व्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकमिथ्यात्वरूपाश्चतस्रः सम्यक्त्वमार्गणाः, संज्ञसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारक्रमार्गणा चेति पट्पुत्तरशतमार्गणाः ॥१२३१॥

अथ मार्गणासूत्रप्रकृतीनामायुष्कर्मवर्जानामवन्धकानां जघन्योत्कृष्टकालं कथयितुकाम आह—
सिम्बन्धगाण कालो अपञ्जणरसासगेसु जाणऽत्थि ।

हरतो समयो जेढो पल्लस्स असखभागोऽत्थि ॥१२३२॥

(प्रे०) 'सिम्' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणयोर्यासां प्रकृतीनामव-
न्धकाः प्राप्यन्ते, तेषां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽधिगम्यः; तदेवम्—मार्गणयोरनयोरध्रुववन्धिप्रकृ-
तीनां परावर्तमानप्रकृतीनामवन्धका उपलभ्यन्ते, यतः प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धका विवक्षितप्रकृतीना-
मवन्धकतया प्राप्यन्ते, प्रतिपक्षप्रकृतीनां च बन्धकाल एकजीवमाश्रित्याऽनेकजीवानाश्रित्य वा जघ-
न्यतया समयप्रमाणोऽस्ति, अतो विवक्षितप्रकृतीनां समयप्रमितोऽवन्धकालः सूयपद्यते । उत्कृष्टतश्च
पुनः पल्लोपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालो ज्ञातव्यः, मार्गणाद्वयस्यैतस्योत्कृष्टकायस्थितेस्तावत्प्रमा-
णत्वात् ॥१२३२॥

अधुना मनोमार्गणाद्वये वचनमार्गणाद्वये चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये संज्ञिमार्गणायामवन्ध-
कानां द्वैविध्येन कालं कथयति ।

इगतीसधुवाण लहू दुमणवयणयणमणयणसण्णीसुं ।

समयो भिन्नमुहुत्तं जेढो सेसाण सव्वदा ॥१२३३॥

(प्रे०) 'इगतीसा' इत्यादि, सत्यासत्यमनोऽसत्यमनःसत्यासत्यवचनाऽसत्यवचनचक्षुर्दर्शनाऽ-
चक्षुर्दर्शनसंज्ञिलक्षणासु सप्तसु मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानुबन्धिवचतुष्काप्रत्या-
ख्यानान्तरणप्रत्याख्यानान्तरणचतुष्कलक्षणं प्रकृतिषोडशकं विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्भ्रुवन्धिप्रकृतीनाम-
वन्धकानां जघन्यकालः समयमानोऽवसातव्यः । भावना पुनरेवम्—मार्गणास्वासु वर्तमाना जीवा
उपशमश्रेणिमालुख प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधाय समयमेकं च तत्र तथैव स्थित्वा मृत्युमवाप्नु-
वन्ति, तदोपशमश्रेणिसत्क एव समयप्रमाणो जघन्यकालस्तदेवन्धकतया प्राप्यते । क्षीणमोहान्तानामे-
वात्र भावात् श्रेणिं विना त्वत्प्रत्यासु मार्गणासु प्रकृतीनामासामवन्धका एव न विद्यन्ते । उत्कृष्टतश्च
तासां प्रकृतीनामवन्धकानां कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो ज्ञातव्यः । कुतोऽन्तर्हर्तमेव ? इति चेत् श्रेणिगता-

नामेवेतत्प्रकृत्यवन्धकतया लाभात्, नानाजीवाश्रयश्रेण्युत्कृष्टकालस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रत्वाच्च, तदुक्तं जीवसमासे-

एषिं च जहण्ण खवमाण अजोगिखीणमोहाण । नाणाजीवे एगं परापरेटिई मुहुत्ततो ॥२२४॥

‘सेसाण’ इत्यादि, उदितप्रकृतिभिन्नप्रकृतीनामवन्धकाः सर्वाद्यायां भवन्ति, मार्गणानामासां ध्रुवत्वेन शेषप्रकृतिष्वध्रुववन्धिप्रकृतीनामत्र वन्धकाऽवन्धकानां सर्वदैव लभ्यमानत्वात्, तथा शेष-पोडशध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकतया संयमिनां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः पोडशध्रुववन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौ-दारिकद्विकर्षै क्रियद्विकाहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कानुपूर्वीचतुष्कलगतिद्वयत्रसदशकस्थावरद-शकातपोद्योतोच्छ्वासपराघातजिननामगोत्रद्वयरूपा एकोनसप्ततिरध्रुववन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२३३॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रमार्गणायां प्रकृतमाह

ध्रुववधिउरालाण उरालमीसे लहू मवे समयो ।

जेढो सखियसमया ध्रुववधीण गुणचत्ताए ॥१२३४॥

णेयो मित्रमुहुत्त यीणद्धितिगाणचउगउरलाण ।

मिच्छस्स असखंसो पल्लस्सियराण संवद्धा ॥१२३५॥

(प्रे०) ‘ध्रुववधि’ इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सप्तचत्वारिंशदध्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, द्वितीयसमयस्थानां केवलिसमुद्धातगतानां समयमेकमासमवन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् ।

‘जेढो’ इत्यादि, मार्गणायामस्यां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कलक्षण प्रकृत्यष्टकं त्यक्त्वा शेषैकोनचत्वारिंशदध्रुववन्धिप्रकृत्यवन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणः केवलिसमुद्धातावस्थाया निरन्तरकालस्य संख्यातसमयप्रमाणत्वात् । ‘णेयो’ इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कलक्षणस्य प्रकृतिसप्तकस्यौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽवन्धकानामुत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, आसां प्रकृतीनामवन्धकत्वेन प्राप्यमाणानां सम्यग्दृशां निरन्तरं प्राप्तेस्तावन्मितत्वात् । ‘मिच्छस्स’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकानामुत्कृष्टकालः पण्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणोऽस्ति, मार्गणायामस्यां मुख्यवृत्त्या सास्वादनसम्पग्दृष्टिजीवा मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृत्यवन्धकत्वेन पण्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणकालपर्यन्तं सततं तिर्यक्षु लभ्यन्ते, तदनु तु सास्वादनसम्पग्दृष्टिजीवानामवश्यमेव औदारिकमिश्रमार्गणायामभावो भवति । ‘इयराण’ इत्यादि, भणितशेषप्रकृत्यवन्धकाः सर्वस्मिन् काले वर्तन्ते, शेषप्रकृतीनामवन्धकतया सूक्ष्मादिजीवानां सर्वाद्यायां प्राप्तेः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यदेवगतित्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयस्वगतिद्विकत्रसदशकस्थावरदशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्टिरिति ॥१२३४-३५॥

ममप्रति वैक्रियमिश्रमार्गणागमायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामवन्धकानामुभयविधया कालं भावयन्नाह—

हस्तो विउव्वमीसे थोणद्धित्तिगणचउगतित्थाणं ।

भिन्नमुहुत्तां णेयो समयो सेसाण जाणडत्थि ॥१२३६॥

पल्लासखियमागो सव्वाण गुरू हवेज्ज जाणडत्थि ।

(प्रे०) हस्तो इत्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गणायां गत्यानद्धिप्रिकाऽनन्तानुगन्धिचतुष्कजिननामप्रकृतीनामवन्धकानां जवन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, मार्गणाया अभ्या जघन्यतोप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणकायस्थितिमन्वात् । 'समयो' इत्यादि, एतत्प्रकृत्यष्टकवर्जसु शेषप्रकृतिषु यायां प्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, तेषां जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति, भावना पुनरेवम्—वैक्रियमिश्रमार्गणायामेकोऽनेके वा जीवा युगपदेव मास्वादनमभ्यक्त्वमादाय देवत्वेन जाताः भन्तो जघन्यतः समयमेकमिथ्यान्वमोहनीयं नेव वध्नन्ति, तदनु मिथ्यान्वमवाप्य वध्नन्ति, तदपेक्षया मिथ्यान्वमोहनीयाऽवन्धकानां समयप्रमाणकालः प्राप्तमहः । शेषाध्रुवगन्धिप्रकृतीनामवन्धकालोऽध्रुवगन्धित्वेन परावर्तमानतो वध्यमानत्वेन समयप्रमाणः समधिगम्यः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मिथ्यान्वमोहनीयवेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यातिद्वयैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौदारिकाङ्गो गङ्गसंहननपट्कर्मस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयस्वगतिद्वयत्रसस्थिरपट्कस्थावराऽस्थिरपट्कातपोद्योतगोत्रद्विकरूपा एकोनपञ्चाशदिति । 'पल्ला' इत्यादि, अत्र यायां प्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, तेषामुत्कृष्टकालः पल्लोपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणो बोद्धव्यः, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितेरित्यत्रमाणन्वात्, ताश्चेमाः—स्त्यानद्धिप्रिकाऽनन्तानुगन्धिचतुष्कजिननामसहिता उपयुक्तेकोनपञ्चाशदिति ॥१२३६॥

इदानीमाहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां कालं द्वित्रिधेनाह—

सव्वाणाहारकुगे लहू खणोऽण्णो मुहुत्ततो ॥१२३७॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, आहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये 'सव्वाण' ति, अवन्धकायोग्यमकलप्रकृतीनां वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयस्थिरादियुगलत्रयजिननामरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टतश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, भावना त्वित्थं भावनीया-जिननाम्नो नूतनगन्धः प्रकृतमार्गणाद्वितीयसमये यदा प्रारभ्यते, तदा तस्याऽवन्धकाल एकमसमयप्रमाणोऽवाप्यते । परावर्तमानशेषप्रकृतिषु विषयप्रकृतीनामेकसमयवन्धकालेन विवक्षितप्रकृतीनामवन्धकालो भावनीयः । आहारकाययोगमार्गणायां समयप्रमाणोऽवन्धकालः प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थित्याऽपि समायाति । उत्कृष्टाऽवन्धकालः पुनर्जिननाम्नोऽधिकृतमार्गणोत्कृष्टकायस्थितिं यावदनेकजीवानां तदवन्धात्प्राप्यते, शेषप्रकृतिषु तु प्रकृतमार्गणाकायस्थितिं यावद-

न्याऽन्यजीवानां प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धकत्वेन विवक्षितप्रकृतीनामबन्धकतया च प्रकृतमार्गणोन्कृष्टकालं यावत्प्राप्यमाणत्वात् ॥१२३७॥

अथ कर्मणकाययोगमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधोऽपि काल उपदर्श्यते--

कस्मै समयोऽस्थि लहू अडधुववधिउरलाण समयतिगं ।

सेसधुववधिणीण थोणद्धितिगाणमिच्छाणं ॥१२३८॥

आवलिआसंखसो जेटो सेसधुववधिउरलाणं ।

संखा समया जेयो सव्वद्धा होइ सेसाण ॥१२३९॥

(प्रे०) 'क+गे' इत्यादि, कर्मणकाययोगमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कौदारिकशरीरनामरूपस्य प्रकृतिनयकस्याऽबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, भावना त्वेवं कार्या-मार्गणेयं विग्रहगतौ केवलिसमुद्धातावस्थाया तृतीयतुर्यपञ्चममयेषु प्राप्यते, विग्रहगतिरेकमामयिका जघन्यतो वर्तते, कदाचिदेकमामयिकविग्रहगतौ वर्तमानाः सम्यग्दृशो मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृतप्रकृत्यबन्धकत्वेन प्राप्यमाणाः समयानन्तरं मार्गणां परावर्तयन्ति, तदा समयप्रमाणकालः प्राप्यते । 'समयतिगं' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रमुखप्रकृत्यष्टकमृते शेषाणामेकोनचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः त्रयः समयोद्भव्याः, केवलिसमुद्धातावमरे कर्मणकाययोगमार्गणायां जघन्यतोऽपि तृतीयचतुर्थपञ्चममयात्मके समयत्रये तदबन्धकत्वेन केवलिनं वर्तमानत्वात् । 'थोण' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयलक्षणस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धकानामुत्कृष्टतया काल आवलिकाया असंख्याततमभागप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा-देवमवे सम्यग्दृष्ट्यस्तिर्य्यचो यदा निरन्तरमावलिकाया अमङ्ख्याततमभागप्रमाणकालपर्यन्तमुत्पद्यन्ते, तदा विग्रहगतावपि ते तावत्कालं प्राप्यन्ते, ते च प्रकृतप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धका एव वर्तन्ते । 'सेस' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रमुखप्रकृत्यष्टकं विना शेषैकोनचत्वारिंशद्भुववन्धिप्रकृत्यबन्धकानामौदारिकशरीरनाम्नरचाऽबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्याताः समयो वर्तन्ते, तत्पुनरित्यम्-शेषत्रुववन्धिप्रकृतीनामबन्धकाः केवलिसमुद्धातावमरेऽत्र तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेष्वेव समुपलभ्यन्ते, न पुनर्विग्रहगतौ तस्माद् यदा सङ्ख्यातकेवलिनः क्रमेण समुद्धातस्य तृतीयादिसमयेषु प्रविशन्ति, तदा सङ्ख्यातसमयप्रमाणोऽबन्धकालः प्राप्यते, नन्वधिकः । औदारिकशरीरनाम्नोऽबन्धकानामुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणोऽस्ति, स च केवलिसमुद्धातापेक्षया शेषत्रुववन्धिप्रकृत्यबन्धकवद् भाव्यः, विग्रहगत्यपेक्षया त्वेवम्-विग्रहगत्या मनुष्येभ्यः सम्यग्दृष्टिनिर्त्यक्तयोत्पद्यमाना अथवा देवनारकेभ्यः सम्यग्दृष्टिमनुष्यतयोत्पद्यमाना जीवा एवौदारिकशरीरस्याऽबन्धकतयाऽत्र प्राप्यन्ते, ते च सङ्ख्यातास्ततः क्रमेणोत्पद्यमानैस्तरपि सङ्ख्यातसमयेभ्योऽधिककालोऽबन्धकतया नैवाऽवाप्यत इति । 'सव्वद्धा' इत्यादि, कथिततरप्रकृत्यबन्धकाः सर्वाद्धाया वर्तन्ते, यतो हि मार्गणेयं भ्रुवा वर्तते, तथा शेषप्रकृतिषु काश्चित्परावर्तमाना वर्तन्ते, काश्चिच्चाऽध्रुववन्धिन्यः,

तस्मात् केचन जीवाः शेषप्रकृतीनां बन्धकत्वेन विद्यन्ते, केचन चाऽबन्धकत्वेनेति सर्वदा बन्धका
अबन्धकाश्च प्राप्यन्ते । एताश्च ताः शेषप्रकृतयः वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यदेवगति-
त्रयजातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वीत्रयस्वगतिद्वय-
त्रसदशकस्थावरदशकाऽऽतपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्टिरिति ॥१२३८-९॥

साम्प्रतं वेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च विनायुत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विधा कालं विचा-
रयन्नाह

भयकुच्छणिदुग्धवणामाण लह् तिवेअकोहेसु ।

समयो भिन्नमुहुत्त जेट्ठो सैसाण सव्वद्धा ॥१२४०॥

(प्रे०) 'भय'इत्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च भयजुगुप्सानिद्रा-
प्रचलावर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणतैजमकार्मणशरीरद्वयरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघ-
न्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतश्च कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, स पुनरेवम्-वेदमार्गणा नवमगुणस्था-
नकप्रथमभागं यावद् वर्तते, नवमगुणस्थानद्वितीयभागं यावत् क्रोधकषायमार्गणा च वर्णचतुष्कादिप्र-
कृतिनवकमष्टमगुणस्थानकपष्ठभागं यावद् बध्यते, भयकुत्से पुनरष्टमगुणस्थानकस्य सप्तमभागपर्यन्तं
बध्येते, निद्राद्विकं च तस्यैव प्रथमसप्तमभागपर्यन्तं बध्यते, उपशमश्रेणौ वर्तमाना एकोऽनेके वा
जीवा युगपदेव यथायोगं प्रकृतीनामासां बन्धविच्छेदं विधाय समयमेकं तत्र तथैव स्थित्वा सर्वे
पञ्चत्वं प्राप्नुवन्ति तदा, यद्वा श्रेणितोऽवरोहन्तः प्रस्तुतमार्गणाः प्रविश्य समयान्तरे कालं कुर्वन्ति,
तदापि समयप्रमाणकालत्वेण श्राप्नो भवति, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणोत्कृष्टबन्धकालस्य भावना मनोयोग-
मार्गणावधिधेया । 'सैसाण'इत्यादि, उत्तेतरप्रकृत्यबन्धकानां कालः सर्वाद्धा वर्तते, शेषप्रकृतयश्चेमाः-
मिथ्यात्वमोहनीयस्थानद्वित्रिकाऽनन्तानुगन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतु-
ष्करूपाः षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिक-
द्विकवैक्रियद्विकहारकद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्काऽऽनुपूर्वीचतुष्कविहायोगतिद्विकत्रसदशकस्थावरद-
शकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपा एकोनसप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतय इति । भावना
पुनरेवमिह विधेया-मार्गणास्वासु मिथ्यात्वमोहनीयप्रभृतिप्रकृत्यष्टकस्याबन्धकत्वेन सम्पगृह्णतिप्रभृ-
तयः, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽबन्धकत्वेन देशविरतप्रमुखाः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य
चाऽबन्धकत्वेन प्रमत्तसंयतादयः सर्वदैव प्राप्यन्ते, शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामपि केचन जीवा अबन्ध-
कत्वेन सर्वे प्राप्यन्ते, अध्रुवबन्धित्वात्परावर्तमानतया बध्यमानत्वाच्च तासाम् ॥१२४०॥

साम्प्रतं मानमायालोभलक्षणमार्गणात्रयेऽबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाम्यां कालं कथयति ।

कोहव्व माणमायालोहेसु णवरि कमेगडुचउण्हं ।

संजलणाज जहण्णो समयो जेट्ठो मुहुत्ततो ॥१२४१॥

(प्रे०) 'कोहन्व' इत्यादि, मानमायालोभात्प्रमार्गणासु स्वप्रयोगप्रकृत्यवन्धकानां जवन्त्योत्कृष्टकालः क्रोधमार्गणावद् विज्ञेयः । 'णचरि' इत्यादिनाऽत्र मंजलनक्रोधादिचतुष्कविषयेऽपवादपदमुपदर्शयति-तदेवम्-मानमार्गणायां मंजलनक्रोधस्य, मायामार्गणायां मंजलनक्रोधमानयोः, लोभमार्गणायां संज्वलनचतुष्कस्याऽवन्धकानां जवन्त्यकालः समयप्रमाणः, उत्कृष्टकालश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवसेयः, भावना पुनरत्र पूर्ववत्कार्या ॥१२४१॥

इदानीं ज्ञानत्रयावधिदर्शनमार्गणास्वायुर्धर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानामुभयथा कालं दर्शयन्नाह

णाणतिगे ओहिस्मि य वारससायाइअडकसायाण ।

वइरणरसुररलविउवआहारजुगलजिणाण सव्वद्धा ॥१२४२॥ (गीति०)

सेसाण पयडीण पणयालीसाअ होअइ जहण्णो ।

समयो भिन्नमुहुत्त जेढो कालो मुणेयव्वो ॥१२४३॥

(प्रे०) 'णाणतिगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनरूपासु चतसृषु मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनामप्रत्याख्यानावर्णक्रोधादिचतुर्गुणप्रत्याख्यानावर्णक्रोधादिचतुष्कलक्षणस्य कपायाष्टकस्य वज्रर्पभनागचसहननरद्विकसुरद्विकौदारिकद्विक्रैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां चावन्धकानां कालः सर्वाद्धा वर्तते, मार्गणास्वायु स्थितैः प्रकृतीनामामां कैश्चिज्जीवैर्वध्यमानत्वात् कैश्चिच्चाऽवध्यमानत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, भणितशेषपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृत्यवन्धकानां जवन्त्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणश्चोत्कृष्टकालः । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावर्णपञ्चकदर्शनावर्णपट्कमंजलनचतुष्कभयजुगुप्मावर्णचतुष्कतैजसकामंशरीरद्वयाऽगुरुलघूयघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रमंस्थानसुखगतित्रयचतुष्कसुभगत्रिकपरावातो-ल्लुवापोच्चेर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशप्रकृतयश्चेति पञ्चचत्वारिंशदिति । मनोयोगमार्गणायामेकत्रिशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकालस्य भावना यथा कृता तथैवेहापि प्रकृतपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवन्धकालस्य भावना कार्या ॥१२४२-३॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां द्विधाऽपि प्रस्तुतकालं चिकथयिपुराह

पणरससायाईण हवेज्ज मणपज्जवस्मि सव्वद्धा ।

समयो गुणवण्णाए सेसाण लहू पुरु मुहुत्ततो ॥१२४४॥ (गीति०)

(प्रे०) 'पणरस' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामवन्धकाः सर्वाद्धायां वर्तन्ते, तद्यथा-सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतयः परावर्तमानत्वेन वध्यमाना विद्यन्ते, अतः प्रकृतीनामामां चन्ध एतन्मार्गणागतैः कतिपयैर्जीवैः क्रियते कतिपयैश्च न क्रियते, आहारकद्विकं

न्यप्रमत्तमयतैरेव बध्यते, न प्रमत्तमयतैः, तथा जिननाम तद्योग्यजीवा एव बध्यन्ति, नान्ये, अतः सर्वदैव प्रकृतीनामायां बन्धकाऽबन्धका लभ्यन्ते । 'समयो' इत्यादि, भाषितशेषैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतथाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विद्यते । भावना मविज्ञानमार्गणावत्कार्या । ताश्चेमाः शेषा एकोनपञ्चाशत्प्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतीरुने शेषा एकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवप्रतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक्रमचतुरस्रसंस्थानदेवा-
नुपूर्वीसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिव्यवर्जत्रयसप्तकपराधातोच्छ्रामोच्चैर्गौरूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेत्य-
कोनपञ्चाशदिति ॥१२४४॥

साम्प्रतमज्ञानमार्गणात्रये ग्राह

समयो अण्णाणतिगे मिच्छस्स ल्हू गुरु मुणेयव्वो ।

पल्लासंखियभागे सेसाणं अत्थि सव्वद्धा ॥१२४५॥

(प्रे०) 'समयो' इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपमार्गणात्रये मिथ्यात्वमोहनीय-
स्याबन्धकानां लघुः कालः समयप्रमाणो जातव्यः, गुरुकालश्च पन्धोपमस्याऽभ्युपेयतमभागे
विज्ञेयः, प्रकृतमार्गणात्रये सास्वादनजीवापेक्षयैव मिथ्यात्वमोहनीयाबन्धकानां प्राप्यमाणत्वत् ,
सास्वादनानां च जघन्योत्कृष्टकालस्य यथोक्तप्रमाणत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तशेषाणाम-
बन्धप्रायोग्याणामायुश्चतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामरहितानां पदपष्टेरभुववन्धिप्रकृतीनामबन्धकानां
कालः सर्वाद्धा भवति, अभुववन्धित्वेन सदैव तायामबन्धस्याऽपि लभ्यमानत्वादिति ॥१२४५॥

इदानीं सामायिकसंयममार्गणाया प्रस्तुतकालमुभयथोपदर्शयितुमाह

सायाहपणरसण्हं सव्वद्धा समइअम्मि होइ ल्हू ।

समयो चउतीसाए सेसाण गुरु मुहुत्ततो ॥१२४६॥

(प्रे०) 'सायाह' इत्यादि, सामायिकसंयममार्गणायां मातवेदनीयाऽमातवेदनीयहास्यरति-
शोकागतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामब-
न्धकाः सर्वस्मिन् काले भवन्ति । 'ल्हू' इत्यादि, एतद्व्यतिरिक्तबन्धप्रायोग्यप्रकृत्यबन्धकानां जघ-
न्यकालः समयप्रमितोऽस्ति, अन्तर्मुहूर्तप्रमितश्चोत्कृष्टकालः, भावना तत्र मविशेषं मनःपर्यवज्ञान-
मार्गणावत्कार्या । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—निद्राद्विकलोभवर्जसंज्वलनत्रिकभयजुगुप्सातैजसकर्मण-
शरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाः षोडशभुववन्धिन्यः पुरुषवेददेवद्विक्रमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिलक्षणप्रकृतिव्यवर्जत्रयसप्तकपराधातोच्छ्रामोच्चैर्गौरूपा अष्टादशाऽभुववन्धिन्यश्चेति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतय इति । जानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतु-
ष्काऽन्तरायपञ्चकसंज्वलनलोभरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामबन्धका एव न विद्यन्ते, सर्वेषामत्र
तद्वन्धकत्वात् ॥१२४६॥

माम्प्रत परिहारविशुद्धिच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां द्विविध-
मपि काल कथयितुकाम आह

सयमुज्जो परिहारे छेए सायाइपणरसण्ह लहू ।

परिहारे देसूणा दुपुच्चकोडी भवे जेट्टो ॥१२४७॥

पण्णासलवलकोडी छेए समयो लहू इहण्णेसि ।

जेट्टो मित्रमुहुत्तं सायस्स दुहा अहक्खाए ॥११४८॥

(प्रे०) 'सयमुज्जो' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां
च सातवेदनीयाऽमातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽऽतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिजिननामा-
हारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यकालः स्वयमूहः, जघन्यपदे कथितप्रकृतीनां
वन्धकाऽवन्धकपरिमाणप्रिये निर्णयाभावात् । 'परिहारे' इत्यादि, परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां
सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयप्रमाणः, तावत्कालपर्यन्तं
प्रकृतया सततं परिहारविशुद्धिसंयमवतां समुपलभ्यमानत्वात् । 'जेट्टो' इत्यादि, आसामेव प्रकृतीना-
मवन्धकानामुत्कृष्टकालः छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां पञ्चाशत्कोटिलक्षसामारोपमप्रमितो विज्ञेयः,
यतः छेदोपस्थापनीयचारित्रवन्त उत्कृष्टतस्तावत्कालं यावत् सततं लभ्यन्ते । 'समयो' इत्यादि,
छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृत्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृत्यवन्धकानां
जघन्यकालः सम्यप्रमाणोऽस्ति, उत्कृष्टतश्चाऽन्तमुहूर्तप्रमाणः, श्रेणावेव तदवन्धस्य प्राप्यमाणत्वात् ।
ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—निद्राद्विकमञ्ज्वलनत्रिक्रमयज्जुग्मवर्णचतुष्कृतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूप-
घातनिर्माणरूपाः षोडशध्रुववन्धन्यः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकममचतुरस्रसंस्थानदेवानु-
पूर्वीमुखगतित्रयचतुष्कसुभगत्रिकपराघातोच्छ्वासोच्चैर्गौरूपा अष्टादशप्रकृतयश्चेति चतुस्त्रिंशदिति,
परिहारविशुद्धिमार्गणायां तु सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतिवर्जशेषप्रकृतीनामवन्धका एव न प्राप्यन्ते ।

'सायस्स' इत्याद, यथाख्यातसंयममार्गणायां सातवेदनीयावन्धकानां कालो जघन्योत्कृ-
ष्टाभ्यामन्तर्मुहूर्तमात्रो विज्ञेयः, अयोगिकेवलिनोऽस्यावन्धकतया प्राप्यन्ते, तेषां च जघन्योत्कृष्ट-
स्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रेति कृत्वा ॥१२४०-४८॥

इदानीमुपशमसंयक्तमार्गणायां प्रकृतमाह—

होइ वइरणरसुरलविउवाहारदुगलडकसायाण ।

मित्रमुहुत्तमुवसमे हस्सो समयो ऽत्थि सेसाण ॥१२४९॥

(प्रे०) 'होइ' इत्यादि, उपशमसंयक्तमार्गणायां प्रथमसंहननमनुष्यद्विकदेवद्विकौदारि-
कद्विकवैक्रियद्विकहारकद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामेकोनविंशति-
प्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमितोऽस्ति, तदेवम्—मार्गणायामस्यां मनुष्य-
प्रायोग्यमनुष्यद्विकादिप्रकृतिपञ्चक तियेगमनुष्या नैव वधन्ति, देवप्रायोग्यसुरद्विकवैक्रियद्विकरूपं
प्रकृतिचतुष्क देवनारका नैव वधन्ति, मार्गणायामस्यामाहारकद्विक चतुर्थादिपृष्ठगुणस्थानगता

जन्तवो नैव वधन्ति, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं देशविरतादयः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं च प्रमत्त-
संयतादयो नैव वधन्ति, मार्गणाया अस्या जघन्यकायस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा वर्तते, तद्धै त्वन्तरं
भवति, अतः प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानां जघन्यकालोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽवाप्यते । यदा कश्चिदप्रमत्त-
यतिरुपशमसम्पत्त्वमवाप्य द्वितीयसमय आहारकद्विकस्य नूतनवन्ध कर्तुं शक्नोति, तदा समय-
प्रमाणोऽपि जघन्यावन्धकालः प्राप्यते, किन्तुक्तकालस्य निर्णयाभावादस्मिन् ग्रन्थेऽर्धग्रहः ।
'हस्सो' इत्यादि प्रकृतव्यतिरिक्तप्रकृत्यवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति, सातवेद-
नीयादिद्वादशप्रकृतीनामवन्धकालः समयप्रमाणः प्रतिपक्षप्रकृतीनां समयप्रमाणवन्धकालेनाऽऽयाति ।
तथा शेषप्रकृतीनां तूष्णमश्रेणो वर्तमानाः सर्वे जीवा वन्धं यथासमं व्यवच्छिद्य जघन्यतः समयं
यावत् तथैव स्थित्वा भ्रियन्ते, तदा समयप्रमाणोऽवन्धकालस्तेषामवाप्यते ॥१२४९॥

अथ प्रकृतोपशमसम्पत्त्वमार्गणायां सातवेदनीयादिशेषप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टकालं प्रति-
पादयति—

पल्लासंखियभागो विष्णोयो दोण्ह वेअणीआण ।

दुइअकसायजुगलदुगणरसुरउरलविउवदुगण ॥१२५०॥

आहारदुगस्स तहा वहरजिणाण तिरिराइजुगलाण ।

जेडो भिन्नमुहुत्तं हवेज्ज सेसाण पयडोण ॥१२५१॥

(प्रे०) 'पल्ला' इत्यादि, मानवेदनीयाऽमानवेदनीयाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहाम्यादि-
जुगलद्वयमनुष्यद्विकदेवद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकवज्रर्षमनाराचमंहननजिननामस्थिराऽ-
स्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्लोपमाऽसं-
ख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः, भावना पुनर्गिहैवम्—उपशमसम्पत्त्वमार्गणायां मानवेदनीयादिद्वादशप्रकृ-
तीनां परावर्तमानभावेन पध्यमानत्वाद् वन्धकाऽवन्धकाः प्राप्यन्ते, देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृति-
चतुष्कस्याऽवन्धका देवनारका वर्तन्ते, मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षमनागचसंहननरूपाणां पञ्च-
प्रकृतीनामप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चावन्धकाः क्रमेण प्रधानवृत्त्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा
देशविरततिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवा विधन्ते, आहारकद्विकजिननामप्रकृतीनां कैश्चिज्जीवैरेव पध्यमान-
त्वाद् बहुभागजीवा अवन्धकतया प्राप्यन्ते, ते चोत्कृष्टतयाऽत्र निरन्तरं पल्लोपमाऽसंख्येयभागं
यावदुपलभ्यन्त इति । 'जेडो' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्त-
प्रमाणोऽस्ति, शेषप्रकृतीनामवन्धकानामत्र संयतानामेव प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेष-
प्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणपट्कं प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनचतुष्के भयकुत्से नवध्रुव-
वन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चक चेति पञ्चविंशद् ध्रुववन्धिप्रकृतयस्तथा पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजाति-
समचतुरस्रसंस्थानसुखगतित्रयचतुष्कसुभगत्रिकपराधातोऽध्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशमार्गणाप्रायोग्य-
ध्रुववन्धिप्रकृतय इति सम्मीलिता एकोनपञ्चाशच्छेषप्रकृतय इति ।

अथ मिश्रसम्पत्त्वमार्गणायां शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां द्वैविध्येन कालमाह

सायाइवारसण्ह मीसे समयो ल्ह मुणेयव्वो ।
 णरसुरउरलविउवदुगवइराण भवे मुहुत्तंतो ॥१२५३॥
 पल्लासखियभाणो जेढो पयडीण एगवीसाए ।
 सेसासु सव्वद्धा सप्पाउग्गाण जाणइत्थि ॥१२५४॥

(प्रे०) 'सायाइ' इत्यादि, मिश्रमभ्यक्त्वमार्गणायां मानवेदनीयादिद्वादशप्रकृत्यवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, मार्गणाया अभ्रुवन्वे मति प्रकृतीनामामां वन्धतोऽभ्रुवत्वादिति । 'णरसुर' इत्यादि, मनुष्यद्विकदेवद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्रमनाराचमहननरूपाणां नवानां प्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, यतो हि ये जीवा आसामवन्धकतया प्राप्यन्ते, तेषामवस्थितिरस्यां मार्गणाया जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणव । 'पल्ला' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतयो मनुष्यद्विकः दिनप्रकृतयश्चेत्येकविंशतिप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टकालः पन्थोपमाऽगम्येयतममागप्रमाणो वेदयितव्यः, मार्गणाया अप्या कायस्थितेस्तावत्प्रमाणत्वात् । शेषप्रकृतीनामवन्धका अत्र न वर्तन्ते, अत्रत्येः सर्वे जीवैर्वध्यमानत्वात् ।

'सेसासु' इत्यादि, उक्तेतरमार्गणासु यासां प्रकृतीनामवन्धका वर्तन्ते, ते सर्वाद्यायां भवन्ति । ताश्चेमा शेषमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्यवर्जपटुत्वार्तिशङ्कतिमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, ओषमन्याऽमन्यामयामेदेन मनोयोगमार्गणात्रयं वचनयोगमार्गणात्रयं च, काययोगौघौदारिककाययोगवैक्रियकाययोगाभिधारितस्रो मार्गणाः, अण्गतवेदमार्गणा, अक्रपायमार्गणा, केवलज्ञानमार्गणा, मयमौघदेशविरत्यसंयमरूपास्त्रिमार्गणाः, केवलदर्शनमार्गणा, कृष्णलेश्यादिलक्षणाः षड् मार्गणाः, मन्वाभव्यमार्गणाद्वयम्, मभ्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकमिथ्यात्वलक्षणं मभ्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम्, मश्यमंजिमार्गणाद्वयम्, आहारकमार्गणा चेति नवत्रिंशदधिकशतमार्गणा इति । सूक्ष्ममम्पराये कासाश्चिदपि प्रकृतीनामवन्धकानामप्राप्तेः सा शेषमार्गणातया न गृहीता । भावना त्वेव कार्या—यासु मार्गणासु यामां प्रकृतीनां वन्धोऽभ्रुवोऽस्ति तासु तासां प्रकृतीनामवन्धकालः सर्वाद्वा प्राप्यते, तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां वन्धकानां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वात् । तथा यासु मार्गणासु ध्रुववन्धिप्रकृतीनामप्यवन्धः प्राप्यते, तत्र तामामवन्धका उपरितनगुणस्थाने सर्वदा विद्यन्त इति कृत्वाऽवन्धकालः सर्वाद्वा प्राप्यते ॥१२५३-५४॥ इत्येवमादेशतो मार्गणास्वायुर्बर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां कालोऽभिहित ।

सास्म्रतं मार्गणास्वायुष्कर्मवन्धकानां कालं जघन्योत्कृष्टाभ्यां दर्शयन्नाह

तिरियाउस्सडडभा जहि ण दुसट्ठीअ तत्थ सव्वद्धा ।
 से वधगाण समयो हस्तो कायुरलचउकसायेसुं ॥१२५५॥ (गीति.)
 सेसाण मुहुत्तंतो अण्णह समयोऽत्थि सेसजोगेसु ।
 सप्पाउग्गाऊण सेसासु भवे मुहुत्तंतो ॥१२५६॥

(प्रे०) 'तिरिया' इत्यादि, यासु द्वापष्टिमार्गणासु तिर्यगायुष्कस्याऽष्टौ भङ्गा न भवन्ति, तासु तस्य बन्धकानां कालः सर्वाद्धा बोद्धव्यः । तारचेमा द्वापष्टिमार्गणाः—तिर्यगोघमार्गणा, ओघ-सूक्ष्मौघवाद्रौघसूक्ष्माऽपर्याप्तवाद्राऽपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तादपर्याप्तभेदेन सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, वाद्रपर्या-प्तवर्जपट्पृथ्वीकायमार्गणा एवं पट्कायमार्गणाः पट् तेजःकायमार्गणाः पट्वायुकायमार्गणाः सप्त-माधारणवनस्पतिकायमार्गणा वनस्पतिकायौघमार्गणा प्रत्येकवनस्पतिकायौघमार्गणा अपर्याप्तप्रत्येकवन-स्पतिकायमार्गणा चेति चतुस्त्रिंशत्कायमार्गणाः, काययोगौघमार्गणौदारिकाययोगमार्गणौदारिकमिश्र-काययोगमार्गणाः, नष्टुंमकवेदमार्गणा, क्रोधमानमायालोभलक्षणमार्गणाचतुष्कम्, मत्पज्ञानश्रुताज्ञान-मार्गणाद्वयम्, असंयममार्गणा, अचक्षुर्दर्शनमार्गणा, कृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्यामार्गणात्रयम्, भव्याभव्यमिथ्यान्वाऽसंज्ञाहारकमार्गणाश्चेति । 'समयो' इत्यादि, काययोगौघौदारिकाययोग-कपायचतुष्करूपासु पट्सु मार्गणासु तिर्यगायुष्कवर्जशेषायुष्काणां बन्धकानां जघन्यकालः समय-प्रमाणोऽस्ति, प्रकृतमार्गणाचरमसमये बन्धप्रारम्भणात्, आयुर्वन्धचरमसमये प्रकृतमार्गणासु प्रवेश-भावाद्वा । 'मुहुर्नांतो' इत्यादि, काययोगादिपञ्चमार्गणावर्जशेषप्रागुक्तपट्पृथ्वीशान्मार्गणासु यथासंभवं तिर्यगितरायुषो बन्धे सति तिर्यगायुर्वर्जशेषायुष्कबन्धकानां जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति । तद्यथा—अत्र शेषायुषां बन्धकाः कदाचिदेकादयोऽपि भवन्ति, ते च यदा युगपदायुर्वन्धं प्रारभन्ते, युगपचायुर्वन्धाद् विरमन्ते, तदाऽऽयुर्वन्धबन्धकालस्याऽन्तर्मुहूर्तत्वाज्जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो-ऽवाप्यते । 'समयो' इत्यादि, उक्तातिरिक्तासु पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगवैक्रियकाययोगाहारक-काययोगाहारकमिश्रकाययोगरूपासु शेषयोगमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुष्कबन्धकानां समयप्रमितो जघ-न्यबन्धकालः प्राप्यते, प्रकृतमार्गणाचरमसमये बन्धप्रारम्भणाद्, आयुर्वन्धान्तिमसमये प्रकृतमार्गणासु प्रवेजाद्वा । 'सेसासु' इत्यादि, उक्तातिरिक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां बन्धकानां जघन्यबन्ध-कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः, शेषमार्गणानामायुर्वन्धकालेऽपरावर्तमानत्वात् । शेषमार्गणाश्चोत्कृ-ष्टपदे दर्शयिष्यन्ते ॥१२५५६॥ अथोत्कृष्टबन्धकालमाह—

जाणस्तिय बन्धगा खलु सखा तेसि गुरु मुहुत्तंतो ।

पल्लासंखियभागो इयराऊण भुण्णयव्वो ॥१२५७॥

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, यासु मार्गणासु शेषामायुषां बन्धकाः संख्येया भवन्ति, तेषां प्रकृ-ष्टबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं वेदयितव्यः, यत्र संख्येयायुष्कबन्धकास्तत्रायुष्कबन्धकालः प्रभूततयाप्यन्त-र्मुहूर्तमात्र इति नियमात् । 'पल्ला' इत्यादि, तद्व्यतिरिक्तायुष्कबन्धकानामुत्कृष्टकालः पल्यो-पमाऽसंख्येयभागो ज्ञातव्यः, इहापि भावनौघवत् कार्या । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः—तिर्यगोघ-वर्जपट्त्वार्तिशद्भूमिमार्गणाः, ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिस्रस्तिष्ठो द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियत्रसकायमा-र्गणाः, पर्याप्तवाद्रपृथ्व्यप्तेजोवायुपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, ओघसत्याऽसत्य-सत्यासत्याऽ-

मत्यामृषाभेदेन पञ्चमनोयोगमार्गणाः पञ्च च वचनयोगमार्गणाः, वैक्रियकाययोगाऽऽहारककाययोगा-
हारकमिश्रकाययोगमार्गणात्रिकम्, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणाद्वयम्, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवविभङ्गज्ञानमार्ग-
णापञ्चकम्, संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारदेशविरतिसंयमलक्षणं मार्गणापञ्चकम्, चक्षु-
रवधिदर्शनमार्गणाद्वयम्, तेजःपद्मशुक्ललेख्यामार्गणात्रयम्, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकसास्वाद-
नसम्यक्त्वरूपं मार्गणाचतुष्कम्, संज्ञिमार्गणा चेत्येकोत्तरशतमार्गणा इति । वैक्रियमिश्रकाययोगाऽपग-
तवेदकर्मणकायोगाऽकपायकेवलज्ञानयथाख्यातसूक्ष्मसम्परायसंयमकेवलदर्शनोपशमसम्यक्त्वमिश्रस-
म्यक्त्वाऽनाहारकरूपास्वेकादशमार्गणास्वायुष्कवन्धकानामभावाच्छेषमार्गणात्वेन तान गणयन्त इत्यपि
सुधिया विभावनीयम् । यासु मार्गणासु येषामायुष्काणां बन्धकाः संख्याता लभ्यन्ते, ता मार्गणा इमा
वर्तन्ते, नरकौघरत्नप्रभाशर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु सप्तसु मार्गणासु त्रिंशद्-
देवमार्गणासु वैक्रियकाययोगमार्गणायां मतिश्रुतावधिज्ञानमार्गणासु अवधिदर्शनमार्गणायां तेजःपद्म-
शुक्ललेख्यामार्गणासु सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायिकसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणासु च मनुष्यायुष्कस्य
बन्धकाः संख्येया एव प्राप्यन्ते, तथा शुक्ललेख्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोर्देवायुर्वन्धका अपि संख्या-
ता एव प्राप्यन्ते । मनुष्यौघे देवनरकायुषोर्वन्धकाः, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोरायुश्चतुष्कस्य बन्धकाः,
आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशु-
द्धिदेशविरतिसंयमरूपासु च मार्गणासु देवायुषो बन्धकाः सङ्ख्याता विधन्ते, यथासंभवेतद्व्यतिरि-
क्तायुष्कबन्धका असंख्येया आसु मार्गणासु वर्तन्ते, एतद्व्यतिरिक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यसर्वायुष्कबन्धका
असंख्येया एव जीवा वर्तन्ते इति ॥१२५७॥ इत्येव गदितो मार्गणास्वायुष्कबन्धकानां कालः ।

साम्प्रतं मार्गणास्वायुष्ककर्माऽबन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यां कालमुपदर्शयन्नादौ तमपर्याप्तमनुष्य-
मार्गणायामुपदर्शयति ।

सप्ताऽग्गाऊण अवधगाणं लह् अपञ्जणरे ।

मित्रमुहुतं जेडो पल्लस्स असंखंमाणोऽत्थि ॥१२५८॥

(प्रे०) 'सप्ताऽग्गा' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां स्वप्रायोग्यतिर्यग्मनुष्यायुष्काऽबन्ध-
कानां कालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, तद्यथा-मार्गणा पुनरियं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण-
कायस्थितिमती वर्तते, तस्यां च कदाचिदेकोऽनेके वा जीवा वर्तेरन्, ते च स्वप्रायोग्यायुर्वद्वा जघ-
न्यावाधारूपाऽन्तर्मुहूर्तादिनु सर्वेऽपि युगपदेव मृत्युं यान्ति, तदाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालः समुपल-
भ्यते । 'जेडो' इत्यादि, उत्कृष्टतश्च पर्योपमस्याऽसंख्येयतमभागप्रमाणः कालोऽस्ति, मार्गणाया
अस्या उत्कृष्टकायस्थितेरित्यत्रमाणत्वात् तावत्कालं मार्गणागतान्यान्यजीवापेक्षयाऽबन्धकानां
लाभाच्च ॥१२५८॥

साम्प्रतमाहारककाययोगाहारकमिश्रमार्गणयोरायुष्ककर्माऽबन्धकानां कालं जघन्योत्कृष्टाभ्या-

आहारदुगे समयो अत्यि जहण्णो गुरु मुहुत्ततो ।

(प्रे०) 'आहार' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वये स्वप्रायोग्यायुष्प्रकृत्यवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणः, मार्गणाद्वितीयसमय आयुर्वन्धप्रारम्भात् आहारककाययोगेतु जघन्यकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वादपि । उत्कृष्टतथाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालोऽस्ति, नानाजीपेक्षया मार्गणायाः प्रकृष्टकायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात् ।

इदानीं छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणाद्वय आयुष्काऽवन्धकानां द्विविधं कालं दर्शयितुमाह

णाऊणं सयमुज्झो हस्सो छेअपरिहारेसुं ॥१२५९॥

छेए हवेण जेढो अयरा पण्णासलक्खकोडीओ ।

परिहारे होइ दुवे कोडी पुव्वाण देसूणा ॥१२६०॥

(प्रे०) 'णाऊणं' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च स्वप्रायोग्यायुःप्रकृत्यवन्धकानां जघन्यकालः स्वयमेव ज्ञात्वा समूहः, जघन्यपदे यद्येकादिजीवाः स्युः, तदाऽवन्धकालो जघन्याऽवाधाप्रमाणाऽन्तर्मुहूर्तात्मकः प्राप्यते, यदि च जघन्यपदे शतसहस्रादिपृथक्त्वप्रमाणाः स्युस्तदा तदवन्धकालः प्रकृतमार्गणाजघन्यकायस्थितिप्रमाणो मन्तव्यः, किन्तु जघन्यपदेऽत्र जीवप्रमाणस्य निर्णयमावादुक्तं 'सयमुज्झो' इत्यादि । 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यदेवायुरवन्धकानां प्रकृष्टकालः पञ्चाशत्कोटिलक्षमागरोपमप्रमाणोऽवसेयः, छेदोपस्थापनीयचारित्रस्योत्कृष्टतयैतावत्कालं निरवच्छिन्नं प्राप्यमाणत्वात्, उक्तं च व्याख्याप्रज्ञाप्तौ 'छेओवद्वावणियसंजये ण भते कालओ केच्चिरं हुंति गोयमा .. . 'उकोसेण पण्णास सागरो वमकोडिसयसहस्साइ' ति । 'परिहारे' इत्यादि, परिहारविशुद्धिमार्गणायां स्वप्रायोग्यदेवायुष्काऽवन्धकानामुत्कृष्टकालो देशोनपूर्वकोटिद्वयप्रमाणोऽस्ति, परिहारविशुद्धिचारित्रवतां तावत्कालं प्रकृष्टतोऽनवरतं प्राप्यमाणत्वात् । उक्तं च भगवत्याम्-परिहारविशुद्धिसंजया ण भते कालओ केच्चिरं हुंति ? गोयमा । . . . उकोसेण देसूणाओ दो पुव्वकोडीउ ति ॥१२५९-६०॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतं कथयति

सासायणे जहण्णो समयो जेढो भवे असंखयमो ।

पलिओवमस्स मागो सेसासुं अत्यि सव्वद्धा ॥१२६१॥

(प्रे०) 'सासायणे' इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां स्वप्रायोग्यायुष्काऽवन्धकानां जघन्यकालः समयप्रमाणोऽस्ति । 'जेढो' इत्यादि, उत्कृष्टतथा पण्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणः कालोऽस्ति, मार्गणाया अस्याः कायस्थितेर्जघन्यतः समयप्रमाणत्वादुत्कृष्टतथा पण्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणत्वात् । 'सेसासुं' इत्यादि, अत्रोक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याऽयुष्काऽवन्धकानां

कालः सर्वाद्वा वर्तते, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्गतिमार्गणाः, एकोनविंश-
तिरिन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, मनोयोगमार्गणापञ्चकम्, वचनयोगमार्गणापञ्चकम्,
काययोगौदारिकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगवैक्रियकाययोगमार्गणाचतुष्कम्, वेदमार्गणात्रयम्, क्रोधा-
दिकषायमार्गणाचतुष्कम्, मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवज्ञानमार्गणाचतुष्कम्, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभ-
ज्ज्ञानमार्गणात्रयम्, संयमौघसामायिकदेशविरत्यसंयमलक्षणं मार्गणाचतुष्कम्, चक्षुरचक्षुरवधि-
दर्शनमार्गणात्रयम्, कृष्णादिलेश्यामार्गणापट्कम्, भव्याऽभव्यमार्गणे, सम्यक्त्वौघक्षयोपशमक्षायि-
कमिथ्यात्वरूपं सम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कम्, संस्यसंज्ञिमार्गणाद्वयम्, आहारकमार्गणा चेति सप्तपञ्चाशद-
धिकशतमार्गणाः । एवमभिहतोऽनेकजीवाश्रितो मार्गणास्वायुरवन्धकानां काळः, अभिहिते च तस्मिन् समाप्तं
कालद्वारम् ॥१२६१॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते वन्धविधाने प्रथमाधिकारे द्वादशमनेक-
जीवाश्रित कालद्वार समाप्तम् ॥



॥ अथानेकजीवाश्रितं त्रयोदशमन्तरद्वारम् ॥

अथ क्रमायातमनेकजीवाश्रितं त्रयोदशमन्तरद्वारमोषत आदेशतश्च निरूपयन्नादाबोधतस्तन्नि-
रूपयति ।

लहृमन्तरं लणो सुरणरणिर्थाऊण वधगाणं गुरुं ।

सयमुज्झं सेसाणं ण अबधगाणं च सञ्जेसि ॥१२६२॥

(प्रे०) 'लहृ' इत्यादि, देवमनुष्यनरकायुष्कत्रयबन्धविधायिनां जघन्यं बन्धकानामभावल-
क्षणमन्तरं समयप्रमाणम्, अस्तीत्यायोज्यम् । ननु प्राग्निरूपितादन्तरद्वारादस्मिन्नन्तरद्वारे कः प्रति-
विशेष इति चेद्, उच्यते, प्राक्प्रतिपादितेऽन्तरद्वारे एकजीवमाश्रित्य प्रकृतीनां बन्धकस्याऽबन्धकस्य
चाऽन्तरमुक्तमत्र तु नानाजीवान् प्रतीन्य तदुच्यते इति । 'गुरु' ति, उत्कृष्टमन्तरं स्वयम्भूदम्, तिर्य-
ग्गतिभिन्नगतित्रये उत्पद्यमानानां च्यवमानानां वा जीवानामन्तरप्रतिपादकसूत्रम्यानेकविध-
त्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, उदितायुष्कत्रयवर्जानां मत्तःशाधिकशतप्रकृतीनां बन्धकानामन्तरं नास्ति,
भदैव प्राप्यमाणत्वात्तेषाम् । 'अबधगाणं' इत्यादि, त्रिशत्यधिकशतप्रकृतीनामबन्धकानामन्तरं
नास्ति, सर्वदेवाऽऽसामबन्धकतया मिद्धादिजीवानां प्राप्यमाणत्वात् ॥१२६२॥

इदानीमादेशतो मार्गणास्त्रायुष्कर्मवर्जस्तप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामन्तरं जघन्योत्कृष्टम्यां
निरूपयितुमाह

जहि सञ्जद्धा कालो सप्पाउग्गाणं ओउवज्जाण ।

सव्वाणं वधगाणं तहि तेसि अतरं णत्थि ॥१२६३॥

(प्रे०) 'जहि' इत्यादि, यासु मार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुष्कर्मवर्जानां प्रकृतीनां बन्धकानां
सर्वाद्धा कालो वर्तते, तासु मार्गणासु तेषामन्तरं नास्ति, ता मार्गणाः पुनरिमाः—पक्ष्यमाणौदारिक-
मिश्रकर्मणानाहारकाऽवेदादिचतुर्दशमार्गणावर्जाः षष्ट्यधिकशतध्रुवमार्गणा इति ॥१२६३॥

साम्प्रतमौदारिकमिश्रकाययोगादिमार्गणास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टमन्तरं निरूप्यते—

ओरालमीसजोगे कम्मणजोगे तहा अणाहारे ।

सुरविउव्वडुगजिणाणं हस्सं समयो भुजेयव्वो ॥१२६४॥

देवविउव्वडुगाणं मासपुहुत्तं गुरुं जिणस्स भवे ।

वासपुहुत्तं ण भवे सप्पाउग्गाणं सेसाण ॥१२६५॥

(प्रे०) 'ओराल' इत्यादि, औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगाऽनाहारकरूपासु तिसृषु मार्गणासु
देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणं ज्ञातव्यम् ।
तेदेवम्—मार्गणास्त्रासु प्रकृतप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकतयाऽविरतमभ्यगृह्यतो भवन्ति, ते च मार्गणाकालं
धावद् बन्धं कृत्वा यदा मार्गणान्तरं व्रजन्ति, तदा बन्धकानामभावलक्षणस्यान्तरस्यारम्भो भवति, सम-
यान्तरे यदा केचिदविरतसभ्यगृहिणीनाः प्रकृतमार्गणाः प्रविशन्ति तदा प्रस्तुतप्रकृतिपञ्चकस्य बन्धकाः

प्राप्यन्ते, इत्थं समयप्रमाणमन्तरं सूचयते । आमामेव पञ्चप्रकृतीनां प्रकृष्टमन्तरं दर्शयति—‘देव’ इत्यादिना देवद्विकवैक्रियद्विकयोः प्रकृष्टमन्तरं मासपृथक्त्वप्रमाणं तथा जिननाम्नो बन्धकान्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं ज्ञातव्यम्, क्रमेणासां बन्धकानां प्रकृष्टोत्पादविरहकालस्य तावन्मितत्वात् । इदं भुक्तं भवति—मार्गेणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकबन्धकतया देवनारकेभ्योऽविरतमस्यगृष्टिमनुष्यतयोत्पद्यमानास्तथा मनुष्येभ्यस्तिर्यक्षूत्पद्यमानाः कृतकरणाः क्षायिकसम्यगृष्टयो वा भवन्ति, तेषामुत्पादविरहकालस्य प्रकृष्टतया मासपृथक्त्वादान्तरमपि देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां बन्धकानां तावन्मितं प्राप्यते । जिननाम्नो बन्धकतया मनुष्येभ्य उत्पद्यमाना जिननामसत्कर्माणो देवनारकास्तथा देवनारकेभ्य उत्पद्यमाना जिननामसत्कर्माणो मनुष्या भवन्ति, तेषां समुदितप्रकृष्टविरहकालस्य वर्षपृथक्त्वप्रमाणत्वाद् जिननामबन्धकानामन्तरमपि तावान्मितं सूचयते, अत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाची द्रष्टव्यः ।

अस्मिन् द्वारे यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकानामबन्धकानां च जघन्यमुत्कृष्टं चाऽन्तरं कथयिष्यते, तत्र तासां बन्धकानामबन्धकानां च जघन्योत्कृष्टविरहकालस्तावन्मितोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । ‘ण भवे’ इत्यादि, उक्तप्रकृतिपञ्चकातिगितस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामन्तरं नास्ति, सदा कालं तेषां सद्भावात् । ताश्चेमाः सप्तचत्वारिंशद्भुवन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयतिर्यग्मनुष्यगतिद्वयजातिपञ्चकौदारिकद्विकसहननपट्कसंस्थानपट्कतिर्यग्मनुष्यानुपूर्वोद्वयखगतिद्वयत्रसदशकस्थावदशकादपोद्योतपराघातोच्छ्वासगोत्रद्वयरूपाः षष्टिः प्रकृतयश्चेति ॥१२६४५॥

अधुनाऽपगतवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृष्टात्मकमन्तरं दिदर्शयिषु राह

णो अंतर अवेए हवेज्ज सायस्स सेसपयडीणं ।

समयो अत्थि जहण्ण उक्कोसं होइ छग्गासा ॥१२६६॥

(प्रे०) ‘णो’ इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां मातवेदनीयस्य बन्धकानामन्तरं नास्ति, तेषामत्र सदैव सद्भावात् । ‘सेस’ इत्यादि, सातवेदनीयातिरिक्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, तदेवम्—मार्गणायामस्यामेतत्प्रकृतिबन्धकाः श्रेणौ केचन जीवाः समायाताः सन्तः सर्वेऽपि सहैव यथायोगे शेषप्रकृतीनां बन्धविच्छेदं कुर्वन्ति, तदा न कोऽपि तासां बन्धकतया प्राप्यते, अनन्तरसमये मार्गणायामस्यामन्ये जीवाः शेषप्रकृतिबन्धकतयाऽऽयान्ति, तदा समयप्रमाणमन्तरमत्र समुपलभ्यते । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कयशःकीट्युच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपा विशतिरिति । ‘उक्कोसं’ इत्यादि, प्रकृतशेषविंशतिप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं षण्मासप्रमाणं भवति, श्रेणिविरहकालस्य प्रकृष्टतया तावन्मितत्वात् ॥१२६६॥

साम्प्रतं छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि-संयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानां जघन्योत्कृ-

एतोऽन्तरं प्ररूपयितुमाह

छेए तह परिहारे सयमुज्झ लहु कुवेअणीआणं ।

कुजुगलयिराइतिजुगलत्तिथाहारकुगणामाण ॥१२६॥

सेसाण कमा गेय सहस्सवासा तिवट्ठिचुलसीई ।

सव्वाण गुरुं अयर अट्टारस कोडिकोडीओ ॥१२६८॥

(प्रे०) 'छेए' इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः साताऽसातवेदनीय-
द्वयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तियुगलत्रयजिननामाहारकद्विकनामरूपाणां
पञ्चदशप्रकृतीनां बन्धकानां जघन्यमन्तरं स्वयभूधम् । मार्गणयोरनयोर्जघन्यपदे जीवानां सङ्-
ख्याया निर्णयाभावात् कालम्भ भावना भाव्या । 'सेसाण' इत्यादि, मानवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृति-
वर्जस्वप्रायोग्यसकलप्रकृतीनां बन्धकानां क्रमेण त्रिपष्टिसहस्रवर्षाणि चतुरशीतिसहस्रवर्षाणि च जघ-
न्यतोऽन्तरं द्रष्टव्यम्, उत्कृष्टतश्चाऽन्तरं सर्वामामपि प्रकृतीनामष्टादशकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणम् ।
मार्गणयोरनयोर्जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरस्यैवविधत्वात्, उक्तं च जीवसमासे तद्वृत्तौ च "तेवढो चुल-
सीई वाससहस्साइ छेयपरिहारे । अवर परमुदहीण अट्टारस कोडिकोडीओ॥ छेदोपस्थापनीयसयतानां त्रिष-
ष्टिर्वर्षसहस्राभ्यन्तरं जघन्यमपरं भवति, 'परिहारे' त्ति परिहारविशुद्धिकसयतानां-चतुरशीतिर्वर्षसहस्रा-
भ्यपरं जघन्यमन्तरं सम्पद्यते, परम्-उत्कृष्टं त्वन्तरमुभयेषामपि प्रत्येकमष्टादशसागरोपमकोटीकोट्यः" ।
॥१२६७-८॥

अथ शेषास्वष्टसान्तरमार्गणासु स्वप्रायोग्याधुर्वर्जसमस्तप्रकृतिबन्धकानां जघन्यमन्तरं कतिप-
यासु मार्गणासु चोत्कृष्टमप्यन्तरमुपदिदर्शयितुमाह

सेसासु लहुं समयो सप्पाजमाण सव्वपयडीणं ।

पल्लासखियभागो अपज्जणरमोससासणेसु गुरुं ॥१२६९॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सेसासु' इत्यादि, कथितव्यतिरिक्ताऽध्रुवमार्गणास्वेव स्वप्रायोग्यसकलप्रकृति-
बन्धकानां समयप्रमाणं जघन्यमन्तरमवसेयम्, प्रकृतमार्गणासत्कजघन्यान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् ।
शेषमार्गणाः पुनरिमाः-अपर्याप्तमनुष्यवैक्रियमिश्राहारकाययोगाहारकमिश्रकाययोगसङ्गमसम्परायोप-
शमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनसम्यक्त्वरूपा अष्टौ मार्गणा इति ।

'पल्लासखिय' इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनसम्यक्त्वरूपासु तिसृषु
मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानां प्रकृततोऽन्तरं पण्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणमधिगन्तव्यम्,
मार्गणानामासामुत्कृष्टान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे-पल्लाऽसखियभागं सासण-
मिस्सासमत्तमणुएसु ॥१२६९॥

अथ वैक्रियमिश्रभागणायामाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोश्चाऽऽधुर्वर्जोत्तरप्रकृति-
बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमाह

वेउवमीसजोगे एगिदियथावरायवाण भवे ।

चउवीसा व मुहुत्ता जिणस्स होइ वरिसपुहुत्तां ॥१२७०॥

अत्थि मुहुत्ता वाह सप्ताउगाण सेसपयडीण ।

आहारदुगे जेय सध्वेसि हायणपुहुत्तं ॥१२७१॥

(प्रे०) वेउन्वे' स्त्यादि, वैक्रियमिश्रमार्गगायामेकेन्द्रियस्थावगतपनामकमलक्षणस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं चतुर्विंशतिमुहूर्तमानमस्ति । 'वा' शब्दः पक्षान्तरसूचकः, ततो द्वादशमुहूर्तप्रमाणं वाऽन्तरं ज्ञेयम् । भावना पुनरेवम्—प्रकृतप्रकृतित्रयस्य बन्धका भवन्तपतिप्रभृतीशानान्तदेवा वर्तन्ते, तेषामुत्पत्त्यन्तरस्य प्रत्येकं चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाणमुत्कृष्टतया सत्त्वेन वैक्रियमिश्रमार्गगायां तावत्कालं न कोऽपि तद्वन्धकत्वेनोपलभ्यते, अतस्तद्वगरे तेषां चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाणं प्रकृष्टमन्तरं समुपलब्धं भवति । यद्वा ममुदितानामीशानान्तदेवपर्यन्तानामन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमाणं सम्भाव्यते, तदा प्रकृतप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टमन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमाणमवसेयम् । 'जिणस्स' इत्यादि, जिननामकर्मबन्धकानां प्रकृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणमवसेयम्, यतो बद्धनिकाचितजिननामा मनुष्यः स्वकीयमवाद् देवलोक उत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वानन्तरमुत्पद्यते । वर्षपृथक्त्वशब्दोऽत्र वर्षपहुत्यार्थको विज्ञेयः, अन्यथाऽनुपपत्तिरत्र स्यात् । 'अत्थि' शेषाणामुक्ततरप्रकृतीनां बन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं द्वादशमुहूर्तप्रमाणमस्ति, एतन्मार्गणामत्काऽन्तरस्य द्वादशमुहूर्तप्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे विड्विस्मिस्सेषु वारस हु ति मुहुत्ता । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवधन्वि-प्रकृतयो वेदनीयद्विकं हाम्यादियुगलद्वयं वेदत्रय तिर्यग्नरगतिद्वयं पञ्चेन्द्रियजातिगौदारिकद्विकं सहननपट्कं संस्थानपट्कं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं खगतिद्विकं त्रयदशकमस्थिरपट्कमुद्योतपरावातो-च्छ्वासनामत्रयं गोत्रद्वयं चेत्येकपञ्चागदभ्रुवधन्विप्रकृतयश्चेत्यष्टनवतिरिति । 'आहारदुगे' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमाणं वेदयितव्यम्, मार्गणयोरनयोत्कृष्टान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । उक्तं च जीवसमासे, आहारमिस्सजोगे त्रायपुहुत्त । अत्र आहारमाह लोए छमास जा न होंति उ कयाई' इत्यादि, प्रज्ञापनावचनाद् आहारककाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगयोरन्तरं षण्मासप्रमाणं भवति, तेनाऽत्रानेनाभिप्रायेण षण्मासप्रमाणं सर्वासा प्रकृतीनां बन्धकानामन्तरं वक्तव्यम् । तत्त्वं त्वत्र सर्ववेदिनो विदन्ति । १२७०-७१॥

सम्प्रति सूक्ष्मसम्परायमार्गगायामुपशमसम्यक्त्वमार्गगायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमुपदर्शयन्नाह

पुहुमे होइ छमास। अत्थि उवसमन्नि हायणपुहुत्तं ।

तित्थाहारदुगाण सत्त दिणा हवइ सेसाण ॥१२७२॥

(प्रे०) 'सुहुमे' इत्यादि, सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गगायां स्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं षण्मासप्रमाणमस्ति श्रेणेरुत्कृष्टतः षण्मासिकाऽन्तरभावेन मार्गगाया अस्या अन्तरस्य तावत्प्रमाण-

त्वात् । उक्तं च—“मूक्षमसम्परायचारित्रिणां तु जघन्यत समय उत्कृष्टस्तु षड्मासा विरहकालः” इति ।
 “उचसमम्मि” इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जिननामाहारकद्विकरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्ध-
 कानामुत्कृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वप्रमित वेदयितव्यम् , प्रथमोपशमसम्यक्त्वे प्रकृतप्रकृतित्रयस्य बन्धा-
 भावेन श्रेणिसत्कोपशमसम्यक्त्व एव तद्वन्धसम्भवेन चोपशमश्रेणिविरहकालतोऽधिकविरहकालस्य
 प्रकृष्टतया सम्भ्रान्त्यूनविरहकालस्याऽसम्भवाच्च । ‘सप्त’ इत्यादि, जिननामाहारकद्विकेतरप्रकृतित्रय-
 कानामुत्कृष्टमन्तरं सप्त दिनानि वर्तते, उपशमसम्यक्त्वप्राप्तेरन्तरस्योत्कृष्टतः सप्तदिनप्रमाणत्वेन
 तावत्कालं शेषप्रकृतिवन्धकत्वेन कस्याप्यत्र जीवस्य प्राप्यमाणत्वाभावात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः
 मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकमृते एकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकहास्यादियुगल-
 द्वयपुरुषवेददेवमनुष्यगतिद्वयपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकौदारिकद्विकवर्षमनाराचसहननसमचतुर—
 स्रसंस्थानदेवमनुष्यानुपूर्वीद्वयसुखगतित्रसदशकाऽस्थिराऽशुभायशःकीर्तिपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाः
 पञ्चत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२७२॥ इत्येवमभिहितमार्गणास्वायुष्मज्जर्जोत्तरप्रकृतिवन्धकाना-
 मन्तरम् ।

इदानीं मार्गणास्वायुष्मज्जर्जशेषोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरमुपदशयेन्नादौ
 सास्वादनमम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणासु तद् दर्शयति—

अंतरमबघगाण अपज्जणरमीससासणेसु ल्हं ।

समयो सच्चाणं गुरुं पल्लस्स भवे असल्लसो ॥१२७३॥

(प्रे०) ‘अंतर’ इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यसास्वादनमम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वरूपासु तिसृषु
 मार्गणास्वायुर्वर्जस्वप्रायोग्यासु प्रकृतिषु दामाभवन्धः प्राप्यते, तासां सर्वासां प्रकृतीनामवन्धकानां
 जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च पल्लोपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, मार्गणानामासां जघन्यतः
 समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च पल्लोपमाऽसंख्येयभागप्रमाणस्याऽन्तरस्य सत्त्वात् ॥१२७३॥

अधुना मनोद्वयादिमार्गणास्ववन्धकानां कथयति

इगतीसधुवाणं ल्हं दुमणवयणयणजणयणसण्णीसु ।

समयो गुरुं छमासा सेसाण अतरं गत्थि ॥१२७४॥

(प्रे०) ‘इगतीस’ इत्यादि, अमत्यमनःसत्यामत्यमनोऽसत्यवचनसत्यासत्यवचनचक्षुर्दर्श-
 नाऽचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु सप्तसु, मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्र-
 त्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाः षोडशः प्रकृतीर्विहाय शेषाणामेकत्रिंशद्भ्रुवबन्धि-
 प्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयरूपमुत्कृष्टं च षण्मासप्रमाणमस्ति । भावना पुनरेवम्—
 प्रकृतीनामासां श्रेणावेव बन्धविच्छेदसम्भवेन तासामवन्धकाः श्रेणावेव समुपलभ्यन्ते, श्रेणेऽन्तरस्य
 जघन्यतयोत्कृष्टतया च तावन्मितत्वात् । ‘सेसाणं’ इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतयः,
 आयुर्वर्जसर्वावृवबन्धिप्रकृतयश्चेति पञ्चाशीतिप्रकृतीनामवन्धकानामन्तरं नास्ति, अनवरतं तेषां बन्ध-
 कानामुपलभ्यमानत्वात् ॥१२७४॥

अथौदारिकमिश्रकर्मणकाययोगमार्गणयोः प्रकृतान्तरमाह

ध्रुववधिरालाण समयो लहुरलभीसकम्भेमुं ।

जेठं वासपुहुत्त ध्रुववधीण भुण्तीसाए ॥१२७५॥

मासपुहुत्त णेय थीणद्धितिगणमिच्छउरलाण ।

णो अत्थि अतर खलु सप्पाज्जाण सेसाण ॥१२७६॥

(प्रे०) 'ध्रुव' इत्यादि, औदारिकमिश्रकर्मणकाययोगमार्गणायां कर्मणकाययोगमार्गणायां च सप्तचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, भावना त्वेवं विधेया-औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणा तिर्यग्मनुष्यगत्योरुत्पत्तिसमये, मनुष्यगतौ केवलिसमुद्घातावसरे द्वितीयसमये षष्ठमसमययोश्चाऽप्यप्यते, कर्मणकाययोगमार्गणा त्वन्तरालगतौ केवलिसमुद्घातवेलायां च तृतीयतुर्यपञ्चमसमयेषु प्राप्यते, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां कर्मणकाययोगमार्गणायां च मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्यौदारिकशरीरनाम्नश्चाऽवन्धकाः सम्यग्दृष्टयो वर्तन्ते, शेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनां तु ते वन्धका एव, केवलिसमुद्घातावसरे पुनरत्र प्रकृतसकलप्रकृतीनामवन्धकाः प्राप्यन्ते, सम्यग्दृष्टीनां केवलज्ञानिनां च मार्गणयोरनयोरागमने जघन्यतः समयप्रमाणमन्तरं भवति, तदा प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानां समयप्रमाणमन्तरमुपलब्धं भवति । 'जेठ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकविहाय शेषाणापेकोनचत्वारिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकानां प्रकृष्टमन्तरं वर्षपृथक्त्वं भवति, तदेवम्-मार्गणयोरनयोरेतामां प्रकृतीनामवन्धकाः समुद्घातावसरे केवलज्ञानिनो वर्तन्ते, केवलिसमुद्घातस्य यदोत्कृष्टतो वर्षपृथक्त्वप्रमाणमन्तरं भवति, तदा मार्गणयोरनयोः कस्यापि जीवस्य प्रकृतप्रकृत्यवन्धकतयाऽविद्यमानत्वेनाऽभिहितप्रमाणमन्तरमवाप्तुं योग्यम् । 'भास' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुवन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमोहनीयौदारिकशरीरनामलक्षणस्य प्रकृतिनवकस्यावन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं मासपृथक्त्वमवगन्तव्यम् । यतो मार्गणयोरनयोः सम्यग्दृष्टिजीवानामागमने प्रकृष्टतो मासपृथक्त्वात्मकमन्तरं भवति, ते च तदवन्धकाः सन्ति । 'णो' इत्यादि, उदितेतरशेषप्रकृत्यवन्धकानामन्तरं नास्ति, सततं तेषां प्राप्यमाणत्वात् । ताश्चेमाः-शेषप्रकृतयः-वेदनीयद्विकहास्यादियुगलद्वयवेदत्रयदेवमनुष्यतिर्यग्गतित्रयजातिपञ्चकौ-दारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकसंहननपट्कसंस्थानपट्कदेवमनुष्यतिर्यगानुपूर्वीत्रयस्वगातिद्वयत्रसदशकस्था-वरदशकातपोद्योतपराधातोच्छ्वासजिननामगोत्रद्वयरूपाश्चतुःषष्ट्यध्रुववन्धिप्रकृतय इति ॥१२७५-६॥

इदानीं वैक्रियमिश्रमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानां द्विविधमप्यन्तरं प्रदर्शयन्माह

वेज्ज्वभीसजोगे सप्पाज्जाण सव्वपयडीण ।

समयो भवे जहणं उक्कोसं वारस भुहुत्ता ॥१२७७॥

(प्रे०) 'वेज्ज्व' इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां स्वावन्धप्रायोग्याणां सकलप्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति । 'उक्कोसं' इत्यादि, उत्कृष्टमन्तरं सर्वासां प्रकृतीनां

द्वादशमुहूर्तप्रमाणम्, मार्गणाया अस्या जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तरस्य तावन्मितत्वात् ॥१२७७॥

इदानीमाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयविध-
मन्तरं निरूपयितुमाह

आहारदुगे हविरे सप्पाउग्माण जाण पयडीणं ।

ताण जहण्ण समयो उक्कोसं हायणपुहुत्त ॥१ ७८॥

(प्रे०) 'आहार' इत्यादि, आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां
यासां प्रकृतीनामबन्धका वर्तन्ते, तेषां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वप्रमाणमस्ति,
मार्गणयोरनयोर्जघन्यतः समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च वर्षपृथक्त्वप्रमाणस्याऽन्तरस्य भावात् ॥१२७८॥

सम्प्रति स्त्रीनपुंसकवेदलक्षणमार्गणाद्वय आयुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं द्वैविध्येनाह

धीणपुमेसुं जेसि सव्वद्धा ताण अतर णत्थि ।

सेसाण लहुं समयो वासपुहुत्तं भवे जेहुं ॥१२७९॥

(प्रे०) 'धी' इत्यादि, स्त्रीवेदनपुंसकवेदाल्पयोर्मार्गणयोर्यामां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां
प्राप्यन्ते, तेषामत्र नास्त्यन्तरम् । ताश्चेमाः प्रकृतयः—मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्धि त्रिकाऽनन्तानुबन्धि-
प्रभृतिकषायद्वादशरूपपोडशप्रकृतय एकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरण-
चतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनामबन्धका एव न भवन्ति, अत्रस्थैः सर्वैरेव
जीवैर्विध्यमानत्वादामाह । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं
समयप्रमाणमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वप्रमाणं विज्ञेयम् । भावनाप्रकारस्त्वेवम्—मार्गणयोरनयोः शेषप्रकृती-
नामबन्धकाः श्रेणावेव प्राप्यन्ते, यदा श्रेणेर्जघन्यतः समयप्रमाणमन्तरमुत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्व-
प्रमाणं जायते, तदा तावत्प्रमाणमन्तरं शेषप्रकृत्यबन्धकानामुपलब्धं भवति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—
निद्राद्विक्रमयजुगुप्सातैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपास्त्रयोदशेति ॥१२७९॥

अधुना पुरुषवेदमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामुभयप्रकारेणाऽन्तरं चिकथयिषुराह—

पुरिसे जेसि कालो सव्वद्धा ताण अतर णत्थि ।

सेसाण लहुं समयो साहियवासो भवे जेहुं ॥१२८०॥

(प्रे०) 'पुरिसे' इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्धायां समुप-
लभ्यन्ते, तेषामन्तरं न संभवति । ताश्चानन्तरोक्ताः षोडशध्रुवबन्धिन्यस्तथैकोनसप्तत्यध्रुवबन्धि-
प्रकृतयश्च । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनाम-
बन्धका न सन्ति, सर्वैरेवाऽत्रस्थैर्जीवैर्विध्यमानत्वात्तासाम् । 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विक्रमय-
जुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशानां शेषप्रकृतीनाम-

बन्धकानां जघन्यतः समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च साधिकवर्षप्रमाणमन्तरं वेदयितव्यम् , मार्गणायामस्यां श्रेणेरन्तरस्य तावन्मात्रत्वात् ॥१२८०॥

इदानीं क्रोधमानमायारूपासु तिसृषु मार्गणास्त्रायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्विविधमप्यन्तरं विभावयन्नाह—

तिक्सायेसु जेसि सव्वद्धा ताण अंतर णत्थि ।

सेसाण लहुं समयो पुरुमहियसमा उअ छमासा ॥१२८१॥

(प्रे०) 'तिक्सायेसु' इत्यादि, क्रोधमानमायालक्षणासु तिसृषु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्यां भवन्ति, तेषामन्तरं नास्ति, ताः प्रकृतयस्तु स्त्रीवेदादिमार्गणोक्ता ज्ञातव्याः। 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विक्रमयजुष्यावर्णचतुष्कृतैजमकर्मणशरीरद्वयाऽगुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां क्रोधमागणायां, मानमार्गणायामुक्तत्रयोदशप्रकृतीनां संज्वलनक्रोधस्य च, मायायां तूक्तत्रयोदशानां संज्वलनक्रोधमानयोरप्यबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं च साधिकैकवर्षप्रमितमस्ति । 'उअ' इत्यादि, मतान्तरेण पुनः पण्मासिकमुत्कृष्टमन्तरमस्ति । मार्गणास्त्रासु श्रेणेर्जघन्यतः समयप्रमाणस्योत्कृष्टतश्च साधिकवर्षप्रमाणस्य मतान्तरेण पुनः पण्मासप्रमाणस्याऽन्तरस्य सद्भावात् ॥१२८१॥

अथ लोभमार्गणायामायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानां द्वैविध्येनाऽन्तरमावेदयितुमाह—

लोहे हवए जेसि सव्वद्धा ताण अंतर णत्थि ।

सेसाण लहुं समयो उवकोसं होइ छमासा ॥१२८२॥

(प्रे०) 'लोहे' इत्यादि, लोभाख्यमार्गणायां यासां प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्यां भवन्ति, तेषामन्तरं नास्ति । ताश्चेमाः षोडशध्रुवबन्धिन्य एकोनसप्तत्यध्रुवबन्धिन्यश्च । ज्ञानावरणपञ्चदशनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामबन्धका न सन्ति । 'सेसाण' इत्यादि, निद्राद्विक्रमयकुत्सानामध्रुवबन्धिनयकसंज्वलनचतुष्करूपाणां सप्तदशप्रकृतीनामबन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमुत्कृष्टं च पण्मास भवति, अत्र श्रेणेस्तावत्प्रमाणाऽन्तरस्य भावात् ॥१२८२॥

सम्प्रति मतिश्रुतज्ञानमार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यबन्धकानामन्तरं दर्शयन्नाह—

णाणडुगे सव्वद्धा जाण दुतीसाअ अतरं णो सि ।

सेसाण लहुं समयो उवकोसं होइ छमासा ॥१२८३॥

(प्रे०) 'णाणडुगे' इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाभिधयोर्मार्गणयोर्यासां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनामबन्धकाः सर्वाद्यां वर्तन्ते, तेषामन्तरं न भवति । ताश्चेमा द्वात्रिंशत्प्रकृतयः—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं वेदनीयद्विकं हास्यादियुगलद्वयं देवमनुष्यगतिद्वयमौदारिकद्विकं क्रियद्विकमहारिकद्विकं वन्नर्पभनाराचसंहननं देवमनुष्यानुपूर्वीद्वयं स्थिरशुभयशःकीर्तित्रयमस्थिरा-

शुभाऽयशःकीर्तित्रयं जिननाम चेति । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृत्यन्धकानां जधन्यमन्तरं समयमितमुत्कृष्टं च पणमासप्रमितं भवति, श्रेणेन्तरस्याऽत्र तावत्प्रमाणत्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चदशनावरणचतुष्कनिद्रादिकसञ्जलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णचतुष्कतैजसकर्मणशरीरद्व-यागुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिसम-चतुरस्रसंस्थानमुखमतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जसप्तकपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपाश्चतुर्दशाऽधुव-वन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२८३॥

अथाऽवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणयोरन्धकानामुभयविधमन्तरं निरूपयितुमाह-

णे सिमन्तरमोहिदुगे सञ्चद्धा जाण अत्थि सेसाणं ।

समयो लहुमहियसमा वासपुहुत्त व होइ गुरुं ॥१२८४॥

(प्रे०) 'ण' इत्यादि, अवधिज्ञानावधिदर्शनमार्गणाद्वये यासां प्रकृतीनामन्धकाः सर्वदैववर्तन्ते, तेषामन्तरं नास्ति । 'सेसाण' इत्यादि, तद्व्यतिरिक्तशेषप्रकृत्यन्धकानां जधन्यतयाऽन्तरं समयप्रमाणं प्रकृष्टं च साधिकवर्षप्रमाणं मतान्तरेण पुनर्वर्षपृथक्त्वप्रमाणमवसातव्यम्, श्रेणेन्तरस्याऽत्र तावत्प्रमाणत्वात्, मतान्तरेण पुनः वर्षपृथक्त्वप्रमाणत्वाच्च । उभयत्राऽपि प्रकृतयो मतिश्रुतज्ञानमार्गणयोरभिहिता ग्राह्याः ॥१२८४॥

इदानीं मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां प्रकृतमन्तरं दर्शयति-

सायाइपणरसण्ह मणणाणे णत्थि अतर चेव ।

सेसाण लहुं समयो उक्कोस हायणपुहुत्तं ॥१२८५॥

(प्रे०) 'सायाइ' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभा-शुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकेलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनामन्धकानामन्तरं नास्ति, सर्वदैव तेषां समुपलभ्यमानत्वात् । 'सेसाण' इत्यादि, तदतिरिक्तप्रकृत्यन्धकानां जधन्यमन्तरं समयः, उत्कृष्टं च वर्षपृथक्त्वं ज्ञेयम्, श्रेणेरिहाऽन्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-मिथ्यात्वमोहनीयादिषोडशप्रकृतिवर्जशेषैकत्रिंशद्भुवन्धिप्रकृतयः, पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानदेवानुपूर्वीमुखमतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जसप्तकपराधातोच्छ्वासोच्चैर्गोत्ररूपा अष्टादशाधुवन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१२८५॥

अथाऽज्ञानत्रये यथाख्यातसंयममार्गणायां चायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यन्धकानामुभयथाऽन्तरमुच्यते-

तिअणाणेषु खणो लहु मिच्छस्स पलियअसंखमागोऽण्णं ।

णऽण्णाणऽहखाए लहु सायस्स खणो छमासाऽण्णं ॥१२८६॥

(प्रे०) 'तिअणाणेषु' इत्यादि, मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभज्ज्ञानरूपासु तिसृष्वज्ञानमार्गणासु

मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, उत्कृष्टं चाऽन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति, यतो हि मार्गणयोरनयोर्मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकाः सास्वादना जीवा वर्तन्ते, सास्वादनमस्यवत्त्वस्य च जघन्यमन्तरं समयमितमुत्कृष्टं च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्ति । शेषध्रुववन्धिनीनामवन्धका न मन्ति, तथाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकाः सदा प्राप्यन्ते, तस्मादध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धकानामन्तरं निषिद्धं ज्ञेयम् ।

‘ऽहस्त्राए’ इत्यादि, यथाख्यातसंयममार्गणायां सातवेदनीयस्याऽवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च पणमामा वर्तन्ते, तद्यथा—मार्गणायामस्यां सातवेदनीयस्याऽवन्धका अयोगिकेवलिनो वर्तन्ते, अयोगिगुणस्थानस्याऽन्तरं जघन्यतः समयप्रमाणमुत्कृष्टतश्च पणमासप्रमाणमस्ति, तस्मादुक्तप्रमाणमन्तरमुपपन्नं भवति । मार्गणायामस्यां शेषप्रकृतयो नैव वध्यन्ते, अतस्तामामवन्धकानामपि मार्गणं कुतः ? इति ॥१२८६॥

अथ सामायिकसंयममार्गणायां प्रस्तुतमाह

सायाइपणरसण्ह सामइए णत्थि अतरं चेव ।

तेत्तोसाअ जहण्ण समयो गुरुमत्थि छग्गासा ॥१२८७॥

(प्रे०) ‘सायाइ’ इत्यादि, सामायिकसंयममार्गणायां सातवेदनीयप्रमुखपञ्चदशप्रकृत्यवन्धकानामन्तरं नास्ति, सततं तेषां प्राप्यमाणत्वात् । ‘तेत्तोसाअ’ इत्यादि, निद्राद्विकसंज्वलनत्रिकभयजुगुप्सार्तैजमकर्मणशरीरद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलधूपघातनिर्माणरूपाः षोडशध्रुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेददेवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रस्थानदेवानुपूर्वीशुभविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रसप्तकपराघातोच्छ्वायरूपाः सप्तदशाऽध्रुववन्धिप्रकृतयश्चेति त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितं प्रकृष्टं च पणमासा भवन्ति, श्रेणेरन्तरस्येयत्प्रमाणत्वादिह । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनलोभाऽन्तरायपञ्चकोच्चैर्गोत्ररूपाणां षोडशप्रकृतीनामवन्धका एव न वर्तन्ते, यतः सर्वेऽत्रस्था जीवास्ता वधन्ति, तस्मात्तदन्तरविचारणाऽप्रकृतेति ॥१२८७॥

अधुना छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोरायुर्वर्जोत्तरप्रकृत्यवन्धकानामुभयविधमन्तरं निरूपयन्नाह

छेए तह परिहारे पणरससायाइगाण सयमुज्जे ।

लहुमियरेसि समयो गुरुमयरसिद्धारकोडिकोडोओ ॥१२८८॥ (गीति.)

(प्रे०) ‘छेए’ इत्यादि, छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयममार्गणयोः सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिननामाहारकद्विकरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं स्वयमूहम् । अनयोर्मार्गणयोर्जघन्यपदे जीवसङ्ख्याया निर्णया-

भावात् । '२५रेसि' इत्यादि, सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतिवर्जशेषप्रकृतिषु यासामवन्धका वर्तन्ते, तासां शेषप्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमितमस्ति, भावना पुनरेवं विधेया-छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां चतुर्दशज्ञानावरणीयादिप्रकृतयः सञ्चलनलोभ उच्चैर्गोत्र चेति षोडशप्रकृतीः सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीश्च वर्जयित्वा शेषप्रकृतीनामवन्धकाः श्रेणावेव प्राप्यन्ते, अतः श्रेण्यपेक्षयैव प्रकृतमन्तरं समुपलब्धं भवति, तद्यथा-प्रस्तुतमार्गणायां वर्तमानेषु जीवेषु ये केचन जीवाः श्रेणाववन्धकतया प्राप्यन्ते, ते च यदा सर्वे सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकमवाप्नुवन्ति, तदा प्रकृतशेषप्रकृत्यवन्धकानां मार्गणाविच्छेदात् प्रकृतमार्गणायां न कोऽपि प्रकृतशेषप्रकृत्यवन्धकोऽस्ति, तदनन्तरसमये उपशमश्रेणेरवरोहकाः केचन जीवाः पुनरपि नवमगुणस्थानकमायान्ति, तदा प्रकृतशेषप्रकृत्यवन्धकानामस्यां मार्गणायां प्राप्तिर्भवति, अतः समयप्रमाणमन्तरं प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानामत्र प्राप्यते । प्रकारान्तरेणाऽपि समयात्मकाऽन्तरस्य भावना स्वयं भाव्या । ज्ञानावरणीयादिषोडशप्रकृतिवर्जनं तत्र तदवन्धकानामप्राप्यमाणत्वाद् विज्ञेयम् ।

परिहारविशुद्धिमार्गणायां पुनः शेषप्रकृत्यवन्धकानामेव विरहादन्तरं न सम्भवति । 'गुरु' मित्यादि, सर्वासामवन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामवन्धकानामुत्कृष्टमन्तरमष्टादशकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणमस्ति, मार्गणाप्रकृष्टविरहकालस्य तानन्मितत्वात् । छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणायां ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतिवर्जवध्यमानशेषप्रकृतीनां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च सातवेदनीयादिपञ्चदशप्रकृतीनामेवाऽवन्धकानां प्रकृतमन्तरं विज्ञेयम् ॥१२८८॥

साम्प्रतमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां शेषमार्गणासु चोत्तरप्रकृत्यवन्धकानामन्तरं वेदयितुमाह

सञ्वाण लहुमुवसमे समयो सायाइवारसण्ह तहा ।
 वइरणरसुरोरा लियविउवाहारकुगतिट्ठिणं ॥१२८९॥
 उक्कोस सत्तदिणा दुइअकसायाण चउदस दिवाऽत्थि ।
 पचदस अहोरत्ता तइअकसायाण विण्णेयं ॥१२९०॥
 वासपुहुत्तं हवए पणयालीसाअ सेसपयडीण ।
 सेसासु अंतरं णो सप्पाउग्गाण सञ्जेसि ॥१२९१॥

(प्रे०) 'सञ्वाण' इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां स्ववन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामवन्धकानां जघन्यमन्तरं समयप्रमाणमस्ति मार्गणाया अस्या अन्तरस्य जघन्यतया समयप्रमाणात्वात् । 'सायाइ' इत्यादि, सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यपरतिशोकाऽरतिस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां वक्षर्षभनाराचसंहननमनुष्यद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकोहारकद्विकजिननामरूपाणां द्वादशप्रकृतीनां चाऽवन्धकानामुत्कृष्टमन्तरं सप्तदिनमानमस्ति, उपशमसम्यक्त्वप्राप्तेरन्तरस्य प्रकृत्यतोऽपि सप्तदिवसप्रमाणत्वात् । 'दुइअ' इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽवन्धकानां प्रकृतमन्तरं चतुर्दशदिनानि वर्तते, यतोऽत्र देशविरताः प्रकृतीनामेतापामवन्धक-

तथा वर्तन्ते, तेषां चोत्कर्षतोऽन्तरं चतुर्दशदिनमानमस्ति । 'पञ्चदश' इत्यादि, ग्रन्थान्वयानावरण-
चतुष्कस्याऽऽन्धकानामुत्कर्षतोऽन्तरं पञ्चदशाहोरात्राणि वर्तते, तत्रथा-मार्गणाग्रामस्यां मंथनाः प्रकृ-
तप्रकृतिचतुष्काऽऽन्धका मिथ्यन्ते, तेषां चोत्कर्षमन्तरं पञ्चदशदिनानि वर्तते । चासपुष्टुत्तमिन्यादि,
एतद्व्यतिरिक्तप्रकृत्यन्धकानामुत्कर्षतयाऽन्तरं वर्षपृथक्त्वमवसेयम्, यत उपशमश्रेणो वर्तमाना
जीवा यथायोग शेषप्रकृतीनामन्धकान्वेन प्राप्यन्ते, उपशमश्रेणेश्च, प्रकृष्टान्तरं तावन्मितमस्ति ।
उक्तं चोपशमश्रेणेरुत्कर्षमन्तरं पञ्चमंग्रहवृत्तौ 'उपशमकानामुपशमश्रेण्यन्तर्गतानामपूर्वकरणादीनामुप-
शान्तमोहान्ताना नानाजीवविषयमन्तरमुत्कर्षं वर्षपृथक्त्व भवति ।' ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरण-
पञ्चकदर्शनावरणपट्कमंज्वलनचतुष्कभयजुगुप्सावर्णादिचतुष्काऽगुरुलघूपघातनिर्माणतै जयकर्मणश-
रीरद्वयाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकत्रिंशद्भुववन्धिप्रकृतयः पुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातिममचतुरस्रस्थानसु-
खगतिस्थिरशुभयशःकीर्तिवर्जत्रयममरुपरधानोच्छ्रामोर्ध्वगौरूपाश्चतुर्दशाध्रुववन्धिप्रकृतयश्चेति ।

'सेसासु' इत्यादि, अत्रोक्तविभिन्नासु शेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृत्यन्धकानामन्तरं
नास्ति, निरन्तरं तेषां समुपलभ्यमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्-
गतिमार्गणाः, एकोनविंशतिरिन्द्रियमार्गणाः, द्विचत्वारिंशत्कायमार्गणाः, ओषमत्याऽमन्यामृषामेदेन
तिस्रो मनोयोगमार्गणाः, तिस्रो वचनयोगमार्गणाः, काययोगौर्ध्वगौरिकाययोगौर्ध्वक्रियकाययोगरूपा-
स्तिस्रो मार्गणाः, अवेदमार्गणा, अरुपायमार्गणा, केवलज्ञानमार्गणा, संयमौघदेशविरत्यसंयमरूपा
स्त्रिमार्गणाः, केरलदर्शनमार्गणा, कृष्णादिलेश्यामार्गणापट्कम्, मव्यामव्यमार्गगाद्वयम्, मम्यक्त्वाध-
क्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वमिथ्यात्वमार्गगाचतुष्कम्, असंज्ञिमार्गणा, आहारकानाहारकमार्गणाद्वयं चेत्य-
ष्टात्रिंशदधिकशतम् । अत्र सूक्ष्मसम्परायमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतेरन्धकाभावादन्धकाऽन्तरस्य
चिन्ता न कृता ।

अवेदाऽऽकषायकेवलद्विकसम्यक्त्वौघक्षायिकमम्यक्त्वाऽनाहारकमार्गणासु सिद्धानां प्रवेशेना-
ऽन्धकाः सर्वदा प्राप्यन्ते, अतोऽन्तरस्याऽममवः, मनुष्यमार्गणात्रये पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये त्रसमा-
र्गणाद्वये त्रिमनोयोगत्रिवचनयोगौर्ध्वगौरिकाययोगेषु संयमौघे शुक्ललेश्यायां मव्ये आहारकमार्गणायां
च सयोगिकेवल्लिनां प्रवेशेन सातवेदनीयवर्जानां सर्वासां प्रकृतीनामन्धकाः सर्वदा प्राप्यन्ते, तथा
सातवेदनीयाऽन्धकतयाऽसातवेदनीयवन्धका अधस्तनगुणस्थानस्थाः सर्वदा प्राप्यन्ते, तस्मादासु
मार्गणासु सर्वायां प्रकृतीनामन्धकानामन्तर नास्ति । अथ शेषमार्गणासु ध्रुववन्धिप्रकृतीनामन्धका
उपरितनगुणस्थानकेषु लभ्यन्ते उपरितनगुणस्थानानां तत्र भवेदा लाभात् । तथाऽद्रुववन्धिप्रकृती
नामन्धकतया सर्वदा प्रतिपक्षप्रकृतीना वन्धकाः समुपलभ्यन्त इति कृत्वा च तत्र यामा प्रकृ-
तीनामन्धकाः प्राप्ता भवन्ति, तेषां विरहो नास्ति । कासुचिन्मार्गणासु पुनरेकस्यैव गुणस्थानकस्य
सत्त्वात्तत्र ध्रुववन्धिप्रकृतीनामन्धका नैव प्राप्यन्त इत्यपि ज्ञातव्यम् ॥१२८९-९० ९१॥ तदेव-
मुक्तमायुर्वर्जोत्तरप्रकृतीनामन्धकाना जघन्योत्कृष्टमन्तरमादेशतो मागेणास्त्विति ।

इदानीं मार्गणास्वायुष्कृत्यवन्धकानामनेकजीवानाश्रित्याऽन्तरं प्रतिपादयन्नादौ द्वापटिमार्ग-
णासु तिर्यगायुर्वन्धकानां तन्निषेधयितुकाम आह—

जहि वंघगाण कालो हवेज्ज तिरियाउगस्स सव्वद्धा ।

तहि तस्स वघगाण दुसट्ठीए अंतर णत्थि ॥१२६२॥

(प्रे०) 'जहि' इत्यादि, यासु द्वापटिमार्गणासु तिर्यगायुष्कृत्य वन्धकानां कालः सर्वाद्धा
भवति, तासु तस्य वन्धकानामन्तरं नास्ति, प्रकृतद्वापटिमार्गणासु तिर्यगायुर्वन्धकजीवानाममख्येय-
लोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेनाऽनन्तलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वेन वा भङ्गविचये केवलमष्टमभङ्गस्यैव भणि-
तेत्यान्नैरन्तर्येण समुपलभ्यमानत्वात् । द्वापटिमार्गणाः पुनर्भङ्गविचयद्वार आयुर्वन्धकानां भङ्ग-
प्ररूपणाऽवमरे शेषत्वेनाऽभिहिता एवाऽत्र ग्राह्याः ॥१२९२॥

अधुना तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु तिर्यगायुष्कृत्यवन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरम-
भिदधाति—

पंचिदियतिरियविगलपणिदियतसेसु सि अपज्जेसुं ।

तिरियाउरस्स जहण्णं समयो जेढु मुहुत्ततो ॥१२६३॥

(प्रे०) 'पंचिदिय' इत्यादि, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघद्वीन्द्रियौघत्रीन्द्रियांघचतुरिन्द्रियौघपञ्चेन्द्रि-
यौघत्रसौधरूपासु षट्सु मार्गणासु तासामेवाऽपर्याप्तरूपासु षट्सु मार्गणासु चेति सर्वसंख्यया द्वादश-
मार्गणासु तिर्यगायुष्कृत्यवन्धकानां जघन्यतोऽन्तरं समयः उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तमस्ति, मार्गणास्वासु
जीवानामुत्पत्तिच्यवनयोरन्तरस्य जघन्यतः समयप्रमाणत्वात्, उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् ।
॥१२९३॥

साम्प्रतमुपयुक्तमार्गणासु शेषायुर्वन्धकानां शेषमार्गणासु च सर्वेषां स्वप्रायोग्याणामायुषां
वन्धकानां जघन्योत्कृष्टाभ्यामन्तरमाह—

सेसाऊगेआसुं सप्पाउग्गाउगाण सव्वेसि ।

सेसासु लहुं समयो गुरु सयमुज्झं जहासुत्ता ॥१२९४॥

(प्रे०) 'सेसा' इत्यादि, अनन्तरोक्तद्वापटिमार्गणासु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघादिद्वादशमार्गणासु
च यथासंभवं तिर्यगायुर्वर्जशेषायुषां शेषमार्गणासु च सर्वेषां स्वप्रायोग्यायुषां वन्धकानां जघन्यमन्तरं
समयप्रमाणमस्ति, तद्यथा—प्रकृतमार्गणासु प्रकृतायुर्वन्धकानामष्टानामपि भङ्गानां सम्भवेन तेषामन्तरं
भवति, तदपि जघन्यतः समयप्रमाणमेव । 'शुरू' इत्यादि, प्रकृष्टमन्तरं तु यथासूत्रं स्वयमेवाभ्यू-
क्षम्, यतो ग्रन्थेषु जीवानामुत्पत्तिच्यवनयोरन्तरविषयका नानाऽभिप्राया वर्तन्ते, अत्रायुर्वन्धप्रायोग्याः
शेषमार्गणावैक्रियमिश्रकर्मणाऽपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानसूक्ष्ममम्पराययथाख्यातसंयमकेवलदर्शनो-
पशमसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वाऽनाहारकवर्जानवाशीतिर्विज्ञेयाः ॥१२९४॥ तदेव मार्गणास्वायुर्वन्धकाना

साम्प्रतं मार्गणास्वायुषामवन्धकानामन्तरमभिदधाति—

सन्वह णेयं अतरमाऊण अवधगाण तावइअं ।

सायस्स बंधगाणं जावइअं अतरं अत्थि ॥ ॥

(प्रे०) 'सन्वह' इत्यादि, वैक्रियमिश्राद्येकादशमार्गणावर्जस्वायुर्वन्धप्रायोग्यासु त्रिपृथ-
धिकशतमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुषामवन्धकानामन्तरं सातवेदनीयवन्धकानामन्तरं यावत्प्रमाणं
भवति तावत्प्रमाणं ज्ञेयम् , तथाहि—ध्रुवमार्गणासु सातवेदनीयस्य वन्धकानामिवाऽऽयुर्वन्धकाना-
मन्तरं नास्ति, आयुर्वन्धप्रायोग्यसान्तरमार्गणासु चायुर्वन्धकानामन्तरं यथा सातवेदनीयस्य वन्ध-
कानामन्तरं निर्दिष्टं तथा विज्ञेयम् ; ताश्चेमा आयुर्वन्धप्रायोग्याः सान्तरमार्गणाः—अपर्याप्तमनुष्या-
हारकद्विकपरिहारविशुद्धिसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयमसास्वादनसम्यक्त्वरूपाः षण्मार्गणा इति ।
॥१२९५॥ इत्येवमभिहित मार्गणास्वायुर्वन्धकानामनेकजीवाश्रितमन्तरम् , अभिहिते च तस्मिन् समाप्ति-
मगादनेकजीवाश्रितमुत्तरप्रकृतिवन्धकावन्धकानामन्तरद्वारम् ।

॥ इति श्रीवन्धविधाने प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते प्रथमाधिकारे

त्रयोदशमन्तरद्वार समाप्तम् ॥



॥ अथ चतुर्दशं भावद्वारम् ॥

अथ क्रमलब्धं चतुर्दशं भावद्वारं निरूपयन्नादावोघादेशाभ्यामुत्तरप्रकृतिबन्धस्य भावान् भाषते-
बधो ओदइएणं भावेण अत्थि सव्वपयडीणं ।

एमेव जाणियव्वो सप्पाजगण सव्वासुं ॥१२६॥

(प्रे०) 'बंधो' इत्यादि, सर्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्ध औदयिकभावेन भवति । 'एमेव' इत्यादि, सर्वासु मार्गणसु स्वप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां बन्ध औदयिकभावेन भवतीति ज्ञानव्यम्, कर्मबन्धस्य यथायोगं मिथ्यात्वाऽविरतिरूपाययोगप्रत्ययिकत्वात्, मिथ्यात्वादीनां च कर्मोदय-रूपत्वेनौदयिकभावरूपत्वात् । अत्र प्रवृत्तिवीर्यरूपस्य योगस्य वीर्यान्तरायक्षयोपशमाद्यविनाभाव-त्वेऽपि शरीरनामकर्मोदयसापेक्षत्वादौदयिको भावो विज्ञेयः, शेषप्रत्ययानामौदयिकभावस्तु सुगमः ।
॥१२९६॥ इदानीमुत्तरप्रकृतीनामबन्धस्य भावान्निरूपयन्नादावोघतस्तानाह

भावेण खइएण अवधो सव्वाण सायवज्जाण ।

उवसमिगेण वि हवए खओवसमिगेण वि हवेज्जा ॥१२९७॥

इयतोसधुवपुरिसरइहसाणाउसुसुरारिहणाण ।

ओदइएण पि भवे सव्वेसि अधुवबधीण ॥१२९८॥

परमोहाएसेहि जाणइत्थि पडच्च सासणमबधो ।

ताण अववे भावो सय च्च जेयो जहासुत्त ॥१२९९॥

(प्रे०) 'भावेण' इत्यादि, सर्वासामुत्तरप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकभावेन भवति, अयोगिसि-
द्धानां सर्वप्रकृतीनामबन्धकत्वात् । 'साय' इत्यादि, सातवेदनीयवर्जानां शेषमवर्गप्रकृतीनामबन्ध
औपशमिकेन भावेनाऽपि भवति, सातवेदनीयवर्जसर्वप्रकृतीनामेकादशगुणस्थानेऽबन्धात् । 'इय-
तोस' इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानद्वित्रिकवर्जदर्शनावरणपट्कं संज्वलनचतुष्कं भयकृत्से नव-
ध्रुवबन्धिनामप्रकृतयोऽन्तरायपञ्चकं चेत्येकत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतयः, हास्यरती पुरुषवेदः सातवेद-
नीयं देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकाहारकद्विके समचतुरस्रसंस्थानं सुखगतिस्रसदशकं पराधातो-
च्छ्वासे जिननामोच्चैर्गोत्रं चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतिवर्जानां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानद्वित्रिकाऽनन्तानु-
बन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणां षोडशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा
पट्त्वत्वारिंशच्छेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षयोपशमभावेनाऽपि भवति, यथासंभवमविरतसम्य-
ग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्तसंयता-ऽप्रमत्तसंयतानामपि प्रोक्तप्रकृतीनामबन्धो भवति, क्षयोपशमसम्यक्त्वस्या-
ऽविरतसम्यक्दृष्टेरपि संभवात्तथा देशविरतेः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां सर्वविरतेश्च क्षयोपशमरूपत्वात् ।
'ओदइएणं' इत्यादि, सर्वासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनाऽपि भवति, अध्रुवबन्धि-
प्रकृतीनां बन्धस्य परावर्तमानभावेन भावात् परावर्तमानभावस्य चौदयिकभावरूपत्वात् । अयं भावः-
असातवेदनीयारतिशोकस्त्रीनपुंसकवेदायुष्कचतुष्कनरकतिर्यङ्मनुष्यद्विकत्रयजातिचतुष्कौदारिकद्विकसं-

हननपट्रप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुमुखगत्यातपोद्योत+थावरदधकनीचैर्गोत्ररूपाणां पट्चत्वारिंशद्भुव-
गन्धिप्रकृतीनामवन्ध औदयिकेन क्षायोपशमिकेनौपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते । मात-
वेदनीस्यावन्ध औदयिकक्षायिकभावनः प्राप्यते । हाम्यरतिपुरुषवेददेवद्विकञ्चेन्द्रियजातिर्वै क्रयद्वि-
काहारकद्विकप्रथमसंस्थानमुखगतिपराघातोच्छ्वासजिननामवसदशकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामवन्ध औद-
यिकेनौपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते । ध्रुवगन्धिप्रकृतिषु मिथ्यात्वस्त्यानद्वित्रिकानन्तानु-
बन्धचतुष्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रत्याख्यानावरणचतुष्कप्रकृतीनामवन्धः क्षायोपशमिकेनौपश-
मिकेन क्षायिकेण वा भावेन प्राप्यते, शेषैकत्रिशद्भुवगन्धिनीनामवन्ध औपशमिकेन क्षायिकेण वा
भावेन प्राप्यते । सम्प्रति 'परमो' इत्यादिना विशेष दर्शयति—ओघत आदेशतश्च यासां प्रकृतीनाम-
वन्धः सास्वादनं प्रणीत्य भवति, तासामवन्धस्य भावो यथासृत्रं स्वयमेव ज्ञेयः ॥१२९७-९॥

एदानीमादेशतो मार्गणासूत्रप्रकृतीनामवन्धस्य भावानिरूपयन्नादौ सापवाद ध्रुवगन्धिप्रकृ-
तीनामवन्धभावान् दर्शयति

भावो ध्रुववधीण सजोग्गाणोध्व सच्चह अवधे ।

णवरि ण खइओस्तणिरयचउक्कमवणतिध्रुवसमेसु ॥१३००॥

खइओ उवसमिगो वा ण मवे तिरियतिपणिदितिरियेसु ।

दुइल्लकसायाण तहा ण तिरिच्छीअ खइओऽण्णअट्ठहं ॥१३०१॥ (गीतिः)

सच्चाण उरलभीसे ध्रुवसमिगो कम्मणे अणाहारे ।

गुणचत्ताअ ण तीसु वि मज्झकसायाण खइओ च्च ॥१३०२॥

खइओ उवसमिगो वा तेउपउमवेअगेसु विण्णेयो ।

भावो णेव अवधे मज्झकसायाण अट्ठहं ॥१३०३॥

(प्रे०) 'भावो' इत्यादि, यासु ध्रुवगन्धिप्रकृतीनामवन्धः प्राप्यते, तासु सकलमार्गणासु
स्वप्रायोग्यध्रुवगन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावा ओघवदधिगम्याः, तद्यथा—मिथ्यात्वादिपौडशप्रकृतीना-
मवन्धः क्षायिकक्षयोपशमोपशमभावैर्भवति, ज्ञानावरणाद्येकत्रिशत्प्रकृतीनामवन्धः क्षायिकेनौपशमिके-
न वा भावेन भवति । साम्प्रतमत्रौघवदतिदेशेन समापन्तीमापत्तिमपाकतु 'णवरि' इत्यादिना विशेषमुप-
दर्शयति चतुर्थादिनरकचतुष्के भवनपतिव्यन्तरज्ज्योतिष्कमार्गणात्रये उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चेत्यष्ट-
मार्गणासु यासां ध्रुवगन्धिप्रकृतीनामवन्धोऽस्ति, तासां तस्य क्षायिकभावो नास्ति, मार्गणास्वासु क्षायि-
कसम्यक्त्वाभावात् । तत्रोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सर्वासां ध्रुवगन्धिनीनामवन्धे तथा शेषमार्गणास-
प्तके स्त्यानद्वित्रिकानन्तानुबन्धचतुष्क-मिथ्यात्वरूपाणामष्टानां ध्रुवगन्धिनीनामवन्धे क्षायिकभावो
निषेधनीयः, तत्र तत्तत्प्रकृतीनामवन्धस्य सत्त्वेऽपि क्षायिकभावस्यामम्भवात् । 'खइओ'
इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-
स्याऽवन्धस्य क्षायिकभाव औपशमिकभावो वा नास्ति, मार्गणास्वासु वर्तमानानां जीवानां

श्रेणेरभावात् । 'तहा' इत्यादि, तिरश्चीमार्गणायां मिथ्यात्वमोहनीयस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुगन्धिचतुष्कल्पस्य प्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकभावेन न भवति, मार्गणायामस्यां जीवानां क्षायिकसम्यक्त्वमादायोत्पादाऽसम्भवात् ।

'सन्धान' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सर्वाणां सप्तचत्वारिंशद्भ्रुवर्वाधप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकभावेन न भवति, यतो मार्गणायामस्यामौपशमिकभावस्यैवामावात् । कर्मणानाहारकमार्गणाद्वये अष्टमिथ्यात्वादिप्रकृतिवर्जशेषैकोनचत्वारिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औपशमिकभावेन नास्ति, प्रस्तुतमार्गणाद्वये चतुर्थगुणस्थानक एवौपशमिकभावस्य भावात्तत्र चाणां प्रकृतीनां नियमतो बध्यमानत्वात् । केवलं मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य चतुर्थगुणस्थानेऽबध्यमानत्वेन तस्याबन्ध औपशमिकभावो भवति । अपर्याप्तावस्थायामौपशमिकसम्यक्त्वतदा भवति, यदा यः कश्चिदुपशमश्रेणितः कालं कृत्वोपशमसम्यक्त्वेन सह वैमानिकदेवेभूत्पद्यते अत एव कर्मणानाहारकयोरपर्याप्तावस्थानानामुपशमसम्यग्दृष्टिदेवानां संभवः, औदारिकमिश्रमार्गणायां तु न तथा, तेनौदारिकमिश्रमार्गणायां मिथ्यात्वाद्यष्टकस्याऽबन्ध औपशमिकभावो नोक्तः, प्रोक्तमार्गणाद्वये तु कथित इति । तथौदारिकमिश्रकर्मणानाहारकमार्गणात्रयेऽप्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानवरणचतुष्कलक्षणस्य मध्यमकपायाष्टकस्य त्वबन्धः क्षायिकभावेनैवास्ति, न तु क्षयोपशमादिभावेनापि, देशविरतादिगुणस्थानानामभावात् । किमुक्तं भवति—अस्याबन्धे औपशमिकभाव इव क्षयोपशमिकभावोऽपि नास्ति, केवलं क्षायिकभाव एव भवति, मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धस्तु क्षायिकक्षयोपशमभावाम्यामौदारिकमिश्रे, क्षायिकौपशमिकक्षयोपशमिकभावैस्तु कर्मणानाहारकयोर्भवति, तथा शेषनवत्रिंशद्भ्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः केवलं क्षायिकभावेनैव भवति, केवलज्ञानिनामेव तासामबन्धकत्वात् ।

'स्वहो' इत्यादि, तेजःपञ्चलेश्याद्यक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु मध्यमकपायाष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां नैव भवति, परं क्षयोपशमभावेनैव, मार्गणासु क्षयकोपशमश्रेणिद्वयाभावात् । इदमुक्तं भवति—तेजःपञ्चलेश्यामार्गणाद्वये मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याबन्धः क्षायिकक्षयोपशमिकौपशमिकभावैर्भवति, तिसृष्वपि मार्गणासु मध्यमकपायाष्टकस्याऽबन्धः क्षयोपशमभावेनैव भवति, शेषभ्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध एवात्र नास्ति । उक्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धस्य ये भावा ओधवदतिदिष्टास्त एवम्—नरकौघप्रथमादिनरकत्रयरूपाश्चतस्रो नरकमार्गणाः, देवौघसौधर्मादिद्वादशकल्पनवग्रेवैयकरूपा द्वात्रिंशतिदेवमार्गणाः, वैक्रियकाययोगवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणे, असंयममार्गणा, कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रयं चेति सम्मीलितासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयादिप्रकृत्यष्टकस्याऽबन्धः क्षायिकक्षयोपशमिकौपशमिकभावैर्भवति, प्रकृतमार्गणासु क्षायिकक्षयोपशमोपशमरूपस्य त्रिविधसम्यक्त्वस्य भावात् । मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्य-

मानुषीमार्गणावयम्, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वयम्, त्रसौघपर्याप्तवयमार्गणाद्वयम्, पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगैर्घौदारिककाययोगरूपा हादशमार्गणाः, चतुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वयम्, शुक्ललेड्यामार्गणा, भव्यमार्गणा, नंजिमार्गणा, आहारकमार्गणा चेति सर्वसंख्यया पञ्चविंशती मार्गणासु सर्वा मा ध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्ध ओघवदवसेयः, वेदत्रये क्रोधमार्गणायां च ज्ञानावरणादिचतुर्दशसंज्वलनचतुष्कवर्जप्रकृतीनामवन्धः प्राप्यते, तत्र मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य मध्यमकपायाष्टकस्य चावन्धः क्षायोपशमिकौपशमिकक्षायिकभावेः प्राप्यते । शेषनिद्राद्विकभयजुगुप्सामनवध्रुववन्धिरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामवन्ध औपशमिकभावेन क्षायिकभावेन वा प्राप्यते । एवं मानमायालोभमार्गणास्वपि वक्तव्यम्, नवरं माने संज्वलनक्रोधस्य, मायायां संज्वलनक्रोधमानयोः, लोभे तु संज्वलनचतुष्कस्यावन्धोऽपि क्षायिकेण औपशमिकेन वा भावेन प्राप्यते ।

अथेदमार्गणायां ज्ञानावरणादिचतुर्दशसंज्वलनचतुष्कप्रकृतीनामवन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां भवति, अपकोपजमश्रेणिद्वयमद्भावात्, मतिश्रुतावधिज्ञानावधिदर्शनपम्यक्तवौघ-क्षायिकमम्यक्तवलक्षणासु षट्सु मार्गणासु मिथ्यान्मोहनीयादिप्रकृत्यष्टकवर्जशेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवन्ध ओघवदस्ति, तद्यथा-मध्यमकपायाष्टकस्य क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावेः शेषाणां च क्षायिकौपशमिकभावाभ्यामवन्धो भवति । मनःपर्यवज्ञानमयमौघमार्गणाद्वये च मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषैकत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धः क्षायिकौपशमिकभावाभ्यां भवति, उभयश्रेणिभावात् । अज्ञानत्रये केवलं मिथ्यात्वस्यावन्धः, स च मास्वादनमाश्रित्य प्राप्यते, तेन मास्वादननिमित्तको भावः स्वयं कथनीयः । मामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणाद्वये निद्राद्विकभयजुगुप्सासंज्वलनक्रोधमानमायानवध्रुववन्धिनामरूपषोडशध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धः क्षायिकोपशमिकभावाभ्यां भवति, श्रेणिद्वयमद्भावात् । अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यपञ्चानुत्तरसुरा-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तवयसमार्गणाः, सकलैकेन्द्रियमार्गणायकलविकलेन्द्रियमार्गणामकलपृथ्वीकायाष्कायतेजःकायवायुकायवनस्पतिकायमार्गणाऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रमार्गणापरिहारविशुद्धिदेशविरतिसूक्ष्ममम्यगयमार्गणाऽभव्यमार्गणामिथ्यात्वसास्वादनमिथ्यमम्यक्तत्वमार्गणामंजिरूपासु चतुःभूतौ मार्गणासु वध्यमानध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धो नास्ति, अनोऽत्र भावविचारो नाधिकृतः ।

अकषायकेवलद्विकयथाख्यातसयममार्गणासु ध्रुववन्धिप्रकृतीनां वन्ध एव न भवति, तस्मात्तदवन्धस्याऽत्रापि भावविचारो नाधिकृतः ॥१३००-१३०३॥

अधुनाऽऽदेशतोऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावान् भणन्नादौ मनुष्यौधादिमार्गणासु तान् कथयति-

भावो अस्ति अवधे सत्पाठभाण अधुववंधोण ।

तिणरदुपणिदितसमविपणमणवयकायउरलेसु ॥१३०४॥

पयणियरसणिगुक्काआहारतिवेअचउकसायेसुं ।

ओधव्व णवरि भावो ओदइओ चेव सायस्स ॥१३०५॥

पणमणवयपमुहासुं सत्तरससु तह जसुच्चसायाणं ।

वेअकसायेसु तहा पुमवेअत्स वि तिवेएसुं ॥१३०६॥

(प्रे०) 'भावो' इत्यादि, मनुष्याधपर्याप्तमनुष्यमानुषीपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसौध-
पर्याप्तत्रसमन्यपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौधौदारिककाययोगचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनसंज्ञिशुक्ल-
लेश्याऽऽहारकस्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयक्रोधमानमायालोभलक्षणासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्याऽध्रुव-
बन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावा ओधवत् सन्ति । ओघातिदेशेन समायातामापत्तिमपाकतुं 'णवरि'
इत्यादिना विशेषं दर्शयति—पञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौधौदारिककाययोगचक्षुरचक्षुर्दर्शन-
संज्ञिशुक्ललेश्याऽऽहारकरूपासु सप्तदशमार्गणासु सातवेदनीयस्याऽवन्धस्य भाव औदयिक एवास्ति,
तद्यथा—सातवेदनीयस्याऽवन्ध आसु मार्गणास्वयोगिगुणस्थानकस्याऽभावात् क्षायिकभावेन न
भवति, त्रयोदशमवन्धस्तनीयगुणस्थानेषु यथासंभवं क्षायिकक्षयोपशमोपशमादिभावानां विद्यमानत्वे-
ऽपि सप्तमादित्रयोदशगुणस्थानकेषु सातवेदनीयस्य वन्धसातत्येन तदवन्धो न प्राप्यते, प्रथमा-
दिषष्ठगुणस्थानकेषु सातवेदनीयस्याऽवन्धः प्राप्यते, परं सोऽसातवेदनीयेन सह परावर्तमानभावेनैव
प्राप्यते, य च परावर्तमानभाव औदयिकभावरूपोऽस्ति, अतः सातवेदनीयस्याऽवन्ध औदयिकभावे-
नैव भवतीत्युक्तम् ।

'तह' इत्यादि, वेदत्रये कपायमार्गणाचतुष्के च यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामवन्ध औद-
यिकभावेनैव भवति, मार्गणास्वास्वेकादशद्वादशादिगुणस्थानाभावात् । दशमाद्यवन्धस्तनगुणस्थानकेषु
क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकादिभावानां सत्वेऽपि यथासंभवं कतिपयेषु गुणस्थानकेषु प्रकृतप्रकृ-
तित्रयस्य वन्धनैरन्तर्येण तदवन्धस्याऽनुपलम्भात् कतिपयेषु च गुणस्थानकेषु तदवन्धलाभेऽपि तस्य
परावर्तमानभावेनैव लाभात् । 'तहा' इत्यादि, त्रिवेदमार्गणासु पुरुषवेदस्य मूलोक्तः 'अपि' शब्द
इह समुच्चयार्थस्तेन न केवलं पूर्वोक्तप्रकृतित्रयस्यैवास्मिन्वेदमार्गणात्रयेऽवन्ध औदयिकभावेन किन्तु
पुरुषवेदस्याऽप्यवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, तथाहि—मार्गणात्रयेऽस्मिन् प्रथमादिनवगुणस्थान-
कानि सन्ति, तत्र यथासंभवं चतुर्णां क्षायिकादिभावानां भावेऽपि पुरुषवेदस्याऽवन्ध औदयिकभावे-
नैव भवति, यतस्त्वृतीयादिनवमगुणस्थानकेषु मार्गणाविच्छेदं यावत्पुरुषवेदस्य वन्धसातत्येन तदवन्धो
नैव प्राप्यते, प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोस्तदवन्धे प्राप्यमाणेऽपि तस्य प्राप्तिः प्रथमगुणस्थानके स्त्री-
नपुंसकाऽन्यतरवेदेन द्वितीयगुणस्थाने स्त्रीवेदेन सार्धं परावर्तमानभावेन भवति, परावर्तमानभावश्चौ-
दयिकभावरूपोऽस्ति ॥१३०४-६॥

साम्प्रतं नरकमार्गणासु पञ्चानुत्तरवर्जदेवमार्गणासु वैक्रियवैक्रियभिश्चकाययोगमार्गणाद्वये
चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावान् भणितुकाम आह

सच्चणिरयपणऽणुत्तरवज्जसुरविउवदुगेसु ओदइओ ।

वारससायाइपुमसुणरजोगऽण्णाण जाणऽत्थि ॥१३०७॥

सेसाणोचच्च णवरि तुरिआइचउणिरथेसु भवणतिगे ।

खइओ ण चरमणिरथे तिरिदुगणीआण णोदइओ ॥१३०८॥

(प्रे०) 'सच्च' इत्यादि, अष्टनरकमार्गणासु पञ्चानुत्तरवर्जपञ्चविंशतिदेवमार्गणासु वैक्रिय-
काययोगतन्मिश्रकाययोगमार्गणाद्वये चेति सर्वसंख्यया पञ्चविंशन्मार्गणासु सातवेदनीयादिद्वादश-
पुरुषवेदप्रकृतीनां तथा मनुष्यप्रायोग्यशुभप्रकृतिषु यामामबन्धः प्राप्यते; तासां प्रकृतीनामबन्ध
औदयिकभावेनैव प्राप्यते, अधस्तनगुणस्थानयोः परावर्तमानभावेनावबन्धस्य प्राप्तेः । तादृशमा-
मातवेदनीयादिद्वादशपुरुषवेदप्रकृतयस्तथा सुनरप्रायोग्यप्रकृतिष्वबन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः । देवौघमौ-
धर्मसुरेशानसु वैक्रियकाययोगमार्गणासु—मातवेदनीयहास्यरतिस्थिरशुभयशःकीर्तिरूपाः ५८ तत्प्रति-
पक्षभूताश्च ५८, पुरुषवेदः, मनुष्यत्रिकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गप्रथमसंहननप्रथमसंस्था-
नसुखगतिजिननामत्रसमुभगत्रिकेचैर्गोत्ररूपाः सप्तविंशतिः । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसुरमार्ग-
णात्रये केवलमौदयिकभावेनावबन्धवत्यः मातवेदनीयाद्या एता एव जिननामरहिताः षड्विंशतिर्बोध्याः,
वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणाया नरायुरहितास्ता एव षड्विंशतिः प्रकृतयोऽवसेयाः, आनतसुरादि-
त्रयोदशदेवमार्गणाभेदेषु मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रयवर्जास्ता द्वाविंशतिसंख्याकाः
मन्ति, अष्टनरकभेदपट्टमनःकुमारमहत्स्रान्तदेवभेदरूपे शेषमार्गणाचतुर्दशके चतुर्विंशतिप्रकृतयः
पुनस्ता एव पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गवसनामहीना विद्यन्त इति । 'सेसा' इत्यादि,
उक्तशेषमार्गणाप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनां यामामबन्धः स्वमार्गणायां प्राप्यते, तासां प्रकृतीनाम-
बन्धस्य भावाओववदवसेयाः, तद्यथा—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यगायुष्कतिर्यग्द्विकेन्द्रियजातिप्रथमवर्ज-
संहननपञ्चकप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुभसुखगतिस्थावरदुर्मगत्रिकातपोद्योतनीचैर्गोत्ररूपाणां चतुर्विंशते-
रध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकादिचतुर्भावैः प्राप्यते, परावर्तमानभावेनौदयिकभावस्य, क्षायिकक्ष-
योऽशमोपशमसम्यक्त्वत्रयस्य सत्त्वेन क्षायिकादिभावत्रयस्य च मार्गणास्वासु सद्भावात् ।
इमारचौदयिकादिभावचतुष्केनावबन्धवत्यः—सकलनरकमार्गणासु तृतीयाद्यष्टमान्तदेवमार्गणास्वेकेन्द्रिय-
स्थावरातपप्रकृतित्रयस्य बन्ध एव नास्ति, अतस्ता विवर्ज्य शेषैकविंशतिप्रकृतयः, आनतादिचतुष्क-
नवग्रैवेयकरूपासु त्रयोदशमार्गणासु तिर्यग्द्विकोद्योतप्रकृतित्रयस्य तथैकेन्द्रियस्थावरातपप्रकृतित्रयस्य
च बन्धो नास्ति, अतस्तद्वर्जाः शेषाष्टादशप्रकृतयः, तामामबन्ध ओधवत्क्षायिकादिचतुर्भावैः प्राप्यते ।
'णवरि' इत्यादिनाऽपवादमाह—चतुर्थादिनरकमार्गणाचतुष्के मतान्तरेण द्वितीयादिनरकमार्गणापट्टके
भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये च प्रोक्तैकविंशतेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धः क्षायिकभावेन
नैव भवति, आसु मार्गणासु क्षायिकसम्यग्दष्टरूपादाभावेन क्षायिकभावाभावात् । तथा सप्तमनरक-
मार्गणायां तिर्यग्द्विकरूपाचैर्गोत्रप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेन नैव भवति, प्रथमद्वितीयगुणस्थानक-

योर्निरन्तरमासां प्रकृतीनां वध्यमानत्वेन तुर्यगुणस्थानके तदवन्धस्य क्षायोपशमिकेनौपशमिकेन वा भावेनैव प्राप्यमाणत्वात् ॥१३०७-८॥

साम्प्रतं तिर्यगोघादिमार्गणासु असंयमकृष्णाद्यशुभलेखात्रयमार्गणासु चाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावान् कथयति

थोवज्जसुरऽरिहाणोदइओ च तिरितिपणिदितिरियेसुं ।

णररलदुगवइराण वि अत्थि अजयअसुहलेसासुं ॥१३०९॥

सेसाणोचवऽदुसु वि णवरि णत्थि खइओ तिरिच्छीए ।

(प्रे०) 'थोवज्ज' इत्यादि, तिर्यगोघतिर्यक्पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्गणासु स्त्रीवेदवर्जानां देवप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामसंयममार्गणायां कृष्णनीलकापोतलेऽयामार्गणात्रये च मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवर्जमनाराचसंहननरूपप्रकृतिपञ्चकस्याप्यवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, मार्गणास्त्रासु प्रकृतीनामासां सम्यग्दर्ष्टिभिर्वध्यमानत्वेन सम्यक्त्वहेतुकाऽवन्धस्याप्राप्यमाणत्वात् । देवप्रायोग्या अध्रुवबन्धिप्रकृतयः पुनरिमाः—सातवेदनीयादिद्वादशपुरुषवेददेवायुष्मदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकप्रथमसंस्थानसुखगतिपरावातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोच्चगौरुरूपा ज्ञेयाः । 'सेसा' इत्यादि, शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धः प्रस्तुतमार्गणाष्टकेऽपि ओववच्चतुर्भिः क्षायिकादिभावैर्भवति, चतुर्णामपि भावानामत्र प्राप्तेः, अत्र तिर्यग्मार्गणाचतुष्के मनुष्यपञ्चकस्यावन्धे क्षायिकादिभावत्रयं सम्यक्त्वापेक्षया बोध्यम् । 'णवरि' इत्यादिना विशेषमाह—तिर्यग्योनिमतीमार्गणायां कस्या अपि प्रकृतः क्षायिकभावेनाऽवन्धो नास्ति, क्षायिकसम्यग्दृशामुत्पादाभावादत्र ॥१३०९॥

एतर्हि औदारिकमिश्रमार्गणायां प्रकृतमाह

सायस्स उरलमीसे ओदइओ चेव विण्णेयो ॥१३१०॥

खइओ वोदइओ वा थोवज्जऽणसुरजोगातीसाए ।

सेसाणोदइओ वा खओवसमिणो व खइओ वा ॥१३११॥

(प्रे०) 'सायस्स' इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सातवेदनीयस्याऽवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, सयोगिकेवल्लिनामत्र सातवेदनीयाऽवन्धस्याऽसत्त्वे सति परेषां परावर्तमानभावेन तदवन्धभावात् । 'खइओ' इत्यादि, स्त्रीवेदवर्जदेवप्रायोग्यत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धः क्षायिकेणौदयिकेन वा भावेन भवति, तद्यथा—प्रकृतप्रकृतीनामवन्धोऽत्र सयोगिकेवल्लिनः प्रतीत्य क्षायिकभावेन प्राप्यते, प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोः पुनः परावर्तमानभावेन प्राप्यते, चतुर्थगुणस्थानके तु सततवन्धेनाऽवन्धो नास्ति, अत आसां प्रकृतीनामवन्धः क्षायिकौदयिकभावद्वयेनाऽभिहितः । सुरप्रायोग्यप्रकृतयश्च जिननामसहिता देवायुर्वर्जाः प्राक् तिर्यग्गत्योघमार्गणोक्ता एवाऽत्र ग्राह्याः, देवायुर्वर्जनं तत्राऽऽयुर्वन्धाभावादधिगन्तव्यम्, जिननाम्नो ग्रहणश्च तत्र तस्य वन्धाभावे सतीह वध्यमानत्वात् । 'सेसाणो' इत्यादि, उक्तशेषाऽवन्धप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवन्धः क्षायिकेण क्षयोप-

शमिकेनौदयिकेन वा भावेन भवति, प्रकृतमार्गणायागुपशममभ्यक्त्वाभावेनाभिहितभावत्रयभ्यैव सत्त्वात् ।
 ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्का-
 सहननपक्षप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकाशुभलगतस्थापरादशकातपोद्योतपराघातोच्छ्वासनीचैर्गोत्ररूपा इति ।
 ॥१३१०११॥ अथ कर्मणानाहारकमार्गणाद्वयेऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावानाह

इत्थोवज्जसुरारिहणरजरलदुगवदराण ओदइओ ।

खइओ व अत्थि कम्मोऽणाहारे य णवर कम्म ॥१३१२॥

सायस्सोदइओ चिअ सेसाणोधव दोसु वि... ।

(प्रे०) 'इत्थो' इत्यादि, कर्मणानाहारकमार्गणाद्वये स्त्रीवेदवर्जदेवप्रायोग्याऽध्रुववन्धिप्रकृ-
 तीनां नरद्विकौदारिकद्विकवर्चभनागचसहननरूपस्य प्रकृतिपञ्चकस्य चाऽवन्ध औदयिकेन क्षायि-
 केण वा भावेन भवति, तद्यथा—इह सयोगिगुणस्थानके प्रकृतप्रकृतीनामवन्धो लभ्यते, अतः
 क्षायिकभावेन स कथितः, प्रथमगुणस्थानके मनुष्यदिकादिप्रकृतिपञ्चकस्यावन्धः परावर्तमानभावेन
 देवद्विकवैक्रियद्विकयोस्तु मिथ्यान्वस्योदयेन, चतुर्थगुणस्थानके तु भवप्रत्ययेनोक्तनवानामवन्धः,
 न तु मभ्यक्त्वप्रत्ययादवन्धः, अत औदयिकभावेनोक्तः, तथा शेषदेवप्रायोग्यप्रकृतीनां परावर्तमान-
 भावेनावन्धः प्राप्यते, अत औदयिकभावेनाऽभिहितः । अथ 'णवर' मित्यादिनाऽपवादं भापते—
 कर्मणकाययोगमार्गणायां सातवेदनीयस्याऽवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, क्षायिकभावप्रयुक्तस्यावन्ध-
 स्यायोगिगुणस्थानके मद्भावात्तस्य च प्रस्तुतेऽभावात्, अपरेषां जीवानां पुनरिह तदवन्धः पराव-
 र्तमानभावेन प्राप्यते । 'सेसाणो' इत्यादि, प्रकृतमार्गणाद्वयेऽपि स्वप्रायोग्यशेषाध्रुववन्धिप्रकृतीनाम-
 वन्धस्य भावा ओघवदधिगम्याः । तद्वचेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादि-
 जातिचतुष्काद्यवर्जसहननपञ्चकप्रथमसंस्थानहीनसंस्थानपञ्चककुलगत्यातपोद्योतदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्र-
 रूपाः पञ्चविंशतिः प्रकृतयः ॥१३१२॥

अथाऽपगतवेदादिमार्गणासु प्रकृत प्रदर्शयति

अवेए ।

अकसाये केवलदुगजहलाएसु खइओ च्च सायस्स ॥१३१३॥ (गीतिः)

उवसमिगो खइओ वा अत्थि अवेए जसुच्चगोआणं ।

(प्रे०) 'अवेए' इत्यादि, अपगतवेदाऽकपायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातरूपासु पञ्चसु
 मार्गणासु सातवेदनीयस्याऽवन्धः क्षायिकभावेनैव भवति, यथायोगमयोगिसिद्धानां तदवन्धकत्वेन
 प्राप्यमाणत्वात् । 'उवसमिगो' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरवन्ध औपश-
 मिकेन क्षायिकेण वा भावेन भवति, उपशमक्षपकश्रेणिद्वये तदवन्धलाभात् ॥१३१३॥

अधुना मत्यादिज्ञानत्रयेऽवधिदर्शनमार्गणायां सम्यक्त्वौघक्षायिकमभ्यक्त्वमार्गणाद्वये चाऽ-
 ध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावानुपदर्शयति

सायस्सोदइओ च्व तिणाणोहीसु इह चउसु तहा ॥१३१४॥
 सम्मलइएसु हवए पर्णिदिसुहल्लगइआगिइपुमाण ।
 परधाऊसाससुहगतिगतसचउगुच्चगोआणं ॥१३१५॥
 उवसमिगो लइओ वा सेसाणोधव्व अत्थि ।

(प्रे०) 'सायस्सो' इत्यादि, मतिश्रुतावधिज्ञानाऽवधिदर्शनमार्गणाचतुष्के सातवेदनीयस्याऽवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, यतो ह्ययोगिगुणस्थानके क्षायिकभावेन तदवन्धस्य प्राप्त्यस्तस्य गुणस्थानकस्येहाभावः । 'इह' इत्यादि, मतिज्ञानादिप्रकृतमार्गणाचतुष्के तथा सम्यक्त्वौघ-क्षायिकमभ्यक्त्वमार्गणयोः पञ्चेन्द्रियजातिसुखगतिममचतुरस्रमंस्थानपुरुषवेदपराधातोच्छ्वामसुभ-गत्रिकत्रसचतुष्कोच्चैर्गोत्ररूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामवन्ध औपशमिकेन क्षायिकेण वा भावेन भवति, उपशमक्षयकथ्रेणिद्वय एव प्रकृतमार्गणासु प्रकृतप्रकृतीनामवन्धस्य लाभात् । 'सेसाणो' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामवन्धस्यौघवद् यथासभवं चत्वारस्त्रयो द्वौ वा भावा भवन्ति । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—मतिज्ञानादिमार्गणाचतुष्केऽसातवेदनीयहास्यादियुगलद्वयदेवायुष्कदेवद्विकमनुष्यायुष्कमनुष्यद्विकौ—दारिकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकवर्चभनाराचसहननस्थिरस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिजिन-नामरूपाः पञ्चविंशतिरिति । सम्यक्त्वौघक्षायिकमभ्यक्त्वमार्गणाद्वये पुनरेता एव सातवेदनीय-सहिताः पञ्चविंशतिरिति । तत्र मार्गणाद्वये मातवेदनीयस्यौदयिकक्षायिकरूपौ द्वौ भावौ, मार्गणापट्के-ऽपि हास्य-रति-देवद्विकवैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-स्थिरशुभयशःकीर्तिजिननामरूपाणां द्वादशाना-मौदयिकौपशमिकक्षायिकरूपास्त्रयो भावास्तथाऽमातवेदनीयादिशेषत्रयोदशप्रकृतीनामौदयिकक्षायो-पशमिकौपशमिक-क्षायिकरूपाश्चत्वारो भावा भवन्ति ॥१३१४ १५॥

अथ मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघमामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणासु च प्रकृतं प्रतिपादयति

... .. ओहिंव ।
 मणणाणसंजमेसुं णवरि सुरविउवडुगाण णोदइओ ॥१३१६ (गीतिः)
 सायस्स सजमे उण ओधव्व मणव्व समइए छेए ।
 सप्पाउग्गाण णवरि ओदइओ चिअ जसस्स भवे ॥१३१७॥

(प्रे०) 'ओहिंव' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयममार्गणयोर्वन्धप्रायोग्याऽध्रुववन्धिप्रकृती-नामवन्धस्य भावा अवधिदर्शनमार्गणावज्ज्ञेयाः, । अथ 'णवरि' इत्यादिना विशेषं दर्शयति देवद्विक-वैक्रियद्विकरूपस्य प्रकृतिचतुष्कस्याऽवन्धस्यौदयिकभावो नास्ति, अस्मिन्मार्गणाद्वये प्रकृतप्रकृतिचतु-ष्कस्य श्रेणावेवाऽवन्धलाभात् ।

अथ 'सायस्स' इत्यादिना संयमौघमार्गणायां विशेषं दर्शयति संयमौघमार्गणायामयो-गिगुणस्थानकस्य सद्भावेनौघवत्क्षायिकभावेनाऽपि सातवेदनीयस्याऽवन्धः प्राप्यते ।

‘मणव’ इत्यादि, मामाधिकच्छेदोपस्थापनीयमयममार्गणाद्वये स्वप्रायोग्याऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावा मनःपर्यवज्ञानमार्गणावज्ञातव्याः । माम्प्रतं ‘णवरि’ इत्यादिना विशेषमुपदर्शयति—यशःकीर्तिनाग्नोऽवन्धः केवलमौदयिकेनैव भावेन भवति, नत्वोषधन् क्षायिकौपशमिकभावाभ्यामपि, यत एकादशद्वादशगुणस्थानयोरत्राभावः ॥१३१६-१७॥

सम्प्रति तेजःपत्रलेख्याद्वयपरिहारविशुद्धिसंयमक्षयोपशममम्यक्त्वरूपासु चतसृषु मार्गणासु शेषमार्गणासु चाऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धसत्कभावान् भणितुकाम आह

तेजस्र असायअरइसोगसुराउणरतिगुरल्लुगाण ।

वहरतिअयिराईणं ओदइओ वा खओवसमिगो वा ॥१३१८॥ (गीतिः)

सायपुमहस्सरइसुरविउवाहारल्लुगतसपणिदीणं ।

पढमगिइसुखगइजिणपरधाऊसासथिरल्लुगुच्चाणं ॥१३१९॥ (गीतिः)

ओदइओऽण्णाणोधव्व पमहपरिहारवेअगेसु भवे ।

सप्पाउग्गाणेव सप्पाउग्गाण अण्णहोदइओ ॥१३२०॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘तेजस्र’ इत्यादि, तेजोलेख्यामार्गणायामसातवेदनीयाऽरतिशोकदेवायुर्मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवर्चमनाराचमंहननाऽस्थिरागृभाऽयशःकीर्तिरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनामवन्ध औदयिकेन क्षायोपशमिकेन वा भावेन भवति, मार्गणायामस्या श्रेणिद्वयस्याप्यभावात् श्रेणिद्वयस्याप्यभावेनौपशमिक-क्षायिकभावयोः प्रोक्तप्रकृतीनामवन्धेऽममभावाद्प्रमत्तगुणस्थानके च प्रोक्तसर्वप्रकृतीनामवन्धस्य लाभेन तत्र संयमस्य क्षायोपशमिकभावरूपत्वेन क्षायोपशमिकभावममभावात्, यथासंभवमधस्तन-प्रमत्तसंयतगुणस्थानकं यावत् परावर्तमानभावादिना वन्धेनौदयिकभावस्याप्युक्तप्रकृतीनां सम्भवाच्च । ‘साय’ इत्यादि, सातवेदनीयपुरुषवेदहास्यरतिसुरादिकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकत्रमपञ्चेन्द्रियजातिममचतुरस्रमंस्थानसुखगतिजिननामस्थिरपट्कोच्चैर्गौरूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनामवन्ध औदयिकभावेनैव भवति, प्रकृतमार्गणायामासां प्रकृतीनामवन्धस्य यथासंभवं परावर्तमानभावेनैव देवगत्पुदयेनैव वा लाभात् ।

‘ऽण्णाणो’ इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्ताऽध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावा ओधवच्चत्वारोऽप्यौदयिकादिभावा ज्ञेयाः, । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—स्त्रीनपुंसकवेदद्वयतिर्यगायुष्कतिर्यगिद्वैकैकेन्द्रियजातिप्रथमवर्जसंहननपञ्चप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चक्राऽशुभखगतिस्थावरदुर्मगत्रिकातपोद्योतनीचैर्गौरूपाश्चतुर्विंशतिरिति । ‘पमह’ इत्यादि, पत्रलेख्यापरिहारविशुद्धिक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुववन्धिप्रकृतीनामवन्धस्य भावास्तेजोलेख्यामार्गणावद् विज्ञेयाः । ताश्चेमा अवन्धप्रायोग्यस्वप्रायोग्याऽध्रुववन्धिप्रकृतयः—पत्रलेख्यामार्गणायामेकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-त्रस-स्थावरातपवर्जास्तेजोलेख्यामार्गणादर्शिता एव चतुःपञ्चाशद् ग्राह्याः । ताश्चेमाः—वेदनीयद्वय-हास्यादियुगलद्वय-वेदत्रय-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिक-सुरत्रिकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननपट्कमंस्थानपट्क-खगति-

द्वयोद्योतजिननामस्थिरपट्कास्थिरपट्कगोत्रद्वयरूपाः । परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां वेदनीयद्वय-
 हास्यादिपुगलद्वयदेवापुराहारकद्विकजिननामस्थिरस्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्यशःकीर्तिरूपाः षोडश,
 वेदकसम्यक्त्वमार्गणायामनन्तरोक्ताः षोडश नरायणनरद्विकसुरद्विकौदारिकद्विकवैक्रियद्विकवज्र-
 र्पभनाराचसंहननरूपदशप्रकृतिसहिताः षड्विंशतिः प्रकृतयो बोध्याः । 'सप्पाउग्गाण'
 इत्यादि, उत्तशेषमार्गणासु स्वप्रायोग्याध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्ध औदयिकभावेनैव भवति, शेषमार्गणा-
 स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामबन्धस्य परावर्तमानभावेनैव लाभात् । ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अपर्याप्तितिर्य-
 कपञ्चेन्द्रियमार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, पञ्चानुत्तरसुरमार्गणाः, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, नव त्रिकल-
 मार्गणाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, सप्तपृथ्वीकायमार्गणाः, सप्ताकायमार्गणाः, सप्ततेजःकायमार्गणाः,
 सप्तवायुकायमार्गणाः, एकादशवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तसकायमार्गणा, आहारकतन्मिश्रकाय-
 योगमार्गणाद्वयम्, मत्स्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणात्रयम्, देशविरतमार्गणा, अभव्यमार्गणा, मिश्र-
 सास्वादनमिथ्यात्वमार्गणात्रिकम्, असंज्ञिमार्गणा चेति । अत्रेदमवधेयम्-अज्ञानत्रयवर्जशेषमार्गणासु
 केवलमेकमेवगुणस्थानकमस्ति, अत औदयिकवर्जाः शेषभावा अवन्धे न प्राप्यन्ते । अज्ञानमार्गणात्रये
 सास्वादनगुणस्थानकमाश्रित्य यासां षोडशप्रकृतीनामबन्धः प्राप्यते, तासां प्रकृतीनामबन्धः सास्वा-
 दनगुणस्थानकापेक्षया येन भावेन प्राप्यते, स भाव ओधवत्स्वय ज्ञेयः ॥१३१८-२०॥ इत्येवम-
 भिहिता मार्गणासूत्तरप्रकृत्यवन्धस्य भावा, अभिहितेषु च तेषु समर्पितमगाद् भावद्वारम् ।

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकाविभूषिते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारे चतुर्दशं भावद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ पञ्चदशमल्पबहुत्वद्वयम् ॥

एतर्हि क्रमममायानमल्पबहुत्वाख्य पञ्चदशं द्वारं ग्रन्थकारो भणितुकाम आह—अत्राऽल्प-
बहुत्वं नाम हीनाधिक्यम्, तच्च द्विधा—जीवाल्लवहुत्वं कालाल्लवहुत्वम् । तत्र जीवाल्लवहुत्वं
स्वस्थानपरस्थानापेक्षया द्विविधं वर्तते । तयोः स्वरूपं पुनरिदम्—मूलप्रकृत्यन्तगतानामुत्तरप्रकृतीनां
नामप्रकृतिषु पुनः पिण्डप्रकृत्यन्तर्गतोत्तरप्रकृतीनां त्रसंस्थावरादिप्रतिपक्षप्रकृतीनां च बन्धकाऽ-
बन्धकजीवानां परस्परं हीनाधिक्यं यत्र प्रतिपाद्यते तत्स्वस्थानजीवाल्लवहुत्वं विज्ञेयम्, यत्र पुनः
सर्वासामुत्तरप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकजीवानां परस्परं हीनाधिक्यं प्रतिपाद्यते, तत्परस्थानजीवाल्ल-
वहुत्वं विज्ञेयम् । कालाल्लवहुत्वस्वरूपं समेदमग्रे तन्निरूपणावसरे प्रतिपादयिष्यामः ।

तत्र स्वस्थानजीवाल्लवहुत्वं प्रतिपादयन्नादावोधतस्तन्निरूप्यते—

पणपाणावरणानां अवधगाऽप्या ततो अणतगुणा ।

होअन्ति बधगेव वण्णचउगणिमिणपचविग्घाण ॥१३२१॥ (गीतिः)

(प्रे०) ‘पणपाणा’० इत्यादि, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवकेवलज्ञानावरणपञ्चकस्याऽबन्धका
अल्पा वर्तन्ते, उपशान्तमोहक्षीणमोहमयोभ्ययोगिजीवानां सिद्धानां च तदबन्धकतया वर्तमानत्वात् ।
तेभ्योऽनन्तगुणास्तद्वन्धकाः, यतो ज्ञानावरणपञ्चकस्य बन्धका निगोदजीवा अपि वर्तन्ते, ते च
सिद्धादिजीवेभ्योऽनन्तगुणाः । ‘एव’ इत्यादि, वर्णचतुष्कनिर्माणनामपञ्चान्तरायप्रकृतीनां बन्धका-
ऽबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव विज्ञेयम् ॥१३२१॥

इदानीं दर्शनावरणप्रकृतीनां तद् भण्यते

चउबीआवरणाण अवधगाऽप्या ततो विसेसहिद्या ।

णिद्दुगस्स हवन्ते तत्तो थोणद्धियतिगस्स ॥१३२२॥

तत्तोऽत्थि बंधगा सि अणतगुणिआ ततो विसेसहिद्या ।

णिद्दुगस्स ताओ चउबीआवरणपयडीणं ॥१३२३॥

(प्रे०) ‘चउबीआवरणाणं’ इत्यादि, चतसृणां चक्षुरचक्षुर्वधिकेवलदर्शनावरणप्रकृती-
नामबन्धका अल्पाः, एकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दशगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तदबन्धकतया
प्राप्यमाणत्वात् । ततो निद्राद्विकस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, अपूर्वकरणगुणस्थानद्वितीयादिभाग-
गतानां तथा नवमदशमगुणस्थानगतानामपि तेषु प्रवेशात् । ततः स्थानद्वित्रिकस्याऽबन्धका विशे-
षाधिकाः, ‘विशेषाधिक’ इति पदमत्राऽपि मन्वन्धनीयम्, तदबन्धकतया तृतीयाद्यष्टमगुणस्थान-
प्रथमभागगतानां जीवानामपि प्रवेशात् । ‘तत्तो’ इत्यादि, तेभ्योऽपि स्थानद्वित्रिकस्य बन्धका
अनन्तगुणाः, तद्वन्धकत्वेन निगोदादिजीवानां प्रथमद्वितीयगुणस्थानगतानां पञ्चेन्द्रियाणां च
तद्वन्धकत्वात् । ततोऽपि विशेषाधिका निद्राद्विकस्य बन्धकाः, यतस्तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथम-

(प्रे०) 'णेया' इत्यादि, संज्वलनलोभस्याऽवन्धका अन्धा ज्ञेयाः, दशभादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तदवन्धकत्वेन सद्भावात् । ततो मायामानक्रोधादीनामवन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका वक्तव्याः, यथाक्रमं नवमगुणस्थानकषश्चमाद्यधस्तनभागगतानां जीवानां तेषु प्रविष्टत्वात् । 'तो कमा तइअ'.....इत्यादि, ततः क्रमेण प्रत्याख्यानावरणाऽप्रत्याख्यानावरणानन्तानुबन्धिचतुष्काणामवन्धका विशेषाधिकाः, क्रमेण षष्ठादिषश्चमत्तीयादिगुणस्थानगतानां जीवानामवन्धकतयाधिकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'तत्तो' अनन्तानुबन्धिचतुष्कावन्धकेभ्यो विशेषाधिका मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धकाः, द्वितीयगुणस्थातृगतानामपि जीवानां तेष्वन्तर्गतत्वात् । 'तओ' इत्यादि मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽ-

बन्धकेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्य उत्क्रमेण क्रमशः 'अंतलोहं जा' संज्वलनलोमबन्धकर्यन्तं बन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः । इदमुक्तं भवति—मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्यो विशेषाधिका अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य बन्धकाः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, ततः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनक्रोधस्य बन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनमानबन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनमायाबन्धका विशेषाधिकाः, ततः संज्वलनलोमबन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयादिगुणस्थानत आरभ्य यावन्नवमगुणस्थानपञ्चमान्तभागेषु यथायोगं वर्तमानानां जीवानामधिकतया प्राप्यमाणत्वात् ॥१३२६ ७॥

इदानीं नोकपायमोहनीयस्याऽल्पबहुत्वमाह—

थोवा अवधगा णोकसायणवगस्स तो अणतगुणा ।
 पुरिसस्स वंधगा तो हवेज्ज इत्थीअ संखगुणा ॥१३२८॥
 ताओ हस्सरईण ततो सोगारईण अत्थि ताओ ।
 णपुमस्स विसेसहिंया ताउ हवेज्ज भयकुच्छाणं ॥१३२९॥

(प्रे०) 'थोवा' इत्यादि, हास्यादिपट्कवेदत्रयरूपस्य नोकपायनवकस्याऽबन्धका अप्याः, पुरुषवेदबन्धविच्छेदादूर्ध्वमनिवृत्तिगुणस्थानसूक्ष्ममम्परायादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च प्राप्यमाणत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्योऽनन्तगुणाः पुरुषवेदस्य बन्धकाः, तद्बन्धकतया निगोदजीवानां प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः स्त्रीवेदस्य बन्धकाः संख्यातगुणाः, पुरुषवेदबन्धकालापेक्षया स्त्रीवेदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो हास्यरत्योर्बन्धकाः संख्यातगुणाः, भावना पुनरित्थम् स्त्रीवेदः पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नैव सह वध्यते, हास्यरती तु एकेन्द्रियादिजातिनामभिरपि सह वध्येते, एकेन्द्रियजातिनामबन्धाद्वा पञ्चेन्द्रियजातिबन्धाद्वापेक्षया संख्येयगुणा वर्तते, तस्मात् केवलपञ्चेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धमहचारिस्त्रीवेदबन्धकालापेक्षयैकेन्द्रियादिजातिप्रकृतिबन्धसहचारिहास्यरतिबन्धकालः संख्येयगुणः प्राप्यत इति कृत्वा स्त्रीवेदबन्धकापेक्षया हास्यरतिबन्धका अपि संख्येयगुणाः प्राप्यन्ते । ततः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, हास्यरतिबन्धकालात्शोकारत्योर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो नपुंसकवेदस्य बन्धका विशेषाधिकाः, शोकारतिबन्धकालान्नपुंसकवेदबन्धकालस्य विशेषाधिकत्वात् । ततोऽपि भयकुत्सयोर्बन्धका विशेषाधिकाः, यतो भयकुत्सुप्ताबन्धकेषु स्त्रीपुरुषवेदबन्धकानामपि समावेशो भवति, नपुंसकवेदबन्धकेषु च न तथा ॥१३२८-९॥

अथाऽऽयुक्कर्मणां तन्निरूप्यते

होअन्ति वधगाऽप्पा णराउगस्स उ ततो असखगुणा ।
 णिरयाउस्स हवन्ते ततो मुराउस्स विण्णेया ॥१३३०॥

ततो अणंतगुणिना तिरियाउस्सऽत्थि ताउ चउगस्स ।

हुन्ति विसेसहिया तो अवधगा अत्थि सखगुणा ॥१३३१॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, मनुष्यायुर्वन्धकाः स्तोकाः, मनुष्याणां सर्वालप्यत्वात् । ततोऽसंख्येयगुणा नरकायुर्वन्धकास्ततो देवायुर्वन्धका असंख्येयगुणाः । पूर्वपूर्वराशित उत्तरोत्तराशेरसंख्यगुणत्वेन तत्तदायुर्वन्धकानामप्यसंख्येयगुणत्वं बोध्यम् । उक्तं च राशित्रयस्याल्पबहुत्वप्रज्ञापनायां तृतीयाल्पबहुत्वपदे—संवत्थोवा मणुस्सा नेरइया असखेज्जगुणा देवा असखेज्जगुणा इति । ततोऽनन्तगुणास्तिर्यगायुर्वन्धकाः, निगोदानामपि तत्प्रायोग्यत्वात् । ततोऽप्यायुःसामान्यस्य वन्धका विशेषाधिकाः देवनरकमनुष्यायुर्वन्धकानामपि तेषु समाविष्टत्वात् । ततोऽप्यायुषोऽवन्धकाः संख्येयगुणाः, विवक्षितममये सकलजीवेषु संख्याततमभागप्रमाणजीवराशेरेवायुर्वन्धकत्वात् ॥१३३०-१॥

इदानीं नामकर्मणोऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नादौ गत्यानुपूर्वीनाम्नोस्तदाह

होअन्ति वंधगाप्पा देवगईए तओऽत्थि सखगुणा ।

णिरयगईए ततो चउण्ह वि अवधगा अणतगुणा ॥१३३२॥ (गीति)

ततोऽत्थि वधगा णरगईअ तो तिरिगईअ सखगुणा ।

ताओ विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीण ॥१३३३॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, देवगतिनाम्नो वन्धका अल्पाः, पञ्चेन्द्रियाणामेव तद्वन्धविधायित्वात्, तेषां चैकेन्द्रियाद्यपेक्षया सर्वालप्यत्वात् । ततो नरकगतिनाम्नो वन्धकाः संख्येयगुणाः, देवगतिवन्धकालापेक्षया नरकगतेर्वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततोऽपि चतुर्णामपि गतिकर्मणामवन्धका अनन्तगुणाः, सिद्धानामपि तद्वन्धकत्वात्, तेषां च नरकगतिनामवन्धकपञ्चेन्द्रियजीवेश्वोऽनन्तगुणत्वात् । तेभ्यो मनुष्यगतिनाम्नो वन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामपि तद्वन्धकत्वात् तेषां च सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वात् । तेभ्योऽपि संख्येयगुणास्तिर्यग्गतिनामवन्धकाः, मनुष्यगतिवन्धकालात्तिर्यग्गतिवन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततोऽपि चतसृणां गतिप्रकृतीनामवन्धका विशेषाधिकाः, देवनरकमनुष्यगतिवन्धकानां तेषु प्रवेशात् । 'एव' मिति, एवमेवानुपूर्वीचतुष्कस्याऽप्यल्पबहुत्वं बोद्धव्यम् ॥१३३२-३॥

इदानीं जातिनामप्रकृतिषु तदुच्यते

सव्वप्पा पचण्ह जाईण अवंधगा मुणेयव्वा ।

ततोऽत्थि वधगा खलु पणिदिजाईअणतगुणा ॥१३३४॥

ततो सखेज्जगुणा कमसो हुन्ति चउरिदिधाईण ।

ताओ विसेसअहिया हवेज्ज पचण्ह जाईण ॥१३३५॥

(प्रे०) 'सव्वप्पा' इत्यादि, पञ्चजातिनाम्नामवन्धकाः सर्वालपाः, अपूर्वकरणाष्टमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानां जीवानां सिद्धानां च तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ततोऽनन्तगुणाः पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नो वन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्वन्धकत्वेन सत्त्वात्, ततश्चतु-

रिन्द्रियादिजातिप्रकृतीनां क्रमेण संख्येयगुणाः संख्येयगुणा बन्धका ज्ञातव्याः । अयं भावः-पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततस्त्रीन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो द्वीन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽप्येकेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्वन्धकाऽनन्तबहु भागप्रमाणनिगोदजीवेषु पूर्वपूर्वजातिनाम्नो बन्धकालादुत्तरोत्तरजातिनाम्नो बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽपि पञ्चानामपि जातिनाम्नां बन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्याः, द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकानां तेषु प्रवेशात् ॥१३३४५॥

अधुना शरीरनाम्नि तदाह

होअन्ति बधगाऽल्पा आहारतणुस्स तो असंखगुणा ।

विउवस्स अणतगुणा, अबंधगा पणतणूण तओ ॥१३३६॥

ताओ अणंतगुणिआ ओरालतणुस्स बधगा जेया ।

तत्तो विसेसअहिया बोद्धव्वा तेअकमाणं ॥१३३७॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकशरीरनाम्नो बन्धकाः सर्वतोऽल्पा वर्तन्ते, अप्रमत्तमयतापूर्वकरणस्थानामेव तद्वन्धकत्वेन सद्भावात् । ततो वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका असंख्यगुणाः, पञ्चेन्द्रियजीवानां तेषु तद्वन्धकत्वेन ममावेशात् । ततोऽपि पञ्चशरीरनाम्नामबन्धका अनन्तगुणाः, अपूर्वकरणगुणस्थानसप्तभागनवमादिगुणस्थानगतजीवानां सिद्धानां च तद्वन्धकत्वेन सत्त्वाद् मिद्धानां च पञ्चेन्द्रियजीवेभ्योऽनन्तगुणत्वात् । ततोऽनन्तगुणा औदारिकशरीरनाम्नो बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्वन्धकत्वेन सत्त्वात्, सिद्धादिभ्यस्तेषामनन्तगुणत्वात् । ततो विशेषाधिकास्तैजसकर्मणशरीरनामबन्धकाः, यत् आहारकवैक्रियशरीरनाम्नो बन्धका अपि तेषु प्रविशन्ति, तैजसकर्मणशरीरनाम्नोऽत्रुर्वन्धिप्रकृतित्वेन वैक्रियादिशरीरनाम्ना मह बध्यमानत्वात् । न च शरीरसामान्यमपेक्ष्य तद्वन्धकानामल्पबहुत्वं तैजसकर्मणशरीरद्वयानन्तरं वक्तव्यमिति वाच्यम्, शरीरसामान्यबन्धकानामपेक्षया तैजसकर्मणशरीरनामबन्धकानां सख्याया समानत्वेन तैजसकर्मणशरीरनामबन्धकानामल्पबहुत्वोक्तौ शरीरसामान्यबन्धकानामपि तस्योक्तप्रायत्वात् ॥१३३६-७॥

इदानीमङ्गोपाङ्गनाम्नि प्रकृतं प्रस्तूयते

होअन्ति बंधगा खलु थोवा आहारवंगणामस्स ।

ताउ असखेज्जगुणा वेउव्वियुवंगणामस्स ॥१३३८॥

तत्तो अणंतगुणिआ उरालुवगस्स तो विसेसहिया ।

तिउवंगणं तत्तो अबधगा अत्थि सखगुणा ॥१३३९॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः स्तोकाः, अप्रमत्तापूर्वकरणसंयतानामेव तद्वन्धकत्वात् । तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धका असंख्येयगुणाः पञ्चेन्द्रियजीवानां तद्वन्धकत्वेन तेषु प्रवेशात् । ततोऽनन्तगुणा औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः, निगोदजीवानां

मपि तद्वन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् । तेभ्योऽङ्गोपाङ्गत्रयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, वैक्रियाहारका-
ङ्गोपाङ्गबन्धकानामपि तेषु प्रविष्टत्वात् । तेभ्योऽपि तद्वन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, तद्यथा—द्वीन्द्रि-
यादिजातिबन्धका अङ्गोपाङ्गनामप्रकृतिं बध्नन्ति, न पुनरेकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः, तथा द्वीन्द्रिय-
जातिनामबन्धकालापेक्षयैकेन्द्रियजातिनामबन्धकालः संख्येयगुणोऽस्ति, तस्माद् द्वीन्द्रियादिजाति-
नामबन्धकानामपेक्षयैकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्त इति हेतोरङ्गोपाङ्गनाम्नोऽव-
न्धकास्तद्वन्धकापेक्षया तावत्प्रमाणा एव प्राप्ता भवन्ति ॥१३३८-९॥

इदानीं सहनननाग्नि प्रकृतमभिधीयते

चङ्हरस्स बधगाऽप्पा तो सखगुणा कमा विआईणं ।

तो छण्ह विसेसहिया तो सखगुणा अवंधगा छण्हं ॥१३४०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'चङ्हरस्स' उत्पादि, चर्चर्षमनाराचमहननस्य बन्धका अल्पाः, शुभप्रकृतित्वात्,
शुभप्रकृतेर्वन्धकालस्याऽशुभप्रकृतिबन्धकालतः संख्येयगुणहीनत्वात् । ततः संख्यातगुणाः संख्या-
तगुणाः क्रमेण द्वितीयादिसंहननप्रकृतिबन्धकाः, पूर्वपूर्वसहननप्रकृतेर्वन्धकालादुत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धकाल-
स्य संख्येयगुणत्वात् । 'तो' ति, अन्तिमसंहननप्रकृतिबन्धकेभ्यः पण्णामपि संहननप्रकृतीनां बन्धका
विशेषाधिकाः, प्रथमादिसंहननप्रकृतिबन्धकानामपि समाविष्टत्वात् । ततः संहननपट्कस्याऽबन्धकाः
संख्येयगुणाः, तद्यथा—एकेन्द्रियजातिप्रकृतिबन्धकाः संहननस्याऽबन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजाति-
प्रकृतिबन्धकास्तु तद्वन्धका वर्तन्ते, निगोदजीवेषु एकेन्द्रियजातिबन्धकालो द्वीन्द्रियादिबन्धकालतः
संख्येयगुणः, अत एकेन्द्रियजातिबन्धका अपि द्वीन्द्रियादिजातिबन्धकेभ्यः संख्येयगुणाः प्राप्यन्त
इतिकृत्वा संहननपट्कस्याऽबन्धका अपि तावन्त एव प्राप्यन्ते ॥१३४०॥

इदानीं संस्थाननाग्नि प्रस्तुतमुच्यते

छण्हं संठाणाणं सव्वत्योवा अवंधगा णेया ।

ताउ पढमागिईएऽणतगुणा वंधगा णेया ॥१३४१॥

ततो वीआईण संठाणाण कमा मुणोयव्वा ।

संखेज्जगुणा ताओ छण्ह वि हुन्ते विसेसहिया ॥१३४२॥

(प्रे०) 'छण्हं' इत्यादि, पण्णां संस्थानप्रकृतीनामबन्धकाः सर्वस्तोका ज्ञातव्याः, अपूर्वकरण-
गुणस्थानस्य सप्तमभागनवमादिगुणस्थानगतानां सिद्धानां च तद्वन्धकत्वेन विद्यमानत्वात् ।
तेभ्योऽनन्तगुणाः समचतुरस्रसंस्थानस्य बन्धकाः, निगोदजीवानामपि तद्वन्धकत्वेन वर्तमानत्वात् ।
ततो द्वितीयादिसंस्थानानां बन्धकाः क्रमेण संख्येयगुणा (२) ज्ञातव्याः, पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थान-
बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, हुण्डकसंस्थानबन्धकेभ्यः पण्णामपि समुदितानां
संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामपि तेषु समावेशात् ॥१३४१-२॥

साम्प्रतमातपद्विकजिननामप्रकृतीनामधिकृतमाह—

होअन्ति बंधगाओ अवधगायवदुगस्स सखगुणा ।

तित्थस्स अणंतगुणा अवधगा बंधगाहिन्तो ॥१३४३॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, आतपोद्योतनाम्नोर्वन्धकेभ्योऽवन्धकाः संख्यगतगुणा वर्तन्ते, तद्यथा—सूक्ष्मनाम्नो वन्धका आतपद्विकस्याऽवन्धका विद्यन्ते, केचन वादरनामवन्धकास्तु तद्वन्धका विद्यन्ते, वादरनामवन्धकालतः सूक्ष्मनामवन्धकालः संख्येयगुणोऽस्ति तस्मादातपोद्योतवन्धकेभ्यस्तद्वन्धकाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्ते । 'तित्थस्स' इत्यादि, जिननाम्नो वन्धकेभ्योऽवन्धका अनन्तगुणा वर्तन्ते, निगोदादिजीवानां सिद्धानामपूर्वकरणगुणस्थानमप्तमाष्टमभाजनवमादिचतुर्दशगुणस्थानपर्यन्तगतानां जिननामसत्कर्मविरहितमभ्यगृह्यप्रभृतीनां च तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् ॥१३४३॥

सम्प्रति स्वरखगत्योस्तन्निरूप्यते

खगइसराण सुहत्तो सखगुणा वधगाऽसुहाण तओ ।

दुविहाण विसेसहिया अवधगा ताउ सखगुणा ॥१३४४॥

(प्रे०) 'खगइ' इत्यादि, शुभखगतिस्वरनाम्नोर्वन्धकेभ्योऽशुभखगतिदुःस्वरनाम्नोर्वन्धकाः संख्येयगुणाः मन्ति, इदमुक्त भवति—शुभविहायोगतिवन्धकेभ्योऽशुभविहायोगतिवन्धकाः संख्यगतगुणाः, एवमेव सुस्वरवन्धकेभ्यो दुःस्वरवन्धकाः मख्यातगुणाः, शुभप्रकृतेर्वन्धकालादशुभप्रकृतिवन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'दुविहाण' इत्यादि, अशुभखगतिवन्धकेभ्यः खगतिद्वयवन्धकाः, दुःस्वरवन्धकेभ्यः स्वरद्वयवन्धकाश्च विंशोपाधिका अवसेयाः, यथायोगं सुस्वरवन्धकानां सुखगतिवन्धकानां च तेषु प्रवेगात् । खगतिद्वयवन्धकेभ्यः स्वरद्वयवन्धकेभ्यो यथाक्रमं खगतिद्वयवन्धकाः स्वरद्वयवन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, यस्मादेकेन्द्रियजातिप्रकृतिवन्धकाः खगतिस्वरनाम्नोऽवन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिप्रकृतिवन्धकास्तु तद्वन्धका वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिवन्धकेभ्य एकेन्द्रियजातिवन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, द्वीन्द्रियादिजातिवन्धकालादेकेन्द्रियजातिवन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् ॥१३४४॥

ओधतः स्वस्थानापेक्षया जीवान्पचहुत्वमुक्तम्, अथ तदेवादेशतो मार्गणाभेदेषु प्रतिपादयन्नादौ कतिपयासु नरकमार्गणासु तत्समत्वेन कतिपयासु च देवमार्गणासु तत्प्रतिपाद्यते

णिरयपढमणिरयेसुं थोणद्वियतिगवधगा ऽप्पा तो ।

से बंधगा असंखियगुणा तओ छण्ह अवसहिया ॥१३४५॥

सायस्स बंधगाऽप्पा तओ असायस्स अत्थि संखगुणा ।

तत्तो विसेसअहिया दुवेअणीआण विण्णेया ॥१३४६॥

थोवा अवधगा अणचउगस्स तओ विसेसअहियाऽत्थि ।

मिच्छस्स ताउ हुन्ति असंखियगुणा बंधगा तस्स ॥१३४७॥

ताओ विसेसअहिया पढमाणं होइरे कसायाणं ।

ताहिन्तो सेसाणं हवेज्ज वारसकसायाणं ॥१३४८॥

पुरिसस्स बंधगाऽप्पा ताओ इत्थीअ अत्थिसखगुणा ।

तत्तो विसेसअहिया हरसरईण मुणेयव्वा ॥१३४९॥

ताड णपुमस्स हुत्ते संखेज्जगुणा तओ विसेसहिंया ।
 सोगारईण णेया ताड हवेज्ज भयकुच्छाणं ॥१३५०॥
 मणुसाउबंधगाओ तिरियाउगबंधगा असखगुणा ।
 दोण्ह विसेसहिंया तो अबंधगा दोण्ह संखगुणा ॥१३५१॥
 होअन्ति वधगाऽप्पा मणुयगईए तओ तिरिगईए ।
 संखेज्जगुणा ताओ दोण्ह वि णेया विसेसहिंया ॥१३५२॥
 एवं णेयं खगइछयिराइजुगलअणुपुच्चिगोआणं ।
 संघयणआगईसुं सखगुणा वधगा पढमा ॥१३५३॥
 कमसो वीआईणं ताड विसेसाहिंयाऽत्थि छण्हं पि ।
 तित्तयस्स बंधगाओ अबंधगा खलु असंखगुणा ॥१३५४॥
 उज्जोअस्स हवन्ते अबंधगा वधगाउ संखगुणा ।
 णेव भवे अप्पवह्ण सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१३५५॥

(प्रे०) 'णिरय' इत्यादि, नरकौघरत्नप्रभानरकमार्गणाद्वये स्त्यानद्वित्रिकस्याऽवन्धकाः सर्वे-
 स्तोका ज्ञेयाः, यतस्तृतीयचतुर्थगुणस्थानगतास्तद्वन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च मिथ्यादृक्सास्वादनाना-
 मपेक्षयाऽसंख्येयताभागमात्रत्वेनातीवस्तोका वर्तन्ते, । 'ताड' इत्यादि, तेभ्योऽसंख्येयगुणाः स्त्यान-
 द्वित्रिकवन्धका ज्ञेयाः, यतो मिथ्यादृक्सास्वादनजीवास्तद्वन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च स्वेतरजीवा-
 पेक्षयाऽसंख्येयगुणा वर्तन्ते । 'ताओ' इत्यादि, ततो निद्राद्विकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-
 रूपाणां पण्णां प्रकृतीनां वन्धका विशेषाधिका भवन्ति, मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवानामपि तद्वन्ध-
 कत्वेन तेषु प्रविष्टत्वात् ।

'साथस्स' इत्यादि, मातवेदनीयवन्धका अल्पाः, ततोऽमातवेदनीयवन्धकाः संख्येयगुणाः
 तेभ्यो वेदनीयद्वयवन्धका विशेषाधिकाः, यथासम्भवं हेतोरवगतिरोधानुमारेणाधेया ।

'धोवा' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिकचतुष्कस्याऽवन्धकाः स्तोकाः, तृतीयतुर्थगुणस्थानस्थानामेव
 तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । ततोऽपि मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादन-
 जीवानामपि तद्वन्धकतया समावेशात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयवन्धका असंख्यगुणाः, मिथ्यादृशां
 तद्वन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्, तेषां चेतरेभ्योऽसंख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' मिथ्यात्वमोहनीय-
 वन्धकेभ्योऽनन्तानुबन्धिकपायचतुष्कस्य वन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानां तद्वन्धकत्वेनाऽधिक-
 तया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः शेषाणामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपाणां
 द्वादशकपायाणां वन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः, तृतीयतुर्थगुणस्थानस्थानामपि तद्वन्धकत्वेनाऽ-
 धिकतया प्राप्यमाणत्वात् ।

अथ नवनोक्तपायस्याल्पबहुत्वं 'पुरिसस्स' इत्यादिनाऽऽह-पुरुषवेदवन्धका अल्पाः, ततः
 स्त्रीवेदवन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्वन्धका विशेषाधिकाः, ततो नपुंसकवेदस्य वन्धकाः

सख्यातगुणाः, ततोऽरतिशोकयोर्वन्धका विशेषाधिकाः, ततो मयजुगुप्सयोर्वन्धका विशेषाधिकाः । अत्र हेतुस्तु तत्तत्प्रकृतीनां बन्धकालेन साधनीयः । नन्वत्रौघे तु स्त्रीवेदबन्धकेभ्यो हास्यरत्योर्वन्धकाः संख्यातगुणाः, तथाऽरतिशोकयोर्वन्धकेभ्यो नपुंमकवेदबन्धका विशेषाधिका उक्ताः, अत्र तु ततो विलक्षणाः कथिताः, किन्त्वत्रापि तथैव वक्तव्यमुचितमिति चेद्, उच्यते तत्र त्वेकेन्द्रियगणिः प्रधानः, अत्र तु केवलपञ्चेन्द्रियजातिबन्धकसंहिताराशिः, अतोऽत्र पुरुषवेदस्त्रीवेदयोः समुदित बन्धकालाद् हास्यरत्योर्वन्धकालोऽल्पः स केवलस्त्रीवेदबन्धकालादधिकोऽन उक्तक्रमेणाऽल्पबहुत्वमायातम् ।

‘मणुसा’ इत्यादि, मनुष्यायुर्वन्धकेभ्यस्तिर्यगायुर्वन्धका असंख्येयगुणा वर्तन्ते, मनुष्यायुर्वन्धकाः संख्यातस्तिर्यगायुर्वन्धकास्त्वसंख्याता इति कृत्वा । ततोऽपि तदुभयबन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यायुर्वन्धकानामप्येषु समावेशात् । ‘तो’ इत्यादि, उभयायुर्वन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः ।

‘होअस्मि’ इत्यादि, मनुष्यगतेर्वन्धका अल्पाः, ततस्तिर्यग्गतिनामबन्धकाः संख्येयगुणाः, मनुष्यगतिबन्धकालात्तिर्यग्गतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ततो मनुष्यतिर्यग्गतिद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यगतिबन्धकानामप्येषु प्रविष्टत्वात् । ‘एवं’ इत्यादि, खगतिद्वयस्य, स्थिराऽस्थिरयोः, शुभाशुभयोः, सुभगदुर्भगयोः, आदेयाऽनादेययोः, सुस्वरदुःस्वरयोः, यशःकीर्त्यशः-कीर्त्योः, तिर्यग्मनुष्यापूर्वयोः, उच्चैर्नीचैर्गोत्रयोश्चाऽल्पबहुत्वं तिर्यग्मनुष्यगतिवज्ज्ञेयम् । ‘संध्यणा’ इत्यादि, संहननषट्क्रमसंस्थानषट्क्रयोरान्नमहननसंस्थानाभ्यामारभ्य क्रमशो द्वितीयादिसहननसंस्थानानां बन्धकाः संख्येयगुणा ज्ञातव्याः, पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरसहननसंस्थानप्रकृतीनां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ‘ताउ’ इत्यादि, अन्तिमसंहननबन्धकेभ्यः षण्णामपि संहननप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, एवमन्तिमसंस्थानबन्धकेभ्यः षण्णामपि संस्थानप्रकृतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, तत्पूर्वसंहननसंस्थानबन्धकानामत्र प्रवेशात् । ‘तित्थस्स’ इत्यादि, जिननामबन्धकेभ्योऽसंख्यातगुणास्तदबन्धका वर्तन्ते, कैश्चित्सम्यग्दग्भिरेव बध्यमानत्वात्, तेषां च प्रकृतमार्गणासु केवलमसंख्यातभागमात्रवर्तित्वात् । ‘उज्जोअस्स’ इत्यादि, उद्योतनाम्नो बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः, आसु मार्गणासु तदबन्धकालात्तदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । ‘णेच’ इत्यादि, उक्तप्रकृतिव्यतिरिक्तस्वप्रायोग्यप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति । शेषप्रकृतीनां बन्धस्य सर्वैः प्रकृतमार्गणागतैर्जीवैः सर्वदैव विधीयमानत्वात् । ताश्च माः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकवर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीरद्वयागुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपा एकोनविंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विक्रसचतुष्कपराघातोच्छ्वासरूपा नवाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेत्यष्टाविंशतिरिति ॥ १३४५-५५॥

अथ द्वितीयादिपञ्चनरकसनत्कुमारादिषड्देवमार्गणास्थानेषु तदभिधीयते ।

बीआइगिरयपणगे तइआइगअट्टमतेवेसुं ।

गिरयव्व सजोग्घाणं परमाउअवंधगा असखगुणा ॥१३५६॥ (गीति)

(प्रे०) 'बीआइ' इत्यादि, शर्कराप्रभावालुकाप्रभापङ्कप्रभाधूमप्रभातमःप्रभारूपासु पञ्चसु नरकमार्गणासु सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्राररूपासु च पङ्कदेवमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावदस्ति । ननु नरकौघमार्गणास्थाने तिर्यग्मनुष्यायुर्ध्रुववन्धकानामल्पबहुत्वं संख्यातगुणप्रमाणमतिदिष्टम्, तत्राऽत्रोपपद्यते, यतो हि प्रकृतमार्गणासु निखिलो जीवराशिरसंख्यवर्षायुष्को वर्तते, तस्मिन्नप्यसंख्यातभागप्रमाण एवायुर्वन्धकालोऽस्ति, अमंख्यातवहुभागप्रमाण आयुर्वन्धकालश्चेत्यरेकां निराकर्तुमपवादं 'परं' इत्यादिनोपदर्शयति, तद्यथा-तिर्यग्मनुष्यायुर्ध्रुववन्धकेभ्यस्तदुभयाऽवन्धका अमंख्येयगुणाः ॥१३५६॥

इदानीं तमस्तमःप्रभायामल्पबहुत्वमाह

गिरयव्व तमतमाए हवेज्ज सव्वाण परमसखगुणा ।

तिरियाउस्स हवन्ते अवंधगा बन्धगेहिन्तो ॥१३५७॥

तिरियगईए णेया णरगइओ वंधगा असखगुणा ।

ताओ विसेसअहिया दोण्ह वि एवमणुपुण्विगोआणं ॥१३५८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'गिरयव्व' इत्यादि, तमस्तमःप्रभाख्यसप्तमनरकमार्गणायां सर्वासां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां वन्धकानामवन्धकानां चाल्पबहुत्वं नरकौघवद् वेदितव्यम्, । ननु नरकौघे द्वयोरप्यायुर्पोर्वन्धकेभ्योऽवन्धकाः संख्येयगुणाः प्रोक्ताः, तदनुसारेण तिर्यगायुर्वन्धका अपि तद्वन्धकेभ्यः संख्येयगुणा एव प्राप्यन्ते, परं तदत्र न सङ्गच्छते, अस्यां मार्गणायामपि जीवराशेरसंख्यवर्षायुष्कत्वेनायुर्वन्धकालस्य केवलमेकासंख्येयभागप्रमाणतयैव प्राप्यमाणत्वादिति शङ्कावारणाय 'परमं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति, तिर्यगायुष्कस्याऽवन्धकास्तद्वन्धविधायिभ्योऽसंख्येयगुणाः सन्ति, अत्र मनुष्यायुपोऽवन्धात्तद्वन्धका नोक्ताः । एतेव समापतन्तीरन्या अप्यापत्तीराकर्तुमपवादं 'तिरियगईए' इत्यादिगाथया दर्शयति । 'तिरियगईए' इत्यादि, मनुष्यगतिनामो वन्धकेभ्यस्तिर्यग्गतिवन्धका असंख्येयगुणाः, यतो हि-प्रस्तुतमार्गणायां मनुष्यगतिनामो वन्धो मिश्रदृष्टिमन्यगृहृष्टिभिरेव जीवैः क्रियते, तेषां च राशिर्मार्गणागतजीवराशेरसंख्यातभागमात्रोऽस्ति । 'ताओ' इत्यादि, तिर्यग्गतिवन्धकेभ्यस्तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयवन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यगतिवन्धकानामपि समावेशात् । 'एव' इत्यादि, अत्रानुपूर्वीगोत्रप्रकृतिविषयेऽप्यल्पबहुत्वं गतिवद् विज्ञेयम् ॥१३५७ ८॥

अधुना तिर्यगौघमार्गणायामधिकृतमाह

तिरियेज्जअतिमाण ण गिरयव्व दुवेअणीअगोआणं ।

ओधव्वाउउवगखगइसरसंधयणआयवडुगाण ॥१३५९॥ (गीति)

णेया अवंधगाप्पा थोणद्धितिगस्स तो अणतगुणा ।

सि बंधगा तओ छदरिसणावरणाण अमहिया ॥१३६०॥

दुइआण कसायाण अवधगाऽप्पा तओ असखगुणा ।
 पढमाण तओ अहिया मिच्छस्स तओ अणतगुणा ॥१३६१॥
 से बधगाऽहिया तो कमा कसायाण पढमदुइआण ।
 सेसाण बधगाऽप्पा पुमत्त तत्तोऽत्थि ओधव्व ॥१३६२॥
 गइजाइसरीरागिइतसाइणवज्जुगलआणुपुव्वीण ।
 ओधव्व पर गइओहार्इण अवधगा णत्थि ॥१३६३॥
 परधाऊसासाण अवधगा बधगाउ सखगुणा ।
 तत्तोऽत्थि अगुल्लहुउवघायाण बंधगा विसेसहिया ॥१३६४॥ (गीतिः)
 सरवज्जतसाइत्तो तप्पडिवक्खाण ववगा णेया ।
 सखेज्जगुणा ताओ दोण्ह वि णेया विसेसहिया ॥१३६५॥

(प्रे०) 'तिरिचे' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गगायां 'ऽज्जअंतिमाण' चि ज्ञानावरणपञ्चकोऽ-
 न्तरायपञ्चक्रयोगल्पबहुत्वं नास्ति, मार्गगायामस्यां तयोर्वन्धविच्छेदाभावात् । 'णिरथव्व' इत्यादि,
 वेदनीयगोत्रकर्मणोरल्पबहुत्वं नरकौघवद् विज्ञेयम्, तद्यथा—सातवेदनीयवन्धका अल्पाः, ततोऽसात-
 वेदनीयस्य वन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वेदनीयद्वयवन्धका विशेषाधिकाः । उच्चैर्गोत्रवन्धकाः
 स्तोकाः, ततो नीचैर्गोत्रवन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽपि गोत्रद्वयस्य वन्धका विशेषाधिकाः ।
 भावना पुनरत्र नरकौघमार्गणानुसारेण भावनीया । अस्या मार्गगाया वेदनीयगोत्रयोरवन्धका नोप-
 लभ्यन्ते, सततं वध्यमानत्वात्, अतस्तदपेक्षयाऽल्पबहुत्वं न मम्ममतीत्युत्तरत्राप्यल्पबहुत्वाभावे
 यथामंभवं स्वयं विज्ञेयः ।

'ओधव्व' इत्यादि, आयुष्ककर्माङ्गोपाङ्गखगतिस्वरसहननातपोद्योतप्रकृतीना वन्धकानामल्प-
 बहुत्वमोघवद् विज्ञातव्यम्, तद्यथा—मनुष्यायुष्कवन्धका अल्पाः, ततो नरकायुष्कवन्धका असंख्येय-
 गुणाः, ततो देवायुष्कवन्धका असंख्येयगुणाः, ततस्तिर्यगायुष्कवन्धका अनन्तगुणाः, ततश्चतुर्णाम-
 प्यायुषां वन्धका विशेषाधिकाः, ततश्च तदवन्धकाः संख्येयगुणाः, अत्राहारकाङ्गोपाङ्गस्य वन्धाभावात्
 वैक्रियाङ्गोपाङ्गवन्धकाः स्तोकाः, तत औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो वन्धका अनन्तगुणाः, ततोऽङ्गोपाङ्गद्वय-
 वन्धका विशेषाधिकाः, ततश्चाङ्गोपाङ्गभामान्यस्याऽवन्धकाः संख्येयगुणाः । शुभखगतिवन्धकेभ्योऽशुभ-
 खगतिवन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यस्तदुभयवन्धका विशेषाधिकास्तेभ्यश्च तदवन्धकाः संख्येयगुणाः ।
 एवमेव स्वरनाम्नोऽप्यल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । वज्रर्मनाराचसंहननवन्धकाः स्तोकाः, ततः संख्यातगुणाः
 (२) क्रमेण द्वितीयादिसंहननप्रकृतिवन्धकाः, ततः सहननसामान्यस्य वन्धका विशेषाधिकाः ततोऽपि
 संहननपट्कस्याऽवन्धकाः संख्यातगुणाः । आतपोद्योतनाम्नोर्वन्धकेभ्योऽवन्धकाः संख्येयगुणाः ।
 भावना पुनरत्रौघानुसारेण स्वयं कार्या ।

'णेया' इत्यादि, स्त्यानद्धिन्निकस्याऽवन्धका अल्पाः, यतः प्रकृतमार्गगायां तृतीयतुर्गपञ्च-
 मगुणस्थानस्था जीवा एव तदवन्धका विद्यन्ते, ते च मार्गगागतजीवानामनन्ततमे भाग एव वर्तन्ते,

तेभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिकवन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानां तद्वन्धकत्वेनाऽत्र वर्तमानत्वात् । ततश्चत्तुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कनिद्राप्रचलारूपस्य प्रकृतिपट्कस्य वन्धका अभ्यधिकाः, तृतीयतुर्यपञ्चमगुणस्थानगतजीवानामपि तद्वन्धकतया सत्त्वात् ।

‘दुहआण’ इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणाख्यद्वितीयकपायस्याऽवन्धका अल्पाः, देशविरतानामत्र तदवन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्, तेषां च मार्गागतजीवानामनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । तेभ्योऽनन्तानुबन्धचतुष्कस्याऽवन्धका असंख्येयगुणाः, मिश्रदृष्ट्यविरतसम्यग्दशमपि तदवन्धकत्वेन विद्यमानत्वात्, तेषां च देशविरतेभ्योऽसंख्येयगुणत्वात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धका विशेषाधिकाः, आस्वादनानां तदवन्धकत्वेनाऽधिकतया लाभात् । ततो मिथ्यात्वमोहनीयस्य वन्धका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामप्यत्र तदवन्धकत्वेन सत्त्वात् । तस्मात् क्रमेण प्रथमद्वितीयकपाययोर्वन्धका विशेषाधिकाः (१), यथाक्रमं सास्वादनानां तृतीयतुर्यगुणस्थानगतानां च तदवन्धकत्वेनाऽधिकतया लाभात् । तेभ्यः शेषप्रत्याख्यानावरणसंज्ञलनकपायचतुष्कयोर्वन्धका विशेषाधिकाः, देशविरतानामपि तदवन्धकतया विद्यमानत्वात् । ‘बन्धगा’ इत्यादि, पुरुषवेदस्य वन्धका अल्पाः, ततस्त्रीवेदवन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, ततः शोकारत्योर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यो नपुंसकवेदवन्धका विशेषाधिकाः, ततश्च भयकुत्सावन्धका विशेषाधिकाः । भावना पुनरिह यथासम्भवमोघत एवानुमन्धेया ।

‘गहजाह’ इत्यादि, गतिजातिशरीरसंस्थानत्रसादिनवयुगलानुपूर्वीनामप्रकृतिवन्धकानामल्पबहुत्वमोघवदवसातव्यम् । तत्पुनरेवम्—देवगतिवन्धकाः स्तोकाः, ततो नरकगतिवन्धकाः संख्येयगुणाः, ततो मनुष्यगतिवन्धका अनन्तगुणाः, ततस्तिर्यग्गतिवन्धकाः संख्येयगुणाः, ततश्च चतुर्णामपि गतीनां वन्धका विशेषाधिकाः, एवमेवानुपूर्वीचतुष्कस्याऽल्पबहुत्वं बोध्यम् । पञ्चेन्द्रियजातिवन्धका अल्पाः, ततो यथाक्रमं संख्येयगुणाः (२) चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियैकेन्द्रियजातिवन्धकाः । एकेन्द्रियजातिवन्धकेभ्यश्च पञ्चानामपि जातीनां वन्धका विशेषाधिकाः । वैक्रियशरीरवन्धका अल्पाः, तत औदारिकशरीरवन्धका अनन्तगुणाः, ततो विशेषाधिकास्तैजसकर्मणशरीरद्वयवन्धकाः । समचतुरस्रसंस्थानवन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यो द्वितीयादिसंस्थानवन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणाः, (२) अन्तिमहुण्डकाख्यसंस्थानवन्धकेभ्यः पण्णामपि समुदितानां संस्थानानां वन्धका विशेषाधिकाः । त्रसनाग्नौ वन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यः संख्येयगुणाः स्थावरनाम्नो वन्धकाः, तेभ्यः प्रकृतप्रकृतिद्वयवन्धका विशेषाधिकाः । एवमेव वादरसूक्ष्मे पर्याप्ताऽपर्याप्ते प्रत्येकसाधारणे स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःकीर्त्ययशःकीर्ती चेति युगलाष्टकस्याप्यल्पबहुत्वं समधिगम्यम् । भावना पुनरिहौधानुसारेणाऽवसातव्या । ननु गतिप्रभृतिप्रकृतिवन्धकानामल्पबहुत्वं भवद्भिरत्रौघतोऽतिदिष्टम्, तच्चेधे प्रकृतप्रकृत्यवन्धकानप्याश्रित्याभिहितमस्ति, अत्र पुनस्तादृशमल्पबहुत्वं नाऽ-

वाप्यते, गतिनामादिप्रकृतप्रकृत्यबन्धकानामप्राप्यमाणत्वेन तद्बन्धकान् प्रतीत्यैवाऽल्पबहुत्वस्य प्राप्यमाणत्वात्, अतोऽत्रौघतोऽतिदेशोऽनुचित इत्याशङ्कामपनेतुं 'पर' मित्यादिनाऽपवादमभिधाति—किन्तु गत्याद्योधिकप्रकृतीनामबन्धका न सन्ति । 'परघाऊसासाण' मित्यादि, पराधातोच्छ्वासनाम्नोर्बन्धकेभ्योऽबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकालादपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वेन एतत्प्रकृतिद्वयबन्धकालापेक्षयाऽबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, ततोऽप्यगुल्लवूपघातप्रकृत्योर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराधातोच्छ्वासप्रकृतिद्वयस्य बन्धकानामपि तत्र समावेशात् । प्रकृतप्रकृतिद्वयबन्धस्य ध्रुवत्वेनेह सर्वजीवानां तस्य बन्धकत्वादिति ॥१३५९ ६५॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वं सापवादमतिदिशन्नाह

तिरियव्वऽप्पाबहुगं पणिदितिरियम्मि सव्वपयडोण ।

णवरि जहि अणतगुणा उताऽतिय तहि असखगुणा ॥१३६०॥

(प्रे०) 'तिरियव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघमार्गणायां सर्वप्रकृतीनां स्वस्थानाल्पबहुत्वमनन्तरोक्ततिर्यगोघमार्गणावदस्ति, नवरं बन्धका अबन्धका वा यस्मिन् स्थानेऽनन्तगुणा उक्तास्तेऽत्र तस्मिन् स्थानेऽसंख्यगुणा वक्तव्याः, मार्गणागतसर्वजीवानामसंख्येयत्वादिति । अल्पबहुत्वं तत्रतोऽवसेयम् ॥१३६०॥

साम्प्रतं पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणाद्वये तदुच्यते

णामाउगवज्जाण एमेवऽतिय दुपणिदितिरियेसुं ।

णिरयसुराऊण कमा णराउगा वधगा असखगुणा ॥१३६१॥

(गीति)

तत्तो सखेज्जगुणा तिरियाउस्सऽतिय तो विसेसहिया ।

हुन्ते चउण्ह ताओ अबधगा ताण सखगुणा ॥१३६२॥

देवगइत्तो कमसो सखगुणा बंधगा णराईण ।

तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वोण ॥१३६३॥

चउरवखा सखगुणा तिइदियाईण वधगा कमसो ।

ताउ पणिदिस्स तओ पचण्ह खलु विसेसहिया ॥१३६४॥

उरलस्स वधगाऽप्पा ताओ हुन्ति विउवस्स सखगुणा ।

तत्तो विसेसअहिया तेअसकम्माण बोद्धव्वा ॥१३६५॥

होअन्ति वधगाऽप्पा उरालुव्वगस्स ताउ सखगुणा ।

दोण्ह वि अबधगा ताउ वधगा विउव्वगस्स ॥१३६६॥

तो दोण्ह विसेसहिया पचथिराइजुगलाण णिरयव्व ।

संधयणआगिईणं तिरियव्व हवेज्ज अप्पवहू ॥१३६७॥

होअन्ति बंधगाऽप्पा थावरचउगस्स ताउ सखगुणा ।

तप्पडिववलाण तओ हवेज्ज दुविहाण अब्भहिया ॥१३६८॥

परघूसासाणऽप्या अबंधगा ताउ बंधगा पेया ।

संखगुणा तो अगुल्लहुवधायाण विसेसहिया ॥१३६॥

सुखगइसराण योवाऽत्थि बंधगा तो अबंधगा दोण्ह ।

संखगुणा तो असुहाण वधगा ताउ दोण्ह अब्भहिया ॥१३७॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णामाउगवेज्जाण' मित्यादि, पर्याप्ततिर्य्यपञ्चेन्द्रियतिरश्चीमार्गणयोर्नामकर्माऽऽयुष्कर्मबन्धकानामल्पबहुत्वं विहाय शेषप्रकृतीनां बन्धकावन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियतिर्य्यगोघमार्गणाद् विज्ञेयम् । 'णिरयसुराऊण' इत्यादि, मनुष्यायुष्कबन्धकेभ्यो नरकायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः, तेभ्यो देवायुष्कबन्धका असंख्येयगुणाः । 'तत्तो' इत्यादि, देवायुष्कबन्धकेभ्यस्तिर्य्यगायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, यतः प्रकृतमार्गणाद्वये संख्येयभागप्रमाणाऽऽयुबन्धकास्तेषु च संख्येयबहुभागप्रमाणा जीवास्तिर्य्यगायुष्कबन्धका वर्तन्ते । 'हुन्ते' इत्यादि, तिर्य्यगायुर्वन्धकेभ्यश्चतुर्णामप्यायुषां बन्धका विशेषाधिकाः, नरनरकसुरायुर्वन्धकानामिह प्रवेशात् । 'ताओ' इत्यादि, चतुर्णामायुषां बन्धकेभ्य आयुर्वन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, प्रकृतमार्गणाद्वये सामान्यत आयुर्वन्धकालतस्तद्वन्धकालस्य मङ्गल्येयगुणत्वात् ।

'देवगइत्तो' इत्यादि, देवगतिबन्धकेभ्यो मनुष्यगतिबन्धकाः, तेभ्यस्तिर्य्यगतिबन्धकाः, तेभ्योऽपि नरकगतिबन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणा ज्ञातव्याः, पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिरश्चामत्र प्राधान्येन तेषामुत्तरोत्तरगतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, नरकगतिबन्धकेभ्यश्चतुर्णां गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, नरकेतरगतिबन्धकानामत्र प्रवेशात् । 'एव' इत्यादि, एवमेव गतिनामवदानुपूर्वीनामबन्धकानामप्यल्पबहुत्वमवसातव्यम् । 'चउरक्खा' इत्यादि, चतुरिन्द्रियजातिनामबन्धकेभ्यस्त्रीन्द्रियजातिनामबन्धकाः, तेभ्यो द्वीन्द्रियजातिनामबन्धकाः, तेभ्यश्चैकेन्द्रियजातिनामबन्धकाः क्रमशः संख्येयगुणा वर्तन्ते, उत्तरोत्तरजातिनामबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, यस्मान्नरकगतिबन्धकानां तदितरगतिबन्धकेभ्यः संख्यातगुणत्वेन तत्सहचरितपञ्चेन्द्रियजातिनामबन्धकानामपि संख्येयगुणत्वमवसेयम् । 'तओ' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चानामपि जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, तदितरजातिबन्धकानां प्रवेशात् । 'उरलस्स' इत्यादि, औदारिकशरीरनामबन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यो वैक्रियशरीरनामो बन्धकाः संख्येयगुणाः, नरकगतिबन्धकानां प्राधान्यात् । 'तत्तो' इत्यादि, वैक्रियशरीरनामबन्धकेभ्यस्तैजसकर्मणशरीरनाम्नोर्वन्धका विशेषाधिका बोद्धव्याः, औदारिकशरीरनामबन्धकानामपि तेषु प्रविष्टत्वात् । 'होअन्ति' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धका अल्पाः, तेभ्य औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयस्याऽवन्धकाः संख्येयगुणाः, तिर्य्यगतिबन्धकाल एकेन्द्रियजातिबन्धकानामुपाङ्गद्वयस्याऽवन्धकत्वात्, तेषां च संख्यातबहुभागप्रमाणत्वात् । तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः संख्यातगुणाः, हेतुरत्र शरीरनामव-

ज्ञातव्यः । वैक्रियाङ्गोपाङ्गनामबन्धकेभ्य औदारिकवैक्रियाङ्गोपाङ्गद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकानामत्र प्रविष्टत्वात् । 'पञ्चधिरार्ह' न्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुमे सुभगदुर्भगे आदेयानादेये यशःक्रीर्त्ययशःक्रीर्ती चेति पञ्चानां युगलानां नरकौघमार्गणावदल्पबहुत्वमवसेयम् । 'संख्येय' इत्यादि, संहननसंस्थानयोरल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद् बोद्धव्यम् । 'होअन्ती' न्यादि, स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तिसाधारणलक्षणस्य स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यस्तत्प्रतिपक्षभूतानां त्रसदादरपर्याप्तप्रत्येकप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयगुणाः, अत्र नरकगतिबन्धकानां प्राधान्यात् । 'तओ' इत्यादि, तेभ्यस्त्रसस्थावरादियुगलानां बन्धका अभ्यधिकाः, स्थावरचतुष्कबन्धकानामपि समावेशात् । 'परघू' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासनाम्नोर्बन्धका अल्पाः, तेभ्यस्तयोर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, नरकगतिबन्धकानां संख्येयगुणत्वात्तेषामनयोर्बन्धकत्वाच्च । पराघातोच्छ्वासबन्धकेभ्योऽगुरुलघूपघातनाम्नोर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराघातोच्छ्वासानामबन्धकानामत्राऽन्तर्भावात् । 'सुखगह' इत्यादि, सुखगतिसुस्वरप्रकृत्योर्बन्धकाः स्तोकाः वर्तन्ते, तेभ्यः खगतिद्विकस्य स्वरद्विकस्य चाबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्योऽशुमखगतिदुःस्वर्गयोर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, भावना त्वत्रोपाङ्गनामवत्कार्या । तेभ्यो द्वयोरपि बन्धका अभ्यधिका विज्ञेयाः, सुखगतिसुस्वरबन्धकानामप्यत्र समावेशात् । १३६१-७० ॥ इदानीमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु तत्साम्येन विकल्पृथ्वीकायाः कायप्रत्येकवनस्पतिकायानां सकलमार्गणासु प्रकृतं प्रस्तूयते

असमत्तर्पणितिरियमणुसर्पणितिरियतसेसु सञ्चेसु ।

विर्गलितियपुह्वोदगपत्तेअवणेषु विण्णेषु ॥१३७१॥

तिरियव्वऽप्पावहुग सायेयरणोकसायजार्हण ।

संख्येयणागिहखगइअगुरुलघुचउगदसजुगलगोआण ॥१३७२॥ (गीति)

णिरयव्व अत्थि तिरिणरतिगाणुरलुवगआयवदुगाण ।

वधगओ सखगुणा अवधगा णत्थि सेसाण ॥१३७३॥

(प्रे०) 'असमत्त' इत्यादि, अपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यपञ्चेन्द्रियत्रसरूपासु चतसृष्वपर्याप्तमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेन तिसृषु द्वीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु त्रीन्द्रियमार्गणासु तिसृषु च चतुरिन्द्रियमार्गणासु सप्तसु पृथिवीकायमार्गणासु सप्तसु चाऽप्कायमार्गणासु ओघपर्याप्ताऽपर्याप्तभेदभिन्नासु तिसृषु प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु चेति सम्मीलितासु त्रिंशन्मार्गणासु सातवेदनीयाऽसातवेदनीयहास्यरतिशोकाऽरतिभयकुन्सापुरुषस्त्रीनपुंसकवेदपञ्चजातीनां संहननसंस्थानखगत्यगुरुलघुचतुष्कत्रसदशकस्थावरदशकगोत्रप्रकृतीनां च बन्धकानामल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद् विज्ञेयम् । 'णिरयव्वे' इत्यादि तिर्यगायुस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीलक्षणतिर्यक्त्रिकमनुष्यायुर्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीलक्षणमनुष्यत्रिकयोर्बन्धकानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् वर्तते । 'उरलुवंगे' इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गातपोधोतरूपस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, तद्वन्ध-

कालादेतद्वन्धकालस्य मन्त्रेयगुणत्वात् । 'णन्धि' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतिवन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति, प्रकृतमार्गाणागतमकलजीवैः संततं तासां वध्यमानत्वात्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरण-पञ्चकं, दर्शनावरणनवकम्, मिथ्यात्वमोहनीयम्, पोडश कथायाः, औदारिकतैजसकर्मणशरीर-त्रयम्, निर्माणनाम, वर्णचतुष्कम्, अन्तरायपञ्चकं चेति चतुश्चत्वारिंशदिति ॥१३७१-३॥

अथ मनुष्यावमार्गाणां प्रकृतमल्पबहुत्वं कथ्यते

मणुए अवधगाओ विण्णेया वधगा असखगुणा ।
 पणणाणावरणाण वण्णचउगणिमिणपच्चविग्धाण ॥१३७४॥ (गीतिः)
 थोवा अवधगा चउवीआवरणाण तो विसेसहिया ।
 णिद्दादुगस्स तत्तो थोणद्धितिगस्स सखगुणा ॥१३७५॥
 तो अत्थि वधगा सि असखियगुणा तओ विसेसहिया ।
 णिद्दादुगस्स ताओ दरिसणआवरणचउगस्स ॥१३७६॥
 णेया अवधगाऽप्पा दुवेअणीयाण तो असखगुणा ।
 सायस्स वधगा तो अत्थि असायस्स संखगुणा ॥१३७७॥
 ताओ विसेसअहिया विण्णेया दोण्ह वेअणीयाण ।
 एमेव जाणियव्वा तसाइणवजुगलगोआण ॥१३७८॥
 थोवा अवधगांतिमलोहस्स तओ कमा विसेसहिया ।
 भायाईण तत्तो तइअकसायाण सखगुणा ॥१३७९॥
 ताउ कमा अत्थि दुइअपढमकसायाण तो विसेसहिया ।
 मिच्छस्स ताउ अत्थि असखगुणा वधगा तस्स ॥१३८०॥
 ताओ विसेसअहिया पढमदुइअतिअकसायचउगणां ।
 कमसो णेया तत्तो अतिमकोहाइगाण कमा ॥१३८१॥
 थोवा अवधगा णोकसायणवगस्स तो असखगुणा ।
 पुरिसस्स वधगेत्तो उड्ड ओधव्व विण्णेया ॥१३८२॥
 होअन्ति वधगा-ऽप्पा णेरइयाउस्स ताउ मखगुणां ।
 देवाउगस्स तत्तो असंखियगुणा णराउस्स ॥१३८३॥
 ताउ असंखेज्जगुणा तिरियाउस्सऽत्थि तो विसेसहिया ।
 आऊण चउण्ह तओ अवधगा ताण संखगुणा ॥१३८४॥
 थोवा अवधगा चउगईण तो वधगाऽत्थि सखगुणा ।
 मुरणिरयगईण कमा ताओ णेया असखगुणा ॥१३८५॥
 मणुयगईए ताओ सखगुणा तिरिगईअ ताहिन्तो ।
 णेया विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१३८६॥
 सव्वप्पा पंचण्ह जाईण अवंधगा मुणेयव्वी ।
 तत्तोऽत्थि बंधगा खलु असंखियगुणा पणिदिम्स ॥१३८७॥
 तत्तो संखेज्जगुणा कमसो हुन्ति चउइंदियाईण ।
 ताओ विसेसअहिया हवेज्ज पचण्ह जाईणं ॥१३८८॥

सयमुष्णं अप्पावहु आहारतणुस्स बंधगाण तहा ।
 पणतणुअवधगाण सखगुणा बंधगा तत्तो ॥१३८॥
 वेजव्वतणुस्स तओ असखगुणुरलतणुस्स वोद्धव्वा ।
 ताओ विसेसअहिया तेअसकम्मणतणूणत्थि ॥१३९॥
 होअन्ति वधगा खलु थोवा आहारवगणामस्स ।
 ताओ सखेज्जगुणा वेजव्वियुवगणामस्स ॥१४०॥
 ताउ असखेज्जगुणा उरालुवगस्स तो विसेसअहिया ।
 तिउवगाण तत्तो अवधगा ताण सखगुणा ॥१४१॥
 ओधव्वत्थिअवहुण मधयणखगदसरायवदुगाणं ।
 छण्ह सठाणाण होअन्ति अवधगा थोवा ॥१४२॥
 ताउ असखगुणाइमसठाणास्सत्थि ताउ सखगुणा ।
 वोआईणं कमसो तत्तो छण्ह विसेसअहिया ॥१४३॥
 अगुरुल्लुवधायाण अवधगात्थि तओ असखगुणा ।
 होअन्ति बंधगा खलु परधाऊसासणामाणं ॥१४४॥
 तत्तो अवंधगा सि संखगुणा ताउ बंधगा-ड्वमहिया ।
 अगुरुल्लुवधायाणं हवेज्ज गिरयव्व तित्थस्स ॥१४५॥

(प्रे०) 'मणुए' इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां मतिश्रुतावधिमनःपर्यवक्रेवलज्ञानावरणपञ्चकस्य
 वर्णचतुष्कस्य निर्माणनाम्नोऽन्तरायपञ्चकस्य चाऽवन्धकैभ्यस्तद्वन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, आभा-
 मवन्धकाः श्रेणिगताः केवलज्ञानिनश्च, ते च संख्याताः, वन्धकास्त्वपर्याप्तमनुष्या अपि, ते चासंख्या-
 ता इतिकृत्वा । 'थोवा' इत्यादि, चक्षुरचक्षुर्वधिक्रेवलदर्शनावरणचतुष्कस्याऽवन्धकाः स्तोकाः,
 तदवन्धकत्वेनोपशान्तमोहादिगुणस्थानगतानां जीवानामेवात्र प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यो निद्राद्विकस्या-
 ऽवन्धका विशेषाधिकाः, अपूर्वकरणगुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्ममभ्यरायगुणस्थानपर्यन्तवर्ति-
 जीवानामपि प्रवेशात् । तेभ्यः स्थानद्वित्रिकस्याऽवन्धकाः मङ्ख्येयगुणाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थान-
 गतमनुष्याणामप्यत्र लभ्यमानत्वात् तेषु चाविरतमभ्यगृष्टिपराशेः प्रधानत्वेन मङ्ख्येयगुणत्वात्तेषाम् ।
 'तो' इत्यादि, स्थानद्वित्रिकाऽवन्धकैभ्यस्तद्वन्धका अमङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्यपराशेः प्रधा-
 नतया तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् तस्य चाऽसंख्येयप्रमाणत्वात् । तेभ्यो निद्राद्विकस्य वन्धका
 विशेषाधिकाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथमभागपर्यन्तगतमनुष्याणामपि तेषु तद्वन्धकत्वेन वर्तमान-
 त्वात् । तेभ्यश्चक्षुरचक्षुर्वधिक्रेवलदर्शनावरणचतुष्कवन्धका विशेषाधिकाः 'विशेषाधिका' इतिपदं इहार्पि
 सम्यन्धनीयम् । अष्टमगुणस्थानद्वितीयभागादारभ्य दशमान्तगुणस्थानं यावद् वर्तमानानां तद्वन्धकत्वेन
 सत्त्वात् । 'जेया' इत्यादि, वेदनीयद्वयस्याऽवन्धका अल्पाः, यतः सातासातवेदनीयस्याऽवन्धका
 अयोगिन एव वर्तन्ते, ते च शतपृथक्त्वप्रमाणाः, तेभ्यः सातवेदनीयस्य वन्धका असङ्ख्येयगुणाः,
 अपर्याप्तमनुष्याणामप्यत्र तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्योऽसातवेदनीयस्य वन्धकाः सङ्ख्येय-

गुणाः, सातवेदनीयवन्धकालादसातवेदनीयवन्धकालस्य सख्येयगुणत्वात् , तेभ्यो वेदनीयद्वयस्य वन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयवन्धकानामप्यत्र प्रविष्टत्वात् । 'एमेव' इत्यादि, वेदनीयदेव स्वरवज्रेषादिपुगलनवकस्य गोत्रकर्मणश्चाऽल्पबहुत्व ज्ञातव्यम् ।

'थोवा' इत्यादि, सञ्ज्वलनलोभस्याऽवन्धकाः स्तोकाः, सूक्ष्मसम्परायादिषु पञ्चस्वेव गुण-स्थानकेषु वर्तमानानां जीवानां तद्वन्धकत्वेनेह प्राप्यमाणत्वात् । ततः सञ्ज्वलनमायामानक्रोधरूपा-याणामवन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका विज्ञेयाः, नवमगुणस्थानकपञ्चमचतुर्थादिभागेषु वर्तमानानामपि मनुष्याणां तदवन्धकतया सत्त्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, सञ्ज्वलनक्रोधावन्धकेभ्यः प्रत्याख्यानावरण-क्रोधादिचतुष्कस्याऽवन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, श्रेणिगतजीवानामपेक्षया प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामपि-सङ्ख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽवन्धकेभ्यः क्रमेण द्वितीयप्रथमकपाय-योरवन्धकाः सख्येयगुणाः, मनुष्येषु संयतापेक्षया पञ्चमगुणस्थानगतानां जीवानां ततोऽपि तुर्यतृतीय-गुणस्थानगतानाञ्च सङ्ख्येयगुणत्वात् । प्रथमकपायाऽवन्धकेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवन्धका विशेषाधिकाः, सख्येयानां मास्वादनाना तदवन्धकतया वर्तमानत्वात् , ततोऽपि मिथ्यात्वमोहनीयस्य वन्धका असङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्वन्धकत्वात्तेषां चासख्येयत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयवन्धकेभ्यः क्रमेणाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य प्रत्याख्या-नावरणकपायचतुष्कस्य च वन्धका विशेषाधिका (२) विज्ञेयाः, मार्गणायामस्यां द्वितीयतृतीयादिद्वयपञ्च-मगुणस्थानकेषु यथाक्रम तत्तत्कपायचतुष्कस्य वन्धकानामप्यधिकतया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः सञ्ज्वलनक्रोधस्य वन्धका विशेषाधिकाः, ततः सञ्ज्वलनमानवन्धका विशेषाधिकाः, ततः सञ्ज-वलनमायावन्धका विशेषाधिकाः, ततः सञ्ज्वलनलोभवन्धका विशेषाधिकाः, अस्या मार्गणायामं प्रमत्ता-ऽप्रमत्तसंयताना नवमगुणस्थानपञ्चभागेषु च यथासमं तद्वन्धकानामपि प्राप्यमाणत्वात् ।

'थोवा' इत्यादि, हास्यरतिशोकारतिभयजुगुप्सास्त्रीपुरुषनपुंसकवेदत्रयरूपस्य नोकपायस्याऽ-वन्धकाः स्तोका विज्ञेयाः, अस्या मार्गणायामनिवृत्तिवादरसम्परायद्वितीयभागप्रभृतिगुणस्थानगताना-मेव तदवन्धकत्वेन मद्भावात् । तेभ्योऽसख्येयगुणाः पुरुषवेदस्य वन्धकाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्वन्धविधायित्वात् । 'इत्तो उड्डं' इत्यादि, अत ऊर्ध्वमोघवदल्पबहुत्वमवसेयम् , तच्चैवम्-पुरुष-वेदवन्धकेभ्यः स्त्रीवेदवन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो हास्यरत्योर्वन्धकाः सख्येयगुणाः, ततः शोका-ऽरतिवन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो नपुंसकवेदवन्धका विशेषाधिकाः, ततो मयकुत्सयोर्वन्धका विशेषाधिकाः, हेतोरवगतिरोधतः कार्या ।

'होअन्ति' इत्यादि, नरकायुष्कस्य वन्धका अल्पास्ततो देवायुर्वन्धकाः सख्यातगुणाः, ततो मनुष्यायुर्वन्धका अमंख्यगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्वन्धकत्वात् , ततस्तिर्यगायुर्वन्धका असंख्यगुणाः, तेषामायुर्वन्धकेष्वसंख्यातवहुभागेषु वर्तमानत्वात् । 'थोवा' इत्यादि, चतसृणां

गतीनामबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमगुणस्थानमसमभागगताना नवमादिगुणस्थानगतानां चैव जीवा-
नामत्र तद्वन्धकत्वेन सत्त्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः सुरगतेर्वन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो
नरकगतिवन्धकाः संख्येयगुणा वर्तन्ते, सुरगतेर्वन्धकालान्नरकगतिवन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात्,
ततोऽसंख्येयगुणा मनुष्यगतिवन्धकाः, असंख्यातानामपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्वन्धकतया प्राप्यमाण-
त्वात् । 'तओ' इत्यादि, तवस्तिर्यग्गतिवन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्येषु मनुष्यगति-
वन्धकालतस्तिर्यग्गतिवन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । तेभ्यश्चतुर्णामपि गतीनां बन्धका विशेष-
पाधिकाः, देवनरकमनुष्यगतिवन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'एवम्' इत्यादि, एवमेवाऽऽनु-
पूर्वाचतुष्कबन्धकानामल्पबहुत्वं वाच्यम् ।

'संवप्ता' इत्यादि, पञ्चानां जातीनामबन्धकाः सर्वस्तोका ज्ञातव्याः, अष्टम
गुणस्थानकमसमभागे नवमादिगुणस्थानेषु च वर्तमानानां संख्यातानां पर्याप्तमनुष्याणां तद्वन्ध-
कत्वेनोपलभ्यमानत्वात् । तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः पञ्चेन्द्रियजातिवन्धका वर्तन्ते, यतोऽपर्याप्तमनु-
ष्या अपि तद्वन्धकत्वेनेह वर्तन्ते । तेभ्यः संख्येयगुणाः क्रमेण चतुरिन्द्रियादिजातीनां बन्धका
वर्तन्ते, अपर्याप्तमनुष्यानाश्रित्य क्रमेण बन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । एकेन्द्रियजातिवन्धकेभ्यः
पञ्चानां जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियादिजातिवन्धकानामिह प्रवेशात् । 'सयमुज्झं'
इत्यादि, आहारकशरीरबन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयम्बूध्यम् । अयं भावः—आहारकशरीरबन्धकानां पञ्चानां
शरीराणामबन्धकानां परस्पराल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञातव्यम्, प्रधानतया मयोगिकेवल्लिनामाहारकशरीर-
बन्धकाप्रमत्तयतीनां परस्पराल्पबहुत्वस्य निर्णय कृत्वेति शेषः, पञ्चशरीराबन्धकेभ्यः, यद्वाऽऽ-
हारकशरीरबन्धकेभ्यः, उत समुदितेभ्यस्तेभ्यो वैक्रियशरीरस्य बन्धकाः संख्यातगुणाः, अप्रमत्तादिभ्यो
देवनरकगतिवन्धकमिथ्यादृष्टिपर्याप्तमनुष्याणां संख्यातगुणत्वात्तेषां च वैक्रियशरीरस्य बन्धक-
त्वात् । तत औदारिकशरीरबन्धका असंख्यगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्वन्धकत्वात् । ततस्तैजस-
कार्मणशरीरबन्धका विशेषाधिकाः, वैक्रियाहारकशरीरबन्धकानामपि तत्र प्रक्षेपात् । 'होअन्ति'
इत्यादि, आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः स्तोकाः, केपाञ्चिदेवाऽप्रमत्तसंयताना तद्वन्धस्य भावात् ।
'ताओ' इत्यादि, तेभ्यो वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, संयतेभ्यो देवनरकप्रायोग्यबन्ध-
कानां संख्यातगुणत्वात्, औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकास्तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्
बन्धकतया सत्त्वात्, तेभ्य उपाङ्गत्रयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, अङ्गोपाङ्गत्रयबन्धकेभ्यस्तद्वन्धकाः
सङ्ख्येयगुणाः, तद्वन्धकालपेक्षयैतद्वन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्, अपर्याप्तेषु संख्यातबहुभाग-
प्रमाणा जीवा एकेन्द्रियजातिवन्धकारस्ते चोपाङ्गत्रयस्याबन्धकाः सन्तीति कृत्वा । 'ओधव्व'
इत्यादि, संहननखगतिस्वरातपोधोतबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवद् विज्ञेयम्, तद्यथा—प्रथमसंहनन-
प्रकृतिवन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यः क्रमेण द्वितीयादिसंहननबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यः पण्णा संहन-

नानां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यस्तदबन्धका सङ्ख्येयगुणाः । शुभखगतिबन्धकेभ्योऽशुभखगति-
बन्धकाः सङ्ख्यातगुणाः, तेभ्यः खगतिद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यः खगतिद्वयाबन्धकाः संख्यात-
गुणाः । सुस्वरबन्धकेभ्यो दुःस्वरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः स्वरद्वयबन्धका विशेषाधिकाः, ततः
स्वरद्वयाबन्धकाः संख्यातगुणाः । आनपोद्योतरूपस्य प्रकृतिद्वयस्य बन्धकेभ्योऽबन्धकाः सङ्ख्येय-
गुणा विज्ञेयाः, हेनोरवगतिरोचतोऽवसेया । 'छप्हं' इत्यादि, पण्णां संस्थानानामबन्धका अल्पाः,
अष्टमादिगुणस्थानगतानां संख्येयानामेव मनुष्याणां तदबन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'ताड' इत्यादि, तेभ्यः समचतुरस्रसंस्थानबन्धका असंख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणामपि तदबन्धकत्वेन
सत्त्वात् । 'ताड' इत्यादि, तेभ्यो द्वितीयादिसंस्थानबन्धका यथाक्रमं सङ्ख्येयगुणाः (२) वर्तन्ते,
पूर्वपूर्वसंस्थानबन्धकालापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थानबन्धकालस्य सङ्ख्येयगुणत्वात् । 'ततो' इत्यादि, चर-
मसंस्थानबन्धकेभ्यः पण्णां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामप्यत्र
समावेशात् । 'अगुरुलहु' इत्यादि, अगुरुलघूपधातप्रकृत्योरबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमादिगुणस्थान-
गतानामेव तल्लामात्, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासनामोर्बन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, संख्यातभाग-
वर्त्यपर्याप्तमनुष्याणामपि तदबन्धकत्वात् । 'ततो' इत्यादि, पराघातोच्छ्वासबन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः
सङ्ख्येयगुणाः, पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकेभ्योऽपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽगुरुलधू-
पधातप्रकृत्योर्बन्धका विशेषाधिकाः, पराघातोच्छ्वासबन्धकानां च निरुक्तप्रकृतिबन्धस्यावरयंलाभात् ।
'णिरयव्व' इत्यादि, जिननामो बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावज्ञेयम्, तद्यथा-
जिननामबन्धकेभ्यस्तदबन्धका असङ्ख्येयगुणा वर्तन्ते, हेतोर्ज्ञेतिर्नरकौघमार्गणातः कार्येति । १३७४-
९६॥ अथ पर्याप्तमनुष्यमातुपीमार्गयोरुत्तरप्रकृतिबन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

पञ्चमगुणमणुसीसु अत्थि णरव्वाउणामवज्जाण ।
णवरि जहि असंखगुणा उता तहि हुन्ति सखगुणा ॥१३९७॥
होअन्ति बंधगा खलु थोवा मणुसाउगस्स ताहिन्तो ।
णिरयाउस्स हवन्ते सखगुणा तो सुराउस्स ॥१३९८॥
ताहिन्तो विण्णेया तिरियाउस्स यतओ विसेसहिया ।
हुन्ति चउण्ह वि ततो अबवगा ताण सखगुणा ॥१३९९॥
संखगुणा सुरणरतिरिणिरयगईणऽत्थि वधगा कमसो ।
चउगइअवधगाओ तओ चउण्हं विसेसहिया ॥१४००॥
एवं अणुपुव्वीणं पणजाईणं अबंधगा थोवा ।
ततो संखेज्जगुणा विण्णेया बंधगा कमसो ॥१४०१॥
चउइंदियाइगाणं ततो पंचिदियस्स विण्णेया ।
ततो विसेसअहिया हवेज्ज पंचण्ह जाईण ॥१४०२॥
पणतणुअबंधगाणं तह आहारतणुवधगाणूअं ।
सयमप्पाबहुगं तो सखगुणा वधगुरलस्स ॥१४०३॥

तो विउवतणुस्स तओ विसेसअहियाऽत्थि तेअकम्माणं ।
 आहारउवंगाओ संखगुणा वंगगा नेया ॥१४०४॥
 उरलउवगस्स तओ तिउवंगाण अवधगा ततो ।
 विउवस्स वधगा तो तिउवगाणं विसेसहिया ॥१४०५॥
 पज्जपणिदितिरिव्व उ संघयणखगइसरायवदुगाणं ।
 वण्णचउगणिमिणाण णाणावरणव्व बोद्धवा ॥१४०६॥
 छण्हागिईण थोवा अवधगा ताउ वधगा कमसो ।
 संखगुणाऽज्जाईण ततो छण्हं विसेसहिया ॥१४०७॥
 तित्थस्स वधगाओ संखेज्जगुणा अवंधगा नेया ।
 अगुल्लहुवघायाणं अवंधगाऽप्पा तओ नेया ॥१४०८॥
 परघाऊसासाणं संखगुणा ताउ वधगा तेसि ।
 ततो विसेसअहिया अत्थि अगुल्लहुवघायाणं ॥१४०९॥
 नेया अवंधगाऽप्पा थावरचउगजुगलाण ताहिन्तो ।
 असुहाण वंधगा खलु संखगुणा तो सुहाणऽत्थि ॥१४१०॥
 ताओ विसेसअहिया अत्थि चउण्हं वि जुगलपयडोणं ।
 थोवा अवंधगा पणथिराइजुगलाण बोद्धवा ॥१४११॥
 तो वंधगा सुहाणं संखगुणा हुन्ति ताउ असुहाणं ।
 ततो विसेसअहिया अत्थि चउण्हं पि जुगलाण ॥१४१२॥

(प्रे०) 'पज्जमणुस्स' इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणाद्वये आयुष्कर्मनामकर्मवर्जानां शेष-

प्रकृतीनां बन्धकान्धकानामल्पबहुत्वं मनुष्यौघमार्गणावद् विज्ञेयम् । 'णवरि' इत्यादिना विशेष-
 मुपदर्शयति, तद्यथा-यत्राऽसंख्येयगुणा मनुष्यौघमार्गणायमुक्तास्ते प्रकृतमार्गणाद्वये संख्येयगुणा वक्त-
 व्याः, मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वात् । 'होअन्ति' इत्यादि, मनुष्यायुष्कस्य बन्धकाः स्तोकाः,
 ततो नरकायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यः सुरायुष्कबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यस्तिर्यग्मायुष्क-
 बन्धकाः संख्यातगुणाः, ततश्चतुर्णामायुष्काणां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्यश्चतुर्णामप्यायुपामबन्धकाः
 संख्येयगुणाः, आयुर्वन्धकालापेक्षयाऽत्र तद्वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ह्रुन्ति' इत्यादि, चतुर्गति-
 नाम्नामबन्धका अल्पास्तेभ्य देवमनुष्यतिर्यग्नरकगतिबन्धकाः क्रमशः संख्यातगुणा वर्तन्ते, उच-
 रोत्तरगतिबन्धकालस्येह संख्यातगुणत्वात् । 'चउगइ' इत्यादि, नरकगतिबन्धकेभ्यश्चतुर्गतीनां
 बन्धका विशेषाधिकाः, अत्र शेषगतित्रयस्य बन्धकानां समावेशात् । 'एव' इत्यादि, आनुपूर्वीनाम-
 बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव गतिनामध्व बोध्यम् । 'पणजाईणं' इत्यादि, पञ्चानां जातीनाम-
 बन्धकाः स्तोकाः, स्तोकानामूर्ध्वगुणस्थानस्थितानां प्राप्यमाणत्वात् । 'ततो' इत्यादि, तेभ्यः क्रमेण
 चतुस्त्रिद्वयेकेन्द्रियजातीनां बन्धकाः संख्येयगुणा विज्ञेयाः, क्रमेण तत्तद्वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् ।
 'ततो' इत्यादि, एकेन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यः पञ्चजा-
 तीनां बन्धका विशेषाधिकाः । भावना पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावत्कार्या । 'पण' इत्यादि, पञ्च-

शरीरान्नामबन्धकानां तथाऽऽहारकशरीरान्नामनो बन्धकानां परस्परमल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् , भावना तु मनुष्यौघवद् विधेया । 'तो' इत्यादि, उक्तपदद्वयत औदारिकशरीरबन्धकाः संख्यातगुणाः, संयतेभ्यो मिथ्यादृष्टिपु तिर्यक्प्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् , ततो वैक्रियशरीरबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रस्तुते नरकप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् । ततस्तैजमकार्मणशरीरद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, शेषशरीरबन्धकानामिह लाभात् । 'आहारउवगाओ' इत्यादि, आहारकाङ्क्षोपाङ्गनामबन्धका अल्पाः, तत औदारिकाङ्क्षोपाङ्गबन्धकाः संख्यातगुणाः, तत उपाङ्गस्याबन्धकाः संख्यातगुणाः, ततो वैक्रियाङ्क्षोपाङ्गबन्धकाः संख्यातगुणाः, संयतेभ्यः क्रमेण तिर्यक्त्रसप्रायोग्यैकेन्द्रियप्रायोग्यनरकप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् , तत उपाङ्गसामान्यस्य बन्धका विशेषाधिकाः, शेषोपाङ्गद्वयस्य बन्धकानामत्र प्रवेशात् । 'पञ्ज' इत्यादि, संहननस्रगतिस्वरानपोद्योतप्रकृतिबन्धकानामल्पबहुत्वं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावद् बोद्धव्यम् । 'वण्ण' इत्यादि, वर्णचतुष्कनिर्माणानाम्नां बन्धका बन्धकानामल्पबहुत्वं ज्ञानावरणबन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्ववद् बोद्धव्यम् , तत्पुनरेवम्-वर्णचतुष्कनिर्माणानाम्नामबन्धकेभ्यस्तद्वन्धकाः संख्येयगुणाः । 'छप्हा' इत्यादि, पण्णां संस्थानानामबन्धकाः स्तोकाः, अपूर्वकणसप्तमादिभागगतानामेव लाभात् । 'ताड' इत्यादि, तेभ्यः प्रथमादिसंस्थानानां बन्धकाः क्रमशः संख्येयगुणाः, पूर्वपूर्वसंस्थानबन्धकालापेक्षयोत्तरोत्तरसंस्थानबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, अन्तिमसंस्थानबन्धकेभ्यः पण्णां संस्थानानां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथमादिपञ्चसंस्थानबन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'बन्धगओ' इत्यादि, जिनान्नामनो बन्धकेभ्यः संख्येयगुणास्तद्वन्धकाः सन्ति, केषाचिदेव पुण्यवतां सम्यग्दृशां जिनानामनो बन्धभावात् । 'अगुरु' इत्यादि, अगुरुलघूपघातप्रकृतीनामबन्धका अल्पाः, अष्टमगुणस्थानसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानस्थितानां च तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'तओ' इत्यादि, तेभ्यः पराघातोच्छ्वासनाम्नोरबन्धकाः संख्येयगुणाः, अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानामप्यत्र लाभात्तेषां च पूर्वोक्तेभ्यः संख्येयगुणत्वात् । 'ताड' इत्यादि, तेभ्यस्तद्वन्धकाः संख्यातगुणाः, प्रस्तुते पर्याप्तत्रसप्रायोग्यबन्धकानां संख्येयगुणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्योऽगुरुलघूपघातानामनोर्बन्धका विशेषाधिकाः, अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकानामपि तत्र प्रक्षेपात् । 'णोचा' इत्यादि, स्थावरचतुष्कत्रसचतुष्कयुगलस्याऽबन्धका अल्पा वर्तन्ते, यतोऽष्टमगुणस्थानसप्तमभागगता नवमादिगुणस्थानगताश्च प्राप्यन्ते । 'ताहि-त्तो' इत्यादि, तेभ्यः स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः । 'तो' इत्यादि, तेभ्यस्त्रसचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, स्थावरचतुष्कबन्धकालापेक्षया नरकगतिसहचरितत्रसचतुष्कबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, त्रसचतुष्कबन्धकेभ्यः त्रसस्थावरचतुष्कयुगलद्वयस्य बन्धका विशेषाधिकाः, स्थावरचतुष्कबन्धकानामत्र समावेशात् । 'थोचा' इत्यादि, पञ्चस्थिरादिपञ्चाऽस्थिरादिद्युगलानामबन्धकाः स्तोकाः, । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः पञ्चस्थिरादिप्रकृतिबन्धकाः संख्ये

यगुणाः, तेभ्यः पञ्चाऽस्थिरादिप्रकृतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, श्रेणिगतेभ्यो नरकमतिवर्जमति-
बन्धकानां नरकमतिबन्धकानां च क्रमेण संख्यातगुणत्वात्, तेभ्यः पञ्चस्थिरादिपञ्चाऽस्थिरादि-
युगलानां बन्धका विशेषाधिकाः, पञ्चस्थिरादिप्रकृतिबन्धकानामप्यत्र समावेशात् ॥१३९७-१४१२॥

इदानीं देवौघादिमार्गणासु तदुच्यते

देवौसाणतविउवजुगलेसु अपञ्जतिरिपणिदिच्च ।

णवणोकसायुरलुवगसधयणखनइआयवसराणं ॥१४१३॥ (गीति')

होअन्ति बधगाऽप्पा पणिदियतसाण ताउ संखगुणा ।

एंगिदिथावराणं ताओ दोण्हं विसेमहिया ॥१४१४॥

णिरयव्वऽप्पावहुगं सप्पाउग्गाण सेसपयडीण ।

(प्रे०) 'देवौ' इत्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानवैक्रियकाययोगवैक्रिय-
मिश्रकाययोगरूपास्वप्नसु मार्गणासु नवनोकपायौदारिकाङ्गोपाङ्गसहननखगत्यातपस्वरप्रकृतीनां
बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमपर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गेणावद् विज्ञातव्यम्, उभयत्र पञ्चेन्द्रिय-
प्रायोग्यबन्धकालादेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वस्य लाभान्नरकमतिवदनतिदिर्यापर्याप्त-
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्बन्धकालादेशः । 'होअन्ति' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजातिवसनाम्नोर्वन्धका अल्पाः,
तेभ्य एकेन्द्रियजातिस्थावरनाम्नोर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, मार्गणास्वासु एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धक-
देवानां मुख्यराशेः सत्त्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यस्तद्वयोरपि बन्धका विशेषाधिकाः, पञ्चे-
न्द्रियजातिवसनाम्नोर्वन्धकानामत्र समावेशात् । 'णिरयव्व' इत्यादि, उक्तातिरिक्तप्रकृति-
बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्व नरकौघमार्गेणावद् विज्ञेयम्, उभयत्र प्रकृततत्त्वतुर्यगुणस्थानस्य लाभोद-
प्रशस्तप्रकृतीनां बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वाच्च । ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः—दर्शनावरणनवकम्,
वेदनीयद्वयम्, नोकपायवर्जसप्तदशमोहप्रकृतयः, तिर्यङ्मनुष्यायुष्कद्वयम्, तिर्यङ्मनुष्यगतिद्वयम्,
संस्थानपट्कम्, तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयम्, सुरवरवर्लपञ्चास्थिरादिप्रकृतयः, दुःस्वरवर्जाऽस्थिरादिपञ्चप्रकृ-
तयः, जिननाम, उद्योतनाम, गोत्रद्वयं चेति चतुःपञ्चाशत्प्रकृतयः, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्ग-
णात्रये जिननामवर्जास्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतय इति । ज्ञानावरण नामा न्तरायसत्कनवदशध्रुवबन्धिप्रकृतयः,
वादरत्रिकम्, औदारिकशरीरनाम, पराघातोच्छ्वासनाम्नी चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनां सततमत्र
वध्यमानत्वादल्पबहुत्वं नास्ति ॥१४१३-१४॥

अधुनाऽऽनतादित्रयोदशमार्गणासु प्रकृतमुच्यते

तेराणयाइगेसुं थोणद्धितिगस्स बधगा थोवा ॥१४१५॥ (गीतिः)

तत्तो अवंधगा से सखेज्जगुणा तओ विसेसहिया ।

होअन्ति बंधगा खलु छदरिसणावरणपयडीणं ॥१४१६॥

सायस्स बधगाऽप्पा ताउ असायस्स अत्थि संखगुणा ।

तो दोण्ह विसेसहिया एव तिथिराइजुगलणं ॥१३१७॥

मिच्छस्स बंधगाऽप्पा ततो विसेसाहियाऽणचउगस्स ।
 ततो अवधगा सि सखगुणा ताउ मिच्छस्स ॥१४१८॥
 अत्थि विसेसाहिया तो सेसकसाथाण बंधगा जेया ।
 थोएऽत्थि बंधगाऽप्पा ततो णपुमस्स सखगुणा ॥१४१९॥
 ताओ हस्सरईणं ततो सोगारईण विप्पेया ।
 ततो विसेसाहिया पुमस्स ताउ भयकुच्छाणं ॥१४२०॥
 संखअसखगुणा जिणणराउगअवधगा तदियराओ ।
 सधयणआगिईण वोआण बधगा थोवा ॥१४२१॥
 ततो सखेज्जगुणा तइआईण कमा मुणेयवा ।
 ताउ पटमाण जेया ताओ छण्ह विसेसाहिया ॥१४२२॥
 अत्थि कुखगइडुहगतिगणीआओ बधगा पसत्थाणं ।
 संखगुणा तो दोण्हं अम्महिया णत्थि सेसाणं ॥१४२३॥

(प्रे०) 'तेराणयाइगेसु' इत्यादि, आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतनवग्रैवेयकलक्षणासु त्रयोदश-
 मार्गणासु सन्यातद्वित्रिकस्य बन्धकाः स्तोकाः, तेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणाः, एतासु मिथ्यादृग्जी-
 वापेक्षया सम्यग्दृशा संख्येयगुणत्वात् । 'ततो' इत्यादि, तेभ्यश्चक्षुरक्षुग्बधिकेवलदर्शनावरण-
 चतुर्धं निद्राप्रचले चेति-दर्शनावरणप्रकृतिषट्कस्य बन्धका विशेषाधिका विद्यन्ते, प्रथमद्वितीय-
 गुणस्थानगतजीवानामपि बध्यमानन्त्रात्तस्य । 'सायस्स' इत्यादि, सातवेदनीयबन्धका अल्पाः, तेभ्यो-
 ऽसातवेदनीयबन्धकाः संख्येयगुणाः सातवेदनीयबन्धकालादसातवेदनीयबन्धकालस्य संख्येयगुण-
 त्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यो द्वयोरपि बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीयबन्धकानामप्यत्र समा-
 वेशात् । 'एवं' इत्यादि, स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्यपशःकीर्ती चेति युगलत्रयेऽल्पबहुत्वं वेद-
 नीयवद् विज्ञेयम् । 'मिच्छस्स' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका अल्पाः, प्रथमगुणस्थानवर्ति-
 भिरेव तस्य बध्यमानत्वात् । तेभ्योऽन्तानुबन्धिचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयगुणस्थान-
 गतजीवानामप्यत्र तद्वन्धभावात् । 'ततो' इत्यादि, तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धकाः संख्ये-
 यगुणाः, सम्यग्दृष्टिराशेरत्र मुख्यत्वात्, तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः,
 सास्वादनानामप्यत्र समावेशात् । 'अत्थि' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृत्यबन्धकेभ्यः शेषाणामप्र-
 त्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनचतुष्करूपाणां कपायाणां बन्धका विशेषाधिकाः, प्रथम
 गुणस्थानगतानामपि जीवानां तद्वन्धकत्वात् । 'थोए' इत्यादि, स्त्रीवेदबन्धका अल्पाः, तेभ्यो
 नपुंसकवेदबन्धकाः संख्येयगुणाः, स्त्रीवेदबन्धकालादत्र नपुंसकवेदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् ।
 'ताओ' इत्यादि, नपुंसकवेदबन्धकेभ्यो हास्यरत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, सम्यग्दृशामपि तयो-
 र्बन्धकत्वात्तेषां च मिथ्यादृग्भ्यः संख्येयगुणत्वात् । तेभ्यः शोकारत्योर्बन्धकाः संख्येयगुणा
 विज्ञेयाः, हास्यरत्योर्बन्धकालतः शोकाऽरत्योर्बन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ततो' इत्यादि, तेभ्यः

पुरुषवेदवन्धका विशेषाधिकाः, मर्ममभ्यगृहीतीनां केषाञ्चिन्मिथ्यादृशामपि पुरुषवेदवन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो मधुगुण्ययोर्वन्धका विशेषाधिकाः, ध्रुववन्धिन्त्वात् । 'संख' इत्यादि, जिननाम्नो मनुष्यायुष्कस्य च वन्धकेभ्यस्तद्वन्धकाः क्रमेण संख्यातगुणा असंख्यातगुणाश्च सन्ति, तद्यथा—जिननामवन्धकेभ्योऽवन्धकाः संख्येयगुणाः, मभ्यगृहीतीनामेकमख्यातभागप्रमाणानां जीवानामेव तद्वन्धकत्वात् नगयुर्वन्धकेभ्यस्तद्वन्धका अमख्यातगुणाः, मार्गेणागतजीवानामसंख्येयत्वे सति तद्वन्धकानां संख्येयत्वात् । 'संघयणा' इत्यादि, द्वितीयसंहननसंस्थानयोर्वन्धकास्तोकाः, तेभ्यस्तृतीयादिसंहननमस्थानानां वन्धकाः क्रमतः संख्येयगुणाः (२) एषां संहननसंस्थानानां वन्धकालस्य क्रमेण संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, चरमसंहननसंस्थानवन्धकेभ्यः प्रथमसंहननमस्थानयोर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, सर्वेषां मभ्यगृहशामत्र तद्वन्धकत्वात् । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यः पण्णां संहननानां मस्थानानां च वन्धका विशेषाधिकाः, द्वितीयादिमस्थानसंहननपञ्चकवन्धकानामप्यत्र समाविष्टत्वात् । 'अत्थि' इत्यादि, अशुभखगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्रवन्धकेभ्यः शुभखगतिशुभगत्रिकोचैर्गोत्रवन्धकाः संख्येयगुणाः, इह मभ्यगृहशामिर्भुज्यो वर्तते, ते च प्रकृतप्रशस्तप्रकृतीरेव बध्नन्ति, नाप्रशस्तप्रकृतीरितिकृत्वा प्रकृतप्रशस्तप्रकृतिवन्धकानां संख्यातगुणत्वमभिहितम् । शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नास्ति, सर्वैर्निरन्तरं बध्यमानत्वात् । शेषप्रकृतयः पुनरिमाः—पञ्चज्ञानावरणनवनामध्रुववन्धिप्रकृतिपञ्चान्तरायमनुष्यद्विरूपञ्चेन्द्रिजात्यौदारिकद्विकपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्करूपास्त्रिशदिति ॥१४१५ २३॥

इदानीं चतसृष्वनुत्तरमार्गणास्त्रधिकृतमाह

चउसु अणुत्तरेसुं अप्पाबहुगं तु आणयसुरत्त्व ।

सायथिराईतिगजुगलणराउतिस्थाण विण्णेयं ॥१४२४॥

हस्सरईओ तप्पडिवक्खाणं वंघगा उत्थि संखगुणा ।

ताउ विसेसहिया पुमभयकुच्छाणं ण सेमाणं ॥१४२५॥

(प्रे०) 'चउसु' इत्यादि, चतसृष्वनुत्तरसुमार्गणासु साताऽमातवेदनीये स्थिरास्थिरे शुभाशुभे यशःकीर्त्य-यशःकीर्ती चेति चतुर्णां युगलानां मनुष्यायुष्कस्य तीर्थकरनाम्नश्चाऽल्पबहुत्वमानतादिमार्गणावदवसातव्यम् । 'हस्सरईओ' इत्यादि, हास्यरत्योर्वन्धकेभ्यः शोकारत्योर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, अशुभप्रकृतीनां वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः पुरुषवेदभयकुत्साप्रकृतिवन्धका विशेषाधिकाः, प्रकृतप्रकृतीनां निरन्तरवन्धित्वेन हास्यरत्योर्वन्धकानामप्यत्र तद्वन्धकत्वेन समावेशाद् । 'ण' इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तप्रकृतीनां वन्धकानामल्पबहुत्वं नास्ति, अनवरतं बध्यमानत्वात् । ताश्चेमाः शेषपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः—पञ्चज्ञानावरणस्त्यानद्वित्रिकवर्जदर्शनावरणपट्कद्वितीयादिद्वादशकपायनवनामध्रुववन्ध्यन्तरायपञ्चकरूपाः सप्तत्रिंशद्भ्रुववन्धिप्रकृतयो मनुष्यद्विरूपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकप्रथमसंहननसंस्थानशुभखगतिपराधातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुभगत्रिकोचैर्गो-

प्ररूपा अष्टादशाध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति ॥१४२४-५॥

अथ सर्वार्थसिद्धमार्गणायां तदुच्यते

सञ्चत्थसिद्धदेवे अणुत्तरसुरञ्च सञ्चपयडोणं ।

णवरं सखेज्जगुणा णराजगवधगा जेया ॥१४२६॥

(प्रे०) 'सञ्चत्थ' इत्यादि, सर्वार्थसिद्धदेवमार्गणायां स्वप्रायोग्यमर्षप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्ध-
कानामल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद् विज्ञातव्यम् । 'नवरं' इत्यादिना विशेषं दर्शयति—मार्गणा-
गतजीवानां संख्येयत्वान्मनुष्यायुर्वन्धकेभ्यस्तदबन्धकाः संख्येयगुणा एवेति ॥१४२६॥

साम्प्रतं सर्वास्वेकेन्द्रियमार्गणासु निगोदमार्गणासु वनस्पतिकायौघे च प्रकृतं प्रोच्यते

होअन्ति वधगाऽप्पा सव्वेगिदियणिगोअहरिण्णुं ।

मणुसाजगस्स तत्तोऽणंतगुणाऽत्थि तिरियाजस्स ॥१४२७॥

ताओ विसेसअहिया दोण्ह तत्तो अवधगा दोण्हं ।

सखगुणा सेसाण असमत्तपणिदितिरियव्व ॥१४२८॥

(प्रे०) 'होअन्ति' इत्यादि, ओघद्वर्क्षमौघादगौघपर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तवादराऽपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्त-
भादरभेदेन सप्तसु एकेन्द्रियमार्गणासु सप्तसु च साधारणवनस्पतिकायमार्गणासु वनस्पतिकायौघे च
मनुष्यायुष्कस्य बन्धका अल्पाः, मार्गणास्वास्वसंख्येयानां जीवानामेव तद्वन्धविधायित्वात् । तेभ्य-
स्तिर्यगायुष्कस्य बन्धका अनन्तगुणाः, निगोदप्रायोग्यबन्धकजीवानामपि तदायुर्वन्धकत्वात् तेषा चान-
न्तत्वात् । तेभ्यो द्वयोरप्यायुषोर्वन्धका विशेषाधिकाः, मनुष्यायुष्कबन्धकानामप्यत्राऽन्तर्भावात् । तिर्य-
ग्मनुष्यायुर्वन्धकेभ्यस्तयोरेव द्वयोरबन्धकाः संख्येयगुणाः, निगोदानामपि स्वायुःसंख्यातभागकाल
एवायुर्वन्धभावेनावन्धकालस्य संख्येयगुणत्वादिति । 'सेसाणं' इत्यादि, एतत्प्रकृतिद्वयव्यतिरि-
क्तप्रकृतिषु यामां प्रकृतीनामल्पबहुत्वं विधत्ते, तासां शेषप्रकृतीनां बन्धकाऽबन्धकानामपर्याप्तिर्यक्प-
ञ्चेन्द्रियवदल्पबहुत्वमवसेयम् ॥१४२७-२८॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघत्रयमौघरूपमार्गणाद्वये प्रकृतमाह

आऊण पणिदितिरिव्व पणिदितसेसु अत्थि सेसाण ।

मणुयव्व णवरि कमसो असखियगुणा सपुव्वपया ॥१४२९॥

जेया अवधगा खलु थीणद्धितिगाज्जअडकसायाणं ।

तह देवविउव्वियदुगणामाणं वधगा जेया ॥१४३०॥

(प्रे०) 'आऊण' आयुष्कचतुष्कास्याऽल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघत्रयमौघमार्गणयोः पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यग्बुद्ध्यातव्यम् । तथा शेषमर्षप्रकृतीनामल्पबहुत्वं मनुष्यौघबुद्ध्यातव्यमिति । किन्तु यो विशेषः
स 'णवरि' इत्यादिना दर्शयति—दर्शनावरणप्रकृतीनामल्पबहुत्वे स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽबन्धकाः स्व-
पूर्वपदनिद्राद्विकारबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणा अत्र वक्तव्याः, तथैव मोहनीयसत्काल्यबहुत्वे पूर्वपदरूप-
प्रत्याख्यानावरणाबन्धकेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणाबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽनन्तानुबन्धिकपाया-

बन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, प्रकृते मयतेभ्योऽनुक्रमेण देशविरताऽविरतमभ्यगृहीतामसंख्ये-
यगुणत्वात् । नामकर्मसत्काल्पबहुत्वे गत्यानुपूर्वीशरीराङ्गोपाङ्गमत्काल्पबहुत्वविषये विशेषः तद्यथा-
यथास्वं पूर्वपदेभ्यो गतिसामान्याबन्धकेभ्यः आनुपूर्व्यबन्धकेभ्यः, शरीरनामाबन्धकेभ्यो यद्वाहारक-
शरीरबन्धकेभ्यः, आहारकाऽङ्गोपाङ्गबन्धकेभ्यः क्रमेण देवगतिबन्धकाः, देवानुपूर्वीबन्धकाः, वैक्रिय-
शरीरबन्धकाः, वैक्रियाङ्गोपाङ्गबन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, मनुष्यावे तु पूर्वपदबन्धका उत्तरपद-
बन्धकाश्च पर्याप्तमनुष्या एव, अतः पूर्वपदत उत्तरपदबन्धकाः संख्येयगुणा उक्ताः, अत्र पुनः पूर्वपद-
गताः केवलपर्याप्तमनुष्या उत्तरपदगतास्तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि, तेषां चासंख्येयत्वात्पूर्वपदत
उत्तरपदगता असंख्येयगुणा उक्ताः। शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं सर्वथा मनुष्याववज्ज्ञातव्यम् ॥१४२९-
३०॥ साम्प्रतं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां प्रस्तुतं कथयति

पञ्जतिरिपणिदिवाउगसरखगईण पञ्जपंचवखे ।

गइआइतपुउवगाणुपुव्विअगुरुलहुचउगाण ॥१४३१॥

तसथावरचउगाण पञ्जत्तणरव्व अत्थि अप्पवहू ।

परमत्थि जहाकमसो असद्धियगुणा सपुव्वपया ॥१४३२॥

सुरुरलदुगचउइदियथावरचउगाण वधगियरा उ ।

परधाऊसासाण अत्थि पणिदिव्व सेसाण ॥१४३३॥

(श्लो०) 'पञ्ज' इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायामायुष्कचतुष्कस्य स्वरनाम्नः स्वगति-
नाम्नश्चाल्पबहुत्व पर्याप्तपञ्चेन्द्रियनिर्यग्रत्कयनीयम्, उभयत्र पर्याप्तमज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियराशेः प्राधा-
न्यात् । अल्पबहुत्वं तत्रतोऽवसेयम् । अथ 'गइ' इत्यादिना गत्यादिनामकर्मणामल्पबहुत्वं विशेषपूर्वक
मतिदिशति । तद्यथा-गतिनामकर्मणः, जातिनामकर्मणः, शरीरनामकर्मणः, उपाङ्गनामकर्मणः, आनु-
पूर्वीनामकर्मणः, अगुरुलघुचतुष्कस्य त्रयस्थावरादिसप्रतिपक्षयुगलचतुष्कस्याल्पबहुत्व मनुष्यमार्गणाव-
दस्ति, नवरं गतिचतुष्काबन्धकेभ्यः, आनुपूर्वीचतुष्काबन्धकेभ्यः, पञ्चजात्यबन्धकेभ्यः, पञ्चशरीरा-
बन्धकेभ्यो यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यः, आहारकाङ्गोपाङ्गबन्धकेभ्यः, अगुरुलघुपघाताबन्धकेभ्यः,
त्रयस्थावरादियुगलाबन्धकेभ्यः पूर्वपदस्थितेभ्यो जीवेभ्यः क्रमेण देवगतिबन्धकाः, देवानुपूर्वीबन्धकाः,
चतुरिन्द्रियबन्धकाः, औदारिकशरीरबन्धकाः, औदारिकाङ्गोपाङ्गबन्धकाः, पराघातोऽर्थासाऽबन्धकाः,
स्थावरचतुष्कबन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः, यतो हि तत्र पर्याप्तमनुष्यमार्गणाया समस्तजीवा अपि
संख्याता एव अतः पूर्वपदत उत्तरपदगताः संख्यातगुणा उक्ताः, प्रस्तुते तु पूर्वपदगताः पर्याप्तमनुष्या
एव, उत्तरपदगता तु मार्गणागतासंख्यातजीवाः, अतोऽसंख्यातगुणाः पूर्वपदगताजीवेभ्य उत्तरपदगत-
जीवा उक्ताः । शेषाल्पबहुत्वं तु तत्रतोऽवसेयम् । उक्तव्यतिरिक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकाना-
मल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियोधमार्गणावद्भवति, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरण-
नवकम्, वेदनीयद्विकम्, षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः, संहननपट्टकम्, सस्थानपट्टकम्, वर्णादिचतुष्कम्

स्थिरादिपञ्चकम् , अस्थिरादिपञ्चकम् , निर्माणात्पोधोतजिननामरूपं प्रत्येकप्रकृतिचतुष्कम् , गोत्र-
द्वयम् , अन्तरायपञ्चकमिति नवसप्ततिरिति । आसां प्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रि-
यौघमार्गणातो विज्ञातव्यम् , अस्माभिस्त्वत्र ग्रन्थविस्तरभिया नोच्यते ॥१४३१ ३४॥

अधुना तेजःकायवायुकायसत्कसकलमार्गणासु प्रस्तुतं प्रोच्यते

तिरियाउबन्धगाओ अबधगा सव्वतेउवाऊसुं ।

संखगुणा णो गइअणुगोआणियराण णरअपज्जव्व ॥१४३५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'तिरिया' इत्यादि, सप्तसु तेजःकायमार्गणासु सप्तसु वायुकायमार्गणासु च तिर्यगायु-
र्बन्धकेभ्य आधुरबन्धकाः संख्येयगुणाः, आधुर्बन्धकालात्तदबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'णो'
इत्यादि, गत्यानुपूर्वीगोत्राणामल्पबहुत्वं नास्ति, यतोऽत्रैकैव गतिरेकैवानुपूर्व्येकमेव च गोत्रं ब्रूयते ।
'इयराण' इत्यादि, उक्तेतरप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमपर्याप्तमनुष्यमार्गणावदवसात-
व्यम् ॥१४३५॥

अथ पर्याप्तिसमार्गणायां प्रकृतं प्रस्तूयते

पज्जतसे आऊणं पज्जत्तपणिदियव्व अप्पबहू ।

अउगइअबन्धगाउ असखगुणा बन्धगा सुरगईए ॥१४३६॥ (गीति)

तत्तो संखेज्जगुणा णेया णरणिरयत्तिरिगईण कमा ।

ताओ विसेसअहिया अउण्ह एवमणुपुव्वीण ॥१४३७॥

पणजइअबन्धगाओ विण्णेया बन्धगा असखगुणा ।

अउरिदियस्स ताओ संखेज्जगुणा मुण्येव्वा ॥१४३८॥

तेइदियबेइदियपणिदिणिदिद्याण जहकमसो ।

तत्तो विसेसअहिया हवेज्ज पंचण्ह जाईणं ॥१४३९॥

पणतणुअबन्धगाणं आहारतणुस्स बन्धगाणं च ।

अप्पाबहुगं उज्झं सयं ज्व तत्तो असंखगुणा ॥१४४०॥

विउवस्स बन्धगा तो हवेज्ज ओरालियस्स संखगुणा ।

तत्तो विसेसअहिया तेअसकम्मणसरीराणं ॥१४४१॥

होअन्ति बन्धगा खलु थोवा आहारवंगणामस्स ।

ताउ असंखेज्जगुणा विउव्वंगस्स णायव्वा ॥१४४२॥

तत्तो संखेज्जगुणा उरालुवंगस्स तो विसेसहिया ।

तिण्ह उवंगणं ताओ अबन्धगा तिण्ह संखगुणा ॥१४४३॥

थोवा अबन्धगा खलु थावरजुगलअउगस्स विण्णेया ।

तो बन्धगा असंखियगुणा हवेज्ज तसअउगस्स ॥१४४४॥

तत्तो संखेज्जगुणा थावरअउगस्स तो विसेसहिया ।

अउजुगलाणउगेत्ति सगसीईए पणिदिव्व ॥१४४५॥

(प्रे०) 'पञ्जतसे' इत्यादि, पर्याप्तत्रसमार्गणायामायुष्कर्मणां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावज्ञेयम्, तत्पुनरेवम्—मनुष्यायुर्वन्धकेभ्यो नरकायुर्वन्धका असंख्येयगुणाः, तेभ्यो देवायुर्वन्धका असंख्यातगुणाः, तेभ्यस्तिर्यगायुर्वन्धकाः संख्येयगुणाः, तेभ्यश्चतुर्गामायुषां बन्धका विशेषाधिकाः, तेभ्य आयुरबन्धकाः संख्येयगुणाः । 'चउ' इत्यादि, चतसृणां गतीनामबन्धकेभ्यो देवगतेर्वन्धका असंख्यातगुणा वर्तन्ते, हेतुरत्र पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावदवसेयः । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यो मनुष्यगतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । तेभ्यो नरकगतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, संख्येयबहुभागपर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिप्रमाणत्वात् । तेभ्यस्तिर्यग्गतिबन्धकाः संख्येयगुणाः, तद्यथा—प्रकृतमार्गणायां विकलराशेः प्राधान्यमस्ति, तस्मान्नरकगतिबन्धकेभ्यस्तिर्यग्गतेर्वन्धका अधिका उपलभ्यन्ते । 'ताओ' इत्यादि, तेभ्यश्चतसृणां गतीनां बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुरिह प्राग्बदनुबन्धेयः । 'एच' इत्यादि, आनुपूर्वीनां नामपि बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वमेवमेव गतिनामवद् बोद्धव्यम् । 'पण' इत्यादि पञ्चानां जातीनामबन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातेर्वन्धका असंख्येयगुणाः, हेतुः पूर्ववत्, तेभ्यस्त्रीन्द्रियद्वीन्द्रियपञ्चेन्द्रियैकेन्द्रियजातीनां बन्धका यथाक्रमं संख्येयगुणा वर्तन्ते । इह विकलेन्द्रियजीवराशौ पञ्चेन्द्रियचतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियजातीनां बन्धकालस्योत्तरोत्तरसंख्येयगुणत्वेऽपि द्वीन्द्रियजातिबन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियजातिबन्धकानां संख्येयगुणत्वं तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियजीवेषु संख्यातबहुभागजीवानां पञ्चेन्द्रियजातेर्वन्धकत्वादवसेयम् । ततः पञ्चानां जातीनां बन्धका विशेषाधिकाः, शेषं तु सुगमम् । 'पण' इत्यादि, पञ्चानां शरीरनाम्नामबन्धकानामाहारकशरीरनाम्नो बन्धकानां चाऽल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । 'तत्तो' इत्यादि, पञ्चानां शरीरनाम्नामबन्धकेभ्यो यद्वाऽऽहारकशरीरबन्धकेभ्यो वैक्रियशरीरबन्धका असंख्येयगुणाः, पूर्वपदगतजीवानां पर्याप्तमनुष्यत्वेन संख्येयत्वादुत्तरपदगतजीवानां पर्याप्तितिर्यक्पञ्चेन्द्रियादित्वेनाऽसंख्येयत्वात्, तेभ्य औदारिकशरीरनामबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रकृतमार्गणागतजीवेषु संख्यातबहुभागप्रमाणविकलाक्षाणामौदारिकशरीरनाम्नो निरन्तरं बध्यमानत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यस्तैजसकर्मणशरीरनाम्नोर्वन्धका विशेषाधिकाः, हेतुः पुनरिह सुगमः । 'होअन्ति' इत्यादि, आहारकाङ्क्षोपाङ्गनाम्नो बन्धकाः स्तोकाः, अप्रमत्तसंयतैरेवात्र बध्यमानत्वात्तस्य; तेभ्यो वैक्रियाङ्क्षोपाङ्गबन्धका असंख्यातगुणाः, तेभ्य औदारिकाङ्क्षोपाङ्गबन्धकाः संख्येयगुणाः, उभयत्र हेतुः शरीरवद् वक्तव्यः, तेभ्यस्त्रयाणामङ्क्षोपाङ्गनाम्नां बन्धका विशेषाधिकाः, हेतुस्त्वत्र सुगमः । तेभ्योऽङ्क्षोपाङ्गनाम्नामबन्धकाः संख्येयगुणाः, विकलेन्द्रियेषु संख्यातबहुभागजीवानामेकेन्द्रियजातेर्वन्धकत्वेनोपाङ्गस्याबन्धकत्वाद् । 'थोचा' इत्यादि, व्रसस्थावरादिषुगलचतुष्कस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, अष्टमगुणस्थानकस्य षष्ठभागादूर्ध्वमेवासां प्रकृतीनामबन्धात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यस्त्रसचतुष्कस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, संख्येयभागगतजीवानां तद्वन्धकत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि,

ततः स्थावरचतुष्कस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, संख्यातबहुभागजीवानां तद्वन्धकत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यो युगलचतुष्कस्य बन्धका विशेषाधिकाः, क्षुण्णोऽत्र हेतुः । 'ऽण्णोसि' इत्यादि उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धकाबन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौधमार्गणावद् वेदितव्यम् । तच्च तत्रतोऽवसेयमिति । तारचेमाः शेषप्रकृतयः ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्विकम् मोहनीयप्रकृतीनां पञ्चविंशतिः, संहननपट्कम्, संस्थानपट्कम् वर्णचतुष्कम्, स्थिरपट्कम्, अस्थिरपट्कम्, खगतिद्वयम्, प्रत्येकप्रकृत्यष्टकम्, गोत्रद्वयम्, अन्तरायपञ्चकं चेति सप्ताऽशीतिरिति ॥१४३६-४५॥

सम्प्रति मनोयोगवचनयोगमत्कमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च तदुच्यते

चउगइअबंधगाऽप्पा हवेज्ज पणमणत्तिवयणसण्णीसुं ।

तो वधगा असखियगुणा सुरगईअ ताउ सखगुणा ॥१४४६॥

(गीतिः)

णरतिरियगईण कमा सयमुज्झा णारगगईए ।

तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१४४७॥

(उपगीतिः)

पणजाइअबंधगओ चउइदियबंधगा असंखगुणा ।

तिविइदियाण कमसो सखगुणा ताउ सयमुज्झं ॥१४४८॥

ओधव्वे चउसु पणतणुअबंधगाऽऽहारबंधगाण भवे ।

पंचसु संखेज्जगुणा आहारगबंधगा तओ णवसुं ॥१४४९॥

(गीतिः)

उरलस्स असंखगुणा तणुस्स खलु पधगाऽत्थि विउवस्स ।

सयमुज्झा तोऽअहिया तेअदुगस्स मुणं सयमुवंगाणं ॥१४५०॥

(गीतिः)

अगुलहुवधायाणं सव्वत्थोवा अबंधगा णेया ।

ताउ असखेज्जगुणा परधाऊसासणामाणं ॥१४५१॥

तत्तोऽत्थि बंधगा सि संखगुणा वा तओ विसेसहिया ।

अगुलहुवधायाणं खगइसरतसजुगलाण सयमुज्झं ॥१४५२॥

(गीतिः)

बाधरतिगजुगलाण अबंधगाऽप्पा तओ असंखगुणा ।

मुहमतिगस्स तओ खलु णाऊण कम्ममूमिर्तिररासि ॥१४५३॥

(गीतिः)

उज्झा सयं च्च बाधरतिगस्स तत्तो विसेसअहियाऽत्थि ।

जुगलतिगस्सऽप्पबहू णिंदियव्वत्थि सेसाण ॥१४५४॥

णवरं अबंधगा णो दुवेअणीआण अत्थि सयमुज्झा ।

तिरियाउबंधगा खलु सखगुणा उअ असंखगुणा ॥१४५५॥

(प्रे०) 'चउ' इत्यादि, ओघसत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्याऽमृषाभेदेन पञ्चसु मनोयोगमार्गणासु सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्यभेदेन तिसृषु वचनमार्गणासु संज्ञिमार्गणायां च चतसृणां गतिप्रकृतीनामबन्धका अल्पा भवन्ति, अष्टमगुणस्थानसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानां च जीवानामेवाऽत्र तद्वन्धकत्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेषां च संख्यातत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यो देवगतिबन्धका असंख्यगुणाः, पूर्वपदगताना संख्येयत्वे सति तदुत्तरपदगतजीवानामसंख्येयत्वात्, तेभ्यो मनुष्यतिर्यग्गत्योर्वन्धकाः क्रमेण संख्येयगुणा अवसेयाः, उत्तरोत्तरगतिप्रकृतेर्वन्धकालस्य पूर्व-

पूर्वगतिप्रकृतेर्वन्धकालात्संख्येयगुणत्वात् । 'सद्यं' इत्यादि, नरकगतेर्वन्धकानामल्पबहुत्वं यथास्थानं योज्यं स्वयं विचारणीयम् । तद्यथा-भागप्ररूपणायां दर्शितप्रकारेण देवराशेर्वा तिर्यग्राशेर्वा प्राधान्यं ज्ञात्वा तदनुसारेण तत्तद्वन्धकानामल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । तिर्यग्राशावपि कर्मभूमिजानां प्राधान्यमुताऽप्राधान्यमिति ज्ञात्वा तदनुसारेण देवगतिवन्धकानां सूक्ष्मत्रिकवन्धकानां विकलत्रिकवन्धकानां खगतिस्वरत्रयगुणवन्धकानां चाल्पबहुत्वं स्वयं विचारणीयम् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यश्चतसृणां गतिप्रकृतीनां वन्धका विशेषाधिकाः, हेतुरत्र निगदसिद्धः । 'एव' इत्यादि, आनुपूर्वीनामामल्पबहुत्वं गतिवद् वेदयितव्यम् । 'पञ्जाह' इत्यादि, पञ्चानां जातिप्रकृतीनामवन्धकेभ्यश्चतुरिन्द्रियजातेर्वन्धका असंख्येयगुणाः, श्रेणिगतजीवेभ्यश्चतुरिन्द्रियवन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात् । 'ति' इत्यादि, त्रीन्द्रियद्वीन्द्रियजात्योर्वन्धकाः क्रमेण संख्यातगुणाः, अत्र पूर्वपूर्वजातेर्वन्धकालत् उत्तरोत्तरजातेर्वन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताड' इत्यादि, द्वीन्द्रियजातिवन्धकेभ्यः पञ्चेन्द्रियैकेन्द्रियजात्योर्वन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । ततः पञ्चजातीनां समुदितवन्धका विशेषाधिका अनुक्ता अपि व्याख्यानतो विज्ञेयाः, कारण पूर्ववज्ज्ञातव्यम् ।

अथ 'ओघञ्च' इत्यादिना शरीरनाम्नोऽल्पबहुत्वं कथयति । 'चञ्चु' ति मनोयोगौघसत्यमनोयोगव्यवहारमनोयोगसत्यवचनयोगरूपासु चतुर्मार्गणासु पञ्चशरीरावन्धकानामाहारकशरीरवन्धकानामल्पबहुत्वं मनुष्यौघवत्स्वयं ज्ञेयम्, । तथा 'पञ्चसु' ति, शेषपञ्चमार्गणासु पञ्चशरीराऽवन्धकेभ्य आहारकशरीरवन्धकाः संख्येयगुणाः, आसु पञ्चसु मार्गणासु सयोगिगुणस्थानकस्याभावेन केवलं श्रेणिद्वयगतानामेव जीवानामवन्धकतया प्राप्यमाणत्वादवन्धकाः स्तोकाः कथिताः । 'तओ' 'णवसु' इत्यादि, उक्ततनवमार्गणासु कथितपदद्वयवन्धकेभ्य औदारिकशरीरनाम्नो वन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येयानां देवादिजीवानामस्य वन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । 'विञ्चस्स' इत्यादि, वैक्रियशरीरनाम्नो वन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम् । हेतुस्तु पूर्ववत् । 'तो' इत्यादि औदारिकशरीरवन्धकेभ्यस्तैजसकर्मणशरीरवन्धका विशेषाधिकाः ।

'मुण सयमुवंगाण' मिति, अङ्गोपाङ्गनाम्नोऽल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञेयम्-तद्यथा आहारकाङ्गोपाङ्गवन्धका अल्पाः, शेषाल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञातव्यं पूर्ववत् ।

'अगुरुल्लहु' इत्यादि, अगुरुलघूपधातप्रकृत्योरवन्धकाः स्तोकाः, अपूर्वकरणसप्तमभागगतानां नवमादिगुणस्थानगतानामेव च जीवानां तदवन्धकत्वेन सद्भावात् । 'ताड' इत्यादि, तेभ्यः पराधातोच्छ्वासप्रकृत्योरवन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्यातानामपर्याप्तनामवन्धकानां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियजीवानामनयोरवन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । 'तत्तो' इत्यादि, तेभ्यः पराधातोच्छ्वासयोर्वन्धकाः संख्यातगुणाः, वाक्येण असंख्यातगुणा वा ज्ञातव्याः । ते च कर्मभूमिजगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियराशिदेवराशिद्वयस्य तारतम्यं ज्ञात्वा भावनीयाः । 'तओ' इत्यादि, तेभ्योऽगुरुलघूपधातप्रकृत्योर्वन्धका

विशेषाधिकाः, यतः पराघातोच्छ्रामप्रकृत्यवन्धका अप्येतत्प्रकृतिद्वयं वध्नन्ति, अतस्तेषामप्यत्र समावेशो भवति । 'खगइ' इत्यादि, खगतिस्वरत्रययुगलानां वन्धकानामल्पबहुत्वं स्वयमूह्यम्, तद्यथा-यदा तिर्यग्गतिवन्धकानामाधिक्यं तदा खगतिद्वयस्वरद्वययोरवन्धका एवाधिकाः स्युस्तर्थात् स्थावरनामवन्धका अप्यधिकाः स्युः, यदि पुनर्नरकगतेर्वन्धकानामाधिक्यं तदा कुखगतिद्वयस्वरत्रयनाम्नां वन्धकानामाधिक्यं भवेत्, अतो गतिवन्धकानुसारेण खगतिस्वरनामादिवन्धकावन्धकानामल्पबहुत्वं विभावनीयम् ।

'धाथर' इत्यादि, वादरसूक्ष्मयुगलस्य पर्याप्ताऽपर्याप्तियुगलस्य प्रत्येकसाधारणयुगलस्य चावन्धकाः स्तोकाः, संख्यातानामपूर्वकरणसप्तमभागस्थानामनिवृत्तिकरणादिगुणस्थानस्थितानां चास्य युगलत्रयस्यावन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । तेभ्यः सूक्ष्मत्रिकवन्धका असंख्येयगुणाः, कर्मभूमिजगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संख्यातभागवर्तिनामसंख्येयजीवानामस्य त्रिकस्य वन्धकत्वात् । तेभ्यो वादरत्रिकवन्धकाः संख्यातगुणा यद्वाऽसंख्यातगुणा इत्यादिकं देवराशितिर्यग्ग्राशिद्वयस्य तारतम्यं ज्ञात्वा स्वयं भावनीयम् । तेभ्यो युगलत्रयस्य प्रत्येकं वन्धका विशेषाधिकाः ।

'पणिदिधोव' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनां वन्धकाऽवन्धकानामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावद् बोध्यम्, ताश्चेमाः शेषप्रकृतयः-ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्विकम्, मोहनीयप्रकृतिपङ्क्तिविंशतिः, आयुष्कचतुष्कम्, संहननपट्कम्, संस्थानपट्कम्, वर्णचतुष्कम्, स्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तियुगलपञ्चकम्, जिननामातपोधोतनिर्माणरूपप्रत्येकप्रकृतिचतुष्कम्, गोत्रद्वयम्, अन्तरायपञ्चकं चेति । 'णवरं अबंधगा०' इत्यादिना, सातासातवेदनीययोरल्पबहुत्वविषयेऽपवादं कथयति, तद्यथा-अत्र वेदनीयकर्मणोऽवन्धका न कथनीयाः, अयोगिकैवल्यनामत्राभावात् । अतः प्रथमपदे सातवेदनीयवन्धकाः स्तोकाः, तत ऊर्ध्वमल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियवत्कथनीयम् । 'सयमुज्झा' इत्यादिनायुष्कविषये द्वितीयं विशेषं दर्शयति, तद्यथा-पञ्चेन्द्रियमार्गणायां देवायुर्वन्धकेभ्यस्तिर्यगायुर्वन्धका असंख्यातगुणा उक्ताः, अत्र तु ते संख्यातगुणा उक्ताऽसंख्यातगुणा इति तु युगलिकतिरश्चां परिमाणं निश्चित्य स्वयं ज्ञातव्यमिति ॥१४४६-५५॥

अथ वचनयोगसत्कमार्गणादये प्रकृतं मण्यते

पञ्जतसव्व वयदुगे णवरं सायस्स वघगा थोवा ।

ताउ असायस्स मुणहं सखगुणा ताउ दोण्ह अब्भहिया ॥१४४६॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'पज्ज' इत्यादि, वचनौघव्यवहारवचनमार्गणयोः स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां वन्धकावन्धकानामल्पबहुत्वं पर्याप्तत्रयवद् बोद्धव्यम् । केवलं तत्र वेदनीयद्वयस्याप्यवन्धकाः प्रथमपदे प्राप्यन्ते तेऽत्र न सन्ति, अतोऽपवादमणनम्, शेषं सुगमम् ॥१४५६॥

अथ काययोगौघादिमार्गणासु तदाह

कायुरलाचक्खसुं तह आहारे अवंधगा थोवा ।
 चउवीआवरणाण ताउ विसेसाहिया दुणिहाण ॥१४४७॥ (गीतिः)
 ताउ असखेज्जगुणा थोणद्धितिगस्स तो अणतगुणा ।
 से बधगा कमित्तो दोण्ह चउण्ह विसेसाहिया ॥१४४८॥
 सायस्स बधगाऽप्पा तओ असायस्स हन्ति सखगुणा ।
 ताओ विसेसअहिया दोण्ह वि पयडीण बोद्धव्वा ॥१४४९॥
 थोवा अवधगांतिमलोहस्स तओ कमा विसेसाहिया ।
 अंतिममायाईणं तो सखगुणाऽत्थि तिअकसायाणं ॥१४५०॥ (गीतिः)
 ताउ असखेज्जगुणा दुइअज्जाण कमा कसायाणं ।
 तत्तो विसेसअहिया हवेज्ज मिच्छत्तमोहस्स ॥१४५१॥
 तो हन्ति बधगा सेऽणतगुणा तो कमा विसेसाहिया ।
 पढमाइकसायाणं तओ चरमकोहआईण ॥१४५२॥
 चउगइअवधगाऽप्पा हन्ति तओ बधगा असखगुणा ।
 देवगईए तत्तो सखगुणा णारगगईए ॥१४५३॥
 ताउ अणंतगुणा णरगईअ तो तिरिगईअ सखगुणा ।
 तत्तो विसेसअहिया चउण्ह एवमणुपुव्वीणं ॥१४५४॥
 पणतणुअवंधगाओ आहारगबधगा अचक्खणि ।
 सखगुणा तीसु उ पयदुगररा ओधव्व तो असखगुणा ॥१४५५॥ (गीतिः)
 विउवस्स बधगा तोऽणतगुणाऽत्थि उरलस्स हन्ति तओ ।
 दोण्ह विसेसअहिया ओधव्व हवेज्ज सेसाणं ॥१४५६॥

(प्रे०) 'कायु' इत्यादि, काययोगौघौदारिकाययोगाऽचक्षुर्दर्शनाहारकरूपासु चतसृषु मार्ग-
 णासु चक्षुरचक्षुरधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कस्याग्रन्धकाः स्तोकाः, यत एकादशादित्रयोदशगुणस्थान-
 गताः काययोगौघौदारिकाययोगाऽऽहारकमार्गणास्वेकादशद्वादशगुणस्थानगताश्च जीवा अचक्षुर्दर्शन-
 मार्गणायां तदग्रन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, ते च संख्याता एव । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यो निद्राद्विकस्याऽ-
 ग्रन्धका विशेषाधिकाः, नवमदशगुणस्थानगतानां जीवानामप्यत्र तदग्रन्धविधायित्वेन प्राप्यमाण-
 त्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्यः स्त्यानद्धित्रिकस्याऽग्रन्धका असंख्येयगुणाः, मिश्रदृष्टिसम्यग्दृष्टि-
 प्रभृतीनामप्यत्र तदग्रन्धकत्वेन सद्भावात्, तेषाञ्चाऽसंख्येयप्रमाणत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः
 स्त्यानद्धित्रिकस्य ग्रन्धका अनन्तगुणाः, अत्र प्रथमगुणस्थानवर्तिभिरपि तस्य बध्यमानत्वात्, तेषां च
 प्रकृतमार्गणासु निगोदजीवानामपि विद्यमानत्वेनाऽनन्तप्रमाणत्वात् । 'कमित्तो' इत्यादि,
 तेभ्यो निद्राद्विकग्रन्धका विशेषाधिकाः, तृतीयाद्यष्टमगुणस्थानप्रथमभागगतजीवानामप्यत्र ग्रन्धविधा-
 यित्वेन समावेशात्, तेभ्यश्चक्षुरचक्षुरधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कस्य ग्रन्धका विशेषाधिकाः, नवमादि-
 द्वादशगुणस्थानगतजीवानामप्यत्र तदग्रन्धकत्वेन समावेशात् । 'सायस्स' इत्यादि, सातवेद-
 नीयग्रन्धका अल्पाः, तेभ्योऽसातवेदनीयस्य ग्रन्धकाः संख्येयगुणाः, सातवेदनीयग्रन्धकालतोऽसात-

वेदनीयबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात्, तेभ्यो द्वयोर्वेदनीययोर्बन्धका विशेषाधिकाः, सातवेदनीय-
 बन्धकानामत्र प्रवेशात् । 'थोवा' इत्यादि, सञ्जलनलोभस्याऽबन्धकाः स्तोकाः, काययोगौघौदारिक-
 काययोगाहारकमार्गणासु दशमादित्रयोदशगुणस्थानगतानामचक्षुर्दर्शनमार्गणायां च दशमादिद्वाद-
 शगुणस्थानगतानां जीवानामेव तदबन्धकत्वेन सत्त्वात् । 'तओ' इत्यादि, तेभ्यः क्रमेण सञ्जलन-
 मायामानक्रोधप्रकृतीनामबन्धका विशेषाधिकाः, यथाक्रमं नवमगुणस्थानस्य पञ्चमाध्वस्तनभागेषु
 वर्तमानानां जीवानामप्यत्र तत्तदबन्धकत्वेन वर्तमानत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः प्रत्याख्यानावरण-
 कपायचतुष्कस्याबन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन प्रवेशात्, तेषां
 च श्रेणिगतजीवानामपेक्षया संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि, तेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणकपाय-
 चतुष्कस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, देशविरतानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन सद्भावात्, तेषां च प्रमत्तादि-
 जीवानामपेक्षयाऽसंख्येयगुणत्वात्, तेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽबन्धका असंख्येयगुणाः, तृतीय-
 तुर्यगुणस्थानगतानां जीवानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन वर्तमानत्वात्, तेषां च देशविरतानामपेक्षयाऽ-
 संख्येयगुणत्वात् । 'ततो' इत्यादि, तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वा-
 दनानामप्यत्र तदबन्धकतया समाविष्टत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यो मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धका
 अनन्तगुणाः, अनन्तानन्तनिगोदादिजीवानामपि तदबन्धकत्वात् । 'तो' इत्यादि, तेभ्यः प्रथमादि
 कपायाणां सञ्जलनक्रोधादिप्रकृतीनां च बन्धकाः क्रमेण विशेषाधिका विज्ञेयाः । इदमुक्तं भवति—
 मिथ्यात्वमोहनीयबन्धकेभ्योऽनन्तानुबन्धिचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः, सास्वादनानामप्यत्र तद-
 बन्धकत्वेन सत्त्वात्, तेभ्योऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः, तृतीयतुर्यगुणस्थानस्थानां
 जीवानामप्यत्र तदबन्धविधायित्वेन प्रवेशात्, तेभ्यः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धका विशेषाधिकाः,
 देशविरतानामप्यत्र तदबन्धविधायित्वेन सत्त्वात् । तेभ्यः सञ्जलनक्रोधबन्धका विशेषाधिकाः,
 प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नवमगुणस्थानप्रथमद्वितीयभागगतानां च जीवानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन विद्य-
 मानत्वात्, तेभ्यः सञ्जलनमानस्य बन्धका विशेषाधिकाः, नवमगुणस्थानस्य तृतीयभागगतानाम-
 प्यत्र तदबन्धकत्वेन सद्भावात्, तेभ्यः सञ्जलनमायाबन्धका विशेषाधिकाः, नवमगुणस्थानकस्य
 तुर्यभागगतानामप्यत्र तदबन्धकत्वेन समावेशात् । तेभ्यः सञ्जलनलोभस्य बन्धका विशेषाधिकाः,
 पञ्चमभागगतानामप्यत्र तदबन्धकारित्वेन सत्त्वात् । 'खउ' इत्यादि, चतसृणां गतीनामबन्धका
 अल्पा वर्तन्ते, अपूर्वकरणगुणस्थानसप्तमभागनवमादिगुणस्थानगतानामेवैह तदबन्धकत्वेन सत्त्वात् ।
 'तओ' इत्यादि, तेभ्यो देवगतैर्बन्धका असंख्यातगुणाः । 'ततो' इत्यादि, तेभ्यो नरगतैर्बन्धकाः
 संख्येयगुणाः, देवगतिबन्धकालाभरकगतिबन्धकालस्य संख्येयगुणत्वात् । 'ताउ' इत्यादि,
 तेभ्यो मनुष्यगतिबन्धका अनन्तगुणाः, मार्गणास्यासु वर्तमानानां निगोदजीवानामपि तदबन्धकत्वात् ।
 'तो' इत्यादि, तिर्यग्गतैर्बन्धकास्तेभ्यः संख्येयगुणाः सन्ति, मनुष्यगतैर्बन्धकालापेक्षया तिर्यग्गते-